[राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा डी लिट उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य

[जम्भवाणी के पाठ-सम्पादन सहित]

(दो भागों में)

दूसरा भाग

लेखक

डॉ० हीरालाल माहेश्वरी

एम ए., एल एल बी, डी फिल (कलकत्ता) डी लिट (राजस्थान)

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

बी० आर० पब्लिकेशन्स

६, प्रिटोरिया स्ट्रीट, कलकत्ता-१६

दूसरा भाग

विषय-सूची

खण्ड ३ : विष्णोई साहित्य : पृष्ठ ४७१-१०५१

अध्याय ८ : विष्णोई साहित्य : पृष्ठ ४७१-९५८

(कालक्रमानुसार प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं का परिचय और विवेचन)

ग्यानी के हिरदै परमोधि आवै, अग्यानी लागत डासू ॥ १२ : २९, ३० ।
मच्छी मच्छ फिरै जळ भीतरि, तिह का माघ न जोयबा ॥ २६ : १, २ ।
ओवड छेवड कोइय न पीयो, तिह का अन्त लहीबा कैसा ? ॥ २६ : ५, ६ ।
लेम्यं जारं हिरदै लोयण, अन्धा रह्या इवाणो ॥ ७२ : १२, १३ ।
जे कोई हो हो होय करि आवै, तो आपण होइयैं पाणी ॥ १०५ ७ ।
नूर थवं घट भूळ क्यों राखौ, सबळ विगोवो खाटो ? ॥ ११६ ३ ।
मागरमणिया क्यों हाथि विसाहो, कांय हीरा हाथि उसाटो ? ॥ ११६ ४ ।

—जम्भवाणी (सबदवाणी) से ।

आई लहरि समद की, मोती आया माहि ।
बुगला तो यों ही रह्या, हसा चूणि चुगाहि ॥
पोहप वास, कांसी सबद, मीन, पछी का माघ ।
हिरदै दिसटि जे देखियै, पावत थाघ अथाघ ॥
मान वडाई बस की, करता है सब कोय ।
बूडो बस वडाइया, कोई हरिजन न्यारो होय ॥
हरजस, कथा, साखी कहो, कवत, छन्द सिरलोक ।
परमानन्द हरि नाव की, सोभा तीन्यौ लोक ॥

—परमानन्ददासजी बणियाळ ।

दूसरा भाग

खण्ड ३

विश्णोई साहित्य

अध्याय ८

विष्णोई साहित्य

१. तेजोजी चारण : (विक्रम संवत् १४८०-१५७५)

इनका जन्म लाडणू के पास कसूम्बी नामक गांव में सामौर शाखा के चारण जैतसी के घर हुआ था। इनके छोटे भाई का नाम माडण था। मोहिलों और सामौरों का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से, जब से मोहिलों ने छापर-द्रोणपुर लिया, चला आ रहा था। ये ही उनके *पोळपात बारहट थे। जैतसी का विरद "दादा" था और वे अपने समय के बहुत ख्याति-*प्राप्त व्यक्ति थे। राणा माणकराव मोहिल का उन पर कहा हुआ यह दोहा प्रसिद्ध है —

सिरे मोड सामोरडा, ज्यांरी होड न किणहूं होय।
चवथें आलें चारणां, जैत कसूंबी जाय॥

माणकराव के दो पुत्र थे-सांवतसी और सागा[1]। सांवतसी के पुत्र राणा अजीत मोहिल जो छापर-द्रोणपुर के शासक थे, तेजोजी को बहुत मानते थे। कहा जाता है कि अजीत का विवाह जोधपुर के राठोड राव जोधाजी की पुत्री राजांबाई के साथ इन्होंने ही तय करवाया था। जब अजीत जोधपुर के राठौडों द्वारा मार डाले गए तो इन्होंने उनको धिक्कारते हुए यह दोहा कहा था —

बेमासो मति राठवड, हुवंय घणां हरांम।
पातरिया घी हेत विनु, किसा सरांहा कांम?

अजीत के मारे जाने के कारणों के सम्बन्ध में दो मत हैं। नैणसी[2] और ओझाजी[3] के अनुसार राव जोधाजी ने मोहिलवाटी के लोभ के कारण अजीत को छल से जोधपुर में मारना चाहा था, किन्तु वहां योजना सफल न होने पर बाद में उनका पीछा करके युद्ध किया जिसमें वे मारे गए। रेउजी[4] और आसोपाजी[5] के अनुसार उनकी उद्धतता के कारण ही राठौडों ने उनका वध किया। तेजोजी के इस दोहे से नैणसी के कथन की पुष्टि होती है और इस कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। लाडणू के पास दुजार गांव में अजीत ने वीर-गति प्राप्त की थी। वहां अब उनकी एक छतरी बनी हुई है तथा वे "दुजार के जूंझार" या "भैंरू" नाम से प्रसिद्ध हैं। लोग "भैंरू" को मानते भी हैं। तेजोजी ने अजीत की मृत्यु पर अत्यन्त मार्मिक मरसिये कहे थे। इनसे मोहिलों और सामौरों के पुरातन सम्बन्धों का भी पता चलता है। चार दोहे ये हैं :—

१—नैणसी की ख्यात, भाग ३, पृष्ठ १५८, जोधपुर, सन् १९६४।
२—वही, पृष्ठ १५८—१६६ तथा 'ख्यात', भाग-१, पृष्ठ १९०-९६, काशी।
३—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ २४४, सन १९३८।
४—मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ९७, सन् १९३८।
५—मारवाड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९०।

अजीत एकणि आव, दाव दिखावण दोयणां।
साळ कटारी साव, नेग चुकाय'र न्हासजे ॥ १ ॥
ताजदीन वेताज, आज तोइ विण अयपती।
तिण नै वगसण ताज, अजीत पूठो आव रे ॥ २ ॥
लाखांई मन लोरां, जोरां हूं घप घप जगै।
मोहिल सामौरां, नातो निहार आवजे ॥ ३ ॥
मेटि मुढां मरजाद, रतन रुळायो रज कणां।
अजीत थारी आद, सदा काळजो साळसी ॥ ४ ॥

इनके पुत्र जसराजजी (जमूदान) थे, जिनको संवत् १५४४ में लाडणू के शासक मोहिल जयसिंह ने लाडणू गांव में, १२ बीघा वाड़ी मकान के लिए तथा १५०० बीघा धरती प्रदान की और तद् विषयक ताम्रपत्र भी दिया था। (द्रष्टव्य—ताम्रपत्र का चित्र)।

तेजोजी अपने समय के बहुत ही मान्य और प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इनके समकालीन अनेक व्यक्तियों ने इनकी प्रशंसा में दोहे कहे हैं। छापर—द्रोणपुर के शासक मोहिल वच्छराज सांगावत, जो अजीत के भाई होते थे, का यह दोहा द्रष्टव्य है :—

खरो कवेसर खंड में, म्हारी आंख न आवै और।
नेहो तेजळ जैत रो, सत साचो सामौर ॥

इसी प्रकार ढोली जीवणदास खरळवा का निम्नलिखित दोहा भी बहुत प्रसिद्ध है:—

मांडण वीसळ सा मरद, इळ पर मिलै न और।
तेजळ दादा जैतसी, सत साचो सामौर[1] ॥

खरळवा ढोली सामौरों के साथ ही खारळां गांव से मोहिलवाटी में आए थे। ये केवल सामौरों के ही याचक रहे हैं।

जाम्भोजी ने जब सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया तो ये भी अनुमानतः संवत् १५४३ में उनके शिष्य बन कर विष्णोई होगए। स्वयं कवि की रचनाएँ तो इसका प्रमाण हैं ही, अनेक बहिःसाक्ष्य भी इसकी पुष्टि करते हैं। सम्प्रदाय में इनकी बहुत प्रतिष्ठा थी जो आज पर्यन्त चढ़ती ही आई है। ये सम्प्रदाय के प्रामाणिक व्याख्याता माने जाते थे। इस क्षेत्र में दूसरा स्थान ऊदोजी नैण को प्राप्त था। वील्होजी कृत "कथा जैसलमेर की" में इसका उदाहरण मिलता है। जैसलमेर के रावळ जैतसी ने "जैत-समन्द" तालाब की प्रतिष्ठा के अवसर पर जाम्भोजी को अपने यहां बुलाया था। अन्य साथरियों के साथ ये भी थे। वासणपी गांव में रावळजी "जमात" की अगवानी के लिए आए। उनके साथ अन्य लोगों में एक ग्वाल चारण भी था। उसने विष्णोई सम्प्रदाय और जाति संबंधी कई प्रश्न किये जिनका अत्यन्त युक्ति-युक्त उत्तर इन्होंने दिया था (देखें—"वील्होजी")। "लूर" के चौबीस व्यक्तियों में इनका नाम १५ वां है। अज्ञात कवि कृत "जांभैजी रै भक्तां री भक्तमाळ" (प्रति संख्या–२१६), हीरानंद के "हिंडोळणो" (दोनों परिशिष्ट में उद्धृत), हरिनंद के "हरजस" तथा सुरजनजी

[1] १—सम्मेलन पत्रिका, भाग ५२, संख्या १, २, शक १८८८, में लेखक का 'ढोली जीवणदास खरळवा और उनकी रचनाएँ' शीर्षक निबन्ध।

की "वया परसिध" मे अन्य विश्णोई चारण कवियो के साथ इनका उल्लेख किया गया है[1] । सुरजनजी ने एक अन्य गीत मे कतिपय प्रसिद्ध विश्णोई कवियों की रचनाओं की विशेषताएँ बताते हुए इनकी "कवि-वाणी" की मुक्तकण्ठ से सराहना की है —

"वार्ता वील्ह तेज कवि बांणो, सुरेजन गीत धरम सुधाति"(-प्रति स० २०१)। इसकी पुष्टि अज्ञात कवि कृत एक कवित्त की "बारहट तेजसी जांणि, कही कथा कवि बांणी" पंक्ति से भी होती है[2] (प्रति स० ३८६)। साहबरामजी के अनुसार इनका कुष्टरोग जाम्भोजी की कृपा से, जाम्भोळाव म नहाने से दूर हुआ था और तब वे उनके शिष्य हुए[3] —

कहै तेजो प्रभु कृपा करहू। मेरो कुष्ट दया कर हरहू।
कहै गरू जभसागर न्हावो। न्हावतही कचन होय जावो।
तेजो कहै सब तीर्थ न्हायो। ज्यू ज्यू कुष्ट अधिक दरसायो।
या थळ न्हावन कू मन भएऊ। तव लोगों न्हावण नहिं दएऊ।
कहै प्रभ अबही आ न्हावहू। न्हावत ही तव कुष्ट गवावहू।
इतनों सुनत जभसर पैसा। भएऊ मान कं जनमेऊ जैसा।
सकल जमातहिं तन दरसांना। भएऊ विसुध उएऊ जस भांना ॥ १२६ ॥
अब अस्तूती करहैं तेजो। सुध भऐ नहिं लागी जेजो।
अब प्रभु कृपा करो अस भाषो। अपनैं जन कूं सरणैं राषो।
अस कहि चरन परेउ गहि धाई। पाहि पाहि सरणैं जभराई ॥

उपर्युक्त कथन के आधार पर तेजोजी का काल निर्धारण किया जा सकता है। कह आए हैं कि मोहिल अजीत सावतसिहोत का विवाह राव जोधाजी की बेटी से इन्होंने तय करवाया था। यह विवाह सवत् १५१७ मे हुआ था[4] और अजीत का स्वर्गवास हुआ था सवत १५२१ मे[5]। वच्छराज सागावत सवत् १५२३ मे राठोडो द्वारा मारे गये थे[6]। वच्छराज द्वारा कथित दोहा इनकी प्रसिद्धि का प्रमाण है। इनके द्वारा उक्त विवाह तय करवाया जाना और उल्लिखित मरसिये इनकी प्रौढ बुद्धि के प्रमाण हैं। इस प्रकार, यदि सवत् १५१७ तक इनकी आयु ३५-३७ साल की मानें, तो इनका जन्म सवत् १४८०-८२ ठहरता है। इसकी पुष्टि इनके पुत्र जसूदानजी को मोहिल वयसिंह द्वारा दिए भूमि-सम्बन्धी ताम्रपत्र से भी होती है। यह ताम्रपत्र सवत् १५४४ का है। बोवासर के मामोरों मे प्रसिद्ध है कि इस समय जसूदानजी की आयु ३८-४० वर्ष की थी, जो ठीक प्रतीत होती है। इस हिसाब से जसूदानजी का जन्म सवत् १५०४-०६ के आसपास हुआ। इस समय यदि तेजोजी की आयु लगभग २४-२६ वर्ष की मानें तो उक्त कथन ठीक ही प्रतीत होता है।

१-सबधित उदाहरण 'अल्लूजी कविया' (कवि सख्या ३८) के अन्तर्गत देखें।
२-पूरा 'कवित्त' 'अल्लूजी कविया' (कवि सख्या ३८) के अन्तर्गत देखें।
३-प्रति सख्या १६३, जम्भसार, प्रकरण १४, पत्र ४७-४९।
४-प० रामकरण आसोपा . मारवाड का सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १८७।
५-(क)-वही, पृ० १८९-१९० तथा (ख)-रेउ : मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ९७।
६-रेउ · मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ९८।

संवत् १५४४ में पिता के रहते जसूदानजी को जमीन मिलना इस बात की ओर भी संकेत करता है कि तेजोजी उस समय तक गृहस्थ त्यागकर विष्णोई-साधु बन चुके थे[1]। वील्होजी की उपर्युक्त कथा से कवि का संवत् १५७० तक जीवित रहना प्रमाणित होता है, क्योंकि जैतबन्द का निर्माण संवत् १५७० में हुआ था[2] और उस समय ये जाम्भोजी के साथ वहां गए थे। उसके पश्चात् ये कितने वर्ष और जीवित रहे, इसका पता नहीं चलता किन्तु आगे उद्धृत इनकी एक साखी और गीत (संख्या ४) से यह ध्वनित होता है कि सम्भवतः जाम्भोजी की विद्यमानता में ही ये स्वर्गवासी हो गए थे। यह समय संवत् १५७०-७५ अनुमानित होता है। कवि की वंश-परम्परा तो नहीं, किन्तु इनके छोटे भाई मांडणजी की प्राप्त है[3]।

रचनाएं :- इनकी निम्नलिखित रचनाएं प्राप्त हुई हैं:-

(१) छन्द-४५ (गाथा-५, "छन्द"-२४, दोहे-२, कवित्त-१४)[4]

(२) गीत-१२[5]

(३) साखी-१ (१७ पंक्तियां)[6]

१-ताम्रपत्र में अंकों में १०५० और अक्षरों में "पनरासौ" देख कर उस पर सन्देह किया जा सकता है किन्तु जांच करने पर उसमें लिखित बातें सत्य सिद्ध हुई हैं। १५०० बीघा धरती अब उनके वंशजों के निकटतम दो सम्बन्धियों में बंटी हुई है। १२ बीघा वाला कोट अब प्रायः खंडहर होगया है। लाडणू में एक टीला अब भी "सामौर धोरा" कहलाता है। उल्लेखनीय है कि संवत् १५४४ तक लाडणू परगना राठोड़ों के अधिकार में नहीं रहा प्रतीत होता है।

२-(क) कविराजा श्यामलदास : वीरविनोद, पृष्ठ १७६२।
(ख) चारण रामनाथ रत्नू : इतिहास-राजस्थान, पृष्ठ २५०।

३-जैतसीजी (मोहिल माणकराव के समकालीन)

तेजोजी (१४८०-१५७५) → जसराजजी
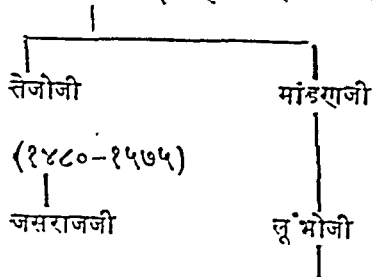
मांडणजी → लूंभोजी → राणोजी → जैसीजी (जैसदानजी) → सेतसीजी → चांपसीजी तथा मेहाजळजी। चांप-सीजी → लालोजी → ऊदोजी → दुरगोजी → वीरदासजी → हरीसिंहजी → सिम्भूदानजी → अनोपरामजी → ईसरदानजी → जुवानसिंहजी → मुजांणसिंहजी → चतरदानजी → उजीणसिंहजी (बोबासर में वर्तमान आयु-लगभग५५ वर्ष)।

४-५-प्रति संख्या २३ तथा २०१। दोनों ही प्रतियों में लिपिकारों ने इन दोनों (छन्दों और गीतों) रचनाओं की कुल छन्द संख्या १६२ दी है जो सम्भवतः अनुष्टुप् श्लोक के आधार पर होनी चाहिए।

६-प्रति संख्या २०१, "ग्रन्थ साखी" के अन्तर्गत।

(४) हरजस–१ (९ दोहों मे)[1]

(५) मरसिये (इनका उल्लेख पहले हो चुका है)।

'४५ 'छन्दो' के सम्बन्ध मे ये बातें द्रष्टव्य है –

(क) कवि ने १ गाथा (या दोहा), ४ "छन्द" तथा १ कवित्त के क्रम से ३७ छन्दो के ६ कुलक बनाए हैं (प्रथम कुलक मे आदि मे २ गाथा होने से)। प्रथम ४ कुलको के पश्चात् बीच मे ८ कवित्त हैं।

(ख) प्रत्येक कुलक मे जब छन्द बदलता है, तो पूर्व छन्द के अन्तिम कुछ शब्दो या अर्द्ध-पंक्ति की आगे के नवीन छन्द मे पुनरावृत्ति होती है। इस प्रकार छन्दो की एक शृंखला चलती है[2]।

(ग) प्रत्येक कुलक के प्रत्येक छन्द–समूह के चारो छन्दो मे एक–एक पंक्ति की टेक लगती है। ऐसी टेकवाली पंक्तियाँ क्रमशः ये हैं —

(१) झभेसर जती जती झभेसर, सति नारायण तो सरणी।
(२) कर जोड़ि तुझि आगळि करणीगर, साध असा सलाम करैं।
(३) अवतारि अचभ झंभ थलि आयो, लिखो न प्रापति केम लहैं।
(४) आयो गुर झंम अचभ अजूनी संभू, माया रूपी महमंहणी।
(५) ताय घणोय तो जस कय साचवतां, कर जोडे सलाम करैं।
(६) करतार क्रम कायम करणीगर, हुंता तहियां केम हुं।

(घ) प्रत्येक अन्तिम कवित्त मे कुलक के शेष सभी पूर्व के छन्दो का कथन-सार आ जाता है।

(ङ) एक छन्द मे संख्यामन्त्र की कतिपय पंक्तियाँ लेकर कवि ने इस मन्त्र की सर्वोपरि महत्ता प्रदर्शित की है –

१–प्रति संख्या ४८ (ग) (४) तथा २२७ (घ)

२–जैसे-गाथा–सोसह साम्य तुझि सुभराजं, जिण पथरि जळ क जोपाजं।
लोपे संमद लंकागढ लाजं, मेलि रीछ रांवण का राजं।
छंद–देवजी रावण का राजं लोपण लाजुं कजण पाज बल्य छळणों।
कवि सारण काजं तो सुभराज आप अकळ अवरा वळणों।
आदेस अभेव अखेव अगोचरि, अनत कळा सिध उघरणों।
झभेसर जती जती झभेसर, सति नारायण तो सरणों ॥ १ ॥

× × ×

पूगी मन आसं, माहे कवळासं होयसी वासों हरि पासं।
गुर करिमी वासुं तोरा दास, तव तेज तारण तरणं ॥ ४ ॥
कवत–तव तेज तो सरणि असर रावण उथपण।
तव तेज तो सरणि लक बोहभीषण थपण।
तव तेज तो सरणि वार घन वीप्रन अपंग।
तव तेज तो सरणि अनत भगतासिध अपण।
मन मुख्य भाव मन महमहंण, तव तेज तारण तरण।
भव प्राण्य उणि अनेक भव संग्रय भाभाजी तो सरण ॥ १ ॥
—प्रति संख्या २०१ से।
आगे के समस्त उद्धरण इसी प्रति से दिए गए हैं।

विसंन विसंन भंणि विसंन वखांणी, अवगति सायां उधरणों ।
देवला स दांनु म दसु दांनु, पाफर खांनु खै गवणों ।
चेतो चित जांणी सारंग पाणी, नादे वेदे निज रहणों ॥ आयो गुर ध्रंभ-टेक ।

इन छन्दों में प्रकारान्तर से जाम्भोजी को भगवान मानते हुए उनको सर्व-शक्तिमत्ता, महिमा, उनके उपदेश-सत्य, शील, संतोष आदि के पालन, विष्णु-जप, दुर्गुण, दुष्कर्म और पाखण्ड-त्याग, सत्कार्य करने आदि का वर्णन किया है। कवि की दृष्टि में ऐसा गुरु और उनका "पसळाद-पंथ" भाग्य से ही प्राप्त होता है :-

लिखी न प्रापति केम, गोम्यंद का जस न गावै ।
लिखी न प्रापति केम, वितर नूतां मंन लावै ।
लिखी न प्रापति केम, वाट दोरै की वहिस्यै ।
लिखी न प्रापति केम, दुख दोरै का सहिस्यै ।
मूल दुख दोरहा दुकट, पसळाद तंणो वाटे घहै ।
अवतार अचंभ ध्रंभ यळि आयो. लिखी न प्रापति केम लहै ।

इस कारण उसने तो ऐसे "विसन" को पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण कर दिया है। आत्म-समर्पण की यह भावना जाम्भोजी की विद्यमानता में सहज ही कही जाएगी :-

जिसी चाल चालवै, चाल पंणि तैसी चालूं ।
जिसा वोल वोलवै, वोल पंणि तैसा वोलूं ।
जिस मारग तूं मेलै, जीव तिह मारग जावै ।
सरस तुझ संमरथ, प्रांण प्राणियो न थावै ।
वीनतो विसंन वाचा अचिळ, सुंणो साम्य सेवग कहै ।
महमहांण मंन मांहरो मुकंद, तू राखै तैसूं रहै ॥

तेजोजी के कवित्त और गीत बहुत प्रसिद्ध हैं, वे इन छन्दों के विशिष्ट कवि माने जाते हैं। सम्प्रदाय में इनकी वाणी का बहुत आदर है। इसका पता इसी बात से चलता है कि इनके निम्नलिखित कवित्त को "गूगळ"[१] या "धूप" मंत्र माना गया है :-

जसंण[२] तंत झणकार, ताळ भोगळ तंमक सुर ।
तवंन तूर ततहै, घंट रंणकैं घंण घुघर ।
झुंणै वेद जोतगो, हुवै सेवगा सुंणो सिर ।
पड़ै भयं[३] पातिगां, गड़ै नीसांण गहर सुर ।

१-(क) प्रति संख्या २०८ (च); २५६ (ङ); ३२५ (घ) तथा ३४८ ।
(ख) स्वामी ईश्वरानन्दजी गिरि : जंभसंहिता, भूमिका, पृष्ठ ८, संवत् १९५५
(ग) स्वामी सच्चिदानंदजी : श्री जम्भ-गीता, भूमिका, पृष्ठ २०, संवत् १९८५ ।
२-३ : ऊपर १ (क) संदर्भ की सभी प्रतियों तथा प्रति संख्या २३ में इनके स्थान पर क्रमशः 'रसंण', 'भंग' पाठ है ।

कव तेज पयपं जोडि कर, कवत[1] गीत भाखत गुण ।
भगवांन भगति भव भजिवा, महलि पधारे महमहण ।

गीत, हरजस, साखी

कवि के निम्नलिखित १२ डिंगल गीत उपलब्ध हुए हैं —

(१) साच सुविचार ससार सुमारगी सुक्रणी करे बोले सुबाणी (५ दोहले)
(२) चेति रे चेति आळस म करि आतमा, मांग्य मन महमहांण मुकति दातार (५ दोहले)
(३) करिस कवज कारणी जीव जम पारधी, खीय फुरमांणि ज मारि देसी (१० दोहले)
(४) हुवे हाथिये हीवरे नवे जू ने नरे पाखरे प्राण क्यों मोय न पावै (४ दोहले)
(५) उत्तिम उदास गह कोई गुर मुखी, देखि दुनिया विचार तिह वेदू (९ दोहले)
(६) कलमू करि आदे कुरांण कतेब, कालिह मरेसी फरमाण कबूल (५ दोहले)
(७) खालो रहमाण रसूल खोदा सुष्य, जीवन को परवाण जुवो (४ दोहले)
(८) मनां फक मांगती येक खोजे, कलालेक कुदडे डीग मारो (५ दोहले)
(९) सगे सासरे पोहरे ममसळे सीये सगे कुलखणे सुपते त्याग कीधो (३ दोहले)
(१०) सु णि काम्य कलाम अलाह का इहनिस, और महमद का सु णि कलाम (४ दोहले)
(११) असो एक दिन आखरे तो तेरो आयसी, तु इ वाट पसळाद वहिसी (१४ दोहले)
(१२) लेखो सतगुर मांग्य जिण दिन लेसी, थीव सोइ दिन गायो (६ दोहले)

गीतो म मृत्यु की अनिवार्यता, ससार की नश्वरता, तत्कालीन स्थिति, हरि-प्रेम, *विष्णु-नाम-स्मरण, आत्म-दर्शन आदि विषयों का भक्तिभाव भरा वर्णन है। समस्त गीतो* मे अ तस म भक्ति और शान्त रस की अस्त सलिला बहती है। इनके पठन पर अधो लिखित कतिपय बातो की ओर सहज ही ध्यान आकृष्ट होता है —

(क) आचार-व्यवहार और धर्म-कर्म हीन समाज तथा धर्म के नाम पर चलने वाले पाखण्डों का बडी निर्भीकता पूर्वक यथार्थ वर्णन। लोगों की पतितावस्था देखकर कवि को मर्मान्तक वेदना होती है और उनके उद्धारार्थ वह सहज ही अपने पथ की ओर उनको आकृष्ट करता है। ऐसे लोगो के मुह पर ही वह उनको तस्कर कहने से नही चूकता। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

(१) मुसळमाणी ध्रम को को नही मुसळमांन, हिंदवं ध्रम न कोय हींदू ॥ १ ॥
काछ न वाच निकळक नर को लहो नारिका पतीभ्रता सती काई।
कुबधिये क म छनाळ धरि धरि धणी, कोम कहि जाति निनाळ काई ॥ २ ॥
रहै एकादसी न को रोजा रहै, अ ते घणा लधणां कर अ न न्याने।
धोग अपोपणो छाडय बैठा ध्र म, मन सुखी किसी ही मुसळमांने ॥ ३ ॥
चारण आचारे कोई नहीं चारण, भाट आचारे न कोई भाट।
ध्र म आपोपणो छाडि अध्र मिये, बांणिये बांभणे परहरी वाट ॥ ४ ॥

१-पिछले पृष्ठ के १ (क) सदभ की चारो प्रतियो मे इस अर्द्ध-पक्ति के स्थान पर 'अ पूरण अभभग'' पाठ है, जो प्रति सख्या २३ और २०१ मे इसके ठीक पूव के १ का पाठ है।

एक उसताज मैं दीठ गुर मांहरो, असोई दुंनी मां कोय न दीठो।
आपरै पंथि अनेक नर आंणियां, पारकै पंथ किणही न पैठो ॥ ५ ॥
गुन्हगारे गिवारे तसकरे वंद तांहरे, फुलखंणे कुपाते खदकार खेली।
मुहे दावो कियो मुसळमांणी तणो, मंन तै काफरी अनै मेल्ही ॥ ६ ॥
तेजियो तांहरी देखि रुख तांहरी, कांम मतो भावतो कांन्य करियो।
पारके आंगणे घरि पर मींदरे, भीख मांगो नै पेट छलियो ॥ ९ ॥-गीत संख्या ५।

(२) परनंद्या करै पैसै घरि पारके, हत्या पंणि पकड़ि लीय हाथे।
खुदाय नी दरगै वाज्यै पायचा, तांह मांनवियां तणे माथे ॥ ३ ॥
नीगरव नीगरूर की कुछ होय नेकाइ, नहेज्ये न्याय अवरमे न दीठा।
आपरो भूठ वखांण सुंणि आदमी, फूलियें तके फारीक फीटा ॥ ४ ॥
श्रवणे छंदो सुंण अजुगतो आपणों, हय हय नं करै ऋत त्यागै।
तांह तसकरां तणै मुंहि कहै कव तेनियो, जूत घंण उडिस्यै वजस जागै ॥ ५ ॥
-गीत संख्या २।

ऐसा खरा और स्पष्ट वर्णन १६ वी शताब्दी में किसी चारण कवि ने डिंगल गीतों में नहीं किया। इसी संदर्भ में निम्नलिखित कवित्त भी द्रष्टव्य है, जिसमें मात्र पेट के लिए दूसरों की प्रशंसा करने वाले कवियों पर गहरा व्यंग्य किया गया है। उल्लेखनीय है कि यह संकेत चारणों के लिए है, और कवि स्वयं भी चारण है :—

सुरमेर संम वड़, मीनख लोभ खंडाए।
पेट काजि पुनवंत, वोहत छदा वोलाए।
जे जीभे जगनाथ, वीण अपरठो कथावे।
गीत कवत छंद ग्यांन, सरस सरळ सुर गावे।
वीनती विसन वाचा अचळ, सुंणे सांम्य सारंगधर।
उचरै तेज तीह वारनी, राख राज्य गुर सधर।

(ख) शनैः शनैः आने वाली मृत्यु, उसकी शक्ति, जरा तथा सांसारिक पदार्थों की नश्वरता का मार्मिक और प्रभावशाली वर्णन। इसी पीठिका में यत्र-तत्र सतगुरु जाम्भोजी के "सबद" सुनने, सुकृत और जीवन्मुक्ति प्राप्त करने आदि का भी उल्लेख है। कवि की दृष्टि में मृत्यु को हरदम याद रखना अनेक बुरे कर्मों से बचना है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[1]

1-(क) मरण मदवाट ता जीव डरैं जेतलो, पाप तै एतलो टरे प्रांणी ॥ १ ॥
अधरम ता ओसरे मरंण पहलो मरे, जीव जरणां जरे जपे जांणी।
कठंण कळिकाळ मां नीर होय निरमळो, परान संवळो करे प्रांणी ॥ २ ॥
सबद सतगुर तणां श्रवणे सांभळो, पाल्य क्रिया दया आंणि प्रतीति।
माल मां माल सुम्यागतां आपणां, प्यारो सोय परचियै विसंन प्रतीति ॥ ३ ॥
पछै हाथ पग वूजस्यें हीण पडिसी हीयै, हुकंम फुरमांणि होसी हकारो।
आवियो अंति उतावळो आळसू, प्रांणियो छाडिसी सो पसारो ॥ ४ ॥
(शेषांश आगे देखें)

(ग) ऐसी स्थिति मे मानव को चेतावनी देना और उसके परम प्राप्तव्य-मोक्ष-साधन की ओर प्रेरित करना। उदाहरणार्थ, कवि के बहु-प्रचलित जागडो गीत (सख्या-१२) के तीन दोहले देखे जा सकते हैं :—

सेखो सतगुर मागि जिण दिन लेसी, प्रीव सोई दिन गायो।
बधवाडो सू कोल कियो छो तो दिन आयो जी आयो ॥ १ ॥
मरण चीतारि म डरि मरण तें, पाप ता डरि ऊं प्रांणी।
जे क्यों तूं अधरम करिस अंधारं, चीगुचिस रैण विहांणी ॥ २ ॥
खालिक मारि जीवाळै खालिक, करे डवर करिसी कहार।
नीगरव होय नीगहर भीकुछ होय, प्रब म करि गीवार ॥ ३ ॥

(घ) सहज भाव से आत्म-निवेदन और स्वीकारोक्ति। ऐसे आत्मपरक डिंगल गीत कम ही मिलते हैं। ज्ञातव्य है कि कम करते-करते ही कवि ने अपना कार्य-साधन कर लिया है। इस सम्बन्ध मे चौथा गीत नीचे दिया जाता है —

बीजा सब फोटि करि बारहट, हूं हरि रो चारट हुवो ॥ १ ॥
हूं चारट हुवो हरजी तांहरो, जीनस्य जीनस्य उपगार जुवो।
काया रतनय नूर कापडा, हूरां तुरी थराक हुवो ॥ २ ॥
करम करतो काम सोघ काया, सोघ वाच सोघ धरत बखाण।
सरबस वाद सतोष सरब सुख, सारदा सु णो सोरिद सु भेयांण ॥ ३ ॥
जहमति नहीं नहीं जोख्यों, जुरा नहीं जम नांहीं जहा।
करम सुफाति दबारे जेह कलमूं, ताजदीन बारट तहा ॥ ४ ॥

इससे कवि की भौतिक सम्पन्नता का भी पता चलता है।

नीगम्यों नान्है जोबन पणि जायसी, आविमी आदमी जुराह एह।
उचरै तेज अग्यान असो नही, काया है जोजरी जाम बेह ॥ ५ ॥ (-गीत सख्या १)

(ख) असत अचेतन चेत न कायें आदमी, आव िन दिन घटै मरण एसी ॥ १ ॥
मरण विसार काय मानवी मारयस्यैं, एक दिन आदे करि मरण आछै।
आज आखर तेरो काय तोमु न करि प्राणिया और तू करिस पछै ॥ २ ॥
महलिये मीत्रिये बेटे न क्यों बधवे सगपणे समधिये जोवो सीणावं।
आपरे तो साथि नेकी वदी आव्यसी, नफर गुलाम न को साथि आवं ॥ ५ ॥
बाळपण गयो जोबन गयो आवे जुरा, ज्यों बराती पडा परी पेनो।
मुवारे मुवारे मुवारे मुरेपी, मारिय्यो म ति अन्याय मेल्हो ॥ ६ ॥
आयो पणि एकलो अछै पणि एकलो, जायस पण एकलो जीतवा जना।
भोळवण भुरे न देव्य निसधानियें, धीय पूता घरा भारेजा धना ॥ ७ ॥
मत्रीये सपुत्रे बधवे सर्वेत्रे सगे, न क्यों समरथे न हुवं सामासि
बाट बसना पडं न को बाट बाहर चडं, ती बसती तणीं किमो वेसासि ॥ ६ ॥
पारको माल पैमाळ कीजै नही, कुलपणा न होयज मारीज्यस्यो काल्हि।
उचरै तेज न सीपियै आतमा, चोरटा मचडा तणी चालि ॥ १० ॥
(-गीत सख्या ३)

(ङ) मुसलमान या मुसलमानी प्रभावान्तर्गत लोगों के लिए अरबी-फारसी बहुल शब्दों में उनकी धर्म-चर्चा के साथ अपना धर्म-कथन। स्मरणीय है कि जाम्भोजी के समय में अनेक छोटे-बड़े मुसलमानों ने भी विष्णोई धर्म ग्रहण कर लिया था जिनमें कई तो बहुत अच्छे कवि हुए हैं। तेजोजी का भाषा, भाव और धर्म सहिष्णुता का यह प्रयास महत्व-पूर्ण है। उदाहरण के लिए यह गीत देखिए:—

कुफर सूं दोसती करिस न कीजियै, जोणि इंमान क्यों उपजै ज्यांन।
दुंनी महि दीन असलाम सूं दोसती, अति घंणी करिज्यो होय आसांन्य॥ २॥
अलाह का वंदा औलादि आदंम की, उंमते मंहंमंद की च्यारि इमांम।
आयतूं दीसू रकातूं सलातूं, मजहव मांहि दीन सलांम॥ ३॥
तयत अलाह की तूं करि तेजिया, मुस्तफा मांन्य मंहंमंद मांन्य।
परहरे पुज मां पुजीय पाप छै, भाखियो साहिव सूतखांन्य॥ ४॥
(–गीत संख्या १०)

इसी प्रकार की दूसरी रचना राग सोरठ में गेय एक "हरजस" है। प्राचीनता, भाषा और गेय पद-परम्परा की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है। उदाहरण स्वरूप आदि के तीन छन्द द्रष्टव्य हैं[1]।

भक्ति-भाव, भाव-गाम्भीर्य, आत्मनिवेदन और स्वानुभूति की अत्यन्त सशक्त शान्त रसात्मक अभिव्यक्ति नीचे लिखी "कणां की" साखी में देखते ही बनती है। इसकी १२ से १५ पंक्तियों में जाम्भोजी सम्बन्धी साम्प्रदायिक मान्यता का उल्लेख है और एकाध स्थल पर किंचित् परिवर्तन के साथ सबदवाणी की अर्द्ध-पंक्तियां भी आई हैं। प्रतीत होता है मानों थोड़े से छोटे-छोटे शब्दों में कवि ने अपने समस्त अनुभव का सार इसमें व्यक्त किया हो:-

साच तूं मेरा सांई, अवर न दूजा कोई॥ १॥
जिन्य आ उंमति उपाई, सिरजंणहारा सोई॥ २॥
साचां सेती संनमुखि, दुंमनां सेती दोई॥ ३॥
खालक सूं छांनें, कित रहियै छिप जाई॥ ४॥
करता नै सूझै, सरव उपाई॥ ५॥
किहंका (म)इया वावो कहंका वहंण र भाई॥ ६॥
सव देखतां चाल्या, काहु की कुछि न वसाई॥ ७॥
हंसा उडि चाल्या, वेलड़ियां कुंमळाई॥ ८॥
हंसा उडण वारी, सुकरत साथि सखाई॥ ९॥

१– सरवर अंबिया मुळतांन, मुळतांन अंबिया, मुळतांन सहज मु स्वांम्य।
तकरीर मक्र ताज केमी पढ़ीयै कांम॥ १॥ टेक॥
दुनियां नहद हजार आलम, जांग रचनां जोय।
दोसती तेरी नवी मंहंमंद, मिरजिया सव कोय॥ २॥
पापांग वग तिग प्रथमी, सीस तार अंवर मूर।
मोहवति तेरी नवी मंहंमंद, मिरजिया मद्र क मूर॥ ३॥ –प्रति संख्या ४८ से।

इण सुगरे मोमिण, सत की पाळ बधाई ॥ १० ॥
आवैलो खोजी, ल्यैलो खोज समाही ॥ ११ ॥
कोडि पांच पहुता, सागी धारा जांही ॥ १२ ॥
कोड़ि सात पहुता, हरिचद सूं सचियाई ॥ १३ ॥
कोडि नव पहुता, अब बारां वारो आई ॥ १४ ॥
साह सही सू आयो, थळ सोरि एकळबाई ॥ १५ ॥
निरगुण सुरूप निरजण, अलप न लखियो जाई ॥ १६ ॥
दीन ताजदीन बोले, साह तेरी सरणाई ॥ १७ ॥

कवि न अपने लिए-तेजो तेज, ताजदीन बारहट, दीन ताजदीन, कवि तेज, कव तेजियो, तेजियो, तेजिया आदि अनेक शब्दो का प्रयोग किया है।

कवि की समस्त रचनाएँ आध्यात्मिक और आतरमपरक हैं। इनसे उसके गहरे सासारिक ज्ञान, अनुभव और निरीक्षण-शक्ति का पता चलता है। जिस विश्वास, दृढ़ता और स्पष्टता से उसने अपनी बातें कही हैं, उसके मूल मे उसकी आत्मिक-शक्ति, तत्त्व-प्राप्ति, अनुभव-परिपक्वता और भगवान पर अटूट विश्वास झलकता है इसलिए इनका प्रभाव स्थायी और शोधक है। बसुध पडे हुए व्यक्तियो को झकझोर कर चैतन्य करना इनका एक बडा गुण है। इमसे मनुष्य स्वत ही अपने आप पर विचार करने को बाध्य हो जाता है। कवि की यह सबसे बडी सफलता है जो साखी और गीतो मे देखी जा सकती है। राजस्थानी साहित्य म अनेक दृष्टियो से साखी, हरजस और गीतो का विशिष्ट महत्त्व है।

२ समसदीन : (विक्रम सवत् १४९०-१५५०) साखी-२

ये नागौर के काजी थे। प्रसिद्ध है कि राव दूदा वाली घटना[1] के पश्चात् सवत् १५१९ म ये सर्व प्रथम जाम्भोजी की ओर आकृष्ट हुए और सवत् १५४२ मे दुर्भिक्ष के समय तो उनके कार्यों और सिद्धि से प्रभावित होकर एकबारगी उनके भक्त बन गए। इसी सवत मे जब जाम्भोजी ने सम्प्रदाय-प्रवर्तन किया तो ये भी 'पाहळ' लेकर उनके शिष्य बने। ये ही प्रथम मुसलमान थे जो इस समय सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए। उसके बाद ये ७-८ वर्ष और जीवित रहे। उसी बीच अनेक लोग जाम्भोजी के शिष्य बने और "पाहळ लेकर पवित्र हुए"। कहा जाता है कि नीचे उद्धृत दूसरी साखी इन्ही लोगो को लक्ष्य कर कही गई थी, जिसकी इन पक्तियो से उपर्युक्त बात स्पष्ट होती है —

हसा हवी टोळी आवै, सरवर करण सनेह ॥ ५ ॥
जांह को पाहळि पातिग नासै, लहियो मोमिण एह ॥ ६ ॥

सवत् १५५० मे या इससे कुछ पूर्व, दिल्ली में इनका देहान्त हुआ। वहां कुतुबमीनार के पास कहीं इनको दफनाया बताते हैं। स्वर्गवास के समय इनकी आयु ६० वर्ष की कही

1—द्रष्टव्य-अध्याय ४, "जाम्भोजी का जीवन-वृत्त"।

जाती है। इस प्रकार, इनका समय लगभग संवत् १४९० से १५५० अनुमित होता है। विष्णोई-समाज के अतिरिक्त नागौर के मुसलमानों में इनका नाम अब भी गौरव के साथ स्मरण किया जाता है।

रचनाएँ :—इनकी दो "कणां की" साखियाँ उपलब्ध हुई हैं :—

(क) सिवरो उंमति को राव, सांईं राजा मंन जपियें[1] । १९ पंक्तियां।

इसमें हरि-नाम-स्मरण, गुरु-वचन-पालन, "जुमले" में जाने, आचार-विचार और आहार की पवित्रता तथा सांसारिक नश्वरता को संकेतित करता हुआ कवि प्रबल और अथाह भव-सागर से पार उतरने के लिए 'स्वामी' को सम्बल बनाने का अनुरोध करता है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

> दे करि दिल को साच, जंमलै रळि मिलियें ॥ २ ॥
> चरियो चरणें जोग्य, अवचर परहरियो ॥ ३ ॥
> अवचरि वढैला रोग, आफरि नां मरियो ॥ ५ ॥
> ज्यों ज्यों कंस म्हारो सांम्य, आगें आगें पग धरियो ॥ ६ ॥
> देखि हरीड़ा वाग, चोरी वंदा नां करियो ॥ ७ ॥
> चोरी है अंणराग, जीवड़ा भै डरियो ॥ ८ ॥
> ठाढो वेळू की रेत, झवुकैला पुंवण घंणां ॥ ९ ॥
> वरसो आजो की राति, काल्हो का द्यौंस घंणां ॥ १० ॥
> सायर लहर्‌यां लेह, ऊंडो देखि झरां ॥ १४ ॥
> संवळ छो जां पासि, सेइ मोमिण पार लंघ्या ॥ १५ ॥
> संवळ विहूंणां वीर, झुरवैं तीर खड्या ॥ १६ ॥
> झुरवैं राति र द्यौंस, घायलां ज्यों झुरहै ॥ १७ ॥
> अगर चंदंण की नाव, वेड़ो म्हारै सांम्य सह्यो ॥ १८ ॥
> बोले संमंसदीन, खेवट पारि लंघ्यो ॥ १९ ॥

(ख) मीठा बोलो नुंवि खुंवि चालो, न तोड़ो गुर सूं नेहा[2] । ११ पंक्तियां।

इसमें उदात्त गुण-ग्रहण, पाहळ लेकर पवित्र होने, शरीर की नश्वरता, अन्त में केवल अपनी करनी-नेकी-बदी के साथ चलने तथा अमृत के समान मीठे धर्म-ग्रहण करने का वर्णन है[3] । इस सम्बन्ध में कतिपय बातें उल्लेखनीय हैं :—

१-प्रति संख्या—६८ (त) ५; ९४; १४१; १४२; १६१; २०१; २१५। उदाहरण प्रति संख्या २०१ से है।

२-प्रति संख्या ७६ (ढ); ९४; १४१; १४२; १६१; २०१; २१५; २६३।

३-मोमिण होय स आपो मारैं, औरयां मारंण केहा ? २॥
मोमिण होय स तुटी सांधै, मरियो दुसमंण घातै वेहा ॥३॥
छली सभा मां पड़दो पाड़ै, दोजखि जैला दुमटी-एहा ॥४॥
हंस चलतैं पिंड पड़ैलो, वांसैं कळियळ केहा ॥७॥

(शेषांश आगे देखें)

कवि ने अत्यन्त कुशलता से अपने गुरु जाम्भोजी और विष्णोई सम्प्रदाय की श्रेष्ठता व्यंजित की है (प्रथम साखी, पंक्ति-१८)। दूसरे खिवैयों-गुरुओं के पास तो साधारण लकड़ी की नौका है या हो सकती है किन्तु जाम्भोजी की नौका "अगर-चन्दन" की है। अन्यत्र अपने दीन-विष्णोई-धर्म को "माहारस" अमृत के समान मीठा बता कर वह इसी की पुष्टि करता है (दूसरी साखी, अंतिम पंक्ति)।

संसार-सागर से पार उतरने के प्रसंग में, प्रकृति की विपरीतता और विशेषतः मेह बरसने की बात का उल्लेख कवि की अनोखी सूझ है (प्रथम साखी, पंक्ति १४)। इस वर्णन में (वही, पंक्ति ९, १०, १५, १६, १७) जहां पार उतरने की कठिनता की व्यंजना है, वहीं इस कार्य के शीघ्र ही किए जाने का सारगर्भित संकेत भी है। उसका मन्तव्य है कि आत्मोद्धार के लिए अविलम्ब चेष्टा आरम्भ कर देनी चाहिए।

कवि का समस्त प्रयास आत्मोत्थान के लिए है, वह इसी की प्रेरणा देता है। गुण, अवगुण, नश्वरता, मृत्यु आदि से सम्बन्धित कथन इसी निमित्त हैं। इनका सामूहिक प्रभाव पाठक को इसी ओर मोड़ता है।

उसने अपनी भावाभिव्यंजना बहुत ही कोमल एवं लोक-प्रचलित किन्तु सशक्त और प्रभावशाली शब्दों में की है। कई स्थलों पर तो एक-एक पंक्ति से अनेक बिम्ब उभरते दिखाई देते हैं तथा अनेक भावों की सृष्टि होती है। साखियों से अप्रस्तुत रूप में तत्कालीन समाज के विषय में भी थोड़ी ही सही किन्तु अच्छी जानकारी मिलती है। भाषा, शैली और भाव-सभी दृष्टियों में ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं तथा सम्प्रदाय में अत्यन्त समादृत हैं। प्रसंगवश एक और बात का उल्लेख करना कदाचित् अनुचित न होगा। दूसरी साखी की कतिपय पंक्तियों को किंचित् परिवर्तन के साथ जसनाथी सम्प्रदाय के श्रद्धालुओं ने मौखिक परम्परा के नाम पर जसनाथजी की रचना बताकर प्रचलित और प्रचारित किया है[1]। दूसरे, इसी आधार पर अन्य विष्णोई कवियों की रचनाओं को समसदीन के नाम से चालू करके प्रकारान्तर से इनको जसनाथजी का शिष्य साबित करने की चेष्टा की गई प्रतीत होती है[2], जो अनुचित है।

माटी सूं माटी रल्य मल्य जैली, कुं कुं वरणी देहा ॥८॥
सरवा ऊपरि पुं वण ढुळला, घणहर वरसैला मेहा ॥९॥
नदी वदी धार साम्य हुवं ली, जग करोला जेहा ॥१०॥
ओहं माहारस समसदीन बोले, मीठो दीन सनेहा ॥११॥

१-द्रष्टव्य - श्री सूर्यशंकर पारीख सिद्धचरित्र, पृष्ठ ८४, ८५, संवत् २०१४।
२-"वरदा" पत्रिका (बिसाऊ) में "संत कवि समसदीन" -लेख। इसमें जिस "मोवण्या मिलो मिलावो" रचना का उल्लेख है, वह विष्णोई कवि जोधोजी रायक की है। देखें -जोधोजी रायक (कवि संख्या ११)।

३. डेल्हजी : (संवत् १४९०-१५५०)[1] :

ये आरम्भिक हुजूरी कवि और लालासर के आसपास के गृहस्थ ब्राह्मण थे तथा जाम्भोजी की महिमा से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने थे। "ग्रंथ साषी" (प्रति संख्या २०१ में) की अन्तिम साखी "बुध परगास" इन्होंने अपने पुत्र को लक्ष्य कर कही है:-

भणें डेल्ह परपोतंम पुता, राज करो परवार संजुता।

अवस्था में ये जाम्भोजी से भी बड़े बताए जाते हैं। इनका समय उपर्युक्त अनुमित है। इनकी रचनाओं पर सबदवाणी का प्रभाव है। उदाहरण के लिए "कथा अहमंनी" में अभिमन्यु का युद्ध में जाना सुन कर उत्तरा का यह कथन :—

अवळा रा वाळ विछोहिया, का लाया कूड़ा आळ।
का गउ पीवती तासवी,[2] रंन लीया मुहाळ[3] ॥४६७॥
तांह दिनां रा पाप लागा, हूं न सकी धाय।
विसंन न जंप्यो आळसी,[4] तिहुं लोकां को राय ॥४६८॥
किया अगोतरि पाप, इणि भव आडा आविया।
का मुंठा मंण्यहार, का के वांभंण घाइया[5] ।
का के वांभंण घाइया, नै का सरवर फोड़ी पालय।
का डूंगर दुंव लाइया,[6] जीव-हत्या परजाळ[7] ।
जगजीवंण जाण्यों नहीं, जंप्यों नांहीं जाप।
इणि भव आडा आविया, किया अगोतरि पाप ॥४७२॥

इसी प्रकार "साखी" के इस छन्द पर भी :—

थोड़ै मांहि थोड़ै रो दीजै,[8] धरंम करंता भाय रहीजै।
पांणी पीवती गउव न मारी,[9] मीत न करि वेस्या भिखियारी ॥११॥

डिंगल कवि पीरदान लालस ने अपने "परमेसरपुराण" में जाम्भोजी (संमराथणी) तथा अनेक भक्तों और कवियों के साथ इनका नामोल्लेख भी किया है :—

वांभण डेलू वोलिया, काइम राजा केथि।
धिणी तुहारी धारआ ओ जोई वैठे ओथि[10] ॥८९॥

ध्यातव्य है कि अनेक विष्णोई कवियों ने जाम्भोजी को "कायमराजा" कहा है। डेल्हजी के संदर्भ में उपर्युक्त कथन ठीक ही है।

१-के० का० शास्त्री : कविचरित, भाग १-२, पृष्ठ १२०-१२२, संवत् २००८, भी द्रष्टव्य है।
२+६; ३+६; ४; ५; ७; ८-तुलनीय सबदवाणी, क्रमशः ५९ : ११, १२; ५९ : १७; ६६ : १६; ५६ : ९; ८३ : २८; ६३ : ४।
१०-पीरदान लालस ग्रंथावली, पृष्ठ १६, वीकानेर, सन् १९६०।

रचनाएँ : इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं –

१–बुध परगास[1]–साखी (२७ चौपई),

२–कथा अहमनी[2] (कथा अहदावणी)। चौपई, दोहा और "छन्दो" में रचित, ७१७ दोहा-परिमाण की।

बुधपरगास :–यह राग विहाग में गेय छोटी सी साखी है। इसमें नीति-कथन, एवं करणीय-अकरणीय कृत्यों आदि का सरल भाषा में वर्णन किया गया है। जैसा कि नाम से प्रतीत होता है इसमें बुध परगास, अर्थात बुद्धि को प्रकाश देने वाले ज्ञान का उल्लेख है। कवि के शब्दों में— बुध परगास सुणै सभ कोई, मूरिख सुंणै स पिंडत होई ॥२॥ इससे तत्कालीन मरुदेशीय समाज में मान्य आदर्श, लोक व्यवहार, रीति नीति, विश्वास, धारणा आदि कितने ही विषयों का बड़ा अच्छा परिचय मिलता तथा ज्ञान-वर्द्धन होता है। समस्त विष्णोई साखियों में प्रस्तुत साखी अपने ढंग की एक ही है। उदाहरणार्थ ये छन्द द्रष्टव्य हैं –

ओछै घास कीय न वसीजै, कुळ हीण वर कन्या न दीजै।
पर घरि हांढत वरजो नारी, जातौ विसहर चपि न मारी ॥३॥
बड अपणो गुझ कहीं न कहीजै, बध किणि धन व्याज न दीजै।
अण'र विमांस्यो कांम न कीजै चिंता होय नै काया छीजै ॥४॥
अप्रवाणि जळ कीय न पैसो। इधक न बोलि सभा मां बैसो।
चौहडे बात न कहियै पराई। सभा मां बोल बोलियै विचारी ॥७॥
हासो न करी काठै कूवै, भणै ऊेल्ह मत खेलै जूवै।
कूडी साखी न कही पराई, झूठो आळत कहीं न लाई ॥९॥
उतरि नाह न ओघट घाटै, कन्या न वेचि गरथ कै साटै।
ब्राहण आये आदर कीजै, जूनू कापड ढोर न लीजै ॥१४॥
भूखो गांय न जाई सियाळै, जीम र गाव न जाई उन्हाळै।
सावणि भाद्रवै गांय न जाई इधक न जीमी जो न सुहाई ॥१६
हाथे वांको खांण न लीजै, दुय संस्या नींद न कीजै।
साजन घरे न जाइ मल वेसो। आदर भाव न कोय करेस्यो ॥१८॥
चूंधत गउव न कहीय पराई, घाव न घाती मुंणहे बिलाई।
उत्तिम सरमो संग न मेल्ही, कायर मत पडै दुहेली ॥२०॥

कथा अहमनी – यह राग धनासी, मारू, सोरठ, गवडी, धोवळ और असाधाहडी में गेय आख्यान काव्य है। इसका कथासार इस प्रकार है —

कवि विनायक की स्तुति और सतगुर से अपना चित्त अविचल रखने के लिए कामना

१–प्रति संख्या–२०१, २०७ (ड), २०८ (ठ)।
२–प्रति संख्या–१५२ (छ), २०१, फोलियो ३४७, २०७ (ट), २०८ (ड), २३४ (ख), २४१, २५८, ३२६। दोनों के उदाहरण प्रति संख्या २०१ से दिए गए हैं।

करता है। वह "अभिमन्यु का गीत" गाना चाहता है।

कृष्णजी ने अनेक दानवों को मारा। मथुरा के असुरों का वध किया जिनमें "अहलोचंण" भी था। उसकी गर्भवती स्त्री भागकर वन में चली गई। वहां उसके एक बलवान पुत्र "अहदांणव" उत्पन्न हुआ जो "उणियारे" में अपने पिता के ही समान था।

अहिदानव ने अपनी माता से अपने गोत्र, पिता, नगर तथा वन में रहने के कारण आदि के विषय में पूछा। बारह वर्ष के होने पर माता ने बताया-तीनों लोकों के राव कृष्ण ने तुम्हारे वंश का मूलोच्छेदन किया है। वह अत्यन्त बलवान है, द्वारका में बसता है और पाञ्चजन्य शंख बजाता है। उसने क्रुद्ध होकर कृष्ण को बांध कर लाने का संकल्प किया और आकाश में गया। विश्वकर्मा के पास बैठ कर उसने १२ वर्ष तक तप किया। तब विश्वकर्मा ने उसका कष्ट पूछा। वह बोला-मेरी वेदना का अन्त नहीं है; नारायण को पकड़ने के लिए एक 'जन्तर' बना दो। विश्वकर्मा ने 'जन्तर' बना दिया और उस पर लिखा-'जो इसमें पहले प्रविष्ट होगा, वही मरेगा'। 'जन्तर' को उठाकर वह द्वारका की ओर चला। रास्ते में नारायण एक बूढ़े ब्राह्मण के वेश में मिले और बोले-मैं सोचता हूँ कि तुम मथुरा के अहिलोचन के समान ही दिखाई देते हो, अतः मेरे जजमान हो। वह प्रसन्न होकर कहने लगा-मैं अपने पुरोहितजी की मनोकामना पूरी करूंगा, किन्तु यह तो बताओ तुम रहते कहां हो ? ब्राह्मण बोला-द्वारका में। उसने नारायण के विषय में पूछा, तो ब्राह्मण ने कहा-न वह छोटा है, न बड़ा, वह तेरे जैसा ही है, या तेरे से कुछ बड़ा। यदि तू इसमें समा सकता है, तो हरि भी, और अधिक मुझे मालूम नहीं। तब दैत्य ने 'ताले चाबियां' गुरु को दीं और स्वयं उसमें प्रविष्ट होने लगा। ज्यों ज्यों वह अन्दर घुसता गया त्यों त्यों ब्राह्मण ताले लगता गया और अन्त में पाञ्चजन्य बजाया। वह बोला-मैं अन्दर घुट रहा हूं, तुम तो घर के पाण्डे हो, हंसी मत करो। कृष्ण ने कहा-हंसी हंसी में मैंने अनेक दानवों को मार डाला है। तुम्हारे पिता अहिलोचन को जब मारा था, तो तुम गर्भवास में थे। अब मैं तुम्हारा कार्य पूरा करूंगा, तुम्हारे बिछुड़े परिवार से मिलाऊंगा। दैत्य बोला-कूट-कपट से मुझे मत मारो, सम्मुख दांव खेलो। कृष्ण ने उत्तर दिया—यदि गुड़ देने से मर जाए, तो विष क्यों दिया जाए ? मैं तो अपनी पसन्द से ही मारता हूँ। इस पर वह ऊँचा उछला और 'जन्तर' को हरि पर पटकने की सोची। यह देखकर कृष्ण ने पाञ्चजन्य बजाया, जिससे उसकी काया गल गई और वह भंवरा बनकर अन्दर गुंजार करने लगा। 'जन्तर' लेकर कृष्ण द्वारका आए (छन्द १—४१)।

कृष्ण की राणियाँ नारद से पूछने लगीं :-कृष्ण रत्न, धन, गहने जो भी लाए हैं; वे हमें बताओ। हम कब उनसे शृंगार करेंगी ? नारद ने उत्तर दिया—जब अठारह अक्षौहिणी सेना जुड़ेगी, पाण्डवों की जय होगी, तब। सोलह सहस्त्र राणियां अपनी-अपनी मन-चाही शृंगार-सामग्री मांगने लगीं। इसके लिए वे बाई सुभद्रा से प्रार्थना करने लगीं। उसने अपने भाई की शंका न मानकर चाबी लेकर ताले खोल दिए। 'जंतर' खुलते ही भंवरा भन-भना कर बाहर उड़ा और-मुखद्वार से सुभद्रा के पेट में चला गया। दुःख से व्याकुल होकर

वह कहने लगी–इसके गर्भवास में होने से तो मैं मरी ही छूटूंगी। आठ महिने होने पर–नवें मे बालक गर्भ म खेलने लगा। उसने सातों समुद्रों को पीस डालने की इच्छा की और छत्तीस भुजाएँ कर ली। तब श्री कृष्ण ने पाञ्चजन्य बजाया जिससे उसके केवल दो ही भुजाएँ रह गईं, शेष गल गईं। वे चक्रव्यूह की बात बताने लगे–पहले द्वार पर गुरु द्रोणाचार्य, फिर क्रमश शल्य, कर्ण, बिसासेण, पाळीपचाळ, लाखन और दुर्योधन होंगे। सुन कर दानव ने "हुंकारा" दिया (छंद ४२–६४)।

श्रीकृष्ण ने सुभद्रा का विवाह अर्जुन से करा दिया। सुभद्रा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अहमन (अभिमन्यु) रखा गया। सर्वत्र हर्ष छा गया, राज्य म बधाई बाटी गई। बालक धीरे-धीरे बडा होने लगा, इससे कृष्ण शंकित होने लगे। उन्होंने अपने भानजे के घन की परीक्षा की और उसको अतुल बलशाली पाया। छप्पन कोटि यादव वृन्द से कहने लगे–सगा भानजा ही प्रथम शत्रु है, इस पर घात कैसे लगाएँ? बारह वर्ष का होने पर तो वह बडा हो जाएगा और अपना कुल क्षय करेगा। जब अभिमन्यु आठ वर्ष का हुआ, तो भीम भतीजे पर परीक्षार्थ 'चोट करने' लगे, जिनको उसने दो–दो खण्ड कर दिया। अखाडे म रखी भीम की गदा को भी उसने ब्रह्माण्ड म फेंक दिया। तब भीम ने कुंवर के अगाध बल की बात राजा युधिष्ठिर से कही। उन्होंने कुंवर के विवाह हेतु श्रीकृष्ण को द्वारका से बुलाया। भीम ने कहा–अपने भानजे का विवाह करो। इस हेतु पुरोहित और भाट ने अनेक ठिकाने देखे, किन्तु कोई भी नहीं जचा। वे विराट म कील्ह नरेश के यहा गए। उनकी सभा मे उस समय राजकुमारी उत्तरा शृंगार किए घूम रही थी। उन्होंने राव से बात की और कन्या मागी। राव ने अत्यंत हर्षित होकर यह प्रस्ताव स्वीकार किया और उनको पाँचों कपडे दिए। इसी समय अग्निकोण मे "कागला" बोली। राजा की एक दासी चारों युगों की बात बता सकती थी। वह शकुन विचार कर बोली–यदि इस शकुन पर कन्या दी जाएगी, तो वह अपने पति को गँवा देगी। कुंवरी कहने लगी–यदि तुझे इतनी बात सूझती है, तो यहा दासी बनकर क्यों आई है? उसने अपने पूर्व जन्म की बात बताते हुए कहा कि जुए म पति को हारने के कारण मैं उनकी हत्यारिन हुई और इस कारण मुझे दासी बनना पडा। राजा ने चलते समय उनको 'तीन लाख सुपारियाँ दीं'। वे लोग शीघ्र ही हस्तिनापुर आ गए। यहा सब लोगों ने बडी उत्सुकता से राजा, देश, वधु आदि के विषय में पूछा और उन्होंने बताया। हर्षित होकर सबने उनका यथोचित सम्मान किया। अब शीघ्र ही विवाह की तैयारियाँ होने लगीं (छन्द ६५–११८)।

सुभद्रा ने ज्योतिषी से पूछा —विनायक की स्थापना कब करेंगे? विवाहोचार कब होंगे? वह बोला–विनायक तो ठीक अष्टमी मंगलवार को स्थापित हो जाएँगे, किन्तु विवाह मे तो विघ्न लिखा है और 'सा'वा' भी सपूज है। संयोग ऐसा है कि या तो अग्नि बाण उछलेंगे अथवा अचिंत्य युद्ध होगा। यह सुनकर सुभद्रा और अर्जुन दोनों बहुत ही दुखी हुए। अर्जुन ने बुरे विघ्न टाल कर और अच्छा 'सा'वा' देखने को कहा। कुन्ती बोली हे गवार बहू! तू कहती है, अनहोनी तो होगी नहा और होनी टलेगी नहीं, जो विष्णु

करेगा वही होगा, उसका स्मरण करो, सब काम वही संवारेगा। तब सुभद्रा ने शृंगार किया। सब ओर आनन्द छा गया। विप्रों को दान दिया जाने लगा। युधिष्ठिरजी ने कुंकुम-पत्रियां लिखवाईं। नगाड़े बजने लगे। बरात में साढ़े आठ अक्षौहिणी सेना जुटी। जनेतियों के फूलमालाएँ टाली गईं, अभिमन्यु ने 'मौड़' बांधा और सजकर बरात चली। रथ, घोड़े, हाथी और 'सांढे' ऐसे चले मानों नदियों का पानी हिलोरें ले रहा हो। विराट नगर से एक योजन आगे "पड़जानी" सामने आए। भीम ने उनको 'सुपारियाँ दीं'। वहां के प्रधानों ने राजा युधिष्ठिर की जुहार की। पान के बीड़े दिए गए (छन्द ११६-१५८)।

बरात ज्योंही तोरण के पास आई, त्योंही काग बोला। दासी ने कहा-शकुन सभी बुरे हो रहे हैं; सहेलियाँ बोलीं-हरि सब ठीक करेंगे। उत्तरा के मन में अति-उत्साह था। "जान" देखने के लिए वह अपने आवास पर चढ़ी और सखियों से इसके विषय में पूछा। उन्होंने पाँचों पाण्डवों और कृष्ण का, उन सबके प्रमुख कृत्यों का बखान करते हुए सविस्तर परिचय दिया। सुनकर वह प्रसन्नता से बोली-अपने तो मनुष्य हैं किन्तु पाण्डव देवता हैं। यह हमारे कर्मों का ही फल है कि वे यहां पधारे हैं, नहीं तो आक और आम एक स्थान पर नहीं उगते (छन्द १५९-१८७)।

पचासों पकवान किये गये। "जान" का "जीमणवार" हुआ। बड़े घर में विवाह होने से बधावा भी बड़ा था। सभी "जानी" तृप्त होकर जनवासे में गये। मंडप बनाया गया। चोवा, चन्दन, कस्तूरी पृथ्वी पर छिड़के गये। "आले-नीले" बाँस रोप कर लाल तम्बू ताने गये। सखियाँ मंगल-गीत गाने लगीं। बायें-दायें पीढ़े टाले गए और अभिमन्यु को घर में बुलाया गया। उसका विवाह हुआ। राजा युधिष्ठिर मन में प्रसन्न थे, उन्होंने विराट-राव की प्रशंसा की। ब्राह्मण, भाट सुयश गान करने लगे। खूब दान दिया गया। जनेत को "सीख" हुई और सब हस्तिनापुर पधारे (छंद १८८-२०८)।

नारायण ने एक बात सोची। उन्होंने नारद को बुलाकर कहा-तुम पाताल जाओ और "ताळू" दैत्य को समझावो कि वह इन्द्र पर चढ़ाई करे। कहो कि यह मैंने कहा है। ऐसा ही हुआ। दैत्य ने इन्द्र पर चढ़ाई कर दी। उसकी सहायतार्थ शीघ्र ही अर्जुन इन्द्र-लोक गया। अब नारायण कौरवों के दीवान बनकर गये और कहा-तुमको धिक्कार है, घात करने का यही समय है, क्योंकि अर्जुन घर में नहीं है। इस पर उन्होंने युद्ध की तैयारी की। द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह-युद्ध का बीड़ा युधिष्ठिर के पास भेजा। वे बड़े ही चिंतित हुए। सब के सामने उन्होंने यह बात रखी। भीम, सहदेव, नकुल, घटूका (घटोत्कच) सबने बारी-बारी से युद्ध में जाने की आज्ञा मांगी, किन्तु राजाजी ने चक्रव्यूह का भेद न जानने के कारण उन सबका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इस पर अभिमन्यु ने पूछा-कौरवों का सरदार कौन है और उनके दल में कौन बांका वीर है? राजा बोले-दुर्योधन और द्रोणाचार्य। तब उसने युद्ध का बीड़ा ले लिया। इस प्रकार भीम के भतीजे, नारायण के भानजे और सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने कुल की लाज रखी। बधाई बांटी गई और बाजे बजे। कुँवर की आयु इस समय दस वर्ष की थी (छंद २०९-२६५)।

नारद ने आकर सब बातें सुभद्रा से कही। पहले उसको आश्चर्य हुआ फिर खेद। सोचने लगी–मुकुट पहने सभी पाण्डवो के रहते अभिमन्यु को युद्ध मे क्यो भेज रहे हैं ? उसने अभिमन्यु को युद्ध की भयकरता और उसके वियोग–दु ख की बात कहकर युद्ध मे जाने से रोकना चाहा। वह बोला–सात अक्षौहिणी सेना मे से बीडा किसी ने नही लिया। धर्मराव बोले–मेरा पिता घर पर नही है और उनके बिना चक्रव्यूह का मार्ग कोई जानता नही है। तब मैंने बीडा लिया। तुम विलाप मत करो, इससे सभी को लाज लगेगी। मुझे "बाळा" मत कहो, क्योकि गरुड, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, मेह, केहरि और सर्प ये–"बाळा" ही भले होते हैं। तब कुन्ती ने बहू को यादव वश और कृष्ण की महिमा का स्मरण दिलाकर तथा अन्य अनेक प्रकार से सान्त्वना दी, किन्तु उसका शोक कम नही हुआ। बोली–अन्धे की तो मानो लकडी ही छीन ली गई है। वह रोने लगी। कुन्ती ने समझाया–सत्पुरुषो का जीवन धन्य है। यदि सामन्त युद्ध मे भिडे तो नाम रह जाता है। सुभद्रा बोली–'हे सास ! तुम्हारे तो पाँच हैं, किन्तु मुझ अबला के तो एक ही है। मेरा भला चाहती हो, तो राजाजी से पुछवाओ कि भीम के पीछे रह जाने से वे प्रसन्न होंगे या जिसका पिता सुर–भुवन मे है उसको रण मे भेजने से। वह सोचने लगी–सहोदर भाई कृष्ण ही बैरी हो गया, वही मेरे कुँवर के पीछे पडा है, उसी ने यह सहार मचाया है। यदि कुल–वधू इस समय घर मे आ जाती तो अच्छा होता, क्योकि कष्ट–निवारक अर्जुन तो सुर–लोक मे है। उसके मन से अभिमन्यु के जीवन की आशा जाती रही (छन्द २९९–३२१)।

गवाक्ष मे बैठे राजा युधिष्ठिर ने रैंबारियो को बुलाया और पूछा–घडियो मे योजनो दूर जाने वाली कितनी 'सां'ढो' तुम्हारे पास हैं ? महणो, मोक्वो, राघो, और रतनू–चारो रैंबारियो ने अपनी अपनी'सां'ढो' के विषय मे बताया। तब विराट जाने के लिए सहस्रो सांढो मे से छाट कर १६ 'सां'ढो' पर "पलाण माडे" गए। उनके साथ एक ऊट भी गया।

इससे पहले की रात के चारो प्रहरो मे उत्तरा ने चार दु स्वप्न देखे। सखियो ने समझाया–तेरे स्वप्न झूठे हैं। ये उन्ही के सिर पर पडें जो पतियो का बुरा चाहती हैं तथा जो पडोसियो को दोष लगाते, और झूठ बोलते हैं।

रैंबारियों ने आधी रात में ही विराट आकर "पोळियों" से तत्काल ही "पोळ" खोलने को कहा। वील्हराव ने पूछा–बिना शत्रु–मित्र का पता लगे "पोळ" कैसे खोलें ? उन्होंने अपना परिचय दिया :—पाण्डवों के प्रधान के रूप मे आए हैं और उत्तरा कुँवरी के पाहुने हैं। कुँवर शीघ्र ही रणक्षेत्र मे जाएगा। हम यहा देर न लगाकर वापिस हस्तिनापुर जाकर ही सोएँगे"। राव ने कुशल समाचार पूछे। उन्होने सारी स्थिति बताते हुए कहा–कुँवर ने रण का बीडा लिया है। सुनते ही राव पाण्डवो को बुरा–भला कहने लगा। इस पर सारग भाट बोला–तुम बार–बार पाण्डवों की निंदा करते हो, यह हमे पसन्द नही है। राजा होकर व्यर्थ की बातें क्यों बोलते हो ? उसने पाण्डवों, घटोत्कच और अभिमन्यु की वीरता और नीति–कुशलता का विस्तार से बखान किया। तब वे नगर मे प्रविष्ट हुए, सांढो को महल के आंगन मे ही "झैकाया"। उत्तरा की माता ने पाहुनों से अकेले आने का

सही-सही कारण पूछा। उन्होंने युद्ध की बात बताई और कहा-और तो सब ठीक हैं किन्तु कुँवर की कुशल नहीं। सुनते ही रानी ढह पड़ी और मूर्च्छित हो गई। उत्तरा की आशा निराशा में बदल गई। चेतना आने पर राणी ने कुन्ती और पाण्डवों को बहुत कोसा। बोली-बालक ने तो युद्ध की सोची है, किन्तु राजा अमर रहेंगे न ! कुन्ती को क्या लाज है ! उसने तो कार्य ही ऐसे किए हैं; कुँवारपने में ही कर्ण को जन्म दिया था। सहदेव की पुस्तक-विद्या नष्ट हो, नकुल घड़ी भर भी न जिए, राजाजी को पाप लगे और भीम को दुख-दाह हो। वे बोले-राणी ! व्यर्थ की बातें मत करो, बहुत कह चुकीं। राजा सत्यवादी हैं और कुन्ती महामती। राणी ने कहा-हमारे मन में जो चाव था वह कुँवरी को नहीं दे पाई। मेरी ये बातें पाण्डवों को मत कहना। जुवारी की भांति हम तो हार गए; हाथ शिला के नीचे आ गया। हृदय की बातें अपने स्नेहियों से कही जाती हैं। उत्तरा बोली-मांजी ! जीभ की मर्यादा मत मिटाओ। पाण्डव प्रत्यक्ष देव हैं, स्वयं देव ने ही यह किया है, दोष किसको दें ? मेरे पूर्वजन्म का पाप ही सामने आया है। मेरा भला चाहती हो तो मुझे शीघ्र ही हस्तिनापुर भेजो; क्षण भर की भी देर मत करो, रात्रि में ही वहां जाना है। तब राजा का प्रधान मेहते की दुकान से कुँवरी के लिए लूंग, साड़ियाँ, रेशमी वस्त्र आदि लाया। दासी ने शकुन देखकर कहा-भरतार से भेंट नहीं लिखी है (छन्द ३२२-४८७)।

उत्तरा ने शृंगार किया। अन्तःपुर में वह सबसे मिली, सबने आशीर्वाद दिया। राजकुल की सभी रीतियाँ की गईं। विदाई के समय सबकी आंखों में आंसू आ गए। सब के सब केवल खड़े रहे, बोले कुछ नहीं। कुँवरी को लेकर सोलह सांढें चलीं, मानों शक्ति विमान जा रहा हो। चार देश लाँघने पर उत्तरा को ध्यान आया कि उसका तीन लाख का काजल का "कूंपला" तो घर में ही रह गया। तब एक रैवारी ऊंट पर उसको लाने वापस विराट गया। आठ देशों का फासला शीघ्रता-पूर्वक लाँघ कर वह उनसे आ मिला। कुँवरी ने उसको बधाई दी, कार्य सिद्ध होने पर अन्य रैवारियों को भी यथोचित पुरस्कार देने का वायदा किया। सांढें चलती गईं और सूर्योदय से पूर्व ही उन लोगों ने हस्तिनापुर आकर राजा से जुहार की (छन्द ४८८-५३८)।

उत्तरा ने अभिमन्यु के दर्शन किए। बोली- तुम्हारे सभी विघ्न दूर हों, नेत्र तो तृप्त हो गए पर मेरे मन में चिन्ता है; तन का मिलाप तभी होगा जब हरि चाहेगा। अभिमन्यु के आंगन में आते ही वह निश्वास छोड़ने लगी और मूर्च्छित हो गई। सचेत होने पर बोली- मैंने तो जीवन ही हार दिया, मेरी तो मन की मन में ही रह गई ! अभिमन्यु युद्ध में चला। सुभद्रा ने आर्त्त होकर श्रीकृष्ण से अभिमन्यु को वापस घर भेजने के लिए कहा। वे बोले- सती, शूर, ज्ञानी और हाथी वापस नहीं लौटते। स्त्री और माता के विलाप करने से क्या होता है ? फिर सुभद्रा ने प्रार्थना की- या तो छः मासी रात्रि करो अथवा अभिमन्यु को अजेयता का वर दो; मुझे 'कांचली' वस्त्रो। कुन्ती बोली-इन दोनों में से एक भी बात नहीं होगी। तू भोली है भेद नहीं जानती, आंखो में आंसू मत भर। कृष्णजी ने कौल किया किया कि अभिमन्यु वापिस आएगा, "कूकड़े' के बांग देते ही वह पीछे नहीं रह पाएगा (छन्द ५३९-५६३)।

प्रभात हुआ। घर के आगन मे वह पधारी। मोतियों का थाल भरे कुन्ती आगन मे खडी हुई। वह आरती और कुलाचार करने लगी। अभिमन्यु को विदा देने के लिए नर-नारियो के 'थाट' जुड गए। उसने अपनी पत्नी को आखो मे काजल "सारे" देखा। इतने मे मुर्गे ने बाग दी। सुभद्रा ने पुन कुन्ती से कहा– यह बडे-बडे राजाओ को कैसे जीतेगा? क्या घडा सागर सोख सकता है? उसके टप टप आसू पडने लगे। गवाक्ष मे खडी होकर देखने लगी कि शायद कही से क्षण– मात्र मे अर्जुन आ जाए। तभी श्रीकृष्ण अभिमन्यु से बोले– मैं गूढ बात कह रहा हूँ, दुर्योधन युद्ध का आकाक्षी है, यदि नही करोगे, तो कौरव गालियाँ देंगे। स्त्री का मोह मत करो, श्री रामजी भी स्त्री-मोह के कारण जगल मे भटके थे। मामा की बात सुनते ही उसने घोडे जुता हुआ रथ निकाला। सबसे पहले उसने उनकी ही पूजा की। उत्तरा ने लगाम पकडली और बोली– यदि आप नही रुक सकते, तो मुझे किसी के सुपुर्द करके जाओ। अभिमन्यु ने उसको अपनी मा के सुपुर्द किया और रण मे चल पडा। विदाई के सम्बन्ध मे सुभद्रा ने उत्तरा से पूछा, तो वह बोली–प्रिय रोके न रुके, मोह उन्होने त्याग दिया (छन्द ५६४–६११)।

रणवाद्य ढोल तूर्य आदि बजे। चक्रव्यूह के पहले दरवाजे पर अभिमन्यु ने गुरु द्रोणाचार्य से युद्ध करके उनको परास्त किया और आगे बढा। इसी प्रकार शेष छहो दरवाजों पर उसने क्रमश शल्य, कर्ण, विशामेण, काळीपचाळ, और दुर्योधन से युद्ध करके उनको हराया। चक्रव्यूह के सातो ही महारथी परास्त हुए किन्तु वह उससे वापस निकलने का रहस्य नही जानता था। उन सबने छद्म करके कुँवर को ढहा दिया। उसको तलवार नहीं मिली। भूमि पर पडने पर जयद्रथ आया और उस पर घाव किया। मरते समय उसको नारायण से अपने पूर्व वैर का स्मरण आया। कौरव तो घर गए किन्तु रण का मामी रणखेत मे ही रहा। उसको किसी मनुष्य ने तो मारा नहीं था, कृष्ण ने ही मारा था। उसकी मृत्यु की खबर सुन कर उत्तरा अत्यन्त व्याकुल हुई (छन्द ६१२–६५४)।

तभी इन्द्रलोक से उतर कर अर्जुन वापस आया। पुत्र का मरना सुन कर उसको अपार दुख हुआ। उसने सभी को उलाहना दिया। सुभद्रा ने कृष्ण की सब बातें उसको बता दी। कहा– कृष्ण का तुमसे साथ है, किन्तु भानजे को मरवा दिया। दुखी होकर अर्जुन ने अन्न त्याग दिया। कृष्ण से बोला– अभिमन्यु को दिखाओ, जो प्रीति पहले पालते थे, वह अब भी पालो। अर्जुन की बात मानकर भगवान ने उसको अभिमन्यु से मिलाने की सोची। वे दोना कुरुक्षेत्र मे पहुचे। वहा एक ब्राह्मण हल चला रहा था। बीज के लिए घर जाते हुए उसके पुत्र की राह मे साप काटने से मृत्यु हो गई थी। ब्राह्मण को इसका पता नही था। वह उसको पुकारने लगा और पुत्र के न सुनने पर खीजने लगा। अर्जुन बोला– तेरे पुत्र की तो जगल मे साप डसने से मृत्यु हो गई है, तू जाकर उसकी सम्भाल कर। यह सुनकर वह कहने लगा– हे अर्जुन! मर जाने पर मैं जाकर क्या कर लूगा? उसके शरीर को तुम्हीं घसीट दो। ससार मे बेटा-बेटी कोई नही है, केवल बात की बात है। उसकी बात से अर्जुन के मन मे शान्ति हुई। ब्राह्मणी को इसका पता लगा तो वह भी दुखी नही

हुई। अर्जुन ने पूछा– पुत्र का मरना सुनकर भी तुम्हें कष्ट नहीं हुआ ? उसने उत्तर दिया– पुत्र तो उन पखेरुओं के समान होते हैं जो सन्ध्या– समय तरुओं पर बसेरा लेकर प्रभात होते ही बिछुड जाते हैं और फिर वापस नहीं मिलते। इसलिए पुत्र का मोह नहीं करना चाहिये। उसकी बहू को जब इसका पता लगा, तो वह रोई भी नहीं। अर्जुन बोला– स्त्री तो एकदम मूर्ख निकली। उसने उत्तर दिया– मरने पर तो मूर्ख ही रोते हैं (छन्द ६५५–६६४)।

अर्जुन ने अपने पुत्र को पासा खेलते हुए देखा और देखते ही उसके नेत्रों से हर्ष के आंसू पड़ने लगे। अभिमन्यु ने पूछा– यह कौन है, जो इतने आंसू बहा रहा है ? कृष्ण बोले– यह तेरा पूर्व पिता अर्जुन है, तू इससे उठ कर मिल। उसने कहा– मेरे पिता तो पवन हैं, यह उत्पन्न करने वाला कौन है ? अर्जुन यदि जयद्रथ को मारे, तो अभिमन्यु उठकर मिल सकता है। मैं तो स्वयं हरि से मारा गया हूं। मरने पर उस मूर्ख ने मेरे शरीर में घाव किया था। कृष्ण ने अर्जुन को समझाया– यदि तुम जयद्रथ को मार डालो, तो अभिमन्यु उठकर मिल सकता है। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की– मैं खोज कर जयद्रथ को अवश्य मारूंगा। हे अभिमन्यु, सुन ! यदि नहीं मार सका तो मुझे बड़े से बड़ा पाप लगे। अब कृपा करके मुझसे मिल। तब अभिमन्यु उठकर अर्जुन से मिला। अर्जुन ने वापस आकर जयद्रथ का वध किया। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् अठारह अक्षौहिणी सेना खपी। अन्त में कवि का कथन है कि इस कथा के सुनने और मनन करने से मोक्ष मिलता है। (छन्द ६९५–७१७)।

वर्णन और भाव-व्यंजना :

यह संवाद-शैली में रचित वर्णन-प्रधान गेय आख्यान काव्य है। ये वर्णन तीन प्रकार के हैं—(क) संवाद रूप में, (ख) कवि–कथन रूप में, (ग) पात्र–विशेष के भावरूप में। समस्त कथा में सर्व प्रथम ध्यान आकृष्ट करने वाले इसके संवाद हैं। ये अत्यन्त नाटकीय, प्रभावशाली और कथा को गति प्रदान करने वाले हैं। प्रेषणीयता, भावोत्कर्षता तथा संख्या–सभी दृष्टियों से ये महत्त्वपूर्ण हैं। प्रमुख संवाद निम्नलिखित हैं :—

पात्र	विषय	छन्द–क्रमसंख्या	कुल छन्द संख्या
१–अहिलोचन की पत्नी और उसके पुत्र अहिदानव का	कृष्ण, उनका आवास और बल।	५–१३	९
२–अहिदानव और विश्व-कर्मा का	'जन्तर' बनाने की प्रार्थना	१४–१५	२
३–ब्राह्मण वेशधारी कृष्ण और अहिदानव का।	पारस्परिक परिचय, कृष्ण और द्वारिका की जानकारी, दानव का बन्दी होना और छोड़ने की प्रार्थना–	२३–२८ : ६ + ३०–३८ : ९	१५

४–नारद और कृष्ण की राणियों का।	शृंगार-सामग्री	४१–५२	१२
५–राणियों और सुभद्रा का।	शृंगार-सामग्री	५३–५४	२
६–दासी और उत्तरा का।	शकुन–फल और पूर्व-भव कथन।	१०१–१०३	३
७–पाण्डव-परिवार और भाट का।	विराट–राव और उत्तरा	११०–११८	९
८–ज्योतिषी और सुभद्रा का।	"सा'वा थापना"	११९–१२४	६
९–कुन्ती और सुभद्रा का।	अशुभ फल और कुन्ती का समझाना।	१२८–१३६	९
१०–सुभद्रा और अभिमन्यु का।	युद्ध मे जाने से रोकना, अभिमन्यु का दृढ निश्चय।	२७०–२९२	२३
११–सुभद्रा और कुन्ती का।	पाण्डवों को उलाहना, कुन्ती की सात्वना।	२९३–३०७	१५
१२–युधिष्ठिर और रैवारियों का।	सांढो की जानकारी, उत्तरा को लाना।	३३६–३४५	१०
१३–विराट–राव और रैवारियों का	प्रवेश–द्वार खोलना, पाण्डवों की चर्चा।	३८४–४१२	२९
१४–उत्तरा की मां और रैवारियों का	अभिमन्यु का युद्ध म जाना +	४२०–४२८	९
	पाण्डव-परिवार	४३८–४६०	२३
१५–रैवारी और उत्तरा की मा का।	काजल का "कूंपला"	५२२–५२८	७
१६–सुभद्रा और कृष्णजी का	अभिमन्यु की वापसी	५४९–५५७	९
१७–उत्तरा और अभिमन्यु का।	उत्तरा को मां के सुपुर्द करना	५९४–६०२	९
१८–सुभद्रा और उत्तरा का।	युद्ध मे जाने सम्बन्धी समाचार।	६०६–६१४	९
१९–अर्जुन और (क) कुरुक्षेत्र के ब्राह्मण किसान	पुत्र–मृत्यु।	६७४–६७९	६
तथा (ख) ब्राह्मणी का।		६८३–६८८	६

२०–श्री कृष्ण और अभिमन्यु की आत्मा का।	पुत्र–नाता और मिलाप	६९८–७००	३
२१–अभिमन्यु की आत्मा और अर्जुन का :	अभिमन्यु–मृत्यु और जयद्रथ–वध–प्रतिज्ञा।	७०१–७१०	१०

दूसरे प्रकार के वर्णन ये हैं :— कुल छन्द-संख्या

१–ब्राह्मण वेश–धारी कृष्ण का	३
२–अभिमन्यु के जन्म और विवाह का हर्ष	६
६–'सां'ढों का	१६
४–विराट नगर का	३
५–बरात का	२७
६–"जीमणवार" का	७
७–मंडप का	५
८–उत्तरा के रूप और शृंगार का	१७
९–युद्ध में जाते समय कुलाचार का	९।

पात्र विशेष के भाव–कथन अपेक्षाकृत बहुत कम हैं तथापि जितने भी हैं, वे बड़े मार्मिक हैं। ऐसे प्रमुख स्थल ये हैं :—

१–अभिमन्यु के युद्ध जाने की बात को पक्का समझकर सुभद्रा का दुःख,–छन्द ३०८–३२१।

२–अभिमन्यु के चले जाने और उसके मृत्यु–समाचार पर उत्तरा की—
वेदना :— छन्द ६१५–६२० तथा ६५२–६५४।

इन वर्णनों में कवि ने बड़े सजीव चित्र उपस्थित किए हैं जो संवाद और उनमें निहित नाटकीयता के कारण अत्यन्त हृदयग्राही हैं। उदाहरणार्थ बूढ़े ब्राह्मण और सांढ़ों (ऊंटनियों) का वर्णन द्रष्टव्य है। जब अहिदानव 'जंतर' उठा कर द्वारिका की ओर चला तो रास्ते में श्रीकृष्ण बूढ़े ब्राह्मण के वेश म उसको मिले। कवि द्वारा चित्रित उसका रूप और दोनों का संवाद इस प्रकार है :—

नारांयंण रै गळ अनंत, को आयो दांणूं बलिवंत।
नारांयंण हुवौ ब्राह्मण वेस, माथै तिलक पंडरा केस॥ २०॥
गळै जनेऊ पतड़ो हाथि, गंगा जवंणी करौती घाति।
पलटि पया हुवौ डोकरो, नीणे नीरं चवै मोकळो॥ २१॥
हाथि डांगड़ी पींडै पूलयौ अहदांणों नै सांम्हो मिल्यौ।
गंगा जंवंणी वीटी हाथि, तिल धोती पहरै जगनाथ॥ २२॥

विपर रूप हुवो जगनाथ, जोयसो सीस चहोड़ै हाथ ।
मैं जाण्यो म्हारो जुजमान, अहलोचण बहलोचण बंन ॥ २३ ॥
हाथि पाए दोसै वा व्रन, मथुर नगर नै जोरो मन ॥
हू पांडे री पूछ आस, कांहां घसै पाडे किण वास ॥ २४ ॥
पाडे कहियो बीण विचारि, वसू दवारिका सखोधारि ।
हू म्हारै पांडे नै आयो देस, सोनू रूपो अति घण देस ॥ २५ ॥
हूं म्हारै पाडे री पूछ रळी, सू वळदा सूपू डोहळी ।
हू पांडै रै लागू पाय, काळी कयळी देस्यों गाय ॥ २६ ॥
जे थे वसो छो सखोधार, नारायण री कहो विचार ।
कहि पाडे नारायण भेव, कहु परि दया किसी परि देव । २७ ॥
न कर्यो ल्होडो न कर्यो वडो, तो सारीखो तो जे वडो ।
जे तू मावै तो हरि समाय, और बुध मो नावै काय ॥ २८ ॥

+ + +

हासो कीजै घडी एक ताळ, नां ऊ कीजै इतरो वार ।
रे बाळा हासै री वाण, मैं सखासिर मार्यो जाण ॥ ३१ ॥
मुथरा जाय नै मारियो कस इह हासै थारो छेद्यो वस ।
अह हासै अहलोचण हुयो, तू बाळा प्रभवासे थयो ॥ ३४ ॥
इह हासै थारो गाड्यो गोत, तू पण हार्यो पहलै पोति ।
बाळा थारो सारू काज, वीछडियो कुटब मिलाऊ आज ॥ ३५ ॥

'गा'डो' का वर्णन कवि की अपनी विशेषता है जो अन्यत्र दुर्लभ है । अच्छी साडो की विशेषताएँ, उनका शृंगार, चाल और त्वरा आदि का सांगोपांग वर्णन कवि की तत्सम्बन्धी सूक्ष्म-दृष्टि का परिचायक है । कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं —

(क) विराट जाने के लिए राजा युधिष्ठिर का पूछना और रैबारियों द्वारा अपनी-अपनी सांडों की विशेषताओं का वर्णन —

रैबारो भीतरि तेडाया, तेडै दहूठळ राव ।
कतरी साढ्या थारै भणजै, घडिया जोयण जाय ॥ ३३६ ॥
पहलो रैबारो इण परि बोलै, राजाजी अवधारि ।
छोट किवाडो तीखे कान, सांढीडा संच्यारि ॥ ३३७ ॥
भरहा काळा सरवण काळा, कया मजीठी वानो ।
वाळी से तो वाव न सहियै, से क्यों सहियै पानो ॥ ३३८ ॥
लावकळी लहकती हालै, न्योळ मुही अर वगी ।
घडी घडी के जोयण झालै, मुकराणी अर चगी ॥ ३४० ॥
घुघरमाळ जहि गळ घातो, केई छै मुकराणी ।
साढोडा रै ओठोडा रै, पेट न लहकै पाणी ॥ ३४२ ॥

रातड़ी नै चोळ मजीठी, मगरे काळी रेह।
वावां सूं इधकेरी हालै, भुंय उडै ज्यों खेह ॥ ३४४ ॥

वे 'सांढे' कैसी थी, इसका कथन :—

थळी उपनी थळी चरंती, आंकोड़े घरि आंणी।
वेलां लूंग फगोड़ा चरती, सोळा सांढि पलांणी ॥ ३४६ ॥
संहंसां मांहियो टाळ'र आंणी, सांढि आंवती दीठी।
घड़ी घड़ी के जोयंण हालै, राता चोळ मजीठी ॥ ३४७ ॥
काठी काजळी नवरंगी नीळी, रतंन रातड़ी जाति।
आसालुधी करै करूका, करहा मेलो साथि ॥ ३४८ ॥

(ख) सांढों का शृंगार वर्णन :—

सांढियां रा सिणगार, वांहुवे वोह रेखां भळहळै।
सोवंन जड़त पंलाण, कांन सखी री झळहळै।
कांन सखी री झळहळै, गळै घंटा रा झंणकार।
पगे नेवर वाजणा घूघरे घमकार।
कसणे त सीरख सावटू, मुखमल झूल अपार।
वांहुवे त झावा सोवनां, सांढियां रा सिणगार। ३७५।

(ग) विराट जाते और वापस हस्तिनापुर आते समय सांढों और ऊंट की चाल एवं त्वरा का वर्णन। जाते समय का वर्णन द्रष्टव्य है :—

वाळी राग चड्या रैवारी, आय जुंहार्‌यो राय।
गळती राति उठंती करकी, वाए मिळिया वाव ॥ ३७८ ॥
काजळियो पग काठो कुंहुटो, फरहो काढै कांन।
सापां ज्यों सळकंती हालै, ज्यों वंतूळै पांन ॥ ३७९ ॥
केई घड़ी रातड़ी चलाई, गीण विळंबी खेह।
जोजंन जोजंन करै करूका, ज्यों उतरावो मेह ॥ ३८० ॥

इनके अतिरिक्त कवि ने नारी-मन का बड़ा मोहक वर्णन किया है। परिस्थिति-विशेष में नारी-सुलभ क्रियाओं, चेष्टाओं, आशा-आकांक्षाओं, विचारों और भावों के अनेक सजीव चित्रण इसमें मिलते हैं। सुभद्रा, उत्तरा, उत्तरा की मां और कुन्ती—इन चारों के विभिन्न समयों और परिस्थितियों में कहे गए उद्‌गार और कार्य-व्यापार नारी-हृदय के कई पहलुओं की झांकी प्रस्तुत करते हैं। उल्लेखनीय है कि भाव, विचार और कार्य की दृष्टि से ये सभी सामान्य नारी के रूप में ही दिखाई देती हैं। कतिपय उदाहरण देखे जा सकते हैं :—

(क) जंतर लेकर श्री कृष्ण के द्वारका आने पर उनकी राणियों और सुभद्रा का (भाभियों और ननद का) शृंगार-सामग्री सम्बन्धी कथन :—

किसनजी आयौ धवळ दवारि । सोळा संहुस मांगे सिणगारि ।
एक मांगे एकावळि हार । एक मांगे नेवर झणकार ॥ ५३ ॥
एक मांगे कंकण अरघडी । एक मांगे चूडा रालडी ।
सोनें रूप अ ति ही जडी । गोपी अरज करे अति खडी ॥ ५४ ॥
विनवें गोपी लागें पाय । बाई सोहिदळ गहणा म्हा पहराय ।
सतरा गहणां हूं पहरेस । रहता सहता थानें देस ॥ ५५ ॥
गोपियां रैं मन संका घणी । तूं छं बहण नारायण तणी ।
ले कूंची ताळा उघडै । बघव तणो न सका करैं ॥ ५६ ॥

(ख) मा के रूप में, उत्तरा की मा और सुभद्रा के उद्‌गार । दोनो के दो दृष्टिकोण हैं, प्रथम का अपनी बेटी की हित-कामना और दूसरी का पुत्र की । दोनो अन्ततोगत्वा अभिमन्यु की कुशलता से ही सम्बन्धित हैं । इसके अतिरिक्त उत्तरा की मा एक सास और समधिन भी है । उसके कथनो मे इन सब नाते-रिश्तो की सामूहिक झलक दिखाई देती है, वे अत्यन्त सहज और मनोवैज्ञानिक हैं । रैंवारियों के साथ हुए निम्नलिखित संवाद मे, उसके आक्रोश, दुख, और बेटी की मा होने की बेबसी का मार्मिक और घरेलू वर्णन कवि ने किया है :—

राणी कहै रीसाय, कहि कुंता कांयौं कियौ ।
पांचूं पाडू पाळि, बाळै नैं बोडो दियो ।
बाळै नैं बोडो दियो, नैं भींव भड छो पासि ॥
निरखे निकळो सूर सहदे, सारा ही साबासि ।
बाळो रिणवट मोकल्यो, नैं रूडा न कियौ राय ।
जिसडा छा तिसडो करी, राणी कहै रीसाय ॥ ४४० ॥

\+　　　　　　+　　　　　　+

कुंतां नैं केहवी लाज, जिण कारज एहवा किया ।
सहदे रा पुसतक जाह, निकळो घडी न जोविजो ।
निकळो घडी न जोविजो, नैं सहदे रा पुसतक जाह ।
राजाजी नैं पाप लागो, भींय नैं दुख दाह ।
भागो भांणो रेहीयैं, उघडै अति पाज ।
करंन कंवारी जळमियो, कुंतां नैं केहवी लाज ॥४४८॥

\+　　　　　　+　　　　　　+

रांणी म झखो आळ, कहि कुंती भाखी अती ।
राजाजी लीक विळास, निरमळ कुंतां महासती ।
निरमळ कुंतां महासती, नैं राय बोलै साच ।
तीहूं लोकां मां मानियै, राजाजी री वाच ।
निरखे निकळो सूर, सहदेवें, सहदेव सूझै काळ ।
कळंक जोगा नहीं पांडू, रांणी म झखो आळ ॥ ४५२ ॥

रैवारियों के इस कथन पर उसको अपनी स्थिति का भान हुआ। अपनी पूर्व बातों के न कहने का अनुरोध करती हुई वह अपनी बेबसी और दुख का वर्णन इस प्रकार करती है :—

मांहरै नित रो हुंतो कोड, कोड कंवरि पूगा नहीं।
पथो पंडवे जाय, मत दाखवि जो म्हे कही।
मत दाखवि जो म्हे कहि, नै मांहरी वात विचारि।
हाथ झाड़ि उठि हाल्या, जिम जूवारी हारि।
म्हां मांहे असड़ो हुई, हारियो धंन होड।
कोड कंवरि पूगा नहीं, नितरो हुंतो कोड ॥ ४५६ ॥

+ + +

कर आयो सिल हेठ, कांय हुवै घंण वोलियै।
जां सैणां सूं सीर, तांह सूं अन्तर खोलियै।
तांह सूं अन्तर खोलियै, नै कहियै वात विचारि।
म्हांरै पोतै पाप हुंता, पापे दीन्ही हारि।
घंणियां नै घंनवाळ हो चोरां दुखै पेट।
कांय हुवै घंण वोलियै, कर आयो सिल हेठ ॥ ४६० ॥

अपने ससुराल की निंदा उत्तरा भी नहीं सह सकी, मां के ऐसा कहने पर उनका यह कथन द्रष्टव्य है :—

गहली माय गिंवारि, जोम्या न मेटी आंयनां।
पांडू परतगि देव, देवां सरसा सांयनां।
देवां सरसा सांयनां, नै रंग केहो रोस।
आप देव आंण दियो, कहो कुंणां नै दोस।
लिख्यै विण लाभै नहीं, जोड़ो हुवै नर नारि।
वुरो न वोलै पंडवां, गहली माय गिंवारि ॥ ४६४ ॥

सुभद्रा का वात्सल्य प्रेम और अभिमन्यु के बिछुड़ने का दुख अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त हुआ है और उत्तरोत्तर घनीभूत होकर उसमें गहराई आती गई है। उसके अभिमन्यु, कुन्ती, कृष्ण और उत्तरा से हुए संवाद तथा स्वयं की अभिव्यक्ति, सामूहिक रूप से उसके मातृ-हृदय के विभिन्न भावों का मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(क) अभिमन्यु का युद्ध में जाना सुनकर उसकी मनोदशा और पुत्र को रोकना :—

सुंणी सरवणे वात, इचरज दीठो एहड़ो।
नेल्ही साह मरजाद, माथा खिसियो छेहड़ो।
माथा खिसियो छेहड़ो, नै खुवै उघार्यो चीर।
पवंण पहलू सांचरै, नीणे त झुरवै नीर।

मोड बधा सह राव बैठा, बैठो धरम रो जाव ।
मेल्ही लाज उतावळो, करि अहनन साह्यो बाहि ।
माया साहि डुम्यो नहीं ॥ २७२ ॥

छाडि कवर रिणमाळ, तो नै रिणा न मोकलू ।
मोकळ मारू भीव, दत जुरासिध मारियो ।
दत जुरासिध मारियो, नै मोकळ मारू भीव ।
जै रो हाथ होवर थरहरै, पडै सुडाळां सीव ।
सेर बसेरा करै दाणव, दैता करण ज काळ ।
छाडि कवर रिणमाळ, तोनै रिणां न मोकरू ॥ २७५ ॥

(ख) कुन्ती के बारबार समझाने पर उसका कथन —

सासू थारै पाडू पांच, म्हो अबरा रै अहमन एकलो ।
आप पुछाडो राव, जे चाहो म्हारो भलो ।
जे चाहो म्हारो भलो, मैं जाय पुछाडो राव ।
भीव पुरिय थांसै रह्यो, राजाजी सुख थाय ।
पिता जै रो सुरा भुंयणे, हुवै छाड्यूं हांच ।
म्हारै अहमन एकलो, थारै पाडू पांच ॥ ३०७ ॥

(ग) उत्तरा से बिना मिले ही अभिमन्यु को युद्ध मे जाता देख कर श्री कृष्ण से अपने संबंधों की याद दिलाते हुए सुभद्रा की प्रार्थना —

सोहेद्रा कहै समझाय, सिरजण हारा साभळो ।
उतरा अर अहमन, कहि क्यों करि पूजै रळी ।
कहि क्यों करि पूजै रळी, नै लिख्यां मसतग लेख ।
किसनजी कहियो करो, भाणजै दिस देखि ।
सरण ताहरी सामजी, उरि मेटो अणराय ।
कवरो घर दिस मोकलो, सोहद्रा कहै समझाय ॥५५१॥

+ + +

करता सांभळ कान, वर नारि सबळो बिखो ।
का करो छ मासी राति, का अहमन अजरोटो लिखो ।
का अहमन अजरोटो लिखो (नै) अबला किसो बसेख ।
किसन बकसो कांचळी, भांणजै दिस देखि ।
अरज करै आतर थकी, बीनती अह मान ।
वर नारी सबळो बिखो, करता सांभळ कांन ॥ ५५७ ॥

(घ) रोकने के सब प्रयास विफल होने पर स्वयं का दुख प्रकट करना —

एक पूत हे मेरी माय, घर सूनूं जे बाहरि जाय ।
थारै मु हि आवै थान रो थाण, क्यों जीपैलो राणो राण ॥ ५८५ ॥

रोणायर क्यों सोखै घड़ै, अपस वाळ क्यों रिण मां विड़ै ।
लुळके लुळके आंसू आवै, मुंह अंन न भावै ॥ ५८७ ॥
गोखै चड़ी चुंह दिस जोवै, मत खिण अरजंन आवै ।
अरेजंन पात जे घरे होय, वाळ रिणां न मेल्है कोय ॥ ५८८ ॥

उत्तरा के रूप में कवि ने ऐसी परिस्थिति में पड़ी हुई एक सामान्य पत्नी की भावनाओं का संक्षिप्त किन्तु बड़ा भव्य वर्णन किया है। कथा-प्रवाह इस ढंग से नियोजित किया गया है कि उसको कुछ अधिक कहने का अवसर ही नही मिलता। उत्तरा की पति के प्रति मंगल-कामना, मिलनोत्कंठा वियोग और मरणोपरान्त दुख का वर्णन सहज और स्वाभाविक होने से प्रभावशाली है। उदाहरण इस प्रकार है :—

(क) रैवारी के विराट से वापस 'कूंपला' लाने पर उत्तरा का कथन:—

कंवरो वेधि मया करि बोलै, रैवारी वधारो ।
दसे आंगळियै वेल पहरावो, करहै लूंण अंवारो ॥ ५३४ ॥
भाई राघा भाई रतनां, सांभळि मांहरी वात ।
मांहरो सांई जीपे आवै, गांय दिराडूं सात ॥ ५३५ ॥
कंवरि वसि मया करि बोलै, ओ रैवारी रूड़ो ।
रैवारी नै लाख टका, रैवाण्रय नै चूड़ो ॥ ५३६ ॥

(ख) हस्तिनापुरा में उत्तरा का अभिमन्यु को देखना और उसके तत्काल ही रवाना होने पर अपनी विवशता और दुख का वर्णन :—

सूर घणां ही उगवै, मो लागै अळिया ।
घंन आजोरो उगियो, नीणे पीव मिळिया ॥ ५४२ ॥
नैंणे मिळिया नैंण, उतरां अहमंन पेखियो ॥
निरखे त्रपत नीण, पीवजी दरसंण देखियो ।
पीवजी दरसंण देखियो, नैं मंन मांहि चिंता मोह ।
तंन मेळो तोई हुवै, जे हरि पूज्यो होय ।
अहमंन आंणे आंगणे, सो सजंण सो सैंण ।
मुरछा गति आई महलि, नीणे मिलिया नीण ॥ ५४५ ॥

\+ + +

मूंक्यो नारि नेसास, पीवजी रंणे पधारियो ।
मांहरै हुंस रही मंन मांहि, मैं जंमवारो हारियो ।
मैं जंमवारो हारियो, नै हुंस रही मंन मांहि ।
त्री जंमवारो पीव विनां, सा करता सिरजी कांय ॥
विरह दहै ज्यों वासदे, अन्तर भागी आस ।
पीवजी रंणे पधारियो, मूंक्यो नारि नेसास ॥ ५४८ ॥

(ग) युद्ध में जाते समय घोड़े की लगाम पकड़कर उत्तरा की अन्तिम प्रार्थना, अभिमन्यु का

सान्त्वना देना और उसका विरह-वर्णन। विवशता और वेदना का मानो सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत कर दिया है —

उतरा विळगी वाग, पीयजी रहै न पालियो ।
मो नैं कही भळाय, जे तू रिणोही हालियो ।
जे तू रिणोही हालियौ, नैं मोनैं कही भळाय।
नारी दुख सुख पीव पाखो, कहै कौण सू जाय।
अगन्य झगडो सामणो, बहु दुख वैराग ।
कवरो रिणवट हालियौ, उतरा विळगी वाग ॥ ५९६ ॥
बहू भळाई मात, तोनैं अळूयो न भालिसी ।
तो करिसी सनमांन, राजकवरि रसि राखिसी।
राजकवरि रसि राखिसी, नैं तो करिसी सनमांन।
आव भाव आदर घणों बोहत वेयण मान ।
घरि जाह पाछी कहै अहमन मुख सुणीजै वात।
कवरो रिणोही हालियौ बहू भळाई मात ॥ ५९९ ॥
भळिया ढोर चराय माणस भळिया क्यों रहै ?
पीव पाखो दिन जाय, से दिन तो मोनैं दहै।
से दिन तो मोनैं दहै, नैं अ तरि इधक अधोर ।
वीर विहूणी बहनडी, कांय सिरजी करतारि ।
जळणो ओदरि न जळी, कहा कियो जगि आय।
माणस भळिया क्यों रहै भळिया ढोर चराय ॥ ६०२ ॥
पुरिष विहूणी नारि जिसी वेळू री वेलडी ।
प्रीव पाखो दिन जाय, नाह विनां झूरू खडी।
नाह विनां झूरू खडो, नैं विळकत रीण विहाय।
काय न सिरजी रोझडी घण माहि घोळी गाय।
नारि निसास न मेल्हिजै, नाह वीण निरधार ।
जिसी वेळू री वेलडी, पुरिष विहूणी नारि ॥ ६०५ ॥

(घ) अभिमन्यु का मरना सुनकर उसका दुख —

क्यों जायसी जमवार क्यों मनि पूजै मो रळी।
मो तडफति वीहाय, ज्यों जळ पाखो माछळी ।
ज्यों जळ पाखो माछळी, नैं खिल खिल सोखै काळ ।
प्रीव पाखो प्रांण त्यागैं, करै जिसडो काळ ।
जीव तो जगदीस सारै, नाह वीण निरधार ।
क्यों मनि पूजै मो रळी, क्यों जायसी जमवार ॥ ६५४ ॥

उत्तरा के रूप और शृंगार का वर्णन अधिक नहीं हुआ है और जो हुआ है, वह भी प्राय परम्परायुक्त है। जब भाट और ब्राह्मण विवाह तय करके विराट से आते हैं, तब

उसका वर्णन किया गया है, दूसरे उसके हस्तिनापुर से विदा होते समय और तीसरे अभिमन्यु के रण में जाते समय। दूसरे का उदाहरण इस प्रकार है :—

एहवो झवूकै वीण, सुंणि अहमंन री असतरी।
भुंवर विलगो आय, कंचंण थंभे केहरी।
कंचंण थंभे केहरी, नै एहवी झवूकै वीण।
कंठ कोकिल सोहणी बोलती लवलीण।
दाड्यों जेहा दंत सोहैं, जांणि सोनै री फूलड़ी।
वरसाळै री बीज चंमकै यों चंमकै वेउं घड़ी।
कांकंण चूड़ा राखड़ी, सोहैं पायळ पाय।
कंचंण थंभे केहरी भुंवंर विलगो आय॥४९२॥

उत्साह की भावना अभिमन्यु की अनेकशः उक्तियों में प्रकट हुई है। उसके रण में जाने का निश्चय जान कर जब सुभद्रा ने उसको "वाळो" कहा तो उसने अनेक युक्तियों से समझाते हुए कहा कि "वाळो' ही भला होता है:—

गरड़ा सरै न कांम, जे क्यों तो वाळा भला।
वाळो पून्यो रो चंद, करै चहूंचकि चांदिणों।
वाळो वरसै मेह, वाळो दंणियर उगणों।
वाळो दंणियर उगवै, नै वाळो वरसै मेह।
वाळो होतासंण वंन दहै, जां न लाभै छेह॥
वाळो केहरि वंन वसै वंनां केरो राय।
हाथियां रा झूळ भांजै, वंन छाडे जाय।
वाळो विसहर झाळ मेल्है, खड़हड़ै वरियांम।
जे क्यों तो वाळा भला, गरड़ां सरै न कांम॥२९२॥

इसी प्रकार रण में जाते समय वह प्रकारान्तर से इसी बात को श्री कृष्ण पर लागू करके पुनः अपनी मां को सांत्वना देता है : श्री कृष्ण के संदर्भ में उसका कथन अत्यन्त साभिप्राय है :—

वाळो न कहि म्हारी माय, जिण वाळै इसड़ी करी।
मुथरा पछाड़ियो कंस, सोळा संहंस गोपी वरी।
सोळा संहंस गोपी वरी, नै मोहि किसन मुरारी।
गोम्यद कारंणि गींद रै, पैठो जंमंन मंझारि।
पिनंग पयाळो नाथियो, आंण्यो वासिग राव।
वाळो कहंतो लाजऊं, वाळो न कहि माय॥५८४॥

ज्योतिष, शकुन और स्वप्न के फलाफल पर कवि की गहरी आस्था प्रकट होती है। राजस्थानी लोकजीवन में आज भी इनके प्रति वैसी ही मान्यता है। इनके वर्णन क्रमशः ये हैं :—

ज्योतिष –

(क) अभिमन्यु के उत्पन्न होने पर ग्रह- नक्षत्रों का बताना —

सहदेव जोइसी जोयस जोर । नखत किण कवरो जळम्यो होय ।
चादणि चवदस नैं थावर थार । रूडै दिन जळम्यो राजकवार ॥
सरवण नखत कवरो आवियो कवरो कुळमडण आवियो ।
चद्रमुखी नैं पांच पदम, कवरो नाव दियो अ`हुमन ॥८०॥

(ख) ज्योतिषी से अभिमन्यु के 'सावै' का पूछना, विघ्न की बात जानना —

जोयसी जोयस जोय, कदि विन्यायक थापिस्या ।
चदण तेल फुलेल, उवटणी कदि आपिस्या ।
कदि करिस्यां आचार, मांहडै मिल सोहेलडी ।
मिलि गावै मगळचार, सुदिन सुवांयत सुभ घडी ।
मन पोज्य दाखो मोहि कदि र विन्यायक थापिस्यां ॥जोयसी०॥१२१॥
आठु य मगळवारि, विन्यायक बैसै सही ।
विगन लिख्यो विवाह, निरवाहो लिखियो नहीं ।
निरवाहो लिखियो नहीं, मैं साहो लिख्यौ सपूज ।
अगय बाणा उछळै, का हुवै अचित्यौ झूझ ।
ग्रह नखत सजोग जुडियो वाजस्यै रिणसार ।
इमडा साहा ऊघडै, आठु य मगळवारि ॥विन्यायक० ॥१२४॥
झुरवै सहोदरा माय, भरजनजी आसू छलै ।
विगन लिख्यो वीवाह, पाप किसा हु ता पलै ।
पाप किसा हु ता पलै, नै विगन लिख्यो वीवाह ।
सोहेदळ सारै धीनती, वळि वळि लगै पाय ।
पात प्रोहित सू कहै, साहो फेरि लिखाय ।
बुरा विगन सह टाळज्यो, झुरै सहोदरा माय ॥१२७॥

शकुन– शकुनों का उल्लेख दो प्रकार से हुआ है, एक वे जिनमे शकुन-विशेष न बता कर उसका फल निर्देश किया जाता है और दूसरे वे जिनमे इन दोनो का उल्लेख रहता है । दोनों के उदाहरण क्रमश इस प्रकार हैं —

भाट और पुरोहित के विराट जाते समय—

(१) (क) वैराठ नैं ज्यौं चालिया तायै सुण अपूरब थिया ॥९८॥

उत्तरा के हस्तिनापुर को रवाना होते समय–

(ख) सुधो कवरि नै कूड, सूणे नहीं स सूणियो ।
मन मां देखि विचारि, महली मायो घूणियो ।
महली मायो घूणियो नैं कहै मुख ता भाखि ।
भरतार सरसो भेंट नांहीं, सूणे दीन्हीं साखि ॥४८७॥

(२) जब 'विराट-राव' ने अपनी कन्या देने का संकल्प किया–

(क) अगंन्य कूंण मां कागंण्य बोले, महली सूंण विचारै।
यां सूंणा ने कंन्या दीजे, सा कंन्या वर हारै ॥१०२॥

जब 'जान' विराट में तोरण पर आई–

(ख) तोरंण आई जांन, काग फरूकै बोलियो।
दिल मां देखि विचारि, महली रो मंन डोलियो।
महली रो मंन डोलियो, नै दिल मांहि देखि विचारि।
सूंण सभ कावळ हुवा, मुंजारी मुंजार ॥१६०॥

(३) स्वप्न : हस्तिनापुर जाने से पूर्व उत्तरा ने स्वप्न देखे और प्रत्येक बार अपने मन को समझाया। रात्रि के दूसरे प्रहर में उसने यह स्वप्न देखा:–

दूजै पहर रो विचार, अणद कंवरि सुहिणां लहै।
ऊभी गंगा तीरि, धोळा वसतर पहरिया।
गंगा केरै तीर ऊभी न्हांऊं निरमळ नीर।
देखि देखूं को नहीं, हियो न बंधै धीर।
डूबती मैं सांम्य सिवर्यो, मो दियो आधार।
अंणद कंवरि सुहिणां लहै, दूजै पहर रो विचार ॥३५७॥

कथा में तीन मोड़ हैं– (१) आरम्भ से लेकर अभिमन्यु के विवाह तक, (२) उसके युद्ध में वीर-गति पाने तक तथा (३) अर्जुन के हस्तिनापुर आने से लेकर अन्त तक। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश दूसरा है, जिसमें समस्त कार्य-व्यापार अत्यन्त क्षिप्र-गति से होते हैं; कथा बड़े वेग से आगे बढ़ती है तथा घटनाएँ अत्यन्त त्वरा से घटित होती दिखाई देती हैं। इस प्रवाह में अनेक मानवीय भावनाएँ डूबती-उतराती बहती हैं।

अभिमन्यु के युद्ध में विदा होते समय करुण दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसकी आधार-भूमिका भी पहले से ही तैयार की गई है। वापस आने पर जब अर्जुन को अभिमन्यु की मृत्यु का पता लगता है, तब वह भी शोक में अभिभूत हो जाता है।[1] ब्राह्मण वाली घटना की योजना इसी शोक को कम करने के लिए है। स्मरणीय है कि अर्जुन का शोक शनैः शनैः ही कम होता है, एकाएक नहीं। इसका आरम्भ तब होता है, जब ब्राह्मण अर्जुन को यह कहता है:—

१–वह श्रीकृष्ण को बार बार अभिमन्यु को दिखाने के लिए कहता है :—
अरिजंन की अरदासि, सिरजंणहारा सांभळी।
अंहमंन नजरि दिखाळि, मंन मांहै पूजे रळी।
मंन मांहै पूजे रळी, नै अंहमंन नजरि दिखाळि।
प्रीति मोनूं पाळतो, प्रीति माडै पाळि।
दीठि देख्यै भाजिसी, बरसै भादंव मासि।
सिरजंणहारा सांमळी, अरिजंन की अरदासि ॥ ६६६ ॥

सुंण कर यो कहे पात, हूं आए कायों करूं ?
पखंण गयो हस सीलि, करि धोखो मंन मां धरूं ।
करि धोखो मंन मा धरू, धरि करूं क्या धेठ ।
बामण अरिजन नं कहै, दीयो खोळ पसेटि ।
बेटा बेटी को नहीं, अं वात की धात ।
हूं आए कायों करूं, प्रोहित कहे सुणि पात ॥६७९॥

इसी प्रकार ब्राह्मणी की वात सुन कर उसको और अधिक ज्ञान-प्राप्ति होती है और शोक कम होता है—

बाभंणी कहै सुंणि बोलअ, अरिजन साभळि आरिखो ।
तरवर वासो आय, पूत पखेरू सारिखो ।
पूत पखेरू सारिखो, नं साझ मिलें सजोग ।
परभाति हुवा बोछडे, बोछडि करें विजोग ।
पछें बीछडि न आवही, मोह कर न बाळ ।
पूत पंखेरू सारिखो, बाभणी कहै सभाळि ॥६८८॥

इसकी चरम परिणति तो तब होती है जब अर्जुन को रोता हुआ देखकर भी अभिमन्यु की आत्मा उसको पहचानती तक नही और सासारिक नाते- रिश्तो का सही रूप कृष्ण को सबोधित कर, प्रस्तुत करती है । उदाहरणार्थ.—

अंहुमंन कहै ओ कूंण, आंसू तप कीया अता ।
सांम्य कह्यो संमझाय, अरिजंन पूरिबलो पिता ।
अरिजन पूरिबलो पिता, नं अहमन मिल नं उठि ।
आसू तपि अरिजन करें, पिता तुहारो पूठि ।
जिणि जळणी हूं जळमियो, पिता कहीयें पूण ।
अंहुमंन करता सूं कहै, ओह उपायो कूंण ॥७००॥

पात्र : (क) स्त्रीपात्र . स्त्रीपात्रो मे सुभद्रा, उत्तरा की मा, उत्तरा और कुन्ती प्रमुख हैं । इनमे नारी के सभी रूपो-बहन, बेटी, पत्नी और मा तथा उनकी भावनाओं का दिग्दर्शन मिलता है । प्रथम तीन के विषय मे प्रकारान्तर से ऊपर लिखा जा चुका है । प्रतीत होता है कुन्ती को अभिमन्यु के पूर्व जन्म की कथा ज्ञात है । इस सम्बन्ध मे दो प्रसग द्रष्टव्य हैं.—

१—अभिमन्यु के "सा'वे" के अशुभ फल को सुनकर दुखी हुई सुभद्रा को कुन्ती ने समझाया कि विधाता का लिखा टलता नही । इस पर अत्यन्त भोलेपन से सुभद्रा के द्वारा विधाता के हाथ कटाने का और प्रत्युत्तर मे कुन्ती का यह कहना कि तेरा भाई जैसा लिखाता है, विधाता वैसा ही लिखता है, इसी ओर सकेत करते हैं '—

सुभद्रा : वेह रा वढाऊं हाथ, ओछा साहा तूं लिखें ।
परी कढाडूं टोरि,. वेह विनां साऊं पखें ।
वेह विना सांऊ पखें, नें करूं जिसडे जोग ।

ओछा साहा तूं लिखै, जोगां करै विजोग।
लख चौवरासी तूं लिखै, वीद मां आ वात।
काल्ही करूं न कायदो, वेह रा वढाड्यूं हाथ ॥१३३॥

कुन्ती : वेह नै किसौ वराज, वीर लिखावै वेह लिखै।
परथि न वाळूं लेख, परमेसर पूछ्या पखै।
परमेसर पूछ्या पखै, नै परथि न वाळूं लेख।
विसंन करै सोई हुवै, लिखै विधाता लेख।
सिरजंण हारौ सिवरियै, सकळ संवारै काज।
वीर लिखावै वेह लिखै, वेह नै किसो वराज ॥१३६॥

इसका एक और उदाहरण अभिमन्यु के युद्ध में जाते समय सुभद्रा को समझाते हुए कुन्ती के इस कथन में मिलता है:—

सोहेद्रां सांभळि वैण, परमेसर नाहीं पखै।
न करै छंमासी रैण, नां अंहमंन अजरोटो लिखै।
नां अंहमंन अजरोटो लिखै, नै सहो विसोवा वीस।
कह्यौ न मांनै कांन्हवो, मंनै वीवणी रीस।
भोळी भेद न जांणही, कांय छाले नीण।
अंहमंन अजरोटो लिखै, न करै छमासी रैण ॥५६०॥

इस प्रकार, कुन्ती श्री कृष्ण के कार्य को पूरा करने में प्रकारान्तर से सहायक सिद्ध होती है।

(ख) पुरुष : पुरुष पात्रों में श्री कृष्ण, नारद, अहिदानव-अभिमन्यु और अर्जुन मुख्य हैं। श्री कृष्ण समस्त कार्य-योजना के सूत्रधार हैं, परन्तु अपनी इच्छा से वे कथा-प्रवाह को नहीं मोड़ते, मूल योजना में किंचित् व्यवधान होने पर ही उपस्थित होते हैं। उदाहरणार्थ अभिमन्यु के विवाहोपरान्त इन्द्र पर चढ़ाई करवाना और कौरवों को युद्धार्थ प्रेरित करना उन्हीं के कार्य हैं :—

नारायंणजी मंत उपाय। रिख नारद नै लियो बुलाय।
नारदा तूं'र पयाळे जाय। तारू दैत नै कहि संमझाय ॥२१४॥
तूं तारू इंदरामणि जाय। तोहि मेल्है तेतीसां राय।
ताळू इंदरातण वीटियो। वग करि अरजंनजी गयो ॥२१५॥
नारायंण करवां दीवांणि। कळि लांवंण कीयो परवांण।
फीटि रे करंव्यो आही घात। घरे नहीं छै अरिजन पात ॥२१६॥

इसका दूसरा उदाहरण तब मिलता है जब वे प्रभात होते ही अभिमन्यु को शीघ्र रण में जाने के लिए प्रेरित करते हैं :—

अंहमंन तूझि कहेवा गूढ। राय दरजोघंन मांगै झूझ।
आपां केहूं देस्यैं गाळि। तोड़ि राखड़ी परी ज राळि ॥५८९॥

असत्री तणों न कीजै मोह। काठि कटारो वाढो छोह।
असत्री तणों न कीजै मोह। रीणि पसतां लागै लोह ॥५९०॥
असत्री छळियो वदरखाळि। थी रांम हूं पड्यो जजाळि।
मामा तणा वैण साभळे। काढे रथ घोडा जोतरे ॥५९१॥

अन्त मे पुत्र– वियोग मे दुखी अर्जुन को ब्राह्मण के दृष्टान्त द्वारा सान्त्वना दिलाते हैं, साथ ही जयद्रथ– वध का कार्य भी सम्पूर्ण करवाने की योजना पक्की कर लेते हैं। इस प्रकार साधु– रक्षा और दुष्ट– दमन का कार्य वे पूरा करते हैं।

अभिमन्यु : कथा का नायक है। अहिदानव के रूप मे वह कृष्ण से बदला लेना चाहता था किन्तु न ले सका। अभिमन्यु–रूप मे उत्पन्न होने पर उसको अपना पूर्वजन्म याद नही रहा, केवल मृत्यु–समय ही याद आया –

वैर आयो राव मायें किसन काज सवारियो।
नारांयण सूं कूड रचियो, पूरब वैर वितारियो ॥६४६॥

सुभद्रा के पूछने पर वह सहज भोलेपन से युद्ध के बीडे लेने की सारी घटना सुना देता है–बार बार उसके पिता का नाम लिए जाने पर उसने बीडा लिया। आत्मसम्मानार्थ और कुल की लाज के लिए वह युद्धार्थ कृत संकल्प रहता है। युद्ध मे जाने से पूर्व वह सर्वप्रथम अपने मामा की ही पूजा करता है, यही नही अपनी मा को मामा के वीर कृत्यो का बखान करके सान्त्वना देता है। उसके प्रति भाग्य की यह विडम्बना है। वह पूर्वजन्म का दानव है तथापि अपने भोले स्वभाव और कार्य-दृढता से सबकी सहानुभूति का पात्र हो जाता है। घर मे विदा होते समय स्त्रियो के समूह मे अपनी पत्नी को देखने पर उसके हृदय की स्निग्धता भी छलकती दिखाई देती है –

किसका नेह अन्य, झीण सवायां पहरियो।
सुधी छली कपूरि, नैणे काजळ सारियो।
नैणे काजळ सारियो, नै नाह पेखै नारि।
सुख सेझां सारिखो, न कियो करतारि।
जीत रत मां ज पामरू पीव भेटियो समान्य।
झीण सवाया पहरियो, किसका नेहा अन्य ॥ ५७५ ॥

अर्जुन यह एक सामान्य–मानव, सीधे और भोले–भाले निष्कपट वीर तथा कृष्ण–भक्त के रूप मे चित्रित हुआ है। अभिमन्यु के प्रति उसका गहरा प्रेम है। 'मा'वे' के अशुभ फल की बात सुनकर वह भी रोने लगता है। अन्त मे श्रीकृष्ण उसका मोह दूर करवाते हैं।

नारद राजस्थानी साहित्य मे ये कलह–प्रिय चित्रित किए गए हैं, यहाँ भी ये प्राय. यही कार्य करते हैं, जो निम्नलिखित हैं —

(क) 'जन्तर' लाने पर कृष्ण की राणियों की उत्सुकता बढाकर उसको खुलवाने की प्रेरणा देना। (छन्द ४४–४६)।

(ख) कृष्ण की आज्ञा से पाताल जाकर 'ताळू' दैत्य को इन्द्र पर चढाई करने के लिए कहना।

(ग) अभिमन्यु के युद्ध में जाने का समाचार सुभद्रा को कहनाः—

उचळ चीता कांय, व्रंभा-सुत पधारियो ।
सुंणो सोहेदरा माय, थे जंमवारो हारियो ।
थे जंमवारो हारियो, नै सुंणो सोहेदरा माय ।
मिंदर वैठी माल्ह ही, मंन नहीं अणराय ।
जांगी ढोल दड़ूकिया, वाजिया रिण सार ।
व्रंभासुत पधारियो, सुणौ सोहेदल विचार ॥ २६८ ॥

प्रस्तुत काव्य संगीत योजना और नाटकीय तत्त्वों के सफल गुम्फन और सहज घरेलू भाषा के कारण अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। प्रत्येक कार्य और घटना मूल कथा को गन्तव्य स्थान तक ले चलते हैं। पाठक और श्रोताओं पर इन सबका गहरा प्रभाव पड़ता है और उनकी उत्सुकता बराबर बनी रहती है। प्रचलित पौराणिक कथा में मूलभूत अन्तर भी औत्सुक्य-वृत्ति बनाए रखने में एक कारण है। द्रोणाचार्य के युद्ध का बीड़ा पाकर तो सभी कार्यों और घटनाओं में अत्यन्त त्वरा आती है जिसमें पाठक और श्रोता सहज ही रम जाता है। इससे तत्कालीन लोकमान्यता, विश्वास, रीति-रिवाज, प्रचलित रूढ़ि, आशा-आकांक्षा आदि अनेक बातों का बड़ा अच्छा परिचय मिलता है। १६ वीं शताब्दी के मरुदेशीय समाज के अध्ययन के लिए यह रचना अत्यन्त उपादेय है।

इसमें प्रधानतः शृंगार, वीर, करुण और शान्त रस हैं; काव्य की परिणति अन्त में शान्त रस में ही होती है। कवि ने सर्वत्र उदात्त गुणों को ही प्रश्रय दिया है; पाठक और श्रोता को इन्हीं के ग्रहण की प्रेरणा इससे मिलती है।

समस्त रचना में मरुदेशीय आत्मा की झांकी दिखाई देती है। इसके अनेक उदाहरण ऊपर आ चुके हैं, दो नीचे दिए जाते हैं :—

(१) जब अभिमन्यु की "जान" विराट के निकट पहुंची तो 'पड़जानी' सामने आएः-
नगर हूंता जोजंण आगै, पड़दंन सांम्हां आयां ॥ १५५ ॥
पड़दनियां ज्यों साम्हां आया, भीव दियै सोपारी ।
टुवटे टुवटे टूंण उछाळै, ग्यांन करै के खारी ॥ १५६ ॥

यह रीति गांवों में आज भी प्रचलित है।

(२) जब उतरा के लिए दुकान से सामान मंगवाया गया तो मेहता ने "बुगचा" खोलाः-
ल्योहजी थारै चित चड़ै, नै साड़ी सालू चीर ।
आगै बुगचा खोल्यजै, मांहि जरकस हीर ॥ ४८४ ॥

"बुगचा" राजस्थान में जन-साधारण के घर की चीज है।

रैवारी राजस्थानी लोक-जीवन के प्रमुख अंग रहे हैं; ऊंट पालना और चराना उनका प्रमुख पेशा है। वे श्रेष्ठ संवाद-वाहक माने जाते रहे हैं। यहां भी ये यही कार्य सफलतापूर्वक निवाहते हैं। विराट में रैबारियों की बातों और उनके कार्यों से उनकी स्वामि-

भक्ति, शिष्टाचार तथा चतुरता का पता चलता है। यही नहीं, उनके अनेक कथन बहुत अर्थगर्भित और मनोवैज्ञानिक हैं।

कथा के प्रत्येक पात्र के हृदय की धड़कन सामान्य जन की सी ही हैं। छोटे और बड़े सभी चरित्रों में पारस्परिक मानवीय सौहार्द्र की भावना पाई जाती है। उत्तरा का रैवारियों को "भाई" कहकर सम्बोधन करना इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

हजूरी कवियों में पौराणिक कथानकों पर आख्यान-काव्यों की रचना करने वालों में तीन कवि प्रमुख हैं—डेल्ह, पदम भगत और मेहो। कालक्रम की दृष्टि से प्रथम दोनों कवि १६ वीं शताब्दी आरम्भ के कवियों में से हैं। राजस्थानी साहित्य में आख्यान-काव्य-परम्परा का सूत्रपात इन्हीं दोनों से होता है। प्रस्तुत रचना का महत्त्व इस कारण और भी बढ़ जाता है।

४. आंछरे : (संवत् १५००-१५५०) :

ये बीकानेर के आसपास के निवासी थे। विवेच्य साखी से इनका "हजूरी" होना ध्वनित होता है। इनका समय संवत् १५०० से १५५० के लगभग होने का अनुमान है। रचना से इनके सिद्ध योगी होने का संकेत मिलता है।

राग "मलार" में गेय इनकी "करणा की" निम्नलिखित साखी मिलती है (प्रतिसंख्या २०१, २६३) :—

मेरे मन्य हुलास, सभरायळि जाइये ॥ १ ॥
सभरथळि जाइयें खरच नांहीं, खीच समावस कीजियें ॥ २ ॥
उतारि गहणों होय लहणो, विलसि लाहो लीजियें ॥ ३ ॥
काहे का मैं करूं दीपग, काहे के री बातियां ॥ ४ ॥
काहे का मैं घिरत छालूं जगों छमासी रातियां ॥ ५ ॥
सोनैं का मैं करूं दीपग, रूप बाती छलाइया ॥ ६ ॥
सुर गऊ को घिरत छालूं, जगों छमासी रातियां ॥ ७ ॥
साधि होय करि जगो दीपग, दासि हूं मैं तेरियां ॥ ८ ॥
अपणं धणी सूं सारि खेलूं, कळा राखो मेरियां ॥ ९ ॥
अवत ता दीय चीर उतर्या, सोनैं तार छलाइयां ॥ १० ॥
सोई पहु (र) धण चौक बैठो, इंद देखण आइयां ॥ ११ ॥
कहै आंछरे करो करणो, पारि पहु की भाइयां ॥ १२ ॥ -प्रति संख्या २०१ से।

इसमें योग की समाधि-अवस्था प्राप्त करने का उल्लेख है। इसी मूल भाव को दाम्पत्य-प्रेमपरक रूपक में व्यक्त किया है। एक प्रकार से इसमें रूपकों की क्रमशः तीन शृंखलाएँ चलती हैं जो परस्पर सम्बद्ध और अन्योन्याश्रित रूप से एक दूसरे की पूरक हैं। ये निम्नलिखित हैं —

(क) पत्नी का संभराथळ पर अपने पति से मिलने जाना (पंक्ति १-३),
(ख) वहां उसके साथ रमना (पंक्ति ४-९),
(ग) उसके सौन्दर्य-दर्शन के लिए चन्द्रमा तक का आना (पंक्ति १०,११)।

समस्त प्रतीक-योजना हठयोग की प्रक्रिया से सम्बन्धित है । ये प्रतीक सहज ही बोधगम्य हैं क्योंकि, एक तो सामान्य पाठक इनसे भली-भांति परचित है, दूसरे इनमें प्रयुक्त प्रस्तुत और अप्रस्तुत में व्यापार, भाव और दृष्टि-साम्य है। प्रभाव की गहराई और कथन की ओर ध्यान केन्द्री भूत करने की दृष्टि से बीच में प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग बहुत उपयुक्त है। ऐसी प्रतीक और रूपक-योजना जाम्भाणी-साखी साहित्य में दुर्लभ है। नीचे इसमें प्रयुक्त प्रतीक दिए जाते हैं :-

(क) संभराथळ = समाधि-अवस्था, कैवल्यावस्था ।
अमावस्या करना = सूर्य-चन्द्र संयोग, अर्थात् कुण्डलिनी का ऊर्ध्वमुखी होकर सहस्रार में स्थित अमृत-स्रावक चन्द्रमा का अमृत पान करना ।

गहना उतारना = आत्मस्थ होना । लय होकर विलास करके लाभ लेना= यह अमृत पान कर अमर होना ।

(ख) सोने का दीपक = मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनी । चांदी की वाती= सहस्रदल-कमल स्थित चन्द्रमा । सुर-गाय के घृत से भरना=अमृत-स्राव ।
छमासी-रात्रि-जागरण = उन्मनावस्था । (मैं) दासी=जीवात्मा । पति (धणी)= ब्रह्म । चौपड़ खेलना=ब्रह्मलीन होना । कला रमना= समत्वावस्था, तदाकार स्थिति ।

(ग) पर्वत=मूलाधार चक्र । दो चीर=इड़ा, पिंगला । सोने का तार=सुषुम्ना । स्त्री (वंण) का इनको पहनना=ऊर्ध्वमुखी कुंडलिनी । चौक में बैठना=सहस्रार में स्थित होना । इंदु का देखने आना=अमृत-स्राव होना ।

५. पदम भगत (पदमोजी) : (अनुमानतः संवत् १५००-१५५५) :

ये नागौर के पास गुणावती के निवासी और तेल का काम करने से तेली कहलाते थे । आरम्भिक हजूरी विष्णोई कवियों में इनको बड़ी प्रसिद्धि है । महलाणा गांव के विष्णोई भाटों तथा साधुओं में प्रचलित मान्यता के अनुसार इनका स्वर्गवास गुणावती में ही संवत् १५५५ के आसपास हुआ था ।

पदम के विष्णोई कवि होने के कई प्रमाण मिलते हैं:-

१-संवत् १६६६ में लिपिबद्ध "ब्यावले" की अद्यावधि उपलब्ध प्राचीनतम प्रति-अ० प्रति[1] में कवि ने स्वयं को वैष्णव बताया है –

त्रिभुवन तणां रूप की सप्या, आंणइ एकणि वांणी।
हर जोसी तेडी नइ पूछ्या, वैष्णव पदम वषाणी ॥ १०० ॥ १७ ॥

प्रति संख्या १५२, २०१, २०६ और २०८ में वैष्णव के स्थान पर "साध" पाठ है और छन्द इस प्रकार है :-

रुषमण्य रूप तणी को सप्या, आणों एका वाणी।
जादम तेडी मुंकियो, पदमइयें साध वषांणी ॥ १२८ ॥

इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं-(१) पदम विष्णोई कवि थे, सम्प्रदाय के अनुयायी "वैष्णव" भी कहलाते थे। 'विष्णोई' के लिए 'वैष्णव' शब्द का प्रयोग सम्प्रदाय की आरम्भिक और विकासमान स्थिति का द्योतक है तथा जिसके द्वारा मूलाधार मान्यता-विष्णु-उपासना का स्पष्ट संकेत किया गया है (द्रष्टव्य–विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)। प्रति संख्या ९० में 'रुकमणी मंगल' के अन्त में भी वैष्णव शब्द का प्रयोग है –
भणे पदमैयो वैष्णव यूं सिंघासण जगदीश।
(२) कवि प्रस्तुत रचना के समय साधु था। इसका समर्थन इस बात से भी होता है कि सम्प्रदाय में ये विष्णोई साधु ही माने जाते हैं।

२-सम्प्रदाय में रात्रि में "जागण" (जागरण) और "जम्मा देने" की प्रथा जाम्भोजी के समय से ही है। हजूरी कवियों की अनेक रचनाओं से भी इसकी पुष्टि होती है। इस सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि – (क) जागरण में "ब्यावले" का गाया जाना तथा (ख) जागरण और जम्मे में आधी रात के बाद पदम कृत आरती करना आवश्यक कृत्य थे और इनका दृढतापूर्वक पालन किया जाता था। यही नहीं श्रद्धालु विष्णोइयों के यहां विवाहोपरान्त भी यह आरती[2] गाई जाती रही है। २९ धर्म-नियमों की भांति पदम की कृतियों का ऐसा सम्मान किया जाना बिना उसके विष्णोई हुए सम्भव नहीं था।

हरि महिमा गान के अतिरिक्त इसका एक प्रमुख कारण भी है। प्रकारान्तर से पदम की ये दोनों ही कृतियां गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित हैं और मुख्यत. गृहस्थ लोगों को मोक्ष मार्ग दिखाना जाम्भोजी को अभीष्ट था। इस रूप में ये जाम्भोजी के ध्येय का संकेत कराने के साथ ही गृहस्थ लोगों में निष्ठा, कर्तव्य-भावना भरती और उनको साहस और सम्बल प्रदान करती हैं। अत. मंगल कामना स्वरूप दोनों का महत्त्व धर्मनियमों के समान समझा गया।

१–अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, की प्रति होने से इसका नाम अ० प्रति रखा गया है। राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ द्वारा यह काव्य 'रुक्मिणी मंगल' नाम से प्रकाशित किया गया है, इसमें प्रकाशन संवत् का उल्लेख नहीं है।
२–प्रति संख्या (क) ४८, (ख) २०१ तथा (ग) २२७ के "हरजस" संग्रह के अन्तर्गत।

३-प्राचीन और प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियों में विष्णोई हरजसों के अन्तर्गत पदम कृत उल्लिखित आरती[1] और एक 'हरजस' की गणना भी की जाती रही है। अन्य 'हरजसों' की भांति यह[2] भी सम्प्रदाय में बहु-प्रचलित है।

४-"व्यांवले" की अनेक प्रतियाँ प्रत्येक साथरी में देखने में आई हैं तथा विष्णोई साधु

१-इसकी कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

राग धनाश्री :

आरती जी त्रभुवणनाथ किसन रुकमण आरती।
करै छै रुकमण री माय, करै छै भीषम राणी आय ॥ १ ॥ टेक ॥
धनि कुंदणपुर रो राजियो, धनि रुकमण री माय।
जिण कूपि रुकमण अवतरी, चंवरी चढ्या जादुराय ॥ २ ॥
हरि रै सेहरै सूरज सोहै, मुकट सोहै हीर।
काने कुंडळ रतन झळकै, निरमळ सांम सरीर ॥ ३ ॥
ब्रह्मा वेद ज ऊचर्‌या, इंद्र कै झारी हाथ।
आदि माया साई रुकमणी, परणी त्रभुवणनाथ ॥ ४ ॥
कसतूरी केसर अरगजो, चदन तिलक लिलाटि।
करै श्रीपति री आरती, किसन विराज्या पाटि ॥ ५ ॥
कसतूरी केसरि अरि कुंकम, मोवंन सीप कपूरि।
हरि री सामू करै आरती, वन आजवंणी सूरि ॥ ६ ॥
दांणी मारि दर्फ किया, नामि गयो सिसपाळ।
नहचै तैं कारज सर्‌यो, जीतो श्री गोपाळ ॥ ९ ॥
हरि री सामू करै वीनती, मांमळ त्रभुवणनाथि।
सोळा सहंस गोपी धरि थारे, भोजन रुकमण हाथि ॥ १० ॥
सोनों दीनूं मोलवों, रुपो अंत न पारि।
भणै पदम जन आरती, आवागुवण निवारि ॥ ११ ॥ ७८ ॥-प्रति संख्या ४८।

२-राग सोरठि :

नोपगियो हेला देतो जाय, नोपगियो बाळदि लादे जाय।
नोपगियो ताळी देतो जाय,* प्रांणीड़ै नै रापूं रै बिलंब्राय ॥ १ ॥ टेक ॥
आमंण थारो आतमां, दिन दस रहियो आय।
पेम मगन मां राचियो, चल्यो नीसांण वजाय ॥ २ ॥
बारै वरस नग पेलणो, तीमां वळि इवकार।
चाळीमां चळ चळ हुई, निकमंण लागो भार ॥ ३ ॥
ग्यांन गरथ करि गूदड़ी, हरि झोळी ले हाथि।
करंग कुमाई संगि चलै, पांचूं चेला साथि ॥ ४ ॥
बीछड़ियां मेळो दुहेलो, तरवर पान प्रसंग।
फोरि पाछै पायवो नही, ज्यों कांचळी भुवंग ॥ ५ ॥
पनर पुगाऊं थारो पेम सूं, रंग री रेळा पेळि।
मंन माहै डरती रहूं, जण जोऊं ऊभी मेलि है।
जीमिजो जूठिजो विलसिजो, हरि भजि लीजो भोग।
पदम भणै पायवो नही, औ औसर औ जोग ॥ ७ ॥ १०८ ॥
-प्रति संख्या २०१ से।

* प्रति संख्या २०१ में यह अर्द्धपंक्ति त्रुटित है। यहां यह प्रति संख्या ४८ से दी गई है।

सबदवाणी के समान ही उसको विष्णोई कवि की कृति मानकर आदर-सम्मान करते हैं।

५-"ब्यावले" के "बृहत्" रूप वाली प्रतियो से भी पदम के विष्णोई कवि होने का अनुमान होता है (द्रष्टव्य-आगे, तृतीय समूह की प्रतियां)।

रचनाएँ :

पदम की ये रचनाएँ प्राप्त हैं -

(१) क्रिष्णजी रो ब्यावलो[1] (यह 'ब्यावलो', 'विवाहलो', 'रुक्मणी मंगळ' नाम से भी प्रसिद्ध है)।

(२) फुटकर पद, आरती, हरजस आदि[2]।

"ब्यावलो" ब्यावलो इनकी अक्षय कीर्ति का आधार है, जिसकी रचना अनुमानतः संवत् १५४५ के लगभग की गई थी। राजस्थानी साहित्य का यह सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रचलित और प्रसिद्ध आख्यान काव्य है, जो राग मारू, रामगिरी, सोरठ, केदारो, सिंधु, हंसो और धनाश्री मे गेय है[3]। इस कारण मूल पाठ मे गायको की इच्छानुसार परिवर्तन परिवर्द्धन हो जाना स्वाभाविक है। उपलब्ध प्रतियों मे पाठ-भेद, विपर्यय और प्रक्षिप्तांश

१-प्रति सख्या (क) ९०, (ख) ६१, (ग) १०३, (घ) १३८, (ङ) १५२ (ङ), (च) १६० (ख), (छ) २०१, (ज) २०६ (ट), (झ) २०८ (ग), (ञ) ३२७, (ट) ३३६, (ठ) ४०३, (ड) ४०५ (झ)। इनके अतिरिक्त अन्यत्र भी इसकी अनेक प्रतियां प्राप्य हैं —

(१) कैटालाग आफ दि राजस्थानी मैन्यूस्क्रिप्टस, पृष्ठ ६, अ० सं० ला०, बीकानेर।

(२) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण (सन् १९०० से १९५५ ई० तक), प्रथम खण्ड, पृ० ५३८, काशी, संवत् २०२१ तथा-वही, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३१६, ३२६।

(३) ए कैटालाग आफ मैन्यूस्क्रिप्टस् इन दि लाइब्रेरी आफ एच० एच० दि महाराना आफ उदयपुर, पृष्ठ २००, श्री-मोतीलाल मेनारिया, सन् १९४३।

(४) राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग १, पृष्ठ १४, जोधपुर, सन् १९६०।

(५) ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी ग्रथो के खोज विवरण : अपेक्षित संशोधन, मुनि कान्तिसागर, ना० प० पत्रिका, वर्ष, ६७, अंक ४, संवत २०१६।

(६) राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारो की ग्रन्थ सूची, चतुर्थ भाग, पृष्ठ २२१, जयपुर, १९६२ ई०।

२-प्रति सख्या (क) ४८, (ख) ६५, (ग) १५२(च), (घ) १७१(ग), (ङ) २०१, (च) २२७(घ), (छ) ३०१, (ज) ३०६, (झ) ३१४(च), (ञ) ३३८(क), (ट) ४०३, (ठ) ४०५।

३-अ० प्रति मे इनके अतिरिक्त राग देवसाख, वेलाउली और धवलधनाश्री का भी उल्लेख है।

बहुत है, किन्तु मूल पाठ का निर्धारण किया जा सकता है जो ऐसे महत्त्वपूर्ण प्राचीन काव्य के लिए अतीव आवश्यक है। इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रतियों में प्राप्त पाठ का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं। कहना न होगा कि ये निष्कर्ष पदम के उचित महत्त्व और मूल्यांकन में तो सहायक हैं ही, एक अन्य विष्णोई कवि रामनना (कवि संख्या-६०) के विषय में भी उल्लेखनीय जानकारी देते हैं। इनसे भी पदम का विष्णोई कवि होना ध्वनित है।

१-इनकी विभिन्न प्रतियाँ तीन परम्पराओं का द्योतन करती हैं, जिनके ये तीन समूह माने जा सकते हैं :- (१)-अ० प्रति, (२)-प्रति संख्या १५२, २०१, २०६ और २०८ तथा (३)-प्रति संख्या ६०, ६१, १०३, १३८, ३२७, ३३६, और ४०३।

२-प्रथम समूह-अ० प्रति :

(१) इसमें पाठ-विपर्यय के अनेक उदाहरण मिलते हैं जो कथा तारतम्य और प्रसंग की दृष्टि से असंगत हैं। विपर्यय एक छन्द की पंक्तियों और दो छन्दों में ही परस्पर नहीं, अपितु प्रसंग-विशेष के छन्द-समूह में भी है। अन्तिम के दो उदाहरण ये हैं :-

(क) छन्द १२५ से १३२ तक ८ छन्द, रुक्मिणी की अम्बिका पूजा से सम्बन्धित हैं। इसके पश्चात् छन्द १३३ से १५० तक रुक्मिणी के अम्बिका पूजनार्थ जाने और उसके शृंगार का वर्णन है। स्पष्ट है कि ये ८ छन्द उसके बाद होने चाहिएँ, पहले नहीं।

(ख) श्रीकृष्ण के विवाहोपरान्त द्वारिका आगमन के पश्चात् क्रमशः (१) छन्द २५८ से २६१ तक फलश्रुति, (२) छन्द २६२ से २६४ तक 'वधावा' और (३) छन्द २६५ से २७० तक गाली गीत हैं। गाली गीत कुन्दनपुर में विवाह के समय, वधावा गीत द्वारिका आने पर तथा अन्त में माहात्म्य वर्णन होना चाहिए।

(२) समस्त रचना ३३ कड़वकों में है किन्तु प्रत्येक के अन्तर्गत छन्द-संख्या में एकरूपता नहीं है।

(३) इसमें कई छन्द त्रुटित भी हैं। उदाहरणार्थ ६३ वें छन्द के पश्चात् "अंतर नक्षत्र सूर पर गड़ंवर" से आरम्भ होने वाला अंश, रुक्मिणी का अपनी माता के प्रति कथन है किन्तु एतद् विषयक उल्लेख वाला छन्द त्रुटित है। यह प्रति २०१ में यों है:-

> इमरत को रूप पलटि कै, जहर पीवै कुंण जांणि।
> कंचण काच पटंतरो, गहली माय म जांणि॥ ६५॥

इसी प्रकार, इसमें कतिपय प्रसंगों में प्रक्षेप भी प्रतीत होता है। फलश्रुति के चार छन्दों (संख्या २५८-२६१) में उल्लिखित दूसरे समूह की प्रतियों में केवल २६१ वां ही अन्त में मिलता है।

३-द्वितीय समूह की प्रतियां :

(१) इनका पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक है। प्रक्षेप इनमें भी है। उदाहरणार्थ संदेश संबंधी यह दोहा, जो ढोला-मारू काव्य का है और उसकी प्राचीन प्रतियों में मिलता है:-

सनेसो इ लख लहे ने कहि जाणै कोय।
ज्यों हूं अलू नीण छलि, यों ने अखै सोय ॥ ७२ ॥

(२) एक स्थल पर छन्द-समूह का विपर्यय इनम भी है। छ द १२१ से १२८ म कृष्ण का कुन्दनपुर म आने के पश्चात् "पथी" से रुक्मिणी के विषय मे पूछना और उसका उत्तर वर्णित है। वस्तुत यह अ श द्वारिका म कृष्ण और पथी-ब्राह्मण मे हुई बात-चीत है। प्रथम और तीसरे समूह की प्रतियो म भी यह इसी सदर्भ म दिया गया है। छ द सख्या-क्रम मे उपर्युक्त दोनों समूहो की प्रतियों मे भूल है।

एक छन्द मे नियमानुसार पक्तियाँ न होकर कम-बेश इन सभी प्रतियो म है।
यत्किचित् त्रुटित पाठ के उदाहरण इन सभी में हैं।

४-तृतीय समूह की प्रतियाँ सुविधा के लिए इनमे प्राप्त "व्यावले" को "बृहत्" रूप कहा जा सकता है। इस समूह की सभी प्रतियों मे प्रभूत परिमाण मे प्रक्षेप हुआ है, जिसके कुछ मुख्य कारण ये हैं :—

(१) पदम ने कृष्ण-रुक्मिणी विवाह प्रसग से सम्बन्धित अनेक फुटकर पद भी लिखे थे। अनेक प्रतियो म उपलब्ध और सम्प्रदाय मे बहु-प्रचलित ऐसे पदों से इसकी पुष्टि होती है। "व्यावले" की पृष्ठभूमि पर, विवाह-विषयक होने से उनमे एक क्षीण सा तारतम्य भी दिखाई देता था। प्रत्येक पद अपने आप मे तो पूर्ण था ही, वह एतद् विषयक कथा का अ श भी प्रतीत होता था। फिर, ये भक्तिरस पूरित और हृदय-ग्राही थे ही। अत "बृहत्" व्यावले के निर्माण मे प्रधान आधार-(क) मूल व्यावले का अ श तथा (ख) ये सब पद रहे। स्मरणीय है कि मूल व्यावले का समस्त पाठ इसमे ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया गया। "बृहत्" व्यावले मे पदम कृत काव्य का अ श तो इतना ही है, शेष मिलावट अन्य कवियों द्वारा रचित प्रसगानुकूल पदों और छन्दों की है।

(२) इसके निर्माण की प्रक्रिया एक अन्य विष्णोई कवि रामलला के 'रुक्मिणी मगल' (रचनाकाल-अनुमानत संवत् १८००) के पश्चात् विक्रम उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में आरम्भ हुई लगती है। कारण यह है कि इसमें उक्त 'रुक्मिणी मगल' के अनेक छन्दों के अतिरिक्त ये दो छन्द-समूह भी सम्मिलित किए गए हैं :—

(क) एक समै नारद मुनि आय भीष्म के भवन गये।
नर नारी रणवास उठि सब जोगेश्वर के पायन नये॥-लगभग २० छन्द।

(ख) तेल छुवो म्हारी राजकवारी।-लगभग ८ छन्द।

(३) "बृहत्" मे पदम और रामलला की रचनाओं के अतिरिक्त, कम से कम दो और अज्ञात कवियो की रचनाएँ भी मिली हुई हैं। प्रवृत्ति, प्रसग, टेक, भाषा और शैली के आधार पर इसको सिद्ध किया जा सकता है।

(४) प्रक्षेपकर्ता ने मूल व्यावले की कथा और तथ्यों को बराबर ध्यान मे रखा है। यही कारण है कि प्रक्षेप मूल के अनुरूप और उसम प्राप्त सकेतों के आधार पर

ही हुआ है, जो संगत लगता है। यह दो दिशाओं में हुआ है :—(१) वर्णित प्रसंगों में और (२) नवीन प्रसगोद्भावनाओं में। इसमे गणेश विषयक विभिन्न अंश विशेष ध्यान आकृष्ट करते है। मूल में गाली गीत मे शिवजी का उल्लेख है किन्तु यहां उनके स्थान पर गणेश है।

(५) 'व्यांवले' का 'रुक्मिणी मंगळ' नाम भी उपर्युक्त समय से हो विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ लगता है।

(६) प्रतीत होता है कि "बृहत्" का निर्माता भी या तो कोई विष्णोई कवि था अथवा इसमें उसका विशेष हाथ रहा था। इसकी अनेक प्रतियों में रुक्मिणी के कथन रूप में सबदवाणी के ५९ वें सबद को किंचित् परिवर्तन के साथ लिया गया है। इसी प्रकार "अनोपावनी भक्ति" का उल्लेख भी सबदवाणी (९१ : ९) के आधार पर है। इससे भी पदम के विष्णोई कवि होने का संकेत मिलता है।

(७) इस समूह की विभिन्न प्रतियों में आपस में भी पाठ-भेद और घटा-बढ़ी है।

यह भी उल्लेखनीय है कि इन समूहों की विभिन्न प्रतियों की प्रतिलिपि-परम्परा से भी मूल व्यांवले का रचनाकाल १६ वीं शताब्दी मध्य का अनुमित होता है। अन्यत्र भ्रम से इसका रचना-काल संवत् १६६९ बताया गया है,[1] जो वस्तुतः अ० प्रति का लिपिकाल है। नागरी प्रचारिणी सभा के विवरणों को ध्यान से न देखने के कारण यह भूल हुई है[2]।

इसकी छन्द-संख्या २६०-६१ के लगभग होनी चाहिए। प्रधान छन्द दोहा, चौपई हैं। संक्षेप में इसका कथासार इस प्रकार है[3] :—

कवि गणपति और सरस्वती की वन्दना करता है। राजा भीष्मक और 'रुक्मैया' रुक्मिणी के विवाह-सम्बन्धी मंत्रणा करने बैठे। राजा ने श्रीकृष्ण को सब प्रकार से उप-युक्त वर बताया। रुक्मैये ने कृष्ण के कृत्यों और कुल की आलोचना करते हुए इसका प्रति-वाद किया और बदले में शिशुपाल को ही योग्य वर ठहराया। शीघ्र ही कुमार ने विवाह-प्रस्ताव भी शिशुपाल को भेज दिया। वह सदल-बल बरात सजा कर कुन्दनपुर आगया। राणी ने रुक्मिणी को उसका यह वर दिखाना चाहा, तो उसने कहा-वर तो श्रीकृष्ण को ही वरूंगी। उसने एक ब्राह्मण के हाथ पत्र द्वारा कृष्ण को सब समाचार लिखे और पूर्व-प्रीति का स्मरण दिलाते हुए तीन दिनों के भीतर उद्धार की प्रार्थना की। ब्राह्मण पांच-सात योजन चल कर सो गया पर प्रभु-कृपा से द्वारका में जगा। उसने कृष्ण को पत्र दिया और सब बातें बताई। उन्होंने तत्काल ही विशाल सेना एकत्र करवाई तथा बलभद्र और नेमिनाथ

१-डा० सियाराम तिवारी : हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य, पृष्ठ १२८, सन् १९६४।

२-द्रष्टव्य—(क) अंनुअल रिपोर्ट आन दि सर्च -फार हिन्दी मैंन्यूस्क्रिप्टस् फार दि ईयर १९००, श्यामसुन्दरदास, ना० प्र० स०, काशी, विवरण संख्या-२४, ९२ तथा
(ख) खोज रिपोर्ट, काशी, सन् १९२९-३१, संख्या २५६। इनमें ९२ संख्या वाली ही उल्लिखित अ० प्रति है। सभा के विवरण में भी इसका लिपिकाल संवत् १६६९ बताया गया है, रचना-काल नहीं।

३-दूसरे समूह की प्रतियों के आधार पर। इसके उदाहरण प्रति संख्या २०१ से हैं।

सहित ससैन्य कुन्दनपुर आए। ब्राह्मण ने यह बात रुक्मिणी को बताई और खूब दान पाया। राजा भी बहुत प्रसन्न हुए। अब रुक्मिणी ने अम्बिका पूजनार्थ जाने की तैयारी की। यह जान कर जरासंध ने सब राजाओं को शीघ्र ही उसके साथ जाने को कहा। मन्दिर में देवी पूजन करके रुक्मिणी बाहर निकली। तभी ससैन्य कृष्णजी आए, रुक्मिणी को अपने रथ पर बैठा लिया और शंखनाद किया। इस पर दोनों ओर के योद्धाओं में भीषण युद्ध होने लगा। शिशुपाल हार कर भाग गया। तब जरासंध ने जुरा को बुलाया। उसने भी हार कर दैत्यों को भागने की ही सलाह दी। रुक्मैया को कृष्ण ने रथ के पीछे बांध लिया पर रुक्मिणी की प्रार्थना पर वह मुक्त कर दिया गया। कृष्ण की विजय हुई। कुन्दनपुर में 'चंवरी' रचाई गई। धूमधाम से लौकिक संस्कारों सहित दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। राजा ने खूब दहेज दिया। सखियों ने सुमधुर गालियाँ गाईं। विदा होकर वे द्वारिका आए। वहाँ हर्षोल्लास छा गया और घर-घर में मंगलाचार होने लगा।

यह एक श्रेष्ठ आख्यान काव्य है, जिसमें संवाद, वर्णन और पात्र-कथन प्रधान हैं।

संवाद प्रसंगानुकूल, नाटकीय गुणों से युक्त और कथा को प्रवाह देने वाले हैं। इनमें ये उल्लेखनीय हैं —(क) राजा भीष्मक और रुक्मैये का,[1] (ख) राणी और रुक्मिणी का तथा (ग) श्रीकृष्ण और ब्राह्मण का।

वर्णन बहुत सुन्दर, चुने हुए शब्दों में और विषय का साकार रूप उपस्थित करने वाले हैं। कवि-कथित होने से आख्यान की नाटकीयता में तो इनसे किंचित् अवरोध अवश्य उत्पन्न होता है, किन्तु काव्य-सौष्ठव में वृद्धि ही होती है। मुख्य वर्णन ये हैं —(क) शिशु-पाल की ससैन्य बरात का, (ख) श्रीकृष्ण की ससैन्य बरात का, (ग) रुक्मिणी के रूप और शृंगार का, (घ) युद्ध का, (ङ) वैवाहिक रीति-रिवाजों का और (च) द्वारका में श्रीकृष्ण

१-रुकमइयो या बोलै राजा, तमे घणेरो जाणो।
हमने मत वीसारो आवै, परियो तमे पिछाणो॥ १३॥
वळतो राव भणै रुकमइया, वर वनमाळी जाणो।
छपन कोडि जादम नो राजा, वस विमुध वखाणो॥ १४॥
त्रैभुवणे त्रवणे मभळना, सवदि कोई न दीठा।
रुकमइयो नै राजा भीखम, मतर करेवा बैठा॥ १५॥
राय सुणो सुन वीनवै, जाहरा एवड मान।
गोकुळि गउ चरावतो, कायो सराह्यो कान्ह॥ १६॥
वनरावन मा गउ चरावी, भटवाळा रे साथे।
कामण्य मोहण वंस बजायो, जीम्यो ताहरै हाथे॥ १७॥
परनारी नै पाले भुवै, मागै दान मही नू।
तमे कहो वैनु वणे राजा, तीज पडि मही नू॥ १८॥
पत्री बस तणी मति ओछी, पर पीडार जाणो।
जिणरे कुळे कुमाण्या आवै, तिणरो कायो वखाणो॥ १९॥
दरसण काळो बोलै कूडो, मुखि मथरो अभेमानो।
गोकळि गऊ चरावै राजा, कायो सराह्यो कान्हो॥ २०॥

के स्वागत का। इनकी किंचित् वानगी देखी जा सकती है[1]।

पात्र-कथन कथा और परिस्थिति के अनुकूल और हृदय-ग्राही हैं। इनमें ये मुख्य हैं:—(क) रुक्मिणी की कृष्ण से अपने उद्धार की प्रार्थना, (ख) रुक्मैये की कृष्ण को ललकार, (ग) उसको छुड़ाने सम्बन्धी रुक्मिणी की प्रार्थना और (घ) कुन्दनपुर में विवाह-समय नारियों का गाली-गीत[2]।

१२-(क) शिशुपाल की वरात—

हेम लग सह हाके आंण्यां, संप्या पार न जांणी।
मोड़ बंधां रा माघ न जांणी, राजा चढ्या निनांणी ॥ ५० ॥
पचांणवै पोहंण चढ़ि चाली, गज गढ़ मोगर थाटो।
पूण पहेला वहैं वहेला, उभड़ गिणै न वाटो ॥ ५१ ॥
जांगी ढोल नै संनावा, रिणकाहळ रिण तूरो।
वाजा वाजै अंबर गाजै, पुरि रज छाया सूरो ॥ ५२ ॥
एक एक सूं इधका चालै, इधका आवध झालै।
नर नरवै सूं इधका चालै, सहजे सांग उलालै ॥ ५३ ॥

(ख) रुक्मिणी का रूप और शृंगार—

पाव री अंगळी पोलरा प्रठया, लेपंनी सुंदरी नंद सारा।
पहरि पटोलनी हीरां नी चोलनी, मुंध रा लोयणां हिरग हार्‌या ॥
चौदिस चाहती अंग निहाळती, चात्री सी सुंदरी माघ जोवै।
कांन्य कंमडळा पूठि पूरा घंणा, आज सपी कोई किसंन मेळा ॥ १३० ॥
रतंण जो रापड़ी वीणि वासेग जड़ी, वांहरी संवरा लहक लोळी।
स्वांति को विदलो नासिका नूमळी, आज आळिगार किसंन केरी ॥ १३१ ॥
केलनी अभनी अंग नी ओपमां, केहरी लंक लियां गोरी।
त्रदनी ओपमां इधक अंनोपमां, इंद अैरापति चाल चोरी ॥ १३२ ॥
श्रीफळ सारिपा कंठन पयोहरा, उरि ब्रहमंडणा तेण सारा।
गैण नो चंदलो जे मुप प्रठियो, चंपला कसंमली ब्रत भारा ॥ १३३ ॥
नीण जो चाहला वीण जो वाहला, गोप्य गुजाधरा देव दीठा।
रुपमंणी अंग्य तो रळी पूरवै, पदम पणवंत नाथ तूठा ॥ १३४ ॥
हार डोर सुघट सोहै, छल्या मांग संनूर।
रापड़ी रतंन अनेक भळकै, जांण्य उगो सूर ॥ १३७ ॥
कीर नासिका इधक सोहै, मुगट फळ संजुति।
अहर विद्रम ओपमां, दसंण हीरां जोति ॥ १३८ ॥
बे कांन सोवंन झाळ भळकै अवमि रंभा होय।
सारंग वांणी सरस आंणी नांहि तोलै कोय ॥ १३९ ॥

१३-राग धनांसी :

नवरंगलाल विहारी, गावै कुन्दनपुर की नारी।
देत मिसो मिस गारी, मांगै लूंग सुपारी ॥ २२५ ॥ टेक ॥
आयो कांन्हड्या आयो, महादेव काहे कूं ल्यायो।
आक धतूरा चावै, वाळक सभ डरावै ॥ २२६ ॥
जीम कान्हड्या पाजा, तूं तीन्य भुवंण को राजा।
जीम कांन्हड्या चावळ, थारा साथी सभ वेळावळ ॥ २२७ ॥
जीम कान्हड्या लपसी, थारी जांन महादेव तपसी।
थारी वाहंण सोहदेरा जांणी, अरेजंन कै रुपि लोभांणी॥ २२८ ॥　(शेषांश आगे देखें)

लोकरंजन, अध्यात्म-निष्ठा और रुचि-परिष्कार जितना इस काव्य ने किया है उतना राजस्थानी की अन्य किसी रचना ने नहीं। कवि ने हृदय-रस से सिंचित कर लोकमानस का दिशा-विशेष में सही चित्रण किया है और यही कारण है कि यह अब तक लोक का कण्ठहार बना हुआ है। समस्त काव्य भक्ति रस पूरित है जिसमें वीर रस का भी भव्य निदर्शन मिलता है। कृष्ण के चरित्र में एक विशेष मर्यादा लक्षित होती है। यहां वे भक्त उद्धारक के रूप में ही चित्रित हुए हैं। इस सम्बन्ध में एतद् विषयक पौराणिक कथाओं से इसकी भिन्नता द्रष्टव्य है। ब्राह्मण से समाचार जान कर वे अकेले ही कुन्दनपुर नहीं आते, ससैन्य आते हैं। हरण करते समय भी वे सेना सहित जाते हैं। रुक्मणी को रथ में बैठाते ही वे भागने का उपक्रम न कर ललकार करते हैं। इसके कथाप्रवाह में तत्कालीन लोक-मानस अनायास ही मुखरित हो गया है। लोक प्रचलित अनेक रीति रिवाजों का इसमें यथास्थान समावेश है। कुल, कृत्य और जाति को लेकर ऊँच-नीच की भावना समाज में व्यापक रूप से थी। रुक्मैये और रुक्मिणी दोनों के कथनों से इसकी पुष्टि होती है।

फुटकर पद दो प्रकार के हैं-एक वे जिनमें कृष्ण-रुक्मिणी विवाह विषयक विभिन्न प्रसंगों का चित्रण, उल्लेख है तथा दूसरे वे जो हरि भक्ति, चेतावनी और आत्म-निवेदन परक हैं। उपलब्ध पदों में सर्वाधिक संख्या पहले प्रकार की ही है। ब्यावले के अधुना-प्रचलित "बृहत्" रूप के मूल में इनका विशेष आकर्षण रहा है। ये एक दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी, कथा-तारतम्य का आभास देते हैं। उल्लेखनीय है कि इसी पद्धति पर आगे चल कर सूरदास ने कृष्ण-विषयक विशाल पद-साहित्य का निर्माण किया था।

कवि का प्रत्येक पद कान्तियुक्त मोहक मोती है। समष्टि रूप में ये राजस्थानी गेय पदमाला के जाज्वल्यमान मनके हैं। उदाहरणार्थ तीन पद नीचे दिए जाते हैं[1]। अनेक

थारी मूवा भरम गुमायो, कुता करन कवारी आयो।
जन पदमूं जस गावै, कुछि गाळी देत दत पावै ॥ २२९ ॥

१-(क) राग सोरठ
माई म्हे तो सुपनै में परणी गोपाल ॥ टेक ॥
थे जाणो बाई सुपनो साचो, सुपनो आळ जजाळ ॥ १ ॥
हरि हरि पाग केसरिया जामा, हाथां मेंदी लाल ॥ २ ॥
छपन कोड जादू चढ आए, सनमुख आए ब्रजलाल ॥ ३ ॥
पदम भणै प्रणवै पाय लागू, चरण कंवळ बल जात ॥ ४ ॥-प्रति ६५ से।

(ख) राग धनाश्री :
दोडी घोडो गवान्यो लियां जाय। टेक।
राव जुरासिंध और दत वक्तर सामो झेली आय ॥ १ ॥
कवर रुकमइयो यूं उठ बोल्यो कुळ को धरम घटाय ॥ २ ॥
पदम भणै प्रणवै पाय लागू, भीसम सीस निवाय ॥ ३ ॥-प्रति संख्या २०६ से।

(ग) सामेलै सिसपाल के चढ्यो रुकमकवार।
गुडला सिर सवारिया, पाच लाख असवार।
सोड सोडिया और गोदवा दीना जान अपार।
हरख्या लोग सब नगर का विलखी राजकवार।
पदम भणै प्रणवै पाय लागू इण विध जान उतार ॥-प्रति संख्या ३०६ से।

दृष्टियों से राजस्थानी साहित्य को पदम की अविस्मरणीय देन है। 'व्यांवला' राजस्थानी के आरम्भिक आख्यान काव्यों में से एक है और इस परम्परा में प्रकाश-स्तम्भ के समान है। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध और पौराणिक कृष्ण विषयक काव्य परम्परा में भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजस्थानी के अनेक ऐसे काव्यों का यह प्रेरणास्रोत रहा है। इसी प्रकार, इनके फुटकर पद गेय पद परम्परा की आरम्भिक रचनाओं में से हैं। मीरां काव्य की पृष्ठभूमि का निर्माण इन्हीं से आरम्भ होता है।

सोलहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध की मरुभाषा के अध्ययन के लिए 'व्यांवला' अत्यन्त उपादेय है। तत्कालीन समाज और संस्कृति का सुष्ठु और संक्षिप्त परिचय पदम की रचनाओं से मिलता है।

६. कील्हजी चारण : (विक्रम सवत् १५००-१५६०) :

कील्हजी सामौर शाखा के चारण सोनोजी के पुत्र थे। ये सुजानगढ़ (बीकानेर) के पास हरासर नामक गांव में उत्पन्न हुए और बाद में कमूंबी में रहने लगे थे। बनारस में विद्याध्ययन करके ये प्रकाण्ड शास्त्रज्ञ विद्वान् बने। एक कवित्त में कवि ने विद्या की महत्ता बताई है :—

विद्या तो वर नागरी, मोख संसारां तारी।
विद्या मीत्र वदेस, खंड प्रखंड पेयारी।
विद्या आदर दांन, मांन पंण विद्या पावै।
विद्या रूप करूप, जहां जाय तहां समावै।
विद्या नागर वेल सी, चतरां नरां रिझावंणी।
मीठी मिसरी खांड सी, कील्ह कहै मंन्य भांवणी॥-प्रति संख्या २०१।

वहां से वापस आने के बाद, जाम्भोजी से प्रभावित होकर इन्होंने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। प्रसिद्ध है कि ये और तेजोजी समवयस्क थे। दोनों ही सामौर शाखा के चारण और कमूंबी के रहने वाले थे। ये तो विद्याध्ययन-हेतु बनारस गए किन्तु तेजोजी ने अध्ययन घर पर ही किया। तेजोजी भी जाम्भोजी के शिष्य हुए और ये भी। कवि दोनों ही थे। इस दृष्टि से इनका बनारस जाकर विद्याध्ययन करना कोई काम नहीं आया। इस कारण इन पर 'थलियो कील्हो' (=कील्हो) कहावत प्रचलित हो गई जो पढे-लिखे, किन्तु व्यवहार और तत्त्व-ज्ञान शून्य व्यक्ति के लिए आज भी बहु-प्रचलित है। सुप्रसिद्ध कवि ऊदोजी नैण ने अपने एक कवित्त में इनका उल्लेख किया है :—

झंभ गरू दातार, तीन्य तेतीसां तारंण।
जांह जप्यौ विसंन को नांव, सार्‌या तांह मोटा कारंण।
किरिया कंमावो ताखरो, न्हांण ते अठसठ न्हायो।
ते लाधो धुरे होज, झंभ ने इक मन्य ध्यायो।

अठसठि तीरथ कांय भुवो, कील्ह गयो बांणारसी।
रतन कथा अर पार गिरांव, साभराय तुठा लाभसी ॥ ४६ ॥
-प्रति सख्या ४२ तथा २०१।

ऊदोजी के "छपइयी" की रचना सवत् १५८५ तक हो चुकी थी। इनके अध्ययन से पता चलता है कि इनम उल्लिखित व्यक्ति इस काल से पूर्व दिवगत हो चुके थे। इस कारण कील्हजी का स्वर्गवास काल सवत् १५८५ से पूर्व ही होना चाहिए। कवित्त का भूतकालिक प्रयोग भी इसी ओर सवेत करता है। अनुमानत इनका जीवनकाल सवत् १५०० से १५६० तक माना जा सकता है।

सम्प्रदाय मे आरम्भ से ही सर्वमान्य, प्रामाणिक साखियो मे इनका "बारामासो" भी एक है, जिससे इनका बिश्णोई मतानुयायी होना सिद्ध है। अनेक कवित्तो मे विष्णु-महिमा, विष्णु-नाम-स्मरण और स्वय के लिए "विसन भगत" आदि उल्लेखो से भी कवि का बिश्णोई होना ध्वनित होता है। इसके अतिरिक्त एक कवित्त जो आगे उद्धृत किया गया है, की "सुगणा सुरगे जायस्यै" पक्ति तो प्रकारान्तर से सबदवाणी (७३.४ तथा पाठान्तर) की ही है।

रचनाएँ.—कवि की निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं —

(१) बारामासो-४२ दोहे[1]। (२) फुटकर कवित्त-३३[2]।

"बारामासो" राग सिधु मे गेय है जिसमे, 'मेरै उमाहो चत्रभुज कान्ह रो, परबसियै रा घघळ ले स। कु वर कन्हइयो पुरि वसै" की टेक लगती है। लिपिकार ने "टेक" को एक छन्द मान कर, कुल छन्द सख्या ४१ दी है, जो २० वी सख्या के दो बार लिखे जाने के कारण ४२ होनी चाहिए। इसको दो भागो मे बाँटा जा सकता है। आदि के १२ छदो मे कृष्णावतार, उसका हेतु, गोपी-प्रेम, वियोग, स्मरण आदि का मार्मिक वर्णन है[3]। दूसरे म, सावन मे बारहमासा शरू होता है। प्रत्येक माह मे होने वाले विविध कार्य-कलापो को लक्ष्य कर प्राकृतिक परिवर्तन के परिपार्श्व म, गोपियाँ अपनी विरह-वेदना व्यक्त करती हैं जिसमे उनकी शारीरिक और मानसिक व्यथा मानो फूटी पडती है। एक दोहा यह है -

खडी उडीकूं पथ सीरि, नैणे मुंके नीर।
बह चीयापै हे सखी, छीजै सकळ सरीर ॥ २५ ॥

इसमे सावन पर चार, कातिक और जेठ पर तीन-तीन तथा शेष महीनों पर दो-दो छद हैं। अन्त मे आषाढ म कृष्ण का वापस आना दिखा कर गोपियो के हर्षोल्लास का

१-प्रति सख्या २०१, फ़ोलियो ४४-८१ पर "ग्र थ साषी" के अन्तर्गत।
२-वही-(क) "कील्हजी के कवित्त" के अन्तर्गत, २६ कवित्त, क्रमसख्या-८४-१०६ तथा
(ख) वही, फोलियो ५५१ पर १, ५४१-४३ पर ४ तथा १८८ पर २ कवित्त।
३-ऊ चै म ारै घण चरै, सरवर बोल्या हम।
गोपी करै वधावणा, जाणे कान्ह बजायो वस ॥ ८ ॥
इण गोवळ रै डाडिलै, लप आवै लप जाय।
एक न आयो कान्हजी, रह्यो दिसावर छाय ॥ ११ ॥

वर्णन किया गया है[1]। समस्त रचना में मरुदेशीय प्रकृति और राजस्थानी लोक-भावनाओं के सुन्दर चित्रण मिलते हैं। सावन पर दो छन्द देखे जा सकते हैं :—

सांवण मास्य सुहांवणों, जे घरि धीणौ होय।
धीणं वाज सुहांवणो, जे घरि कंन्हड़ होय॥ १२॥
घंण गरजै दांवणि लिवै, चात्रग मंने उदास।
सर छलिया सिळता वहै, मंनां न पूरी आस॥ १५॥

कवित्त :-कवित्तों में विष्णु-नाम-स्मरण, विद्या, दान, गुण-दोष, गुणी, गँवार, नमन, कड़वी-मीठी वस्तुएँ, स्त्री के गुण, पुण्य-पाप, अवसर, भाग्य-प्रबलता, ईश्वर की करनी, सांसारिक चतुराई की व्यर्थता, त्याज्य-कर्म, अफीम-वर्जन आदि आदि विषयों का वर्णन है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं :—

(१) कवि परस्पर विरोधी गुण, धर्म, भाव या वस्तुओं का पृथक्-पृथक् वर्णन करके पाठक को उदात्त गुणों की ओर आकृष्ट करता है। पाप-पुण्य, दान-कृपणता, कड़वी-मीठी वस्तुओं आदि पर लिखे गए कवित्त ऐसे ही हैं। इनमें उपदेश न देकर केवल दोनों के गुण-दोषों को सामने रख दिया जाता है। उदाहरणार्थ, गुणी और गँवार पर ये कवित्त देखे जा सकते हैं :—

सुगणां तो सदा सुरंग, रंग सुगणां मां दीसै।
सुगणां था इ कवै किया, सुगंण मनि इम्रत वसै।
सुगंण माय वाप का भगत, सुगंण परमारथ भावै।
सुगंण सदा सुपियार, सुगंण मनि वुरौ न आवै।
सुगंण न पूजें लछ सो, सुगंण मंन्य धीरज रहै।
सुगंणां सुरगे जायस्यें, यो नारांयंणजी कील्हो कहै॥ १॥
अड़क सदा आंटो रहै, अड़क ओगंण नंहि छाडै।
अड़क मुंहि कुवचंन कहै, अड़क आपो ही भोडै।
अड़क दहै पाड़ोसि, राड़ि अंणहूंती मांडै।
अड़क सदा उछदि वहै, अड़क चालै नंहि टांटै।
अड़काई आठूं पहरि, निस वासरि उळस्यो रहै।
अड़क न सिरजी देवजी, नारांयंणजी कील्हो कहै॥ २॥

(२) कतिपय कवित्तों में सीधे व्यवहार-ज्ञान और नीति कथन किया गया है, जैसे :—

किसो तया संणगार, नारि ज होय निलजी।
किसो तुरी को तेज, सहे, चांमठी वाजी।

१-आसाढे आसा घंणी, वंणी झिगारें मोर।
कील्ह कहै हरि आवियो, मुंणी जळहर की घोर॥ ३९॥
आंगणि वांहूं एळची, वरंडे नागर वेळ।
कान्हजी घरे पवारिया, म्हारा हिवड़ा कूंपळ मेल्ह॥ ४२॥

किसो पुरिष को बोल, बोल बोलियो न पाळै ।
किसो नदी को नीर, नीर सूकै उन्हाळै ।
निलज नारि माठो छुरो, सरळ ज थाह चूकणौ ।
तन मन रा ठोळ, पुरिष ज बाचा चूकणौ ॥

(३) कुछ कवित्तो मे कवि अत्यन्त यथार्थ सामाजिक–चित्रण के माध्यम से गुण–विशेष का कथन करता है। इसमे मूल उद्देश्य तो गुण–कथन ही रहता है, किन्तु उसके प्रकटीकरण मे अनायास ही यथार्थ–चित्रण प्रस्तुत हो जाता है। उदाहरणार्थ, यह कवित्त देखा जा सकता है —

बिण दीन्हां फळ एह, भील ज्यौं भुंवै भिखियारी ।
कांधै पाछै छाज, हाथ सिरि पगल बुहारी ।
तन छीनां बसत रधौ धिग, बोझ सिरि सहैं कपाळी ।
काया सदा कुचीळ, नीर नहीं देख पखाळी ।
पगे न जुडै पांणही वे रीण थासरि सायरि पडि रहैं ।
बिसंन भगत कीव्हो कहै, बिण दियां फळ ए लहैं ॥

(४) कुछ कवित्तो मे कवि किसी वस्तु, पात्र या गुण का वर्णन करता है जो दो प्रकार का है —एक तो वह जिसमे गुणों का ही वर्णन रहता है और दूसरे जिसमें गुण–अवगुण दोनो का। उदाहरणार्थ यह कवित्त देखिए :—

सवारी दातण करै, सीस कांगसी सुंवारै ।
अहरो चवै मजीठ, नेत ज्यां काजळ सारै ।
लांबी जिसी खिजूरि, राय आंगण ज सोहै ।
बोलै मधरो बाणि, बोलती सभा विरमोहै ।
सील कोळ संजम रहै, सभा देखि आंसै रहै ।
देह महेली मंन सवीं, नारांयण कील्हो कहै ॥

मूलत कवि विष्णु का परम भक्त है। विष्णु का नाम ही उसके लिए सबसे बडा सहारा है। वही उसका मूलधन है[१]। उसका दृढ विश्वास है कि पापों का शत्रु केवल मात्र विष्णु–नाम ही है। इस कवित्त मे अनेक उपमाओ के द्वारा कवि ने इस बात को स्पष्ट किया है :—

ज्यौं चद रिप राहु, रीण रिप सूर सवाई ।
कुंजर षंन को रिप, नीर रिप अगनि उपाई ।

१–मेरै साथ विसन को नांव, ब्याज बोहरू वधारूं ।
करूं दोढो दुंणी सवाई, चोगणो करू चौपारूं ।
सोभी मिपरण सारूय, भांव लैं करूं धहारूं ।
बीडा पान तबोळ, नेत उठि स्यौह सवारूं ।
ग्यानी तं गुण सिसटि, घरि आयो गाहक लहूं ।
किसन भगत कील्हो कहै, सामीजी पाप पुंन लेखो करूं ॥

पिनगां को रिप गुरड़, हेम रिप सुहागो होई।
पांणी को रिप पूंण, तेणि रिप मंगळ जोई।
कैरंव को रिप इंद-सुत, अेरापति कहरे भई।
पाप को रिप विसंन नांव, भणै कील्ह सिवरी सही ।।

एक कवित्त में दोष-निरीक्षण करता हुआ कवि अपने उद्धार के विषय में अत्यन्त अनुताप व्यक्त करता है। ऐसी आत्मपरक स्वीकारोक्ति तथा आत्म-दर्शन अन्यत्र कम कवित्तों में ही प्राप्य है :—

अजूं कया मां कोप, अजूं रीस मंनि आवै।
अजूं पांच वसि नहीं, अजूं मंन दोह दिस धावै।
अजूं भूख तिस घंणी, अजूं परतायत ईणां।
अजूं वाद अंहंकार, अजूं माया मंन लीणां।
एक जीव वैरी अता, कुसंग साथ घट सूं चलै।
कळी काळ कील्हो कहै, किसंन किसी परि म्हां मिलै ?

इहलोक और परलोक-दोनों सुधारने के लिए कवि ने विष्णु-नाम-स्मरण और 'धर्म करना' ही सार माना है, उसकी समस्त भावधारा का निचोड़ यही है :—

रतंन विसंन को नांव, दुलंभ संसारि उदाधो।
विसंन नांध वाखांणि, हेत करि काया साधो।
पुंन होणां न लहंत, लहैं ते ताळा खोया।
ते पापी जाचंत, सदा पाप मंन मोह्या।
रतंन विसंन को नाव है, पायो तां माथै क्रम।
किसंन भगत कील्हो कहै, सेई धंग्य से करै ध्रम ।।

कवि की कतिपय उपमाओं में तो युग-युगीन राजस्थानी लोक-जीवन की झाँकी दिखाई देती है :—

नारद जोतिग वांचिया, सांसै पड़्यी सरीर।
आंसू नाखै मोर ज्यों, नीणे झुरवै नीर ।। ७ ।।—वारहमासा।

कील्हजी की प्राप्त रचनाओं में १६ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के राजस्थानी समाज, उसकी मान्यता, विश्वास और बोलचाल की भाषा के दर्शन होते हैं।

७. सुरजनजी : (अनुमानतः विक्रम संवत् १५००-१५७०) :

सुरजनजी नाम के तीन व्यक्ति हुए हैं :-(१) पहले सुरजनजी भावुक भक्त, हुजूरी कवि और सम्भवतः ब्राह्मण थे। साम्प्रदायिक प्रसिद्धि के अनुसार इनका समय उपर्युक्त अनुमित है। ये 'गीतों' के विशेष कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु एक साखी के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं।

(२) दूसरे मूजोजी (अपरनाम सुरजनजी) भी हुजूरी विरक्त साधु थे। इनका समय भी लगभग वही है जो पहले सुरजनजी का है। ये परम तपस्वी माने जाते हैं। ऐसे ही दूसरे तपस्वी हैं- ऊदोजी, जिनको साधारणतः ऊदोजी तापस कहा जाता है।

(३) तीसरे सुरजनजी भीयासर गांव के पूनिया, वील्होजी के शिष्य और केसोजी गोदारा के गुरु भाई थे। इनका स्वर्गवास संवत् १७४८ में हुआ था। इनके एक सुप्रसिद्ध डिंगळ गीत में उपर्युक्त दोनों सुरजनो का उल्लेख मिलता है (-द्रष्टव्य-सुरजनजी पूनिया)।

पहले सुरजनजी की "राग सुवह" में गेय "कगा की" १३ पंक्तियों की एक साखी मिलती है (-प्रति संख्या ६८ (त) तथा २०१)। यह "जम्मे" की चौथी साखी है। इसमें गुरु भाइयों को "आठ धरम" और "गुर फुरमाणी" पालन करने, "जम्मे" में आने, वहां सत्संग करने, विष्णु-नाम जपने का अनुरोध तथा जाम्भोजी की महिमा गान है। इसके मूल में आवागमन से छुटकारा दिलाने हेतु सरल उपाय बताने का प्रयास कवि ने किया है। साम्प्रदायिक मान्यता है कि जाम्भोजी "जोत" के रूप में सदा-सर्वदा सर्वत्र विद्यमान हैं। इस साखी में इसका संकेत भी है। परम्परा और प्राचीनता की दृष्टि से भी इस साखी का महत्त्व है। साखी यह है :-

जंमें आवौ गुर भाइयो, सुपही करो ज काय ॥१॥
ग्यांन सरवणे संभळो, सबद सुंणो हित लाय ॥२॥
गुर फुरमाई सा करो, कुपही करो म काय ॥३॥
दान दया जरणां जुगति, सतव्रत सील सभाय ॥४॥
आठ धरम नवधा भगति, साध सेव सत भाय ॥५॥
आचारे ब्रंभा सही, जोग ज ध्यांन दिढाय ॥६॥
आन तजौ विसन भजो, पाप रसातळि जाय ॥७॥
जिण ओ जीव सिरिजियौ, सो सतगुर सुर राय ॥८॥
जुगा जुगा जोवै जको, अवगति अकल ज थाय ॥९॥
मात पिता जाके नहीं, पख परवार न थाय ॥१०॥
जोति सरूपो जग मई, सरवे रह्यौ समाय ॥११॥
अटल इसग एक जोति है, ना काहीं आव न जाय ॥१२॥
जन सुरिजन वा परसिया, आवागवण न थाय ॥१३॥४॥

—प्रति संख्या २०१ से।

८. सिवदास : (अनुमानत विक्रम संवत् १५००-१५७०) :

इनकी गणना आरम्भिक हुजूरी कवियों में है।

राग "सुहव" में गेय २० पंक्तियों की इनकी एक "कगा की" साखी मिलती है[1]।

१-प्रति संख्या (क) ६८ (त), (ख) ७६ (ढ), (ग) ९४, (घ) १४१, (ङ) १४२, (च) १६१, (छ) २०१, (ज) २०८ (ढ), (झ) २१५। उदाहरण (छ) प्रति से है।

इसमें मानव-जीवन को उसकी समग्रता में विहंगम दृष्टि से देखा गया है। गर्भवास से लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य की विभिन्न दशाओं, सांसारिक-कार्यों, माया, मोह, भोग में आसक्ति, नाते-रिश्तों की असारता तथा काल की प्रबलता का उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

सइयां जुग दातार, पांणी सूं पिंड करणां ॥१॥
गरभ रह्यो दस मास, दूभर दिन छलणां ॥२॥
नुंवंण नुंवें तदि जीव, सांई तो सरणां ॥३॥
सइयां वाहरि काढि, दस वंद तो करणां ॥४॥
ज्यों पूगा दस मास, वाळक अवतरणां ॥५॥
लागी फळु फो वाव, वै दिन वीसरणां ॥६॥
अरथ गरथ घंन माल, दीजै घर सरणां ॥७॥
रूड़ी राज कंवारि, इधकां आभरणां ॥८॥
सोवंण सेझ सुख वास, पाटू पायरणां ॥९॥
ज्यों पूगी जंम डांग, गाफिल थरहरणां ॥११॥
मात पिता सुत नारि, वंधव च्यारि जंणां ॥१५॥
कियो पिछोकड़ वास, ले गया वीझवंणां ॥१६॥
आपे मरणां होय, औरां कूं क्या झुरणां ॥१७॥
कोयल करै किळाव, वैठी अंव वंणां ॥१८॥
वोलै मधरा वेंण, दुखियां नै दुख घंणां ॥१९॥
सति वोलै सिवदास, हाजरि हक मरणां ॥२०॥

कवि का मूल मन्तव्य है- आत्मदर्शन कराना, जिसका प्रभाव शनैः शनैः पड़ता हुआ अन्त में घनीभूत होता है। जीवन के प्रमुख पहलुओं का यह वर्णन, सारगर्भित और भावपूर्ण है। साखी की महत्ता इसी से सिद्ध है कि विष्णोई साधुओं के अन्त्येष्टि संस्कार के समय यह गाई जाती है।

९. एकजी : (अनुमानतः विक्रम संवत् १५००-१५७०) :

ये आरम्भिक हजूरी कवियों में से हैं। हीरानंद के 'हिंडोलणो' में अन्य विष्णोई भक्तों के साथ इनका नामोल्लेख है।

"छंदां की" साखियों के अन्तर्गत राग "गवड़ी" में गेय इनकी ४ छन्दों की यह साखी मिलती है (प्रति संख्या २०१ में):—

कंता मैं दासि तुम्हारी थी, सीख दियो स सुंणीजै।
कर जोड़ै कांमंणि कहै, पर नारी नेह न कीजै जी।

इसमें एक स्त्री की अपने पति से पर नारी से प्रीति न करने की 'सीख' है। अनेक प्रकार से वह उसको समझाती है। कौरवों और कीचक का उदाहरण देकर वह इसके

दुष्परिणामों की ओर ध्यान दिलाती हुई उनको इससे विरत करना चाहती है। उदाहरणार्थ अन्तिम दो छन्द द्रष्टव्य हैं –

प्राहुणडा घर नां र थसं, न को रोठो न सांभळ्यो।
देखो म्हारा क्ता कंरव खय गया, कीचक भीवड निरदल्यो।
निरदल्यो कीचक भीव पाडव, प्रीति पर नारी तणी।
विसन बोगुला घणा रोठा, जोयलं का पनि घणी।
एक सुख थोडा दुख बोह्ळा, देखि दुरिजण मन्न हसं।
परनारि परहरि आव प्यारे, प्राहुणां घर नां थसं ॥ ३ ॥
दइयां दोस न दीजियं करिसो जसडो पावं।
सतांनि चडं सिर उपरं, सुबधि न कांई आवं।
सुबधि न आवं कुबधि कुंमावं, बत सुख एकारंवो।
पर नारि केरो सग इसडो नित छनोटर बारसू।
एक भणं कविता सुणो लोई, कुसग सग न कीजियं।
पर नारि परहरि आव प्यारे, देव दोस न दीजियं ॥ ४ ॥

साखी में प्रयुक्त "हुवं भोजस भनि पणो," "जीव पर हथि वेचणो", "प्राहुणा घर ना वसं", "देव दोस न दीजियं" आदि उक्तियाँ लोक प्रचलित हैं। पूरी साखी में एक ही विषय का अनेक प्रकार से उल्लेख होने से इसका समग्रता में प्रभाव बहुत अच्छा पड़ता है। हजूरी कवियों में इस विषय पर लिखी गई यही एकमात्र साखी है।

१० अलियादीन . (अनुमानतः विक्रम संवत् १५००-१५७०)

प्रसिद्ध है कि ये नागौर के गृहस्थ मुसलमान और जाम्भोजी की सिद्धियों से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने थे।

इनकी १४ पंक्तियों की एक "करणी की" साखी मिलती है,[१] जिसमें धर्म-प्रेम, दान, गुण-ग्रहण, सुकृत करने, अवगुण, लोकाडम्बर और दुष्कर्म त्यागने, संसार की अनित्यता और मृत्यु की प्रबलता का उल्लेख करते हुए स्वयं को पहचानने की चेतावनी दी गई है।

लोक-व्यवहार और दिखावे सम्बन्धी उक्तियाँ तो बहुत ही सुन्दर और यथार्थ हैं। इनसे कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-दृष्टि का पता चलता है। रचना में ठेठ बोलचाल के शब्दों का प्रयोग है। साखी नीचे दी जाती है :—

दीन मीठो मेवौ, लुग करि देखो खारो ॥ १ ॥
ग्यांन इम्रत मेवौ, मोमिणां नै दीन पियारो ॥ २ ॥
कूड चोरी झगडो, कहर करोध निवारो ॥ ३ ॥
रतो नि दाणी सोणां, वादो अर अहकारो ॥ ४ ॥

१-प्रति सख्या-(क) १४१, (ख) १५२, (ग) २०१, (घ) २६३।

छाटी मंडप मंड़ियां, आयो जुंवर हकारो ॥ ५ ॥
दूजा रहंण नै लहिसी, यों ही गयो संसारो ॥ ६ ॥
अह वागर वाड़ी, कांय हरियावा चारो ? ॥ ७ ॥
हरियाव अकेलो, मोमिणां नै कां पछेयारो ॥ ८ ॥
दूजा कथ मानूं, हकीकथ कांय निवारो ॥ ९ ॥
रंग पाह उतरि गयो, दुनियां रच्यो पसारो ॥ १० ॥
पोह अळगो मेल्ह्यो, वीच करि भयो अंधियारो ॥११॥
से तो वांसै रहिया, जांको तर्क छो लारो । १२ ॥
से तो पारि पहुंता, जांह को न ये उभारो ॥ १३ ॥
दीन अंमियां वोल, उरि नै राखी देई पारो ॥ १४ ॥
–प्रति संख्या २०१ में ।

११. जोधो रायक : (अनुमानतः विक्रम संवत् १५००–१५७०) :

प्रसिद्ध है कि अवस्था में ये जाम्भोजी से बड़े और उनके जैसलमेर पधारने के पूर्व ही स्वर्गवासी हो चुके थे। साखी की "हम वासो वसियो खाल्यक कै दरवारि" (पंक्ति ३) तथा अंतिम पंक्ति से भी यह स्पष्ट है। अनुमानतः इनका समय लगभग संवत् १५०० से १५७० है। ऊंट पालने वाले को रायक, रायका या रैवारी कहते हैं। यह जाति अपेक्षाकृत निम्न-श्रेणी की मानी जाती रही है। इसमें मारु और चळकिया दो भेद हैं। मारू का व्यवसाय केवल ऊंट पालना है और चळकियों का ऊंटों के साथ साथ भेड़-बकरियां भी। इनकी स्त्रियां पीतल के विशेष आभूषण धारण करती हैं, इस कारण ये पीतळिया नाम से भी प्रसिद्ध हैं[1]। जाम्भोजी ने अनेक आचार-विचार और धर्म-कर्महीन ऊंच-नीच जातियों के लोगों को विष्णोई सम्प्रदाय में प्रविष्ट कर पवित्र किया था। रायके भी उन्हीं में से थे। जोधोजी इसी जाति के रत्न थे। सुप्रसिद्ध कवि केसोंजी गोदारा ने राग धनाश्री में गेय अपनी एक "छन्दां की" साखी (आप लियो अवतार सांम्य संभरथळि आवियो) में जाम्भोजी द्वारा अनेक लोगों के राह पर लाए जाने का वर्णन करते हुए रायकों का भी उल्लेख किया है। सबदवाणी के प्रसंगों में रायकों का और कवि ऊदो कृत कथा अहमंनी में रैवारियों तथा उनकी सां'ढों (ऊंटनियों) का वर्णन है।

"राग हंसो" में गेय इनकी १७ पंक्तियों की "करणां की" साखी मिलती है[2]। इसमें 'जुमले' में जाने, साधु-संगति करने, मानव-देह की नश्वरता, संसार में रत न रह कर सार-वस्तु संग्रह, और तत्त्व प्राप्ति-हेतु सतत प्रयास करने का बहुत ही भाव-भरा वर्णन और अनुरोध किया गया है। सार ग्रहण करने के संदर्भ में करण, विदुर, हरिश्चंद्र, पाण्डव और

१–श्री बजरंगलाल लोहिया : राजस्थान की जातियं, पृ० १९५, संवत् २०११, कलकत्ता ।–
२–प्रति संख्या (क) १५२; (ख) २०१; (ग) २१५; (घ) २६३। उदाहरण (ख) प्रति से है।

कुन्ती का भी उल्लेख है। सबदवाणी मे इनका उल्लेख होने से जाम्भाणी कवियो का यह प्रिय विषय रहा है।

साखी की शब्दावली चुनी हुई और घरेलू है, उसके भाव सहज ही ग्राह्य हैं। कवि की उपमाएँ तो विशेष रूप से दर्शनीय हैं। ये मरु-लोक का जीवन्त वातावरण चित्रित करने मे सक्षम हैं। राजस्थानी गेय-पद परम्परा मे ऐसी रचनाएँ एक नगीने की भाति अपना प्रकाश बिखेरती प्रतीत होती हैं। उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

मोमिण आवै लाहो जी, करि कुंजां नेहो डार ॥ ५ ॥
मोमिण मिलै लाहो जी, लांबी लांबी बांह पसारि ॥ ६ ॥
मोमिण बैसे लाहो जी, हंसां की उणहारि ॥ ७ ॥
मोमिण बोलै लाहो जी, करि मोरां क्यों झगार ॥ ८ ॥
भुंय लाधी छैं हो जी, वै कण ल्योह नोपाय ॥ ९ ॥
कण लुंणि चुंण्य लीजै जी, राचि न रहो ससारि ॥ १० ॥
दहि विरख पडंलो जी, धरण्य सहै भुंय भारि ॥ १५ ॥
जमला जागै लाहोजी, कांसो के झणकारि ॥ १६ ॥
जोधो रायक बोलै जी, कलि दसवैं अवतारि ॥ १७ ॥

१२. केसोजी देड़ : (विक्रम संवत् १५००-१५८०) :

सम्प्रदाय मे केसोजी नाम के चार प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं¹—प्रथम केसोजी देड़। ये गाव सम्बूडे (तहसील नोखा, बीकानेर) के निवासी हजूरी कवि थे। आयु मे ये जाम्भोजी से बड़े और तेजोजी चारण के कुछ वर्षों बाद स्वर्गवासी हुए माने जाते हैं, अत. इनका समय उपर्युक्त अनुमित है। दूसरे, केसोजी गोदारा, जो माडिया गाव (तहसील नोखा) के और वील्होजी के शिष्य थे। इनका स्वर्गवास सवत् १७३६ मे हुआ था। तीसरे वे केसोजी जो गाव रोटू मे भादुओ के घर रहते थे और जहा उनका खाडा अब भी मौजूद है। प्रसिद्ध है कि उनको यह खाडा जाम्भोजी ने प्रदान किया था। लोगो द्वारा निन्दा किए जाने पर भादुओ ने बेटी का विवाह उनसे कर दिया। उनके वैकुण्ठवास के पश्चात् वह खाडा रोटू मे भादुओ के घर मे ही रहा। वर्तमान मे वह वहा के विश्नोई मदिर मे मौजूद है। इनका समय अनुमानत: सवत् १५०० से १५८० है। चौथे-'मगलाष्टक' वाले केसोजी।

उल्लिखित प्रथम केसोजी देड़ की एक साखी मिलती है¹ जो "जम्मे" की तीसरी साखी है। इनका महत्व इसी से प्रकट है। यह राग सुहव मे गेय १४ पंक्तियों की "कर्णा की" साखी है। इसमे भीतर के विकार त्याग कर "जुमलै" मे आने, सृजनहार के जप करने, जाम्भोजी और "सतपथ" की महिमा, शनैः शनैः आती हुई मृत्यु और उसकी अनिवार्यता तथा समय रहते सुकृत करके मोक्ष के अधिकारी बनने का प्रभावशाली वर्णन किया गया

१-प्रति सख्या ६८ (ख), ७६ (ढ), ६४, १४२, १४३; १५२; १९१, २०१, ३३४।

है। गेय पद-परम्परा में झुम्मे की तथा अन्य साखियों की भांति, यह साखी भी एक कड़ी के रूप में अपना वैशिष्ट्य रखती है। साखी यह है :—

आवी मिलीं जंमलै जुलो, सिवरो सिरजंणहार ॥ १ ॥
सतगुर सतपंथ चालव्यो, खरतर खंडा धार ॥ २ ॥
झांभेसर जिभिया जपो, भीतरि छोड़ विकार ॥ ३ ॥
सांपति सिरजणहार की, विध सूं करो विचार ॥ ४ ॥
अवसरि ढील न कीजियै, वळे न लहिस्यो वार ॥ ५ ॥
जंम राजा वांसै वहै, तळवी कियो तयार ॥ ६ ॥
चहरी वसत न चाखियै, उरि परहरि इहंकार ॥ ७ ॥
वाड़ हुंता वीछड्या, जांरी सतगुर करिसी सार ॥ ८ ॥
सेरो सिवरंण प्राणियां, अंतरि वड़ो अधार ॥ ९ ॥
पर नंद्या पापां सिरै, नूलि उठावो भार ॥ १० ॥
परळै होयस्यैं पाप ता, मूरिख सहिस्यै मार ॥ ११ ॥
पाछै ही पछतायस्यों, पापां तंणो पहार ॥ १२ ॥
औगंणगारो आदमी, इळा रहै उरवार ॥ १३ ॥
केसो कहै करणी करो, पावो मोख दवार ॥ १४ ॥—प्रति संख्या २०१ से।

१३. लालचन्द नाई : (अनुमानतः विक्रम संवत् १५००–१५८०) :

ये हुजूरी कवि और बीकानेर रियासत के किसी गांव के नाई थे। "लूर" में इनका नाम दूसरा है। इससे इनकी प्रसिद्धि के साथ इस बात का भी पता चलता है कि आरम्भ में ये अन्य मतावलम्बी थे किन्तु बाद में जाम्भोजी की महिमा से प्रभावित होकर विष्णोई सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे।

"छन्दां की" साखियों के अन्तर्गत इनकी राग गवड़ी में गेय ४ छन्दों की एक साखी मिलती है[1]। कहा जाता है किसी विख्यात ज्योतिषी को लोगों का भविष्य बताते देख कर जाम्भोजी की विद्यमानता में ही कवि ने यह साखी कही थी।

इसमें मृत्यु की अनिवार्यता, प्रबलता, मृत्योपरान्त देह की स्थिति और यमराज के सम्मुख जीवात्मा के पश्चात्ताप—चार दशाओं का उत्तरोत्तर घनीभूत होता हुआ प्रभावशाली चित्रण किया गया है। रचना में एक चेतावनी है जो पाठक को सदैव जागरूक रहने की प्रेरणा देती है, अतः इसका प्रभाव स्थायी और बोधक है। जीवन को ऊँचा उठाने और उदात्त-गुणों की ओर उन्मुख करने में ऐसी रचनाओं का विशेष महत्त्व है। यह बोलचाल की मरुभाषा में है, जिसमें चुने हुए दैनंदिन शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ दो छन्द द्रष्टव्य हैं :—

१–प्रति संख्या ७६ (ढ); ६४; १४१; १४२; १६१; २०१; २६३; २८९। उदाहरण प्रति संख्या २०१ से।

सो दिन लिखि दे रे जोयसी, हसराय करै पयाणों।
घणो इधक निवारियै, सब जुग होय विडाणों।
सब जुग विडाणों मन पछताणों, विसनो विसन धियाइयै।
पुंन मारग धरम किरिया, दिया होय स पाइयै।
सुकरत पाखो लाछ लिछमी, साथ कछु न होयसी।
जा दिन हसराय करै पयाणों, सो दिन लिखि दे रे जोयसी ॥ १ ॥
नख चख ता (जदि) जीव निसरै, ता दिन को डर भारो।
न जांणों केह गुनि रो सण, छोडि चल्यो कुढि प्यारो।
छोडि कुढि जदि हस चाल्यो, हेत कुरमति सब गई।
नित वारि घदण खोलि करतो, छिनक मां गंरी भई।
परहरी माया लाछ लिछमी, पूत प्रीतम नारियां।
नख चख ता जदि जीव निस्सै, ता दिन को डर भारियां ॥ २ ॥

१४. कान्होजी बारहट : (सवत् १५००–१५८०)

ये रोहडिया शाखा के बारहट रायडाल (जोधपुर) के चाहडजी के पुत्र थे। चाहडजी ने बीकानेर राज्य की स्थापना मे राव बीकोजी को महत्त्वपूर्ण योग दिया बताते हैं। इसके उपलक्ष्य मे रावजी ने इनको कुडिया एव चाहडवास सहित १२ गावों की ताजीम दी तथा बीकानेर का "पोळपात" बारहट बनाया था। इस विषय का एक कवित्त[1] बहुत प्रसिद्ध है, जिसमे १२ गावो की ताजीम का उल्लेख है। चाहडजी से रोहडिया चारणो की चाहडोत शाखा चली। कुडिये मे ही सवत् १५०० के लगभग कान्होजी का जन्म हुआ। ये राव बीकोजी और राव लूणकरणजी के समकालीन थे। प्रसिद्ध है कि राव लूणकरणजी को जाम्भोजी की ओर आकृष्ट इन्होंने ही किया था। इनका स्वर्गवास सवत् १५८० के आसपास हुआ माना जा सकता है, यद्यपि इस आशय का लोक-प्रसिद्धि के अतिरिक्त और कोई ठोस प्रमाण हमे उपलब्ध नही हो सका है। इनके बडे भाई भीमजी के नाम पर उल्लिखित गावो मे एक का नाम भीयासर पडा। भीमजी ही अपने पिता के स्वर्गवास के पश्चात् बीकानेर के 'पोळपात' हुए। कुडिये मे एक पुराना देवी का मन्दिर है, जिसमें एक छोटी सी 'माताजी' की मूर्ति रखी हुई है। कहा जाता है कि यह मन्दिर इन्ही भीमजी बारहट ने बनवाया था। कान्होजी पुत्र विहीन थे, इस कारण इनका वंश नहीं चला, कुडिये के रोह-

१–समप गाव सीगडी[1], दुम्रो नैणासर[2] दाखूं।
ग्रापरसर[3] खडतवास,[4] भलो भीयासर[5] भाखूं।
गोमटियो[6] गिळगटो,[7] मज्भ मळवास,[8] मिहेरी[9]।
चाळेरी रो वास,[10] धरा दस सहस धिनेरी[11]।
सासण गाव बारा सहत, मुज्भ थळी सिर मंडियो।
सुदतार बीक जोधै सुतन, खतरी समप्यो खुडियो[12]।

ड़ियों में यही प्रसिद्ध है। चाहड़जी से लेकर भींवजी से निसृत इस शाखा का वंशवृक्ष भी मिलता है[1]।

जम्भसार (प्रति संख्या १९३, प्रकरण १४, पत्र ५४–५५) में साहबरामजी ने भी कान्होजी का उल्लेख किया है। उनके अनुसार, कान्होजी की राज्य में मान्यता थी, धन-सम्पत्ति और पशु-धन की उनके कोई कमी नहीं थी, किन्तु पुत्र न होने से उदास रहते थे। इस हेतु उन्होंने आठ वर्ष तक अनेक प्रकार के प्रयास किए किन्तु सफल मनोरथ नहीं हुए। एक दिन वे अल्लूजी के पास गए और उनके पूछने पर बोले कि पुत्र-विहीन होने के कारण मैं तो गृहस्थ त्यागकर वनचारी होऊंगा। अल्लूजी के कहने पर इन्होंने "जंभसागर" का जल अपनी स्त्री को पिलाया। वह गर्भवती हुई और यथासमय उनके पुत्र हुआ। पुत्र के विवाह के अवसर पर इन्होंने अपने यहां जाम्भोजी को निमंत्रण देकर बुलाया और वे साथरियों सहित पधारे। अल्लूजी भी तब वहीं थे। दोनों ने जाम्भोजी की अभ्यर्थना की।

इससे कान्होजी की मान्यता और आर्थिक सम्पन्नता, उनके बड़ी आयु में पुत्र और अल्लूजी के समकालीन होने का पता चलता है। जहां तक पुत्र होने का प्रश्न है, खुडिये के रोहड़िया चारणों में प्रचलित बात ही अधिक संगत प्रतीत होती है। जो भी हो, यह निश्चित है कि कान्होजी का वंश उनके पश्चात् आगे नहीं चला।

इन्होंने जाम्भोजी का शिष्यत्व कब स्वीकार किया, इसका निश्चित पता नहीं चलता, किन्तु अनुमानतः यह समय संवत् १५४५ के लगभग माना जा सकता है। गुरु-महिमा वर्णन करते हुए कवि ने अपने "सतगुर संभराधंणी" जाम्भोजी का उल्लेख इस प्रकार किया है:-

सतगुर कहि संमझावियो, सतगुर कहै स साच।
ध्यावे सरस संभराधंणी, वचंन अवचळ वाच ॥ ९ ॥ –प्रति संख्या २०१ से।
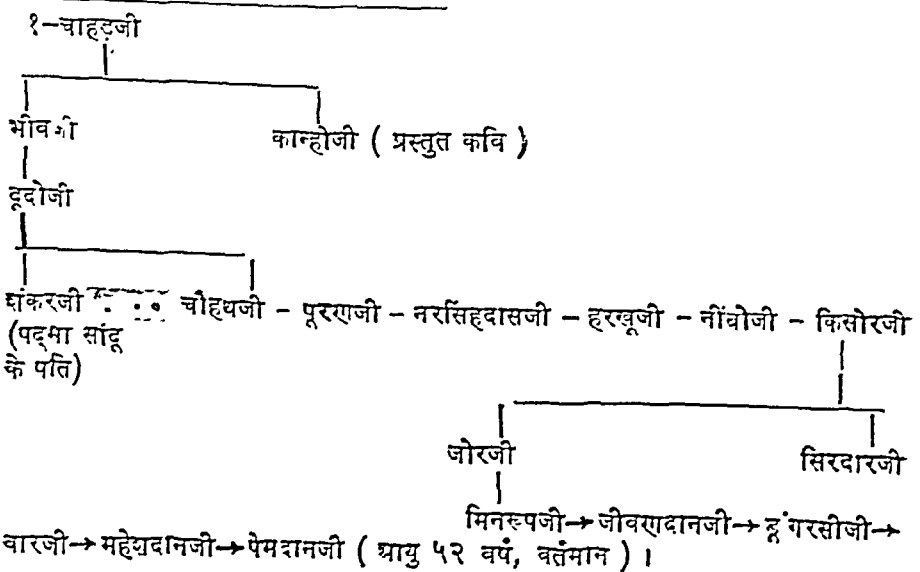
यही नहीं, जाम्भोजी पर लिखा हुआ कवि का एक "जागडो" गीत जो आगे दिया गया है, बहुत ही प्रसिद्ध है।

सम्प्रदाय मे मान्य "२४ की धूर" मे इनका नाम १७ वा है। अज्ञात कवि कृत "भक्तमाळ", हीरानन्द के 'हिंडोळणो" और हरिनद के "हरजस" मे अन्य बिष्णोई भक्तों के साथ कान्होजी का नामोल्लेख है। सुरजनजी ने "कथा परसिध" मे जाम्भोजी की शरण मे आने वालों मे तेजोजी के साथ इनका नाम भी लिया है :-

कथळास वास होमत काया, प्रचे दोय अभ अवमांण पाया।
लहै साच वाचा कमाई, तेजदे अद कान्हो त काई ॥११६॥ -प्रति संख्या २०१ से।

लोकमानस मे ये शान्त प्रकृति के पहुचे हुए सिद्ध कवि के रूप मे मान्य हैं।

रचनाएं : इनकी निम्नलिखित फुटकर रचनाएँ प्राप्त हुई हैं :—

(१) बावनो (तितीसो)-४५ छन्द (११ दोहे, ३३ छन्द, १ कवित्त)-(प्रति सं० २०१ म)।
(२) फुटकर छन्द -(क) जांगडो गीत-१ (प्रति संख्या ४८, २०१, २२७ (घ)।
(ख) कवित्त-३[1]।
(ग) हरजस-१ -(प्रति संख्या २२७(म) में)।

"बावनी" की छन्द संख्या लिपिकार परमानन्दजी वणियाळ ने अन्तिम दोहे पर ५४ लिखी है जो ४५ होनी चाहिए। यद्यपि रचना का शीर्षक नही दिया गया है, तथापि आरम्भ के दोहों और अन्तिम कवित्त से स्पष्ट होता है कि कवि "बावनी" ही लिख रहा है। लिपिकार ने भी इसके अन्त मे "बावनी सपुरण समापत" लिख कर इसकी पुष्टि की है। इसके प्रथम दस दोहो मे गुरुमहिमा वर्णन करते हुए कवि अपने सतगुरु जाम्भोजी को श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है। उसका विश्वास है कि भक्ति-भेद और ज्ञान-प्राप्ति, दोनों गुरु-कृपा से ही सम्भव हैं। गुरु के "आखर" और 'सबद" सुनकर ही ज्ञान-प्रकाश होता है[2]। सारी विद्या बावन अक्षरों मे है, किन्तु इनका रहस्य जानना बहुत कठिन है। लोग तो वाराणसी और अन्यान्य स्थानों में इसके लिए जाते हैं किन्तु कवि को तो घर बैठे ही "विद्या-धणी" (जाम्भोजी) मिल गए हैं[3]। पश्चात कवि "क" से "बावनी" आरम्भ करता है। इसमे

१-दो कवित्त मुखश्रुति से सकलित तथा १ प्रति संख्या २०१ मे सुरजनजी के कवित्तो के अन्तर्गत २७६ वीं संख्या का कवित्त, प्रति संख्या ८१ और १२१ मे यह ३०१ वा छन्द है।

२-क्ता प्रणउं गुण कहू, दया करी गुर देव।
गुर प्रसादे गम हुई, भगति करण रो भेव ॥ १ ॥
गुर गम ग्यान प्रगासियो, गुर बीणि ग्यान न थाय।
गुर आपर गुर सबद अह्यो, गोव्यंद का गुण गाय ॥ २ ॥

३-बावन आपर भेद वोह, पावन कियो पढाय।
तेणि गुर उपरि वारि तन, प्रणवे लगू पाय ॥ ४ ॥
वरस बोहत वाणारसी, और पढै अनेक।
धरि मिळियो विदिया धणी, आण दियो गुर एक ॥ ६ ॥

सांसारिक माया-जाल, नश्वरता, चित्त की एकाग्रता, पाखण्ड और क्रोध-त्याग, हरि-भजन, सत्संग, दान, गुरु-ज्ञान-ग्रहण, सत्कार्य तथा आयु घटने की चेतावनी आदि-आदि विषयों का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। रचना में स्पष्ट ही दो प्रकार के विषय वर्णित हैं—गुरु-कृपा से विद्या के सार–बावन अक्षरों का रहस्य समझना तथा उस रहस्य को इन अक्षरों के माध्यम से व्यक्त करना। "बावनी" में ३३ छन्द हैं, और प्रत्येक छंद की तीन पंक्तियों के पश्चात् चौथी पंक्ति **"भंणि भंणि भगवंत भंणि भंणि बुधर, बांवंन अखर बूझि गुरू"** टेक रूप में आती है। उदाहरणस्वरूप "अ" "च" और "म" से संबंधित छन्द देखे जा सकते हैं[1]। "बावनी" राजस्थानी साहित्य का एक सशक्त काव्य-रूप है और इस परम्परा में प्रस्तुत रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

फुटकर छन्दों में जांगड़ो गीत ७ दोहलों का है जिसमें अनेक प्रकार से जम्भ-महिमा वर्णित है[2]। अपने आराध्य के गुणगान संबंधी डिंगल गीतों में इसका अपना वैशिष्ट्य है।

कवि के निम्नलिखित दो कवित्त तो अत्यन्त ही लोकप्रिय हैं और यथावसर कहावतों की तरह कहे जाते हैं। कवि ने व्यावहारिक ज्ञान और दैनंदिन प्रयोग की वस्तुओं के माध्यम से प्रथम कवित्त में भगवान की सर्व-समर्थता और दूसरे में राम-नाम माहात्म्य का वखान किया है।

१–अआ आव घटै मरंण दिन आवै, अवथा जंनम हुवै अपणो।
आया तजि आप तंणों करि अवगंण, अंनंत तंणां गुंण अवचरणों।
अभ अंतरि सिवर अहोनिस अवगति, एण उपाय बोहत अंतरं ॥ ३० ॥ भणि०।
चचा से चतर कहीजे चारंण, चत्रभुज कीरति उचरणां।
चंचळाई छाडि अवर नंहि चाहैं, चेत चंमटावै हरि चरणो।
चेत दुंण पहर चवतां चीत्रवतां, चित मां साथ नं को चहरं ॥ भंणि ॥ ६ ॥
मंमां ग्रह मूळ मूळ मत मेल्है, माहवो नांव स महमहणो।
मंमता तजि मोह मांण तज्य नंधा, माया मेल्हि असती मरणां।
मंन सिवरंण जोति अंधेरो मिटिमी, मंनसा देह तणां मधरं ॥ भंणि ॥ २५ ॥

२–नर निरहारी भंभ निकळंकी, अंनंत अंनंत गुर एक अछै।
पंणमियां जके नर पारि पहुंचिसी, पांत्रीयळ नर रोयसी पछै ॥ १ ॥
एरुळवाड़ थळ सिर ऊभो, केवळ ग्यांन कथै करतार।
सुरग देवंण आयो सुत्रियारां, विसंन जपौ दसवैं अवतारि ॥ २ ॥
त्रिपा नींद पुच्या तिम नाहीं, जोवो भगती आळीगार।
आदि वीसंन संभरथळ आयौ, लंक तंणों गढ़ लेवंणहार ॥ ३ ॥
पेड़चा वंदर रीछ हकीकय, पथरे जळ क जीपाजा।
अगन पुच्या तिस नींद नै गंज्यौ, रांवण सुव्य रोड़वंण राजा ॥ ४ ॥
रोड़विया राकस दत महा रिण, कौन लहै करतार कळे।
त्रकट फोट नै तेथ कंणि सीता, वाळी सो आवियौ वळे ॥ ५ ॥
आई लहरि संमंद री लोकां वूठो छै ते वाहो।
वारो वारि न लभिसी प्रांणी, रतन कया रो दावो ॥ ६ ॥
कान्हो कहै सुंणो कांने कथ, अवगति गुर मांहरो अछै।
वीकांण देस विसंनजी विगतो*, परंम गुर परसियां पार पछै ॥ ७ ॥–प्रति सं० ४८ से।

* प्रति संख्या २०१ से। प्रति संख्या ४८ में इस शब्द के स्थान पर "परगट" पाठ है जो "वयणसगाई" की दृष्टि से ठीक नहीं है।

(१) जाचक रो कहा जांच, जांच राजा जुगपत्ती।
दीन्हे रो कहा देत, आप नहीं होत त्रिपत्ती।
सुरपर नरपत साह, राव राजा 'र भिखारी।
लख चौरासी जीव, एक दातार मुरारी।
जांचै तो जांच जरणारजन, वेद पुराणां वांचियै।
कान्हिया जांच किरतार नै, जाचक रो कहा जांचियै ? ॥ १ ॥

(२) आमो काट अजांण, खेत बम्बूळ जमाये।
सोवन कुस घास, खेत कोद्रू का वाये।
कल्लो करै कपूर, किनक करब्बो चढो।
बाळ चदण बावमो, माहि मूरख सळ रधो।
भरम रै मांहि भूल्यो फिर्यो, नीच करम मत नान्हियो।
राम रो नाम खोयो रतन, कोडी बदलै कान्हियो ॥ २ ॥

चार पदो के एक "हरजस" में कवि ने "शुन्य नगरी", उसके आनद और उस तक पहुचने के प्रयास का बडा सुन्दर वर्णन किया है। यह स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है। कहना न होगा कि काल-क्रम की दृष्टि से राजस्थानी गेय पद-परम्परा में ऐसे पदो का अपना विशेष स्थान है। मीरां के हरजस प्रारम्भिक विष्णोई कवियो के पद-साहित्य की भूमिका पर ही पनपे हैं, सीधे रूप से यही उनका प्रेरणा-स्रोत रहा है। हरजस यह है —

जहां अवर न पावै वास, शुन्य नगरी पावही ॥ १ ॥ टेक ॥
नगर नांव बेगमपुरा, कोउ बसै स बेगम होय।
जतन जतन करि पोहचियै, फिरि आवागुंवण न होय ॥ २ ॥
जहां लोक लाज को गंम नहीं, सकळ दीवाना देस।
जे उत पहुचे चालि कै, फेरि दोहड़ि न काछै वेस ॥ ३ ॥
जाति बरंण जांह कुल नहीं, ऊंच नीच न कहाय।
सुरति निरति दोऊ धरे, तो उस मारगि जाय ॥ ४ ॥
सकळ कुटम एकतर भया, पद पद समाने प्राण।
ग्यान ध्यान पाछै रह्यो, तित कान्हां गळ तान ॥ ५ ॥

कान्होजी की भाषा अत्यन्त सरल, मुहावरेदार और सहज ग्राह्य है। जाम्भाणी चारण सिद्ध कवियो मे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है और राजस्थानी भक्त कवियों की परम्परा मे एक प्रमुख कवि के रूप मे इनका समादर है। यद्यपि इनकी रचनाऐं कम ही प्राप्त हैं, तथापि उनसे परवर्ती राजस्थानी काव्य-धारा को सम्यकरूपेण समझने का आधार मिलता है।

१५. आसनोजी (आसानन्द) : (विक्रम सवत् १५००-१६००) :

ये महलाणा (ओसिया, जोधपुर) गाव के सोढा जाति के भाट थे। अवस्था में ये

जाम्भोजी से बड़े और उनकी महिमा से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने थे। जाम्भोजी ने इनको गायन-वादन का काम सौंपा था किन्तु कालान्तर में इनके वंशज विष्णोई समाज की वंशावली लिखने का कार्य करने लगे और जो अब तक करते आ रहे हैं। महलाणा इसी कारण, विष्णोई भाटों का मूल गांव है। कहा जाता है कि जाम्भोळाव- निर्माण के पश्चात् किसी समय जाम्भोजी अपनी भ्रमण-यात्रा में एक बार इनकी प्रार्थना पर महलाणा के पास ठहरे थे। उस समय ये काफी वृद्ध थे और स्थायी रूप से वहीं रहने लगे थे। जाम्भोजी के वैकुण्ठवास के पश्चात् भी ये कई वर्ष और जीवित रहे। इस कारण इनका समय उपर्युक्त अनुमित है। सुप्रसिद्ध कवि और गायक आलमजी भी इसी कुल में हुए थे (द्रष्टव्य-आलमजी)। इससे भी आसनोजी के काल-सम्बन्धी उपर्युक्त कथन की अपरोक्ष रूप से पुष्टि होती है। "२४ की लूर" में "आसन भाट" का नाम १९ वां है।

हस्तलिखित प्रतियों[1] में "हरजसों" के अन्तर्गत "मल्हार राग" में गेय इनका १० दोहों का एक "झूमखो" मिला है जिसमें यह टेक लगती है :-

मेरा लाल नैं अैसो हरजी रो झूंखो, पांचू परमळ भारी।
ए पांचू नै वस करै, साइ पतिवरता नारी ॥१॥टेक॥

—प्रति संख्या ४८ से।

प्रसिद्ध है कि मोती चमार वाली घटना (द्रष्टव्य-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) के पश्चात् सम्भराथळ पर भावाभिभूत होकर कवि ने यह "झूमखो" गाया था। इसमें घट में की जाने वाली योग-साधना, उसकी प्रक्रिया, रीति और चरम-प्राप्तव्य-"मधुर अंमी रस-" पान का अत्यन्त सारगर्भित, संक्षिप्त और सुन्दर वर्णन किया है। एक छन्द (संख्या ८) से स्पष्ट होता है कि कवि अपने "अंणभै" (अनुभव) का बखान कर रहा है। ध्यातव्य है कि उसने एक ही स्थान में बसनेवाले पति-पत्नी के प्रतिदिन होने वाले झगड़े का बड़ा सांकेतिक और सारगर्भित वर्णन किया है। ये शरीर में रहने वाले मन और आत्मा के प्रतीक हैं। (छन्द २, ३)। भाषा बोलचाल की मारवाड़ी है। राजस्थान में नाथ योगियों के प्रसार और सबदवाणी की पीठिका में "झूमखो" की यौगिक शब्दावली सरल और बहु-प्रचलित ही कही जा सकती है। राजस्थानी-योग विषयक पदों में स्वानुभूति की सहज अभिव्यक्ति, प्रेषणीयता और और प्राचीनता की दृष्टि से इस रचना का वैशिष्ट्य है। इस कारण, नीचे यह पूरा पद उद्धृत किया जाता है[2]:-

इंव गुंणवंती कामंणी, निगणो मोरो नाह।
एकणि वास वसंतड़ां, अब क्यों मेल्ह्यो जाय ॥ २ ॥
घंण पुरांणी पीव नुवों, निति उठि झगड़ो होय।
घंण पिछांणै पीव नै, आवागुवंण न होय ॥ ३ ॥

१—प्रति संख्या—४८ (ग) (५); २०१; २२७ (घ)।

२—प्रति संख्या ४८ तथा २०१ में इसके पाठ में अन्तर और छन्द—व्यतिक्रम भी है। प्रति संख्या २२७ का पाठ प्रति संख्या २०१ के पाठ से मिलता है। प्रति संख्या ४८ का पाठ अपेक्षाकृत आधुनिक और विकृत होने से यहां उदाहरण प्रति संख्या २०१ से है।

पाठ पुराणो जळ नुंवों, हूसा केळ करांय।
बाळापण री प्रीतड़ी, चुण चुंण हरि चुगाय ॥ ४ ॥
गिगन मडऊ मा कोठड़ो, घुरैं दमामा घोर।
मन मधकर मूं मिल रह्यो, छेद्या क्रंम कठोर ॥ ५ ॥
चकनाळ नोझर झुरै, अमर मरै नहीं जोव।
पलटि जोगणि जोगी हुवै, सून्य महारस पीव ॥ ६ ॥
गंग जमनां सुरसती, त्रवणी तटि असनान।
चंद सूरिज अभ अंतरै, अठसठि तीरथ थान ॥ ७ ॥
षणि ओ सूंबलो गावियो, किण अह त्रिया वखाण।
जा घटि अंणभै उपजै, जाका अह इहनांण ॥ ८ ॥
अरध उरध बसेर हो, भुंवर गुफा एक ठाव।
पांच पचीसूं वसि करै, संभू जाको नांव ॥ ९ ॥
अगंम निगंम जहां गम नहीं, वरंन विवरजत दीठ।
आसानंद असी कहै, पीयो अमी रस मीठ ॥ १० ॥

१६. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) : "जम्मे" की साखी[1] :

१७ पक्तियों की प्रस्तुत साखी अज्ञात हजूरी कवि द्वारा रचित है। "जम्मे" में गाई जाने वाली सर्व प्रथम साखी होने से इसका विशेष महत्त्व है। साखी से प्रतीत होता है कि इसकी रचना जाम्भोजी की विद्यमानता में, पथ चलाने के बाद हुई है। इससे यह भी पता लगता है कि जम्मे में जाम्भोजी शंका- समाधान और ज्ञानोपदेश किया करते थे। इसमें तीन बातों का उल्लेख है.- (क) जम्मे में आने की आवश्यकता और लाभ, (ख) जाम्भोजी के यहां आने का कारण तथा (ग) उनकी महत्ता और कार्य। उदाहरणस्वरूप ये पक्तियां देखी जा सकती हैं :-

साधे मोमंणे कियो छै अळोच, जमू रचावियो ॥ १ ॥
इह नुं मळ पुजंली करोड़, गुर फुरमावियो ॥ २ ॥
दिल का दुसमण पाळि, तो जुळि जमलै आवियो ॥ ३ ॥
सवकै वारि गुर जांभेसर देव, कळि मां आवियो ॥ ८ ॥
समरथळि लियो मेल्हाण, तखत रचाइयो ॥ ११ ॥
गुर म्हारो बैठो खेघट लाणि, संनूं सुवाइयो ॥ १२ ॥
गुर म्हारै कथियो केवळ ग्यांन, उतिम पंथ चलायो ॥ १५ ॥
पहराजा सूं कौल, वाचा पाळंण आइयो ॥ १६ ॥
जे ध्यायो जांभेसर देव, तां फळ पाइयो ॥ १७ ॥
–प्रति सख्या २०१ से।

१–प्रति सख्या ७६ (ढ), ९४; १४२; १४३; १५२; १६१, २०१।

१७. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :—दीवली दीन दिलां मां ध्याइयै, हुइयै सुरां सारीला । गुर भाइयो[1] ॥

१० पंक्तियों की यह साखी "कणां की" साखियों के अन्तर्गत है। इसमें गुरु की सीख मानने, "जमले" में सत्संग, मृत्यु, भली-बुरी करनी, मुक्ति का उपाय और 'गुरु वाट' पर चलने का उल्लेख है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :—

राजिये राज तज्यो जीव काजे, गुर सिल मांगी भीला ॥ २ ॥
चंद छिप्यै निस होय अंधियारो, गुर विण एह परीला ॥ ३ ॥
हासिल जंमा मुवां जीव जांणै, जदि गुर मांगै लेखा ईं जीव का ॥ ७ ॥
सतगुर सांईं सभ बुझि तांईं, पाप धरंम का लेखा ॥ ८ ॥
गुर फुरमाई टळे न भाई, गुर सवदां की मेला ॥ ९ ॥
गुरवट छूटी करंण पहेले, रहै न एका रेखा ॥ १० ॥

साखी की अन्तिम दो पंक्तियों में सबदवाणी की पंक्तियों (१०१ : २; ८२; : ५; २८ : ३३) का प्रभाव दिखाई देता है।

१८. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :— दिल मां दांयंम वीदो साघो मोमिणो, परदेसी संसारी, गुर कायमां ।
—(प्रति ६८, २०१)।

"कणां की" साखियों के अन्तर्गत 'राग सूहव' मे गेय यह १० पंक्तियों की साखी है, जिसमें संसार की नश्वरता और मृत्यु की अनिवार्यता बताते हुए सुकृत और विष्णु-जप का उल्लेख किया गया है। थोड़े से घरेलू शब्दों मे, संक्षेप में रचयिता ने जीव की वास्तविक स्थिति बताते हुए मोक्ष पाने का उपाय बताया है। कवि ने कतिपय पंक्तियों में सबद-वाणी (८४ :१४; ५७ : ३; ११६ : २; ७२ : २५; २४ : ५; ६६ : ३४) की पंक्तियों का भी अपने ढंग से प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप ते पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :—

सुकरत सुरग्यै सुहेला हुइयै, मन मां देखि विचारि ॥ ३ ॥
गरथ विहूंणों जिसो चौपारी, क्रिया विहूंणों हारी ॥ ४ ॥
संवळ विहूंणों कोस न चालियै घर है भुंय जळ पारी ॥ ५ ॥
दिन दिन आव घटै सौणि मंनवा, ज्यों छक्यो विधि सारी ॥ ६ ॥
विसंन जपंता पाप न रहिस्यै, पहि उतरिबा पारी ॥ ९ ॥
सुरां सूं मेळो कांन्ह दीसांवरि, गोठी मिलौ दीदारी ॥ १० ॥
—प्रति संख्या २०१ से ।

१-प्रति संख्या ६८ (ख) (६); १५२; २०१। उदाहरण अन्तिम प्रति से है।

१९. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :—रे मंन मीठा लोभ पइठा, लिखूं स दिलसा काची[1]।

समस्त उपलब्ध प्रतियो मे "साखी छन्दा की" के अन्तर्गत, यह प्रथम साखी है जिसमे ४ छन्द हैं।

इसमे सासारिक विषयों मे भटकते हुए मन को वश मे करके भगवदोन्मुख करने, धर्म-कर्मों की ओर लगाने तथा सत्कार्य करने का उल्लेख है। कवि का विश्वास है कि फल-प्राप्ति क्रिया के अनुसार होती है, अन्त मे "सत" ही अच्छा साथी होगा, कूड-कपट तो भारी पड़ेगे। जिसका मन खोटा है, टोटा उसी को है, अत मन को "सूधो" ही चलना चाहिए। उदाहरणार्थ साखी के अन्तिम दो छन्द द्रष्टव्य हैं :—

रे मन झूठा करि पाच अपूठा, ज्यों चालूं ज्यों चाली।
मंन हठ माण मेर ने छाडो, कूड कपट सोह पाली।
पालो प्रीति पुंवण धंण सचो, नर निरहारी दीठो।
हीर पखो काय हुजति साखी, मन झगडालू झूठो॥ ३॥
सत करि वदा परहरि पर नंधा, पांचे जमलो कीजें।
दसवद देव तणो कांय राखो, दरगं लेखो लीजें।
जंह मन्य खोटा तंह मन्य तोटा, न करि पराई नंधा।
हिरदं जो हरप्यो हरि जपं, सो सत सीझे वदा॥ ४॥

उल्लेखनीय है कि मन को लक्ष्य कर साखी-रचना की परम्परा सम्प्रदाय मे इसी साखी से आरम्भ होती है।

२०. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :—मैरी अंखियां फरूकं जी काग करूकं आंगणं[2]॥ १॥

यह १५ पक्तियो की "करुणा की" साखी है। इसमे किसी हरि-भक्त स्त्री के घर में धर्म निष्ठ साधुओ के आने का वर्णन है।

साखी लोकगीतो की शैली मे रचित है जिसमे तत्कालीन लोक-प्रचलित विश्वास-मान्यताओ तथा प्रिय अतिथि के खान-पान और आराम की लोक-प्रसिद्ध वस्तुओ का बडा सुन्दर वर्णन किया गया है। समस्त साखियो मे यही एक साखी है, जिसमें मध्य-युगीन राजस्थानी जन-जीवन की सुख-सुविधाओ से सम्बन्धित लोक-मान्य आदर्श वस्तुओ का उल्लेख मिलता है, जो किसी सीमा तक आज भी प्रचलित है। आत्मपरक कथन

१–प्रति सख्या–६८ (त)(६), ७६ (ढ), ९४, १४१, १४२, १५२, १९१; २०१; २१३।
उदाहरण—प्रति सख्या २०१ से।

२–प्रति सख्या ७६ (ढ), ९४, १४१, १४२, १५२, १९१, २०१; २१५; २६३।

होने से इसका प्रभाव अच्छा बहुत पड़ता है। इससे घरेलू वातावरण का प्रेम भरा मनोहरी दृश्य सामने आता है। तत्कालीन समाज में अतिथि-सत्कार और आत्मोत्थान के प्रति अनुराग भावना भी द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :—

पाड़ोसंणि बूझै जी, पांहेणड़ा कोई आयसी ॥ २ ॥
घोड़्यलां खुर वाजै जी, वळू ंक वाजै घूंघरू ॥ ३ ॥
साध मोमिण आए जी, धंन्य दिहाड़ो धंन्य घड़ी ॥ ४ ॥
कोरा चरू चहोड़ूं जी, जळ मंगाऊ गंग को ॥ ९ ॥
झीनव का चावळ जी, दाळि हरी हरी मूंग की ॥ १० ॥
गावो घिरत मंगाऊं जी, दही मंगाऊं भैंस्य को ॥ ११ ॥
कासमीरी थाळी जी, लोटो मंगाऊं मुहंम को ॥ १२ ॥
साध मोमिण जीमें जी, अंचळ झोळी वीझणो ॥ १३ ॥
पाड़ोसंणि बूझै जी, पांहेणड़ा के ल्याइया ॥ १४ ॥
म्हांनैं सुरग वतांवैं जी रतन कया हीरे जड़ी ॥ १५ ॥-प्रति संख्या २०१ से।

२१. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :—उत्तर दिसा दोय मोमिण आया, घर पूछावैं रूड़ै साव को-(प्रति संख्या २०१)।

साखी "करणां की" के अन्तर्गत यह २५ पंक्तियों की साखी है। इसमें लोकगीतात्मक संवाद-शैली में एक बहू की धर्म-भक्ति तथा उसके माध्यम से अपनी-अपनी करनी के फल भुगतने का अत्यन्त रोचक दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है।

बहू का पड़ोसिन से साधुओं के आकर ठहरने की बात न कहने का अनुरोध तथा माँ की आज्ञा पर पुत्र का बहू को निष्कासित करना तत्कालीन घरेलू वातावरण और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करता है। साथ ही स्त्रियों का विशेषतः बहुओं का, ससुराल में "धर्म"-विशेष का पालन और अतिथि गुरु-भाइयों के आदर-सत्कार करने सम्बन्धी कठिनाइयों और ऐसा करने पर उसके भीषण परिणाम का अत्यन्त यथार्थ वर्णन कवि ने किया है। घर से बहू को निकालने का कारण चारित्रिक सन्देह प्रतीत होता है जो मध्य-युग में किसी भी स्त्री के लिए अध्यात्म-पथ में बाधक रहा है। अन्त में धर्मपालन के लाभ-मोक्ष-प्राप्ति का उल्लेख करके कवि ने यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि धन धर्म पालन करने से ही ठहरता है।

'धर्म'-पालन के हेतु हंसते-हंसते मृत्यु को अंगीकार करने के अनेक उदाहरण विष्णोई सम्प्रदाय में मिलते हैं, जिनका विभिन्न कवियों ने सोल्लास वर्णन किया है। प्रकारान्तर से यह साखी इसी परम्परा की प्रथम साखी है। रचना के उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

पूछत पूछन साधु जण आया, हित करि मिली आमणी ॥ ३ ॥
घर साक जिणि भोजन दीन्हो, उतिम ओढ़णि विछावणा ॥ ४ ॥
पाडोसिण पूछै कुण ज आयाजी, किणि माते कुण पाहुणा ॥ ५ ॥
आमणी कहै म्हारै गुर को नातो जी, साधु इ आया म्हारै पाहुणा ॥ ६ ॥
काही रल्या घर को माल गुमावै, खबरि पडेसी साधु आविया ॥ ७ ॥
लेह नै पाडोसणि सीस री हे चूदडो, म्हारो तो छेदो वेंहनड तो रह ॥ ८ ॥
थारी तो चूदडी थेई ज ओढो जी, म्हारी तो अलवी वेंहनड न रह ॥ ९ ॥
काळा बळदां बेटा वहलि जुपाडो जी, घर ता निकाळो बहू आमणी ॥ १५ ॥
आंबेलो बेटो तिसायो हुवो जी, सूका सर पाणी छल्या ॥ १८ ॥
नीवेलो बेटो मूलो हुवो जी, खोला खिरि झोळी पड्या ॥ १९ ॥
मोहर रुपइया कोयला हुवा जी, रिध्य सिध्यै लेगी बहू आमणी ॥ २० ॥
घोळा बळदा वहलि जुपाडो जी, पाछी आणों घरि आमणी ॥ २१ ॥
धरती माता वेहर ज दीन्ह जी, धरा समाई सती आमणी ॥ २२ ॥
जैसो कुमावै तैसो फळ पावै, कुमाई लह्यां स्यै आपो आपणी ॥ २५ ॥

२२. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६वीं शताब्दी)

साखी —सतगुर आयो मोमिणो महरि करि, सुर नर वीनऊ साच[1]।

"राग आसावरी" मे गेय "छदा की" साखियो के अन्तगत यह ४ छदो की साखी है। इसमे जाम्भोजी की महिमा, सुकृत और मोक्ष-प्राप्ति हेतु भावभरी चेतावनी दी गई है। सम्प्रदाय की मूल विचारधारा को सुरक्षित रखने मे ऐसी साखियो का बहुत बडा हाथ है। उदाहरण के लिए एक छद द्रष्टव्य है —

अवसर जाई न चेतियो, वळे न लाभै वेर।
कूडै जीवण कै कारणै, मन्यै न कीजै मेर।
म करि मेरा नाहि तेरा, कळपि भार न लीजियै।
छोड मन मुति हुय गुरमुखि, जो गुर कह्यो स कीजियै।
काम क्रोध कलोभ परहरि ध्याय मन सूधो करे।
जुगि चौथै विसन परगट, चेति जीव इण औसरे ॥ ३ ॥—प्रति सख्या २०१ से।

२३ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी —तरण तारण जभराय आवियो, तेतीसां प्रतपाळ[2]।

साखी "छदा की" के अन्तगत राग आसावरी" मे गेय यह ५ छदो की साखी है, जिसमे

१-प्रति सख्या ७६ (ढ), ९४, १४१, १४२, १५२, १६१, २०१, २१५ २६३।
२-प्रति सख्या-७६ (ढ), ९४, १४२, १५२, १६१, २०१, २१५ २६३।

दो प्रकार के वर्णन हैं :- जाम्भोजी और उनकी महिमा तथा कल्कि अवतार और उसकी सर्व-शक्तिमत्ता का। जाम्भाणी साहित्य में अन्यत्र भी प्रकारान्तर से कल्कि अवतार का वर्णन किया गया है किन्तु प्राचीनता की दृष्टि से इस साखी का विशेष महत्त्व है। उदाहरण स्वरूप एक छन्द देखा जा सकता है :-

फिरी दुहाई राय विसंन की, गुण गंद्रफ जाके मीत।
चीण म चीण गढ मां कटकिया, तंम क्या सोवो नंचीत।
तंम रैंण कांये नचींत सोवो, सोहड़ सांवत है खड़ा।
भया चीत भड़हड़ा परवत, पोळि आगैं ढहि पड़ा।
प्रथंम आगळि रीस उपनी, सांम्य सुरता किसंन की।
छोडि पूरव नुंव्यां पछंम, फिरा दुहाई राय विसंन की ॥ २ ॥-प्रति सं० २०१ से।

२४. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :—मैं गुर पेख्या री मेरी माय, सोई सतगुर अभुंवंण को राव री[1]।

राग आसावरी में गेय साखी "छंदां की" के अन्तर्गत यह ४ छंदों की साखी है, जिसमें जाम्भोजी का महिमा गान है। इसमें कवि आत्म-साक्ष्य और स्वानुभूति के आधार पर पूर्ण विश्वास के साथ अपनी बात कहता है। वह यह सूचना भी देता है कि लोग जाम्भोजी की निंदा भी करते थे :- केई केई नींद करें मेरी माय, वंदे दुनी गुर साधु पायो" (छन्द ३)। अन्यत्र हुजूरी कवियों की रचनाओं में जाम्भोजी के सम्बन्ध में ऐसा कथन नहीं मिलता। एक छन्द यह है:-

योह विणजारो री मेरी माय विणज करण आयो संसार री।
वोहदि सराफीड़ो री मेरी माय, परिखि ल्हो चुंणि मोती री।
लियौ मोती विसंन जोती, साच वांणी लावई।
ग्यानि वाखर न्यांन काया, सफळ सार लेवई।
कळिकाळे वेद अथरवंण, सहज पंथ चलावियौ।
संभरायळि जोति जागी, जुग विणजण आवियौ ॥ २ ॥ –प्रति सं० २०१।

२५. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :—कळयुग देवजी को चिरत वखांणि, पंनरा सै र तिरांणवैं[2]।

यह राग "मारू" में गेय, ४ छन्दों को "छंदां की" साखी है। इसमें जाम्भोजी के निधन-काल और स्थान, उनके प्रमुख कार्य, प्रभाव, पंथ-प्रवर्तन, उसकी महत्ता

१-प्रति संख्या-१५२; २०१; २१५; २६३।
२-प्रति संख्या—१५२; २०१; २१५; २६३।

भौर विशेषता का वर्णन करता हुआ कवि उनकी कृपाकांक्षा तथा उनके निधन से आतुर हो धैर्य के लिए शक्ति मागता है। उसको उनका बहुत भरोसा है और यही उसकी सात्वना का कारण है। इसको "मरसिया" साखी कह सकते हैं, क्योंकि इसमे मरसिये के सभी गुण विद्यमान हैं (द्रष्टव्य–अन्तिम अध्याय मे मरसिये की विशेषताए)। अज्ञात कवि–रचित साखियो मे यही एक मात्र मरसिया साखी है। राजस्थानी मरसिया काव्य–परम्परा मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। इससे दो विशेष बातो का पता चलता है–

१–कि जाम्भोजी का वैकुण्ठवास सवत् १५९३ की मार्गशीर्ष वदि नवमी को समरायळ पर हुआ था। (सम्प्रदाय मे वैकुण्ठवास–स्थान लालासर माना जाता है)।

२–कि जाम्भोजी के समय मे चार प्रमुख "धर्म" प्रचलित थे–इसलाम, ब्राह्मण, नाथ और जैन। एक छन्द यह है :–

> भ्रम न टाळो म्हारा साम्य, हमै'र उमाहो तेरै दीदार को।
> भाइडा सीधा एकंणि धार, करि उमाहो जमलै पार को।
> करि उमाहो पारि पुहता, गया दुख घणेरहो।
> जोग जुगति 'र कोळ पूरो, ओ भरोसो तेरहो।
> सत दे करतार दिल मा, कोडि बार मिलाइयो।
> चिळत पाखो क्यों सहारूं, साम्य भ्रम न टाळियो ॥ ४ ॥–प्रति स० २०१।

२६. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :—आखरि आखरि लेखो मोमिणो मागियै, घरि घरि फिरै नकीबा[1]।

राग "गवडी" मे गेय यह ४ छन्दो की "छरा की" साखी है जिसमे जाम्भोजी को दुस्तर ससार–सागर से पार उतारने वाले खिवैया बताते हुए उनकी महिमा और सुकृत द्वारा आवागमन से मुक्ति पाने का उल्लेख किया गया है। इसकी एक विशेषता है—कलि–युग मे मुक्ति पाने वाले बारह कोटि जीवो के लिए वैकुण्ठ म "चौबारों" पर अप्सराओं के राह देखने का प्रसग (छद ३)। यह प्रधानत राजस्थानी वीररसात्मक काव्यों की रूढ़ि है जो अध्यात्म–क्षेत्र मे इस रूप मे विष्णोई कवियो ने अपनाई है। इस दृष्टि से यह अपने ढग की पहली साखी कही जा सकती है। एक छन्द द्रष्टव्य है :–

> चढि नै चोबारै लाडली क्यों खडी, पहरि पटबर कुंना।
> साचो म्हारा आंगण कहि गया, कदि मिलस्यै वाग विछुना।
> वाग विछुना मिल्यै क्यों करि, कोडि बारै जोडणो।
> कळिकाळि कवळ किरिया, मोह माया तोडणो।
> एक मंनि देव करूं सेवा, अतीपात सहारियै।
> वैकुंठ साहा मंनि उमाहा, लाडी चढि खडी चोबारियै ॥ ३ ॥

1–प्रति सख्या–१४१, २०१, २६३। उदाहरण प्रति सख्या २०१ से।

२७. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :–आगमजी आगम ग्रत जुग रोप कर, रहंस कला सर बंदगी । हरि के मोनियरी ।
(–प्रति संख्या २०१; २६३) ।

साखी "छंदां की" के अन्तर्गत ४ छन्दों की यह साखी राग "गवड़ी" में गेय है। इसमें भगवान के दसावतार, उनके कार्य और तेतीस कोटि जीवों के उद्धार संबंधी साम्प्रदायिक मान्यता का उल्लेख है। उदाहरणार्थ एक छन्द नीचे दिया जाता है :—

भंणि भंणि अमुंवंण राव सही, कळि दसवें अवतार । हरि के मोनियरी ।
ग्रतव किरिया करंण कुंमावो, छोडो माया जाळ सही । हरि के मोनियरी ।
छोडो माया जाळ दुनी का, मंन पर ता हीयड़ै सोच विचार करि ।
कळि मां सुर नर आय परगास्यौ, मोख मुकति संमयाय करि ।
हजरति तर खर लेह लेखा, बारै कोड़ि संमाहि दई ।
कळि मां काळिग कूं बिसमल करिसी, कळि दसवें अवतार सही ॥ ८ ॥
–प्रति २०१ में ।

२८. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :–जांणि चाली रे मेरो भाइड़ो, इणि पंथड़ळै र पियार ।–प्रति २०१ ।

यह राग "आसावाहट्टी" में गेय "छन्दां की" साखियों के अन्तर्गत ४ छन्दों की साखी है। इसमें जाम्भोजी का गुण गान करते हुए कवि मुक्ति हेतु "पंथ" पर चलने का अनुरोध करता है। एक छन्द द्रष्टव्य है :—

पारि गिरांय बसेरो कहियै, नर निरहारी आयो ।
च्यारि चहूंचकि फिरै दुहाई, जिद अबकि जगायो ।
जिद अबकि जगायो मोमिण, म्हांणो म्हांण करंता ।
एक मंनि एक चित करो बंदगी, कंवळां ज्यों विगसंता ।
सुज मांणिक अळियो मत भायो, बोहड़ि न होयसी फेरो ।
जळंम जळंम को पछतावो चुकावो, दे पार गिरांय बसेरो ॥ ४ ॥

२९. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

असतोतर :–आराग छत्र अभ पत्र, वरंनि ध्यांन निरंजणो ।

१४ छन्दों का यह स्तोत्र केवल एक ही प्रति में मिलता है (प्रति संख्या २०१ में)। कहीं इसके रचयिता का नाम-निर्देश न होने के कारण यह कृति अज्ञात कवि की रचना ही समझी जानी चाहिए। श्री श्रीरामदासजी ने इसके १४ वें छन्द के पश्चात् एक और संस्कृत

श्लोक[1] देते हुए, अन्त मे "इति श्री सुरजनदास विरचित जभ स्तोत्रं समाप्तम्" लिखकर इसका रचयिता सुरजनजी को बताया है, किन्तु उनके इस कथन के आधार का उल्लेख कही नही है।

इसमे श्रद्धापूर्वक जाम्भोजी का गुणगान किया गया है। कवि ने मुसल, बंभा, जोग जिनवर, च्यारि धरम चितारणा (छन्द १२) कह कर तत्कालीन बहु प्रचलित धर्म-मतो की ओर सकेत किया है। उदाहरणार्थ ये छन्द द्रष्टव्य हैं —

रगत पीत न धात दस दर, जुगति बांणि जोजनो।
रहति अ ति गलि मुगति मारग, जोग मुंद्रा उ नमनो ॥ ८ ॥
ब्रभ ग्यांन नियान केवळ नीरति सुरति नीरजणो।
उपग्यान वेद उमेद इह निस, ग्यान गति मन मजणो ॥ १० ॥
ससार का आकार वसि करि, वोसन ईस विसभरं।
थिरत एक अनेक चक्रत, मुकति दाता महिधरं ॥ ११ ॥

३०. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी :-जग मां जळंम लियो मेरा जो हो, वसियो आय वसेरो[2]।

चार छन्दा की इस साखी मे ससार को "गोवळ वास" और जीवन को नश्वर बताते हुए मोक्ष-हेतु सुकृत करने और अन्य देव-पूजा त्यागने का आग्रह किया गया है। कवि का विश्वास है कि अन्त म तो विष्णु ही सहायक होगे। यह साखी श्रद्धालुओं म अत्यन्त प्रसिद्ध रही है। उदाहरण के लिए एक छन्द देखा जा सकता है —

पापा प्रीत तजो मेरा जो हो, क्रिया करो कमाई।
जम की भीड पडं मेरा जो हो, ता दिन विष्णु सहाई।
विष्णु सहाई होय भाई, औघट घाट लघावही।
जीव काजे दान दीजै, अंति आडो आवही।
आज को आराध मेटो, जीव घात मत को करो।
दया विहूणां जाय दोजग, प्रीत पापा परहरो ॥ ३ ॥ —प्रति सख्या १४१ से।

३१. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी :-विसंन विसारि न जाहि रे प्राणी, तैं सिरि मोटो दावो[3] ॥ १ ॥ जीव नैं।

२३ पक्तियो की "कगा कीं" इस साखी मे देह की क्षणभगुरता और विष्णु को

१-द्विमध्यय पठेन्नर सर्व पापै प्रमुच्यते।
सर्वोपद्रवरहित विश्नुलोक स गच्छति ॥ १५ ॥-जम्भदेव लघु चरित्र, पृष्ठ ६।
२-प्रति सख्या-७६, ९४, १४१, १४२, १४३, १९१, २२२, २२७ (ल) तथा २६३।
३-यह तथा इससे आगे वाली साखी (कवि सख्या ३२ कृत), प्रति सख्या १५२ मे वील्होजी की बताई गई है किन्तु अनेक बातो पर विचार करने से ये उनकी नही प्रतीत होती। दोनों साखियां इन प्रतियो में उपलब्ध हैं-७६, ९४, १४१, १४२, १५२, १९१, २०१, २६३।

सर्व-शक्तिमत्ता का सोदाहरण वर्णन करते हुए उनकी शरण-ग्रहण और जाम्भोजी के उपदेश-पालन का अनुरोध किया गया है। कवि ने इसमें स्वरचित पंक्तियों के बीच में विषयानुसार सबदवाणी की कई पंक्तियाँ और अर्द्ध-पंक्तियाँ भी उसी रूप में ली हैं। रचना में एक भावभरी चेतावनी है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

खिणि एक मेघ मंडळि होय वरसै, खिणि चोवायो वावै ॥ ११ ॥
खिणि एक जाय निरंतरि वसै, खिणि एक आप लखावै ॥ १२ ॥
खिणि एक राज दियो दरजोधंन, लेतो वार न लावै ॥ १३ ॥
सोवंन नगरी लंक सरीखी, समंद सरीखो खाई ॥ १४ ॥
जिण रै पाटि मंदोवरि रांणी, साथि न चाली साई ॥ १५ ॥
वसंदर जै रा कपड़ा धोवै, सूरिज तपै रसोई ॥ १७ ॥
नव ग्रह रावंण पाए वंध्या, कूवै मीच संजोई ॥ १८ ॥
जिणि हूं विसंन की खवरि न पाई, जांतै वार न लाई ॥ २० ॥
धरती असमांण पांणी भी सरणै, पुंवंण भी सरणै वावै ॥ २२ ॥
भगवीं टोपी थळ सिरि आयो, करियो जो फुरमावै ॥ २३ ॥–प्रति २०१ से।

३२. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :–तारंणहार थळां सिरि आयो, जे को तरै त तरियो[1] ॥ १ ॥ जीव नै ॥ टेक ॥

यह १६ पंक्तियों की "करणां की" साखी है। इसमें "तारंणहार" जाम्भोजी का महिमा-गान, छोटे से मनुष्य जीवन में उद्धार हेतु सुकृत और गुरु-आदेश पालन करने का संदेश है। पूर्व में प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र और पाण्डवों ने तथा कलियुग में गोपीचन्द, भरथरी ने ऐसा ही किया था। आत्मोद्धार के लिए कवि ने अनेक प्रकार से भक्तिभाव पूरित प्रतिबोध कराया है। कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं :—

जीवड़ां नै ने भलपंण लोड़ो, सेव विसंन की करियो ॥ २ ॥
मिनखा जूंणि पढ़ै पुंणेरी, वळे न लाभै परियो ॥ ३ ॥
देवजी की आथि विसंन की संपति, कूड़ी मेर न करियो ॥ ५ ॥
रावां ता रंक करै राजंदर, हसत करै गाटरियो ॥ ६ ॥
उवस वासै वस्या उजाड़ै, सहर करै दोय घरियो ॥ ७ ॥
रीता छाले छल्या रितावै, समंद करै छीलरियो ॥ ८ ॥
कळजुग दोय वडा राजिंदर, गोपीचंद भरथरियो ॥ १५ ॥
गुर वचने जोगूंटो लियो, चूको जामंण मरियो ॥ १६ ॥
भगवीं झोळी भगवीं खंथा, घरि घरि भिखिया नै फिरियो ॥ १७ ॥

१–इसकी प्रतियों का उल्लेख कवि संख्या ३१ के अन्तर्गत द्रष्टव्य है।

खांडी खपरो ले 'र नीसरियो, धोळ उजीण नगरियो ॥ १८ ॥
भगवीं टोपी थळ सिरि आयो, फुरमावै सो करियो ॥ १९ ॥
—प्रति सख्या २०१ से।

३३. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :–एक सुपनंतर दीठडा, सखी मेरै मन उपज्यो सत भावो[1]।

यह राग "माड़" में गेय ४ छन्दों की "छदा की" साखी है, जिसके अन्तिम छद में ८ पक्तियाँ हैं। इसमे दसवें—कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए जीव को मोक्ष-प्राप्ति की ओर प्रेरित किया गया है। विष्णोई साहित्य में कल्कि-अवतार वर्णन की दीर्घ परम्परा मिलती है। प्रस्तुत साखी इसी की आरम्भिक रचनाओं में से है। उदाहरण स्वरूप दूसरा छन्द देखा जा सकता है :—

उदिया परवत पोवळि ढही, सा खेत करो सवारी।
नव थेर हारियडा कवल सिरि, उतपति कहूं तुहारी।
उतपति कहूं तुहारी कळिग, राय विसंन सूं वाद किसा ?
जिणि च्यारि चक नव दीप नवाया, लख चवरासी जीव सिर्‌या।
जुरा मरंण भव भांजै सतगुर, मेर चुकावै तरै र सही।
धर धूजै असमाण थरहरै, उदिया परवत पोवळि ढही ॥ २ ॥

३४. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

साखी :–जा दिन हस चलै मेरा जी हो, कुढि अंधियारो होई[2]।

यह ४ छदों की "छदा की" साखी है, जिसमे जीवन, मृत्यु और मृत्यु-काल की दशा का वर्णन करते हुए समय रहते हरि-स्मरण करने का अनुरोध किया गया है। अत्यन्त आत्मीयता और सहज भाव से कवि ने मानव-जीवन की वस्तुस्थिति का प्रभावशाली चित्रण किया है जो पाठक को अनायास ही उद्‌बुद्ध करता है। एक छन्द नीचे दिया जाता है —

साथी म्हारा पारि लंघ्या मेरा जी हो, हम विच भुयजळ भारी।
आज क काल्हि छिनो मेरा जी हो, तळवी उभा वारी।
तळवी त उभा वारि ठाडा, भरंम मत को भूलि हो।
संसारि राता फिरै गाफिल, अंति होय दुहेल हो।
जा दिन काया तजै माया, साथ मिलह न मांगियो।
हंम विच भुयजळ अगम भारी, म्हारा पारि साथी लंघियो ॥ ३ ॥

१–प्रति सख्या–१५२, २०१, २६३। उदाहरण प्रति सख्या २०१ से।
२–प्रति सख्या ७६ (ढ), ९४, १४१, १४२, १६१, २०१; २१३ (१३); २३३ (प), २६३; ३२१। प्रति सख्या १५२ मे इसको भूल से सुरजनजी की रचना बताया गया है।
—उदाहरण प्रति सख्या २०१ से।

३५. कवि - अज्ञात : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) : छप्पय ।

किसी अज्ञात कवि कृत जम्भ-महिमा सम्बन्धी तीन कवित्त प्राप्त हुए हैं जो पाद-टिप्पणी मे उद्धृत किए गए हैं[1]। उदोजी नैण रचित आरती-गान की भांति ही हवन के पश्चात् इनके द्वारा जाम्भोजी का ध्यान स्मरण करना एक आवश्यक नित्य कर्म है। इससे इनकी महत्ता स्वयं सिद्ध है। ये हजूरी कवि की रचना बताए जाते हैं। इनसे जाम्भोजी और सम्प्रदाय सम्बन्धी संक्षेप में उल्लेखनीय जानकारी मिलती है। रचयिता की भक्ति-भावना तो सबमें व्याप्त है ही।

३६. कोल्हजी चारण : (विक्रम १६ वीं शताब्दी) :

कोल्हजी और उनके कवित्तों की जानकारी का एकमात्र स्रोत साहबरामजी का जम्भसार (प्रति संख्या १९३) है। इसके १४ वें प्रकरण में "कोल चारण री कथा" के अन्तर्गत "जाम्भोळाव" पर जाम्भोजी की स्तुति-रूप कहे गए इनके और अल्लूजी के २० कवित्त भी उद्धृत किये गए हैं (पत्र ५०-५३ पर)। इनमें ६ में कोल्हजी की छाप है किन्तु ३ अल्लूजी के हैं[2] और अन्यत्र उनके नाम से ही मिलते हैं[3]। "वयणसगाई"-नियम को

१-जंभ गुरु जगदीश ईस नारायण स्वामी।
निरपेषक निरलेप सकल घट अंतरजामी।
पेट पूठ नह ताहि, सकल कूं सनमुख दरसै।
पाप ताप तन जरै जाहि पद पंकज परसै।
अखै अडोळ अनादि अज अवगत अलख अभेव।
स्वंसरूपी आप है जंभ गुरु जग देव ॥ १ ॥
जंभ गुरु जग देव भेव कोई विरला पावै।
रहै सरण जो जीव बहुर भव जळ नही आवै।
विष्णु रूप अवतार परगट पोहमी में आए।
सतजुग विछुरे जीव उनकूं आंन चिताए।
विष्णु धर्म परगट कियौ आंन धर्म विटप विहंडनं।
संभरथळ परगट सही जोत रूप जग मंडनं ॥ २ ॥
स्वं गुरु पहरी आप जीव हित हृदै विचार्‌यौ।
रहत पंचीकृत देह परगट वपु पोहमी धार्‌यौ।
जीव अधम बहु कुटल अंच मंत मार(ग) आंनै।
विष्णु धर्म द्रिढ दियौ विष्णु कूं सबही मांनै।
प्रहलाद वचन सत करन कूं पोहमी आप पधारिया।
जंभ गुरु जगदीश है, जीव अधम बहु तारिया ॥ ३ ॥—प्रति संख्या २७२ से.

२-(क) गोप नार चित हरण, प्रेम लछणां समपण। (१३८)।
(ख) अर्थ चारि ऊपिजै, निगम साखी अव नासै। (१४०)।
(ग) कहां मको कहां सेख, सूर सिमियर कहां संकर। (१४७)।

३-प्रति संख्या २०१ में, छन्द संख्या क्रमशः ५, ७, ६।

ध्यान मे रखते हुए इनमे से एक और कवित्त भी अल्लूजी का होना चाहिए[1]। इस प्रकार, निम्नलिखित दो कवित्त ही कोल्हजी के बचते हैं। जब तक अन्यथा प्रमाण न मिले, साहबरामजी के साक्ष्य पर इनको कोल्हजी की रचना मानना समीचीन है—

१-तु मे सुरां सुख दियण, तु मे असुरा सघारण।
तु मे जगतपति जगदीस, तु मे सिध साध सुधारण।
तु मे जग जीवा जीव, तु मे केवळ अरु कामों।
तु मे त्रिगुणपति आप तु मे तत अत्र जामों।
सकळ सिरजत साइयां, करतार आप आया कळे।
बीनति कोल्ह वळ वळ विष्ण, सारगधर सभरायळे॥ १३७॥

२-रजपूतां नू बिडद, राव कहा महाराजा।
महाराजा नू बिडद, पातस्या कहां सबाजा।
पातसाह नूं बिडद, खुदाय दूसरो जु होई।
खुदाय सिरं सारांह, खुदाय सिरज्या सह कोई।
खुदाय खालक जलाह अलेख, नारायण भीड बीजो नहीं।
बीनती कोल वळ वळ विष्ण, ताहरां बिडद ओपे तहीं॥१४५॥

इनका विषय और भाषा शैली वही है जो अल्लूजी के कवित्तो की है। इनमे इनका जाम्भोजी का शिष्य और हरिभक्त होना स्पष्ट है। सम्प्रदाय मे परम्परा से भी यही बात प्रसिद्ध है। साहबरामजी के अनुसार ये अल्लूजी के कुल के (अर्थात कविया शाखा के) फलोदी के निवासी थे। सिर और आखो म पीडा से अत्यन्त दुखी होकर इन्होंने अनेक उपाय किये जो व्यर्थ रहे। अन्त म अधे हो गए। अल्लूजी के कहने पर उनके साथ ये जाम्भोजी की शरण म जाम्भोळाव पर आए। उनकी आज्ञा से इन्होंने सरोवर म स्नान किया जिसमे नेत्रो मे ज्योति आगई। तब दोनो ने जाम्भोजी की स्तुति की। श्रीरामदासजी ने भी लिखा है कि जाम्भोजी महाराज की कृपा से अल्लूजी की भाति कान्हा, तेजा और कोल्ह चारण की मनोभावनाएँ भी पूर्ण हुई थी[2]।

अन्यत्र हरिभक्त चारणों मे तो इनकी गिनती होती रही किन्तु जाम्भोजी के शिष्य वाली बात भुला दी गई। नाभादास[3] और राघोदास[4] ने १४ चारण भक्तो मे इनका

१-उदियागर उगियो इन्दु राका अविरचा।
रग कुरग विरहणी, पाव बाधी अरचा।
कोल सेस भूतेस, वरण सुर नचन चवीजैं।
विद्यावत बुधवत, कह्यौ तुम तुम्हा कहीजैं।
निर्वाह करत ज नारियण, अमरण सरण बिडद सू।
कोर कर जोड्या ओचरैं, सहस कळा गुर जभ सू॥१३२॥

२-श्री १०८ श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र, महात्मा सुरजनदासजी रचित, पृष्ठ ३२-३३।

३-भक्तमाल, पृष्ठ ८०१, रूपकला, नवल किशोर प्रेस लखनऊ, सन् १९३७, तृतीय सस्करण।

४-भक्तमाल, पृष्ठ २०८, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६५।

नामोल्लेख किया है। इनकी भक्तमालों के टीकाकारों ने तो एक कदम और आगे बढ़ कर कोल्हजी को अल्लूजी का बड़ा भाई बताया है, पर यह संगत नहीं है (द्रष्टव्य-अल्लूजी कविया)। इससे साहबरामजी के कथन की पुष्टि का संकेत अवश्य मिलता है कि ये कविया शाखा के थे।

सोलहवीं शताब्दी के चार प्रमुख जाम्भाणी सिद्ध चारण कवियों में ये एक हैं, किन्तु उल्लिखित कवित्तों के अतिरिक्त इनके और छन्द प्राप्त नहीं हैं। खोज करने पर और भी रचनाएं मिलने की सम्भावना है।

२७. ऊदोजी नैण : (अनुमानतः विक्रम संवत् १५०५–१५९३/९४) :

ये गोठ–मांगलोद के नैण और हुजूरी विष्णोई सिद्ध कवि थे। सम्प्रदाय में आने से पूर्व ये यहां के दधिमति माता के मन्दिर के भोपे थे। इनके सम्प्रदाय–प्रविष्ट की कहानी बड़ी रोचक है। एक बार सिवहारा से सेठ फूलचन्द वहां के अन्य यात्रियों के साथ सम्भरायळ पर जाम्भोजी के दर्शनार्थ आ रहे थे। मार्ग में उनका पड़ाव गोठ के निकट देवी–मंदिर के पास पड़ा। ऊदोजी ने देवी के "जातरी" समझकर उनका खूब आदर–सत्कार किया, बहुत देर तक देवी की आरती-पूजा की और उसका महिमा-गान किया किंतु किसी भी यात्री ने इस ओर रुचि नहीं दिखाई। तब इन्होंने आश्चर्यित हो उनसे देवी के प्रति श्रद्धा–भक्ति न दिखाने का कारण और उनके गन्तव्य-स्थान के विषय में पूछा। उन्होंने इनको सविस्तर जाम्भोजी और उनकी विचारधारा से अवगत कराया, और कहा कि हम तो मोक्ष–प्राप्ति के मार्ग–दर्शन हेतु जाम्भोजी के पास जा रहे हैं। तुम्हारी देवी मोक्ष–लाभ नहीं करवा सकती, सांसारिक कष्टों का निवारण या वैभव, सम्पदा भले ही प्रदान कर दे। साहबरामजी के अनुसार (प्रति संख्या-१९३, जम्भसार, प्रकरण ७) ऊदोजी ने इस बात की पुष्टि देवी–पूजा करके की। सबद–वाणी के 'प्रसंग' के अनुसार स्वयं देवी ने ऊदोजी के "घट" में आकर उन विष्णोइयों से कहा कि स्वर्ग देना मेरे बस की बात नहीं है (द्रष्टव्य–जाम्भोजी का जीवन–वृत)। ऊदोजी के लिए यह बात सर्वथा नवीन थी। रात्रि भर यात्रियों ने साखियां गाईं जिनको उन्होंने सुना। इससे उनके मनोभावों में परिवर्तन होने लगा। प्रातःकाल ये भी जाम्भोजी के दर्शन और मुक्तिज्ञान–श्रवणार्थ उनके साथ चल पड़े। वहां जाम्भोजी के सम्मुख ये हाथ जोड़कर दूर खड़े हो गए, बोले कुछ नहीं। तब जाम्भोजी ने कहा–तुमने माता के तो बहुत गीत गाए हैं, कुछ पिता भी के सुनाओ[1]। इन्होंने अपनी अज्ञता और विवशता प्रकट की तो जाम्भोजी ने **"विष्णु विष्णू तूं भणि रे प्रांणी जो मन माने रे भाई"** (सबद संख्या–६९) सबद कहा और उनको आशीर्वाद दिया। इससे इनको ज्ञानानुभव हुआ और जाम्भोजी के गुणगान

१–निकट आयो ठाढो भयो, कहे जंभ कछु गाय।
माता का तो मैं कहूं पिताहि के हू सुनाय॥
ऊदो कुछ जानें नहीं, भयो जोग उपहास।
मुख पर परसे हाथ प्रभु, अनभव भई हुलास॥-प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण–७।

स्वरूप एक साखी कही[1] तथा सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गए[2]। यह घटना सवत १५४५–५० के आसपास की है (देखें–कुलचन्दराय अग्रवाल, कवि सख्या ४१)। प्रसिद्ध है कि इस समय इनकी आयु ४०/४२ साल की थी। इस प्रकार इनका जन्म सवत् १५०५ के आसपास ठहरता है। सुरजनजी[3] और केसोजी[4] के कथनों से भी प्रकारान्तर से उपर्युक्त विवरण की पुष्टि होती है।

ऊदोजी उत्कृष्ट कवि, अनुभवज्ञानी सिद्ध, और सम्प्रदाय के मान्य आचार्य थे। "३५ पुन्ह" मे इनका नाम २८ वां है। "हिंडोळणो" और "भक्तमाल" मे इनका नामोल्लेख है। सम्प्रदाय मे इनका महत्त्व इसके अतिरिक्त दो और कारणों से भी है। वे हैं–(१) २९–धर्मनियमो सम्बन्धी कवित्तो तथा (२) आरतियो का निर्माण। हुजूरी कवियों मे तेजोजी सामीर और ऊदोजी नैण, जाम्भाणी विचारधारा तथा विष्णोई सम्प्रदाय के प्रमुख एव प्रामाणिक वक्ता और व्याख्याता माने जाते थे। तेजोजी के देहान्त (विक्रत् सवत् १५७५) के पश्चात् इस रूप मे सर्वाधिक मान्यता ऊदोजी की ही रही। भ्रमण-काल में ये प्राय जाम्भोजी के साथ ही रहते थे। लगभग सवत् १५८४–८५ म जाम्भोजी ने विष्णोई सम्प्रदाय के लिए सामान्य रूप मे सर्वमान्य और सबके पालनार्थ धर्मनियमों की व्यवस्था और उनके सहितावद्ध करने का विचार किया। इस हेतु ऊदोजी ने पाँच कवित्तो म अनेक धर्म–नियमो का उल्लेख किया। इनम उन्होंने जन साधारण के लिए जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित प्रमुख मान्य नियमो को अपने ढग से समाविष्ट करने का प्रयास किया था। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने से ये कवित्त नीचे दिए जाते हैं* —

प्रथम प्रभाते उठ,[5] जळ छाण 'र लीजै।
सजम सुच सिनान,[6] सुध हुय नांव जपीजै।

१–इसका प्रथम छन्द यह है —
 ओ गुर आयो भाभराज देव, निज हव साच पिछाणियो।
 जा साधा नै दिवलो पार, मुपि बोलै इमरत वाणियो।
 इमरत वाणी गुरमुख्यी बोलै, सुरग सुध लीलापती।
 देवा को गुर डिमत भामो, जतिया गुर पूरो जती।
 पार गिराए दिवै वासो, जे हक साच पिछाणियो।
 मायप रूपी विसन आयो, मुपि बोलै इमरत वाणियो॥ १ ॥–प्रति सख्या २०१ से।
२–क–स्वामी ब्रह्मानन्दजी श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ ६१–६६।
 ख–जम्भेश्वर कर धी तेहि दएऊ। नैण जात विस्नोई भएऊ॥
 –प्रति सख्या १९३, जम्भसार प्रकरण–७।
३–कुलेचन्द दीन जागत काया, उतरे गग गुर भेंट आया।
 तडहरे गोग साप्यात नाए, नैण सह उजळा ऊद नाए॥ १५१॥ कथा परसिध।
४–ऊदो भगत कियो अपरपर, जो जपतो महमाई॥ ४॥–साखी, प्रति सख्या २०१।
* द्रष्टव्य–प्रति सख्या १५९, २३०, २८२ तथा ३१०। इनमें प्रति सख्या २३० मे ५, १५९ २८२ म पहले ३ तथा ३१० मे अन्तिम २ कवित्त मिलते हैं। आगे प्रतियो की सख्या सहित इनके रूपान्तर और पाठान्तर दिए जा रहे हैं।
५–२८२ म—'उठ' के पश्चात 'जै' अतिरिक्त।
६–२३०—'ध्यान'।

होम करै पढै सवद, दुवध[1] सव दूर गमावै ।
करै रसोई हाथ और को पलो न छिवावै[2] ।
अमल तमाखू भांग, मद आंमख टाळै[3] घंणा ।
विष्ण भगत[4] उधो कहै, एह धरम विष्णोइयां[5] तणां ॥ १ ॥
तिरिया रुतवंती[6] छोत, पलो नहीं[7] लगावै ।
वाहर रहै दिन पांच, संजम हुय भितर[8] आवै ।
वाळ जनम एक मास,[9] सूवो 'र सूतक टळै[10] ।
होम जाप कळस थाप, चळू[11] दे विष्णोई[12] करै[13] ।
सूतक[14] पातक वोह टळै, औरू[15] आचार वोह घंणां ।
विष्ण भगत उधो कहै, एह[16] धरम विष्णोइयां तणां ॥ २ ॥[17]
करै रूंख प्रितपाळ[18] खेजड़ा रखत रखावै[19] ।
वकरा पाळै थाट कर,[20] तणी नहीं नखावै ।
जीव मारंतो देख जाय कै[21] आंण दिरावै ।
आंण लोप वे मार है अपणो[22] सीस दिरावै[23] ।

१-१५९—'दुवद', २३०—'दुवधा' ।
२-२३०—'लावै' ।
३-२३०—'त्यागै' ।
४-१५६, २८२—'भक्त' ।
५-१५६—'विसनोइयां' ।
६-१५६—'रतवंती', २३०—'रितुवंती' ।
७-२३०—'सुनायै' ।
८-२३०—'मांये' ।
९-२३०—पक्ष दोय ।
१०-२३०—'टरहै' ।
११-२३०—'पाहळ' ।
१२-१५६—विसनोई ।
१३-२३०—'कर है' ।
१४-२३०—'सूतक पातक' के स्थान पर—'मूवो मूतक' ।
१५-१५६,२३०—ग्रोर ।
१६-२३०—यह ।
१७-२३०—में यह तीसरा छन्द है ।
१८-२३०—प्रतपाळ ।
१९-२३०—रहावे ।
२०-२८२—में त्रुटित; २३०—में इसके पश्चात्—'मु' ग्रतिरिक्त ।
२१-२३०-कर ।
२२-१५९—ग्रापणो ।
२३-२३०—में इस पूरी पंक्ति के स्थान पर—'ग्रपणी ज्यूं लो वसाय ज्यूं ही त्यूं जीव छुटावे' ।

आप मरता मरण न देह, हर हेतारत[1] सड सही ।
एह धरम विष्णोइयां[2] तणां, विष्ण भगत उधो कही ॥ ३ ॥[3]
जीव अनत जळ माय[4], पार गिणती नहीं पावैं ।
अणछांणी जळ पियां, पाप पोट सिर आवै ।
काठे पट[5] सू छाण, ज पीवण कूं लीजं ।
जीवांणी जळ माय, जाण जुगत सूं कीजं ।
दया धरम को मूळ[6] है, उधव दया जु पाळियै ।
सत सबद सतगुर कयो, हसा दळै ज्यू टाळियै ॥ ४ ॥[7]
करण रसोई काज, देख कर ईंधण लीजं ।
कीडो मकोडी जीव, झाड जुगत सूं दीजं ।
होय रसोई त्यार, विष्ण[8] कं भोग लगावे ।
बांटे हरि कै हेत, पीछै आप हो पावं ।
दया सहत[9] भगती करं, साचं सतगर यूं कही ।
उधव वे जन ऊधरं, भवसागर भरमैं[10] नहीं ॥ ५ ॥[11]

प्रसिद्ध है कि इस पर जाम्भोजी ने केवल २९ धर्मनियम बता कर ऊदोजी को अत्यन्त सक्षेप मे उनका नामोल्लेख मात्र करने का आदेश दिया । उपर्युक्त पांच कवित्तों को इस रूप में स्वीकार न करने के कई कारण थे –

(१) इनमे नियमों को निश्चित सख्या का उल्लेख नहीं था ।
(२) जाम्भोजी के आदेश–निर्देश का कहो भी नामोल्लेख न होने से इनमे वर्णित नियमो की सर्वमान्यता के विषय म सन्देह की गुजाइश थी ।
(३) जिस ढग से ये प्रतिपादित किए गए थे, उनम आगे चल कर घटबढ भी सम्भव थी ।
(४) सामान्य विष्णोई जन के लिए इनको याद रखने का सुभीता कम ही था, आदि ।

फलस्वरूप ऊदोजी ने जाम्भोजी द्वारा निर्देशित नियमो को उनकी निश्चित सख्या २९ और तदहेतु जाम्भोजी के आदेश का उल्लेख करते हुए पुन दो 'ड्योढे'[12] छप्पयो में

१–१५६—हेयारत, २३०—हितारथ ।
२–१५६—विसनोईया ।
३–२३०—मे यह दूसरा छन्द है ।
४–३१०—माहे ।
५–३१०—कपड ।
६–३१० मे—'ळ' त्रुटित ।
७–२३०—मे इसकी अन्तिम दो पक्तियां, पांचवें छन्द की अन्तिम पक्तियां हैं ।
८–३१०—विसन ।
९–३१०—सेहेत ।
१०–३१०—'को भय' ।
११–२३० मे इसकी अन्तिम दो पक्तियां, चौथे छन्द की अन्तिम पक्तियां हैं ।
१२–ऐसे छप्पयों के उल्लेख भिन्न नामों से किंचित् लक्षण परिवर्तन के साथ छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में मिलते हैं । द्रष्टव्य– (शेषांश आगे देखें)

अजर जरै जीवत मरै*, वास वैकुंठां पावै[1] ।
करै रसोई हाथ*, आन को पलो न छुवावै[2] ।
अमर रखावै थाट[3]*, बैल बधिया न करावै[4]* ।
अमल* तमाखू* भाग* मद* सूं[5] दूर ही भागै ।
लील न लावै अंग*, देखता[6] दूर ही त्यागै ।
गुणतीस[7] धरम की आखड़ी[8] हिरदै धरियो जोय ।
जांभैजी किरपा[9] करी, नांव[10] बिष्णोई होय ॥ २ ॥

इसी को लक्ष्य कर सुरजनजी जैसे सिद्ध कवि ने इनको छप्पयो का विशेष कवि कहा था :-'नैण छपै भीलालेस नेतो, जोतेग लाल सुपात जिसौ।'

ध्यातव्य है कि तम्बाकू का निषेध जाम्भोजी और ऊदोजी की भी सूक्ष्म दृष्टि और उनके विस्तृत भ्रमण का परिचायक है। २९ नियमो मे इसका निषेध देखकर लोग इनको परवर्ती आयोजना और इन दो छप्पयों को बाद की रचना समझ बैठते हैं, जो भूल है। भारत मे तम्बाकू के प्रयोग और प्रचलन के संबध मे दो मत हैं। एक के अनुसार, 'भारत मे इसे पहले पहल पुर्तगाली पादरी लाए थे[11], और दूसरे के अनुसार, यह यहा इससे पूर्व भी विद्यमान थी[12]।

संवत् १५७२ (सन् १५१५) तक समूचे पश्चिमी समुद्र तट पर पुर्तगालियों ने अधिकार कर लिया था और इस संवत् तक वे भारत में नौ सेना मे सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न हो गए थे[13]। बढते हुए शासन के साथ-साथ उनका व्यापार भी बढता गया। इस प्रकार संवत् १५६७-१५७२ के बीच भारत मे, विशेषत: दक्षिण भारत मे तम्बाकू का व्यापार और प्रचार-

---

१-इस अर्द्धाली के स्थान पर—५२ मे 'वे वास स्वर्ग ही पावै,' २३० तथा २९३ मे—'वास सुरगे सुप पावै'। ७८ में—'वास' से पूर्व 'सो' अतिरिक्त।
२-'आन ‥ छुवावै' के स्थान पर ५२ में—'आन सूं पाला न लावै', ७८ मे 'आन सूं पलो न लगव'।
३-५२—ठाठ।
४-२३० में—'करै रसोई ‥ करावै'—दोनो पक्तियां त्रुटित, २९३ में चौथी पक्ति तीसरी के और तीसरी चौथी के स्थान पर है।
५-२९३—तें।
६-५२—देखते।
७-५२, २९३-उणतीस, २३०—उन्तीस, ७८ मे इससे पूर्व—'२९'।
८-५२—आकडी।
९-सभी प्रतियो मे—'कृपा'।
१०-५२—नाम, इससे पूर्व ७८ मे 'जारो', २३० मे—'जा को' तथा २९३ मे—'जहा रो' पाठ अतिरिक्त है।
११-हिन्दी शब्द-सागर, दूसरी जिल्द, पृष्ठ १३६४,—"तमाखू" के अन्तर्गत ना० प्र० स०, काशी, सन् १९२०।
१२-नगेन्द्रनाथ वसु हिन्दी विश्वकोश, जिल्द-९, पृष्ठ २८८, सन् १९२५, कलकत्ता।
१३-मजुमदार, रायचौधरी और दत्त ऐन एडवान्स्ड् हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृष्ठ ६३२, सन् १९४८।

प्रसार होने लगा था और जो बढ़ता ही जा रहा था। जाम्भोजी का भ्रमण व्यापक और विस्तृत था। उन्होंने दक्षिण में कर्नाटक के 'शेख सद्दो' से गो-हत्या बन्द करवाई थी, जिसके अनेक उल्लेख मिलते हैं। दक्षिण में तम्बाकू का बढ़ता हुआ प्रयोग और प्रचार देख कर तथा इससे होने वाली बुराइयों को लक्ष्य करके उन्होंने इसका वर्जन किया। ऊदोजी के छप्पयों में तम्बाकू के उल्लेख का यही कारण है। संस्कृत के "कलञ्ज" शब्द का एक अर्थ तम्बाकू[१], तम्बाकू का पौधा[२], धूम्रपान-द्रव्य या सुलफा[३] होता है। विष्णु सिद्धान्त सारावली नामक प्राचीन वैद्यक-ग्रन्थ में 'कलञ्ज' का अर्थ तम्बाकू ही है। वहां इसकी विशेषता[४] बताते हुए लेखक ने धूम्रपान के लिए 'कलञ्ज संवेष्टन' का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ 'चुरट ही अनुमित होता है'[५]। दूसरे शब्दों में इसको बीड़ी की संज्ञा दी जा सकती है। राजा राधाकान्त देव[६] और तर्क-वाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य[७] ने ऐसा ही माना है। पद्मपुराण में भी धूम्रपान का उल्लेख है[८]। इस प्रकार भारत में भी तम्बाकू की विद्यमानता पुरानी सिद्ध होती है। अमेरिका के आदिवासी तो इसका तीनों रूपों (खाने, सूंघने और पीने) में प्रयोग बहुत प्राचीन काल से करते थे। सन् ७०० ई० तक की पुरानी कब्रों के ढेर में पाइप पाए गए हैं[९]।

जहां तक 'तम्बाकू' या 'तमाकू' शब्द का प्रश्न है वह अपेक्षाकृत नया है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी[१०] और डा० धीरेन्द्र वर्मा[११] के अनुसार यह शब्द पुर्तगाली है, किन्तु

१-क-आप्टे : दि प्रैक्टिकल संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, पार्ट फस्ट, पृष्ठ ५४४, पूना, सन् १९५७।
  ख-मोनियर विलियम्स: ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ २६०, वाराणसी,।
  ग-नगेन्द्रनाथ वसु : हिन्दी विश्वकोश, जिल्द ४, पृष्ठ १६७, कलकत्ता।
२-क-हिन्दी शब्दसागर, पहला भाग, पृष्ठ ४८८, का० ना० प्र० सभा, सन १९१६।
  ख-मानक हिन्दी कोश, पहला खण्ड, पृष्ठ ४७३, हि० सा० स०, प्रयाग।
३-ज्ञानेन्द्रमोहन दास : बांगाला भाषार अभिधान, प्रथम भाग, पृ० ४५२, द्वितीय संस्करण।
४-कलञ्ज संवेष्टन धूमपानात् स्याद्दन्त शुद्धिर्मुख रोग हानिः।
  कफघ्नमामज्वरहानि कृच्च गान्धर्व विद्या प्रवणैक सेव्यम्।
  -शब्द कल्पद्रुम, द्वितीय काण्ड, पृष्ठ ५६ पर उद्धृत, वाराणसी, सन् १९६१।
५-नगेन्द्रनाथ वसु : हिन्दी विश्वकोश, जिल्द ९, पृष्ठ २८९, १९२५ ई०, कलकत्ता।
६-शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय काण्ड, पृष्ठ ५६, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९६१।
७-वाचस्पत्यम्, तृतीय भाग, पृष्ठ १७७७, चौखम्बा सं० सिरीज, वाराणसी, सन् १९६२।
८-धूम्रपान रतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
    दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः॥-अध्याय २२।
    (क)-पं० लेखराम : कुलियात आर्य मुसाफिर (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ १११ पर उद्धृत, जलन्धर, सन् १९६३।
    (ख)-श्री शालग्राम : श्री सप्तव्यसन संतापिनी, पृष्ठ १५६, पर उद्धृत ; जोधपुर, संवत् १९९०।
९-(क) सर जोन हैमरटन : दि न्यू बुक आफ नालेज, वोल्यूम सेवन, पृष्ठ ३२१९, लन्दन।
  (ख) गोरडन स्टोवैल : दि बुक आफ नालेज, वोल्यूम सेवन, पृष्ठ ३०५, लन्दन।
१०-ओरिजिन एन्ड डेवलपमेन्ट आफ दि बंगाली लेंग्वेज, पार्ट फस्ट; पृष्ठ ६२३।
११-हिन्दी भाषा का इतिहास, भूमिका, पृष्ठ ७५, पाद-टिप्पणी, सन् १९५३।

अन्यत्र[1] इसको स्पेनिश मूल का बताया गया है। ध्यातव्य है कि संवत् १५३७ (सन् १४८०) से संवत् १६९७ (सन् १६४०) तक पुर्तगाल स्पेन के अधीन रहा था। भारत मे इस शब्द का प्रचलन पुर्तगालियो द्वारा ही हुआ था।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि तम्बाकू के विषय म चाहे जो भी मत माना जाय, संवत् १५८५ के लगभग इस देश म इसका प्रचार हो गया था। इसलिए ऊदोजी द्वारा अपने कवित्तो मे किए गए इसके उल्लेख का ऐतिहासिक असंगति मानने की भूल नही करनी चाहिए।

इन नियमो म सन्ध्या-उपासना के समय आरती और हरि-गुणगान एक नियम है (८ वा)। ऊदोजी ने इसकी पूर्ति चार सार-पूर्ण लघु आरतियों की रचना करके की (देखें-परिशिष्ट)। सभी मे ये विश्णोई समाज म बहु-प्रचलित हैं। उनके नित्य-नैमित्तिक कार्यों म इनमें से किसी एक का गाया जाना भी एक आवश्यक कृत्य है। साम्प्रदायिक दृष्टि से यह उनका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है।

उल्लेखनीय है कि धर्म-नियमों सम्बन्धी पूर्व उद्धृत सातो छन्दो की भाषा, शैली वही है, जो कवि की अन्य रचनाओ की है। उनकी शैली की एक प्रमुख विशेषता है-दो विभिन्न छन्दो या रचनाओ मे पंक्ति, अर्द्ध-पंक्ति, शब्द, कथन या भाव-विशेष की पुनरावृत्ति। इसके दो उदाहरण देखे जा सकते हैं —

(१ "जम्मे" की दूसरी साखी इन्ही की रचना है, जिसकी कतिपय पंक्तिया ये हैं —

कावरिया जमले नावही, रंस्या जागरि जांह्य ॥ ६ ॥
फोडा घातै पायचा टळि टळि पाव टहाय ॥ ७ ॥
खांधी बांधी पाघडी निरखत चालै छांह ॥ ८ ॥
से को बोलै सामहौं, दाझि रहैं मन माहि ॥ ११ ॥
दोन्हीं सीख न मांनही कायळ ही मानाहि ॥ १२ ॥—प्रति संख्या २०१ से।

इसकी तुलना उनकी अन्य रचना "भ्रम चितावणी" (प्रति संख्या २३९ मे) की निम्नलिखित पंक्तियो से की जा सकती है जिनमे युवावस्था का चित्रण है —

हसणं बोलणं को चाव, जगळी गीत मेतो भाव।
खाघी पागडी झोकाय, छोगो दीयौ है लटकाय ॥ २३ ॥
फोडा पायचा घालै क, छाया निरखतो चालै क ॥ २६ ॥
माता पिता नही जानै, **दोन्ही सीख नहीं मानै**।
भाई बंध सब खारा, साळा सुसरा प्यारा ॥ २८ ॥
साधु कहत जो समझाय, मूरख रूस मन मे जाय ॥ ३५ ॥

भाव-साम्य के अतिरिक्त दोनों की मोटे अक्षरो मे छपी पंक्तियो की पुनरावृत्ति द्रष्टव्य है।

१-दि शोर्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी आन हिस्टोरिकल प्रिन्सिपल्स्, पृष्ठ २२०३, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, सन् १९५६।

(२) एक अन्य "करणां की" साखी में जाम्भोजी की महिमा-वर्णन के पश्चात् कवि का कथन है :—

सतगुर निंदै देवळ विंदै, धोकै काठ पखांणो ॥ ९ ॥
तीरथि न्हावैं पिंड छलावैं, जोय जोय नीर निवांणी ॥ १० ॥
सुरगापुर की सार न जांणं, भूला भुवैं इवांणी ॥ ११ ॥—प्रति संख्या २०१ से।

तुलना के लिये "छपइयों" का १४ वां छन्द देखा जा सकता है, जिसमें मोटे अक्षरों में छपे अंश की पुनरावृत्ति हुई है :—

जे पाहंण छै देव तो सिल परवत जाय धोको।
कूड़ै माया जाळ भ्रम कांय भूला लोको।
धोको काठ पखांणि हरपि घंटिका वजावो।
सूकै उपरि पाती धरो, हर्‌यो कांय तोड़ि सुकावो।
केसरि चंदंण धोकतां, लीयां वहंता साथि।
पाहंण पाहंण रळि गया आया जंम के हाथि ॥—प्रति संख्या २०१ से।

(३) अब धर्मनियमों सम्बन्धी पाँच कवित्तों को लें।

(क) चौथे के "**दया धरम को मूळ है**" की पुनरावृत्ति ५६ "छपइयों" में से तीन में हुई है (संख्या २३, २५ तथा ५०) जिनमें दो की सम्बन्धित पंक्तियां ये हैं:—

१—**दया धरम को मूळ**, धरम जे आप ही विदो।
हिरदै को सुध होवै, और को वुरो न चिंदो ॥ २३ ॥—प्रति संख्या ४६ से।

२—असनेही वंध मं गिणि, मं गिणि नारि गुंण हीणी।
मं गिणि विपर विणि वेद, मं गिणि काटरि घरि वीणि।
मं गिणो दया विणि धरम, मं गिणि इंद विणि वाजा।
मं गिणि तुरी विणि तेज, मं गिणि मंत्री विणि राजा ॥ २५ ॥
—प्रति २०१ से।

(ख) इन पाँचों के प्रथम तीन में "**विष्ण भक्त ऊदो कहै**" का भोग लगता है, जो "छपइयों" के ११ छन्दों में भी है (संख्या १, २, ४, २६, २७, ३१, ३२, ३५, ३६, ५४ और ५६), जिसके उदाहरण स्वरूप केवल एक—चौथा छन्द ही पर्याप्त है :—

विसंन द्यै तूठो पार, विसंन वैकुण्ठ वसावै ॥
विसंन को जपतां नांव, निगुंण नर हासो आवै।
रंहस्या जागर जांहि, जित को भूत खिलावै।
रंहंसि विणासैं जीव, लोभ करि हत्या कंमावै।
द्यैंह अनेक अनेक दांन, गळ काटै मुकरत गूंवै।
विसंन भगत ऊदो कहै, अंनंत जूंणि भूला भुंवै ॥ ४ ॥—प्रति संख्या २०१ से।

इसकी "रंहस्या जागर जांहि" की पुनरावृत्ति ऊपर उद्धृत प्रथम साखी की छठी

पवित मे भी है। इनमे वर्णित कतिपय धर्मनियमो की पुनरावृत्ति कवि ने "ग्रभ चितावणी" मे, युवावस्थावर्णन प्रसग मे भी की है[१]।

(ग) इन पाँच कवित्तो की पक्तियों की पुनरावृत्ति भी दो "ड्योढे" छप्पयों मे हुई है। इनमे से प्रथम कवित्त की "करै रसोई हाथ और को पलो न छिवावै" तथा "अमल तमाखू भाग मद" पक्तियाँ इसी रूप मे दूसरे "ड्योढे" छप्पय में देखी जा सकती हैं।

(घ) अन्त मे, दो "ड्योढे" छप्पयों के परस्पर मिलान करने पर भी यही बात पाई जाती है। प्रथम छन्द की "वास वैकुंठा पावो" अर्द्धाली दूसरे छप्पय में भी है, इसके पाठान्तर में भी वही भाव है। "वास वैकुंठां" का उल्लेख परिशिष्ट मे उद्धृत आरती मे भी है।

इस प्रकार, सम्प्रदाय मे परम्परागत मान्यता और प्रसिद्धि के अतिरिक्त, ऊदोजी की रचनाओ के अन्त साक्ष्य से भी यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि धर्म-नियमो सम्बन्धी सातो छन्द इन्ही की रचना है।

इस अन्त : साक्ष्य और तम्बाकू सम्बन्धी इतनी चर्चा करने का उद्देश्य, अधुना प्रचलित दो 'ड्योढे' छप्पयों और उनमें सहितावद्ध २९ धर्मनियमों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए ही की गई है।

साहबरामजी ने लिखा है कि चित्तौड की झाली राणी ने सम्भराथळ से जाम्भोळाव जाते हुए बीच मे खींदासर मे ऊदोजी के दर्शन किए थे —

सतन से अज्ञा लई, झाली कियो पयांण।
झींझाळै की सायरी, डेरा कीन्हा आंण।
तहा ते चल खींदासर आयेऊ। ऊदोजी के दर्शन भयऊ।—जम्भसार, प्रकरण १७वां।

इसके निष्कर्ष स्वरूप इतना ही कहा जा सकता है कि कवि की बहुत प्रतिष्ठा और व्यापक मान्यता थी। सम्प्रदाय मे आने से पूर्व ये गृहस्थ थे। वर्तमान मे तिलवासणी, नैणास और केलणसर इनके वशजों के स्थान हैं। ऊदोजी का स्वर्गवास सवत् १५९३–९४ मे आसोजाई गाव मे हुआ था[२]। प्रसिद्ध है कि जब राव जैतसीजी सवत् १५९६–९७ मे मुकाम-

---

१–कुळ को ध्रम सब छाड्यो, माया मद मे वाड्यो।
चख्यू दिदै की फूटी क, दिल की दया सब ऊठी क ॥ ३० ॥
काटै वनी बहु फिरतो, हस्या जीव की करतो।
तमाकू भाग बहु पीवै, कुमली कुमल सू जीवै ॥ ३१ ॥
अमपळ मुप सू भापै, वैर हरि सत सू रापै।
निंद्या साध की ठानै, हरि को भेष नही मानै ॥ ३२ ॥
पाणी छाण नही पीवै, अ न तो स्वान ज्यू जीवै।
हरि के हेत न कर है, ओदर पसू ज्यू भर है ॥ ३३ ॥
दिल मैं साम सेती दूज, निस दिन रह्यो आन ही पूज।
गुर को वचन नही मानै, फिर फिर करै ध्रम छानै ॥ ३४ ॥—प्रति सख्या २३६ से।

२–ऊदो आसोजाई रहेऊ। तीन हजार पडे सग गएऊ ॥—प्रति सख्या—१९३, जम्भसार, २२ वा प्रकरण, पत्र–१४ वा।

मन्दिर पर गये थे (द्रष्टव्य-कवि संख्या ५३), तब ये वर्तमान नहीं थे। यह उनके जीवन की ऊपरी सीमा है। अपने एक छप्पय में इन्होंने पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी[1] की तथा दूसरे में नारनौल के युद्ध में बीकानेर के राव लूणकरण, उनके कुंवर प्रतापसी, और मंत्री कर्मचन्द[2] की मृत्यु का उल्लेख किया है। दोनों घटनाएँ संवत् १५८३ की हैं[3]। अन्यत्र राग "रामगिरी" में गेय एक साखी में "अली ब्राह्मण" के स्वर्गवास का उल्लेख है[4]। ये मांगलोद के थे और ऊदोजी की भांति पहले मूर्ति-पूजक थे, पश्चात् जाम्भोजी से साक्षात्कार कर सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे। अलीजी का नाम "तूर" के २४ व्यक्तियों में ८वां है। सुरजनजी ने जाम्भोजी के साथ 'जमात' में इनका प्रेमपूर्वक हरि-गान करने का उल्लेख किया है[5]। अन्यत्र भी इसकी पुष्टि करते हुए सुरजनजी ने इनको "मोम दिल" अर्थात् कोमल हृदय वाला बताया है :-"फीरति अली मोम दिल काजै जन सुरिजंन उपदेश दयो(-गीत)। इन्होंने जाम्भोजी के वैकुंठवास के बाद संवत् १५९३ में स्वेच्छा से शरीर-त्याग किया था। परमानन्दजी वणियाळ ने "चिळत कियां स्वड्यां री विगति" में चौथी संख्या पर इनका नामोल्लेख किया है। इस प्रकार संवत् १५९३ तक ऊदोजी का जीवित रहना सिद्ध है। इसी साल या इसके एक साल पश्चात् संवत् १५९३-९४ में ऊदोजी ने स्वर्गलाभ किया होगा। कहा जाता है कि मृत्यु से कुछ पूर्व "करणां की" एक साखी में उन्होंने अपने भावोद्गार प्रकट किए थे[6]। साखी का मर्मभेदी वर्ण्य-विषय इस बात की साक्षी भी देता है।

१-तंबू लाल सरायचा लेलां कंचंण कोड़ि।
एक पळक मां दे गयौ, तिहं सिर वारे जोड़ि।
जे भुगत्या गढ पड़िगनां, ते चाल्या मुंह मोड़ि।
भागो ब्राहंम पातिसाह, सगते लागी पोड़ि।
अलप जिणांवै सो जंणै, न धाजो औरां कही।
जांह के दळ बळ एतळा उदा, ब्राहंम सोघ्यौ ही लाधो नहीं॥ ९॥-प्रति २०१ से।

२-कितरा मूं मिंदर माळिया, सुप वासंण सेझ पिलंगा।
कितरा गींवर गूंजता, सांहंण तुरी तुरंगा।
कितरा सूं चांवर चौरासिया, दळ बळ वै दीवांणां।
कितरा मूं मुंहतो करमसी, जित घुरतां वै नीसांणां।
अतरा मूवा नारनौळ जग सांमलियौ चावौ।
कितरा मूं कंवर प्रतापसी, लूंणकरण कित रावौ?॥ १५॥-प्रति २०१ से।

३-क-मजूमदार, रायचौधरी और दत्त : एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृष्ठ ४२७।
ख-दयालदास की ख्यात, भाग २, पृष्ठ ३६, बीकानेर, संवत् २००५।

४-पायळ पहरै के मुचियारा, दोजकि जैं पापी हतियारा।
पायळ सोहै अलीजी के पाए, ज्यौं ठमकंतो मुरग सिधाए॥ २॥ ६२॥-प्रति २०१।

५-अरज करि निकट रिणधीर आवै, गाढ करि अली हरि अद गावै।
आप गुर थाट जंमाति आगै, जोति भंति नियै सबद जागै॥ १३७॥-कथा परनिध।

६-हंमे परदेसिया हो जी ओ देसड़ो बीडांणो॥ १॥
साथी म्हारा चालिया, हंमै रह्यो पछतांणो॥ २॥
कैह का मात पित बंहंण र भाइया, कैह का पप परवारा॥ ३॥
कैंह की मंडप मेड़ियां, कैंह का घर वारा॥ ४॥ (शेषांश आगे देखें)

रचनाएँ:—ऊदोजी की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं —

(१) साखी, सख्या–१५ । (२) हरजस, आरती (८+४)–१२ ।

(३) फुटकर कवित्त (छप्पय)–६५ । (४) प्रभ चितावणी, छन्द सख्या–१४२ ।

आगे इनका परिचय दिया जा रहा है ।

(१) साखी —साखियाँ निम्नलिखित हैं ।

१–जमलै जुळि कै जाइयै, जे दिळ जमलो होय[1] ।–पक्ति २६, रूपा की, राग सुहव ।

२–गुर कं कयनि जुल्या मेरा बावा जाहु का हरिया भाग[2] ।

–४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।

३–गुर पूरो दातार म्हे छा थारा मगता[3] ।–५ छन्द, छदा की, राग धनासी ।

४–मैं तू म्हारा साम्य स पोहर सोवरियो[4] ।–४ छद, छदा की, राग धनासी ।

५–ओ गुर आयो शामराज देव निज हुक साच पिछाणियो[5] ।

–५ छद, छदा की, राग धनासी ।

६–वाजै वाजै रे मदळिया सरळ साद नै सांमोजी रो सबद सुहावणों[6] ।

–४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।

७–काया तो मोमिणों रतन सरीखी, पहरलो मोमिण कोई[7] ।

–५ छन्द, छदा की, राग धनासी ।

माया जग की मोहणी, भूला जढ ससारा ।। ५ ।।
साई की मडप मेडिया, अलप तणा घर बारा ।। ६ ।।
म्हेतो छाडि र चालिस्या, थई देह घर बारा ।। ७ ।।
म्हतो बौहडि न आविस्या, इह पोटै समारा ।। ८ ।।
जग मा मदफळी घणी, न जपे करतारा ।। ९ ।।
अ ति कालि पछताविस्यै, करता गरव गिंवारा ।। १० ।।
आगै आगै जीवडा, पाछै जमदारा ।। ११ ।।
आग तिलकणी पडिया, साई का पथ करारा ।। १२ ।।
साई लेपो मागिसी, जीवडो डराणो ।। १३ ।।
ल्पो दीरो सोहरो, जै क्यो करण कुमाणो ।। १४ ।।
आपे काजी होयसी, आपे मुलाणो ।। १५ ।।
आपे आपे वाचिसी, कतेब कुराणो ।
आडो भु य जळ भारिया, करे पार को पयाणों ।। १७ ।।
तेतीसा सू मेळियै, चूकै आवाजाणों ।। १८ ।।
ऊदो बोलै वीनती, नफर कामाणों ।। १९ ।।–प्रति सख्या २०१ से ।

१–प्रति सख्या ७६, ९४, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१ ।
२–प्रति सख्या ६८, ७६, ९४, १४१, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, २१५, २३२ ।
३–प्रति सख्या ६८, १४३, १५२, २०१, २१५ ।
४–प्रति सख्या ६८, ७६, ९३, ९४, १४१, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, २१५ ।
५–प्रति सख्या ६८, ७६, ९३, ९४, १४१, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, २१५ ।
६–प्रति सख्या ६८, ७६, ९४, १४१, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, २१३, २१५ ।
७–प्रति सख्या ६८, ७६, ९३, ९४, १४१, १४२, १५२, २०१, २१५, ३२१ ।

८–दिनि जागो दिनि जागो ओ गुर प्रगट आयो [1] । –पंक्ति १७, करणां की ।
९–हमें परदेसिया हो जी, ओ देसड़ो वोड़ाणों [2] । –पंक्ति १९, करणां की ।
१०–आज पियारे जी भाई मोमिणों, हम घरि वीरंण आए [3] ।–पंक्ति १०, करणा की ।
११–एक मिलंती दोय मिली दो रंगीले [4] ।–पंक्ति २९, करणां की ।
१२–अहरंण वाज हथोड़ वाज्यो, पांणी सूं खालिक राजा पिंड घड़े [5] ।
–पंक्ति १६, करणां की ।
१३–जागो रे मोमिणों न सुवो, नींद न करो पियार [6] । ९ दोहे, राग रांमगिरी ।
१४–पायळ घड़ि दे सुघड़ सुनारा, भांजंण घड़ंण सुंवारण हारा [7] ।
–६ छन्द, राग रांमगिरी ।
१५–नारायण नांम अनंत अनंत अवतार ज्यूं धाइयें [8] ।–४ छन्द, छंदां की ।

साखियों में हरि और जम्भ–महिमा, तेतीस कोटि जीवों के उद्धार–सम्बन्धी साम्प्रदायिक मान्यता, आत्म–निवेदन, चेतावनी, संसार की नश्वरता, नाते–रिश्तों की असारता, विष्णु नाम जप, आदि–आदि विषयों का अनेक प्रकार से भाव–भरा वर्णन मिलता है।

(१)–हरजस :—
१–"सोहळो"–साहिब सिरजंणहार जिण उपाई मेदुंणी [9] ।–१२ छन्द, राग खंभावची ।
२–"कूकड़ो"–वोलि विसंनजी रा जितवा वोलियो भली सुरवांणि । वोलते रो सवद सुहांवणो । चांचड़ली केसरि रो रंग; चांदणि थारो गात पखाळियो [10] ।
–७ छन्द, राग रांमगिरी ।
३–"जखड़ी"–सुख को दाता सांम्य, कांय विसारियें ।
तेरी भगति विनां भगवंत जळंम ज हारियें [11] ।
–१० छन्द, कुंटलिया, राग गवड़ी ।
४–गिरधर गाइयें जो पाइयें सुरां संगति पार [12] । ६ छंद, राग गवड़ी ।
५–रे मंन जगत सुपनो जांण [13] । –१२ छंद, राग केदारो ।

१–प्रति संख्या ६८, ७६, ८३, ९४, १४१, १४२, १५२, २०१, २१५, ३२१ ।
२–प्रति संख्या ६८, १५२, २०१, २६३ ।
३–प्रति संख्या १५२, २०१ ।
४–प्रति संख्या ७६, ८४, १४२, १९१, २०१, २६३ ।
५–प्रति संख्या १४१, २०१, २६३ ।
६–प्रति संख्या २ में इसको हरजस बताया गया है; ९४, १४१, १४२, १८१, २०१, २६३ ।
७–प्रति संख्या २०१ और २६३ ।
८–प्रति संख्या १८१, फोलियो ४६ ।
९–प्रति संख्या ४८, २०१, २२७ ।
१०–प्रति संख्या ४८ (राग रामकली), २०१, २२७ ।
११–प्रति संख्या २०१ के आदि में, छन्द–१, ९ तथा १० लिपि अस्पष्ट होने से अपाठ्य और किंचित् त्रुटित हैं ।
१२–प्रति संख्या ४८, २२७ ।
१३–प्रति संख्या ४८, २२७ ।

६–घर आवोजी मिठ बोला प्यारी तमारी वातिया[1] । –५ पंक्तियाँ, राग काफी ।
७–घर आवो जी सजन सांवरा मन लागो जोर सुहावणा[2] । –६ पंक्तियाँ, राग काफी ।
८–'घूमर' –सतगुर दरसण म्हे जाग्या[3] ।

हरजसो मे विविध प्रकार से चेतावनी और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए हरि-प्रेम और मिलनोत्कंठा, संसार की असारता, सुकृत, कल्कि-अवतार आदि का हृदयग्राही वर्णन किया गया है ।

(२) आरती[4] —

१–आरती कीजै गुर जंभ जती की, भगत उधारण प्राणपति की ।
२–आरती कीजै गुर जंभ तुम्हारी, चरण सरण मुहि राख मुरारी ।
३–आरती कीजै श्री जंभगुर देवा, पार न पावै गुर अगम अभेवा ।
४–आरती कीजै श्री महाविष्णु देवा, सुरनर मुनिजन करै सब सेवा ।

इनमे श्रद्धा–भक्ति पूर्वक जाम्भोजी की स्तुति की गई है । आरतियों मे सर्वाधिक प्रसिद्धि इनकी ही है ।

(३) फुटकर कवित्त[5] (–छप्पय), संख्या–६५ तथा २ दोहे ।

कवित्तो में कवि ने अनेक भाव व्यक्त किये हैं । ये संक्षेप मे निम्नलिखित विषयो पर हैं –

(क) विष्णु विष्णु–जप, विष्णु ही सर्वोत्तम शक्ति है । अन्त मे वही काम आयगा, उसका जप मुक्ति का कारण है । जप ही सत्य है । स्वयं कवि की गवाही है कि जप से सांसारिक वैभव और मोक्ष की प्राप्ति[6] होती है । अतः जो जप नही करते वे अनन्त इतर योनियो मे भटकते रहते[7] और मनुष्य योनि मे भी भारी दुःख पाते हैं[8] । एक लघु कथा

१–प्रति संख्या १९६, पत्र–११ ।
२–वही ।
३–प्रति संख्या १५८, २७४ ।
४–प्रति संख्या ६७, १०६, १६५, १६७ १८८, १८९, २२८, २५२, ३६९ ।
५–प्रति संख्या १४, ४६. ६६(ठ), २०१ (फोलियो १२६–१३४, १८०, ५४१–४३ और ५५२), २१२, २३०, २३६, ३११ ।
६–म्हे जप ता इधक संतोष, दुरति दाळद दुष नासै ।
मन चित दिढ थीर, कुबळ ज्यौं हियो विगसै ।
अनत वधाई होय, जाणौ चौक चादिएं पूरो ।
हिरदै नाचै पात, सरस मनि सदा सधीरो ।
कजु कचण पार पदम जै दत्त लाभ किमन पयो कार्यो करू ।
जप ता इधक संतोष जदि हूं नाव विसन को ओचरूं ॥ ३ ॥–प्रति संख्या २०१ से ।
७–विसन अजप्या जोय, भील नीचा ग्रह जाया ।
विसन अजप्या जोय, सुणहा सूकर होय आया ।
विसन अजप्या जोय, ढोग कउवा अक सोहा ।
विसन अजप्या जोय, रीण चकवा विछोहा ।
साप परउ जड काटिया, जोय परताप पापा तणो ।
नहीं विसन नै दोस रे जीव, ओगविसी कियो आपणो ॥ ५ ॥–प्रति संख्या २०१ से ।
८–एक नित ही फिरै मजर, पेट दूभर करि घलै । (शेषांश आगे देख)

के द्वारा भी कवि ने हरि-भक्ति और जप-महिमा का दृष्टान्त दिया है। किसी गांव के हरिभक्त सेठ (संकरपण) और सेठानी बैलगाड़ी से अकेले ही कहीं चले। जंगल में चोरों ने उनको लूटने की सोची। एक तो रास्ते में स्त्री के रूप में पैरों में पट्टियाँ बाँध कर लेट गया, दूसरे ने सेठ से 'नहारवे' से दुखी उस स्त्री को चार कोस तक गाड़ी में चढ़ा लेने की प्रार्थना की। सेठ ने उनसे जानकारी न होने और लक्षणों से ठग से मालूम पड़ने के कारण इन्कार कर दिया। उन्होंने रघुनाथ की सौगन्ध खाकर सेठ का कुछ भी बिगाड़ न होने का विश्वास दिलाया। सेठ के न मानने[1] पर सेठानी ने दया कर उसको गाड़ी में बैठा लिया। स्त्री बने चोर ने मौका देख कर सेठ को मार डाला और रजाई में लपेट कर नीचे गिरा दिया। सेठानी ने आर्त्तभाव से भगवान से प्रार्थना की। प्रभु ने चक्र-सुदर्शन से चोरों का संहार करके सेठ को पुनर्जीवित किया। 'हरजी' इस प्रकार भक्तों के 'हुजूर' रहते हैं[2]।

(ख) जाम्भोजी : जाम्भोजी, उनके प्रमुख कार्यो और महिमा का बड़ा भक्तिभाव-पूर्ण वर्णन कवि ने किया है, वे प्रत्यक्ष 'देव' हैं, विष्णु हैं[3]।

मुंहघो होय जवांन, उठि जीवारी चलै।
टावर विळगावैं आंगळी, कोस दोय करैं पयाणौं।
मुंहघो सुंणियै अंन, जीण दिस करैं मुंहांणौं।
वांकी कदे न भाजै भूप, ते पड़ काठी वेचैं सहरि।
जांणीजैं चोर विसंन का ऊदा, न जंप्यौ उगंत पहरि ॥ ३० ॥-प्रति संख्या २०१ से।

१-आपां दीठां नहीं ओळपां, कांय जांणां छो कोई।
ठग सा दीसो ठीक, गळै गातरी संजोई।
थां म्हां वीच रघुनाथ, बुरो जे वंछां थानैं।
म्हारै सीस वहिजो संमसेर, प्रमेसर अरूठ हुवो म्हानैं।
निज साच कहै मानूं नहीं, कथंन कहो सोह कूड़ा।
कासुंण हुवो थां भेप धारि कियो, अग्यांनी जीव अकूड़ा ॥ १० ॥
—वही, फोलियो ५४१-४३।

२-जै जै श्री रघुनाथ राजि विनां कुंण राखै।
अवगति नाथ अनाथ साह साहणी भाषै।
मंन्यसा वाचा क्रंम, जे तिहुवां सचि होई।
हरजी सदा हजूरी; दूरि मत जांणो कोई।
राह गरू की मानंते, विसन सगाई वास।
रापंण हारा राजि छो; अवगति ऊधोदास ॥ १४ ॥-वही, फोलियो-५४१-४३।

३-(क) जिसो भंभ संसारि, इसो कुंण मुगंण गुंणवंतो।
मेवां दघां अहेड़ियां, हुवो साहिव सूं परचो।
अग्यांनी ग्यांनी किया, ग्यांन कथि दियो गिंवारां।
नंवंणि की सार न जांणता, सहजि मिलियो सुचियारां।
भूला भूतां पूजता, हतता जीव अजांणि।
सेवा आया साम्य की उदा, पांणी पीवै छांणि ॥ ३८ ॥ प्रति संख्या २०१ से।

(ख) कदि जाट जीकारयो, मुच सिनांन सुभाण्या।
कहर करोव कुवांणि, वरजि कंणि तीन्यो राण्या।
विसंन भगत कुंण किया, जीव दया किणि पाळी।
ऊत जुगां की वात किणि कळि जुग सिंभाळी। (शेषांश आगे देखें)

(ग) सासारिक नश्वरता और असारता इस प्रसग में कवि ने ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक[1] और पौराणिक[2] सभी व्यक्तियो के उदाहरण दिये हैं।

(घ) करणीय अकरणीय कृत्य . ऐसे अनेक प्रमुख कृत्यों का वर्णन कवि ने किया है जिनमे जप के अतिरिक्त जीवन-मुक्ति प्राप्त करन,[3] पत्थर पूजा[4] और काम-वासना त्यागने आदि के विशदपर्ण उल्लेख किए हैं।

(ङ) नीति-कथन ये प्रधानत दो प्रकार के हैं - एक वे जिनमे शुद्ध नीति-कथन है। इनम "रग" और "विरग[5] ", गुण-अवगुण, मेल मिलाप किससे और किससे नही,

---

छह दरसण जिह नै नवै, ग्यान पडग जोगेसुरो।
पुन सत सील सतोप, जती क्षम परतकि पुरो ॥ ४० ॥-प्रति सख्या २०१।

१ गया चौनीस बादेसाहु, और केता भूंवालू।
विक्रमाजीत अर भोजराज, गयो सो मुज वलालू।
सातिल सूजा वीका गया, थान गया पीरोजू।
लू णकरण सा होय गया, ताह का माघ न षोजू।
मडळीक अर चक्रवत, किता हुवा धरती धणी।
गोपीचन्द अर भरथरी उदा गुर भेंट्यो लाधी घणी ॥ ११ ॥-प्रति सख्या २०१।

२-गयो सो रावण राव लक गढ राज करतो।
गयो निमर गढि पातिसाह कुत पाग बळिवतो।
किता गया भोपित नर चकवै वषाणों।
गुर पिडत कितना गया, देवता अ त न जाणों।
गुर विण भेट्या अपै पोणा, महि मडळ को कोय कित।
धोण पळ समार मोह नारायण नाव निहचळ नित ॥ १२ ॥-प्रति सख्या २०१।

३-जीवत हूवा पाक गुर वचने जरणा जरी।
अमर हुवा ससार मा उदा गोपीचन्द अर भरथरी ॥ १० ॥-प्रति सख्या २०१।

४ मेर प्रवत कु बळाम सूर काढिप अजोवा।
पाहण ता सिमट धात हेम तावा अर लोहा।
पाहण ता गढ कोट मडप मंडो छाजा।
पाहण ता घर देहरा, थभ पौळि दरवाजा।
पाहण ता कूवा बावडी चाडि चौसिला घडोई।
घरती तोळा तुळि चडै पाहण देव न होई ॥ १३ ॥-प्रति सख्या २०१।

५-(क) रग राचै पर कोल रग सुरग पवाळै।
रग राचै राजिद तामदे पाट अ माळै।
रग तो गोई गोठिया ईठ सीठ मिताई।
रग ते वधू प्रीति रग ता सीण सगाई।
रग रूडो समार मा, रग सदा रळि आवणो।
विसन भगत उदो कहै साईं को नाव सुहावणो ॥ ३२ ॥

(ख) अ ग हुवै भोपाळ वसती गढ कोट उजाडै।
अ ग हुवै वर नारि, सूर वीरा पति पाडै।
अ ग हुवै राज्यद्र, राज ले वधव मारै।
अ ग गोई गोठिया, दाव दोरु मैं मारै।
अ ग न कीजै भाइयो अ ग को को छीनै।
विसन भगत उदो कहै, जाणता अ ग न कीजै ॥ ३३ ॥-प्रति सख्या २०१।

उज्ज्वल[1] क्या, खरा-खोटा आदि-आदि पर लिखे गये कवित्त प्रमुख हैं, जिनमें प्रायः दो विपरीत, गुण, धर्म आदि को लिया गया है। दूसरे वे जिनमें नीति-कथन के साथ-साथ विष्णु-जप[2] या जम्भ-महिमा[3] का उल्लेख है।

(४) ग्रभ-चितावणी (–प्रति संख्या २३९)।

यह १४२ "चौपई"– दोहों की वर्णन प्रधान रचना है। इसमें जीव के गर्भवास-दुख से लेकर विभिन्न अवस्थाओं में मनुष्य के कृत्य, मृत्योपरान्त कर्म-फल भोग और चौरासी लाख योनियों में भटकने का वर्णन करते हुए इससे छुटकारा पाने की मर्मभरी चेतावनी दी गई है। इसमें निम्नलिखित वर्णन हैं :–

(क) गर्भ-दुख, (ख) बाल-जीवन, (ग) तरुण और युवावस्था, (घ) वृद्धावस्था और मृत्यु, (ङ) धर्मराज के सम्मुख किए गए कर्मों का लेखा और फलभोग, (च) चौरासी लाख योनियों में आवागमन और (छ) इस दुख से मुक्ति-हेतु सुकृत-उल्लेख। वर्णन दो प्रकार के हैं– अवस्था-विशेष[4] के और योनि-विशेष के। सभी वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली और

१–अरिक सूर उजळो पहम उजळो दावानळ।
रेण चंद उजळो सा पुरिसां पाग भुजावळ।
जळ कंवळ उजळो सील उजळ नर काया।
कथंन साच उजळो खव उजळ श्री राया।
हरि रंग रूप राता रहै पत्रवट पेत उजगळो।
जोगी जुगति त्रभुवंण सहट उथी इगि परि उजळो ॥ ३ ॥ –प्रति २०१, फो० १८०।

२–भूपां भोजंन सार, सोहड़ ज्यों सापुरिसाई।
धोरी कंधे सार महलि ज्यों जीभ मिठाई।
तुरियां तेज ज सार पुरुप बोल परवांणै।
कायथ लेपै सार विपर ज्यों वेद पुरांणै।
पहमी पांणी सार अंन वंन जिह निपजै घरंगि।
ऊं नांव विसंन को सार उदा, हळति पळति जीवण मरंणि ॥२४॥ –प्रति २०१।

३–ते बांभंण चंटाळ सरव गुर सांम्य न भेटै।
मावस गहंण अकारटा लोभ करि हत्या समेटै।
ते वांणियां चंटाळ भंगति को भेद न जांण्यो।
ते थोरी परवीव जांह अवतार पिछांण्यो।
आयो आप इकांयती, परपि लेसी पोटां दरां।
मेघां दवां अहेड़ियां उदा गरवा तण लाधो गुरां ॥३७॥ –प्रति २०१।

४–मन में रीस बहु आवै, कर कर क्रोध दुख पावै।
सूजै धूंधळो नैनां, बहरो हो गयो कांना ॥५३॥
कहै कछु और की औरै, निस दिन जीभ नहीं मोरै।
लुकटी हाथ मैं लेरै, पगला ठाय नी ठहरै ॥५४॥
डेहली पहाड़ सी लागै, चाल्यो जाय नहीं आगै।
मांची पोळ में घाती, जक नांहि दिन राती ॥५५॥
पांसी चलै अरु पुळकै, दम चढ जाय जब हळकै।
मुप सूं थूकतो रहै, नैणां नाक जळ वैहै ॥५६॥
विगाड़ी ठौड़ जब मिप्टी, अज हूं मरै नहीं दुप्टी।
टूको स्वांन ज्यूं देवै, दुप मुप पंवर नहीं लेवै ॥५७॥

(शेषांश आगे देखें)

हृदयग्राही हैं तथा थोड़े से चुने हुए लोक प्रचलित शब्दों मे चित्रित किए गए हैं। रचना के मूल मे पर दुख कातरता और उसके निवारण की महती कामना है। सर्वत्र कवि की निश्छलता और सहज भावानुभूति के दर्शन होते हैं। इसमें मानव-जीवन और जीवात्मा की लौकिक और पारलौकिक समस्त आवागमन-प्रक्रिया का समग्रता मे वर्णन किया है। इसी के द्वारा वह मानव को उसके चरम-प्राप्तव्य मुक्ति की ओर इंगित और प्रेरित करता है। ये वर्णन इतने प्राणवान और यथार्थ हैं कि सम्बन्धित विषय का सजीव चित्र सम्मुख खड़ा कर देते हैं। उदाहरण के लिए पशु-योनि[1] और बाल जीवन[2] के चित्रण देखे जा सकते हैं। इनके

पडियो आळ नित झपै, गाळी देत नही सकै।
परवस दुप बहु पावै, नेडो कोय नही आवै ॥५८॥

१–उदाहरणार्थ पशु-योनि के ये वर्णन:—
घोडा कर निपने घर आया, दाणे घास कदे नही पाया ॥११२॥
भूप मरे झुरकै अरु झापै, सुकरत बिना घास नही नापै ॥
ऊंठ भया बहु बोज उठाया, परदेसा कूं लाद पठाया ॥११३॥
चादी पडै कीडा बोहु पावै, कउवा टांचे ज्यू दुप पावै ॥
हरि सिवर्‌या बिन एह गति भाई, परवस पड्यो सदा दुप पाई ॥११४॥
गोडा के घर पोहण हूवा, बोज ढोय चादी पड मूवा।
दे काना मे वार निकारै, भूप मरे चारो नही डारै ॥११५॥
भजन बिना लादियो होर्दे, ताकी सार न बूझै कोई।
बैल किया जद आप बधाई, घाणी जोत अरु दिया चलाई ॥११६॥
फेरा फिरे बहोत दुप पावै, सूझे बिन भटभेडा आवै।
फेर छाचियो बैल जु कीयो, बोयो हल बहुत दुप दीयो ॥११७॥
एक दिन वाकै एक दिन वाकै, लालच लगे दया नही ताकै।
विणजारै की गुण उठावै, बोज मरे बहुता दुप पावै ॥११८॥

२–लियो जनम नर समार, लागो जगत की बैयार।
जे नर किया हरि सू कोल, भूलो प्रभ का सब बोल ॥११॥
लागो मोह माया चाव, माता पिता के उछाव।
बाजे थाळ वरगु ढोल, सहिया रही मगळ बोल ॥१२॥
भूआ भतीजे पै आय, ठोपी झुगलियो पैराय।
भाई भावजा के कोड, दोनी तील तिहाणी तोड ॥१३॥
बैन्ह रमावै है बीर, हूवो पीर अनचळ सीर।
कठी कडोळा कराय, काना मुरकिया पैराय ॥१४॥
कडिया कदोरै बिच लाल, छेडै मादल्या की वाळ।
घडिया करै सीधै चाल, माता लहै अ गळी झाल ॥१५॥
ठमकै घरै अ ग न पाव, माता पिता कै उर चाव।
मा कू देप सामो जोय, रूपो वदन करकै रोय ॥१६॥
माता लहै उर सूं लाय, धावै पीर जो मन भाय।
बाळो पालणै हींडै क, पोढै ढोलियै पीढै क ॥१७॥
कबहू गोद में पेलै क, माता हाथ मैं झेलै क।
रोवै हसै करै हैं चैन, बोलै तोतळा सा बैन ॥१८॥
पेलै आगणै मैं धाय, धारै झमक ठमकै पाय।
चिटियो हाथ मे लीयो, पेलै साथिया मिलियो ॥१९॥

बीच में यत्रतत्र कवि अत्यन्त संक्षेप में चेतावनी भी देता चलता है। कुल मिलाकर ये पाठक को झकझोर कर उसको आत्मचिंतन करने को बाध्य कर देते हैं। भाषा बोलचाल की और प्रवाहमयी है। एक वर्णन के अन्त और दूसरे के आरम्भ के बीच में कवि ने दोनों में एक-सूत्रता रखने और कड़ी जोड़ने के लिए दोहों का प्रयोग किया है,[1] अन्यथा वर्णन तो सब "चौपइयों" में ही हैं, जिनको दो स्थलों पर "छन्द" की संज्ञा भी दी गई है।

भाव-व्यंजना : ऊदोजी के काव्य का प्रवाह तीन रूपों में दिखाई देता है यद्यपि मूल में उनकी समस्त काव्य-साधना एक संश्लिष्ट चेतना का परिणाम ही है :—

(१) जाम्भाणी रूप, (२) आत्मनिवेदन परक रूप तथा (३) मुक्ति हेतु प्रयास और चेतावनी। नीचे संक्षेप में इन पर विचार किया जाता है :-

१-जाम्भाणी रूप : नारायण के अनन्त नाम और अवतार हैं। लोक-लज्जा त्याग कर दृढ़ विश्वास, निष्ठा और प्रेम से उसका नाम स्मरण करना चाहिए। 'अलख, अजोनी, स्वयंभू नारायण' ने अनेक अवतार रूपों में बहुविध अनेक कार्य पूरे किए हैं, किन्तु प्रत्येक अवतार "अंसकला" का ही था, अनन्त कला-युक्त पूर्णब्रह्म तो जाम्भोजी के रूप में ही अव आए हैं। अन्य अवतारों और जाम्भोजी में यही अन्तर है। उनके आने का कारण है प्रह्लाद से वचनबद्ध होना। कवि की यह मान्यता साम्प्रदायिक विचारधारा के अनुरूप है[2]।

इसके परिणाम स्वरूप ऊदोजी ने एक तो बहुत से स्थलों पर जाम्भोजी के कार्य, महिमा, गुण आदि का सोल्लास, भक्ति-भाव-पूर्ण वर्णन किया और दूसरे उनके द्वारा कथित उपदेश और प्रवर्तित सम्प्रदाय के प्रति अनन्य निष्ठा और प्रेम का परिचय दिया। फलतः "जाम्भाणी दीन" और "नफर झांभाणो" उसे प्रिय है। अतः जो इस "पंथ" में ठगाई

१-उदाहरणार्थ वृद्धावस्था और मृत्यु-समय के बीच के ये दोहे :-
आंण घेर्‌यो जम जीव कूं कूण छुडांवण हार।
आगे कर जम ले चल्या, दे गुरजां की मार ॥६३॥
उबव ओसर बीचगो, चेत्यो नहीं गंवार।
सुकृत कियो न हरि भज्यो, गयो जमारो हार ॥६४॥

२-नारायण नाम अनंत, अनंत अवतार ज्यूं धाइयै।
कीरत अपरंपार, प्रेम प्रीत सूं गाइये।
प्रेम प्रीत सूं गाइयै, नै राख उर परतीत।
लोक लाज सब परहरो, छाड़ कुल की रीत।
तन मन दीजै प्रीत कीजे, सिवरियो भगवंत।
महमा श्री महाराज की, नारायण नाम अनंत ॥ अनंत अवतार ॥१॥
अनंत कळा सूं आप, पूरण ब्रह्म पधारिया।
अंस कळा अवतार, बोह विध कारज सारिया।
बोह विध कारज सारिया, नै नमो नित आचार।
त्यूं ही जंभ गुरु आविया प्रहलाद वाचा सार।
कहै ऊधो सुणो साधो जपो ज हरि का जाप।
भगत बस भगवंत पेलै अनंत कळा सूं आप ॥पूरण०॥४॥ – प्रति १९१, फोलियो ६।

करता है, वह कवि को अच्छा नही लगता[1] । २९ धर्म नियमो सबधी कवित्त और आरतियो का निर्माण इस दिशा मे उसकी महान् देन है । बहुत ही सन्ताप के साथ कवि का कथन है कि वे लोग सचमुच अभागे हैं जो पूरण ब्रह्म जाम्भोजी जैसे प्रत्यक्ष देव को नही पहचानते, जानते या मानते और पत्थर के देव की पूजा करते हैं। यदि जीव-उद्धार के लिए जाम्भोजी नही आते, और "पथ" नही चलाते, तो पृथ्वी पाप से डूब जाती[2] । जाम्भोजी मे अगाध आस्था के कारण कवि के कथन बडे सबल और प्रभावशाली हैं।

२-नारी रूप मे आत्मानुभूति और निवेदन : इस रूप म कवि ने जो मार्मिक भावानुभूति एव उद्गार प्रकट किए हैं, वे परम्परा, साहित्य और भाषा, सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। कवि ने नारी रूप मे परमतत्त्व से मिलनोत्कठा, मिलन और मिलनोपरान्त भावदशाओ के मनोरम चित्र उपस्थित किए हैं। इनमे उत्तरोत्तर एक क्रमविकास भी मिलता है। आरम्भ मे जीवात्मा बहन के रूप म अपने "पीहर"- स्वर्ग का मार्ग पूछती है। उसको बताया गया कि सुकृत और जाम्भोजी की कृपा से वहा पहुचा जा सकता है[3] । अध्यात्म-साधना के पथ म वह अत्यन्त दीन होकर एक साखी म अपने दाता, पिता—जाम्भोजी से मुक्ति की

१—कूड कपट जीव नै मारी हुवैलो, पथ मा करो ठगाई ।
करो ठगाई पिड काचै, साच सिदक नेजो वहो ।
हीय भीतरि घडो घाटी, काय बाहरि धोव हो ?
कपट करि करि पीड पोषो, अ ति धरती मा रहै ।
दुष दुकरत जीव सहिसी, सीप दिया सतगुर कहै ॥२॥
सतगुर सिवरो मोमिणो इक मनि ध्यावो, दीन कयो झाभाणो ।
गुर के वचनै सुवि पुवि चालो, साच सही कर जाणो ।
साच सही करि जाणि रे जीव, मन्यो छाडि दुभातिया ।
सुरा सेती मिल्या नाही, पथ माहि भरातिया ।
लवधि मेल्हो माध पोजो, जाणि जै जीवत मरो ।
कहै ऊदो पारि पहुचो, सेवा सतगुर की करो ॥५॥२४॥ –प्रति २०१ ।
२—जै नर हतता जीव, जीव पणि हतै नाही ।
जै नर कथता कूड, कूड पणि कथै नाही ।
जै हुता जगि जाचध, ते हुवा गुर ग्यानीं ।
जे हुता सदा असोच, हुवा सुचील सिनानी ।
नीच थका उतिम क्रिया, न्यान पन्थ नावी अती ।
उतिम पथ चलावियो ऊदा, प्रथी पालिगा डूबती ॥३१॥ –प्रति २०१ ।
३—वीर वटाऊ भाइया, म्हानै पीहर पथ वताय ॥१४॥
डावो डाडो परहरो, जीवणो सुरगापुरि जाय ॥१६॥
आगैं भु य जळ लाधणो, किस विधि उतरा पारि ॥१८॥
करि सुकरत की नावडी, जिस चडि उतरो पारि ॥२०॥
पार गिराए झमराय वस, सुरगा पुर सुहावणो ॥२२॥
जा वसै तेतीसू कोडि, छन्या कचौळा अ मी का ॥ २४ ॥
वै गुर परमादि पीवाहि, हीडोळे पणि वैसि कै ॥ २६ ॥
सहजै सहज हिडाय, उदो बोलै वीनती, आवा गुवणि चुकाय ॥ २६ ॥–प्रति २०१ ।

कामना करता है[1]। वह नहीं चाहता कि कलियुग में वह ठगा जाय[2]। विरहिनी के रूप में अध्यात्म प्रेम में रंगा हुआ कवि अपने "मिठ बोले" प्रियतम से मिलन की प्रबल कामना और उसके सदा सान्निध्य के निहोरे करता है[3]। वह अपने "धणी"- "सजन सांवरे" के लिए, उसकी इच्छानुसार सब कुछ करने को तैयार है[4]। विरहिनी की, सतगुरु-दर्शनों की यह उत्कट लालसा, उनसे मिलन की ऐसी आतुरता उसकी पूर्व -प्रीति के परिणाम-स्वरूप है, यह बात उसने पहचान ली है। इसीलिये तो वह हरि में ही समा कर रहना चाहती है[5]। इस साधना की अन्तिम परिणति होती है- प्रियमिलन में, तत्त्व-प्राप्ति में। इस अनुभव का उल्लेख करते हुए, बहन के रूप में कवि अपने अन्य गुरु भाइयों को तत्त्व की बात बताता है। वह है- देखो और दिलाओ। ऐसा करने में तनिक भी ढील या उधार मत करो। रात

१-म्हारै तोह विणि अवर न कोय तूं र दियावैं तू दिवै।
कुटंब पिता परवार हळति पळति सांमी सरंणि त्यैह।
सरंणि सांमी सिसट करता सहल दुतर तारियै।
विषम भुंय जळ भुंवंण चवदा, मुकति पेत उतारियै।
आस गरीवां करो पूरी, मांग मत घातो पता।
भंणै ऊदो सरंणि थारी, तूं म्हारै दाता तूं पिता ॥ ४ ॥ २१ ॥-प्रति २०१।

२-रहे सील संतोष धरे निज ध्यांन निरमळ।
पंच पुलंता पाले, ग्रहे सुग्रहे चित चंचळ।
अभेनामी ओळगे, सींवरि निज नांव विसंन।
अंमरापुरी अंवरा, पहरिस्यां काया रतंन।
संभळे हंस उजळ सुवस, जळ मोताहळ चुगियै।
कळि जुग जंण जंण ठगीयै ऊधोदास न ठगियै ॥ ४ ॥-प्रति २०१।

३-राग काफी ॥ घर आवोजी मिठ बोला, प्यारी तमारी बातियां ॥ टेक ॥
कागद लाऊं कलम बणाऊं, लिपूं ज प्रेम की पातियां ॥ १ ॥
हंस हंस बोलो अंतर पोलो, मेटो जी मंन की घातियां ॥ २ ॥
अंक भर भेंटो अंतर मेटो, सीतळ करो मेरी छातियां ॥ ३ ॥
पाव पलोटूं पंषा जी ढोळूं, टहळ करूं दिन रातियां ॥ ४ ॥
कहै ऊधवदासा एही नित आसा, सदा रहो संग साथियां ॥ ५ ॥॥ प्रति-१९६ से।

४-राग काफी ॥-घर आवो जी सजन सांवरा, मन लागो जोर सुहांवंणां ॥ टेक ॥
आरती उतारूं तंन मंन वारूं, मोतीड़ां थाळ वधांवंणा ॥ १ ॥
वगड़ वहारूं मिंदर सुधारूं, चंदण चौक पुरांवंणा ॥ २ ॥
करूं रसोई मनां भावै सोई, रुचि रुचि जोर जिमांवंणा ॥ ३ ॥
फूल मंगाऊं सेज वणाऊं सुप पोढो जी मंन के भांवणा ॥ ४ ॥
तुम धणी हमारो हांक मत मारो, मंन सूं टहळ भुलांवंणा ॥ ५ ॥
ऊधवदास कै रहो प्रभु पासै, नित नवला पांवंणा ॥ ६ ॥-प्रति १९६।

५-घूमर ॥-सतगुर दरसण म्हे जास्यां।
निज पूरव प्रीत पिछांणी ए माय, सतगुर दरसण म्हे जास्यां ॥ टेक ॥
तन मन फूली सुधि बुधि भूली, चरणां में लपटांणी ए माय ॥ १ ॥
कथा प्रसंगा नित नव अंगा चरचा रुचि उपजांणी ए माय ॥ २ ॥
हरि गुण गुणस्यां हृदै मां भणिस्यां, सु णि सुंणि इंम्रत वांणी ए माय ॥ ३ ॥
हरि रंग राची प्रेम सूं नाची, रोम रोम विगसांणी ए माय ॥ ४ ॥
ऊधोदासा प्रेम प्रकासा, हरि में सुरत समांणी ए माय ॥ ५ ॥-प्रति १५८।

के सपने की भाँति संसार नश्वर और सारहीन है। सर्वस्व देने से ही तत्त्व-प्राप्ति होती है, लेने से नहीं[1]। यही नहीं, कवि की प्रत्यक्ष विष्णु- जाम्भोजी से यह प्रार्थना है कि जो नर मुक्ति मांगे, उसे वे मुक्ति अवश्य दें[2], तथा पात्र के अनुसार "पूजती मजूरी" दें[3]। इस रूप में अपने समस्त अनुभवों को कवि "राग रामगिरी" में गेय एक साखी में व्यक्त करता है। इसमें उमड़ते हुए अनेकश भावों को वाणीबद्ध करने का प्रयास है, जिसमें चेतावनी का स्वर भी मुखर है[4]। इस सन्दर्भ में कवि का कथन है कि आवागमन से छुटकारा हृदय में

१–आज पियारे जी भाई मोमिणो, हम घरि वीरण आए ॥ १ ॥
हम उन मेळो करि गुर कायमा, जाणो अठसठि तीरथ न्हाए ॥ २ ॥
जो पुन अठसठ जी भाई तीरथों, गुर सुभीयागत म्हारो ॥ ३ ॥
देह दियावो जी भाई मोमिणो, देत न करो उधारो ॥ ४ ॥
जैसा सुपना जी भाई रैण का, अैसा यो संसारो ॥ ५ ॥
काय भाई मोमिणो भो धन संचो, संचि संचि छनो कुपारो ॥ ६ ॥
अो धन थाकि जी भाई होयसी पाली रह्या वुपारो ॥ ७ ॥–प्रति २०१।

२–मुकति मन मंडियो, मुकति मनि पु हचै हंसा।
मुकति जपीजै जाप, मुकति नमळ मिल सो वसा।
मुक्ताहळ जै चवै, ता नरा मुकति ही दीजै।
अलप जोति भेंटियै, गोठि सुगर सिधा कीजै।
आनति मुकति जोगी जुगति, अमर देव ओळखियो।
वैराग तिलक सनमुखि विमन, रतना रूप परखियो ॥ ११ ॥–प्रति २०१।

३–ताह का धन्य नमीव, नाथ विसन कै रीधा।
लिया महारस तत, कवळ छा जाह का सीधा।
ग्यांन ध्यान नाद वेद, भग की वाचा पूरी।
द्यो अमरापुरी वास, द्यो पूजती मजूरी।
साभळियो नरो अैसो गुर, को और साभळियो काने ?
आवागवण चुकाय कै, रतन कथा द्यो दाने ॥ ४१ ॥–प्रति २०१।

४–जागो रे मोमिणो न सुओ, नीद म करो पियार।
जैसा सुपना रैण का, अैसा यो संसार ॥ १ ॥
कै ही सुभागे आवो पियो, पाळिक कै दरबारि।
पोथ पर्दली आजै सोवनी कै हींडेला सुचियार ॥ २ ॥
एकण डाळै हू चडी दूजे मोमिण वीर।
जेरि नो डाळै हूं चडो, जैरि घलेरी भीड ॥ ३ ॥
हाथ की मुंदडो पोरि पड्यो, कांलेली नवरग बीड।
काज पराया सीवळा, जा दुपै जा पीड ॥ ४ ॥
एणि तो डाडै जुग गयो, राजा रंक फकीर।
अै ह जुगि आपणों को नहो, सग्य न चलै सरीर ॥ ५ ॥
जो उपज्या सो विणसणों, की रणी जाणो तीरि।
एक सुपासणि चडये चल्या एक बंध्यां जाहि जंजीरि ॥ ६ ॥
दुलभ देसे गरजियो, वूठो घट घट माहि।
बाहरि छा मे उबर्‌या, भीगा मिंदर माहि ॥ ७ ॥
छानि पुराणी छज नवों, फिरी फिरी पड़ै मजीठ।
लापो इण परि चेतियो, जाय थाजियो मसीति ॥ ९ ॥ (शेषांश आगे देखें)

प्रेमा-भक्ति उत्पन्न होने के फलस्वरूप कर्म-बन्धन कटने पर भी मिल सकता है[1] । इन सबका प्रभाव अत्यन्त गहरा और शोधक है ।

३–मुक्ति-हेतु प्रयास और चेतावनी : कवि की समस्त रचनाओं में चेतावनी का स्वर बड़ा मुखर है । उसका प्रभाव शिव है, सत्य के धरातल पर वह आधारित है और पाठक को लुभानेवाला है । यह चेतावनी तीन प्रकार से दी गई मिलती है :—

(क) पौराणिक ढंग से, जैसे "अभ चितांवणी" में ।

(ख) संसार, मानव जीवन और नाते-रिश्तों की नश्वरता, असारता और व्यर्थता-बताते हुए स्वर्ग–सुख वर्णन के द्वारा । संसार की चकाचौंध से व्यक्ति को विरक्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका ध्यान वैसी ही किसी अन्य वस्तु की ओर मोड़ा या केन्द्रित किया जाय । स्वर्ग–सुख वर्णन का हेतु यही है जो कई प्रकार से किया गया है[2] । साथ ही कई रचनाओं में मानव के प्राप्तव्य–पथ को सुकर बनाने के लिए बीचबीच में करणीय-अकरणीय कार्यों का उल्लेख भी किया गया मिलता है । "जखड़ी" इस कोटि की श्रेष्ठ रचनाओं में से है[3] ।

(ग) मानव–जीवन की दुर्लभता, उत्कृष्टता को ध्वनित करते हुए कवि ने जागरण

नांव दिरीया देवजी, जा थे उतरी पारि ।
ऊदो बोलै वीनती, आवागवंणि निवारि ॥ ९ ॥–प्रति २०१ से ।

१–ज्यूं ज्यूं उपजै प्रेमा भक्ति, काटै कर्म होय जव मुक्ति ।
हरि चरणां नित नहचळ होई, आवागवण न आवै कोई ॥ १३५ ॥–अभ चितांवणी ।

२–गुर कै कथंनि जुळ्या मेरा बाबा, जांह का हरिया भाग ।
गढ वैकुंठे अलपलदी, चढि जोवैली माघ ।
सदरंग कांमंण माघ जोवै, कदि साध मोमिण आविस्यै ।
नूर सतागुर आस पुरवै, रतंन काया पायस्यै ।
आरतो ले. मुख आंमू रंग वाजै दो दही ।
अनंत वधावा हुवै जा दिन, मंगळ गांवै मीलि सही ॥ १ ॥
अलपलदी अरदासि करैं मेरा बाबा, हंम पीव मूं कदि मेळा ।
थारी तिहुं जुगि इकवीस कोटि पहंती हीडै सहज हीटोळा ।
सहज हींटोळै तेरा साध हीडै दुप दाळिद ना तहां ।
जुग चौथै विसंन मिल्नियौ इकवीस कोटि र बारहां ।
वैकुंठ बेठो विमंन ढोयौ सचियार साल्हियां लेविसी ।
पारगिरांय पुंहचाय भांभराय बास निहंचळ देविसी ॥ २ ॥–साखी, प्रति २०१ ।

३–कुकरंम कूट कलोभ मंमता मारियै ।
हरि सूं हेत लगाय जळंम सुधारियै ।
जळंम सुधारी जंम वहै लारो, छाडौ सकळ विकारा ।
ओ संसार छिहर की बाजी, देषो सोचि विचारा ।
वात बीज न बीज्यौ विरषा, पछै करै पछतावौ ।
जीव सुधारथ हुवै स कीजै कुकरंम मत कमावौ ॥ २ ॥
जुगति मुगति दातार सांईं एक है ।
सोह वसते दातार लेखा लेत है ।
लेषा मांग्या जदि कांपण लागा, लगी चटपटी अंगा ।

की भैरवी गाई है। "कूकडो" इस विषय की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। मुर्गे की बांग प्रभात होने की सूचना देती हुई सोते हुए मनुष्य को जगने की प्रेरणा देती है। यह "कूकडो" भी मनुष्य को इस ससार मे जागने की चेतावनी देता है। प्रभात होते ही अभिमन्यु का युद्ध में जाना निश्चित है, वह केवल रात्रि भर ही घर मे रह सकता है, सुभद्रा के मना करने पर भी "कूकडा" अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। ऊदोजी भी इसके द्वारा यही कर रहे हैं[१]।

काव्य का लक्ष्य : ऊदोजी के काव्य का लक्ष्य मानव का सर्वांगीण विकास और उसका चरम प्राप्तव्य मुक्ति है। "अभ चितावणी" के अनेकश वर्णन इस हेतु साधन और प्रयास हैं। इसम तथा साखियो मे[२] आए ऐसे वर्णनों की ओर बरबस ही पाठक का ध्यान आकृष्ट होता है, क्योकि इनमे व्यावहारिकता के गुण और सच्चाई है एव वे अपने सहज रूप मे अभिव्यक्त किए गए हैं। प्रत्येक वर्णन चलचित्र की भाति समस्त दृश्य उपस्थित कर देता है। इनके मूल मे कवि की सूक्ष्म लोक-निरीक्षण-दृष्टि, आत्मचेतना और परदुखकातरता है। भाषा पर तो ऊदोजी का विलक्षण अधिकार है। इनमे तत्कालीन समाज की अत्यन्त

माता पिता भाई सुत बधु, कोइय न आयो सगा।
जम का दूत दसू दिस दीसै, दुष पावै जीव अपारा।
सतगुर सोष मादि जदि आई, जुगति मुगति दातारा ॥ ५ ॥
देषि बिराणा द्रब मन न चलाइयै।
जो हरि करै स होय, कहा पछताइयैं।
कहा पछतावै दियो सो पावै ओछो इधको न होई।
राजा राणा रका सुरताणा, गब करो मत कोई।
जीव दियो सो रिजक हू दीयो, पूरण अभिणामी पेषी।
मेरी मेरी कहैं सब कोई, द्रब बिराणा देषी ॥ ७ ॥
सोचि विचारि कछू नही तेरो बिमन बिसन जपि प्यारा।
ऊधोदास आस सतगुर की, नर नायक अवतारा ॥ १० ॥

१-पोह विगसी पगडो हुवो कूकड दीन्ही बांग।
उठ बदा कर बदगी, क्यों साहिब पास्यो माग ॥ २ ॥

२-नाके सास लिवो मुषि बोलो, श्रवणे साभळो ज्यों सुरति पड़ै ॥ २ ॥
नैण चलण रतनागरि दीन्हा कवण स दाता देव वडै ॥ ३ ॥
बिसन बिमन तू तो भणि रे जीवडा, अब करि आयो जीवडा जळमि रहै ॥ ४ ॥
ल जपमाळी हरि को जाप न कीयो, जपता री थारी मुषिय जीभ भरै ॥ ५ ॥
गाडरियो हुवैलो जीवटा चौफरीयैलो, भाटकणा की तेरे भूड पड़ै ॥ ६ ॥
ओटा के घरि पोहणियो हुवैलो, ले ले बोरी वटा पाळि चडै ॥ ७ ॥
करहलियो हुवैलो जीवडा फिरैलो कतारे, भार उठावै लडै छडै ॥ ८ ॥
दमा रे मणा की तेरे गुणि पडैलो, ऊपरि ओठी कूंट चडै ॥ ९ ॥
कावळियो हुवला जीवडा गिगनि भुवलो, करगि वूरै तेरी चाच पडै ॥ १० ॥
सुवरियो रे हुवलो जीवडा सहरि फिरैलो, ठरडक्य ठरडक्य नास करै ॥ ११ ॥
कुकरियो हुवलो फिरैलो गळियारै आवै बटाऊ भविकि लडै ॥ १२ ॥
पापा कै पसाए जीवडा, दोरै जैलो, उत कणि अफरी मार पडै ॥ १३ ॥
जब लग जीवडा थैं सुकरत न कीयो, ज्यों तु नांही जू ण्य पडै ॥ १४ ॥
ऊदोजी भणै जपो निज नामी, देव नही कोई भ्रम घडै ॥ १५ ॥
—साखी सख्या १२, प्रति २०१ से।

यथार्थ, मनोरम और जीवन्त झांकी के दर्शन होते हैं। कवि की रचनाओं के आधार पर १६वीं शताब्दी के मरुदेशीय समाज का सही चित्रण किया जा सकता है। सामाजिक दृष्टि से कवि की यह बड़ी देन है। प्रकारान्तर से इसकी झलक कवि के अनेकशः नीतिकथनों[1] और जाम्भोजी के कार्योल्लेखों[2] में भी मुख्य वर्ण्य-विषय के साथ-साथ सुनियोजित और सुन्दर ढंग से दिखाई देती है। दसावतार वर्णन जाम्भाणी कवियों का प्रिय विषय रहा है। ऊदोजी भी अवतार रूपों को नमस्कार करना नहीं भूले हैं। कल्कि अवतार के साथ ही वे कलियुग का अन्त देखना चाहते हैं। "सोहलो"[3] में वे स्वर्ग सुख वर्णन करते हुए भावोल्लासपूर्वक

१-एक जग्य फिरै ठग चोर ठग हड़ वसत पराई।
ठगि और पंडि जांहि जित चालै नवी ठगाई।
लियौ न देही फेरि लिपावै सीरि दूंणी सवाई।
वांकी कदै न भाजै भूप, दाळद की वोह मुकळाई।
वांकै मन्यो न चकै, पाप जाण्य जे भाजै घड़ै।
जांणीजै चोर विसंन का (ऊदा) ठगि आंणि सेवणी चड़ै ॥ २६ ॥-प्रति २०१।

२-झींवर छोड्यो जाळ, कूड़ छोड्यो वावरिये।
पांणी पीवै छांणि जुलंम करता मुंह छुरिये।
करद कसाई हड कुटा अंभचार तांह लीयौ।
वांभण पतरी वांणिया, अवळ कलमूं तांह कीयौ।
कुपह छाड़ि कुकरंम तज्या, सुपह जांणि आवी अती।
तै चाल्यौ उतिम पंथ, जयो जयो झांभा जती ॥ ४२ ॥-प्रति २०१।

३-साहिव सिरजंण हार जीण उपाई मेदुंनी।
देव आयौ इण्य संसारि, भाग परापति पाइयौ ॥ १ ॥
देव तेरी वाटड़ियां वळि जांव, जांह म्हारो सांई सतगुर आवियौ।
पगि पगि धरूं तंवोळ, वाटड़ियां म्हारै गुर कै फूल विछावियै ॥ २ ॥
देव हटड़ी जी रोपी गढ मुळताण्य, दिलड़ी म्हारै गुर को वैसणौ।
तारांयंण जी गळ फुलमाळ, चांद नूरिज म्हारै गुर कै सेहरै ॥ ३ ॥
सुर नर कोड़ि तेतीस, इंदं अंभा संकर महीं।
जांन अरजंन भीव, पांचूं वीर इकायंती ॥ ४ ॥
ढुळ ढुळ झवकि पलांण, पड़ग तिधारो साहिमी।
वमधा विसंन विवाह, काळंग मारि रचावियौ ॥ ५ ॥
दसवै निकळ नरेस, वसधा कंवारी परणियै।
परण्यो निकलंक पात करै सवीरी आरती ॥ ६ ॥
कलयजुग पलटि करतार, म्हारै सांई राजा सतजुग थरपियौ।
मिल्या कोड़ि तेतीस पार गिरांय वधावंणा ॥ ७ ॥
पुहंता पार गिरांय, वैस्य विवांणै साहिल्या ॥
पूगी मोमिणां री आस, सतगुर काज संवारिया ॥ ८ ॥
अपछर सभी सिणगार, उछाह करि सांम्ही आंवही ॥
सव उण्यहारा एक, वोल्या वचंन पिछांणियै ॥ ९ ॥
धंन्य तिथ धंन्य ओही वार, धंन्य मुहुरति धंन्य घड़ी ॥
हुई पधारि पधारि, अंगण्य आपो आपरै ॥ १० ॥
नूरे मिळिया नूर, निसवासरि जित कै नहीं।
पीणा अंमीं कचोळ सहज हिंडोलै हींडणां ॥ ११ ॥
ऊदा दरसण देव, मन्यसा मूं कारज सरै ॥ १२ ॥-प्रति २०१; फो. २३-२६।

ऐसा विश्वास प्रकट करते हैं।

महत्त्व और मूल्यांकन : विक्रम १६ वी शताब्दी के राजस्थानी साहित्य मे ऊदोजी का विशिष्ट और गौरवपूर्ण स्थान है। साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से इनकी रचनाएँ अत्यन्त मूल्यवान हैं। इनकी देन कई क्षत्रो मे है —

(क) काव्य-रूप-परम्परा मे : इसमे कवित्त (छप्पय), गेय-पद और दोहे-चौपई परक रचनाएँ मुख्य हैं।

(ख) लोक-रजन, मनोवृत्ति-परिष्कार : इनके "ककडो", "जखडी", "घूमर" "सोहलो", हरजस, साखी, आरती आदि से पता चलता है कि ऐसी अनेक लघु कृतियाँ गेय-गीतो के रूप मे लोक-प्रसिद्ध थी। कवि ने इनके द्वारा जन-मनरजन के साथ साथ अव्यक्त रूप से लोकमनोवृत्ति-परिष्कार का महान् कार्य भी किया। ये सभी रचनाएँ विभिन्न राग-रागिनियों म गेय हैं।

(ग) भावधारा इनके काव्य मे तीन प्रमुख धाराऐं प्रवाहित हैं, यह लिख आए हैं। इनम से अन्तिम दो-नारी रूप म स्वानुभूति और आत्मनिवेदन तथा चेतावनी परक रचनाएँ, राजस्थानी साहित्य की एतद्-विषयक काव्य-परम्परा की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। अनेक परवर्ती राजस्थानी कवियो की रचनाओ म इन दोनों के पृथक्-पृथक् अथवा समन्वयात्मक और सम्मिलित रूप देखे जा सकते हैं। मीराँ के पदों मे समन्वयात्मक रूप अधिक मुखर है। बिष्णोई साहित्य मे ऊदोजी की ऐसी रचनाएँ अप्रतिम हैं। इस दृष्टि से केवल आलमजी ही एक सीमा तक इनके साथ तुलनीय हो सकते हैं।

(घ) अनुभूति, प्रेरकतत्त्व : अध्यात्म का क्षेत्र साधना का मार्ग है। ऊदोजी की कृतियो म इस साधना और प्राप्त सिद्धि की किंचित् झलक दिखाई देती है। नारी-रूप में कथित रचनाओं मे, परम तत्त्व और आराध्य अनुभूति, ज्ञान, खोज, उससे साक्षात्कार, मिलन और मिलनानुभव के भावपूर्ण सकेत और उद्‌गार प्रकट किये गये मिलते हैं। सर्वत्र आराध्य के प्रति उनकी अटल आस्था, दृढता और सहजोल्लास का परिचय मिलता है। उनके आराध्य सतगुरु जाम्भोजी हैं, जो विष्णु हैं और जिनम विष्णुत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा है[1]। इस मार्ग में प्रेमाभक्ति उनका सम्बल है। अम चितावणी के अतिरिक्त अन्यत्र भी उन्होंने इसका उल्लेख किया है[2]। यह भक्ति गुरु-कृपा से सुलभ है, इसके लिए हरि-सेवा, गुरु-वदगी

१-नमो नमो गुर जभ नमो गुर ज्ञान दिवाकर।
नमो गुरू उपदेस नमो गुरदेव विद्याधर।
नमो नमो सिध साध, नमो रिष राज मुनिवर।
नमो नमो पित माता, नमो सब देव पुरन्दर।
पाच तत ब्रह्मडळ नमो नमो सब आतमा।
कर जोडे ऊधव कहे नमो विष्णु प्रमातमा ॥ १ ॥

२-नमो इष्ट निज देव नमो सब सिष्ट गुसाई।
नमो सकल आधार नमो सबही घट साई।
नमा नृगुण गुण रहत नमो नुकार निरजन।
नमो सुगन साकार नमो सतन मन रजन।

(शेषांश आगे देखें)

और सत्संगति करनी चाहिए[1]। भाव अर्थात् प्रेम रखना चाहिए क्योंकि बिना भाव के भक्ति नहीं होती[2]। सतगुरु से ऐसा प्रेम पूर्वजन्म की प्रीति के कारण ही है। लोकलज्जा इस पथ की सबसे बड़ी बाधा है जिसकी परवाह न करने का उल्लेख कवि ने कई बार किया है। इन दोनों के बीज सबदवाणी में मिलते हैं (सबद ८१, ११६)। वस्तुतः ऊदोजी की चेतना, चिन्ताधारा, साधना, विश्वास और मान्यताओं के मूल में जाम्भोजी के एतद्विषयक विचार हैं जिनको आत्मानुभव और संस्कारों में निम्मजित और तदाकार कर अपने ढंग से कवि ने पुष्ट वाणी दी है। ऊदोजी के काव्य में उपलब्ध पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त, सत्संगति, सद्गुरु, स्वर्ग-नरक, चौरासी लाख योनियाँ, हवन-यज्ञ, पूजा, दान, अवतार आदि-आदि से सम्बन्धित विचार वही हैं जो सबदवाणी में पाये जाते हैं। यह स्वाभाविक ही था। इस पहलू के अतिरिक्त शेष सब अभिव्यक्ति उनके अपने अनुभव और संस्कारों के आधार पर है।

प्रसंगवश, यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मीराँ के प्रामाणिक माने जाने वाले पदों में भी भक्ति और साधना-पद्धति, पूर्व जन्म की प्रीति और लोक-लज्जा संबंधी उल्लेखों के अलावा ये सब बातें भी इसी रूप में मिलती हैं। इस दृष्टि से ऊदोजी की रचनाएँ मीराँ-काव्य की पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं। इस संदर्भ में आलमजी की रचनाओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। ऊदोजी के साथ उनका कृतित्व भी मीराँ-काव्य का प्रेरणा-स्रोत रहा है। भावानुभूति, अभिव्यक्ति, विषय, साधना, विचार, भाषा-शैली की दृष्टि से हजूरी विष्णोई कवियों, विशेषतः ऊदोजी और आलमजी की सम्मिलित रचनाओं में समष्टि रूप से वे सभी तत्त्व वर्तमान और मुखर हैं, जो मीराँ के पदों में पाए जाते हैं। इस प्रकार प्रेरणा, प्रभाव, विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से मीराँ के मानस और कृतित्व का निर्माण जाम्भाणी विचारधारा और मुख्यतः इन दोनों सिद्ध कवियों की रचनाओं के धरातल पर हुआ लगता है। इस बात को अनेक प्रकार से पुष्ट किया जा सकता है। मीराँ को सम्यक्-रूपेण समझने के लिए अध्येताओं को इस पहलू से भी विचार करना चाहिए।

पूरण ब्रह्म अकाम हर सकल कांमनां देत है।
नमो नमो कहै ऊधवो प्रेम भक्ति तुम्हे हेत है।

१-हर कृपा सूं मनप तन, गुर कृपा सूं भक्ति।
ऊधव हरि कूं सिवरलो, बोहोड़ न अैसी जुगति ॥ १४१ ॥
हर सेवा गुर वंदगी, कर संतन सूं भाव।
ऊधव बोहर न पायवो, अैसो उतम दाव ॥ १४२ ॥—ग्रंथ चितावणी, प्रति २३६।

२-सुत बिना नहीं वंस नहीं तया बिन गेह।
नीत बिना नहीं राज प्राण बिना नहीं देह।
धीरज बिना नहीं ध्यांन भाव बिन भगति न होय।
गुरु बिना नहीं ज्ञान जोग बिन जुगति न कोय।
संतोष बिना कहूं सुष नहीं कोट उपाय कर देषो किना।
विष्णु भक्त ऊधो कहै मुक्ति नहीं हरि नांम बिना ॥ २१ ॥—प्रति २३० से।

३८. अल्लूजी कविया : (विक्रम सवत् १५२०-१६२०) :

अल्लूजी कविया शाखा के चारण कवि थे। इस शाखा का मूल स्थान विराही (जोधपुर) माना जाता है। यहा से अल्लूजी के पूर्व-पुरुष सिणला नामक ग्राम मे आ बसे थे। यही[1] श्री हेमराजजी के घर सवत् १५२० मे अल्लूजी का जन्म हुआ। अन्यत्र इनका जन्म लगभग सवत् १५६०[2] तथा १६२०[3] माना गया है, जिसके सम्बन्ध मे आगे विचार किया गया है। अपने पिता के ये इकलौते पुत्र थे। आमेर-नरेश कछवाहा पृथ्वीराजजी के पुत्र रूपसिंहजी ने इनको कुचामन के पास जसराणा गाव प्रदान किया था[4]। एक किवदती के अनुसार, जसराणा का नाम पहले महेसलाणा था जो ५२,००० रुपयो का पट्टा था, तथा जो गौड राजा सहसमल ने इनको प्रदान किया था। किन्तु बाँकीदास का मत ही अधिक मान्य प्रतीत होता है। जसराणा मे ही अल्लूजी ने सवत् १६२० मे जीवित समाधि ली थी। यहा इनका समाधि-मन्दिर बना हुआ है और इस जगह "अल्लूजी बापजी" की 'ओयण' (ओरण=उपारण्य) छोडी हुई है। इस गाव मे विशेषकर तथा कवियो के अन्य गावों मे भी परम्परा से प्रचलित मत के अनुसार, समाधि के समय इनकी आयु १०० साल की थी और दिन सोमवार था। इस मृत्यु-सवत् की पुष्टि कवि द्वारा राव मालदेव के देहान्त पर कहे गए मरसियो से भी होती है। अल्लूजी के वशज मल्लुदासोत कविया कहलाते हैं और इनमे ये 'अल्लूजी बापजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह इस बात को सिद्ध करता है कि कवि का नाम 'अल्लूनाथ' न होकर अल्लूदास या अल्लूजी ही था। रामदास कृत भक्तमाल मे भी 'अल्हेदास' नाम लिखा है। इनके दो पुत्र-नरूजी और किसनाजी तथा एक पुत्री हुई। पुत्री का विवाह हरमाडा के गाडण भुरताणजी से हुआ था। नरूजी की एक शाखा के वशज सेवापुरा (जयपुर) मे हैं। यह गाव सवत् १८२१ मे सागरजी कविया को जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिहजी ने प्रदान किया था[5]। इस शाखा का वश-वृक्ष प्राप्त है।[6]

१-राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार, पृष्ठ ४३३, हिन्दी परिषद्, जयपुर, सन् १९४४।
२-"परम्परा", भाग १२, पृष्ठ ५५, सन् १९६१, जोधपुर।
३-डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ १६०, सवत् २००८।
४-बाँकीदास री ख्यात, पृष्ठ १८२, सन् १९५६, राज० पु० म०, जोधपुर।
५-हिंगलाजदान कृत "मेहाई महिमा", भूमिका, पृष्ठ १, सवत् १९९८।
६-यह इस प्रकार है —

हेमराज
↓
अल्लूजी (सवत् १५२०-१६२०)
↓

नरूजी　　　　किसनोजी
↓
पतोजी → महेशदास → गोरखदास → गोरधनदास → नारायणदास → सागरजी → भक्तरामजी → रामदानजी → नाहरजी → रामप्रतापजी*　　(शेषांश आगे देखें)
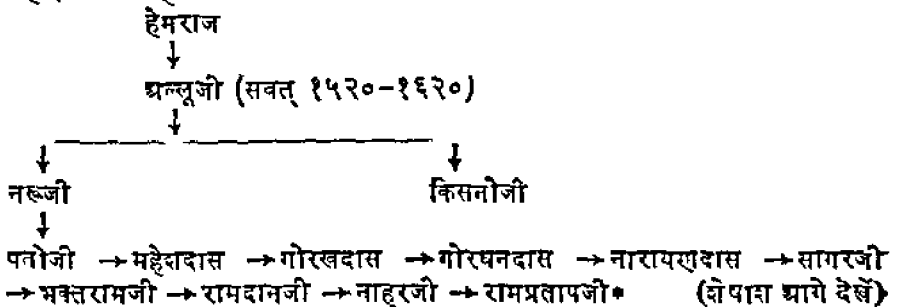
चारणों में १४-१५ परम ख्याति वाले हरि-भक्त कवि हुए हैं। इनमें अल्लूजी का नाम अत्यन्त श्रद्धा और गौरव से लिया जाता है। ज्ञात और अज्ञात अनेक कवियों के कथन इस वात के प्रमाण हैं[1]।

लेखक को अल्लूजी पर लिखा गया ४ दोहलों का एक गीत[2] प्राप्त हुआ है जिसमें

---

*रामप्रतापजी
↓
- हिंगळाजदानजी
  ↓
  वलदेवदानजी,
  कल्याणदानजी,
  सांवळदानजी (वर्तमान)।
- मुरारीदानजी
  ↓
  जोगीदानजी (वर्तमान)
  पावूदानजी आदि।
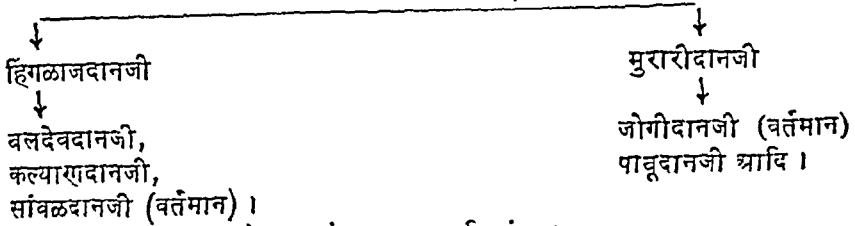
१-(१) ईश, अलू, करमाणंद, आणंद, सूरदास पुनि संता।
मांडण, जीवा, केसव माधव, नरहरदास अनंता।
—परसराम चारण कृत भगतमाला, "शिखर वंशोत्पत्ति", भूमिका, पृष्ठ ३ में उद्धृत, ना० प्र० स०, काशी, संवत् १९८५।

(२) वारहट ईसरदास जिणि हरिरस हरि गुण गायो।
वारहट नरहरदास जिणि औतार चिरत वणायो।
वारहट तेजसी जांणि कही कथा कवि वांणी।
वारहट अलू जांणि लियो जिणि विष्णु पिछांणी।
वारहट तो वारै वहै, खेत न खूंदै पारिका।
अंन चींथै ऊभड़ वहै, लक्षण सेई गंवारि का॥ —अज्ञात कृत, प्रति सं० २८६।

(३) चौमुख चौरा चंड जगत ईश्वर गुण जाने।
करमानंद अरु कोल्ह, अल्ह अक्षर परवाने।
—नाभाजी कृत भक्तमाल, पृष्ठ ८०१, रूपकला, लखनऊ, सन् १९३७

(४) करमानंद अरु अलू चोरा चंट ईश्वर केसो।
डूदा जीवद नरो नराण मांडण वेसो।
—राघोदास कृत भक्त नामावली, दादूद्वारा, जयपुर, की हस्त० प्रति से।

(५) अल्हेदास अगम की आसा, भक्ति पदी में कीया वासा।
—श्री रामदासजी महाराज की वाणी, -'भक्तमाल', पृष्ठ १९९; खेड़ापा, संवत् २०१८।

(६) इसी प्रकार मेवाड़ के आशिया चारण वखतराम, दानिया तथा वीकानेर के कविराजा भैरवदान ने प्रसंगवशात् अल्लूजी का उल्लेख किया है।

२-धूतां सिवराज नमो चित धारण, सार पिछांण तज्यो संसार।
जोगराज च्यारौं जुग जीवै, अलू थियो गोरख अवतार॥ १॥
भजन प्रताप मेट भव वंधण, अमर हुवो नव नायां ऐम।
गोरख भरथ जळंधर गोपी, तारण-तरण हेम- मुत नेम॥ २॥
परचां पार किसो कवि पावै, जीवन मुकुति हुवा जगजीत।
सुरति हेक साहिव सूं सांची, और सवं सूं रह्या अतीत॥ ३॥
कर मेलै माथे करुणाकर, सामिल ले लीधा सामाज।
रांगे जिसा आया ज्यों सरणै, कंचन जिसा किया कविराज॥ ४॥
—श्री जोगीदानजी कविया, सेवापुरा, के संग्रह से।

कवि की कुछ लोक-प्रसिद्ध विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इससे पता चलता है कि वे परमयोगी, केवल हरि और हरिनाम-प्रेमी, अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न साधु पुरुष, रागे जैसे लोगों को कंचन के समान करने वाले और गोरख के दूसरे अवतार थे।

किंवदंतियाँ अब तक अल्लूजी का नाथ-प्रभावान्तर्गत योग-साधन और हरि-भक्ति पथ ग्रहण करना मानती आई हैं। इनके आरम्भिक गुरु के विषय में मतभेद है। बलख-बुखारा के सुलतान, जो बाद में राजस्थान में 'हाडीभडंग' नाम से प्रसिद्ध हुए, इनके गुरु बताए जाते रहे हैं। इसके प्रमाण में एक नीसाणी मुळतानी बलख बुखारेदा का हवाला भी दिया जाता है। यह बात गलत है, क्योंकि हाडीभडंग इनसे काफी पूर्व हो चुके थे। फिर यह नीसाणी नानिग (द्रष्टव्य-कवि संख्या ५९) की रचना है, इनकी नहीं। हाडीभडंग की प्रसिद्धि के कारण ही कवि ने उस पर गीत लिखा है, इससे दोनों का समकालीन होना प्रमाणित नहीं होता।

इस सम्बन्ध में प्राप्त नवीन सामग्री के आधार पर निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं —

१-कि अल्लूजी का आरम्भिक जीवन नाथ पंथी साधुओं की सत्संगति में बीता तथा उनकी साधना में किसी नाथ जोगी का हाथ रहा था,

२-कि उन्होंने लगभग ४० वर्ष की आयु में अपना आध्यात्मिक गुरु जाम्भोजी को बनाया था,

३-कि वे विष्णोई सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और आजीवन उसी में रहे।

प्रथम बात तो सर्वमान्य है किन्तु शेष दोनों के लिए प्रमाणों की आवश्यकता है। पहले अन्त साक्ष्य रूप अल्लूजी के कुछ कवित्त द्रष्टव्य हैं —

१- बेंद जोग बंराग खोज दीठा नर निगम।
सन्यासी दरवेस सेख सोफी नर जंगम ।
विथा वियापी मोहि आज आसा घरि आयो।
पाणी अन अहार पेटि सुख परचो पायो।
पाचवों वेद सांभळि सबद, च्यारि वेद हूता चलू ।
भैचळो अभ सावळ कवळ, आज साच पायो अलू[1] ॥

२- जिण कालिग नाथियो, जिण कंसासुर मारे।
जिण गोवळ राखियो, अनड[1] आगळी उपारे।
पूतना प्रहारि, लीया यण खीर उपाड ।
जिणि कागासर छेदियो, चदगिरि नांवे चाडं।
एतळा प्रवाडा पूरिया, अवर प्रवाडा अभ सहे।
अवतार देव अभ तणो अलू, कन्ह तणो अवतार कहे[2] ॥

१-प्रति सख्या १६३ (जम्भसार, १४ वां प्रकरण), २०१, २७२, २६५।
२-प्रति सख्या ८९, १६३ (जम्भसार, १४ वां प्रकरण), २०१-फोलियो ५५२। पहली प्रति से उद्धृत, किन्तु इसमें प्रथम पंक्ति, त्रुटित होने से वह १६३ वीं प्रति से ली गई है।

३- तुंहीं सांम सधीर धर अंबर जण धरियो।
तरे नाम गजराज, ध्रुव पहळाद उधरियो।
परीखत अमरीख पर भगतां पर पाळे।
संखासर संघार वेद तें ब्रह्मा वाळे।
सुर परमोधण तारण संतां, वरण तूझ अवरण वरूं।
उवारियो अलू आयो सरण, जैं ओं देव झांभेसरूं ।।-प्रति संख्या ८९ से।

४- कहां मको कहां सेख सूर सिसिहर कहां संकर।
एक रोम अंतरो वसै ब्रहमंड नीरंतिर।
चरण पांण निज वांण, भांति अवधूत दिखांवत।
सुख चक्र सूं जुगति, गदा वारंत विरंचत।
पचास कोस सायर पवड़, सरंणि चंद रसण्य धरंणि।
एक अलख जंप अलू, श्री वारह तो पाए सरंणि ।। ९ ।।-प्रति संख्या २०१ से।

५- जेण कंसासुर मारियो, मव कीचक समंदर मये।
मुर हिरणाकुस हिरणाख, अगंज गंज उनय नये।
छले वळि जिण छले भुज संहंस भांनेवा।
करि रांवण निरवंस, लंक भभीखण देवा।
एतळा प्रवाड़ा तोरा अछै, काज भगतां कारणै।
वीनती वळ वळ विष्ण, त्रिकंम वाहरां तारणें ।। १३४ ।।

६- जिम राखसि तिम रहसि, जहां भेजसी तहां जायसी।
जिम जोतसि तिम वहिसि, जिम पोखसि तिम पायसि।
च्यारि दूण छउस्य, पांच जण फर भेलां।
अवनासी तो दिसा, तूझ सारी ही वेलां।
वायस हंस उर वांणीं वसै, संकर सिसिहर भुंवरि धरि।
ओ वाच आप मांगै अलू, परम हंस जंभेस हरि ।। १३३ ।।

७- कलम जका ताहरी अवर कुंण कलम ज वालै।
प्रांण मां प्रांण पैदा करै, नमो पोखै प्रतिपाळै।
तूं ही दाता तूं ही देव, तूं ही आतसां अधारै।
तूं ही जोख्यों तूं ही जीव, तूं ही मारै तूं ही तारै।
त्रिगुंण पंच तत अनादि सहित, कीया मनसा धारि करि।
भाग भलो अल्हू भणैं, सतगुर प्रगट मिलियो संभरि।

(छन्द क्रमसंख्या ५, ६, ७ प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण १४ से उद्धृत हैं)।

इनमें प्रथम कवित्त से पता चलता है कि अल्लूजी पेट-रोग के कारण अनेक प्रकार के व्यक्तियों के पास गये। अन्त में सब ओर से निराश होकर, व्याधि-मुक्ति की आशा

लेकर जाम्भोजी के पास आये। उनके द्वारा दिए हुए पानी और अन्न का आहार करने से उनके पेट मे शान्ति हुई, उन्होंने पाँचवे वेद रूप "सबदों" का श्रवण किया और सच्चा विश्वास पाया। एक अन्य कवित्त म भी इस पाँचवें ज्ञान, 'केवळ ज्ञान' का उल्लेख है[1]। दूसरे मे जाम्भोजी को कृष्ण का अवतार बताया है। तीसरे मे कवि जाम्भोजी को सर्वशक्तिमान भगवान मानते हुए, शरणागत के रूप म स्वय को उबारने की प्रार्थना करता है। चौथे और पाँचवें म भी इसी प्रकार उनको भगवान मानते हुए, सम्प्रदाय की एक सुप्रसिद्ध मान्यता–जाम्भोजी के बारह कोटि जीवों के उद्धारार्थ आने का उल्लेख किया है। शेष दो कवित्तो मे "परम हस जभेम हरि" (६), "सतगुर" के साक्षात् प्रकट होकर समरायळ पर मिलने का वर्णन है (७)। वैसे सब कवित्तों मे भगवान के रूप मे जाम्भोजी का महिमा–गान तो है ही।

बहि साक्ष्य से भी पूर्व कथन की पुष्टि होती है —

१–सम्प्रदाय मे " २४ की चूर" प्रसिद्ध है जिसमे तीन विष्णोई चारण कवियो मे अल्लूजी का नाम १६ वा है (१५ वा तेजोजी और १७ वां कान्होजी चारण का है, द्रष्टव्य-विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)।

२–सुप्रसिद्ध कवि सुरजनजी ने "कथा परसिध" मे अल्लूजी का जाम्भोजी की शरण मे आना लिखा है :—

सांभळी साखि भाखं सवायो। अलू भलो नाथ री भेंट आयो।
उतरह जात भती अमाइ। मारथी ता दस घाट मांहो ॥ ११७ ॥

३–अज्ञात कवि कृत "जाम्भोजी रै भक्ता री भक्तमाळ" में अन्य विष्णोई भक्तो के साथ इनका नाम भी वर्णित है (छन्द १६ मे) (द्रष्टव्य–परिशिष्ट मे "भक्तमाल")।

४–हीरानन्द के 'हिंडोलणो' मे अन्य विष्णोई जनों के साथ अल्लूजी का नामोल्लेख है (द्रष्टव्य–परिशिष्ट मे 'हिंडोलणो')।

५–हरिनन्द नामक विष्णोई कवि ने "सोरठि" राग मे गेय अपने एक 'हरजस' में जाम्भोजी का विरुद गाते हुए अन्य भक्तों के साथ इनका वर्णन भी किया है—

पात सुपात भया नर केता, अलू तेजा कवि कान्हा।
हरिनद और न जांचू, अभ गह मन मानां ॥ ७ ॥

६–साहबरामजी ने जम्भसार (प्रति सख्या १९३, प्रकरण १४ वां) में अल्लूजी का सविस्तर उल्लेख किया है। उनके अनुसार, रावल जैतसीजी के समय जैसलमेर मे अल्लूजी

१–मति गिनान सु मति मति, कु मति नहीं आवं काई।
सुरतिं गिनान सुरति होय, परखि जा घटि उपजाई।
अवध्य गिनानी सो होय, आरवळ दीय सु गाई।
मन पर जोजवी गिनान, जोजन लग दीय बताई।
केवळ न्यान मारा सिरै, सब जोंण जाण सकळ।
पाचवों न्यान ज उपजै, सकळा सीरि सोई अकळ ॥ —प्रति सख्या २०१ से।

रहते थे। जलोदर रोग से दुखी होकर वे अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार के लोगों के पास इसके निवारणार्थ गए, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। घूमते-घूमते अन्त में फलौदी के पास वे मरणासन्न हो गए। लोग उनको खाट पर डाल कर जाम्भोजी के पास जम्भसागर पर ले गए। वहां जाम्भोजी के चरणों में गिरकर उन्होंने रोग-मुक्ति की प्रार्थना की। जाम्भोजी के कहने पर उन्होंने जाम्भोळाव में स्नान किया और उसका पानी झारी में भर कर पान किया। इससे उनकी सब व्याधि तत्काल दूर हो गई और वे उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति स्वरूप उन्होंने अनेक कवित्त कहे, जिनमें ऊपर उद्धृत पहला छन्द तो बहुत ही प्रसिद्ध है। उल्लेखनीय है कि इस कवित्त में साहबरामजी के कथन का समर्थन है।

७- ८-स्वामी ब्रह्मानंदजी[1] और स्वामी श्रीरामदासजी[2] भी इस बात की पुष्टि करते हैं। सम्प्रदाय में दीर्घकाल से यही परम्परागत मान्यता रही है। साहबरामजी ने कोल्हजी और कान्होजी के प्रसंग में भी अल्लूजी का उल्लेख किया है। कोल्हजी अन्धे होने पर अल्लूजी के कहने से, उनके साथ जाम्भोळाव में नहाने आए थे[3]। पुत्र-विहीन कान्होजी ने अल्लूजी के कहने से अपनी पत्नी को जाम्भोळाव का जल पिलाया और सफल मनोरथ हुए थे[4]।

इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अल्लूजी जाम्भोळाव पर जाम्भोजी से कब मिले। जाम्भोजी के जीवन-वृत से तो ऐसा कोई निश्चित संकेत प्राप्त नहीं होता किन्तु अनुमान किया जा सकता है। जाम्भोळाव की खुदाई संवत् १५४५ में आरम्भ की गई जो संवत् १५४८ की चैत्र की अमावस्या को पूर्ण हुई, क्योंकि प्रसिद्ध है कि जाम्भोळाव का मेला वील्होजी ने इसके निर्माण के एक सौ साल बाद संवत् १६४८ में सर्वप्रथम आरम्भ किया था। वील्होजी की एक साखी में इसका उल्लेख है[5]।

स्वामी ब्रह्मानंदजी ने एक स्थल पर इसका निर्माण संवत् १५४५ के आषाढ़ की पूर्णमासी[6] और दूसरे पर संवत् १५४७ में होना[7] बताया है।

स्पष्ट है कि संवत् १५४८ के पश्चात् ही किसी समय अल्लूजी जाम्भोजी से जाम्भोळाव पर मिले थे। जाम्भोजी के सम्बन्धमें यहां पर कवि द्वारा कहे गए कवित्तों में उनकी कवित्व-शक्ति, भाषा-सौकर्य, स्वानुभूति की गहराई और व्यावहारिक ज्ञान की प्रौढ़ता का पता चलता है। दूसरे यह, कि इससे पूर्व वे अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार के व्यक्तियों के पास

१-श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ १२४-२५ तथा विश्नोई धर्म विवेक, पृष्ठ २७-२८।
२-श्री १०८ श्री जाम्भोजी महाराज का जीवन चरित्र, सुरजनजी कृत; पृष्ठ २६-३३।
३-प्रति संख्या १६३, "जम्भसार", प्रकरण १४ वां, पत्र ४६-५०।
४-वही, प्रकरण १४ वां, पत्र ५४-५५।
५-पहल मेळै की मांड हुई, सौळासै अठताळ।
तेरा धरमी धरम करै, तीरथ कल्यो उजाळ॥ -प्रति २०१, साखी १०४।
६-श्री जम्भदेव चरित्रभानु, पृष्ठ ११५।
७-अखिल भारतवर्षीय विष्णोई महासभा, तृतीय अधिवेशन, कानपुर, -सभापति पद से दिया गया भाषण, पृष्ठ २७।

रोग-निवारणार्थ जा चुके थे। इस समय तक यदि उनकी आयु लगभग ४० वर्ष की और संवत् १५६० के आस-पास उनका जाम्भोजी से मिलना मानें (जो जाम्भोजी और जाम्भोळाव की बढती हुई प्रसिद्धि को देखते हुए उचित है) तो उनका जन्म संवत् १५२० निश्चित होता है। इसका समर्थन सौ वर्ष की आयु मे जीवित समाधि लेने वाली बहु-प्रचलित किंवदंती से भी होता है, क्योंकि समाधि-समय संवत् १६२० एक प्रकार से निश्चित ही है। उपर्युक्त कथन के आधार पर अल्लूजी का जन्म संवत् १५६० अथवा १६२० मान्य नहीं हो सकता, जैसा कि अन्यत्र कहा गया है। संवत् १५६० मे तो वे सर्वप्रथम जाम्भोजी से जाम्भोळाव पर मिले थे और संवत् १६२० मे उन्होंने समाधि ली थी।

नाभादास और राघोदास ने अल्लूजी और कोल्हजी को भाई-भाई नहीं बताया जबकि इनकी भक्तमालो के टीकाकारों-प्रियादासजी और चतरदासजी ने ऐसा कहा है। टीकाकारों का यह कथन सर्वथा गलत है। साहबरामजी ऐसा नहीं कहते और अल्लूजी के वंशजों मे वे अपने पिता के एकमात्र पुत्र ही माने जाते हैं।

अन्य सिद्ध पुरुषों की भांति अल्लूजी के चमत्कार सम्बन्धी अनेक किंवदंतियाँ भी प्रचलित हैं। अज्ञात कवि रचित एक कवित्त मे भी इनका संकेत मिलता है[1]। किंवदंतियों के निष्कर्ष स्वरूप अल्लूजी का प्रारम्भिक जीवन में नाथपंथी योगियो के साथ रहना निश्चित होता है। वे योगी से गृहस्थ बने तथा अपेक्षाकृत बडी आयु में उन्होंने विवाह किया। उनके कतिपय कवित्तों मे भी नाथ-प्रभाव मुखर है।

इस प्रकार, अल्लूजी के जीवन और काव्य को दो रूपों में समझा जा सकता है— जाम्भोजी से मिलने से पहले-और उसके पश्चात। पहले में वे नाथ पंथ और उसमें स्वीकृत हठयोग-साधना से अधिक प्रभावित रहे और दूसरे में जाम्भोजी और उनके पाँचवें वेद रूप "सबदो" से। विद्वानो में अभी तक उनका पहला रूप ही प्रसिद्ध रहा है, उनके नाम के आगे "नाथ" लगाना इसी का परिणाम है।

रचनाएँ :—अल्लूजी के फुटकर कवित्त और गीत ही प्राप्त हुए हैं। परम्परा से ये कवित्तो के विशेष कवि माने जाते रहे हैं[2]। इनकी ख्याति का आधार कवित्त ही हैं। अद्यावधि इनके ८४ कवित्त और ३ गीत प्राप्त हुए हैं, जिनम ३८ कवित्त तो विभिन्न हस्त-लिखित प्रतियों मे मिले हैं[3], कुछ विभिन्न लोगो से सुनकर और जोगीदानजी के संग्रह से

१-दे परचो साखळा, भिडण जोधण जस भाख्यं।
चहुआणा घर खोस, एक मकराणें राख्यं।
अचळो अनें तिलोक, धरा जीवण वद धारं।
नोपत बंद नवाब, सगर बाईस सधारं।
आपियो पूत अहीर नें साख चंद सूरज भरं।
अ नाथ धणी सिर ऊपरं, कोड़ पिसन कासू करं।-श्री जोगीदानजी कविया से संग्रह से।
२-कवित्त अलू दूहे करमाणंद, पात ईसर विद्या चो पूर।
मेहो छंदे झूलणे मालो, सूर पदे, गीते हरसूर॥
३-(क) प्रति संख्या ८९, १९३, २०१, २०३ (अ) (४), २७१, २७२, २९५।
(ख) प्रति संख्या ६६ (४३) -अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।

एकत्र किए हैं, शेष प्रकाशित[1] रूप में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार इन्होंने वील्होजी, सुरजनजी और केसोजी की भांति जाम्भोजी का ऐतिह्य भी लिखा था[2] जो दुर्भाग्य से अब प्राप्त नहीं है। यह भी प्रसिद्ध है कि अल्लूजी चारण और आलमजी ने "सबदवाणी" का "बृहत् ग्रंथ" लिखकर तैयार किया था, किन्तु उसे यवनों ने नष्ट कर दिया[3]। खोज करने पर सम्भवतः और रचनाएँ भी उपलब्ध हों। मोटे रूप से अल्लूजी की रचनाओं का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:—

कवित्त, गीत

(क) योग, शान्त रसात्मक, अध्यात्म
- अष्टांग योग वर्णन। योग साधना का उल्लेख।
  - योगी–स्तुति (कवित्त, गीत)
- निर्गुण ब्रह्म–माहात्म्य। कृष्ण–माहात्म्य। राम–माहात्म्य, जाम्भोजी–माहात्म्य, भगवन्नाम–माहात्म्य, भगवद्–स्तुति।

(ख) वीर रसात्मक
- राव मालदेव पर, हाड़ा सूरजमल पर (कवित्त, गीत)

(ग) मरसिया
- राव मालदेव पर।

योग सम्बन्धी अधिकांश कवित्तों में कवि ने घट के भीतर ही परमसत्ता को पहचानने पर जोर दिया है। हठयोग की साधना–परक बातों का वर्णन कर कवि ने इस ओर संकेत मात्र किए हैं :—

> कहां घट टामक कहां मादळ दमकारो।
> कहां नाद गड़गड़ कहां तंत्री झणकारो।
> कहां ताळ कंसाळ कहां ऊससो अंबर।
> कहां गहर गंभीर कहां भणंकै मधुकर।
> विण कंठ ग्रीव ठाढो वयण, विण मूरति फासू जुवो।
> अचंभो एक दीठो अलू, हद मांह बेहद हुवो[4]॥

१–(क) डा० विपिनविहारी त्रिवेदी : विचार और विवेचन, पृष्ठ १०१–१०८, लखनऊ, १९६४।
(ख) परम्परा, भाग १२, सन् १९६१, जोधपुर, में उद्धृत किन्तु इनका आधार नहीं बताया है।
२–(क) स्वामी ब्रह्मानंदजी : श्री वील्होजी का जीवन-चरित्र, पृष्ठ १०।
(ख) श्रीरामदासजी : श्री १०८ श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र, सुरजनजी कृत, पृष्ठ ३६।
३–स्वामी ब्रह्मानंदजी : श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ १८, पादटिप्पणी।
४–मुखश्रुति से। डा० त्रिवेदी कृत 'विचार और विवेचन' में भी प्रकाशित है।

कवि के एकाध कवित्त "उलटबासी" शैली पर रचित भी सुने जाते है किन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है। यह परम्परा उनको नाथ पथ से मिली प्रतीत है। एक कवित्त म व अपनी कथनी का अर्थ नव नाथो से ही पूछत हैं —

भवर भ्रमै ऊनळो, हस मैं काळो दीठो।
पाणी मरै पियास पवन तप करै पयट्ठो ।
अन्न छुधा दूबळो, अड्ड है कप्पड कप्पै ।
तिरिया रोवत देख, धान दे बाळक थप्पै ।
लूण अलू णो घ्रत लुखो, सील तेज पावक मरस।
नव नाथ सिद्ध पूछै अलू जोग स्रगार क वीर रस[1] ॥

कवि का हाडोभडग पर कहा गया निम्नलिखित गीत[2] तो बहुत ही प्रसिद्ध है। ध्यातव्य है कि गीत म उनकी प्रशसा के साथ योगसाधना परक सकेत भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है —

अई सेर सुलतान लागा पलक उनमु नि, तोड़ता खलक सू मोह तागो।
छोडतां अळख कर सेर पचम छटो, जोग चकवे अलख हेत जागो ॥ १ ॥
त्रगुण अवलोकि गोरख कृपा हेक तन, जगै पावक पवण मेघ झेलै।
मेर गिर चढै बाध्यो सुरत गगन में, खट सुमति लगन मे हम खेलै ॥ २ ।
बीज गावै द्रवै मेघ बादळ विना, जड बिनां तरवरां बसत जागी।
घातिया चोर बांको जगड धाण मे, विहद निरवाण मे फतह बागी ॥ ३ ॥
दुळीजै अधर फरकै धुजा अरस मे, तुळीचै दरस मे कळप ताई ।
वेद आगम निगम पवन बाचा परै, सूर साचा करै राज साई ॥ ४ ॥
ब्रह्म सुख च्यार अविकार कीन्हों बिजै, परमगति जिका सुकदेव पाई।
नमो हांडोभड्ग आतमा निवासी (थारी) सातवां सुन्नि मे पातस्याही ॥ ५ ॥

योग सम्बन्धी कवित्तो से उनका इस विषय मे अनुभव झलकता है। इस बात का पता चलता है कि वे पहुचे हुए योगी भी थे।

अध्यात्म परक कवित्तों मे कवि ने विशेष रूप से दो प्रकार से हरि-महिमा का वर्णन किया है-एक तो राम, कृष्ण और जाम्भोजी की महिमा और उनके प्रमुख कार्यों का पृथक् पृथक् वर्णन करके तथा दूसरे भगवान और उनके अनेक अवतार रूपो में किए गए कार्यों का नामोल्लेख करके, जैसे पूर्व उद्धृत "केण कसासुर मारियो" वाले कवित्त मे। जाम्भोजी से सम्बन्धित कवित्तो का उल्लेख कर आए हैं। राम और कृष्ण सम्बन्धी दो कवित्त द्रष्टव्य है[3]।

१–श्री जोगीदानजी कविया, सेवापुरा, के सग्रह से प्राप्त।
२–वही।
३–राम : धुरा लक धडहडे, समद बधो सर पजर।
अनळ झाळ उछळे, धिखे धूवा धौलागिर।
कू म करज करद, मथे महामण मैगळ।

(शेषांश आगे देखें)

राम और कृष्ण-महिमा से सम्बन्धित कवित्तों से यह न समझना चाहिए कि कवि सगुण ब्रह्म का उपासक है। उपासक तो वह निर्गुण ब्रह्म का ही है। विष्णोई सम्प्रदाय में अवतार और अवतार-रूपों का गुणगान मान्य होते हुए भी, अन्ततः निर्गुण ब्रह्म की उपासना ही चरम ध्येय है। अल्लूजी के राम और कृष्ण सम्बन्धी कवित्तों में इसी बात का निदर्शन मिलता है जिसका खुलासा उनके जाम्भोजी सम्बन्धी कवित्तों में मिल जाता है। कहना न होगा कि सम्प्रदाय की इस मान्यता का प्रभाव राजस्थान के अनेक परवर्ती भक्त कवियों पर किसी न किसी रूप में पड़ा।

निर्गुण ब्रह्म की उपासना के हेतु अल्लूजी बाह्य-पूजा का त्याग कर केवल नाम-स्मरण करने को ही कहते हैं। उनके लिए राम, कृष्ण, नारायण सब "विमन" के-निर्गुण ब्रह्म के ही नाम हैं। बाह्य पूजा किसकी और कैसे की जाए, यह उनके लिए दुविधा की बात है। नीचे लिखे कवित्त में कवि ने इसका अत्यन्त तर्कसंगत विचार किया है:—

पांणी पाक किम पुणां, मांहि मींडक मछ व्यावै।
भोजन पाक किम पुणां, उडे माखी ओठावै।
सुरभी गोवर पाक, फरै भोखर चहुं आरां।
काया पाक किम कहां, भोत मळ भरी विकारां।
ऊपजै खपै यण मैं अलू, यण धरती यो ही विसन।
अजोणी नाथ तोनैं नमो, किसी भांति पूजां किसन ?[1] ॥ २९ ॥

यह पूजा केवल नाम-स्मरण से ही सम्भव है। जत, सत, अष्टांग योग, प्रेम, भक्ति गुरु-ज्ञान सबका सार विष्णु-नाम स्मरण है। उद्धार इसी के जप से होगा। यही मुक्ति का मार्ग है। जीभ के होते इसको छोड़ना नहीं चाहिए:—

अहो जत अहो सत, अहो सन्यास उजाणै।
अहो अंनळ असटंग, जोग मारग ओ जांणै।
प्रेम भगति गुर ग्यांन, सार हरि नांव संभरे।
कुंजविहारी किसंन, चरंण दासे का चेतारे।

हण हाक हैकपण, उलट गढ कियो उदंगळ।
मोदरे मंदोवरि तास भै, सपनंतर आया सहम।
कोपिया राम रांमंण सरिस दलै सीस गमिस्यै दहम ॥ —मुखश्रुति से ;
कृष्ण : गोपनारि चित हरंण, पेम लछंण संमपंण।
कुंजविहारी किसंन, लाल वनरावन रचंण।
गोवरधन उधरंण, पीड पाळण निसतारण।
जुरासिंघ सिसपाळ, भिड़े भुंय भार उतारंण।
जंमलोक दरमंण परहरंण, भोव भांजंण जामंण मरंण।
योह मिन भलो इह निम अलू, मिवरि नाथ असरंणि सरंणि ॥ —प्रति संख्या २०१ से।
१—श्री जोगीदानजी कविया, सेवापुरा, के संग्रह से।

एम करै स दूतर तरै, एकोतरि कुळ उपरै ।
उरि कंठ जोह हुंता अलू, विसन नांव जिन वीसरै[1] ॥ ३० ॥

कवि ने नारायण–नाम–स्मरण को जीवन की सहज और स्वाभाविक क्रिया बना ली है। नाम–स्मरण से उसको असीम आन्तरिक आनद की प्राप्ति होती है जैसे सावन में सघन बादलों के बरसने से मोरों और मेढको को। कवि इसे ही मुक्ति का साधन मानता है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति वर्षों के अभ्यास से ही सम्भव है। एक कवित्त द्रष्टव्य है—

जिम मोरां ददरां, सघंण घंण पावस वूठो।
जळ सा मंछ वीछोडि, वळे जळ माहि पयठो।
वहे अपूठी नाडि जांणे अंमल वाएडिया लधो।
मांड पेरत गळमेळ जांण्य खुधियारथ लधो।
आणंद हुवो घट मांहरै, जीव तणो पायो जतन।
नारीयण नांव मेल्हिस नंहो, रक हाथ चडियो रतंन[2] ॥ ३१ ॥

नाम–जप के लिए जाति, अवस्था, वाह्य वेशभूषा और वर्ग–भेद व्यर्थ है, यह तो "सूरधीर" का ही काम है।[3] । भौतिक वस्तुएँ असार, अस्थायी और नाशवान हैं। उनसे कुछ समय के लिए शरीर की चमक–दमक भले ही हो जाय, किन्तु चित्त उज्ज्वल नहीं होता। यह तो नारायण नाम से ही होना है, अतः श्वास की डोरी में नारायण–नाम का रत्न बांधकर शृंगार करना चाहिए:—

पाट चीर पहरियं मास छठै मेल्हीजं।
किसूं कूड कथियं, लेइ घट नंडो कीजं।
जे सोवन पहरई, तोई नहे सरसो आवं।
जे चंदण चरचियं, तो किसो पुन्य फळ पावं।
उजाळ चित ऊजळ कियो, सास पोई डोरी सघर।
नारियंण नांम नीको रतंन, कंठ बांघ सिणगार कर ॥–प्रति सख्या १९३ से।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि कवि हरि नाम–स्मरण को मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय मानता है।

१–प्रति सख्या २०१ से।
२–प्रति सख्या १९३, २०१, २७२। उदाहरण दूसरी प्रति से।
३–कुण हीदू कुंण तुरक, कुण काजी ब्रमचारी।
कुण मुला दरवेस, जती जोगी जटधारी।
कुण वाळक कुण व्रध, कुण राजा कुण परजा।
सूर धीर का काम और का नही अनजा।
काय जटा तिलक छापा करो, कूडो कमडळ काठ को।
उंण ग्रहे साच पाइयै अलू, ओ जाप श्री आठ को ॥—प्रति सख्या २०१ से।
अन्तिम अर्द्धाली—'ओ " आठ को' के स्थान पर 'ओ पसेरी आठ को' पाठ भी बताया जाता है।

अध्यात्म-परक कविता मे शान्त-रसात्मक भावों की अभिव्यक्ति और भगवान की सर्व-शक्तिमत्ता का वर्णन होना स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध मे यह कवित्त, जो राजस्थान के लोक जीवन में बहुत प्रसिद्ध है, देखा जा सकता है:—

जठै नदी जळ विमळ तठै थळ मेर उलटै।
तिमर घोर अंधार, जहां रवि किरण प्रगटै।
राव करीजै रंक, रंकां सिर छत्र धरीजै।
अल्हू सास वे सार आस कीजै सिवरीजै।
चख लहै अंध पंगां चलण, मोनी सिघायक वयण।
तो करतां कहा न होय, नारांयण पंगज नयण।[1]

इन कवित्तों मे कवि की भगवद्-निष्ठा, -प्रेम, हरिनाम-स्मरण में तल्लीनता और उल्लास की रिमझिम वर्षा सी होती दिखाई देती है, जिससे निसृत अध्यात्म-काव्य-निर्झरणी स्वानुभूति और व्यवहार-ज्ञान के किनारों के बीच मंथर गति से बहती, लोक-मानस की अध्यात्म-पिपासा को युग-युगों से शान्त करती आई है।

वीर-रसात्मक : मरसिया:—वीर रसात्मक ऐतिहासिक कविता चारणों की बपौती है। अतः अल्लूजी के लिए ऐसी रचना करना स्वाभाविक ही था। बूंदी के हाड़ा राव सूरजमल और उनकी कटारी विषयक दो गीतों का प्रकाशन हो चुका है[2]। घटना के समसामयिक होने से इनका रचाकाल संवत् १५८८[3] या इसके आस पास बाद होना चाहिए।

जोधपुर के राव मालदेव और उनकी विभिन्न विजयों से सम्बन्धित कवि के ४ कवित्त अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति संख्या ९६ में मिलते हैं। प्रथम कवित्त "जै उपर नव लाख सेन आयो गुड पसर" में रावजी द्वारा जोधपुर के किले को शेरशाह से पुनः लेने का उल्लेख है। संवत् १६०२ में रावजी ने किला पुनः प्राप्त किया था[4]। दूसरे मे राव मालदेव को जैसलमेर के भाटियों मे बैर न करने को कहा गया है। उल्लेखनीय है कि संवत् १५९३ में जैसलमेर के रावल लूणकरण की बेटी उमादेवड़ी से राव मालदेव का विवाह हुआ था। संवत् १६०८ में जैसलमेर में रावल लूणकरण का बेटा रावल मालदेव राजा था। राव मालदेव ने उनसे युद्ध ठाना था[5]। कवि का कथन है कि रावजी को ऐसा नहीं करना चाहिए:—

विहुं वांह आदमी केम समंद्र तीर सह।
घडस प हाथ म घाल, रोस आंहिकार तजै रह।

१-प्रति संख्या ८६, १६३, २०१, २७२, २९५।
२-"परम्परा", भाग-१२, जोधपुर।
३-ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ७०५।
४-ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३१०।
५-आसोपा : मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १३७, १४१।

भैरव सांप भरेव, भाज काय यट ओ भाविस।
पावक मांहे पैस, सही भाटी सिलाविस।
बड पर्ण राव रावळ करो, तोड म जैसलमेर तूं।
मम करिस म कर मम कर म कर, म कर वैर रावळ माल सूं॥

दोनो कवित्तो का रचनाकाल क्रमशः सवत् १६०२ और १६०८ प्रतीत होता है।

अन्तिम दो कवित्त रावजी की मृत्यु पर कहे गए मरसिए हैं। तीसरे मे रावजी के जीवन की प्रमुख घटनाओ, विजयो और कार्यों का उल्लेख करता हुआ, चौथे मे उनकी विशेषताओ और उपलब्धियो का शोक भरा वर्णन करता है। रावजी की मृत्यु कातिक सुदि १२, सवत् १६१९ को हुई थी,[1] अत इनका रचनाकाल भी यही होना चाहिए। इस प्रकार इस समय तक कवि का जीवित रहना सिद्ध है। इसके पश्चात् ही किसी समय अनुमानतः सवत् १६२० मे कवि ने जीवित समाधि ली थी। दोनो कवित्त नीचे दिए जाते हैं —

जिण तुरकांणों जीप, ग्रहि नागौर बडो ग्रह।
खेत वहे जागळू, सर्म सीमा, पैली सह।
नारनोळ हुसार, जेण कीधा सरपधर,
धर, ढीली, ढूढोळ राप, साम्र रिणथभर।
मेवाड़ धणी उखड़तो धींग, स त्रांण खगधर,
रिणमल वैर उग्राहतें हेड लीयो कुंमेण हर॥ ३॥
भर्गो तोय वाराह राह गिलियो तोय दणीयर।
लाधंगियो तोय सीह जेम मथियो तोय सायर।
अण हुंते वीकर्म घणे चोटीयो वीकोदर।
खोडो तोय हणवत लियो दरसण तोय सींकर।
मालदेव राव मांडोवरो, धणं भूंस कटके घणो।
पाखली राव पाडोसीयां, वह चीतौ तोय वांहमणो॥ ४॥

मल्लूजी की भाषा मे कृत्रिमता का नाम भी नही है, वह तत्कालीन बोलचाल की मरु-भाषा है। उनके हृदयोद्गार अनायास ही घरेलू भाषा के माध्यम मे कवित्त रूप मे प्रकट हो गए हैं। भाषा की सरलता तथा भावो की सच्चाई और सहज-प्रेषणीयता के कारण वे जन-मानस मे इतने प्रसिद्ध हो सके हैं।

विष्णोई सम्प्रदाय के चार प्रमुख चारण कवियो में अल्लूजी की गिनती है। चारण भक्त कवियो मे कालक्रम से तेजोजी और कान्होजी इनसे किंचित् पूर्व हुए हैं। राजस्थानी सिद्ध-साहित्य मे इनका विशिष्ट स्थान है। हिन्दी की "सत"- भक्ति- काव्य- परम्परा मे भी इनका समुचित मूल्याकन होना चाहिए।

१–आसोपा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १३७ १४१।

३९. दीन महमंद : (लगभग विक्रम संवत् १५२५-१६००) :

इनके विषय में प्रामाणिक रूप से विशेष कुछ ज्ञात नही हो सका है। सुने-सुनाए आधार का सार यह है कि ये अजमेर के काजी थे और संवत् १५४८ के आसपास अजमेर के मल्लूखां वाली घटना (द्रष्टव्य-जाम्भोजी का जीवन-वृत) से प्रभावित होकर जाम्भोजी के शिष्य हो गए थे। इनको जाम्भोजी की ओर आकृष्ट करने में सुप्रसिद्ध विष्णोई कवि काजी समसदीन की भी प्रेरणा थी। ये पहुँचे हुए सिद्ध और रमते राम थे। अपनी रचनाओं में 'काजी महमद' की टेक भी लगाते थे। इनका समय उपर्युक्त अनुमित है। हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त (प्रति संख्या २०१ तथा ४०६ में) इनके दो हरजस नीचे उद्धृत किए गए हैं[1]। इनमें सांसारिक माया-मोह, नश्वरता और तृष्णा की प्रबलता बताकर उससे बचने की भावभरी चेतावनी दी गई है।

इनके नाम से अध्यात्मपरक ये दो हरजस प्रकाशित भी किये गये हैं[2] किन्तु इनका आधार नही बताया गया है :-

१-इण आंगणिये हे सखी हम खेलण आया।
केई खेल्या केई खेलसी केई खेल सिधाया॥ टेक॥ (४ छन्द)।

२-मनवा झूठो रे संसार, लोभी थारी नींदड़ली नै परी निवार॥ (५ छन्द)।

इनमें दूसरे के प्रायः सभी छन्द किंचित् परिवर्तित रूप में अन्यत्र भी मिलते हैं[3], वहां इनका रचयिता अज्ञात है। अतः निश्चितरूपेण यह कह सकना कठिन है कि ये अपने

१-(क) सुवटा रे मीनकी डर करणां, बाळक गिणै न वूढा तरणां॥ १॥ टेक॥
ऊंचा ऊंचा महल्य साळि रसोई, जहां सुवटा तेरा रहंण न होई॥ २॥
सुवटो आय सुपंम करि सोवै, या सुवटा कुं मीनकी जोवै॥ ३॥
या मीनकी कूं असी छाजे, छत्रपति कूं मीनकी ले ले भाजै॥ ४॥
दीन महंमंद कहि संमझावै, या मीनकी ता अलाह छुडावै॥ ५॥-प्रति २०१ से।
(ख)-भूलो मन भंवरा कांई भवै, भवै यूं दिन सारी रात।
माया रो लोभी पिरांणियो, बांध्यो जमपुर जाय। टेक॥
किण रा छोरू किणरा वाछरू, किण रा माय र वाप॥
ओ जीव जायसी एकलो, साथे पुन 'र पाप॥ १॥
कुंभ काचो काया कारवी, जिण री करनो सार।
जतन करंता जावसी, विणसत नाही वार॥ २॥
हस्ती गैवर घूमते, लापां चटते लार।
गरव करंता गोपे वैसता, से जळ वळ होयगा छार॥ ३॥
आडा डूंगर वन घणां, संवळो लीज्यो साथ।
आगै हाट न वांणियां, लेपो किं रे हाथ॥ ४॥
नदियां गैरी कठण लांवणी, पंथ पांडा री वार।
काजी महमंद वीनवै, हरि भजि उतरो पार॥ ५॥-प्रति संख्या ४०६ से।
२-श्री हरियश-मणि-मंजूषा, पृष्ठ १२२-१२३, हरजस-२५६; पृष्ठ २२६, हरजस-४७५, -साधु वैद्य श्री रामनारायणजी (मिन्द्यल), बीकानेर, संवत् २०१६।
३-राजस्थान रा दूहा, संपादक-श्री नरोत्तमदास स्वामी, पृष्ठ १९१-१९२, सन् १९६१।

मूल रूप मे सुरक्षित हैं या नही, कदाचित् नही ही हैं। लोक मे अनेक स्थानों पर इनके नाम से अनेक हरजस सुनने को मिले हैं, किन्तु मौखिक परम्परा से प्राप्त होने से उनकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी नही कहा जा सकता।

कवि लोकमानस को आत्मानुभूति से दीपित कर, हरजसो के रूप म लोकप्रचलित भाषा के माध्यम से प्रकाशित करता है। प्रतीको का वह विशेष प्रेमी है। इनके हरजस इतन प्रसिद्ध और प्रचलित हुए कि अन्य विख्यात सतों न भी अपने-अपने सकलन-ग्रन्थो मे उनको सादर स्थान दिया[1]। इसी आधार पर इनकी और रचनाएँ मिलने की सम्भावना भी है।

४०. रायचद सुथार : (लगभग विक्रम सवत् १५२५-१६१०) :

ये बीकानेर रियासत के, सम्भवत उसके पूर्वोत्तर भाग के किसी स्थान के रहने वाले साधु थे। 'सूर' मे पहला नाम इन्हा का है, जिससे विदित होता है कि जाम्भोजी की महिमा से अभिभूत होकर ये सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए। इनकी एक साखी (सख्या-२) म जाम्भोजी के पश्चात् हुई विश्णोई समाज की दशा का वर्णन है, जो वील्होजी के सम्प्रदाय में आने से पूर्व (सवत् १६११) का होना चाहिए। इस आधार पर इनका जीवन काल उपर्युक्त अनुमित है। 'हिंडोलणो' म इनका नामोल्लेख है। सा्हबरामजी ने इनकी 'कथा' किंचित् विस्तार से दी है (प्रति १६३, जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ४१-४२)। उनके अनुसार, ये एक बार सम्भराथळ पर गए। वहा जाम्भोजी के दर्शन करने से इनके सब सशय दूर हो गए। तब से ये जाम्भोजी के साथ ही रहने लगे और यत्र-तत्र उपदेश भी देने लगे। ये 'अगभे' साखियाँ कहने वाले भजनानदी, मस्तमौजी साधु हुए। फलौदी के हाकिम से जाम्भोळाव के लिए इन्होने नगाडो की एक जोडी मागी। हाकिम ने अपने 'मगज के कीडे' निकाल देने के लिए इनसे कहा। इन्होंने जम्भगुरु की भभूत उसके माथे पर लगाई, जिससे सब 'कीडे झड गए'। उसने तब मेले के समय प्रसन्नतापूर्वक जोडी वहा चढाई और 'सूत फिराया'। स्वय जाम्भोजी इनका महिमा बखान करते थे। इनका आना-जाना जाम्भाणी स्थानो म ही रहता था। धर्म-नियमो के ये कट्टर पालक थे और दीर्घायु होकर स्वर्गवासी हुए बताए जाते हैं। स्मरणीय है कि प्रकारान्तर से इस कथन की पुष्टि कवि की साखियो से भी होती है।

रचनाएँ —इनकी ये ६ साखियाँ मिलती हैं :—

(१) कळिजुग तीरथ थापियो, भाग परापति पावियो[2]। ४ छन्द, 'छदा की'।

१—रज्जबजी की 'सर्वंगी' मे अनेक सत-सिद्धों की वाणियो के साथ इनकी वाणी भी सकलित की गई है। द्रष्टव्य-दादू महाविद्यालय, जयपुर की हस्तलिखित प्रतियाँ।

२—प्रति सख्या—६८, ७६, ९३, ९४, १४१, १४२; १४३, १५२, १९१, २०१; २१३; २१५ और ३२१।

(२) सांम्य सिधार्‌यो चिळत कियो, पंनरासै रि तिरांणवें[1] । ४ छन्द, 'छंदां की' ।
(३) मेरै कान्य अवाज हुई, औतार लियो संसारो [2] । –८ पंक्तियाँ, 'कणां की' ।
(४) मेरा मंन विणजारला विणजत नेहड़ा कीजै जी[3] । –४ छन्द, 'छंदां की' ।
(५) कांय सखी तेरी मैलोड़ो वेस, कांय सखी आंमंण दूंमंणी[4] ? –४ छन्द, 'छंदां की' ।
(६) गुर ज्ञांभेसर अवतार लियो, सभ घरमां केर निवासा ।।[5] –१८ पंक्तियाँ, 'कणां की' ।

पहली साखी में जाम्भोळाव-माहात्म्य तथा तीसरी और छठी में अनेक प्रकार से जाम्भोजी का गुणगान वर्णित है। दूसरी में जम्भ-महिमा के साथ उनके पश्चात् हुई विष्णोई समाज की हीन दशा और उसके सुधारने का 'जमात' से अनुरोध किया गया है। चौथी में सांसारिक असारता और मानव-जीवन की नश्वरता बताते हुए सुकृत द्वारा पार उतरने का वर्णन है। पाँचवीं में कृष्ण-वियोग में व्याकुल गोपियों का विरह और मिलन-सांत्वना का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक साखी का एक-एक छन्द नीचे दिया जाता है[6] ।

१–प्रति संख्या–६८; ७६; ६३; ६४; १४१; १४२; १५२; २०१; २१५।
२–प्रति संख्या–१५२; २०१; २१५; २६३ ।
३–प्रति संख्या–२०१ ।
४–प्रति संख्या–१४१; १५२; १५६; २०१; २१५; २६३ ।
५–प्रति संख्या–७६; ६४; १४१; १४२; १६१; २०१; २६३; ३३८।
६–प्रथम साखी–जिस भोम्य पंडव जिगन रच्यो जी, जिस भोम्य सूत फिराइयै ।
जहां स देवजी तीरथ थप्यौ, जीवड़ां काजै जाइयै ।
जीव काजै काढि माटी, पाळे पर परवाहियै ।
तेरा हुवै आवागुंवण ब्यंडति, सुरग मां सुप लाडियै ।
कह रायचन्द सति जांणी, उस तीरथ जाइयै ।
जिस भोम्य पंडव जिगन रोप्यौ, तांहां सूत फिराइयै ।। २ ।।
दूसरी साखी–तंम चाल्या संसार मेल्ह्या, कांहीं कांहीं हेलै जाणियां ।
छूटी गुर पीरी करंण तज्या, मुण्यौ कुभाण्या ठांणियां ।
ठांणी कुभाण्या दुंनी विलंबी, थूळ मूं संग जोड़िया ।
तंमे कहो छी वात छूटी, क्यों करि मिलैं करोड़िया ।
वाद अर अहंकार वधियो, नाहीं दीसैं सालेहां ।
छिमां दया अर भगति छूटी, तंमे चालि संसार मेल्ह्या ।। ३ ।।
तीसरी साखी–संभरथल्य जी संभरथल्य गुडी ऊछळी, आयो किसंन मुरारो ।। २ ।।
किरिया जी किरिया कहि फुरमाई, जिस थैं लंघियै पारो ।। ३ ।।
पराई जी पराई नंद्या न करो, जांणि लीजै क्यों भारो ? ।। ५ ।।
चहुं जुगां का चहुं जुगां का मोमिण कद मिलै, मिलै विसंन का अवतारो ।।७।।
रायचंद जी रायचंद बोलै वीनती, साधां पारि उतारो ।। ८ ।।
चौथी साखी–संसार ला मेरा जीव, जे कुछि चालै साथि वे ।
संसार वळंत झूंपड़ै, मोई चड़ै कुछि हाथि वे ।
सार चड़ै कुछि हाथि पिरांणी, रहंदा कांम्य न्य आविसी ।
गांठी गरथ न हाथि पंजीहा, उरै हाको न बुलायसी ।
धरम नेम सत संजंमे, अतनां आवै अरथि वे ।
कह रायचंद संसार भला है, जे कुछि चलै सथि वे ।। ३ ।।

(शेषांश आगे देखें)

रूप की दृष्टि से चार साखियाँ 'छदा की' और दो 'कणा की' है। पहली और चौथी साखी के प्रत्येक छद मे कवि के नाम की टेक लगती है। जाम्भोळाव-माहात्म्य सम्बन्धी प्रथम रचना इसी कवि की है (पहली साखी)। जाम्भाणी स्थान-विशेष के वर्णन सम्बन्धी रचनाओं की परम्परा इसी कवि से चली, जिसमे आगे चल कर अनेक समर्थ कवियो ने जाम्भोळाव, मुकाम, रामडावास आदि स्थानो पर सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की। गोविन्दरामजी की 'जाम्भोळाव' वाली साखी तो इनकी साखी से सीधे प्रभावित है।

प्रत्येक जाम्भाणी वस्तु पर कवि की गहरी आस्था और अनुराग है। उसके हृदय मे सम्प्रदाय की पतितावस्था देखकर भारी दु ख है और तद् उत्थान-हेतु वह सतत सचेष्ट और व्यग्र दिखाई पड़ता है। जाम्भोजी के पश्चात् हुई विश्णोई सम्प्रदाय की पतनावस्था का परिचय देने वाला यही एकमात्र हजूरी कवि है (साखी २)। वील्होजी के सम्प्रदाय उन्नयन और पुनर्संगठन सम्बन्धी कार्यों की महत्ता इसी भूमिका पर सही तौर से आकी जा सकती है। इस कारण, साम्प्रदायिक इतिहास की एक कडी के रूप मे इनकी साखी का महत्त्व है।

साखियो की कतिपय पक्तियाँ पर सबदवाणी का प्रभाव लक्षित होता है। उदाहरणार्थ ये पक्तियाँ देखी जा सकती हैं —

(क) तुठो भु यजळ पारि उतारै, जिण्य हरि सूं चित लाविया। साखी-४।
तुलनीय-सबदवाणी, ४६ : ४।

(ख) उत साखि न सीण न बहुण न भाई, नांवां बाप न माई। साखी-६।
तुलनीय-सबदवाणी क-३१ ६, १०, ख-६६ २५, ग-६५ ३३, ३४।

कवि की भाषा बोलचाल की मारवाडी है जिसमे किंचित् पजाबी प्रभाव भी दिखाई देता है। भाषा की यह प्रवृत्ति बाद के केसोजी गाडण आदि अन्य राजस्थानी कवियो की रचनाओ मे भी पाई जाती है। रायचन्दजी की सभी साखियाँ, विशेषत पहली, दूसरी, चौथी और छठी तो न केवल जाम्भाणी साहित्य मे ही, प्रत्युत राजस्थानी-काव्य-परम्परा-मे भी अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं।

४१. कुलचन्दराय अग्रवाल : (विक्रम सवत् १५०५-१५९३) :

सम्प्रदाय मे ये सेठ कुलचन्द या कुलचदजी नाम से विख्यात हैं। ये सिवहारा (बिज-

---

पांचवी साखी-श्रीरग किसन बदेस, तास कारणि सधी री दूमणी।
दूमणी सधी किसन कारण, क्यों रहू अकेलिया ?
निस पिवै वीजळ गिणौं तारे, वीर करत दुहेलिया।
उधौ सदेस कहो हरि सू, मोर वीणि सूनी वेणी।
विछड्या सरीरग मिल्या नाही, तास कारणि दूमणि ॥ १ ॥

छठी साखी-जिण्य सपत पयाळे थभिया, थभिया धरण्य अकासा ॥ २ ॥
च्यारि चक परमोधिया, उजळ सहर के वासा ॥ ३ ॥
के भीना के कोरा रह्या, सभ पाणी की थोटा ॥ ४ ॥
परां ले अरथि चडाइयै, काम्य न आवै पोटा ॥ ५ ॥
से क्यो अरथि चडाइयै, वै नफा न जाणै तोटा ॥ ६ ॥

नौर) के रहने वाले सम्पन्न व्यापारी थे। प्रसिद्ध है कि ४० वर्ष की आयु होने पर भी जब इनके सन्तान नहीं हुई, तो किसी के कहने पर, नगीना से जाम्भोजी के दर्शनार्थ सम्भराथळ जाने वाली यात्रियों की जमात के साथ ये भी अपनी पत्नी रामप्यारी सहित चल दिये। वहां पाहळ लेकर विष्णोई हो गए। जाम्भोजी ने इनके दो पुत्र और दो पुत्रियां होने का वर तथा धर्म-नियमों पर दृढ़ रहने का आदेश दिया। कालान्तर में इनके क्रमशः शान्ति धन्नो, बिच्छू और इमरती–चार सन्तान हुई। इनकी पुत्री शान्ति सुप्रसिद्ध भक्त चेलोजी से ब्याही गई थी। सिवहारा से ये जाम्भोजी के दर्शनार्थ सम्भराथळ पर प्रायः आते रहते थे। जब दोनों पुत्र और पुत्री इमरती विवाह-योग्य हुए, तो कुलचंदजी ने जाम्भोजी से इस अवसर पर अपने यहां आने का आग्रह किया। जाम्भोजी ने कहा कि चेलोजी को मेरा ही रूप समझो। विवाह के समय कुलचंदजी ने जानबूझ कर चेलोजी को अनेक भांति से अप-मानित करके उनको परखा और जाम्भोजी के कथन की सच्चाई का अनुभव किया। संवत् १५९० में जाम्भोजी अपनी अन्तिम भ्रमण यात्रा में सिवहारा भी गये थे[1]। वहां कुलचंद-जी तथा अनेक विष्णोइयों ने उनका स्वागत किया। कुलचंदजी की अनेक शंकाओं का समाधान भी जाम्भोजी ने किया। जाम्भोजी के वैकुण्ठवास के पश्चात् कुलचंदजी ने नगीना के पास अपने प्राण त्यागे थे[2]। "३५ पुन्ह" और "हिंडोलणो" में इनका नामोल्लेख है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने कुलचन्दजी के संभराथळ पर विश्राम-भवन बनवाने की बात कहने पर जाम्भोजी के ७८ वां सबद बोलने का उल्लेख किया है[3]। सबदवाणी के 'गद्य-प्रसंग' में "एक पूरब को विसनोई"[4] और 'पद्य-प्रसंग' में "कन्नौज" के 'विश्नोइयों'[5] द्वारा मख-मल के बिछौने भेंट किये जाने पर, जाम्भोजी के यह सबद कहने का उल्लेख किया गया है। यह संकेत कुलचंदजी की ओर प्रतीत होता है।

रचनाएं : इनकी दो साखियां मिलती हैं[6] :—

१–जागो जागो जांवू दीपे हुई अवाज, सही सौदागर झांभराज आवियो। ४ छन्द।
२–सांभल्य सांभल्य हे मेरी पदमंणि माय, संभरथल्य रळी वधावंणा। ४ छन्द।

प्रति संख्या १५२ में प्रथम साखी से पूर्व **"राग ऊडारथ॥ साषी हजूरी॥ कुळचंद-जी॥ छंदों की॥"** लिखा होने से इन दोनों के रचयिता कुलचंदजी ही सिद्ध होते हैं। दूसरी साखी के दूसरे छन्द में तो कवि का नाम भी है। प्रति संख्या २०१ में इनको "राग मारू"

१–द्रष्टव्यः–(क) प्रति संख्या ३६०, चेलैजी की कथा, पृष्ठ २३; रचनाकार संख्या–१२०।
(ख) स्वामी ब्रह्मानन्दजी : श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ ६१, २७६।
(ग) प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण १६।
२-(क) प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण १९ और २२।
(ख) प्रति संख्या २०१,–"वड्यांरी विगति,"–फोलियो २९६–३०१।
३–श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ ६१, ६८।
४–प्रति संख्या २०१।
५–प्रति संख्या संख्या ११२।
६–प्रति संख्या–७६ (ह); ९४; १४१; १४२; १५२; १९१; २०१; २१३; २१५; २६३; ३२१।

मे गेय बताया है।

दोनों साखियो में प्रकारान्तर से जाम्भोजी के गुण और कार्यों का उल्लेख करते हुए कवि अनेक प्रकार से लोगो को चेतावनी देता है। इनसे कवि की जाम्भोजी पर अपार श्रद्धा और दृढ विश्वास झलकता है। मुक्ति-प्राप्ति उसका अन्तिम ध्येय है और इसी कारण सद्-गुणों को धारण कर, जाम्भोजी के यहा आने का लाभ उठाने की बात वह कहता है। दूसरी साखी के तीसरे छन्द की—"मेरो मन रातो वीणि पाहि मजीठ, मोमिण होय स विणजियो" पक्ति पर शब्दवाणी (२५ २०, २७ ४७) का प्रभाव लक्षित होता है। साखियो की वर्णन-सामग्री में भी कवि का व्यापारी होना ध्वनित होता है। उदाहरण स्वरूप दो छन्द द्रष्टव्य हैं :—

(१) विणजो विणजौ मोम्यण चतर सुजाण, होर पीछाणई।
मुरिखा मंन हठ विणज न होय, परस्यं न जाणही।
जाणि पारिख पय पायो, परचि पाखड छाडियो।
समार सछियर मेलिह आसा, अमर आसा माडियो।
साह सतगुर नाव नीवी, प्रीति साटं हम लयो।
छोडि छदा भ्राति परहरि, साघ मोम्यण विणजियो ॥ २ ॥–साखी १, प्रति २०१।

(२) मेळो मेळो करि करतार, साघा मोमिणा र मन्य रळो।
साह वूठो छं पछ्यम रै देसि, निवं सुवाई धुळाचद बीजळी।
खिवं बीजळ झिलमिलती, घटा उजळ सीचई।
कर धारि अंचळ आरतो, लाडो लडी पथ उडीकही ॥
रतन काया सुरगि सोहै, छोडि जीव ससार नै।
हसि मिलो मोमिण करो इकायत, मेल्यसी करतार नै ॥ २ ॥–साखी २, —वही।

४२. राव लूणकरण : (संवत् १५२६-१५८३) :

इनका जन्म राव बीकाजी की राणी रगकुवरी के गर्भ से विक्रम सवत् १५२६ के माघ सुदि १० को हुआ और सवत् १५६१, फागुन वदि ४ को बीकानेर की गद्दी पर बैठे। सवत १५६६ मे इन्होने बीकानेर के पूर्वोत्तर मे स्थित दद्रेवा का परगना हस्तगत किया तथा सवत् १५८३ मे नारनौल के युद्ध मे वीरगति प्राप्त की[1]।

वे बहुत प्रतापी और शक्तिशाली राजा थे[2]। प्रजा उनके समय मे सुखी और सम्पन्न थी। कवियो और गुणियों का वे अत्यन्त आदर और सम्मान करते थे[3]। राव

१-ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११२-११६, सन् १९३९।
२-प्रतिपियउ अन्न राजा प्रघट्ट। सातियइ सेन वाजिन सघट्ट।
माडियइ छात्र संप्रति महेस। देसउत नमइ अप्रहइ देस ॥ ८८ ॥
—अज्ञात कृत "जैतसी रो छन्द", अ. सं ला—बीकानेर, ह० प्रति, सख्या १००।
३-(क) इळ राईय करन वारौ कि ईंद। गुणियणा ग्रिहे बाधा गई द। (शेपाश आगे देखें)

जोधाजी और उनके वंशज प्रायः सभी राठौड़ शासकों का घनिष्ठ सम्बन्ध जाम्भोजी से रहा था। राव लूणकरण भी उनके शिष्य थे। प्रसिद्ध है कि बारहट कान्होजी चारण की प्रेरणा पर ये जाम्भोजी के शिष्य हुए थे। सबदवाणी के गद्य, पद्य प्रसंगों (द्रष्टव्य–जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) और परमानन्दजी के "रावजी भेंटवाळा रा नांव" (प्रति संख्या २०१, फोलियो २९९–३०१) में इनका उल्लेख हुआ है।

रचना : साहबरामजी रचित "जम्भसार" (प्रति संख्या १९३) के ११ वें प्रकरण में, पत्र-संख्या ११ पर इनकी ५ कवित्तों की एक स्तुति मिलती है (छन्द संख्या ४७–५१)। इससे पूर्व पत्र १० पर "कवत ॥ अस्तुति राजा लूंणकरण की ॥" तथा समाप्ति पर यह दोहा है :—

एहि विधि अस्तूती करी, लूणकरण नर ईस।
चरन कंवळ प्रसत भया, धर्यो जंभ कर सीस ॥ ५२ ॥

जब जाम्भोजी द्रोणपुर में राव बीदा को "परचा देकर" वापस संभराथळ पर आ गए, तब वहां राव लूणकरण आए और प्रस्तुत स्तुति की। इसके ठीक पश्चात् ही कुंवर प्रतापसिंह के घोड़ा नचाने सम्बन्धी "प्रसंग" का उल्लेख है, जो रावजी के अन्तिम समय की बात है। संवत् १५५०–५५ के आसपास राव बीदा वाली घटना घटने तथा आगे उद्धृत तीसरे छन्द में स्वयं के लिए प्रयुक्त "राजा" शब्द से स्तुति का रचनाकाल संवत् १५६१ के पश्चात् ठहरता है। अनुमान है कि संवत् १५६६ के आसपास दद्रेवा-विजय के पश्चात् रावजी सम्भराथळ पर जाम्भोजी के दर्शनार्थ गए होंगे और तभी इसकी रचना की होगी।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, "अस्तुति" में जाम्भोजी को सर्व-शक्तिमान भगवान् मानते हुए, गुरु-रूप में उनके गुण, महिमा, कार्य, देह-वैशिष्ट्य, प्रभाव, कृपालुता और उपदेशों का श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उल्लेख तथा स्वयं को "पार उतारने" की प्रार्थना है। रचयिता के नाम की छाप प्रत्येक कवित्त में है। कवि का जाम्भोजी सम्बन्धी यह उल्लेख ज्ञात और अज्ञात हजूरी कवियों की रचनाओं के तद् विषयक वर्णन और साम्प्रदायिक मान्यताओं के अनुरूप ही है। इससे पता चलता है कि कवि प्रत्यक्ष-द्रष्टा था और उसकी सम्यक् साम्प्रदायिक जानकारी थी। रावजी के बीकानेर राज-घराने के सर्व प्रथम कवि होने से इस रचना का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। उदाहरणार्थ तीन छन्द द्रष्टव्य हैं :—

भक्त मुक्त दातार, जंभ जगदीसुर कहियै।
थळ सिर रह्यौ जु आय, भाग वडै सूं लहियै।
ओळखियै आचार, पार कहो कूंण ज पावै ?

ताकुआं रेसि सो भाग तति। हिन्दुवै राड दीन्हा हसति ॥ ६२ ॥
–बीठू सूजा कृत 'छन्द राव जैतसी रो',–अ. सं. ला., बीकानेर, ह० प्रति ९९।

(ख) ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० १२१–२२, सन् १९३९।

(ग) गीतमंजरी, गीत संख्या ४, ५, पृष्ठ १२–१३, अ० सं० ला०, बीकानेर, संवत् २००१।

सारा सनमुख रहे, दई नहीं पूठ दिखावै।
ज्ञान कह्यो गुर गम दई, म्हां सूं सनमुख देव।
लूणकरण कर जोड़ कहे, किंणि हूं न पायो भेव ॥ १ ॥ (४७)
जभ गुर सो देव न कोउ सुण्यों न देख्यो।
घ्रत धूप मिस्टान्न होम व्रत नित प्रति पेख्यो।
करै विष्णुं उपदेस लेश जिव पाप न राखै।
सब दुंनियां सू हेत, खेत मुक्ति मुख भाखै।
आन देव किए दूर सब, कहे भुला हरि सेव।
लूंणकरण राजा कहै, नमो नमो गुर देव ॥ ३ ॥ (४९)
गुर सो दाता नांहि, परमगति गुर तैं पाई।
भवसागर वहे जात, मुक्त की न्हाव लगाई।
हर कोई है प्रभाव, वचन हू कोऊ न टालै।
जीव सुजीवां सोधि, परित पहलो को पाळै।
मुकत ब्याज मांडी जेहीं, खाळक सेवणहार।
लूणकरण तव दास है, प्रभु मोहे पार उतार ॥ ५ ॥ (५१)।

४३. रेडोजी : (संवत् १५३०-१६२०) :

ये मणखीसर के निवासी और जाति के सावक थे। इनके जन्म-काल का निश्चित पता नहीं चलता, अनुमानतः संवत् १५३० के आसपास हुआ माना जा सकता है किन्तु स्वर्गवास संवत् १६२० में होना प्रचलित है। रेडोजी की सबसे बड़ी प्रसिद्धि का कारण यह है कि हुजूरी कवियों में केवल मात्र इन्हीं की शिष्य-परम्परा चली, शेष किसी की भी नहीं[1]। जाम्भोजी की विद्यमानता में ही नाथोजी इनके शिष्य बने थे। जाम्भोजी के मोक्ष-लाभ के पश्चात् ये ही सम्प्रदाय के प्रामाणिक व्याख्याता और विद्वान् माने जाते थे। सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि जाम्भोजी के अधिकांश "सबद" रेडोजी और नाथोजी के कण्ठस्थ थे। साहबरामजी के अनुसार, सम्प्रदाय के धर्म-नियमों का ये बड़ी दृढ़ता और नियमितता से पालन करते थे। वील्होजी ने मुकाम-मन्दिर पर '१२० सबद' रेडोजी के मुख से सुने और उनसे प्रभावित होकर सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे (द्रष्टव्य-वील्होजी)। इसकी पुष्टि सुरजनजी के एक कवित्त से भी होती है, जिसके अनुसार वील्होजी अपने दादा-गुरु (रेडोजी) के "दीवाण" में तत्क्षण तर गए। आदि की दो पंक्तियाँ ये हैं –

गुर दादा दीवाणि, तर्यो गुर वील्ह ततखण।
भरण सुरेजमाळ, गयो वैकुंठ वीच खण॥ –प्रति संख्या २०१ से।

१-(क) चिरत कियो जाण्यु तवी, साधु चाल्या लार।
सारा संग पधारिया, रेडोजी रह्या तिण वार॥ ३ ॥ –प्रति २४४।
(ख) जाभेंजी का सिस रेडोजी, नाथोजी इनके नेटोजी।
–जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र २४।

सबदवाणी के सुरक्षित रह जाने सम्बन्धी उल्लेख करते हुए प्रकारान्तर से परमानन्दजी ने भी यही बात कही है (प्रति संख्या २०१ और २२७, सबदवाणी की पुष्पिका)। "३५ पुन्ह" में इनका नाम ११ वां है। "हिंडोलणो" और "भक्तमाळ" में इनका नामोल्लेख है। सुरजनजी ने एक कवित्त में जाम्भोजी से वील्होजी तक प्रमुख विष्णोई सिद्धों को विभिन्न रत्नों की उपमा देते हुए रेड़ोजी को "रतन" कहा है[1]। इससे रेड़ोजी की महत्ता, प्रसिद्धि और प्रभाव का पता चलता है।

रचना : कवि की २० पंक्तियों की एक साखी– **"जीवला रे संभ अचंभो ओही अपरंपर हेत किये हरि ध्यावो"**, मिली है[2]। साखी की रचना जाम्भोजी की विद्यमानता में होने का अनुमान है जिसका संकेत प्रति संख्या १५२ में इससे पूर्व **"साषी रेड़ाजी की हजूरी कंणां की ॥"** शब्दों से भी मिलता है।

इसमें हरि-प्रेम, जीवन्मुक्ति-प्राप्ति, कुसंगति, सांसारिक माया-मोह-त्याग, कमाई के दसवें भाग को हरि-हेतु खर्च करने और जाम्भोजी की शरण में आने का अनुरोध है। कवि का मुख्य उद्देश्य लोगों को सांसारिक वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुए मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख करना है। चेतावनी रूप में कथन की सच्चाई और भाषा की सरलता के कारण यह साखी बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है। उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियां देखी जा सकती हैं:—

अजर जरो मंन की मेर चुकावो तो अंमरापुरि पावो ॥ २ ॥
सुई कै नाकै धागो पोवो, हरि हिरदै यों जोवो ॥ ३ ॥
एकर मरि कै वोहड़ि न मरिस्यो, दिल दरियाव सुढोवो ॥ ५ ॥
देवजी को दसवंध खरचो नाहीं, राखो विसंन विसोवो ॥ ८ ॥
खरच्यैं लाहो राख्यैं तोटो, वीवरति वीवरसि जोवो ॥ ९ ॥
साच विसंन न दोस न दीजै, कारण किरिया नै जोवो ॥ ११ ॥
आज ज मीठो लभ करि लीजै, तिणरो भळकि विगोवो ॥ १४ ॥
पुरेख कदीनुं कळे मां आयो, कांय जागंता सोवो ॥ १७ ॥
को कहिसी सांभळियो नाहीं, कान्य न पड़ियो चोवो ॥ १८ ॥
साखे दिया सतगुर समंझावै, जांबू दीप खड़ोवो ॥ १९ ॥
गुर परसादे रेड़ो बोलै, हरि कै चरणै आवो ॥ २० ॥

कतिपय पंक्तियों (संख्या ६, ११, १४, १७) पर सबदवाणी (८४ : १, २, १३; ११ : ३१; २४ : ४; ५५ : ३) का प्रभाव स्पष्ट है।

१–अंनंत जोति गुर आप, जाग गति लषी न जाई।
रेड़ो नांव रतंन, जैग गुर भंति बताई।
नाथो मोती नांव, हीर गुंग वीटळराया।
सोनूं सुरिजमाळ, कळंक नंहि लगो काया।
सुरजिनं रूप वावा सरम, जीव जीव कंग जूजवा।
वांसली वात जांणै विसंन, हंमैं हरि सारैं हुवा ॥२८३॥ —प्रति संख्या २०१।

२–प्रति संख्या ७६; ९४; १४१; १४२; १४३; १५२; १६१; २०१; २६३।

४४ वाँजिदजी (सवत् १५३०-१६००)

ये भावराज (कवि सख्या ४८) के समकालीन बताए जाते हैं। राग "जैतश्री" मे गेय ५ छन्दो की इनकी एक साखी मिलती है (प्रति सख्या २०१ म)। इसमे ससार की असारता, जीव-दशा, मृत्यु की अनिवार्यता और प्रबलता का हृदयग्राही वर्णन करते हुए, आत्मपरक भावभरी चेतावनी दी गई है। साखी के २ छद द्रष्टव्य हैं —

१-सदा न सगि सहेलिया, सदा न राजा देस वे।
सदा न जगपति जीवणा, सदा न काला केस वे।
सदा न काळा केस जगपति, सोच सांमी मुझि भया।
जीवण अजळी नीर जेहा मिलो मायो करि मया।
मया कीजै दरस दीजै, पीजै प्रेम अघाय वे।
आनन्द उपजै इह निसा पीय पडू तेरै पाय वे।
पाय तेरै पडू प्यारे, जो आया सो लेलिया।
वाँजिद कहै विचारि सांमी, सदा न सगि सहेलिया ॥ १ ॥

२-वेगा बिलब न कीजियै, जीव किस दिस लागि वे।
बोहत गई थोडी रही, नै उठि देखू जागि वे।
जागि देखू रही थोडी, असीम ज घटाय वे।
जुरा आगै जम पाछै, पिसण पहुता आय वे।
पिसण पहुता आय इसकू, कीजै चित सवेरिया।
काम रूप कुलछणी, पीव तोउ साथ ज तेरिया।
साथ तेरी आण्य घेरी दादे इसको दीजियै।
वाँजिद कहै विचारि सामी, वेगा बिलब न कीजियै ॥ ५ ॥ (१०८)

ध्यातव्य है कि ये दादूपथी वाजिद से भिन्न कवि हैं। कारण यह है कि "साखी-ग्रथ" (प्रति सख्या २०१) मे केवल विष्णोई कवियो की साखियों का ही सकलन-सग्रह किया गया है (द्रष्टव्य–विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)।

"वाजिद" के नाम से छोटी-बडी ६८ रचनाएँ प्राप्त हैं जिनकी सूची नीचे दी गई है। इनमे से प्रथम ५५ रचनाएँ श्री प्रो० कृपाशकरजी तिवारी (हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) के सग्रह की सवत् १७१० मे लिपिबद्ध एक हस्तलिखित पोथी (सख्या २०५) के प्रारम्भ म मिलती हैं। इनमे प्रस्तुत विष्णोई कवि वाँजिद की उपर्युक्त साखी नही है। स्व० पुरोहित हरिनारायणजी के हस्तलिखित ग्रन्थ सग्रह की विभिन्न प्रतियों में २२ रचनाओं का नामोल्लेख है[1]। इनमे से ९ तो इन ५५ में आगई हैं, शष का नामोल्लेख सख्या ५६ से ६७ तक किया गया है। ६८ वीं का उल्लेख केवल डा० मोतीलाल मेनारिया

१-विद्याभूषण ग्रथ-सग्रह-सूची, पृष्ठ ६, १६, २७, ३०, ५०, ५१, ५२, ६८, ८४, ९८ जोधपुर, सन् १९६१।

ने किया है[1]। इनके अतिरिक्त रज्जवजी के 'सर्वंगी'[2] और जगन्नाथजी के 'गुण गंजनामा'[3] नामक संकलन ग्रंथों[4] में भी 'वाजिद' की फुटकर साखियां उद्धृत की गई हैं। रूप की दृष्टि से यहां "साखी" का तात्पर्य दोहा ही है। इन सब रचनाओं का पाठ-संपादन और दादूपंथी वाजिद स्वतंत्र अध्ययन के विषय हैं। सूची देने का अभिप्राय: दोनों वाजिदों की भिन्नता दिखाने के लिए ही है। इनमें "गुन" नामधारी प्रायः सभी रचनाएं दोहे-चौपइयों में हैं।

१-सुमरन को अंग, अरिल १६,
२-गुन सुमरन सार, अरिल—२५,
३-गुन रतन माला-छन्द १५,
४-गुन दास किरत—६,
५-गुन गंभीर जोग—२६,
६-गुन निरमल जोग—२१,
७-गुन जगत्र जोग—२९,
८-गुन तत्त निरवाण—१८,
९-गुन दरवेश नामा—२४,
१०-गुन ठरिया नामा—४७,
११-गुन मूरख नामा—२१,
१२-गुन ग्यांन पवेरा—४६,
१३-गुन कूर किरत—१४,
१४-गुन आतम उपदेश—६९,
१५-कथा मिहरी मुनीश की—३३,
१६-कथा मिहरी मुनीश की, दूसरी—२४,
१७-गुन वाजिद नामा—१८,
१८-गुन अजब नामा—३०,
१९-गुन कठियारो नामा—६३,
२०-गुन सगुना—६३,
२१-गुन वंदीवान किरत—२५,
२२-गुन विनती नामा—२४,
२३-गुन बिलइया नामा—२०,
२४-गुन परपंच नामा—२०,
२५-गुन आतम उपदेश—२८,
२६-गुन वैरागिनी नामा—२४,
२७-गुन पेम नामा—१७,
२८-गुन पिरम कहानी—१४,
२९-गुन विरह नामा—३२,
३०-गुन आतम परिचै—६२,
३१-गुन ब्रह्म प्रगास—१५,
३२-गुन वाहिद नामा—१२,
३३-गुन छन्द—८,
३४-गुन छन्द, दूसरो—१४,
३५-गुन हरि उपदेश—६०,
३६-गुन निसानी—१५
३७-गुन भगति प्रताप-२७,
३८-गुन श्री मुपनामा—३०,
३९-गुन हीयाली—९१
४०-प्रसंन (प्रश्न)—३४,
४१-प्रसन (प्रश्न) दूसरो—१३,
४२-गुन मूरखनामो—२२,
४३-गुन मूरखनामो, दूसरो—१५,
४४-गुन ग्यांनप वेड़ा—१७,
४५-गुन ग्यांनप वेड़ा दूसरा-१७
४६-गुन दास किरत-१२,
४७-चौपई मन के अंग की—१९,
४८-गुन दास किरत—२६,

१-(क) राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृष्ठ १९२, उदयपुर, सन् १९५२।
(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ३००, प्रयाग, संवत् २००८।
२-रज्जब बानी,—"महात्मा रज्जब का परिचय", पृष्ठ ६, सम्पादक-डा० ब्रजलाल वर्मा, कानपुर, सन् १९६३।
३-विद्याभूषण-ग्रंथ-संग्रह सूची, पृष्ठ ९८, रा. पु. मं., जोधपुर, सन् १९६१।
४-पंचामृत, निवेदन, पृष्ठ "क", सम्पादक : स्वामी मंगलदासजी, जयपुर, सन् १९४८।

४९-गुन निंद्रा अस्तुति निशानी—३१, ५०-गुन विसवास फिरत—२४,
५१-गुन दयासागर—४६, ५२-गुन प्रानी परमोव—१५,
५३-गुन निरमोही नामा—२५, ५४-गुन उत्पत्ति नामो—५०,
५५-गुन नैना नामो—४२, ५६-स्फुट दोहे आदि,
५७-वाजिदजी की अरिल, ५८-मिया वाजिद की साखी—१८ अंग,
५९-गुण छरिया नामा—२९, ६०-गुण विरह को अंग—१७०,
६१-पद, जखड़ी आदि, ६२-गुण हित उपदेश—२६३,
६३-स्फुट कवित्त, ६४-गुण श्रीमुख नामा—४६,
६५-गुन हरिजन नामा—१९, ६६-गुण नाममाला—२७,
६७-गुण गजनामा—२३४, ६८-राज कीर्तन।

४५. लखमणजी गोदारा : (अनुमानतः संवत् १५३०-१५९३)

इनकी ५ छन्दो की एक साखी—'संभरि आयो सांम्य सुचियारा साचो धंणी' मिलता है[1]। यह राग धनाश्री मे गेय "छन्दा की" साखी है।

ये हुजूरी कवि थे। मूल मे ये गाव रूणिया (बीकानेर से १० कोस पूर्व) के थे किन्तु संवत् १५७० में अपने एक बन्धु पाण्डू गोदारा के साथ जैसलमेर राज्य के खरीगा गाव मे बस गए थे। इनके वहा बसने की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। जब जाम्भोजी रावळ जैतसीजी के आमन्त्रण पर जैसलमेर गए तो ये दोनो भी "साथरियो" मे थे। रावळजी ने जैतसमन्द की प्रतिष्ठा तथा कन्या-दान का कार्य सम्पन्न होने पर, अपने राज्य मे विष्णोइयो के बसाने की प्रार्थना जाम्भोजी से की[2]। जब यह बात "जमात" मे सुनाई गई, तब इन दोनों ने अपनी मातृभूमि को छोड़कर वहा खरीगा मे बसना स्वीकार किया :—

> नायक फिर्‌यो जंमाते मां, कौळ सतगुर को पालं।
> रावळ सारं वीनती, साई वीनती संभाळं।
> लखमण पाडू धन्य कह्यौ सतगुर को कीयो।
> तज्य घाप दावं री भोम्य, जांण देसोटो लीयो।
> कुटव कडंुबो छांडि कं, गुर नायक माथं वंदियो।
> भोम्य छांडि पर भोमे गया, वास खरींगं मंडियो॥ १०॥[3]

१-प्रति संख्या १९१, २०१, २१५। उदाहरण दूसरी प्रति से है।
२-सतगुर आगल्य आय, रावळ एक विनती सारं।
माग छं एक पसाव, उमेद मन उपंनी म्हारं।
केहक विसनोई देव देस मांहरं बसावौ।
राम्यस रूडं भाय, वाहरौ म करिस दावौ।
रावळ कहै चुकिस नही, कौळ वोल रूडा वहिस।
अमाए साहरा देवजी, साच सील तागं वहिस॥ ९॥
—वील्होजी कृत कथा जैसलमेर की, प्रति संख्या २०१ से।
३-वील्होजी कृत कथा जैसलमेर की, प्रति संख्या २०१।

जाम्भोजी ने उनको अपनी अमानत बताते हुए रावळजी को सौंपा और सन्मार्ग पर चलने का आदेश दिया[1] । साहबरामजी ने इसका समर्थन करते हुए इतना और लिखा है कि जाम्भोजी की आज्ञा से रावळजी ने दोनों के विवाह भी करवाए । (प्रति संख्या १६३–जम्भसार, प्रकरण १५, पत्र ६–१२) । इससे उनके गृहस्थ होने का पता चलता है । "३५ पुन्ह" और "हिंडोळणो" में इनका नामोल्लेख है । जैसलमेर राज्य में विष्णोई-धर्म के प्रचार और व्याख्यार्थ बसने वाले ये और पाण्डू पहले विष्णोई थे । जाम्भोजी के वैकुण्ठवास के पश्चात् लखमणजी ने भी अपने प्राण त्याग दिए थे । केसौजी ने एक साखी में इनका उल्लेख किया है[2] । साहबरामजी ने जाम्भोजी के बाद "खड़ने वालों" के नामों और स्थानों की सूची में लखमणजी का १,००० आदमियों के साथ कानासर (फलौदी से १५ पश्चिमोत्तर) में "खड़ना" लिखा है (–प्रति संख्या १६३, "जम्भसार, प्रकरण २२, पत्र १४–२१ की सूची) । इससे संवत् १५६३ में इनका स्वर्गवास होना प्रमाणित होता है । वर्तमान में इनकी संतति नीवां की ढाणी, कानासर, राणेरी में है; ये लोग "खरीगिया गोदारा" कहलाते हैं ।

प्रस्तुत साखी में भगवें वेशधारी, "एकळवाई", विष्णु-जाम्भोजी के संभराथळ पर आने, उनकी महत्ता और दर्शनार्थी जमातियों का उल्लेख करते हुए कवि अपने उद्धार की प्रार्थना करता है । उल्लेखनीय है कि यद्यपि कवि ने मोक्ष-प्राप्ति-हेतु नाम-जप, शील, संतोष, सत्य आदि धर्म-नियमों के पालन का अनुरोध किया है, तथापि सर्वाधिक बल उसने दिल से द्वैत-भावना, "दुभांति-त्याग" कर "इकमंनियां" होने पर दिया है :—

दुंनी आय दीदार देखै, अंतरि इधक उछाह ।
दिल मां दुजि दुभांति पंको, साधां देसी साह ।।
ग्यांन गुसटि कीजै धंणी नै, सदा सीळ संतोष ।
इकमंनियां सूं एक है, दिवै साधां मोख ।।

साखी में जमातियों और उनके मेले का सुन्दर वर्णन है जो कवि के प्रत्यक्ष-दर्शन का परिणाम है । उसको अपने "दीन" पर दृढ़ विश्वास है । उदाहरणार्थ दो छन्द नीचे दिए जाते हैं :—

दरगह बोलै दीन महमां अंति मेळै मिली ।
जमात्यां का भूळ साखी सबद सुर सांभळी ।
साखी सबद सुर सांभळी नै, परचिया मन पात ।
उतर दीखण पूरब पछंम, आवै जुड़ै जंमाति ।

१–राहि चालै राहि कै, आंण सतगुर की मानै ।
जपै एक विसंन, आंन तोफांन न मांनै ।
अजर जर्‌यौ जीव काज्य, वर भरमे मह भगा ।।
लषमंण पांडु दोउं, आय गुर पाव विळगा ।
सहंस भुज हुवै संतोषियां, सतगुर संभळा ए कही ।
रावळ अमांण छै आगंणी, परि विनां रुड़ां वही ।। ११ ।। –वही ।

२–जगो जमाते प्रगट्यो, भोरट साध वषांण ।
लछमण अर पांडू परगि, खड़्या सरीर्घ जांण ।। २० ।।

भात साह भेंट धरही, चुतर नर करी चीन्ह ।
महमा अति मेऊं मिली, दरगह बोलै दीन ॥ महमा अति० ॥ ३ ॥
अब लीजो अपणाय, टाण सूं मत टाळयो ।
खूंन बकसि बळि जाव, थानै की पति पाळियो ॥
थानै की पति पाळियो जी, खूंन बकसि बळि जाव ।
दांवन पकड्यो दीन को, निरजण तो नाव ।
दास लखमण आस तेरी सतगुर थारो सांव ।
जम जोखं सू टाळियो खूंन बकसि बळि जाव ॥ थानै की पति ॥ ५ ॥

४६. आलमजी (आलमदास) : (संवत् १५३०-१६१०) :

ये ताळवा गाव के आसपास किसी गाव के निवासी और आसनोजी[1] की जाति के सोढा थे तथा गान-विद्या मे अत्यन्त प्रवीण थे। कदाचित् इसी कारण सम्प्रदाय मे ये गायणा कहलाते हैं। गायणो मे प्रचलित एक अन्य मत के अनुसार इनकी जाति 'अगरवाल' थी। ये परवर्ती हजूरी कवियो मे से थे और जाम्भोजी के वैकुंठवास के पश्चात् भी १६-१७ वर्ष और जीवित रहे थे। इनकी रचनाओ से भी यह बात ध्वनित होती है[2]। "भक्तमाल" तथा "हिंडोलणो" मे आलमजी का उल्लेख है। साहबरामजी ने जम्भसार (प्रति संख्या १६३, प्रकरण २३, पत्र ३८-४०) मे "आलम-कथा" दी है जिसका सारांश यह है :—ये सुरजनजी के शिष्य और गान-विद्या मे अत्यन्त कुशल थे। एक बार ये जैसलमेर गए। वहा के राज-कलावन्त इनसे मिलने आए। राग-रागिनियो के विषय मे वार्तालाप होने पर इन्होंने कहा तुम तो मूर्ख दिखाई देते हो और अपने गुरु की प्रशंसा करते हुए उनको "गान-अभिमान" न करने को कहा। इस पर उन्होंने गायन-प्रतियोगिता करनी चाही। वहा के राजा सालिम-सिंह का प्रधान कलावन्त, कोई "प्रेम" नामक गवैया था जो जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह का दरबारी भी रह चुका था। उसने शर्त रखी कि जो जीत जाएगा, वह हारने वाले का गुरु माना जाएगा। राजा के सामने आलमजी ने अनेक राग-रागिनियाँ गाईं जिससे वहा रखा एक पत्थर पिघल गया। तब उन्होंने अपने "मंजीरे" फेंक कर उसमे गाड दिए और बोले कि मैंने तो गाडे हैं, तुम निकालो। यह देखकर वहा उपस्थित आठ कलावन्त तत्काल

१—आसनूं कुल आलम भयेऊ। गान विद्या कर मुक्त ही गएऊ।
—प्रति संख्या १६३, जम्भसार, पृष्ठ २३, पत्र ३८।

२—(क) समरथळ रहि आवणो, तु ही मुकाम तळाव।
भगता सरसी भाव करि देवजी दया करि आव ॥ २ ॥
गोमिदो गूगळ पेवतो, रमतो या थळिया।
माधा नै समझावतो, हूं बळि ताह दिना ॥ ५ ॥ हरजस ९।
(ख) तीरथ मोटो ताळवो, जै करि जाणै कोय।
जिणि पहराजा उधर्यो, साचो सतगुर सोय ॥ ३ ॥—हरजस ५।

उठ कर उनके शिष्य हो गए और 'चळू' लेकर गायरण हुए। आलमजी के साथ ही वे कमाते -खाते रहे।

इस कथन में कुछ ऐतिहासिक उल्लेख हैं। महाराजा जसवन्तसिंहजी का समय संवत् १६८३ से १७३५[1] तथा सुरजनजी का संवत् १६४० से १७४८ है (द्रष्टव्य-सुरजनजी पूनिया)। सालिमसिंह नाम के कोई रावल जैसलमेर में नही हुए। एक सवलसिंह हुए हैं जिनका राजत्वकाल संवत् १७०७ से १७१६ है[2] । बादशाह जहांगीर की आज्ञा से महाराजा जसवन्तसिंह ने इन्हीं सवलसिंह को गद्दीनशीन किया था[3] । साहबरामजी ने सवलसिंह को ही सालिमसिंह कहा प्रतीत होता है। इस प्रकार, यदि यह कथन ठीक हो, तो आलमजी का समय विक्रम की १७ वीं शताब्दी का अन्त और १८ वीं का पूर्वार्द्ध ठहरता है। किन्तु यह बात, जैसा कि साहबरामजी ने स्वयं कहा है, केवल सुने हुए आधार पर कही गई है[4] तथा इसमें उस श्रुति-परम्परा पर कोई विचार नहीं किया गया जो आलमजी को हुजूरी बताती है। उद्धृत रचनाओं के अतिरिक्त स्वयं सुरजनजी ने ही आलमजी की गायन-वादन में निपुणता की सूचना दी है:—**केसौ कथा अरथ नै करमूं, तप सूजो आलमूं तांति** ॥ (गीत, प्रति संख्या २०१)। इस गीत की रचना संवत् १७३६ (केसोजी का स्वर्गवास समय) और १७४८ के बीच किसी समय हुई है। इस समय आलमजी विद्यमान नहीं थे किन्तु उनकी ख्याति पर्याप्त फैल चुकी थी। इस प्रकार, आलमजी का काल साहबरामजी की मान्यता के अनुसार न होकर अनुमानतः संवत् १५३० से १६१० ठहरता है। यदि कवि सुरजनजी का शिष्य था तो वे हुजूरी सुरजनजी (कवि संख्या ७) ही होने चाहिएँ। ये बहुत ही प्रसिद्ध कवि थे। इसका पता इस बात से भी चलता है कि सम्प्रदायेतर कवियों में पीरदान लालस ने भी आलमजी का नामोल्लेख किया है[5] । इनका स्वर्गवास बींकूकोर में हुआ जहां इनको समाधि दी गई। वर्तमान में गांव जैसलां में आलमजी के वंशज हैं।

रचनाएँ : इनकी निम्नलिखित (क) ८ साखियां और (ख) १२ हरजस मिलते हैं :—

(क) साखियां :—

(१) **आवौ रळौ साधो मोमिणों, रळि करि जंमूं रचांय**[6] ।

—पंक्ति १३, करणां की, राग सुहव।

(२) **बावळ रचियो विमाह, खरतर खरी कमाइयै**[7] । छंद ४, छंदां की, राग धनांसी।

१-पं० रामकर्ण आसोपा: मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १७४, १९०।
२-(क) मेहता उमेदसिंह-"तवारीख" (राज-जैसलमेर) पृष्ठ २०-२१, संवत् १६८२।
(ख) नैणसी की ख्यात, भाग २, पृष्ठ ४४१, ना० प्र० स०, काशी, संवत् १९९१।
(ग) हरिदत्त गोविन्द व्यास : जैसलमेर का इतिहास, पृष्ठ ६४-९७, सन् १६२०।
३-कविराजा श्यामलदास: वीरविनोद, पृष्ठ १७६४।
४-अैसो आलम भयो अताई, सुनि जैसी कवि गाय बताई।
आलम जंभ लाडलो कह्यो, जंभ लोक में आलम गयो।—जम्भसार, पृष्ठ २३, पत्र ४०।
५-द्रष्टव्य पीरदान ग्रंथावली, "परमेसर पुराण" में, बीकानेर, सन् १६६०।
६-प्रति संख्या-६८; ७६; १४२; १५२; २०१।
७-प्रति संख्या-२०१।

(३) बाबो लाडं गोरी घर सावळो, सग व्याह् सजोया[1] । छद ४, छदा की, राग धनासी ।
(४) कळिमां कलम फिरी, अब छोडो मेरा[2] । छद ६, छदा की, राग मारू ।
(५) विसन विसन भणि विसन विराणी, विसनो विसन वखाणो[3] । दोहे २०, रामगिरी ।
(६) पहल जुगि मछ हुए, क्या क्या पोरस कीया[4] । छद १०, छदा की, राग सिंधु ।
(७) अब ज चलो रे लाल जी न रहो र मधकर नहीं छ रहण को जोग ।
जासू तेरो रीसिबो, ओह् बीरांणी लोग मधकर[5] ॥१॥ टेक । १४ दोहे–'मधकर' ।
(८) अब मन करो उमाहो रगीला पारको चालो ज्यो रतन गढे जांय ।
रतन गढां री जोति झिलमिलं, झिलमिल झिलमिल बीज झिवाय[6] ॥ १ ॥ टेक ॥
–राग मारू, रगीलो ।

पहली साखी म "जमू" रचाने, वहा साधुओ से मिलने और जीव-मुक्ति-प्राप्त करने का उल्लेख है। पांच साखियों (२ से ६) मे अवतारो और जाम्भोजी से सम्बन्धित वर्णन हैं। ये वर्णन चार प्रकार से किये गये हैं —

१—जाम्भोजी की महिमा के साथ कल्कि अवतार का (२, ४, ५), २—केवल कल्कि अवतार का (३), ३—दसावतार का (५) तथा इसके साथ यत्रतत्र सम्प्रदाय मे मान्य तेतीस कोटि जीवो के उद्धार का (६, ७)। सातवीं मे देह की क्षणभगुरता, ससार की असारता, मृत्यु की प्रबलता का वर्णन करता हुआ कवि सुकृत करके वकुण्ठ–प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है। आठवी म सुकृत द्वारा वैकुण्ठ लाभ करने तथा वहा के सुखो का वर्णन किया गया है।

(ख) हरजस[7] —
(१) पतवो लिखि दे जी हो बाभणा कहि ऊधो समझाय । ९ दोहे, राग धनासी ।
(२) अब न रहै गोपाल राय तम विन मेरो जीवडो न रहे ॥ १ ॥ ६ दोहे, राग धनासी ।
(३) बलि जाइयं ललाजी के दरसन कू बलि जाइयं ॥ पक्ति ८, राग धनासी ।
(४) असी प्रीति रे मेरा मन करि माधोजी-सू प्रीति रे । पक्ति ७, राग धनासी ।
(५) करणी उतरियै पारि करणी मेरं जीव को अधार ।
करणी को मोल न तोल, करणी तू दे मेरा साम्य ॥ ७ दोहे, राग नट ।
(६) अभ अलभ तुहारा ओळग, करा तुहारी सेव ।
अलख निरजण पूरो परमगुर, देवा हो अति देव ॥ ५ दोहे, राग गवडी ।
(७) वाळ सनेही वाळमू , वाळापण को मीत ।
नाव लियं ही जीवियं, तन मन होय प्रवीत । ७ दोहे, राग गवडी ।

१–प्रति सख्या २०१ ।
२–प्रति सख्या–१५२ २०१ २१५ २६३ ।
३–प्रति सख्या २०१ । तुलनीय–सबदवाणी ९९, ११९ से १२२ सबद तथा ३१ १३ ।
४–५ ६–प्रति सख्या २०१ ।
७–पहले १० हरजस प्रति सख्या (क) ४८ (ख) २०१ तथा (ग) २२७ मे मिलते हैं, शेष दो केवल (क) और (ग) में । इनके अतिरिक्त प्रथम हरजस–पतवो, प्रति सख्या २, ६७, तथा ७६ में भी उपलब्ध है । इनमे इसको 'साखी' बताया गया है ।

(८) हरि लियो अवतार आयो घरे पुंवार कै ।
साहेब सिरजंणहार, जिणी उपाई मेदुंनी ॥ ५ दोहे, राग खंभावची ।

(९) दरसंण परसां देव रो, देवजी दया करि आव । ७ दोहे, राग मलार ।

(१०) इहनिस कोड रहे मोरी सहियां, सहियां हे मोरी श्रीरंग सुजांण । ६ दोहे, खंभावची ।

(११) हूं तोकूं वरजि रह्यौ मन मेरा ॥

(१२) अब झिल्य जा रे म्हारा पंथिया, पंथड़ै मत लाए वार ।
सनेसो म्हारो श्रीरंग नै कहिया । ८ दोहे, राग सुहव ।

संक्षेप में हरजसों के तीन प्रधान वर्ण्य-विषय हैं :—

१—जाम्भोजी की महिमा, रूप, गुण, कार्य और उनके वैकुण्ठवास के पश्चात् की दशा का उल्लेख (६, ८, ६) ।

२—गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम, विरह-निवेदन और मिलन की आतुरता (१, २, ३, ४, १०, १२) तथा

३—हरि-प्रेम और आत्मोत्थान संबंधी, जैसे हरि-महिमा (८), अच्छी करनी (५), भाव के अनुसार भगवद्-प्राप्ति (७), मन को वस में करना (११)आदि ।

उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर आलमजी के विषय में कतिपय बातें उल्लेखनीय हैं:—

१—कवि जाम्भोजी को विष्णु ही मानता है । कलियुग में वे मनुष्य के रूप में आए हैं । वे मानव को अजर-अमर और मोक्ष प्रदान कर सकते हैं[1] । विरहिणी गोपी के रूप में भी उसको सर्वत्र जाम्भोजी का ही रंग दिखाई देता है, वे अलख निरंजन (हरजस-६, टेक) परब्रह्म हैं[2] । कल्कि अवतार के रूप में वे ही प्रकट होंगे[3] ।

२—सम्प्रदाय में स्वीकृत तेतीस कोटि जीवों के उद्धार सम्बन्धी मान्यता का अनेक जगह उल्लेख मिलता है ।

३—मोक्ष-प्राप्ति के लिए आलमजी अच्छी करनी-रहनी, जीवन्मुक्ति और निष्काम कर्म

१—कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—
क—जुगि चौथे विसंन आयो, हाथ्य जपमाळी जपै ।
सांथ्य पूगी लिये लेपो, हुकंम हांस्यल रवि तपै ॥ १ ॥
दाता भी सोई पही पूरो, सुर नभा पुंहचावई ।
मानष रूपी फिरै कळि मां, भेद विरला पावही ।
दीन अर दुनियां को साहेब, विसंन करै स होयसी ।
पार घरि पुंहचाय सांभराय, रतंन काया होयसी ॥ ४ ॥ —साखी ४ ।
पांच सात नव कोड़ि बारा, चौहड़ि नांहीं फेर हो ।
अजर अमर करै सांभराय, पार गिरांय वसेरहो ॥ ६ ॥—वही ।
ख—चिळत देवां रा कुंण लहै, कुंण लहै किसंन रा माघ ।
अपरंपर बीणि कुंण लहै, सोवंन मंडळ री आग ॥ ६ ॥—साखी ८ ।
२—सो सांभरि सो मथुरा दवारिका, सब रंग सम अचंभ ॥
कांमणिगारो जी हो कान्हवो, मेरो पीव पारबरंभ ॥ ६ ॥—हरजस १ ।
३—सक्ति गरड़ वांहण चढ्यो सांभराय संम हेतु बुलाइया ।
दोय चांद सूरिज राप्य मंनसा, आरता ले आइया ॥ २ ॥

पर विशेष बल देते हैं[1]। इस हेतु कवि "जमने" में जाने का अनुरोध करता है क्योंकि वहाँ सत्संगति मिलती है। पहली साखी का तो आरम्भ ही इसी से होता है।

४-कवि ने सभराथळ, मुकाम, तळाव आदि स्थानों के माध्यम से जाम्भोजी के उपदेशों का परिचय दिया है।

५-मरुभाषा में रचित कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी काव्यों में विशेषत द्वारका-कृष्ण, "रणछोड" का उल्लेख हुआ है, गोपी कृष्ण या रासलीलाधारी कृष्ण का नहीं। इसके मूल में प्रमुख कारण सामाजिक मर्यादा का होना प्रतीत होता है। आलमजी के हरजसों में विरहिणी गोपियाँ रणछोड कृष्ण को ही अपना सदेश भेजना चाहती हैं[2]।

६-आलमजी की कुछ रचनाओं पर सबदवाणी का प्रभाव मुखर है। यह प्रभाव भाव और भाषा-दोनों पर विद्यमान है। उदाहरणार्थ, कवि के अनुसार, जिस नूर से मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए, जाम्भोजी में वही नूर है तथा मुहम्मद साहब के साथ एक लाख अस्सी हजार लोगों का उद्धार हुआ.—

> जेह नूरो महमंद उपनूं, अंह गुर ओही नूर।
> भल आपलि भगतां मिल्यो, जांणे दिल मां उगो सूर ॥ ३ ॥
> एक लाख असी हजार, दीन मेहमंद आस।
> बाबो हाजी रावळ जमजी, खांन खीहर अल्हेवास ॥ ५ ॥। साखी ८।

यह बात प्रकारान्तर से सबदवाणी में भी कही गई है (३९ ८ तथा १० : ३)। परवर्ती कवि केसोजी ने भी ऐसा उल्लेख किया है। इससे प्रकारान्तर से इस बात की भी पुष्टि होती है कि अद्यावधि गोरखनाथ के नाम से प्रचलित एक छन्द-"**महंमद महंमद**[3]"

१-कतिपय उदाहरण इस प्रकार है —
 क-क्रिया कमावो आपरी, करणी नैं घालो हेत।
  साझ ममाहो आपणा, करि तेतीसा मेळ ॥ १२ ॥-साखी ८।
 ख-करणी तो इधक अनूप है करणी का अनत विचार।
  करणी को विरळा करै, करणी है तत सार ॥ २ ॥-हरजस ५।
 ग-आपरी जमा नयारी मिलस्यै, जाकी जिसी रुहाणी।
  मन्यसा जसी दीसा पति तसी, इदरी सही लपाणी ॥ १४ ॥-साखी ५।
 घ-जा सतान न पोहई, जीवत जे र मराय ॥ ३ ॥
  जीवित मरै स उवरै, पुहचै पार गिराय ॥ ४ ॥-साखी १।
 ङ-छोडि करम निहकरम हुवा, चालो सोह संगि साथ।
  साभळ्य जीवडा गुरि कही, मुकति पेत की बात ॥ २९ ॥-साखी ८।

२-क-ऊधो माधो सूं कही, अस कुछ हम न सुहाय।
  वीठळ वोह दिन लाविया, रह्यो दुवारिका छाय ॥ २ ॥-हरजस १।
 ख-पाचे सात नव बारहा, करि तेतीसा जोड।
  प्रभु अलमै मेळो दियो, भगत वछल रिणछोड ॥ ७ ॥-हरजस ५।
 ग-जाकै वदंन वसै चद कोट, मेरो मन लागो कान्ह सूं।
  भगत वछल रिणछोड, सहिया सिरीरंग वाल्हो ॥ २ ॥-हरजस १०।

३-गोरखवानी, पृष्ठ ४, छन्द-९, सम्पादक : डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, प्रयाग, सवत् २००३।

सबदवाणी का ही है (१० वां सबद)। इसके अतिरिक्त, भाषा-प्रभाव की दृष्टि से निम्न-लिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:—

क-नारेसंघ नर नरां नरीदो वौह गुंण चीदो मदति करे चंन्य आंणों। ४।
माम्यो सील हकीकथ झाण्यो, उंन्हां ठांढा पांणी ॥ ५।
गुर आप संतोषी, अवरां पोषी, लंगर आवादांणी ॥ १ ॥ -साखी ५।

ख-रतंन कया सांचै ढुळी ज्यों आपा पहरांय ॥ ६ ॥ -साखी १।

ग-आलंम के मन गुण गाय गोविंद कूं चांदणी थकै अंधेरा। ५, हर० ११।

-तुलनीय:-सबदवाणी-५६ : २१-२४; २७ : १७; ६१ : ७,८; १ : १०, ११; ११ : १९ और ११६ : २।

७-कतिपय रचनाओं में भगवद्-प्रेम के साथ घट के भीतर "गगन मंडल में डेरा डालने" का उल्लेख मिलता है। इस मिश्रित भाव-धारा के बीज सबदवाणी में वर्तमान है। आलमजी के समकालीन अन्य कवियों-विशेषतः मीरां की रचनाओं में भी ये दोनों तथा उल्लिखित कृष्ण-प्रेम-विषयक-तत्त्व विद्यमान है, जो सबदवाणी का सीधा प्रभाव है। कतिपय उदाहरण देखे जा सकते हैं[1]।

८-आलमजी की कतिपय उपमाएँ अनूठी और हृदयग्राही हैं। उदाहरणार्थ, काया को मसजिद और मन को मुल्ला बताने वाली यह उपमा—

काया मसीति मंन मुलांणो, सिदकै एक धीयाइयै।
पढि कतेव, वुझांण करणी, मोख हुंसा पाइयै ॥ ३ ॥—साखी ४।

९-कवि ने कतिपय वीर-प्रतीकों और वीर-रसात्मक काव्य-पद्धति को अपनी एक साखी में बड़ी कुशलता से अपनाया है। प्रभाव की दृष्टि से यह योजना अत्यन्त सफल रही है। अप्सराएँ वीर पुरुषों की राह देखती है। इसी बात को विष्णु-भक्तों पर लागू करते हुए कवि ने स्वर्ग-सुख का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है[2]।

१-क-स्वाति की बूंद पियां सुप उपजै, दुप सुग्ग होत नवेरा ॥ ३ ॥
हरि उर होय मगंन होय नाचैं, गिगन किया जाय डेरा ॥ ४ ॥-हरजस ११ ॥
ख-होय वरि मगंन गगंन जाय वसिया, जोति जोति संमांणी ॥ १६ ॥
अलम कूं दांन अतो प्रभु दीजै, वीचि सभा वैसांणी ॥ १७ ॥-साखी ५ ॥
ग-निरषत रूड़ो कान्हवो, दे दे नीरणां रा भिकोळ।
मंन्यमा भल भोजंन पिवै, इम्रत छल्या कचोळ ॥ ३ ॥
पीरोद्रिक नारी कुंजर वागी वंण्यो अंति कुंवळ पट चोळ।
कोट र पायल पेषणां अंनहद रा रंमझोळ ॥ ४ ॥-हरजस-६।
२-देस सुरंगो पारको, सोमिण मीत वसांय।
अरै पैण वर कांमंणी, वैठी केळ करांय ॥ ३१ ॥
विसंन भगति जां मंन्य वसै, ओां देपंण वां चाव।
चितरंगी चढ़ी महलां पड़ी, हूरां लियै हुलाह ॥ ३३ ॥
करता नै कांमण्य कहै, अरज सुंणी म्हारी सांम्य।
कलिजुग मां करणी करै, आंणीजै इणि ठांम्य ॥ ३४ ॥

(शेषांश आगे देखें)

आलमजी का आत्मोत्थान की ओर प्रेरित करने का प्रयास सहज और सुन्दर है। उद्धृत साखी में वैकुण्ठ-सुख का मोहक वर्णन करके वह अनायास ही मनुष्य को इस ओर आकर्षित करता है। एक अन्य साखी-' मधुकर ' (संख्या ७) में वह संसार दुखों का वर्णन करके पार्थिव-पदार्थों से मन को विरक्त करना चाहता है। दोनों ही वर्णनों का उद्देश्य आत्मोपलब्धि कराना है, जो सुकृत और हरि-स्मरण से सम्भव है। प्रकारान्तर से दोनों ही पद्धतियाँ इसी तथ्य का प्रतिपादन करती हैं।

१०-आलमजी की रचनाओं से जाम्भोजी के कार्यों का समष्टिरूप में परिचय मिल जाता है।

आलमजी की सभी रचनाएँ किसी न किसी राग-रागिनियों में गेय हैं। उनमें कवि का हृदय लिपटा हुआ दिखाई देता है। भाव-गाम्भीर्य, सहज-सरसता और आत्म-चेतना की दृष्टि से उनकी "मधुकर' साखी सर्वोत्कृष्ट रचना है। मन ही को कवि ने मधुकर की संज्ञा दी है। एक हरजस (संख्या १२) में हरि से मिलन की उत्कण्ठा, संदेश-हेतु 'सूर्य चन्द्र' जैसे पथिकों का न मिलना और इस कारण कल्कि अवतार से मिलने की कामना, कवि की अपनी सूझ बूझ है। अन्यत्र ऐसा वर्णन दुर्लभ है। दोनों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं[1]।

सदा सुरंगी कामणी, वरसा सदा ज वार।
जुग जुगन्तर जीवना, कुंवरा वरस अठार ॥ ३७ ॥
नारी कुंजर पहरै कामणी, पीरोदक नर पहरंति।
अमी कचोळ क पीवै, गुर परसादि रमंति ॥ ३९ ॥
मंदर मदळ जिन धमकही, वाजै अनहद बीरा।
नोरंगी वाणी तन रतन, साध भगत लोकीण ॥ ४० ॥
कोड छत्तीसा जित पडै, रंग रावळ उदैमाद।
घणहर मंगळ गावियै किसन तणै परसाद ॥ ४१ ॥
उमाहो मन्य मोमिणा, चीतारियो सनेह।
हर क सुर घरि आगणो, आला नूर बूठा मेह ॥ ४३ ॥
पाना फूला गहगही सुरतरा सुवाइ गल।
सुरगा सोरम आवै घणी, आगणी नागरवेल ॥ ४४ ॥
सचदण निन थयो, राति द्योस ता नाहि।
उडग पटोला मन सवा, आणंद ठावों ठाय ॥ ४५ ॥
साजनिया अगन्य न दाभई, न ऊडै डुबाय ॥
पडग धार न तूट ही, जोले जोति मिलाय ॥ ५० ॥

१-क-कूडै भरोसै कुटब कै, काची काची नींव कु भाय।
जब जम की पासी पडै, काहु ता सं न काय ॥ २ ॥ मधकर ॥
जर जु वरी पहरा दिये, पुरियो रय करि वसाय।
कुवै उसारे कुंभ ज्यों, तरय वध्यो आवै जाय ॥ ३ ॥
इणि कुमलाणै पोहप सिरि, बैठो जोवै माह।
सत सुकरत पर प्रीत करि, केवळ वास वसाय ॥ ४ ॥
मधकर अब ज सु वारे तू, सुकरत पापडिया।
सोई दरसण म्हारै साम्य को, देपू आपडियां ॥ १२ ॥
अब ज चलो रे न रहो, काटि चलो जम फंध।
अपणै प्यारै पीव सू, रळि मिळि करा आणंद ॥ १३ ॥

(शेषांश आगे देखें)

४७. रैदास धत्तरवाल : (अनुमानतः विक्रम संवत् १५३०–१६००) :

ये गांव ओळवी (तहसील बिलाड़ा, जोधपुर) के निवासी तथा जाति के धत्तरवाळ गृहस्थ विष्णोई थे। ओळवी में ही लगभग ७० साल की आयु में संवत् १६०० के आसपास इनका स्वर्गवास हुआ बताया जाता है। ये सत्संग-प्रेमी और भ्रमणशील व्यक्ति थे। लिपिबद्ध रूप में इनकी निम्नलिखित चार फुटकर रचनाएँ ही उपलब्ध हुई हैं किन्तु ये सम्प्रदाय में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। विष्णोई समाज में इनकी छाप के और भी अनेक 'हरजस' सुनने में आए हैं, पर उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कह सकने के कारण यहां उन पर विचार नहीं किया गया है।

रचनाएँ : क–हरजस :–

१–जो जन ऊधो मोय न विसारै ताहि न विसारूं पाव घड़ी[1] ॥ –४ छंद।

२–लज्जा तो मोरी राखो जी स्यांम हरी[2] ॥ ५–छंद।

३–राज दगै दमड़ी कै दुख सूं डरतै मूंड मुंडायो रे[3] । –८ छंद, राग भैरूं।

ख–साखी :–पहलै पहरै रैण के विणजारिया, जळंम लियो संसारि वे[4] । –४ छंद।

पहले 'हरजस' में भगवान श्रीकृष्ण का उद्धव के प्रति भक्तों के उद्धार सम्बन्धी टेक का सोदाहरण कथन तथा दूसरे में चीर–हरण के समय द्रौपदी की करुण पुकार और भगवान की सहायता का उल्लेख है। तीसरे में 'दगा करने' और न कमा सकने के कारण, 'दमड़ी के दुख से' मूंड मुंडाकर 'स्वामी' बनने वाले और बाद में किसी स्त्री को साथ रखने,

---

अचि इम्रत हरि नांव रस, मंन मधकर होय सुरंग।
उडि अलमां मधकर भुंवर, मिलि गुर भंम अचंभ ॥ १४ ॥–'मधकर',–साखी ८।
ख–पंथी दोय सुलपणां, सकळ कळा चंद सूर।
एह पटंतर देह नै, हरि नेड़ा वसै क दूरि ॥ २ ॥
कोई बतावै हरि आंवतो, सांई म्हांरो पांथलियां।
आरति वूठा मेह ज्यों, पूजें मन रळियां ॥ ३ ॥
निरधनियां धनिवाळ हो, आरती आरतियांह।
यों हरि हमकूं वालहो, ज्यों चंद कमोदनियांह ॥ ४ ॥
जां देसां फळ नां घटै, आवै स्यांम दिसाह।
जीऊं जो प्यारो मिलै, पछंम रो पतिसाह ॥ ५ ॥
सेत दीप अरु राक पंट, वसै पछंम रै देस।
सो जन पग पाहळ लेऊं, ल्यावै वाहु संदेस ॥ ६ ॥
दुल दुल घोड़ै सापती, आयो स्याम नरेस ॥
तिरलोकां रो पेपणों, सुरनर सकळ नरेस ॥ ७ ॥
अलमां जोति झिगमिगै, मेघाडंबर छाति।
कोडि तेतीमां रो पेपणों, परसां निकळंक पाति ॥ ८ ॥–हरजस १२।

१–प्रति संख्या ९५, १४०, ३३२।
२–प्रति संख्या १४४, ३३५।
३–प्रति संख्या ३३२।
४–प्रति संख्या ७६, ९३, ९४, १४१, १४२, १९१, २०१, २६३, ३१८।

उससे उत्पन्न बाल-बच्चों सहित देश विदेश मे घूम फिर कर मागने, अन्त मे 'मडी' म गृहस्थ बन कर रहने और 'गाव-धणी' की खुशामद करने वाले 'ठोठ' व्यक्ति का यथातथ्य एव भावपूर्ण चित्रण है। इसमे तत्कालीन समाज म व्यापक रूप में फैले हुए तथाकथित साधुओं की रहनी, करनी और मनोवृत्ति का बहुत अच्छा परिचय मिलता है। साथ ही इसमे किए गए व्यग्य और चेतावनी भी उल्लेखनीय है। उदाहरणस्वरूप यह पूरा 'हरजस' नीचे उद्धृत किया जाता है[1]।

साखी की गणना अत्यन्त प्रसिद्ध साखियो म है। इसम मानव जीवन की चार अवस्थाओं को रात्रि के एक एक पहर से क्रमश उपमा, और प्रत्येक अवस्था के काय स्थिति का सक्षेप म सारगर्भित वर्णन करते हुए समग्र जीवन का चित्रण कर चेतावनी दी गई है। प्रत्येक 'छद' नपा-तुला और प्रभाव की दृष्टि से सक्षम है। साखी के अन्तिम दो छन्द द्रष्टव्य हैं[2]। कवि के अनुसार, भगवन्नाम-स्मरण करने वाले का उद्धार होता ही है, इसके

१- ॥ राग भैरू ॥ राज दण दमडी क दुख सू डरतै मूड मुडायो रे ॥
हाय सिवरणा पतर तू बडी ले तीरथ कू ध्यायो रे ॥ टक ॥
विपत पडी जब मूड मुडायो, सामी नाव धरायो रे।
कठी माळा चक र गूदडी परडव होय आयो रे ॥ १ ॥
कूडी कुतको होक चीपियो कमर कस उठ खूबो रे।
झोळो झडा और पीजरो जिण माही एक सूवो रे ॥ २ ॥
करम सजोग मिली एक औरत ता सू जुगळ बणायो रे।
पाच च्यार नव मास बदीता, करमकुड सुत जायो रे।
छोरा छोरी छोड वरागण सग कण्यो है नीको रे।
सूत उनको साग बणायो गोपीचद को टीको रे ॥ ४ ॥
देस प्रदेस फिर्यो ब(न) ब(न) भलो घुमायो घोटो रे।
थयो ममो नित पाठ पढतो रयो ठोठ को ठोठो रे ॥ ५ ॥
मडी बधाय ग्रसत होय बैठो तू या भग्री आफू रे।
मुद मुप सेती करै पुसावद गाव धणी कू बापू रे ॥ ६ ॥
ढढी राणी वाय बावडो, जगत निपावट हूवो रे।
बारै मास भटकता जावै, ना जीयो ना मूवो रे ॥ ७ ॥
इण जीवण तै जी (वो) मरबो, ना इतरो ना उतरो रे।
कहै रैदास भजन बिन भम्यो ज्यू धोबी को कुतरो रे ॥ ८ ॥

२-तीजै पहर रैण कै विणजारिया, तेरा ढीला पड्या पुराण वे।
काया नीवानी क्या करै विणजारिया, गढ भीतरि वस्यो अजाण वे।
वस्यौ अजाण कया गढ भीतरि, अहळो जलम गुमायो।
अबकी बेर न सुकरत कीयौ, बोहडि न ओ तन पायो ॥
छीनी देह क्या कु मलाणी फीरि पाछै पछताण वे।
जन रिवदास कहै विणजारा, ढीला पड्या पुराण वे ॥ ३ ॥
चौथै पहर रैण कै विणजारिया, तेरी थरहरि कपी देह वे।
आयो हकारो साम्य का विणजारिया, छोडि पुराणा यह वे।
येह पुराणा छोडि अयाणा, वाळदि लादि सवेरिया।
जमके आए पकडि चलाए, बारी पूगी तेरिया।
चल्या अकेला पथ दुहेला, किस सू करै सनेह वे।
जन रिवदास कहै विणजारा, थरहरि कपी देह वे ॥ ४ ॥ (८३)-प्रति सख्या २०१।

लिए किसी विशेष प्रकार की वेशभूषा रखने या 'साधु' बनने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं भगवान भी ऐसे भक्त की सहायता करते हैं। ऐसी स्थिति में केवल भक्त ही प्रभुमिलन के हेतु आतुर नहीं होता, स्वयं भगवान को भी उसकी चिंता रहती है। कवि ने स्वयं प्रभु से ऐसा वर्णन करवा कर जनसाधारण को एक बहुत बड़ा आश्वासन और सम्बल प्रदान किया है (हरजस संख्या-१)। रैदासजी का उद्देश्य मनुष्य को चैतन्य करते हुए उसको परमगति-प्राप्ति की ओर उन्मुख करना है जिसके दो प्रधान उपाय हैं—नामस्मरण और सुकृत।

यहां यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त साखी को, रचयिता के नाम-साम्य के कारण रामानन्द-शिष्य सुप्रसिद्ध संत रैदास (चमार) की रचना समझकर प्रकाशित किया गया है[1], जो भूल है। कहना न होगा कि विष्णोई- 'साखी-संग्रह' में केवल विष्णोई कवियों की साखियां ही संकलित हैं (द्रष्टव्य-विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)। अतः इस साखी के संत रैदास की होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी ओर संत रैदास के नाम पर संकलित और प्रचलित रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इस सम्बन्ध में स्वयं इसके संकलन-कर्ताओं का कथन है कि 'संत रविदास की रचनाओं की जो प्रतिलिपियाँ प्राप्त हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है' (संत रविदास और उनका काव्य, पृष्ठ ८८-८९)। 'इस पुस्तक में प्रामाणिकता की दृष्टि से 'गुरु ग्रंथ साहब' को प्राथमिकता देते हुए, 'पंचवानी', 'रैदासवानी' और 'सर्वांगी' आदि की प्रतिलिपियों के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इनका (रचनाओं का) संपादन व शोधन किया गया है' (वही, पृष्ठ ९१)। 'रैदास-वानी' का लिपिकाल संवत् १८५५ बताया गया है (वही, पृष्ठ ८९) किन्तु 'सर्वांगी' का नहीं। 'सर्वंगी' रज्जबजी द्वारा एक-एक अंग पर कई-कई महात्माओं की उक्तियों का संकलन है, जिनका रचनाकाल संवत् १६५० से १७४० के बीच माना जाता है[2]। गुरुग्रंथ साहब में सन्त रैदास के ४० पद संगृहीत हैं, जिनमें प्रस्तुत साखी नहीं है[3]। इस संबंध में श्री परशुराम चतुर्वेदी का कथन भी ऐसा ही है:— 'रैदासजी की रचनाएँ केवल फुटकर रूप में ही मिलती हैं और उनका कोई पूरा प्रामाणिक संग्रह अभी तक उपलब्ध नहीं है। ....इन दो संग्रहों (आदि ग्रंथ और

१-सर्वश्री स्वामी रामानन्द शास्त्री और वीरेन्द्र पाण्डेय : संत रविदास और उनका काव्य, पृष्ठ १०८, पद २८, ज्वालापुर, हरिद्वार, संवत् २०१२।

२-क-रज्जब वानी, पृष्ठ १०, सम्पादक-डा० ब्रजलाल वर्मा, कानपुर, सन् १९६३।
  ख-डा० ब्रजलाल वर्मा: संत कवि रज्जब (सम्प्रदाय और साहित्य), पृष्ठ १७५, १८७, जोधपुर, सन् १९६६।
  ग-"राजस्थान", वर्ष-१, संख्या ३, संवत् १९९२ में "महात्मा रज्जबजी" निबन्ध।

३-आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिबजी, प्रकाशक-भाई जवाहरसिंह कृपालसिंह, बाजार माई-सेवां, अमृतसर, (दो जिल्दों में)। इसमें प्राप्त संत रैदास के ४० पदों का विवरण इस प्रकार है (पहले पृष्ठ संख्या और बाद में कोष्ठक में पद संख्या दी गई है) :—
  जिल्द—१: पृष्ठ ९३ (१), ३४५-४६ (५), ४८६-८७ (६), ५२५ (१), ६५७-५९ (७), ६९४ (३), ७१० (१) = २४ पद।
  जिल्द—२: पृष्ठ ७९३-९४ (३), ८५८ (२), ८७५ (२), ९७३ (१), ११०६ (२), ११२४ (१), ११६७ (१), ११९६ (१) १२९३ (३)=१६ पद। कुल ४० पद।

बेलवेडियर प्रेस के सग्रह ग्रंथ) के पदो मे पाठभेद बहुत अधिक दीख पडता है और इसका अन्तिम निर्णय प्रामाणिक हस्तलेखो पर ही निर्भर है।' (सत काव्य, पृष्ठ २११)।

४८ भींवराज : (अनुमानतः संवत् १५३०-१६००) : साखी।

भीवराज अपरनाम "भीयें" का उल्लेख केसोजी (कथा चित्तोड की), सुरजनजी (कथा परमिध, कथा औनार की) आदि कवियो ने किया है। केसोजी के अनुसार, दिल्ली का एक बडा "शाह" निपुत्र था। उसने पता नही किसी से माग कर या मोल लेकर, एक बालक को गोद लिया। बालक के परिवार का कुछ पता नही, लोगो के मुह से सुना कि लुहार का था। उसको पढने के लिए बनारस भेजा गया, जहा उसने तीस वर्ष तक भली-भाति विद्याध्ययन किया। गुरुदक्षिणा-स्वरूप तीन सौ रुपये भेट कर वह दिल्ली आ गया और व्यापार करने लगा। विश्णोइयों की एक 'जमात' से जाम्भोजी के विषय मे सुनकर उसने उनके "अवतार" होने की कटु आलोचना की। दूसरी बार ६ महीने बाद विश्णोइयो के रुधन करने और "धरणा" देने पर वह उनके साथ मन मे चार "द" विचार कर जाम्भोजी के पास समराथळ चला। उन्होने उसके प्रश्नो का उत्तर और "द" का रहस्य बताया तथा "सोवन नगरी" दिखाई। इससे उसका भ्रम दूर हो गया[1]।

वर्तमान मे इनके विषय मे सम्प्रदाय मे भी व्यापक रूप से यही बात प्रचलित है और ये लुहार के लडके निश्चित रूप से माने जाते हैं। उपर्युक्त घटना सवत् १५७२ के आसपास अनुमित है (देखें-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त)। इस समय इनकी अवस्था ४०-४२

१-सुन को दुप दिल माहे दहै, साह सहीर एक दिली रहै।
घरे गरथ लपमी औनार, सोदो सून वडो वोपार ॥ ५३ ॥
साह तणे मन मा अणगाय, एक बालक जोय ल्यायो जाय।
मोलि लियो क माग्यो जोय, सा विधि सतगुर जाणें सोय ॥ ५५ ॥
परमेसर जाणें परवार, लोगा कै मुहि सुण्यो लुहार।
भागवत भीयो निज नाव, साह सबल को आयो साव ॥ ५६ ॥
आणद करि दिल आणी असी, बाळक लेग्या वाणारसी।
चक्रधर बायक वसिया चीति, तीस बरस पढिया करि प्रीति ॥ ५८ ॥
घंण पढियो आयो घरै, मन रहस्या बाप र माय।
कुळ मारग लारै रह्यो, पिंडत लागै पाय ॥ ६२ ॥
भीयो विधि सू कहै विचार, आप तणो नाही अवतार।
कळिग पिसंण करे मेरहार, कळिजुग मा एको अवतार ॥ ६७ ॥
धरि उपरि परगट नही धणी, भीयो कहै भरमाया कणी ॥ ७४ ॥
जमाति कहै कावळ क्या कही, तंह विणि चाल्यं चालै नहीं ॥ ७५ ॥
-च्यारि ददा दिल हू लह्या, कहू जुगति सू जाप।
भोळो भागो भीयें को, तदि ओळखियो आप ॥ ९४ ॥
सोवन नगरी नजरि दिषाय, तो जाणों तेतीसा राय ॥ ९९ ॥
करना की कथ मांनी कही, सभरा नगरी दीठी सही।
घर मिंदर हरषियै हिंडोळ, भीयें तणै मनि भागी भोळ ॥ १०५ ॥-कथा चित्तोड की।

साल की मानने से जन्म संवत् १५३० के लगभग ठहरता है। इनके स्वर्गवास-काल का निश्चित पता नहीं है। अनुमानतः संवत् १६०० के आसपास रहा होगा। "२४ नूर" और "हिंडोलणो" में इनका नामोल्लेख है। "भक्तमाळ" (प्रति संख्या २१६) में "भींयों पंडित वडो सुजांण" कह कर इनका गुण भी बताया गया है।

रचना :-इनकी ४ पदों की "छंदा की" १ साखी मिलती है[1]। इसमें कवि ने मन को अनेक प्रकार से समझाते हुए कुसंगति और अन्य देवोपासना-त्याग, केवल विष्णु का जप और शरण-ग्रहण तथा सुकृत करने का भाव-भरा अनुरोध किया है। कवि ने अत्यन्त सहज भाव से, प्रवाहपूर्ण सरल भाषा में मोक्ष-मार्ग बताते हुए मन को उस ओर प्रेरित करना चाहा है। विष्णोई साखियों में तो यह साखी बहुत प्रसिद्ध रही ही है, राजस्थानी गेय पद-परम्परा और उसके एक रूप की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। रचना नीचे उद्धृत है :-

रे विणजारा न करि पसारा, तांडै हुई तियारी।
बारां काजि संमाहे मंनवों, नायक नर निरहारी।
नायक नर निरहारी मंनवां, खालिक खेवंण हारा।
किरिया ले किरियांणों नांणो, पारि उतरि विणजारा ॥ १ ॥
रे बोपारी करि दिल इकतारी, वाचा चोर संभाळी।
ओदरि कोळ कियो मंन मेरा, उदग्यो दसवंद टाळी।
दसवंद टाळी खरतर चाली, निपज्यो नर निरहारी।
इण विधि लाभ हुवै मंन मेरा, पारि उतरि बोपारी ॥ २ ॥
रे मंन चंगा तजी कुसंगा, साध संगत रळि चाली।
अजर जरो भोवसागर तरियै, जिभिया झूठ ज पाली।
तंन का तसकर वस करि मंनवां, निजवट न्हाई गंगा।
आंन देव अभिमांन परहरी, तो जाणो मंन चंगा ॥ ३ ॥
रे मसवासी जपि अभनासी, ध्यांन धंणी सूं लाई।
ओळखि अलख अंमर गढ चालो, जुरा न पुंहचै जाई।
जुरा न पुंहचै जंम की गंम नांहि, सुरां सुरपति निवासी।
भींवराज विसंन कै सरणै, मंन हुवो मसवासी ॥ ४ ॥ १६ ॥-प्रति संख्या २०१ से।

४९. दीन सुदरदी : (अनुमानतः विक्रम संवत् १५३५-१६००) : साखियां।

ये हजूरी कवि और सुप्रसिद्ध कवि काजी समसदीन के पौत्र थे। इन्होंने स्वयं ऐसा उल्लेख किया है:-"बोलै दीन सुदरदी पोता संमसाणां ॥" ८ ॥ (प्रथम साखी)। दूसरी साखी में केवल 'पोता संमस' से ही अपने को सूचित किया है:-"अला पोता संमस बोलियो कळि दसवें अवतारो, हंम विणजारड़ियां ॥" १५ ॥ समसदीन का समय संवत् १४९० से

[1] १-प्रति संख्या—९४, १४१, १४२, १४३, १९१, २०१, २१३, २१५, ३२१।

१५५० है। (द्रष्टव्य-कवि सख्या २)। यदि एक पीढी के लिए २२-२३ साल का समय मानें, तो इनका जन्म सवत् १५-५ के लगभग ठहरता है। इनका स्वर्गवास नागौर म सवत् १६०० के आसपास हुआ बताया जाता है।

रचनाएँ इनकी तीन "वर्णा की" साखियाँ उपलब्ध हैं¹ —

१-भाव सुभाव करे जो गुर धाडी वाही ॥ १ ॥ ८ पक्तियाँ।

२-अला मेरो मन खरो उ माहियडो,

सांम्य मिलण दीदारो। हम विणजारडियां। १५ पक्तियाँ।

३ दिल चगा मन चादिणो चादिणो, ते मोमिण दीदार जी ॥ गुर कायमां ॥ १७ पक्तियाँ।

पहली साखी म मन को वम म करने, दूसरी म जम्म-गुणगान और कल्कि-अवतार तथा तीसरी मे मन-शुद्धि और सासारिक क्षणभगुरता आदि का अनेक प्रकार से वर्णन है। तीनों के कतिपय उदाहरण नीचे दिए गए हैं²।

१-प्रति सख्या २०१, २६३।

२-क-किरिया हरि हुई जी, फळ फूल्य सुवाई ॥ २ ॥
काळा सा मिरघलडाजी, घट उजळ पेटा ॥ ३ ॥
चोरी जाय करै जी, बीराणं येता ॥ ४ ॥
काहे की घणपलडीजी, काहे का वाणा ॥ ५ ॥
सत की घणपलडी, गुर के वच बाणां ॥ ६।
मन मार्‍या मिरघलडाजी, नही दीया जाणां ॥ ७ ॥-पहली साखी प्रति २०१।

ख-अला हम विणजारा पूरै साह का, विणज करण वोपारो ॥ हम विणजारडियां ॥२॥
अला पोटा पोरा विणज न वोहरां, मागिका दावो पारो ॥ हम ॥ ३ ॥
अला इह जुगि पहलै मोमिणा, मत बैठो पडि हारो ॥ हम ॥ ४ ॥
अला इह जुगि दूजै मोमिणां, जीवडा चेति सभाळो ॥ हम ॥ ५ ॥
अला इह जुगि तीजै मोमिणा, होय चालो हुसियारो ॥ हम ॥ ६ ॥
अला इह जुगि चौथै मोमिणां, अब जीवा की वारो ॥ हम ॥ ७ ॥
अला मेघाडवर छतर धर, दुल दुल होय असवारो ॥ हम ॥ ९ ॥
अला हाथि तिघारो खडग लिवै, दाणवा करै सघारो ॥ हम ॥ १० ॥
अला धरणि सावै की हुवैली ठणक्य वजावण हारो ॥ हम ॥ ११ ॥
अला हम उडै टोळी रव, लघियै भु य जळ पारो ॥ हम ॥ १२ ॥ -दूसरी साखी।

ग-दिल चगा मन चादिणो चादिणो, ते मोमिण दीदार जी ॥ गुर कायमा ॥
सुकरत बधौ गाठडी गाठडी जीवडा का आधार ॥ २ ॥
पाच वपत करि बदगी बदगी, रोजा रापो तीस जी ॥ ३ ॥
देल दसु ध छुटै नही छुटै नही, सही बिसोवा बीस ॥ ४ ॥
किसका माई बावला बावला, किसका पप परवार ॥ ७ ॥
माय कहै मेरा पुत है पुत है, वहण कहै मेरा बीर जी ॥ ८ ॥
इस अ धियारी घोर मा घोर मा, कोण बधावै धीर जी ॥ ९ ॥
गोवळ आया गोवळी गोवळी, गोवळ का दिन च्यारि ॥ १२ ॥
सुरग हमारै झु पडा, झु पडा हा है आधोचारि ॥ १३ ॥
नदी कराडै रू पडो रू पडो जदि तदि होय विणास ॥ १६ ॥
बोलै दीन सुदरदी सुदरदी, अळप जीवण ससारि ॥ १७ ॥

कवि के मन–मृग और विणज सम्बन्धी कथन (पहली साखी) सहज ही ध्यान आकृष्ट करते हैं। खेत का रूपक तो सर्व–ग्राह्य है और इसी कारण यह साखी श्रेष्ठ जाम्भाणी साखियों में से एक है। इसमें ये प्रतीकार्थ हैं :—

वाड़ी (खेत)=हृदय। वीज वोना=गुरु–प्रेम और निष्ठा। फसल=सत्कार्य। कालामृग=मन। धनुष=सत्य। बाण=गुरु–वचन।

परवर्ती कवियों में ऐसे रूपक वील्होजी ने वांधे हैं। हुजूरी कवियों में केवल इसी कवि ने ही पूरे एक पद में मन–मृग मारने का रूपक वांधा है। इसी परम्परा में आगे चल कर हरजी वणियाळ ने मन पर वहुत सी साखियां लिखीं। विणज सम्वन्धी उल्लेख कवि की अपनी कल्पना है। कल्कि–अवतार वर्णन में पूर्व–परम्परा का ही अनुसरण किया गया है। इन दोनों के वीज सवदवाणी में विद्यमान हैं। तीसरी साखी की ७, ८ और ९ पंक्तियों पर सवदवाणी का प्रत्यक्ष प्रभाव है (३१ : ६, १० तथा सवद ८३)। "गोवळ वासो" सम्वन्धी कथन (पंक्ति–१२) का आधार भी वही है (५१ : ३३–३६; ८४ : १५)। इससे कवि की सवदवाणी पर श्रद्धा झलकती है। आत्मोद्धार हेतु मन को वस में और सुकृत करने का संदेश कवि ने दिया है।

तीसरी साखी के पाठ संबंधी कुछ वातें उल्लेखनीय हैं। इसकी निम्नलिखित चार पंक्तियां किंचित् परिवर्तन के साथ कवीर के नाम से (दो दोहों के रूप में) मिलती हैं[1] :—

साहिव मेरा वाणिया, वाणिया सहज्य करै वौपार ॥ ५ ॥
वीणि डांडी विणी पालड़ै पालड़ै, तोल्यौ सोह संसार ॥ ६ ॥
मैं कुता तेरै नांव का नांव का, मोतिया मेरा नांव ॥ १४ ॥
गळै हंमारै रासड़ी रासड़ी, जांहां खांचै जहां जांव ॥ १५ ॥

इस सम्वन्ध में अधिक सम्भावना यही है कि ये दोनों दोहे अपभ्रंश–काल से ही लोक में वहु–प्रचलित रहे होंगे और उसी स्रोत से ये दोनों कवियों की रचनाओं में अलग–अलग रूप से सम्मिलित कर लिए गए होंगे। इसी प्रकार, नीचे की दो पंक्तियां ऊदोजी नैण की एक साखी में हैं (द्रष्टव्य–ऊदोजी नैण, कवि संख्या ३७) :—

किसका मैड़ी मंडपा मंडपा, किसका ए घर वार ॥ १० ॥
सांईजी की मैड़ी मंडपा, अलख तंणां घर वार ॥ ११ ॥

ऊदोजी नैण इनसे ३०–३५ वर्ष वड़े और अत्यन्त समर्थ कवि थे। आश्चर्य नहीं कि उनकी संगति और प्रभाव के कारण प्रस्तुत कवि ने ये पंक्तियां सहज रूप से अपनी साखी में भी सम्मिलित कर ली हों। लिपिकार के कारण भी ऐसे मिश्रण सम्भव हैं।

१–क–कवीर ग्रंथावली, सम्पादक डा० श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ ६२, दोहा–८ तथा पृष्ठ २०, दोहा १४, ना० प्र० सभा, काशी, संवत् २०१३।
ख–कवीर–ग्रंथावली, डा० पारसनाथ तिवारी, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९६१, पृष्ठ १६५, दोहा–१० तथा पृष्ठ १६१, दोहा–१।

५०. मेहोजी गोदारा थापन : (संवत् १५४०-१६०१) :

ये भोजास गाँव के सेखोजी गोदारा के दूसरे पुत्र थे। संवत् १५४२ में सम्प्रदाय-प्रवर्तन के समय जाम्भोजी ने सेखोजी को थापन नियुक्त किया था। उस समय मेहोजी की आयु २ साल की बताई जाती है। सेखोजी के शेष दो पुत्र थे-चैनो और चाहू[1]। मेहोजी बड़े होने पर रूणिया गाव में रहने लगे थे। प्रसिद्ध है कि लगभग पैंतीस साल की आयु में संवत् १५७५ के आसपास इन्होंने अपनी "रामायण" की रचना की। इनके जागळू में जाने और बसने की कहानी बहुत ही प्रसिद्ध है।

जाम्भोजी के वैकुण्ठवास के पश्चात् उनके समाधि-स्थल पर ताळवा गाव में उनके प्रिय शिष्य पडियाळ के साधु रणधीरजी बावल ने वर्तमान मुकाम-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। इसकी नींवें संवत् १५९३ के पौष सुदि २, सोमवार को रखी गई और संवत् १५९७ के चैत सुदि ७, शुक्रवार को मुख्य मन्दिर बनकर तैयार होगया। तब चैनोजी थापन ने उस पर अधिकार करने एवं स्वयं पुजारी और प्रबन्धकर्ता बनने की इच्छा से रणधीरजी को भोजन में विष देकर मरवा डाला[2]। भेद खुलने पर प्राणों की आशंका जानकर वह अन्यत्र चला गया। उसने दूसरे सम्भव हकदार मेहोजी को भी मरवाने की सोची। इसका पता मेहोजी को लग गया। चैनो की स्वार्थ-प्रवृत्ति देखकर, पवित्र धार्मिक वस्तुओं को उसके चंगुल से बचाने के लिये वे समाधि-मन्दिर में रखी हुई जाम्भोजी महाराज के उपयोग की तीन वस्तुएँ-चोला, 'चौपी' (भिक्षापात्र-'डिबिया') और टोपी लेकर सपरिवार इसी

१-भोजास गाव थर जात गोदारो। सेखो नाम जभ को प्यारो।
रथ को वैलवान वड भारी। थापन कीनेऊ ताहि बिचारी।
ब्राह्मण इह अस्थापन कीन्हा। कर्मकाड करहु कहि दीन्हा।
सेषं के पुत्र भए तीना। मेहो चैना चाहू प्रवीना।
—प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण ६, पत्र २६।

२-सतरा मास एहि विध भए। छाजा दिया निकाल।
काम बहुत सो होय गयो। तब रचियो कपट जजाल ॥ ४४ ॥
थापना मन माहि बिचारी। साध रहैं याके पूजारी।
अपणैं पूजा कछुर न आवैं। साध पंथ के गुरु कहावैं ॥
तातैं याकूं मार गिरावो। तो मद्र की पूजा पावो।
एहि विधि कपट रच्यो जन सारा। पाच दिना में याकू मारा।
याकू मार अरु मद्र करावां। तो मद्र की पूजा पावा।
वखतू रुकमा थापन दोई। रणधीरजी की चेली होई।
रणधीरजी अम बोलत भएऊ। इह ले गूठी औरन मत दएऊ।
अस कहि गूठी अकस भएसो। जस भावी तैसेहि बुधि रहसी।
ता दिन चैंनें निवतो दीनो। भोजन कर्यो भहर सूं भीनो।
जीमत ही मूर्छा भई भारी। गए जहाँ गुर जभ मुरारी।
न्हालदास रेडोजी पासा। मृतक देष भए बहुत उदासा।
तन कृपा कर राज पुकारा। सर्णं में थापन गए सारा।
—वही, प्रकरण २२, पत्र २४।

साल संवत् १५९७ में जांगळू की ओर रवाना हो गए। वहां के वनराज भाटो ने उनको सब प्रकार से अभय प्रदान करते हुए अत्यन्त आदरपूर्वक अपने यहां बसाया। वहां मेहोजी ने एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर जाम्भोजी का भेष पधराया। पीछे उसी स्थान पर वर्तमान जांगळू का मन्दिर बनाया गया जिसकी नीवें मनरूपजी साधु ने संवत् १८८३ के चैत सुदि ९, सोमवार को रखी[1]। यह मन्दिर "पिछोवड़ो" कहलाया क्योंकि मेहोजी यहां 'पिछोवड़े-' (पीछे से) ये वस्तुएं लाये थे। प्रति अमावस्या को यहां बड़ा हवन होता है। कुछ समय पश्चात् पंचों ने चैनो को भी पाहळ द्वारा "चोखा" करके सम्प्रदाय में प्रविष्ट कर लिया, वह तब से "चोखो" नाम से प्रसिद्ध हुआ[2]। मुकाम के थापनों की प्रार्थना पर मेहोजी ने टोपी उनको वापस दे दी। चोला और 'चींपी' अभी तक 'पिछोवड़े' में विद्यमान हैं। मेहोजी का देहान्त संवत् १६०१ में हुआ और उनको 'पिछोवड़े'-मन्दिर के पास ही समाधि दी गई। सम्प्रदाय में तो परम्परा से ये बातें प्रसिद्ध हैं ही, भाटों के कथन से भी इनकी पुष्टि होती है। मेहोजी को संतति जैसलमेर के गोड़ू गांव में विशेष फैली। रामायण से मेहोजी का भक्त होना सिद्ध है।

रामायण[3]:-मेहोजी की यह केवल एक ही रचना मिलती है, जिसकी प्रसिद्धि

१-संवत्-सूचक ये तीनों सूचनाएं लेखक को महन्त श्री कौसलदासजी महाराज, "आगूणी-जागां", जाम्भा से प्राप्त एक गुटके में लिखी मिली हैं, जिसमें भागवत के एकादश स्कन्ध की टीका लिपिबद्ध है। यह टीका साधु हरिकिसनदासजी के शिष्य साधु परसरामजी ने संवत् १८८२ में लिपिबद्ध की थी।

२-एह सब ह्यांही रहते भएऊ। हाथ जोड़ चैनै अस कहेऊ।
गंगा सम तुम न्यात कहावो। इन हम सबकूं न्याति मिलावो।
पांच देस के पंच बुलाए। कोरो करवो लियो मंगाए।
पाहळ कियो प्रेमजी साधू। जंभ गरू को मंत्र आदू।
जप कर पाहळ चैनै कूं दीन्हों। चैनें कूं चोपो कर लीन्हों।
काजण बालक सबहि मिलाए। एकै पांणी मीठे कराए।
यूं थापन कुल चालत भयो। मेळो सकल विपर ही गयो।
-साहबरामजी कृत "जम्भसार", प्रकरण २३, पत्र ३७, ३८, प्रति संख्या १९३।

३-इसकी तीन प्रतियां मिली हैं :-(१) प्रति संख्या १५२ (ठ), (२) २०७ (ख) तथा (३) २०१, फोलियो ३२३। तीनों के पाठ-अध्ययन करने पर पता चलता है कि पहली दो प्रतियां एक परम्परा की और तीसरी प्रति दूसरी परम्परा की है। प्रथम परम्परा की प्रतियों का आदर्श यत्रतत्र खण्डित या त्रुटित रहा प्रतीत होता है तथा ऐसे स्थलों पर छन्द-पूर्ति स्वरूप या अन्यथा प्रक्षेप भी किया गया है। सर्वाधिक विश्वसनीय प्रति तीसरी है, जिसका पाठ मूल के बहुत निकट का है।

प्रति संख्या २०१ में आए निम्नलिखित ६० छन्द पूरे या आधे रूप में शेष दोनों प्रतियों में त्रुटित हैं :—३-६, १०, ११, १३, ३२-४०, ४३-४६, ५४, ५८, ६४, ६७, ७५, ७७, ७९, ८२, ९७, ९८, १०५-१०७, ११२-११७, ११९, १३१, १३६, १४५, १५५-१५८, १६५-१६८, १९१-१९४, २१४-२१६, २५६, २५७।

इन दोनों प्रतियों (१५२ तथा २०७) में इनके स्थान पर तथा यत्रतत्र अन्य स्थलों पर भी ज्ञात (केसोजी, सुरजनजी और किसोर) और अज्ञात कवियों के अनेक प्रसंगा-

(शेषांश आगे देखें)

रचना के पश्चात् ही जाम्भोजी की विद्यमानता मे खूब फैल गई थी और पदम भगत कृत 'हरजी रो ब्यावलो' की भांति जागरण मे गाई जाने लगी थी। उल्लेखनीय है कि यह उन्हीं राग-रागिनियो मे गेय है जिनमे विष्णोई साखियाँ। यह कुल २६१ दोहे-चोपइयो की कृति है। समस्त रचना निम्नलिखित राग-रागिनियो मे गेय है -

भु वरो (१७६ छन्द), सुहब (५७ छन्द), धनासी (८ छन्द), रामगिरी (६ छन्द), हुसो (२ छन्द) तथा मलार या/और जैतसरी (१२ छन्द)[1]। लिपिकारो[2] के अतिरिक्त रचना का "रामायण" नाम स्वय कवि ने भी अन्तिम छन्द मे बताया है :-

अठसठ तीरथ जो पु न न्हायां, सु णो रामायंण कांने।
पढियां नै मेहो समझावै, थापो परम धियांने ॥ २६१ ॥

कथासार इस प्रकार है :-

कवि सृजनहार का स्मरण करता है। असुर सहारने, बन्दी देवताओं को छुडाने और अपने वचन को सत्य सिद्ध करने हेतु राम लक्ष्मण ने अवतार लिया। वे तथा भरत शत्रुघ्न चारो कु वर दशरथ के घर जन्मे (१-५)। राजा दशरथ के अस्वस्थ होने और कोई

नुकूल छन्द लिपिबद्ध किए गए मिलते हैं। अनुमान है कि अज्ञात कृत ये छन्द भी विष्णोई कवियों द्वारा रचित होने चाहिएँ। नीचे प्रति सख्या २०१ की छन्द-सख्या को आधार मानकर ऐसे छन्दों की तालिका दी जा रही है :-

प्रति सख्या २०१	प्रति सख्या १५२ तथा २०७
छन्द सख्या ६३ के पश्चात्	१ सवैया, अज्ञात कृत
,, ,, १४२ ,,	१ ,, (किसोर रचित) तथा २ चोपई, ३ कवित्त, १ सवैया-अज्ञात कृत
,, ,, १४३ ,,	१ ,, अज्ञात कृत
,, ,, १५२ ,,	१ ,, तथा १ डिंगल गीत (२ दोहले)-अज्ञात कृत
,, ,, १९० ,,	२ सवैए, १ डिंगल गीत (४ दोहले), २ कवित्त, २ सोरठे (१ सवैया केसोदास रचित, शेष अ० कृत)
छन्द सख्या २१३ के पश्चात्	१ कवित्त सुरजनजी कृत रामरासो का।

दोनो प्रतियों (१५२, २०७) में छन्द-विपर्यय भी पाया जाता है।
प्रति सख्या २०७ मे प्रस्तुत रचना की पुष्पिका के पश्चात् राम-सम्बन्धी १ कवित्त तथा १ डिंगल गीत और है।
तीनो प्रतियो मे अपनी-अपनी विकृतियाँ भी हैं। प्रति सख्या २०१ मे कुल छन्द २६१ हैं, जिसमे छन्द ६१, १६६ और २०४ की एक-एक पक्ति त्रुटित है। उद्धरणो सहित प्रस्तुत विवेचन इसी प्रति के आधार पर किया गया है।
प्रतियों की प्रतिलिपि-परम्परा के आधार पर भी रामायण का रचनाकाल १६ वी शताब्दी उत्तरार्द्ध अनुमित होता है।

१-छन्द सख्या ७१-७९ तथा १०८-११०, कुल १२ छन्द, प्रति संख्या २०१ मे "सोळरास की ढाळ" मे, प्रति सख्या १५२ मे "राग मलार" मे और प्रति सख्या २०७ मे "राग जैतसरी" मे गेय बताए गए हैं।

२-प्रति सख्या २०१ और २०७-"लीषतु रामायण", तथा प्रति सख्या १५२-"लीषतु ग्रथ रामायण"।

"इलाज न लगने" पर कैकेयी ने हर प्रकार से उनकी सेवा की। प्रसन्न होकर उन्होंने उसको वर मांगने को कहा। उसने भरत–शत्रुघ्न के लिए राज्य और राम–लक्ष्मण के लिए वनवास मांगा और इस प्रकार वचनों से राजा को छला (६–१४)।

राम लक्ष्मण राजा के वचन-पालनार्थ अयोध्या छोड़कर वनवास के लिए चले गए। इस पर भरत बहुत ही दुखी हुए। दशरथजी उनकी राह देखते हुए श्रवणकुमार सम्बन्धी शाप को स्मरण कर अत्यन्त व्याकुल हुए और पुत्र वियोग में चल बसे (१५–२७)।

(कवि सीता–स्वयंवर का उल्लेख करता है) सीता के लिए चारों दिशाओं से चक्रवर्ती नरेश एकत्र हुए किन्तु शिव–धनुष किसी से भी न उठाया गया। राम ने धनुष उठाकर प्रत्यंचा खींचली। सीता का उनसे विधि–पूर्वक कुलाचार सहित विवाह हुआ और अपार दहेज दिया गया। वे सीता को लेकर घर आगए (२८-३४)।

रावण ने लंका में जाकर भोज से पूछा—वे कौन थे जो सीता को व्याह कर ले गए ? जाकर खबर लाओ। वह वन में उनकी मढ़ी पर आया। उसकी कुम्हलाई हुई काया देखकर सीता ने पूछा—तुम इतने अस्वस्थ क्यों हो ? भोज बोला—हे कामिनी ! मेरे शरीर में दुख है, मैं परदेशी पथिक हूँ। हे सती ! मुझे अपनी शरण में रखो। वहां रात्रि में वह रहा, तभी मे उपद्रव आरम्भ हुआ। उसने सीता के "नख चख निरखे"। प्रभात होते ही वह 'पंचमढ़ी' से चल पड़ा। लंका में आकर उसने सीता के सौन्दर्य का अनेक भांति से वर्णन किया। इस पर रावण उसको महलों में (अपनी रानियाँ दिखाने हेतु) ले गया। उसने तब भी सीता की प्रशंसा करते हुए कहा—मंदोदरी तुम्हारी पटरानी है, किन्तु वह तो सीता की पनिहारिन मात्र है। रावण ने मंदोदरी के रूप का संक्षेप में वर्णन किया जिस पर पुनः भोज ने सीता के रूप और सौन्दर्य को अद्वितीय बताते हुए कहा कि उसके समान स्त्री संसार में तो है ही नहीं, कोई स्वर्ग में हो तो हो (३५–५३)।

यह सुनकर रावण ने सीता को लाने का पक्का विचार किया। ज्योतिषियों से इसके परिणाम के विषय में पूछकर मुहूर्त साझा और नगर से निकल कर प्रतोलि-द्वार पर आया। मार्ग में उसको सांप बायाँ, गदहा दायाँ और सुनार सामने आता हुआ मिला। उसने भोज से पूछा–स्वयं ठगे जायेंगे या उनको ठगेंगे ? वह बोला–सौदागर व्यापार से लाभ-प्राप्ति करता है, वह शास्त्र और शकुन का विचार नहीं करता। तुमको मारने वाला कौन है ? तू ही किसी को मारेगा (५४–६१)।

राम रामसर खुदवाते थे, लक्ष्मण "पाळ" बांधते थे और सीता हाथ में कटोरा और सिर पर सोने का "बेहड़ा" लिए पानी लाने जाती थी। सरोवर पर उसने स्वर्णमृग को देखा। उसको भलीभांति देखकर वह घड़ा लेकर वापस आई और लक्ष्मण से उस मृग को मारने के लिए कहा। लक्ष्मण ने समझाया– वह स्वर्णमृग नहीं, कोई दानव ताक लगा रहा है। मृग को सीता ने अनेक बार चरते देखा और एक नारी के रूप में अपनी परवशता पर बहुत खेद प्रकट किया। लक्ष्मण ने उसको कोई और वस्तु मांगने को कहा किन्तु उसके हठ के कारण अन्त में इसके लिए राम को वन में जाना पड़ा। उन्होंने मृग के बाण मारा।

पडते ही उसने कहा– हे लक्ष्मण! राम मारा गया। यह सुनकर सीता ने लक्ष्मण के समझाने पर भी, उनको राम की सहायतार्थ जाने को बाध्य कर दिया। वे "कार" दे कर चल गए। पीछे से तपस्वी के वेश में आकर रावण ने सीता से भीख मागी। "कार" पर पाट रख कर भीख डालते समय सीता को वह उचक कर ले चला। तभी गरुड ने रावण का रास्ता रोका। सीता ने अनुनय की– यदि तू मुझे छोड दे, तो मेरे स्वामी के गरुड को वापस भेज दू गी, तू सकुशल लका चले जाना, किन्तु वह न माना। सूर्यास्त के समय गिद्धराज आया और उसने युद्ध किया, रावण उसको पख विहीन कर सीता को लका म ले गया (६२ ९८)।

राम वापस आए। सीता को न पाकर वे विलाप करने लगे। लक्ष्मण और हनुमान जी ने उनको बहुत प्रकार से धैर्य बधाया किन्तु राम का दुख कम नहीं हुआ (९९ ११०)।

(सुग्रीव ने राम को सान्त्वना देते हुए कहा–) हे राम! दुखी क्यों होते हो ? क्षण भर म ही सना को आज्ञा देता हूँ, जहा कही भी सीता होगी, ढू ढ लगे। दक्षिण दिशा म सीता का पता लगाने के लिए अगद ने बीडा उठाया। उसके साथ १२ वीर चल और पन्द्रह दिन बाद वे चम्पगिरि पहु चे। आगे अथाह सागर था। अगद के पूछने ही हनुमानजी हर्षपूर्वक सागर–पार जाने के लिए उद्यत होगए और उसे लाँघ कर लका पहु च। वहा पनिहारियो से उन्होने सुना कि राम की पत्नी सीता लका मे लाई गई है तथा लका का नाश होने वाला है (१११–१२१)।

(हनुमानजी द्वारा श्रीराम की 'मू दडी' सीता की गोद मे गिराने पर–) सीता के मन मे अनेक विचार उत्पन्न हुए। बोली– श्रीराम की 'मू दडी' यहा कौन लाया है ? हनुमानजी ने उत्तर दिया– हनुमान। उन्होंने श्रीराम और उनकी सेना के विषय म विस्तार से बताया तथा 'बाडी' के फल खाने की आज्ञा मागी। रावण के बल का उल्लेख करते हुए सीता ने पडे हुए फल ही खाने और लका की ओर पाव न देने की शिक्षा देते हुए आज्ञा दी।

हनुमानजी ने बाग का विध्वस कर दिया तथा अनेक असुरों का सहार किया। पकडे जाने पर उन्होंने स्वय ही अपनी मृत्यु का उपाय– पू छ में सूत लपेट कर आग लगाना बताया। ऐसा ही किया गया। उन्होंने सारी लका जला दी। सीता के पास आकर उनका सन्देश लिया और समुद्र के इस पार आए। राम लक्ष्मण को उन्होंने एतद् विषयक समस्त समाचार कहे।

सीता के "सत" को डिगाने के लिए मन्दोदरी ने कहा– तुमको रावण अपनाएगा। सीता बोली– मिथ्या बात मत करो, सीता के तो रावण बाप है। मन्दोदरी ने ताना मारा– तू ही यदि सती थी तो अपने प्रियतम का साथ क्यो छोडा ? सीता ने उपयुक्त उत्तर दिया– तुमको वैधव्य दिलाने और तेतीस कोटि देवताओ को मुक्त कराने के लिए (१२२ १६८)।

मन्दोदरी ने रावण को अनेक प्रकार से समझाया। वह बहुत क्रुद्ध हुआ, बोला– खाती पीती तो मेरा है और पुकारती है राम, राम। कोई है जो इसका गला घोंट दे ? यदि मैं सीता को ले आया तो तू वैर क्यो करती है ? तेरे जैसी पटरानी और सहस्रो कर सकता हू। लका मुझसे कोई नही छीन सकता (१६९ १८८)।

लक्ष्मणजी ने हनुमानजी और सब वन्दरों को रावण मार कर लंका जीतने और सीता को छुड़ाने की आज्ञा दी। राम ने समुद्र पर पुल बंधवाया। सौ योजन सागर लाँघ कर सेना लंका में आ उतरी। विभीषण राम की शरण आया। उसने फिर रावण को भी समझाया किन्तु वह नहीं माना (१८९-२००)।

(रावण की वहन 'विराही'- वाराही-) किसी पथिक से पीहर का समाचार पूछती है। उसने उत्तर दिया- लंका के चारों घाट अवरुद्ध हैं, लक्ष्मण युद्ध कर रहे हैं। युद्ध सीता के लिए हो रहा है। रावण ने भूल करके लंका खो दी है (२०१-२०६)।

(लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर) राम ने वैद्य को बुलाया। विलाप करते हुए वे कहने लगे- स्त्री के लिए लक्ष्मण जैसा भाई मरवा दिया। हनुमानजी 'जड़ी' लेने के लिए गए और पहाड़ ही उठा कर ले आए। बूटी घिस कर लगाई गई, और लक्ष्मण उठ वैठे हुए (२०७-२१३)।

रावण की सेना में युद्ध का बीड़ा महिरावण ने लिया। वह छल से राम लक्ष्मण को पाताल ले गया। उनको सेना में न पाकर हनुमानजी अत्यन्त चिंतित हुए। पाताल जाकर उन्होंने महिरावण को मारा और राम लक्ष्मण को वापस लाए।

लंका में सर्वत्र वन्दर छा गए। कुम्भकरण से भी कुछ करते न वना। वह राम के वाण से मारा गया। अब लक्ष्मण युद्ध के लिए तैयार हुए। मन्दोदरी वोली-हे रावण! अब तुम्हारी वारी है। उसके प्रधान आकर लक्ष्मण से दया की भीख मांगने लगे किन्तु उन्होंने वाण से रावण को मार दिया।

रावण के मरते ही वन्दी देवगण मुक्त हुए और राम की जयकार होने लगी। विभीषण को लंका का राज्य देकर सीता सहित राम अयोध्या में आए। वहाँ सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। मेहोजी कहते हैं कि अड़सठ तीर्थों में नहाने से जो पुण्य होता है, वह "रामायण" सुनने पर सहज ही मिल जाता है।

रामायण की प्रचलित कथा और इसमें कुछ अन्तर है जिसका उल्लेख नीचे किया जाता है :—

१-अपनी अस्वस्थता में की गई कैकेयी की सेवा से प्रसन्न होकर राजा दशरथ उसको वर मांगने के लिए कहते हैं[1]।

२-राम वनवास के समय अयोध्या में भरत भी मौजूद हैं, राम उन पर रोष भी प्रकट करते हैं[2]।

१-नहेड़ी हुवी नरपती, लागै नहीं इलाज।
कीकहि वारो महळि, लंका छीजंण काज्य ॥ ६ ॥
सेवा कारंण्य सुंदरी, इवको सेयो नाह।
नीद न सोवै निसछले, वैसि पळोया पाव ॥ ७ ॥
ज्यों विस घुट्यो कांमंणी, सुप छल्य सूतो राव।
मांग ज मांगो केकवी, तूठो दसरथ राव ॥ ८ ॥

२-रांम कहै रीसाय, भरथ भली परि वाहड़ो।
महलां उतर्‌या थारी माय, देस निकास्या रहि पड़ो ॥ २२ ॥

३–सीता-स्वयवर का उल्लेख राम-वनवास और दशरथ-मरण के पश्चात् किया गया है ।

४–सीता-स्वयवर के बाद लका मे जाकर रावण भोज को राम के सम्बन्ध में खबर लाने के लिए भेजता है, वह रावण का 'रजपात' ('रजपूत') है[1] ।

५–भोज की काया कुम्हलाई हुई देख कर सीता सहानुभूति दिखाती और उसकी प्रार्थना पर शरण में रखती है[2] ।

६–भोज पचवटी मे रात भर रहता है, वहा सीता का "नख-चख" देखता और वापस आकर रावण को उसके रूप के विषय मे बताता है[3] ।

७–रावण एकाएक सीता की ओर आकर्षित नहीं होना । वह दो प्रकार से उसके रूप-सौन्दर्य के विषय में भोज से पूछता और निश्चय करता है –

(क) अपनी राणियों को दिखा कर[4],

(ख) पटरानी मन्दोदरी की सुन्दरता का वर्णन करके[5] ।

८–रावण सीता के सौन्दर्य से प्रेरित होकर उसका हरण करने की सोचता है[6] ।

९–इस हेतु वह ज्योतिषियों से तथा अपशकुन होने पर भोज से पूछता है। मनोनुकूल उत्तर पाकर ही वह आगे बढ़ता है[7] ।

१–रावण लका जाय करि, भोज गुफ सुणाय ।
वै कुण छा सीता परण्यग्या, खबरि लियावो जाय ।। ३५ ।।
रजपात रावण राव रो, सक विण्य रमैं सिकार ।
आसण्य आयो राम रै, देख्यो मढी दवार ।। ३६ ।।

२–तापस पुहता तरै वन्य, सती रहै उण ठाय ।
काया कुमलाणी थकी, नर तू नहरो काय ।। ३७ ।।
काया दुख छै कामणी, भोज कहै मुख भाषि ।
हू परदेसी पथियो, सती मरण्य मोहि राषि ।। ३८ ।।

३–उपदर चाल्यो उण दिना, रवण्य रह्यो जित राति ।
पचमढी हू चालियो, पोह विगसी परभाति ।। ३९ ।।
नष चष सगळा निरषिया, विध्य सू करै वषाण ।
लक नगर मा उण कह्या, राणी सती तणा सहनाण ।। ४० ।।

४–एकळ वथ असडी हुवै, रन मा तया रहाय ।
लोभारथ ले चालियो, मन सुध महला माहि ।। ४५ ।।
चौसटि सहस अतेवरी, मदोवरि महलेरा ।
इतर्या ऊपरि सा तया, कीरत वषाणं केण्य ।। ४६ ।।

५–कोटे सोहै कागरा, भीते सोहै चीत ।
रावळ देवळ टाल्य कै, काय सराही सीत ? ।। ४७ ।।
सूडा भोज न जाण्यजे, मदोवरि रा मम ।
सुदरि सोहै आगणं, लवी जिसी मलभ ।
पावामर री तीजणी, मान सरोवरि हज ।
सीह वीलुधा साकळे, ज्यों घण हीसैं सफ ।। ५० ।।

६–मीस गयो सुकियारथो, उणि सुदरि अरथाय ।
सीम पपोही सारिस्या, सीत सदं मिर जाय ।। ५५ ।।

७–रावण तेड्या जोयसी, जोयस दिवो विचारि ।
मीत हड्या कायो हुवै, जिया क आवै हारि ।। ५६ ।।

(शेषाश आगे देखें)

१०–राम के रामसर खुदाने, लक्ष्मण, के "पाळ बांधने" और सीता के पानी लाने का उल्लेख है।

११–सर्व प्रथम स्वर्णमृग को सीता वहीं देखती है[1]। मृग मारने संबंधी उसकी प्रार्थना न मानने पर एक नारी के रूप में अपनी विवशता पर वह खेद प्रकट करती है[2]।

१२–वापस आते समय आकाश में रावण का मार्ग पहले गरुड़ अवरुद्ध करता है[3]।

१३–मृग मार कर राम के वापस आने पर पंचवटी में लक्ष्मण के साथ हनुमानजी भी मौजूद हैं। लक्ष्मण के अतिरिक्त हनुमानजी श्री राम को धैर्य बंधाते हुए कहते हैं– सीता गई तो जाने जाने दो, वैसी बीस और ला दूंगा। राम इसका उत्तर भी देते हैं[4]।

१४–राम–सुग्रीव मित्रता या सेना–संगठन का कोई प्रसंग न होकर, एकत्र सेना में राम को (सुग्रीव द्वारा) आश्वस्त किए जाने का उल्लेख है[5]।

१५–अशोक बाग के फल खाने की आज्ञा देते समय सीता द्वारा रावण के बल की बात किए जाने पर हनुमानजी उनको अपने साथ ले चलने का प्रस्ताव करते हैं किन्तु वे कई

जोतग वाचै जोयसी, सरवे लगंन विचारि।
सीत हड़ै तो कळि संवौं, मरै त मोप दवारि॥ ५७॥
अह डावौ पर दांहिवौ, सांम्हौ पुळै सुंनार।
आपां ठगांवां क वांह ठगां, कहि भोजेला विचार॥ ५६॥
सासत सूंण किसौ सौदागर, लाहौ ले विणजारो।
जीपण धरती रहै अपरछन्द, तो नै कुंण छै मारण हारो॥ ६०॥
मारंणहार नहीं को देपूं, जै तूं कही न मारै॥ ६१॥

१–सोवंन मिरघ सरोवरां, सती फिरंतो दीठ।
असड़ा मिरघ न मारही, लपंग कमावै भूठ॥ ६५॥

२–जां नही नासिका, जां किसौ मोड, जां नहीं पीहरो, तां किसौ कोड।
जां नहीं मात, नै जां नहीं तात, कैनै कहूं मधौ, गूभ री वात॥ ७३॥
वाप दै दांन तो मामरा मांन, मामरा मांन जै वाप दै दांन।
त्रिया आभरंग नही पीव किसौ मोह, पेट छालैं प्रथी टेटरा मोह॥ ७४॥
कांय हुवै अति कीध कळाप, पळातर पावै ज पुंन र पाप।
गोवरि न पूजी मैं रुद्र री नारि। मन वंछ्यौ वर दिवै एण्य संसारि॥ ७५॥

३–गुरड़ पंपां घट छावियौ, घरहरियौ असमांण।
रावंण रुघौ वरियां, लंक न लाभै जांण॥ ६३॥
नुंण्य रांवंण सीतां कहै, वाच दिवौ मो वांह।
गुरड़ पलाड्यू म्हारै सांम्य रा, कुसळै लंका जांह॥ ९४॥

४–रांम रोवै लछमंण धीरवै, गणवंत मेल्है चीस।
सीत गई तो जांण दे, अवर अंणाऊं वीस॥ १०२॥
गहला हंणवंत वावळा, तो मन्य किसी जगीस।
सीता नैं सहंस न पूजही, तू र अंणावै वीस॥ १०३॥

५–कांय विदुहौ रांमचंद कांय ज मूक्या मांण।
घड़ी महुरत ताळ मां, आंण दिऊं फुरमांण॥ १११॥ आदि।

कारण बताकर यह स्वीकार नहीं करती[1] । ( )

१६–लका मे हनुमानजी अपनी मृत्यु का उपाय स्वय बताते हैं[2] ।

१७–लका से वापस आकर हनुमानजी अन्य समाचारो के साथ सीता–हरण सम्बन्धी एक भुलावे का उल्लेख भी करते हैं । रावण शंकर के रूप मे डमरू बजाता हुआ आया था, उसके माथे पर मुकुट और गले मे साप थे । सीता ने यह समझा कि वह (शकर रूप धारी रावण) श्री राम के दर्शनार्थ आया है । उस वेश के भुलावे मे सीता आ गई थी[3] ।

१८–सीता को लेकर मन्दोदरी और रावण मे खूब कहा–सुनी हुई । अन्त मे मन्दोदरी ने एक स्वप्न का भी उल्लेख किया जिसमे उसने लक्ष्मण को लका विजय करते देखा था[4] ।

१९–सेना के सागर–पार उतरते ही विभीषण लक्ष्मण की शरण मे आगया, जिन्होंने उसको लका सौंपी । तत्पश्चात् उसने लका जाकर सीता को वापस सौंप देने के लिए रावण को समझाया[5] ।

१–रावण सर्वो न राजवी, लका सर्वो न थान ।
कही पराई जे सुणै, जां सिर नाही कान ।। १३९ ।।
लक उपाडू सू जडा, सायर अबा जाह ।
मारू रावण राजियो, लेजू देपताह ।। १४० ।।
उमति भणीजै तीन्य जग, हूँणवत लछमण राम ।
तीयो आवे बाहरू, ईण्य विध्य पाछी जाव ।। १४१ ।।
बधो न छूटे देवता, रहै न रावण राज ।
सीत हडी किम आणियै, राम रहै किम लाज ? ।। १४२ ।।

२–मोत बतावे वादरो सामत्य राणा राव ।। १४५ ।।
पू छड सूत पळेटि नै, दियो वसदर लाय ।। १४६ ।।

३–माथै मुगट सुहावणो पैठो हिरू वाय ।।
राणी रावण ले गयो, लक नगर रो राय ।। १६३ ।।
गल्य ईसर का आभरण, परमेसर कै भाति ।
सीता दरसण भोळवी, जाण्यो आयो श्री रघनाथ ।। १६४ ।।

४–सदक सूती सुहिणो लाधो, लका लापण आयो ।
लापण आयो लका लीवी, सायर सेत बधायो ।। १८५ ।।
जिणरी आण माने सो कोई जिण सू वाद न कीज ।
कहै मदोवरि सुण हो रावण, लक नगर गढ लीजै ।। १८६ ।।
जुग छत्तीसू सूझै रावण, अठोतरि कुळ जाणै ।
सुर तेतीसा जू जू करता बैसे आय पगाण ।। १८७ ।।

५–वीभीषण आय विळगो पाए, लापण लका दीवी ।
आप तणो जन ओळख आपे पाछे लका लीवी ।। १९४ ।।
कहै बभीषण सुण हो रावण, थिर रावत घण सूरा ।
बेल्हा थल्हा बे तेडावो, बात करो मण वीरा ।। १९५ ।।
सीता छोह अर राम मनावो, मेल्हो साहस धीरा ।। १९६ ।।
कहै ज रावण सुण बभीषण सिर सू सीता देस्यौं ।
लाप पाजा काम न सरसी महरावण रथ लेस्यौं ।। १९७ ।।

(२०) युद्ध-समय में (रावण की) बहन विराही (वाराही) किसी पथिक से अपने पीहर के समाचार पूछती है और वह बताता है[1] ।

(२१) महिरावण ने 'ठगमूली' से राम-लक्ष्मण का हरण किया, तब हनुमानजी पाताल से उनका उद्धार कर वापस लाए[2] ।

(२२) लक्ष्मण को युद्धार्थ उद्यत हुए देख कर मन्दोदरी रावण को सावधान करती है, रावण के प्रधान लक्ष्मण से उस पर दया करने की प्रार्थना भी करते हैं[3] ।

(२३) जैन रामायण की भांति लक्ष्मण रावण को मारते हैं[4] ।

रामायण एक सांगोपांग सफल आख्यान काव्य है, श्रेष्ठ आख्यान-काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। विक्रम सोलहवीं शताब्दी के राजस्थानी साहित्य की यह तीसरी महत्त्वपूर्ण आख्यान-काव्य कृति और रामचरित सम्बन्धी अपने ढंग की पहली रचना है। विष्णोई-आख्यानों में इससे पूर्व रचित काव्य हैं-डेल्ह कृत कथा ग्रहमंनी और पदम भगत कृत हरजी रो व्यांवलो[5] । रामचरित सम्बन्धी इससे पूर्व की जो कृतियां मिलती हैं, वे मारु-गुर्जर की रचनाएं हैं । विषय-वस्तु, काव्यरूप, भाषा-शैली, उद्देश्य, रोचकता, काव्योत्कृष्टता और तत्कालीन मरुदेशीय समाज-चित्रण की दृष्टि से यह राजस्थानी की एक विशिष्ट कृति है। सामूहिक एवं पृथक्-पृथक् रूप से एतद् विषयक परम्परा में यह गौरवपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।

१-पूछै बहंण विराही रे पंथिया, कंवण भोम्य सूं आयो ?
कहे पीहर री कुसळात ॥ २०१ ॥
पीहर री कुसळात वात, वीर वेष वन्य पाधी।
अठोतरिसै बहनां हुंती, काळी कायर गाढी।
कहे नै रे वीरा पंथी वात ॥ २०२ ॥
लछमंण गुंणे पठायो, पूछै बहंण बीराही रे।
पंथिया, कंवण भोम्य सूं आयो ॥ २०३ ॥
लंक नगर हीलोहळी रुवा च्यार्‌यो घाट ॥ २०४ ॥
रुवा च्यारि घाट हे बंहंणों, ढोल दमांमा वाजै।
लछमंण बांण असी परि छूटै, जांणे इंद गराजै ॥ २०५ ॥
असी जोयण सी ऊंची लंका, संमंद सरीषी खाई।
सीतां काजै वग्रह मांतो, भूलै लंक गुमाई ॥ २०६ ॥
२-महरांवंण लंक सूं नीसर्‌यो, कोई अवर न लीयो साथि।
ठग मूळी महरांवंण, दीन्ही रांमै हाथि ॥ २१६ ॥
हंणवत मरु कळाइयां, तैं लाधी जळ सोर।
पंनि पयाळै जुध कियो, दैंत मल्या करि जोर ॥ २२७ ॥
३-लछमंण बांण संजोवियो, तांण्य र हुवो तियार।
बोली मुंध मंदोवरी, दैमिर थारी वार ॥ २४६ ॥
दैमिर दोटा मेल्हिया, पुळि आया परधांन।
दया करो थे देवजी, करता संभल्य कांन्य ॥ २४७ ॥
४-गहली मुंध मंदोवरी, रही नै झाले हाथ।
कांण्य लापंण छेदिया, तिहुं लोकां रे नाथ ॥ २५३ ॥
५-इन दोनों के विषय में "विष्णोई साहित्य" के अन्तर्गत अन्यत्र लिखा गया है।

इसके प्रायः सभी पात्रों में सहज मानवीय भावनाओं की धड़कनें सुनाई देती हैं। पात्र अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होने हुए भी इस लोक के प्राणी विदित होते हैं। परिस्थिति-विशेष मे जैसी और जिस सुख-दुख की अनुभूति और अभिव्यक्ति जनसाधारण करता है, वैसी और उसी प्रकार की इसके पात्र भी करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-

(क) मृग मारन की प्रार्थना स्वीकार न किए जाने पर सीता अपनी दशा पर खेद प्रकट करती है। इसमे जिस विवशता, आक्रोश, मनुहार और दयनीयता का चित्रण किया गया है, वह किसी भी नारी पर लागू हो सकता है। एतद विषयक तीन छन्द पहले दिये जा चुके हैं (देखें-'कथा में अन्तर', संख्या ११ के उद्धरण) दो ये हैं -)

ये जाणो नीठाहडी जायसी पेय्। म्हे जळ जोगणी जाया कुरखेत।
म्हे मसवासणी चडां कवळास। मो नहीं कायवो नां हूं थारं-पास्य।। ७८ ।।
क्यों चडं सांमहा पाणियां देह। मो सती भाखियो लोहड लोह।
कहियो करेस्यो न करो नाटि। कह्यो छं जोय पटोलडी गांठि।। ७९ ।।

(ख) रावण की बहन विराही के प्रश्न और पथिक के उत्तर में एक अन्य उदाहरण मिलता है। बहन अपने पीहर का कुशल-क्षेम पूछती ही है किन्तु किसी विशेष संकट के समय तो उसकी एतद विषयक उत्कंठा और व्याकुलता का घनीभूत होना बहुत स्वाभाविक है। कवि ने इस नवीन प्रसंग के द्वारा न केवल सहज मानवीय भावनाओं को ही मुखरित किया है प्रत्युत लंका मे हो रहे कार्य-व्यापार और उसके परिणामों को भी संक्षेप मे संवाद रूप मे बता दिया है (देखें-'कथा मे अन्तर' संख्या ११ के उद्धरण)।

(ग) सीता वियोग मे श्री राम का करुणा-पूरित उद्गार भी ऐसा ही है, जिसकी मुख्य विशेषता है-लोक-प्रचलित उक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्ति। सम्बन्धित छन्द ये हैं -

क्यों वीसरं दान क्यों वीसरं मांन।
क्यों वीसरं जुगति सूं जीमियो धांन।
क्यों वीसरं साप नं सीस रो घाव।
क्यों वीसरं वैरियां जदि पडं दाव।। १०८ ।।
नींबोलडी चूसियां क्यों वीसरं दाख।
चदण क्यों वीसरं घट मळी राख।
काबळ[1] ओढ्या क्यों वीसरं चीर।
सीत क्यों वीसरं लाखणी वीर ?।। १०९ ।।
न वीसरं मात पित्र तणो नांव।
न वीसरं नगर अजोधिया गाव[2]।
खाडोपीय गात नाळेरीय सीस।
हंसि दीवाळं राणी दांत बत्तीस।। ११० ।।

१-प्रति १५२ म-"भाकला" पाठान्तर है।
२-प्रति १५२ मे इस पंक्ति के स्थान पर यह पंक्ति है '-
" न वीसरं बाळपणे खेलिया खेल न वीसरं नवल सजोवनी नेह"।

यह नाटकीय गुणों से युक्त संवाद-प्रधान रचना है। प्रमुख संवाद निम्नलिखित हैं:-

१-दशरथ-कैकेयी (८-१३)।
२-सीता-भोज (३७, ३८)।
३-भोज-रावण (४१-४४, ४६-५३)।
४-रावण-ज्योतिषी (५६, ५७)।
रावण-भोज (५९-६१)।
५-सीता-लक्ष्मण (मृग-हेतु) (६८-७०, ७७-७९)।
सीता-लक्ष्मण (राम की सहायतार्थ) (८३-८८)।
६-सीता-रावण, हरण-समय (८९-९१, ९४-९६)।
७-राम-लक्ष्मण, राम-हनुमान (९९-१०४)।
८-अंगद-हनुमान (११७, ११८)।
९-हनुमान-सीता (१२३-१४२, १५६-१५८)।
१०-लक्ष्मण-हनुमान (१६१-१६४)।
११-मन्दोदरी-सीता (१६५-१६८)।
१२-मन्दोदरी-रावण (१६९-१८८)।
१३-विभीषण-रावण (१९५-२००)।
१४-विरही और पथिक (२०१-२०६)।

सभी संवाद अत्यन्त सटीक, प्रसंगानुकूल, प्रभावपूर्ण और कथा को आगे बढ़ाने वाले हैं; चरित्र-विशेष का चित्रण उनसे स्वतः ही हो जाता है। श्रोता और पाठक को वे सम्बन्धित वस्तुस्थिति से भी भली प्रकार अवगत करा देते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :-

(क) मन्दोदरी और सीता के इस संवाद में उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत ही सटीक और तर्कपूर्ण हैं :-

मंदोवरी महलां ऊतरै, सीतां सत भोळांवंण।
आई वाग मंदोवरी, सीतां करिसी रांवंण ॥ १६५ ॥
अळ्यो मं चवै मंदोवरी, अळियै लागै पाप।
सी रांवंण कियो न कोजिसी, सी कै रांवंण बाप ॥ १६६ ॥
जांहरा म्हे सीवरंण करां, नितरा करां अवाम।
सीतां सती कहांवती, क्यों छोड्यो पीव पास ? ॥ १६७ ॥
क्यों भेळीजै त्रकट गढ, क्यों तूटै दसवीस।
तो नै दीण रंडेपड़ो, छोडांवंण तेतीस ॥ १६८ ॥

(ख) ऐसा ही संवाद मन्दोदरी और रावण का है। अपने पति को बचाने के हेतु मन्दोदरी तर्कपूर्ण ढंग से समझाती है। अहंकार और हठवश रावण समझता है कि उसकी सहानुभूति राम की ओर है तथा वह सीता के कारण ईर्ष्यावश ऐसा कहती है। परिस्थिति के सन्दर्भ में इस संवाद में अत्यन्त स्वाभाविकता है। कतिपय छन्द ये हैं :—

अकलि गई मति हडि हो रांवण, वन खंड चोर पहुंतो ।
पासे जांतो माहे सीयो, जवर जगायो सूतो ॥ १६९ ॥
रळी करो थे पूजा रचावो, सूतो काळ जगायो ।
वन खड री सतवंती सीतां, रावण ले घरि आयो ॥ १७० ॥
जपियेलो लखंण कंवार, सुरनर सेन्य चलायसी ।
तोलैलो घर असमांण, अंनव्या कंध नुवावेसी ॥ १७२ ॥
कहै त बंधु सेण हकारूं, कोट गडां का राजा ।
जोगी जंगम सह चुग मारूं, एक न मेल्हूं साजा ॥ १७४ ॥
थारै तेन तिरै जळ पाहण, दिवळै जगै ज पाणी ।
जास तंणी तैं कार न लोपी, तास घरंणि क्यों आंणी ? ॥ १७५ ॥
वडि विण वाद न कीजै रांणा, अयघ न पैसै पांणी ।
राज गयो रांडेपो आयो, भंणै मंदोवरी रांणी ॥ १७६ ॥
थारै - लछमण रांम भंणीजै, म्हारै कुंभकरंनो ।
जिण रै पेटि समावै सायर, कांपै पांणी अंनो ॥ १७७ ॥
जितरो तेज पुंवंण अर पांणी, अतरो गणो भणीजै ।
जितरो तेज दहूं दळ मांहैं, अतरो रांघो दीजै ॥ १७९ ॥
च्यारे चक अर तेहूं भलोके, सुरगि पयाळ भंणीजै ।
अतरो तो लाखंण पंतावै, लाखंण अंत न लीजै ॥ १८० ॥
उचश्य मेर ने ऊपरि रेडै, थांमां कंवंण अधारै ?
कहै मदोवरि सुंण हो रावण, कोप्यो लाखण मारै ॥ १८१ ॥
खाय पीय विलसै धन मेरो, रामै राम पुकारै ।
है कोई इण्य लंक नगर मा, तया गळो दे मारै ? ॥ १८२ ॥
अळियो चवं मदोवरि राणी, वात किसो मन्य सुधो ।
जे मैं आणी सीता राणी, तूं क्यों वैर वोलुधो ? ॥ १८३ ॥
तैं सारीखी पाटमदे राणी, सहस करूंलो औरे ।
जोगी जगम सह चुग्य मारूं, काढूं देसोटो रे ॥ १८४ ॥

(ग) 'मूंदड़ी' गिराने पर हनुमान–सीता सवाद मे सीता के मन मे उठने वाले सकल्प-विकल्प का भी पता चलता है । उल्लेखनीय है कि हनुमानजी के उत्तर सीता के प्रश्नो से सीधे सबंधित और सक्षिप्त हैं । उनके उत्तर मे सीता के शब्दों की पुनरावृत्ति भी द्रष्टव्य है :—

कै मुवो कै मारियो, कै सुपनै आयो साम्य ।
श्री रांम रो मूंदड़ो, कुंण रंन मां ल्यायो रांम ॥ १२३ ॥
न मुवो न मारियो, न सुपनै आयो साम्य ।
श्री रांम रो मूंदडो, ल्यायो छै हंणोमांन ॥ १२४ ॥
घड़िय न ढोली मेल्हता, मेल्हि न करता कांम ।
लछमंण अजूं न आवियो, ताता खोजा रांम ॥ १२५ ।

सूर तपंतो फीरि फरै, जसते नजत रहांय ।
अवर न परणै रांमचंद, जब लग काइ वसांय ॥ १२८ ॥
आडा डूंगर वीसवंण, वीच माछला गयंद ।
सीत कहै रे वंदरा, किण्य विध्य लोपियो समंद ? ॥ १२९ ॥
सत सिवर्यो सीतां तणो, लछमंण तणो ज वांण ॥
श्री रांम रो मूंदड़ो, क्यों र भुजा रो पांण ! । १३० ॥
सीतां मंन्य आंणंद हुवो, कांन्य सुंणी कुसलात ।
कितरा सांवंत रांम रै, कितरो राघव साथ ? ॥ १३१ ॥
तेतीस फोड़ी देवता, अरि गंजंण अरि मोड़ ।
श्री रांम रै साथ मां, वांदर छपंन करोड़ ॥ १३२ ॥

संवादों के पश्चात् कथा में गौण स्थान विभिन्न वर्णनों का है। वर्णन बहुत ही संक्षिप्त हैं और कहीं-कहीं तो वे उल्लेख-मात्र जान पड़ते हैं, तथापि जो भी हैं वे संदर्भ, कथा-प्रवाह और प्रभावान्विति के लिए आवश्यक हैं। ये दो प्रकार के हैं :—एक तो वे जो पात्र-विशेष की परिस्थितिजन्य मनोदशा को प्रकट करते हैं तथा दूसरे वे जो वस्तु, परिस्थिति घटना आदि का चित्रण करते हैं। पहले प्रकार के अन्तर्गत दशरथ, सीता और राम[1] की मनोभावना प्रकट करने वाले स्थलों की गणना की जा सकती है। दूसरे प्रकार के मुख्य वर्णनों में अयोध्या, सीता–स्वयंवर, वन मे राम, सीता, लक्ष्मण के कार्य, लंका–दहन और युद्ध आदि के प्रसंगों को लिया जा सकता है। युद्ध का प्रभावशाली वर्णन तो कवि ने लोक-प्रचलित और घरेलू उपमाओं के सहारे किया है। कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं :—

रांम पठाया वंदर धाया, वंदर लंक पहुंता ।
तोड़ै हाट उपाड़ै मैड़ी, भांनै रथ संजुता ॥ २३३ ॥
अंन धंन लिछमी घूड़ रळावैं, करै भंडार 'स रीता ।
लंक नगर मां ताळी वाजी, देखि ज वंदर कीता ॥ २३४ ॥
बादळ दीसै वरसंणां, गहरी सुंणियै गाज ।
देव दांणो धुव मंडियो, कूंण छुड़ावै आज ॥ २४१ ॥
सूर विढै अंग पालटै, सूरा दीसै सूप ।
पड़नाळे पांणी वहै, राता रूप सरूप ॥ २४२ ॥
चौपट मांडी चौहटै, छिन मां लीवी उतारि ।
श्री रांम रै वांण सूं, कुंभकरंण री हारि ॥ २४३ ॥

1—दसरथ हुवै तो जांगजै, कै मरथि भाजै भीड़ ।
अजोध्या अळगी रही, अब कुंण पैसै पीड़ ॥ २०९ ॥
त्रिया ज हाटि वेसाहिंगी, दिनां च्यारि को सीर ।
तिण्य रै कारंण मारियो, आपंण सरसो वीर ॥ २१० ॥
हंणवंत अर्जुन आवियो, गयो ज मूळी लीग ।
काज पराया सीवळा, जां दुपै जां पीड़ ॥ २११ ॥

सोवंन लंक खळो करि गाहियं,-दंढोल्यो असमांणो ।
कहे मेहा रिण मूझ्यो रांघौ, घण ज्यों वूठा बांणो ॥ २५९ ॥

कहो-कही कार्य-व्यापार और वर्णन की त्वरा का बड़े ही सुन्दर रूप मे चित्रण किया गया है। ऐसे स्थलों पर अनुरूप शब्द-चयन भी दर्शनीय है। प्रतीत होता है मानो कथन या विचार के ठीक साथ-साथ ही कार्य घटित हो रहे हो। इस सम्बन्ध मे दो उदाहरण पर्याप्त होगे। पहला हनुमानजी के लका जाने और दूसरा पाताल मे महिरावण को मारने से सबधित है।

(क) जळ पियो चंपगिर चढ्या, सायर अथघ अथाय
अंगद कहै रे बंनचरां, कूण तिरै जळ मांहि ? ॥ ११७ ॥
हंम हंम हम हणवत हरखियो, कहिसूं कियो किळाव ।
हंणववत सायर कूदियो, जाणे आभ बीज सळाह ॥ ११८ ॥
कूद्यो जोध जुगति सूं, सुरनर सीस नमीठ ।
जोण्य पलेरू अंबरा, लंका आय बइठ ॥ १२० ॥

(ख) करो सिनांन सिनांनी हुंता, एक खड्ग दोय तोडं ।
माळा देई रे मढ आंगी, ले ले मुंड चहोडं ॥ २२३ ॥
पडपच करि करि पींड छलता, न को तंत न मंतो ।
लछमण तो रामचंदजी सिवर्यो, राम सिवर्यो हणवंतो ॥ २२४ ॥
मड महरावण खड्ग उभार्यो, वैथि गणौ दाकळियो ।
हाथा खड्ग पड्यो महरावण, पड़हा पड़ि पड़हड़ियो ॥ २२५ ॥
महरावंण की भुजा उपाडी, गंणौ पराक्रंम कीयो ।
रोवं माय मुवं महरावण, गड भीतरलो लीयो ॥ २२६ ॥

रचना मे राजस्थानी वातावरण की छाप है। यहाँ तक कि भोज रावण से अपने देखे हुए जिन स्थानो का उल्लेख करता है, वे राजस्थान और उसके आसपास के ही हैं[1]।

ध्यातव्य है कि वन मे राम, लक्ष्मण और सीता—सभी कार्यरत हैं। राम तालाव खुदवाते, लक्ष्मण उसकी "पाळ" बाधते और सीता सिर पर घडा रखे पानी लाती है। खडी बोली के प्रबन्ध-काव्यों मे वर्णित पौराणिक चरित्रों मे नवीन भावनाओं तथा उनके कार्यों की बुद्धि-सम्मत, तर्कसगत एवं वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई देखकर जो आलोचक इसे उनके कवियो की नई सूझ-बूझ बताया करते हैं, उन्हें इस रामायण के संदर्भ में अपने कथन पर पुनर्विचार करना चाहिए। कवि का कथन है :—

राम खंणावं रामसर, लछमण बंधे पाळि ।
सोरि सोनै रो बेहडो, सीता पांणीहारि ॥ ६२ ॥

१–सिध सुवालप पोकरण, मारू-ताह वचीत ।
तया सिरि सीता सया, ज्यों नपता सिरि मादीत ॥ ५२ ॥

हाथि कटोरो सीरि घड़ो, सीता पांणी जाय ।
चंपो मरवो केवड़ो, सोचैं छै वंणराय ॥ ६४ ॥
सोवन मिरघ सरोवरा, निरख्यो नजरि निहाल्य ।
छाले घड़ो ज्यों वाहड़ी, आई मिरघो भाल्य ॥ ६६ ॥

कवि ने अपना विशेष ध्यान मूल-कथा पर ही रखा है, इतर प्रसंगों या वर्णनों में वह नहीं गया । अत्यन्त संक्षेप में वह मोटी-मोटी बातों का अनेकविध उल्लेख करता गया है । कथा-प्रसंग, छन्द-विधान और राग-रागिनियों का चयन, आख्यान काव्य के संदर्भ में उसकी प्रबन्ध-शक्ति का परिचायक है । इनसे यह भी पता लगता है कि वह लोक-रुचि का पारखी और लोकमानस का मर्मी था । रामायण ने मरुदेशीय समाज को एक सांस्कृतिक पीठिका प्रदान की और जनमनरंजन के साथ जनरुचि-परिष्कार और उदात्त गुण-ग्रहण का महनीय कार्य किया ।

इसमें मरुप्रदेश की सोलहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की लोकभाषा का बड़ा सही रूप सुरक्षित है । इसके लिए इसका आख्यान काव्य होना ही पर्याप्त है । कवि के "समझावै" और "सुणो" (पढियां ने मेहो समझावै, सुंणो रामायण कांनै) शब्दों से यही प्रतीत होता है । इसमें प्रयुक्त अनेक लोकप्रिय और प्रचलित उक्तियों, कथनों और मुहावरों के व्यापक प्रयोग से भी इसकी सार्थकता सिद्ध होती है । कहना न होगा कि ऐसे प्रयोग आज भी यहां उतने ही प्रचलित हैं । इस प्रकार तत्कालीन भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लिए यह रचना बहुमूल्य और प्रामाणिक सामग्री प्रदान करती है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

थूक्यां पाछै कुंण गिळै जे लाखीणो थूक (१४) ।
आणंद मंगल गाव्यजै, वाजै विरध वधाव (३२) ।
मंडहा मेळ ज वीखरी (३४) ।
कूड़ा करो टफांण (६८) ।
उठि अरि भाघो जाह (८७) ।
तूं बांभंण हूं गाय (९६) ।
कंवळां काग वइठ (१००) ।
पहलू मारं पुरेख नै साय्य सती पंण्य होय; तया भरोसो जंन करो (१०७) ।
वरती ऊपरि आभ तल्य, अती न देस्यों जांण (११२) ।
दिखणी वीड़ो दोहरो, सूर रह्या मुख मोड़ि (११३) ।
पोह विण्य पूरी न पड़ं, पग विण्य पंथ न होय (१२७) ।
भाई सदा चितारज्यें, भाइयां भाजै भीड़ (१३२) ।
रुति न वूठा मेह (१३५) ।
अवसे टळै वलाय (१४७) ।
कंचण काळी होय; पड़दां रहंती पदमंणी, परगट दीठां होय (१५१) ।
भव भव बोलै वासदे (१५२) ।

धारी मूरति मै धनकार (१५८)।
राम नाम गिर तिरिया (१६३)।
घाट घडे छळ बळ सह जाऐं, भलस न पूजै कोई (२००)।
साबेत एक न मेलहूं (२१५)।
सारूं असरया कामो, मुंह की मागी दिऊ बधाई (२२०)।
पडी पयाळे घाडि (२२८)।
घरि घरि हुई कडाही, फिरी रांम दुहाई (२३५)।
सत सीता जत लखमणा, सबळाई हणवत (२५१)।
मडा री भादे वडाई (२५७)।
तोडि गळा सू राल्यौ (२५८) आदि।

कृष्ण-रुक्मिणी प्रसग को लेकर लगभग सवत् १५४५ मे सुप्रसिद्ध विष्णोई कवि पदम भगत ने "हरजी रो ब्यावलो" नामक आख्यान काव्य की रचना की थी। इसके बीस साल बाद रामचरित पर मेहोजी ने यह उसी प्रकार का काव्य प्रदान किया। इस प्रकार, कृष्ण और राम, मध्ययुग के सर्वाधिक मान्य अवतारो पर लोकप्रिय आख्यानों की रचना कर इन दोनो कवियो ने न केवल राजस्थानी साहित्य के ही प्रत्युत हिन्दी साहित्य के भी एक वडे अभाव की पूर्ति की। इन दोनो काव्यो की पृष्ठभूमि पर किया गया हिन्दी और राजस्थानी के परवर्ती राम और कृष्ण चरित सम्बन्धी काव्यो का मूल्यांकन ही समुचित कहा जायगा।

५१. रहमतजी : (विक्रम सवत् १५५०-१६२५) :

ये रौळ (नागौर) के एकान्तवासी मुसलमान विष्णोई साधु थे। इनका समय उपर्युक्त अनुमित है।

इनका ५ दोहो का एक हरजस-"रळ मिळ करं है अचार हेली, आयौ घर हो पुंवार कै" की टेकवाला प्राप्त हुआ है (प्रति सख्या ४८ मे)। इसमे जाम्भोजी के अवतार, अवतार का कारण, उनके गुण और महिमा का भक्ति-भाव भरा वर्णन है। उल्लेखनीय है कि कवि ने जाम्भोजी को विष्णु ही माना है। प्रसिद्धि को देखते हुए इनकी और रचनाएँ होने का भी अनुमान होता है। उदाहरणार्थ अन्तिम ४ छन्द द्रष्टव्य हैं —

घर घर हो सों नीसरो रे हेली सुप देषण सुंवार।
सोरभ अत ही सुहावणो झरे न दसों द्वार ॥ २ ॥
निगम नेत जस गावहो रे हेली सेस सहस फण सार।
सिव ब्रह्मादिक षोजतां विसन तणों नहीं पार ॥ ३ ॥
इंद्र सहत सर्व देवता आए करण जुहार रे हेली।
चरण प्रस्या जो स्वांम का गावै मंगळचार ॥ ४ ॥

पहराजा के कारण रे हेली संभरयळ अवतार।
जन रहमत की वीनती जंभ गरु अवतार ॥ ५ ॥

५२. गुणदास : (संवत् १५६०–१६४०) :

इनकी १३ पंक्तियों की एक "कणां की" साखी उपलब्ध होती है[1]। इससे प्रतीत होता है कि ये समय-विशेष के लिए जाम्भोजी के समकालीन और उनके पश्चात् भी मौजूद रहे थे। इस दृष्टि से ये संधिकालीन कवि हैं। अनुमानतः इनका समय ऊपर लिखित माना जा सकता है।

साखी में गुरु-भाइयों और 'जमातियों' से आपस में मिलने, मिलकर पारस्परिक भेद-भाव दूर करने, जाम्भोजी की महिमा, उनके उपदेश-पालन तथा आवागमन से मुक्ति पाने का वर्णन है। यह नीचे दी जाती है :—

जी हो मिलो हो जमाती अर गुर भाई, जां मिलियां दिल खुल्है ॥ १ ॥
खुल्है स खुल्है म्हांरो सतगुर वोले, दिळ ताळा दिळ खुल्है ॥ २ ॥
टांके तोळो रतिये मासो, तुळ चढ़ि आप कसावै ॥ ३ ॥
वड सौदागर झांभराज लाह चढ़ियो, हीरा लाल विसाहै ॥ ४ ॥
दसवंद खरचो गुर को कवळ संभाळो, ज्यो साहिब क मंन्य भावै ॥ ५ ॥
हूर क सुर मिलै मन मानीं, उत पायळ को डर चावो ॥ ६ ॥
सुर तेतीसां झांभराय मेळै, नूरे नूर मिलावो ॥ ७ ॥
हवद सरोवर को म्हांनै इधक उमाहो, नित हवद सरोवर न्हावो ॥ ८ ॥
रतंन कया मिलै नवरंगी, वोहड़ि न इण खंडि आवो ॥ ९ ॥
गढ तेतीसां म्हारो वास करावो, पाटो अंमर लिखावो ॥ १० ॥
संभरयळि सतगुर परगास्यो, कथि केवळ ग्यांन सुणायो ॥ ११ ॥
हंम गुनही गुर म्हारो पूरो दाता, म्हारा गुन्हां माफ करावो ॥ १२ ॥
गति परमोधि गुणदास बोलै, आवागवणि चुकावो ॥ १३ ॥

साखी बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित रही है। इसके आकर्षण का प्रधान कारण यह है कि इसमें जाम्भोजी की विद्यमानता तथा उनके पश्चात्– दोनों कालों की साम्प्रदायिक दशाओं के भावपूर्ण संकेत मिलते हैं। इन दोनों का ही प्रत्यक्ष-द्रष्टा होने से कवि के कथन विश्वसनीय, सहज-ग्राह्य और प्रभावशाली हैं। दूसरा कारण कवि की निश्छलता है जो बारहवीं पंक्ति में ध्वनित है। इससे जाम्भोजी के पश्चात् बिखरती हुई साम्प्रदायिक स्थिति का भी भान होता है। दूसरी पंक्ति की अंतिम अर्द्धाली पर सबदवाणी (८४ : ३) का प्रभाव प्रतीत होता है।

१–प्रति संख्या ७६; ९३; ९४; १४१; १४२; १५२; १६१; २०१; २१३; २१५; २५३; २८९; ३२१। उदाहरण प्रति संख्या २०१ से।

५३. लाखू (लाखाराम) : (संवत् १५६०-१६५०) :

ये मारवाड के हजूरी गृहस्थ बिश्नोई थे। इनका समय उपर्युक्त, अनुमित है।

राग 'सिंधु' मे गेय इनकी १६ छन्दों की एक साखी प्राप्त हुई है[1] जिसमे भविष्य मे होने वाले कल्कि अवतार, उसकी सेना, विजय और तदुपरान्त वसुधा के साथ विवाह तथा सत्ययुग की स्थापना का वर्णन है[2]।

उल्लेखनीय है कि कवि ने कल्कि का कलियुग के साथ युद्ध-वर्णन न करके तद् हेतु उसकी सेना, सज्जा तथा युद्ध से पूर्व और विजयोपरान्त स्थिति का ही विशेष वर्णन किया है। उसकी इस सेना मे प्रायः सभी देवता, सिद्ध-पुरुष और पूर्व में हुए अवतार सम्मिलित होंगे। दूसरी बात युद्ध की मर्यादा से सबंधित है। कल्कि अपने लोगों को उनकी जोडी के शत्रुओं के साथ युद्ध करने को प्रेरित करेंगे। तीसरे, कल्कि की विजय के साथ ही तेतीस कोटि जीवो का उद्धार हो जाएगा और भगवान के प्रह्लाद को दिए हुए वचनों की पूर्ति होगी।

सम्प्रदाय मे यह "अगम की साखी" नाम से प्रसिद्ध है जो वर्ण्य-विषय की दृष्टि से उचित ही है। कल्कि-अवतार से सम्बन्धित रचनाओं में इसका विशेष महत्त्व है।

उदाहरण के लिए ये छन्द द्रष्टव्य हैं :—

जोडो कालिंग साथि, विसंन रचावेंलो, उतपति धुंधुकार, पुवण चलावेंलो ॥ १ ॥
सींसे किरणे सूर, फेर तपावेंलो, सरण रहिस्यं साध, असरो दझावेंलो ॥ २ ॥
ढुळ ढुळ होय असवार, तमंचय मचावेंलो खडग लिधारो हाथि, विसन संमाहेंलो ॥ ४ ॥
सेन्या पदम अठार, रायव आवेंलो, जादम छपन करोडि, कन्हइ आवेंलो ॥ ६ ॥
तीन्य लोक तत सार, आंणि मिलावेंलो, वाजे जांगी ढोल, निसांण घुरावेंलो ॥ ११ ॥
आप आपणी जोट, आंणि भिडावेंलो, तीर काळग को तोड़ि, धरणि ढुलावेंलो ॥ १२ ॥
साधां आणंद होय, कोड रचावेंलो, मिलें तेतीसूं कोडि, पहळाद वधावेंलो ॥ १५ ॥

५४. कवि - अज्ञात : छप्पय (रचनाकाल-संवत्-१५९६-९७) :

परमानदजी वणियाळ ने प्रति संख्या २०१ में 'साका' (फोलियो-५४६-४७) के अन्तर्गत जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय, मुकाम-मन्दिर और कतिपय कवियों सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएं देते हुए लिखा है कि संवत् १६०६ की आसोज बदि १४ को मुहम्मदखा नागोरी और राव जैतसी बीकानेरिया मुकाम-मन्दिर पर आए, उसकी प्रदक्षिणा की, चढावा किया और अन्दर गए। कहने लगे- जाम्भोजी की जगह बडी जगह है। तब साथ

१-प्रति संख्या ६४, १४१, १४२; १९१, २०१। प्रथम प्रति में इसको राग "सूहव" मे गेय बताया है। उदाहरण प्रति २०१ से।

२-कळि उथपि तिण बार, सतजुग रचावेंलो। बोलें लाखू पात, आगिम गावेंलो ॥ १६ ॥

के एक राजपूत ने यह दोहा कहा:[1] —

छाया खोज न दीसतो, सोह हुंतो जिणरो कह्यो।
खुध्या तिस नींद न व्यापती, यांहरो झांभोहु पणि मर गयो ॥

इसको सुनकर प्रतिक्रिया स्वरूप वहां उपस्थित किसी धर्मप्रिय विष्णोई ने प्रस्तुत छप्पय कहा :—

अजूं गंग जळ वहै, अजूं छलियो रंणायर।
अजूं मेर नहीं टर्यो, अंजू रवि तपै दिणायर।
अजूं चंद आकासि, अजूं घंण पवंण फरकै।
अजूं ऋख[2] रिख वंनि यसै, अजूं कपूर महकै।
तीन लोक चवदै भुवंण, चंदन मुखि जग जस भयो।
संसार करंन अछै अभै, मं कहि मं कहि झंभो मुयो ॥

छप्पय में "झांभोहु पणि मर गयो" का घोर प्रतिवाद तो है ही, साथ ही कवि की निर्भीकता, स्पष्टवादिता, प्रत्युत्पन्नमति और जाम्भोजी को सर्व-शक्तिमान, अजर-अमर मानने का दृढ़ विश्वास और असीम आस्था भी प्रकट होती है। स्मरणीय है कि ऐसे कवियों की इस प्रकार की सुदृढ़ भावनाओं के कारण ही सम्प्रदाय मे विघटन नहीं हुआ और एकता तथा एकरूपता बनी रही।

उपर्युक्त छप्पय की तत्काल प्रतिक्रिया यह हुई कि दोनों ने इसमें कथित बात की सत्यता जानने के लिए "तावूत" खोल कर जाम्भोजी को प्रत्यक्ष में देखने का आग्रह किया। परमानंदजी के अनुसार, इस पर विष्णोइयों ने प्रतिवाद किया और चौदस के दिन झगड़ा रहा। उस दिन रात्रि को नाल्हाजी (निहालदास चोटिया जाट) नामक विष्णोई को सोते समय यह वाणी सुनाई दी-'यदि ये खोलें तो खोलने देना, रोकना मत। इनको निश्चय दिलायेंगे'। दूसरे दिन तावूत खोलने पर जाम्भोजी के माथे पर 'पसीने के मोती' और हाथ में "जपमाळी" फिरती देखकर बोले-"दूसरों के सबद तो सच्चे हैं, पर शरीर नहीं, किन्तु जाम्भोजी के सबद और शरीर दोनों ही सच्चे हैं"। उनको अपनी इस करनी पर घोर पश्चात्ताप भी हुआ[3]।

१-"संमत १६०६ असोज वदे १४ महमंदपां नागोरी जतसी बीकानेरीयो मुकाम्य आया। मुगट दोळा प्रदेपणां दीन्हा। चड़ावो कीयो। डागळी उभो करे मुगट मां वड्या। कहण लागा-झांभजी री जायगा वटी जायगा। एक रजपूत दूहो कह्यो"।

२-ऋपरिप, (तृक्षऋषि) कश्यप का नामान्तर है। ये ब्रह्मा के मानसपुत्र मरीचि के पुत्र, सप्तर्षियों मे एक तथा सृष्टिकर्ता प्रजापतियों मे प्रधान माने जाते हैं। विष्णोई साहित्य में अन्यत्र भी "तीप" और 'तिरप' नाम से इनका उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य-सुरजनजी कृत रामरासो का विवेचन।

३-"दुहो कवत मंहमदपांन जतसी सांभल्या। ल्यो नी देपां, पोल्य न देपां। बीसनोइ अरज करण लागा। चवदसि र दिन कजियो रह्यो। मांम्ही मावस री राति आई। नाल्हाजी ने राति सुतां अवाज हुई-पोलै तो पोलण द्यो। मती पालियो। आंह की नीसां करि-

(शेषांश आगे देखें)

परमानन्दजी के इस कथन में एक ऐतिहासिक असगति है। सवत् १६०६ में बीकानेर की गद्दी पर राव जैतसी न होकर राव कल्याणसिंहजी थे। राव जैतसी का देहान्त तो संवत् १५६८ मे हो चुका था[1]। इसी प्रकार इस सवत् तक नागोर पर मुहम्मदखां का अधिकार नही रहा था। सवत् १५९० (सन् १५३३) मे नागोर का सूरवशीय शासकों के अधिकार मे होना पाया जाता है[2] तथा कम से कम सवत् १६१२ तक–हुमायू की मृत्यु तक वह मुगलो के अधिकार मे भी नही था[3]। इस प्रकार या तो यह सवत् गलत है अथवा ये नाम। सवत् ही गलत प्रतीत होता है, क्योंकि राव जैतसी का मुकाम–मन्दिर के निर्माण में सहायता देना तथा उसके बन जाने पर वहा जाना परम्परा से प्रसिद्ध है। उस समय साधु रणधीरजी वर्तमान थे। उनके साथ नागोर का कोई अन्य मुहम्मदखा रहा होगा, शम्सखा का वशज और जाम्भाणी साहित्य मे उल्लिखित "मुहम्मदखा नागोरी" नही। मुकाम का निज–मन्दिर सवत् १५९७ के चैत सुदि ७ को पूरा हुआ था[4]। इस प्रकार यह घटना इसके पश्चात् और १५९८ के बीच किसी समय समवत १५९६–९७ में घटी होगी।

५५. वील्होजी : (विक्रम संवत् १५८९-१६७३) :

जीवन-वृत्त :

वील्होजी के जीवन और कार्यों के सम्बन्ध मे सुरजनजी, केसोजी, परमानन्दजी, गोविन्दरामजी, साहबरामजी आदि के उल्लेखो तथा अन्य कई स्रोतों से पता चलता है। साहबरामजी ने जम्भसार (प्रति सख्या १६३) मे तीन प्रकरणों (२१, २२, २३) में किंचित् विस्तार से इनके विषय में लिखा है। कालक्रम की दृष्टि से वील्होजी के जीवन को दो भागों मे बाटा जा सकता है :—(१) उनके बिश्नोई सम्प्रदाय में दीक्षित होने तक तथा (२) उसके पश्चात्।

"जम्भसार" के प्रकरणो (२१, २२) में विभिन्न प्रसगों में जाम्भोजी की भविष्यवाणी के रूप मे वील्होजी का परिचय दिया गया है जो उनके जीवन के प्रथम भाग विषयक परिचय की पृष्ठभूमि कही जा सकती है। एक के अनुसार, एक समय जाम्भोजी ने अपने सब सन्तों के मध्य रेडोजी, निहालदास और रणधीरजी–तीनों को महन्त बनाया

स्या। परभात तबूत पोल्य दरस्या माथ पसेव का मोती हाथे जपमाळी फीर। कहण लागा–बीजा रा सबद साचा न पीड काचा। श्री झाभजी रा सबद इ साचा, पीड इ साचा। अतरी कह पछै पछतावो कीयो। असडो कोई हीदवाण तुरकाण कद कीयो नही सो आपा कीयो। अपार रो पार कीणी पायो न पायसी। हमें कोइ हीदवाण तुरकाण इसी वीचारजो मती"।

१–ओझा · बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खड, पृष्ठ १३६, सन् १९३९।
२–डा० कैलाशचन्द जैन : अन्सियैन्ट सिटीज आफ राजस्थान–नागोर, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जयपुर।
३–ओझा . राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१२, सवत् १९९३।
४–स्वामी ब्रह्मानन्दजी बिश्नोई धर्म विवेक, पृष्ठ ४२, सवत् १९७१, द्वितीय सस्करण।

किन्तु चौथी गद्दी के महन्त की सफेद पोशाक, जाम्भाणी टोपी, चोला, माला और चद्दर एक "पेई" में रख दी। साधुमण्डली ने महन्त का नाम पूछा, तो वे बोले—"स्वान्ती साह" नामक बादशाह जो मेरा शिष्य हो गया था, कुछ कर्मो-वश रेवाड़ी में एक बढ़ई के घर जन्मा है, नाम बीठल है। आठ वर्ष बाद वह यहां आएगा और इस पंथ को चलाएगा'। तब रेड़ोजी ने पूछा कि उनको जानेंगे कैसे ? जाम्भोजी ने उत्तर दिया—मेरे "सबदों" को वह एक बार सुन कर ही पुनः बोल देगा। पुरोहित-वृत्ति देकर उसको चौथा महन्त बनाना। उसको मेरा ही स्वरूप मानना'। (२१ वां प्रकरण)। दूसरे (प्रकरण २२) के अनुसार, ८५ वर्ष की आयु में जाम्भोजी लालासर चले गए। साधुओं ने उनका देह-त्याग का विचार देख कर प्रार्थना की—"पंथ का धणी" तो किसी को अवश्य कीजिये'। तब जाम्भोजी ने प्रथम कथन विस्तार से बताते हुए वह संदूक दिया और उसको वील्होजी के आने पर उनको दे देने को कहा। ८ वर्ष बाद संवत् १६०१ के फागुन वदि अमावस्या को जब वील्होजी मुकाम मन्दिर में आए और जाम्भोजी की बताई हुई सभी बातें उनमें मिल गईं तो ऊदोजी ने उनको वह संदूक सौंप कर 'गुरु' मंत्र दिया। परमानन्दजी ने भी कुछ ऐसा ही उल्लेख किया है[1]। इनको तथा अन्य उल्लेखों को ध्यान में रखते हुए वील्होजी के इस भाग के जीवन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं :—

इनका वास्तविक नाम विट्ठलदास था। इनके शिष्य सुरजनजी ने इनको इस नाम से भी याद किया है किन्तु सम्प्रदाय में ये वील्ह, वील्हो नाम से ही प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म संवत् १५८९ में रेवाड़ी में दइया जाति के (परसो, परशुराम) सुथार (खाती) के यहां हुआ। ४ साल की आयु में ही इनकी आँखें जाती रहीं। ये बालपन से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि, सत्संगी, धार्मिक-प्रवृत्ति के और बहुत अच्छे गायक थे। स्मरण-शक्ति इनकी अत्यन्त तीव्र थी। एक बार गुजरात की ओर से एक साधु आकर रेवाड़ी में रहा। अन्य बालकों के साथ खेलता हुआ विट्ठल भी उसके पास पहुंच गया। संध्या समय उसने "साखी-सबद" गाये जिनको सुनकर इन्होंने "वाह ! वाह !" कहा और उसकी गाई हुई सभी रचनाएँ ज्यों की त्यों सुना दीं। साधु ने संस्कारी जीव समझ कर परशुरामजी से इनको मांग लिया और साथ लेकर गंगाजी की ओर चला गया। कालान्तर में यत्र-तत्र भ्रमण करते हुए विट्ठलजी साधुमंडली के साथ गांव हिमटसर में उतरे। वे प्रातःकाल घूमने निकले ही थे कि उन्होंने मुकाम-मन्दिर में हो रहे सबद-पाठ की ध्वनि सुनी। इस पर एक विष्णोइन से इन्होंने पूछा—क्या दक्षिण-दिशा में कोई मन्दिर है ? वह बोली—"जम्भद्वारा" है, आप भी जाकर दर्शन कीजिए। तब ४-५ साधुओं के साथ वे मन्दिर पर आए (जम्भसार, प्रकरण २२)। वहां रेड़ोजी और नाथोजी आदि के साथ अन्य अनेक विष्णोई हवन और सबद-पाठ कर रहे

१—"जंमाते कहै- देवजी थारै लेप मां और देह धारे जको क्यों औतार ? औतार-की मरजाद इह की बांधियै। इह विनां बांमो सुधरै नहीं। —म्हांरो वदलायत छै रेवाड़ी। जळंम सुथार घरे लै। दोइयो जाते। आंपे जपंम। वील्हो नांव हुइसी। नाथिया तु पढ़ी नां। सुंणी दीठी वात वांनें कही। भगत सीलिमी"
—चीळत कीयां पढ़्यां की वेगति, प्रति संख्या २०१, फोलियो २९९।

थे। वे सबद उनको याद हो गये। पूरे "सबद" सुनने पर वील्होजी को ज्ञानानुभव हुआ और प्रसिद्ध है कि उनको आखों मे ज्योति भी आगई। तब उन्होंने आत्म-निवेदन रूप एक "साखी" मे उद्धार की प्रार्थना की[1] और विष्णोई सम्प्रदाय मे दीक्षित होना चाहा (जम्भसार, प्रकरण-२२)। तब नाथोजी नामक साधु ने उनको गुरुमत्र देकर दीक्षा दी। यह घटना सवत १६११ के कातिक सुदि सप्तमी[2] की है जब वील्होजी २२ साल के थे।

इस विषय मे किंचित् भिन्न विचार भी प्रकट किए गए मिलते हैं जिनकी चर्चा यहा आवश्यक है।

श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी के एक[3] मत के अनुसार, 'वील्होजी की माता का नाम आनन्दा बाई और पिता का श्रीचन्द था। ये रेवाड़ी के रहने वाले पुरी उपाधि-वाले सन्यासी थे। इनके नेत्र शीतला रोग से नष्ट हो गए थे। १८ वर्ष की आयु मे एक साधु-मडली के साथ ये अलवर गए, वहा चातुर्मास्य करके पुष्कर चले गए। वहा गोपाल भारती नामक विद्वान् के पास रह कर ३ वर्ष तक विद्याध्ययन और योग-साधन किया। तत्पश्चात् जोधपुर राज्य मे भ्रमण करने लगे और अध्यात्म-विद्या सम्बन्धी विषयो को समझने समझाने लगे। घूमते-फिरते ये सवत् १६३२ मे जोधपुर के धूपालिया नामक ग्राम मे जा निकले। उस दिन माघ शुक्ला चतुर्दशी थी। रात्रि मे उन्होंने किसी को यह कहते सुना कि कल अमावस्या है, इसलिए कोई गाडी, हल न चलावे, खेत की मेड़ न बाधे, कोई ससारी काम न करे किन्तु घर रहे, विष्णु की भक्ति, होम,यज्ञ, अमावस्या का व्रत आदि करे। यह बात सुनकर उन्होने गाव वालो से इस सम्बन्ध मे पूछा। लोगो ने बताया कि इस गाव मे विष्णोई रहते हैं, यह सूचना उनकी ओर से दी गई है। ये लोग अमावस्या के दिन कोई सासारिक कार्य न कर परमार्थ से सम्बन्ध रखने वाले कार्य करते हैं और सब मिल कर नियत स्थान पर बैठ कर हवन करते हैं। दूसरे दिन ये हवन करने के स्थान पर गए और विश्णोइयो के कर्त्तव्यों को देख कर उनके सम्प्रदाय मे दीक्षित होने को इच्छा व्यक्त की। नाथोजी ने इनको 'पाहळ

१-गुर तारि बाबा, जिवडो लोभी लबधी पूनो, एणि पून किया बोहतेरा। १।
गुर तारि बाबा, मरि मरि गयो जळम फिरि आयो, इण भम्यो न छोडी मेरा। २।
गुर तारि बाबा, आवागु वण सह्या दुष सकठ, फिर्यो अनतो फेरा। ३।
गुर तारि बाबा, सेलज इडज उरधज भोगवी, भोगवी गेरि अजेरा। ४
गुर तारि बाबा, लख चोवरासी चौहचकि भीतरि भरम्यो वोहळी वेरा। ५।
गुर तारि बाबा, वोह दुष सह्या सरणि वीणि गुर की, करि करि करम कुफेरा। ६।
गुर तारि बाबा, वैर किया वैरी उठि लागा, मैं सरणा ताक्या तेरा। ७।
गुर तारि बाबा, मनि परच्या पूरा गुर पायें, न भजू आन म नेरा। ८।
गुर तारि बाबा, अरज करू साहिबजी आगो, मोहि सबही अबकी वेरा। ९।
गुर तारि बाबा, वील्ह कहै विनती गुर आगै, द्यो पार गिराय बसेरा॥ १०॥
-प्रति सख्या २०१ से।

२-सोळा सै ग्यारोतरे, सुदी सात कर्जे मास।
नाथैजी को ग्यान सुण, परचे वीळळदास। -प्रति सख्या १६० और १६८।

३-श्री महर्षि स्वामी वील्हाजी का जीवन चरित्र, तथा श्री वील्हाजी का सक्षिप्त वृतात, सवत् १९७०।

पिलाकर' विष्णोई वनाया और पुरी उपाधि हटा कर वील्होजी नाम रखा। एक समय जोधपुर नरेश चन्द्रसेन ने इनकी सिद्धि देखने के निमित्त अपने दरवार में बुलाया था'।

दूसरे स्थान पर[1] उनका कहना है-'संवत् विक्रमी सोलह सौ वीस में शुद्धि-कर्म की ओर श्री वील्हाजी नामी महापुरुष ने अधिक ध्यान दिया और अपने समय में उन्होंने अनेकानेक क्षत्रिय, जाट और वैश्य आदि जातियों को नूतन प्रविष्ट किया। वह विश्वस्त व्यक्तियों को ही स्वधर्म में प्रविष्ट करने को उत्तम समझते थे। इनके धर्म प्रचार संबंधी कार्यों में उस समय के जोधपुर के नरेन्द्र मालदेव महाराज के पुत्र कुंवर चन्द्रसेन की सहायता से विशेष सफलता प्राप्त हुई। यह इस मत में आने से पहले दशनामी सन्यासियों के सम्प्रदाय के सन्त थे। इस धर्म के महत्त्व को देख कर फिर वे विष्णोई धर्म के सन्त श्री नाथाजी नामी महापुरुष के दीक्षित शिष्य हो गए थे'।

तीसरी जगह[2] वे कहते हैं-'वील्होजी ने वड़े जोर-शोर से प्रचार किया और उदयसिंह और चन्द्रसेन जोधपुर के राजा को उपदेश देकर इस मत की ओर आकर्षित किया और सैकड़ों जाट और राजपूतों को नये विश्नोई समाज में मिलाया'।

साहवरामजी के अनुसार, संवत् १६०१ की फागुन वदि अमावस्या को वील्होजी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। वे ऊदोजी तापस को इनका गुरु मानते हैं, यह कहा जा चुका है। अन्यत्र भी वे इसकी पुष्टि करते हैं (-जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ३)।

श्रीरामदासजी महाराज का कथन है कि 'संवत् १६०१ के वैशाख वदि ३ को वील्होजी ने जोधपुर के राजा सूरसिंहजी को परचा दिया[3]'।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी के विभिन्न वक्तव्य ऐतिहासिक दृष्टि से असंगत और परस्पर विरोधी हैं। प्रथम उल्लेख के अनुसार संवत् १६३२ में वील्होजी सम्प्रदाय में दीक्षित होते हैं और पश्चात् जोधपुर-नरेश चन्द्रसेन को सिद्धि-परिचय देते हैं, जो असंगत है। चन्द्रसेन संवत् १६१६ से १६२२ तक जोधपुर में राज्य करने पाए थे कि उनको वहां से हटना पड़ा। संवत् १६२६ में वे फिर वीकानेर के राजा रायसिंह के घेरे के कारण जोधपुर का किला छोड़ने पर वाध्य हुए और संवत् १६३७ तक-मृत्युपर्यन्त वाहर ही रहे। संवत् १६३६ में राठौड़ों की सलाह पर वे सोजत आए किन्तु अकवरी सेना के कारण उनको वहां से भी हटना पड़ा[4] था। स्पष्ट है कि वील्होजी का संवत् १६३२ में विष्णोई सम्प्रदाय में दीक्षित होना और पश्चात् नरेश चन्द्रसेन से जोधपुर में मिलना-दोनों वातें सम्भव नहीं हैं। कवि का जन्म संवत् उन्होंने नहीं वताया है किन्तु संवत् १६०० ध्वनित होता है। उनका दूसरा

१-अखिल भारतवर्षीय विष्णोई महासभा, तृतीय अधिवेशन, कानपुर, सभापति- पद से दिया गया भाषण, संवत् १६८१।

२-विद्या और अविद्या पर व्याख्यान, संवत् १९७२।

३-श्री १०८ श्री जम्भेश्वर धर्मदिवाकर, पृष्ठ ५-६, संवत् १९८४।

४-(क) ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ ३३२-३५०, सन् १९३८।
(ख) ,, वीकानेर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ १६५-६६, सन् १९३९।
(ग) पं० रामकर्ण आसोपा : मारवाड़ का मूल इतिहास, पृष्ठ १४३-४७।

उल्लेख पहले का विरोधी है। संवत् १६२० में या इससे पूर्व तो वे दीक्षा ग्रहण करते हैं और इसी साल उनको, 'कुँवर' चन्द्रसेन की सहायता मिलती है जो अनुचित है। 'कुँवर' तो वे संवत् १६१९ तक ही थे। तीसरे में उन्होंने केवल चन्द्रसेन और उदयसिंह के नाम दिए हैं, संवत् नहीं। उदयसिंहजी का राजत्वकाल संवत् १६४० से १६५२ है। इनसे मिलने की सम्भावना हो सकती है किन्तु प्रतीत होता है कि उनको वील्होजी का विशेष सम्बन्ध चन्द्रसेन से ही मानना अभीष्ट है। वस्तुतः वील्होजी का विशेष सम्बन्ध जोधपुर के राजा सूरसिंहजी से था।

साहबरामजी के अनुसार, वील्होजी ११ साल की आयु में, संवत् १६०१ में दीक्षित हुए। मुकाम-मन्दिर में आने के प्रसंग से विदित होता है कि साथ वाले साधु उनको अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। इससे वे स्वयं निर्णायक और सम्मानित साधु प्रतीत होते हैं, जो ११ वर्ष के बाल-साधु के लिये परिस्थिति देखते हुए असम्भव सी बात है। अतः इस संवत् में उनका दीक्षित होना जँचता नहीं। दूसरी ओर साधुओं को सर्वमान्य 'वंशावलियों' में यह संवत् १६११ दिया हुआ है। साधु-परम्परा में भी यही प्रसिद्ध है। दीक्षा-तिथि और महीनों में भी साहबरामजी और ब्रह्मानन्दजी में मतभेद है। दोनों के उल्लेख ठीक नहीं हैं।

श्रीरामदासजी का कथन भी अमान्य है, क्योंकि सूरसिंहजी का जन्म संवत् १६२७ में हुआ था। संवत् १६०१ में वील्होजी उनसे मिल ही कैसे सकते थे ?

साहबरामजी का ऊदोजी तापस को वील्होजी का गुरु मानना भी ठीक नहीं है। सभी प्राचीन उल्लेखों के अनुसार नाथोजी ही उनके गुरु थे। 'साधु-वंशावलियों'[1] के अतिरिक्त सुरजनजी,[2] परमानन्दजी[3] आदि ने भी ऐसा ही माना है। वील्होजी के निधनस्थान-रामडावास से प्राप्त "साधां री वंसावळी" (प्रति संख्या २२४) में एक बहु-प्रचलित दोहे में भी यही कथन है :—

नाथेजी मुख ग्यांन सुणि, परचे वीठळदास।
पंथ उजाळण आवियो, वील्ह नाम परकास॥

दीक्षा के पश्चात् : *उल्लेखनीय है कि जाम्भोजी के पश्चात् 'विश्नोई पंथ'* एक प्रकार से सूना हो गया और विचलित होने लगा था। अनेक राजा और छोटे-बड़े लोग उसको त्यागने लगे थे। वील्होजी के दीक्षित होने तक सम्प्रदाय की नींवें डगमगाने लगी थीं। उसको थोड़ा-बहुत सहारा सम्प्रदाय के साधुओं और 'पंचायत' का ही था। ऐसी स्थिति में

१-दो का उल्लेख किया जा चुका है, प्रति संख्या १७० में भी-"प्रथम आचार्य श्री जाम्भोजी। जाम्भेजी का चेला नाथोजी। नाथोजी का चेला वील्होजी" लिखा है।

२-'नाथो मोनी नाव, हीर गुरु वीठळराया।'
-रेडोजी के संदर्भ में उद्धृत छप्पय की एक पंक्ति।

३-प्रेम गुर नाथव वीलहजी, धनो नेतो निज दास।
दांमो रासो और ग्यान गुर है सतगुर का दास॥ ९॥ -नमस्कार प्रसंग, प्रति २२७।

वील्होजी ने उसको सम्भाला[1] और अपने अथक प्रयत्नों से पुनः उसको सुदृढ़ धरातल पर स्थित किया। दो प्रकार से उन्होंने यह कार्य किया:– एक तो साहित्य निर्माण से और दूसरे अन्य विभिन्न कार्यों से। ऐसे कार्यों में से कतिपय का उल्लेख यहां किया जाता है।

संवत् १६४८ में वील्होजी ने "जाम्भोळाव" पर दो मेले आरम्भ किये। एक तो चैत वदि ११ से अमावस्या तक– "चैती" मेला (द्रष्टव्य-अल्लूजी, कवि संख्या ३८ के प्रसंग में) और दूसरा भादवा की पूर्णिमा को– "माघी" मेला[2]। इसी प्रकार, मुकाम में भी परम्परा से चले आ रहे फागुन वदि अमावस्या के मेले के अतिरिक्त आसोज वदि अमावस्या का मेला शुरु किया[3]। तीनों ही मेले आज पर्यन्त चले आते हैं। जाम्भोळाव के उत्तर की ओर पड़े पत्थर पर उन्होंने 'पाळ' भी लगवाई[4]। वहां अब मन्दिर बना हुआ है।

'अजानो' (अपरनाम-ज्ञाननाथ, ज्ञानचन्द या ज्ञानदास) नामक वामपंथी 'भूतसाधक' व्यक्ति ने अनेक विष्णोइयों को पथ-भ्रष्ट कर अपना अनुयायी बना लिया था। वह लोगों को पहले जल पीकर फिर स्नान करने और "चहमें–चहमें" भजन करने को कहता था। वील्होजी ने जोधपुर के रुड़कली ग्राम में उसको परास्त कर उत्थापित किया तथा धर्मोपदेश देकर अनुयायियों सहित सम्प्रदाय में प्रविष्ट किया[5]। कालान्तर में वह मेवाड़ के समेला ग्राम में चला गया, जहां उसने एक विशाल विष्णोई मन्दिर बनवाया[6]। इस मन्दिर की नींव मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के राजत्व काल (संवत् १६८४-१७०९)[7] में संवत् १६९० के वैशाख सुदि ३, सोमवार को दी गई थी[8]। ज्ञानवान या ज्ञानी का पर्याय मारवाड़ी में "स्याणो", "स्याणा" होने से, सम्प्रदाय में वह "स्याणियों" या "स्याणिये"

१–सूनो पंथ विटलतो भयो। सागे धर्म सभ जंभ संग गयो।
वारै राजा च्यार पठांण। कोटक जाट और मुगलांण।
ईह सब पंथ छोडते भए। चलतोई पंथ उलट मिल गए।
जे जे जीव सुपात सनेही। जंभ धर्म राख्यो सुद्ध तेही॥ ४७॥
–प्रति संख्या १९३, जम्भसार, २२ वां प्रकरण, पत्र २५-२६।

२–'प्रसिद्ध है कि इसके आरम्भ करने में वील्होजी को पाली ग्राम निवासी चौधरी माधवजी–गोदारा ने विशेष सहयोग दिया था। इसलिए मेले का नाम "माधी" रखा'।
—श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी का अखिल भा० वि० महासभा, कानपुर के तृतीय अधिवेशन पर, सभापति पद से दिया गया भाषण, संवत् १९८१।

३–स्वामी ब्रह्मानन्दजी : श्री महर्षि स्वामी वील्हाजी का जीवन चरित्र, संवत् १९७०।

४–इस पत्थर पर पाळ लगावो। तातैं उजड़ न पांवैं दावो।
सुनत ही स्यात पाळ कर दई। उतरादं छेड़ै सो भई॥
–जम्भसार, प्रकरण २८ वां, पत्र २७।

५–प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र १४। स्वामी ब्रह्मानंदजी ने विश्नोई धर्म विवेक, (पृष्ठ २८) में इस घटना का सम्बन्ध जाम्भोजी से जोड़ा है, जो गलत है।

६–स्वामी ब्रह्मानंदजी : श्री महर्षि स्वामी वील्हाजी का जीवन चरित्र।

७–ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, तृतीय खण्ड पृष्ठ, ८३०-३९, संवत् १९८६।

८–दरीबा के विष्णोई भाट श्री लालमोहम्मद मिरासी (सुपुत्र–श्री कजोड़जी) की बही के अनुसार।

भूत नाम से भी प्रसिद्ध है। भूत इसलिये कि वह भूत-साधक था। उसकी समाधि समेला के निज-मन्दिर से २० फुट पूर्व की ओर है जिसको 'स्याणिये का मन्दिर' कहते हैं।

मरु भूमि मे यत्र तत्र विष्णोइयो को पथ भ्रष्ट होते देख कर इन्होंने उनको किंचित भय दिखाने की भी आवश्यकता समझी, क्योंकि केवल समझाने से वे मानने वाले नही थे। यह विचार कर राजकीय सहायता और सहानुभूति-हेतु वे जोधपुर गए[1] । वहा के राजा सूरसिंहजी ने उनसे भेंट की, उस दिन वैसाख वदि तीज थी। प्रसिद्ध है कि एक चारण के कहने पर राजा ने वील्होजी के सिद्धि-बल जानने के निमित्त तीन "परचे-" 'सिट्टा, काकडी और मतीरा" मागे। उन्होंने "बूकळ मार कर" तीनो ही चीजें प्रस्तुत कर दी। तब राजा ने उनको जाम्भोजी के समान जान कर प्रार्थना की और कुछ मागने को कहा। वील्होजी ने विष्णोई सम्प्रदाय की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा— जाम्भोजी के बाद लोग धर्म छोडने लगे हैं, बिना राजकृपा के ये लोग नही मानेंगे। मुझे कुछ आदमी, छोटे तम्बू और दण्ड देने की स्वीकृति दीजिए'। राजा ने ऐसा ही किया। इस सहायता से वे मारवाड म जगह-जगह घूम कर अनेक धर्म विमुख लोगो को वापस सम्प्रदाय मे लाने मे सफल हुए (जम्भसार, प्रकरण—२३, पत्र २-४)। महाराजा सूरसिंहजी भक्तिभाव वाले (आसोपा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १५८-१६३) वीर, दानशील और योग्य शासक थे। दानपुण्य की ओर उनकी विशेष रुचि थी और वे ब्राह्मणो, चारणो आदि का बडा सम्मान करते थे (ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३८७)। वील्होजी जसे साधु को इनसे सहायता मिलना कोई आश्चर्य की बात नही है। इस घटना के समय का निश्चित पता नही चलता, सम्भवत यह सवत १६६०-६२ मे किसी समय घटी होगी। ऐसे ही बीकानेर और जैसलमेर नरेशो से भी उनको धर्म रक्षार्थ दो ताम्रपत्र मिले थे[2] । उन्होंने जीव रक्षार्थ "थाट अमर करवाये", वृक्षो का काटा जाना सर्वथा बन्द करवाया तथा प्रणतिपूर्वक आठ "साके" किए जिनमे से तीन का परिचय तो उनकी साखियो से भी मिलता है।

उपर्युक्त सभी बातो की पुष्टि इनके शिष्य सुरजनजी के इस कवित्त से होती है -

तोरथ सांभोळाव, चंत चोठिये मिलायो।
मेळो मड्यो मुकामि, लोक आसोजी आयो।
अमर थाट बाकरा करे, खेजडी रखावै।
अग्यान उथपे, गलि सोहं ग्यान मिलावै।

१- । छन्द । देप भृष्ट आचार अति कर, सत मेन सोचत भग।
बिनहि राज न मान एहि जन, कछु कहे न तब चुप हो रहे।
राज बिन प्रचौ न मानहिं, अस कहि फिर गढ कूं गए।
कह दास साहब आस कर जभ वील्ह गुरु चरण नए ॥ ५० ॥

। दोहा । वीलश्रु मन अस भई। ओरि बिन्या नहिं प्रीत।
प्रीत बिन्या पूछै नहीं, एही जगत की रीत ॥ ५१ ॥
—जम्भसार, २२ वा प्रकरण, पत्र २०।

२-स्वामी ब्रह्मानदजी विद्या और अविद्या पर व्याख्यान, पृष्ठ ७, पादटिप्पणी।

वंधिया सील पोथी कथा, सुपह पंथ संवारियो ।
सीझत आठ साका किया,वील्ह वैकुंठ सिधारियो ॥

वील्होजी ने अनुभव किया कि अधिकांश राजकीय और शासक–वर्ग के लोग हत्या और कुसंगति में लगे हुए हैं और वे इन्हें छोड़ नहीं सकते। अतः रजवाड़ों को छोड़ कर जन-साधारण और गरीब लोगों को सुपथ पर लाने के लिए उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया[1]। उन्होंने अनेक स्थानों पर ज्ञानोपदेश कर सम्प्रदाय को सुधारा और अनेक अन्य लोगों को "पाहळ" देकर नए सिरे से विष्णोई बनाया[2]। प्रसिद्ध है कि एक बार ये भ्रमण करते हुए अपने अनुयायियों के साथ लाम्बा गांव में उतरे। वहां लोगों को आचार-विचार हीन और बाणगंगा के पानी के लिए गाली गलौज करते हुए देख कर बोले:-

फादो चोंयै, मच्छी मारै, नित री करै लड़ाई।
दूजै गांव वसै विसनोई, लाम्बै वसै कसाई॥

और यह कवित्त कह कर उनको दूसरे गांव चलने का आदेश दिया :—

परहरियै सो गांव, नांव विसंन को न भंणीजै।
नहीं साध सूं गोठ, ग्यांन सरवंणे न सुंणीजै।
घंणो वाद अहंकार, घंणी पर नंद्या कीजै।
नहीं धरंम सूं सीर, मुपे अभपळ बोलीजै।
मेल्यो सतगुर को कह्यो, राह सैतांनी पाकड़ी।
वील्हा विलंव न कीजिये, जिह नगरी एका घड़ी॥ ५॥

–प्रति संख्या २०१ से।

इस पर लोगों ने पूछा–महाराज, तब कैसे गांव में वास करना चाहिए? तो उन्होंने पुनः एक कवित्त[3] कहकर यह बताया और वहां से चल पड़े[4]। समाज में कर्त्तव्याकर्त्तव्य-शैथिल्य

१–वील्हदेव अस कीन्ह विचारा। छोड़ देवो सब राज दवारा।
इनकै हित्या कर सतसंगी। इह सब लोकन करै कुसंगी।
तातै इंनकूं मति चेतावो। गरीब लोक कूं राह लगावो।
अस जिय जांण तजेउ रजवाड़ा। पूंण छतीसूं बाधेऊ वाड़ा।
–जम्भसार, २३ वां प्रकरण, पत्र १३।

२–वीकानेर फलोधी जु देस देस धर्म धारे, छिमा हु संतोष जिन सील विस्तारे हैं।
गंगा पार देस अरु कालपी कनोजपूर, तहां वील्ह देव गुर धर्म निज धारे हैं।
और हू अनेक जीव वील्हाजी मिलाए सीव, अज्ञाना उथाप पुनि जोधांण पधारे हैं।
सूरसिंघ राजा परचो पाय कै मगन भये, कहै गोमदराम हाव भाव जु वधारे हैं॥ ४॥
–गोविन्दरामजी के कवित्त, प्रति संख्या २००।

३–जिह नगरी धरंम दिढ़ाव, सत सिवरंण नर सूरा।
सभै सुचील सिनांन, जुगति जरणां पंण पूरा।
मेल्हि मंन्यों भिरांति, भरंम भोळावो भांनै।
जपैं एक विसंन, आंन की सेव न मांनै।
ओलख्यो गुर झांभो सही, जांह को धन्य जीतव जियो।
वील्हाजी को दीन जीविजै, जींह नगरी वासो लियो॥ ६॥ –प्रति २०१।

(फुटनोट ४ आगे देखें)

वील्होजी को सह्य नहीं था। लोक का सर्वतोमुखी उत्थान उनका ध्येय था। इसके लिए उनको अनेक प्रकार के और अनेक मतावलम्बी लोगों को समझाने के लिए अथक प्रयत्न और महान् उद्योग करने पड़े। अनेक साधु-सन्तों की गवाही है कि उनको इस कार्य में पूर्ण सफलता मिली थी। उनकी रचनाओं मे यत्रतत्र इसके सकेत मिलते हैं। उस समय तथाकथित वेदान्तियो का जोर था। वील्होजी ने ऐसों को खूब फटकारा था और लोगों को उनसे दूर रहने की सलाह दी थी[1]। वील्होजी पर सुरजनजी ने अत्यन्त मार्मिक मरसिये कहे हैं। इनमे बताया है कि लाख गुणो वाले वील्होजी ने ससार मे दो तो बडे 'अवगुण' और पाच 'भरम' किए। अवगुण हैं—दुष्टो को सालना और सत्पुरुषो के हृदय में दिव्य-ज्योति का प्रकाश करना[2]। 'भरम' हैं—(१) विष्णोइयो का 'दाण' आधा करवाना, (२) वृक्षों को न काटने की राजाज्ञा प्रचारित करवाना, (३) गुरु-कथित ज्ञान को सुनाना-समझाना, (४) रामसर मे वृहत् यज्ञ कर जगत 'जिमाना' और (५) अनेक कूओ और जलाशयो का निर्माण करवाना[3]। वे केवल तत्त्व-कथन ही नहीं करते थे, भावपूर्ण-रचना कर सुरीले स्वरों में गाते भी थे। आत्मज्ञानी और कवि होने के साथ वे राग-रागिनियों के ज्ञाता और सुप्रसिद्ध गवैए भी थे[4]। उल्लेखनीय है कि उनकी अधिकाश रचनाएँ विभिन्न राग-रागिनियो मे गेय हैं।

४-इसका सकेत गोविन्दरामजी कृत वील्होजी के भ्रमण-स्थानों के उल्लेख सबधी कवितों के बीच उनके (वील्होजी के) 'जिह नगरी धरम दिढाव' कवित्त के उद्धृत किए जाने से भी मिलता है। -प्रति सख्या २००।

१-देवजी न मेळो दुज, पथ ता पासै टळिया।
मेल्हि सुगुर की गोठि, जाय सैताना मिळिया।
कूड घड मन माहि, जीभ ता अळियो भाखै।
आप न कर ही धरम, अवर करतै नै राखै।
राता विषै विकार सू, आप सवारथी पर हूती।
वील्ह कहै एक वीनती, विसन टाळि वेदान्ती ॥१३ -प्रति संख्या २०१।

२-धरम जप धारणा, ग्यान भारी गुण सागर।
सहज सील सतोष, कियो पथ महा उजागर।
मुष दीठा दुष जाय, दुष सह मिटै दुरिजण।
लष गुंण लमर्ता, कीय दोय वील्ह अवगण।
दुरिजणा सात सणा दई, जोती श्री देवा जयो ॥
वीछडे जीव लागी विरह, अजे नेसासो न गयो।-प्रति सख्या २०१।

३-मकडाण मेटि दाण अधकरी करावै।
वन वाढै राजसी, महंत करि मेर छुडावै।
जो गुर कथियो ग्यान, ग्यान सो गति सु णावै।
कियो जिग रामसरि, न्योत जिणि जगत जिमावै।
घेन पर नीर आसीस द्यै, पोहमी निवाण किया पसा।
सुरजमाल ससार मा, पाच भरम किया असा ॥-प्रति संख्या २०१ से।

४-ग्यान गुसटि गुंण आतमा, तिल अघ नही अधूरी।
जा पूछै तो पूछि, पूछी सारी लो पूरी।
च्यार वेद री वात, कुळी सुष काढि सुणावै।

(शेषाश आगे देखें)

जीवन के अन्तिम दिनों में वे रामड़ावास में आकर रहने लगे थे। उनके सात साधु शिष्य थे। (देखें–परिशिष्ट में 'साधु–परम्परा') जिनमें अन्तिम–सूजोजी (अपरनाम–सुरजनजी) को उन्होंने अपनी गद्दी सौंपी[1] । रामड़ावास (रामड़ास) में ही संवत् १६७३ के चैत सुदि एकादशी, रविवार को उन्होंने स्वर्गलाभ किया,[2] जहां उनको समाधि दी गई। तबसे रामड़ावास वील्होजी का 'धाम' माना गया[3] । प्रसिद्ध है कि उन्होंने स्वर्गवास से कुछ पूर्व सब भक्तों के सम्मुख बैठकर (राग धनाश्री में) 'उमाहो' गाया था[4] । साहबरामजी ने

नाद वेद गुण जांण, कंठ सर ओसरि गावै।
प्रमोधि एक प्रीतंम असो, गल्ह गुझ न को वियो।
वील्ह मंरण फटो नहीं, है ! है ! वजर पथर हियो ॥ २ ॥–सुरजनजी, प्रति २०१।

१–(क) गोविन्दरामजी (कवि संख्या १०४) के कवित्त,–प्रति संख्या २००।
(ख) प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २७, पत्र १९।

२–(क) वील्हजु महाराज तब धांमहि सिधारे जब,
संमत सौळासै अरु तेहतरो वपांणियै।
सूरज उतर दिस काल सोई जांनों उत,
रुतहि वसंत मधुमास जु प्रमांणियै।
विष्णु वरत सुदि सोऊ एकादसि तिथि,
मांनों वार में सुआदिवार दितवार मांनियै
उतरा नषत मांनों धुरव कर जोग जांनों,
तुल सु लगन काल अमृत जांनियै ॥ १० ॥
(ख) साहबरामजी ने यद्यपि वील्होजी के देहावसान का समय नहीं लिखा है, तथापि उन्होंने इस सम्बन्ध में गोविन्दरामजी के उपर्युक्त छन्द को उद्धृत कर इसकी पुष्टि की है—जम्भसार, प्रकरण–२३, पत्र २३।
(ग) स्वामी ब्रह्मानंदजी : श्री महर्षि वील्होजी का जीवन चरित्र।
श्री परमानन्दजी ने "साका" (प्रति संख्या २०१, फोलियो ५४६–४७) के अन्तर्गत "संवत् १६९३ फागण वदे ११ गांव रांमड़ास्य वील्होजी पड्या" भूल से ही लिखा है।

३–सिर सिरोमण रांमड़ास जां वील्हैजी को धांम।
जाकै पद रज परसतां मनसा पूरण कांम।
मनसा पूरण कांम तास कोउ सीस निवावै।
मिटे अपल अघ दास जास कोउ सरणै आवै।
पंथ सुधारण कारणै वील्हजु जम्भगुर आयुस आविया।
रांमड़ास संमाद ले वील्ह वैकुंठ सीधाविया ॥–गोविन्दरामजी के कवित्त, प्रति २००।

४–बाबो जांबू दीपे परगट्यो, चौहचकि कियो उजास।
अपदीठो केवळ कथा, सावां मोमिणां को प्रांण अधार ॥ १ ॥
देव तूं जांहरै हिरदै वस्यो, तेरा जंन पुंहता पारि ॥ २ ॥ टेक ॥
संभरथळ रळि आवंणो, जित देव तंणो दीवांण।
परगटिये पगड़ो हुवो, निस अंधियारी भांण ॥ ३ ॥
एकळवाई पग ठयो, करि तसवी मुषि जाप।
संभू रो सिवरंण करै, जैय जपै सोई आप ॥ ४ ॥
भगवीं टोपी पहरतो, गळि पंथा दस नांम।
झीणी वांणी बोलतो, गुर वरज्यो छै वाद विरांम ॥ ५ ॥
भूष नहीं तिसनां नहीं, गुर मेल्ही नींद निवारि।

(शेषांश आगे देखें)

उनकी साम्प्रदायिक देन की यह कह कर अत्यन्त सटीक व्याख्या की है कि जिस धर्म की जड जाम्भोजी थे, वील्होजी उसके स्तम्भ थे और शेष साधु-सन्त डालियों के समान थे। धर्म का उन्होंने पुनरुद्धार किया, उतरते हुए अमल के नशे को दुबारा चढाया[1]। राज-

काम लवधि व्यापै नही, तेह गुर की बलिहारी ।। ६ ।।
इसक्दर परमोधियो, परच्यो महमदखान ।
राव राणा नवि चालिया, समळि केवळ ग्यान ।। ७ ।।
मधमा ता उतिम किया, परी घडी टकसाळ ।
कहर करोध चुकाय कै, गुर तोड्यो माया जाळ ।। ८ ।।
सीप वर्स मभि सायरा, आपति सायर साथि ।
रीणायर गर्व नही, चाहै बूंद सुवाति ।। ९ ।।
जळ विणि तिमना न मिटै, अन विणि अपति न थाय ।
केवळ भाभै वाहर्यो, कूण कहै समझाय ।। १० ।।
जळ मारै वीणि माछळा, जळ विण माछ मराय ।
तम तो सारो हम विना, तम विण हम मरि जाय ।। ११ ।।
पपहियो पिव पिव करै, वोह्ळी सहै पियास ।
भुय पडियो भावै नही, बूंद अधर की आस ।। १२ ।।
हंसा रो मान सरोवरा, कोयळ अंबाराय ।
मधकर कुंवळे रंग करै, साध विसन कै नाय ।। १३ ।।
नृधनिया धनवाळ हो, अपण वल्हा दाम ।
विपिया वाल्ही कामणी, यो साध विसन कै नाम ।। १४ ।।
वोह जळ बेडी बूडता, बूझै नहीं गिंवारि ।
केवळ भभै बाहर्यो कूण उतारै पारि ।। १५ ।।
ठग पाहण पोहमी घणा, मेल्ही छै दुनी भुलाय ।
पाखंड करि पर मन हडै, ता मेरो मन न पत्याय ।। १६ ।।
धन्य परेवा बापडा, छाजै वसै भुकाम्भ ।
चूणि चुगै गुटका करै, सदा चितारै साम्भ ।।१७ ।।
अंबाराय बधावणा, आणद ठावौं ठाय ।
साम्भ सुमाहो माडियो, पोह कियो पार गिराय ।। १८ ।।
काच कथीर न राचही, गुर विणज्या मोती हीर ।
मेरो मन रातौ साम्भ सूं, गुदडियो गुणा गहीर ।। १९ ।।
अवसरि मिलिया मोमिणा, वळि मेळो कदि होय ।
दुषी विहावै तम विणा, हरि विण धीर न होय ।। २० ।।
वोल्यो वील्ह उमाहडो, करि मनि मोटी आस ।
आवागुवण चुकाय के, द्यो अमरापुरि वास ।। २१ ।।
काही के मनि को धणी, काही के गुर पीर ।
वील्ह कहै विसनोइया, नांय विसन कै मीर ।। २२ ।।-साखी १११, प्रति २०१।

1-देस देसातर वील्ह सिधारे। गयौ धर्म उलटो फिर धारे।
-जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र १४-१५।
कल्यौ पथ वीलेसुर काढ्यौ। उतर्यौ अमल फेर जिम चाढ्यौ।
जैसे सत पथ के थभा, डाळा सत मूल जड जभा
सब देसन मे रमणी करेऊ, जहा तहा धर्म-बुद्धि बिथरेऊ ।।
-जम्भसार, प्रकरण २३ पत्र १८ से।

स्थान के सिद्ध सम्प्रदाय और राजस्थानी साहित्य में वील्होजी का सा व्यक्तित्व और कृतित्व विरल है। सुरजनजी ने अपने मरसियों में ठीक ही भविष्यवाणी की थी कि मरुवरा को वील्होजी जैसा व्यक्ति फिर नहीं मिलेगा :—

सुकृत ग्यांन सळेह, दीन पति पूरी दाखवै।
वीठळदास वळेह, मिलै न सारी मुरधरा॥ १५८॥
वाग विलखो दीठ में, वड़ भागे वीठल।
अंव गयो घरि अपणै, मरंण सुरिजमल॥ १५९॥—साखी अंगचेतन के अन्तर्गत।

रचनाएँ :

वील्होजी की निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं :—

(१) कथा घड़ावंध (छन्द ५३)।
(२) कथा औतारपात (छन्द १४२)।
(३) कथा गुगळियै की (छन्द ८६)।
(४) कथा पूल्होजी की (छन्द २५)।
(५) कथा द्रोणपुर की (छन्द ६३)।
(६) कथा जैसलमेर की (छन्द ११२)।
(७) कथा छोरड़ां की (छन्द ३२)।
(८) कवत परसंग का (छन्द १३)।
(९) कथा ग्यांनचरी (छन्द १३०)।
(१०) सच अखरी विगतावळी (छन्द ५४)।
(११) साखियां–१०।
(१२) हरजस–२१।
(१३) विसंन छत्तीसी (छन्द ३७)।
(१४) छप्पय–४५।
(१५) मंत्र अखरा दूहा–अवतार का (२६)।
(१६) छुटक साखियां (दोहे–१३)।

इनका परिचय और विवेचन आगे किया जा रहा है।

(१) कथा घड़ावन्ध[1] : यह ५३ दोहों की गेय रचना है जिसके आरम्भिक अनेक छन्दों पर इस दोहे की टेक का निर्देश लिपिकारों ने किया है :—

दांन सील तप भावना, चौह जुगि धरंम विचारि।
दया धरंमे बाहर्यो, अफळ गया संसारि॥

1–प्रति संख्या ६६; २०१; २०७। उदाहरण दूसरी प्रति से।

इसमे चारो युगो और दसावतार[1] के सामान्य एव कलियुग[2] के विशेष उल्लेख सहित जम्भ-महिमा[3] वर्णित है। सत्ययुग मे भगवान के मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिंह-चार अवतार हुए। इस युग मे भगवान ने प्रह्लाद की प्रार्थना पर पाँच करोड जीवो को मोक्ष प्रदान किया। त्रेता मे वामन, परशुराम तथा राम-लक्ष्मण तीन अवतार हुए। गुरु ने राजा हरिश्चन्द्र पर कृपा की जिनके साथ सात करोड जीवो को मोक्ष मिला। द्वापर मे कृष्ण और 'बुध' दो अवतार हुए[4]। इसमे गुरु की राजा युधिष्ठिर पर कृपा हुई, जिनके साथ नौ कोटि जीवो का उद्धार हुआ। कलियुग मे "निकलंकी" अवतार होगा। इसमे शेष बारह कोटि जीवो का उद्धार होना है। इनके उद्धार के लिए जाम्भोजी समराथळ पर आए हैं। जिन्होंने उनको नही पहचाना, वे आवागमन के चक्कर मे पडे रहेंगे। कलियुग मे कसाई ज्ञान-कथन करेंगे और निशंक गाय-हत्या करेंगे। अवतार की आड मे लोग पाप-कर्म करेंगे, वे शक्तिशाली लोगो का साथ देंगे। खूनी "जमला" रचायेंगे। इस युग मे सतपथ से भ्रष्ट कुगुरुओं द्वारा भ्रमाए गए लोग अनेक प्रकार के पाखण्ड करते हैं[5]। ऐसे समय मे प्रत्यक्ष सतगुरु आए हैं, किन्तु गवार लोग समझते नहीं। हीरा तो जौहरी ही पहचान सकता है। गुरु ने स्वय विषपान करके दूसरो को अमृत पिलाया, ऐसे कैवल्य ज्ञानी के अतिरिक्त ज्ञान-कथन करने वाले झूठे हैं[6]।

१-घडा बघ चौह जुग को, पणऊ दस अवतार।
सतगुर सुधो भाषियो, सु णियो सत विचारि ॥ २ ॥

२-कळिजुग काळाहूळि घणी, कहि सभळाऊ साद।
जासू कही ज हुत सू, सोई चलावै वाद ॥ २६ ॥
कळि धुतारा आवस्य, दुनिया करिसी मोह।
भूठ न सेठू वलहो, फीरि फीरि सोधे पोह ॥ ३० ॥
पीरि रूहि एको गिणै, भुळाया कुगराह।
असा अकारण वरितिस्यै, कळजुग लागताह ॥ ३३ ॥

३-सतगुर वीणि जाणै नही, चहू धरम को भेव।
सु गुर चेलो बूझिस्यै, दया विहू णौ हेव ॥ २५ ॥
जोह गुरा जाण्यो नही, अदया दया विचार।
ताह भरोसे बापडा, बोह बुझिस्यै गिवार ॥ २८ ॥
ग्यान वेहु णा गुर करै, परचै वीणि पूजाहि।
मति हीणा मनहट करै, मन मुषि दान दीवाहि ॥ ३४ ॥

४-दवापुर जुग नर परगट हुवो सो सगती सारत।
गोवळ कान्हड बुध वळै, असरो सघारत ॥ १३ ॥

५-सतपथ हू तै पतऱ्या, पतराया कुगरेह।
भूला कूडे कागळे, मन मोह्या मुकरेह ॥ ४२ ॥
काही पथर पूजिया काहीं गळि बध्या तूर।
काही औसर घातिया, काही अरबै सूर ॥ ४४ ॥
काही मुगट सीरि बधिया, काहीं मुदरा कानि।
काऊ वाऊ होयस्यै, गुर भूलणा निदानि ॥ ४५ ॥

६-दगिघर दीपे दोह दिसा, औळू माय म धार।
सतगुर आयो सापरति, बूझै नही गिवार ॥ ४६ ॥

(शेपाश आगे देखें)

रचना का महत्त्व सम्प्रदाय में मान्य तेतीस कोटि जीवों के उद्धार सम्बन्धी मान्यता और दसावतार वर्णन के लिए है। उल्लेखनीय है कि जाम्भोजी की गणना अवतार में न करके उनको "सांपरति सतगुर" (दोहा ४६)–प्रत्यक्ष विष्णु बताया है, जिन्होंने 'जोगरूप' में उपदेश दिया। तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थिति का भी सुन्दर चित्रण इसमें मिलता है। इस दृष्टि से कवि की स्पष्टोक्तियां और उपमाएँ देखते ही बनती हैं। रचना की कतिपय पंक्तियों पर सबदवाणी का प्रभाव प्रतीत होता है[1]। यह जाम्भोजी के जीवन–चरित्र संबंधी कथाओं की पृष्ठभूमि के रूप में है। "कथा औतार पात" का संकेत भी कवि ने इसमें किया है[2]।

(२) **कथा औतारपात**[3] : यह राग "आसा" में गेय १४२ "दोहे–चौपइयों" की रचना है (अपरनाम–'अवतार चिरत भांभाजी का' तथा 'औतारपात का वखांण')। इसमें जाम्भोजी के प्राकट्य, बाललीला तथा उनके उपचार–हेतु किए गए उपायों का वर्णन है, जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

लोहटजी का वन में एक जोगी से पुत्रोत्पत्ति का वर पाना, जांभोजी का उत्पन्न होना, कोई पेय–पदार्थ ग्रहण न करना, पीढ़े पर से "ईस" के वल, पृथ्वी पर पीठ न लगाना, दूध न पीने के कारण भोपों को "आखा दिखाना", उनके प्रपंच, हांसा की अनुपस्थिति में बालक–जाम्भोजी का दूध की "कढावणी" उतारना, उनको "गहला" कहने पर भोपों–ब्राह्मणों आदि से उपचार के लिए पूछना, भोपों का ११ जीव मारना, उनमें एक गर्भवती बकरी से उत्पन्न दो जीवित बच्चों का मर जाना, इस रहस्योद्‌घाटन से उनका मान–मर्दन, पुनः एक श्मशान–सेवी ब्राह्मण से उपचार, उसके पाखण्ड और कर्म–कांड, जाम्भोजी का पानी से कच्ची मिट्टी के दीपक जलाना, पाण्डे का अहंकार–चूर और प्रतिबोध उसको यथार्थ–स्वरूप एक गाय दिलाना और अन्ततोगत्वा वन–प्रवेश।

इसमें कवि अनेक प्रकार से भगवद्–महिमा और अपनी असमर्थता का वर्णन करता है। वह जाम्भोजी को परमेश्वर मानता है जिन्होंने कलियुग में "जोगरूप" में आकर "ग्यांन खड़ग" से (पापों पर) प्रहार किया। ऐसे सतगुरु के गुण कवि ने सुने हैं और चूंकि सत्य–कथन से स्वर्ग–प्राप्ति होती है, अतः वह गुरु के गुण–वर्णन करता है। जाने–अनजाने और

हीरा परखै जूंहरी, सुरति निजं हीं होय।
सुधि सराफी बाहर्‌यां, पारिख लहै न को ॥ ४७ ॥
अमी भोलावै विष पिवै, जीवट होय जीयांन।
केवल ग्यांनी बाहर्‌यो, कूड़ी कथै गियांन ॥ ४६ ॥

१–थळ माथै निवांण करि, नर कांय लोड़ै नीर ?
नाळै पोळै न मिले, रीणायर बीणि हीर ॥ ३६ ॥–सबदवाणी २६ : १५।
कालर बीज न नीपजै, सूकै ठूंठ न फूल।
केवल ग्यानी बाहर्‌यो, कूड़ा कुगरां न भूल ॥ ३८ ॥–सबदवाणी २० : ३; ७१ : १०।

२–जंह परि आयो जगत गुर, सा परि कहूं विचार।
वील्ह कहै औतार को, परचो आलींगार ॥ ५३ ॥

३–प्रति संख्या ५, २७, ८१, १५४, २०१, २०७, २४७। उदाहरण प्रति २०१ से।

अपने मन से हुई झूठ से तो कवि बहुत ही डरता है क्योंकि इससे नरक-वास मिलता है। यही कारण है कि गुरु-गुणगान में अक्षर-मात्राओं की गलती के लिए भी वह क्षमा-प्रार्थी है[1]। इस सदर्भ मे कवि की अन्य रचना 'सच अखरी विगतावळी' और ऐसे ही अन्य कथन भी यदि ध्यान मे रखे जाएँ, तो इनमे वर्णित बातों की प्रामाणिकता पर आस्था होती है और वे अकाट्य लगती हैं। ये इसलिए भी सत्य हैं कि कवि का रचना-समय जाम्भोजी के वैकुण्ठ-वास-समय से विशेष दूर नहीं है। इसमे सतुलित दृष्टि से नपी-तुली और बोलचाल की शब्दावली मे वर्ण्य-विषय को स्पष्ट किया गया है। भोपो के प्रपंच का तो बड़ा ही सुन्दर चित्रण मिलता है। तत्कालीन समाज ऐसे पाखडियो के कारण[2] डूबा जा रहा था। रचना के बीच-बीच मे कवि ने अनेक दोहो मे अपना सिद्धात और नीति-कथन किया है[3]। प्रसगानुकूल होने से इनका हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

कथा गुगळिये की[4] : यह राग "आसा" मे गेय ८६ दोहे-चौपइयों की रचना है,

---

१-एक जीभ मुखं मान्हड़ो, अळप भाव इणि ठांय।
हरि गुण सायर ते घणो, भो मुखि क्यों र समाय ॥ २ ॥
ज्यों पयो समंद तें, नीरि चच छलि लेहं।
सायर ऊणो न थियै, हरि गुण पारिप एहं ॥ ३ ॥
कोटि रूप करि धारी कथा। जोग रूप जग आयो मथा।
ग्यांन पडग पायो परहार। जीता काम क्रोध अहकार ॥ ५ ॥
वील्ह कहै हूं डरपूं घणो। मैं गुण गाभल्यो सतगुर तणो।
कूड कहै सो दोरै जाय। साच कहै सो भिसती थाय ॥ १६ ॥
मन जाणं जै कथणी करू। जाणि अजाणि कूड ता डरू।
और कहू जे और होय। दरगे जाइ न आवै मोहि ॥ १७ ॥
आपर मान जै चूकू काय। बकस करी तिहु लोकां राय ॥ २० ॥

२-धरती उपरि धाम सडि। माकळिया री सोक।
जुगति पपो जागर करै, मुप ता बोलै फोक ॥ ५५ ॥
हीर पयो हीजर करै, डांवा लंगा डंभीड।
गुर हीणा गळ कटणां, न जाणै पर पीड ॥ ५६ ॥
कूडा कूड घडै मनें माहि। केतो हेक जुग मेल्ह्या भरमाहि।
गहणा घातं करै उ वार। धूते धूत्यो वोह ससार ॥ ५७ ॥
वटकै कटकै हो करै हाक। मुप ता बोळै कूड नीफाक।
नाटक चेटक भरमावणी। कहि कुवात सुणावै घणी ॥ ८ ॥
पूरै भोपा वामणा, भरडा मुदराळाह।
सारो करिस्या बाळको, दियो वधाई ताह ॥ ७९ ॥
भोपा की भरमावणी, ओ भव बूडतो जोय।
जीव दिया जीव उजरै, तो नरपति मरै न कोय ॥ ६२ ॥

३-गुरवट सभ वीचारि कर, ततकण त्यायो जोय।
सीध साधु ई कूड की, दवा न राषै कोय ॥ ८ ॥
अमियां गुरड दवार थी, ज्यों विष नृविष होय।
विसन जपंता पाप ज्यों, वोहडि न करियो कोय ॥ १०७ ॥

४-प्रति ३६, ६५, ७१, ८१, १५४, २०१। कंथामार अन्तिम प्रति के पाठ के आधार पर दिया गया है।

जिसमें संवत् १५४२ में पड़े अकाल में जाम्भोजी द्वारा लोगों की सहायता किए जाने का वर्णन है। गूगल से ऊँट बनाए जाने के कारण कथा का यह नाम पड़ा है जिसका सार इस प्रकार है :—

इस साल में पड़े भीषण अकाल से समस्त जीव भूख से व्याकुल हो गए। लोग 'जीवारी' के लिए बाहर जाने लगे। "थळी" में बापेऊ नामक गांव में यादव वंशी भाटियों से निसृत खिलहरी, किसान और रायका लोग रहते थे। वे अत्यन्त अपवित्र रहते, मूर्ख और जीव-हत्यारे थे। उस समय जाम्भोजी संभराथळ पर वास करते थे। वे लोग यदि कुछ उपाय पूछते तो जाम्भोजी अवश्य ही बताते किन्तु उनको उन पर विश्वास ही नहीं था। पाप-कर्मो में लिप्त, भ्रम में पड़े हुए वे लोग कुल की लीक पीटते थे। भूत को तो देव बताते किन्तु "देवजी" का रहस्य नहीं जानते थे। जाम्भोजी को उन पर दया आई, वे उस गांव में गए। लोग उनके सम्मुख तो आए किन्तु अभिवादन नही किया। किसी ने भी उनसे सुपथ की बात नही पूछी क्योंकि वे जाम्भोजी को "गहला" समझते थे। जाम्भोजी ने ही उनसे पूछा-तुम यहां रहोगे या "जीवारी" के लिए बाहर जाओगे ? वे बोले-हम तो भूखों मर रहे हैं, यहां रहेंगे तो और अधिक दुख पाएँगे। बिना अन्न के रहा नहीं जाता, सो विदेश जाकर कुछ समय काटेंगे। जाम्भोजी ने पूछा-'जीवारी' के लिए कितना अन्न चाहिए ? उन्होंने उत्तर दिया-यदि सवा मन अन्न रोज मिल जाय, तो हममें से कोई बाहर नही जाएगा। जाम्भोजी ने "बाईस के तोल का" सवा मन अन्न प्रतिदिन के हिसाब से मुफ्त देना स्वीकार किया और कहा—तुम दृढ़-निश्चय कर प्रतिज्ञा करो कि पशु, पक्षी आदि जीवों की हत्या नहीं करोगे और मन में दया-भाव रखोगे। लोगों के मन में सन्देह हुआ। जाम्भोजी ने दुष्काल-समय तक, एक आदमी को एक ऊँट "छाटी" सहित "इकांतरे" ढाई मन अन्न के लिए भेजते रहने का आदेश दिया। वे इस प्रकार अन्न देते रहे। सावन आता देख कर उन लोगों ने खेती के लिए सिंध से 'बीज' मोल लाने की सोची। खिलहरियों के पास एक ही ऊँट था। उन्होंने जाम्भोजी से उस व्यक्ति के द्वारा एक ऊँट और दो ऊँटों पर जितना बीज आ सके, उसके दाम मांगे। जाम्भोजी ने तीसरे दिन गूगल और घी मंगा कर जंगल में मनसा से एक ऊँट उत्पन्न किया। उसमें गूगल की महक आती थी। कतार में वह ही सरदार था। वे लोग 'बीज' खरीद कर सकुशल सिंध से वापस आ गए। गूगलिया उन्होंने वापस दे दिया जो छूटने पर नहीं दिखाई दिया। आषाढ़ में वर्षा से दुष्काल दूर हो गया। तब जाम्भोजी के संकेत पर लोगों ने अन्न लेना छोड़ा। उनके उपकारों और अपने बुरे कर्मों को याद कर वे लोग पछताने और क्षमा-याचना करने लगे। सिद्धि-परिचय पाकर वे उनकी ज्ञानवाणी सुनने के लिए आने लगे। इस प्रकार जाम्भोजी ने स्वयं को प्रकट कर ज्ञानोपदेश से[1] मुक्ति-मार्ग दिखाया।

विष्णोई-सम्प्रदाय-प्रवर्तन की पृष्ठभूमि के रूप में इसका सर्वाधिक महत्त्व है।

१-अंधेरे चांदिण हुवो, सूझ्या धरंम र पाप।
जांणायो जुगति सूं, सतगुर आपो आप ॥ ८१ ॥

तत्कालीन मरुदेशीय समाज, उसकी मनोवृत्ति और लोगो के तथाकथित धार्मिक विश्वास-मान्यताओं का बडा ही नपा-तुला और सटीक वर्णन कवि ने किया है। इसकी पीठिका पर जाम्भोजी की महत्ता का किंचित् अनुमान किया जा सकता है। उन्होंने ऐसे समाज के उत्थान के लिए अथक प्रयास किया जो केवल ज्ञानोपदेश से मान नही सकता था, वरन् जो अलौकिक सिद्धि-परिचय और चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा ही सुपथ पर लाया जा सकता था। यही जाम्भोजी ने किया और इसी कारण स्वयं को इस रूप मे प्रकट किया। इसका संकेत कवि ने अन्यत्र भी किया है[1]।

लोगो की मनोवृत्ति के धीरे-धीरे बदलने का सुन्दर मनोवैज्ञानिक वर्णन कवि ने किया है। सर्वप्रथम, वे जाम्भोजी को 'गहला' समझते हैं। ऊँट और दाम मागने से पूर्व तक उनकी धारणाओ मे अन्तर नही आया। यदि जाम्भोजी ये नही देते, तो वे फिर बदनाम जाते, किन्तु 'पूरबे' के साथ अपनी इच्छित चीजो को देखकर उनको अचभा हुआ। अब उनकी समझ मे आया कि ऐसे दातार को 'गहला' कहना अपने गवारपने का ही परिचय देना है। दुष्काल दूर होने पर अपने कर्मों और जाम्भोजी के उपकारो को याद कर उनको पश्चाताप हुआ जो अत्यन्त स्वाभाविक था। उनको सिद्धि-सम्पन्न समझ कर वे उनसे अनेक प्रकार की चीजें मागने और पाने लगे[2]। यह देख, सुन कर लोग चारो ओर से उनके ज्ञान-श्रवण के लिए भी आने लगे। इसी पीठिका पर सम्प्रदाय-प्रवर्तन हुआ। लोगो की स्वार्थ प्रवृत्ति और जाम्भोजी की दयाशीलता का परिचय कवि ने 'तोऊ न मेल्है अढाई मणो' अर्द्धाली की पुनरावृत्ति करके दिया है जिसमे वर्षाकालीन मरुस्थल का भी सुन्दर वर्णन है[3]। लक्षणीय है कि लोग गुणज्ञि जमा ऊँट वापस देना नही चाहते थे, किन्तु रख भी नही

१-आयो आप मतेह, जगळि थळि जीवा घणो।
नफरा निरति करेह दाळदि भजण देवजी ॥ २ ॥-"दूहा वील्हजी का", प्रति २०१।

२-लोका मने अनेसडो, गहला एह सभाव।
पास भडारे वाहरयो, अन्न पुजावे काह ?। २२ ॥
पूरब गयो देवजी क पासि। कह्यो सनेसो करि अरदासि।
हेक ऊठ कीता हेक दाम। देव देस्यो तो रहिसी माम ॥ ३८ ॥
जे तू देव न देही ऊठि। तो ए लोक दीघाळै पूठि ॥ ३९ ॥
आयो पूरब दीठो नोय। लोक रह्या अचभे होय।
एवड दान करै दातार। गहलो कहै से लोग गिवार ॥ ५४ ॥
पाप कियो पछुताणा लोग। पहलू घणा बाध्या कम रोग।
अकलि वेहूणा निद्यो देव। अब लाधो सतगुर को भेव ॥ ७३ ॥
गहलो गहलो कह्यो अजाणि। पाछै गुर सू हुई पेछाणि।
भूषा नै पडु चायो वरी। मरम्या लोग लुगाई घरी ॥ ७४ ॥

३-माणि कीणक जदि घाती ठाय। सरम न करही मन न जाहि।
गुर गांही वाचा चूकणो। मेल्है नही अढाई मणो ॥ ६३ ॥
आयो असाढ अति वूठो मेह। पळक्या पाणी वहि गई पैह।
नीलो निदाण अति हुवो घणो। तोऊ न मेल्है अढाई मणो ॥ ६४ ॥
बगरो अर चदळेवो जोय। मार्ग जीमै करै रसोय।
हरी सीनावडी पडिया हाथ। तोऊ न रह पूरब को साथ ॥ ६५ ॥ (शेषाश आगे देखें)

सकते थे[1] । कारण कदाचित् यह था कि यदि वे ऐसा करते तो और अन्न नहीं ले सकते थे । कवि ने खिलहरियों के वापस सिन्ध से आने की त्वरा का भी दृश्य एक छन्द में उपस्थिति किया है :-

वळियो साथ कियो प्रवांण, वांसै मेल्ह्या नदी निर्वाण ।
वांसै मेल्ह्या रोही रंन, कियो पयाणों मेल्ह्या वंन ॥ ६० ॥

कवि की अन्य कथात्मक रचनाओं की भांति इसमें भी सुन्दर और संक्षिप्त संवाद हैं। कथा के बीच-बीच में दोहों में कवि की छाप युक्त निश्छल उक्तियां सहज ही पाठक का आत्म-विश्वास प्राप्त कर लेती हैं[2] ।

(४) **कथा पूल्हैजी की**[3] : यह राग 'आसा' में गेय २५ दोहे-चौपइयों की रचना है । पूल्होजी ने जाम्भोजी से उनके संसार में प्रकट होने का कारण पूछा । उन्होंने कहा— मैं प्रह्लाद से वचन-बद्ध होने के कारण बारह कोटि जीवों के उद्धारार्थ आया हूं । पूल्होजी के मन में संदेह बना रहा । वे उनकी सिद्धि का परिचय चाहते थे । उनकी प्रार्थना पर जाम्भोजी ने स्वर्ग दिखा कर विश्वास दिलाया[4] । इस पर पूल्होजी के ज्ञान-चक्षु खुल गये; संसार के माया-मोह से वे विरत हो गए[5] । अपनी सब सम्पत्ति उन्होंने 'जाम्भाणी' की, दो कन्याओं का विवाह किया और रिणसीसर गांव में मोक्ष-लाभ किया ।

कथा वर्णन और घटना प्रधान है जिसमें संवाद रूप में विषय को स्पष्ट किया

धीणो धापै नीला चरै । मुंहराऊ मुरट वापरै ।
पोटा छुळको चाल्यो घंणो । तोऊ न मेल्है अढाई मंणों ॥ ६७ ॥

१-साथी सोह घरि आइया, आंणी किणंक विसाहि ।
गुणळियो मंनै न वीसरै, रंणि रापिणों न जाय ॥ ६१ ॥

२-वील्ह कहै अभवास वीणि, कोए वडो न वेस ।
किसन चिळत करहो कियो, तिह गुर नै आदेस ॥ ४७ ॥
गुर वाचा पूरी हुई, रह्यो मेल्हांण संतोषि ।
वील्ह कहै जंपी विसंन, तूठो देसी मोषि ॥ ७१ ॥
सागरमणियां एह रतंन, कथूं न कूड़ कथंन ।
भाग परापति संपनूं, चंयामणी रतंन ॥ ७६ ।

३-प्रति संख्या ६६; ६८; ८१; १०४; १५४; २०१; २५७ ।

४-कुणं पुरेष तूं कांम कहि, परगट हुगि संसारि ।
एकळवाइ थळि पड्यो, भगवीं धोती धारि ॥ २ ॥
वारै इकवीसां मिल्यें, ज्यों र संमाहो होय ।
तिह कारणि गुर आवियो, धरंम विवांण संजोय ॥ ५ ॥
देव कहै पूल्हो अवगांन । परचै वीणि परतीत न मांन ।
करूं वीनती सतगुर सांईं । तूं आयो बारा कै तांईं ॥ ६ ॥
कोड़े तेतीसां मूं प्रत पाळो । पून्ह कहै मोहि सुरग दिपाळो ॥ ७ ॥
सुरग न देपूं अपणां नैणां । तो न पतीजूं गुर का वैणां ।
सुरग दिपांऊं तेरै तांईं । सुरग गयो मंन फेरै नांहीं ॥ ८ ॥

५-ओ संसार काळ का पासा । चलंगा देपि चित रहे उदासा ।
सुरगां सुप अगंम अपारा । भुगतें से जागें सुप सारा ॥ १७ ॥

गया है। पूल्होजी जाम्भोजी के सगे चाचा थे। उल्लेखनीय है कि संवत् १५४२ मे सम्प्रदाय प्रवर्तन होने पर, सर्व प्रथम पूल्होजी ही उसमे दीक्षित हुए थे। इससे पूर्व उन्होंने जाम्भोजी से उनकी सिद्धि का परिचय चाहा था, जिसका वर्णन इस कथा में हुआ है।

(५) कथा द्रोणपुर की[1] : राग 'मासा' मे गेय यह ६३ दोहे-चौपइयों की रचना है। इसमें मोती चमार नामक विश्नोई भक्त को द्रोणपुर के राव बीदा से छुडाये जाने का उल्लेख इस प्रकार है :-

मोती चमार द्रोणपुर मे रहता था। वह पूर्ण रूप से विश्नोई धर्म का पालन करता था। वहा का राव बीदा जोधावत जाम्भोजी को नही मानता था। उसको जब इस बात का पता चला कि नीच—चमार, उच्च वर्ग के लोगों से छुआछूत का भाव रखता है,[2] तो उसने उसको तत्काल जला मारने की आज्ञा दी। एक दयावान ने चार पहर की मोहलत उसको दिलवाई। अपने एक भक्त पर सकट आया जान कर जाम्भोजी शीघ्र ही द्रोणपुर के निकट एक 'धोरे' पर आए। पता लगने पर बीदा भी वहां पहुचा। उसने मन मे सोचा —इस आदमी को सिर तो झुकाऊंगा ही नही, ठोकर की लगाऊगा किन्तु जाम्भोजी के पास आते ही उसको सुबुद्धि आ गई। इच्छा होते हुए भी उसने लात नही मारी[3]। वह बोला-'तू तो स्वय को ही देव कहता, मोक्ष की बात बताता और दुनिया को नवाता है। यदि तू सत्य ही देव है, तो वह 'देवपन' आज दिखला'[4]। जाम्भोजी के कहने पर उसने तीन 'परचे'-(१) आको के आम, (२) निवौलियों के नारियल तथा (३) पानी से गाय का दूध, मागे। जाम्भोजी ने ऐसा ही कर दिखाया। बीदे ने सभासदों सहित दूध-पान कर इसका 'मत्र' जानना चाहा तो जाम्भोजी ने कहा—यह भगवदेच्छा पर निर्भर है। बीदे ने पुन: उनके सहस्र शरीर देखने चाहे। इस हेतु लगभग ४० व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न स्थानों पर भेजा गया। उन्होंने जाम्भोजी को हवन करते हुए और विभिन्न लोगो को उनके पाव पडते हुए देखा। यह जान कर बीदे के मन मे भय उत्पन्न हुआ, क्योंकि उसने जाम्भोजी को न पहचान कर अनेक कुवचन कहे थे। अपने दोषों को स्वीकार कर वह बहुत ही पछताने लगा। जाम्भोजी से विमुख होने के कारण उसके कलक लगा। इस प्रकार, बिना किसी कलह के जाम्भोजी ने मोती भक्त को छुडवाया।

कथा मे अलौकिक तत्त्व होते हुए भी मूल मे गुरु की कसौटी और कर्त्तव्य-पालन

१-प्रति सख्या १०, ६५, ६८, ७१, ८१, १५४, २०१,
२०७, २५१। उदाहरण प्रति २०१ से।

२-चाल हुई दीवाण मा, नगरी कुण आचार।
उतिम ता छाटो लियै, मध्यम नीच चमार॥ ९॥

३-पलक एक हुई सुमति मति आई। भलो कियो परिण लात न वाही।
मनसा फेरी बात वीचासै। वाद रूप होय बेठो पासै॥ १६॥

४-की जोगी कोई सन्यासी। को तापस को तीरथ वासी।
को साध को सिध कहावै। कोई भगत भगवत कियावै॥ १८॥
तू आपोई आपरि देव कहावै। गलि परमोधै दुनी नवावै।
जै तू आप सति दैव कहावै। सो देवापण आज दिषावै॥ १९॥

का निदर्शन है। कवि का कहना है कि सेवक पर संकट पड़ने पर यदि गुरु से कुछ भी करते न बने तो ऐसे गुरु की सेवा व्यर्थ है :-

सेवग नैं संकट पड़ैं, गुर ता सरै न काय ।
जिणि गुर नैं लंछंण चड़ैं, सेवा निरफळ जाय ॥ ३ ॥

जाम्भोजी ने ऐसे ही एक अवसर पर अपने सेवक मोती मेघवाल का उद्धार किया था। यह कसौटी गुरु में कितने महान् गुणों की अपेक्षा रखती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। साथ ही कवि ने शिष्य के गुणों की ओर भी संकेत कर दिया है-गुरु में दृढ विश्वास और असीम श्रद्धा। मोती ऐसा ही था :-

साध कहै सुंणि साधवी, सिंवरौ सिरजणहार ।
उवारैं तो उवरां, मरां त मोख दवार ॥ १२ ॥

इसमें आए संवाद तथा कथन-विशेष की पुनरावृत्ति प्रसंगानुकूल है जिससे उनकी प्रभविष्णुता बढ़ गई है। पुनरावृत्तियों में दो प्रमुख हैं :- (१) वीदे का जाम्भोजी को लात मारने का संकल्प जिसे वह अन्त में प्रकट करता है और (२) उसके आदमियों द्वारा देखे गए जाम्भोजी के कार्य-कलापों का और रूप-वर्णन। धातव्य है कि कवि ने वीदे की मनोभावनाओं में होने वाले शनैः शनैः परिवर्तन के सुन्दर संकेत दिए हैं। वह मनहठी, अहंकारी और वादविवादी था[1] तथा जाम्भोजी के लात मारने की सोच कर चला था। पहले 'परचे' से वह आश्वस्त नहीं हुआ। किसी 'अभेदी' व्यक्ति के इस कथन ने कि ऐसा तो तो गोड़वाजिए भी किया करते हैं,[2] उसके संशय को बढ़ावा दिया। उसने दो 'परचे' और मांगे। पानी से किए दूध की मधुरता और स्वाद जानकर लोभ और स्वार्थवश वह पलट गया, इसका 'मंत्र' जानने के बाद छोड़ने को कहा। जब मंत्र न लिखा जा सका, तो सहस्त्ररूप दिखाने का आग्रह किया और आदमी भेजे। संशय अभी तक उसके मन में बना रहा क्योंकि जो लोग वापस आए उनको उसने जोर देकर 'झूठ त्याग कर जैसा देखा वैसा बताने को कहा'[3]। समस्त वृतान्त सुनकर वह शंकित हुआ और कुछ देर तक तो वस्तुस्थिति को स्वीकार न कर सका, किन्तु समस्त घटनाएँ याद आते ही वह भयभीत हुआ और पश्चाताप करने लगा। जाम्भोजी से अब अपनी मनोभावना छिपाने की बात भी नहीं रही, सो उसने सब कह दी। यह समस्त बात कवि ने अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप से कही है।

१-मंमता मांग़ ज मंनि, घणी वाद अहंकार ।
किसन चिळत अवतार का, लहै न आळिगार ॥ १७ ॥

२-भेदी कहै देवजी नहीं सोभा, आंव करै गोड़िया देव झांभा ॥
देव कहै सोह भरंम तियागौ, मंन मानै सो परचो मांगौ ॥ २२ ॥
वीदो कह सोह को मिनंप कहावैं, नीवड़िए नाळेर निपावैं ।
एक सभा मां कहै अभेदी, आ तो छै गोड़ियां री वदी ॥ २६ ॥
वीदो अभेदी रै कहियै वीनो । इंण परचै म्हांरो मन न पतीनो ॥ २७ ॥

३-वीदो गर दीवांणि बइठौ । कहो भाई थे जिसड़ौ दीठौ ॥ ५१ ॥
छंदो भांणि कूड़ मत भापो । जिसड़ो दीठो तिसड़ो दापो ॥ ५२ ॥

बिना "परचे" के तत्कालीन लोग– चाहे वे किसी भी वर्ग के हों, किसी महान् व्यक्ति को ऐसा स्वीकार करने वाले नहीं थे, यह कथा इसका प्रमाण है।

(६) कथा जैसलमेर की[1] यह राग "आसा" में गेय ८७ दोहे–चौपइयों और २० कवित्तों का रचना है। इसमें दिया गया १ कवित्त (सख्या १९)– "प्रथम दया करि भाव आप पर एक गिणीजैं" वील्होजी के "छप्पय" के अन्तर्गत है। इसमें रावल जैतसी द्वारा जाम्भोजी को जैसलमेर बुलाये जाने की घटना का वर्णन इस प्रकार है —

रावलजी ने जैनसमन्द तालाब की प्रतिष्ठा पर यज्ञ कराने का विचार किया। इस आयोजन की सफलता हेतु उन्होंने जाम्भोजी को बुलाने का निश्चय करके अपने एक आदमी को उनके पास भेजा। उन्होंने जाम्भोजी की यह शर्त स्वीकार की– कि वे पूर्णरूपेण उनकी बात मानेंगे*। तब ३२५ ऊँट सजा कर साथरियों सहित जाम्भोजी चले और वासणवी गाव में आए। पता लगने पर रावलजी ने भेंट सजोई और अपन आदमियों के साथ पैदल वहां आकर उनके पांव लगे। जाम्भोजी ने एक कच्चा घडा रावलजी को भेंट किया। वहा उपस्थित ग्वाल चारण ने कई प्रश्न किये– देवजी के साथ वाले किस जाति और कुल के हैं? इन्होंने माथा क्यों मुडाया है? आदि। इनका यथोचित उत्तर तेजोजी चारण ने दिया। रावलजी ने भी तेजोजी की बात की पुष्टि की। सब जैतसमन्द पर उतरे। रावलजी के आग्रह पर जाम्भोजी ने उनसे इन चार[2] बातों के पालन करने का वचन मागा —

१–प्रति सख्या ४०, ६५ ८१, १५४, २०१, २०७, ३३०।

* आगे समस्त उदाहरण प्रति सख्या २०१ से हैं, जहां ऐसा नहीं है, वहा सम्बन्धित प्रति का उल्लेख यथास्थान किया है।

(१) जैत समद पतीठ की, हरष उपनी मनि।
उजवण मुकियारथो भावै देव जिगनि ॥ ५ ॥
सीप दियै साई करू, पाप न सके पोहि।
परच करू वरकति हुवै, तो जिग पूरो होय ॥ ७ ॥

(२) देव कहै रावळ पुछावो। मोय आयै नही अवर को दावो।
मिलिस्यै जोगी नै सन्यासी। मिलिस्यै तापस तीरथवासी ॥ १३ ॥
मिलिस्यै राय घणी ठुकराई। जण परधान घणा छै माहो ॥
मिलिस्यै पढिया पीडत जोयसी। माहरो कहियो करणो होयसी ॥ १४ ॥
आयो सो आप कनै रपायो। जण परधान आपरो चलायो।
आपर अकलि सुमति रूडो। कहिसी कह्यो न भावै कूडो ॥ १५ ॥

(३) आसा पूरण दुष हरण, औसर सारण काज।
गवळ सारै वीनती, था आयां गुर लाज ॥ २८ ॥

२–(१) देवजी कहै थारै ठाकुर आया। नगर नजीक तगोट तणाया ॥
सीण सगा रळि मिलण आया। मीढा बाकर भेंट लियाया ॥ ७६ ॥
आज तगोटी दीसै ताण्या। माहें जीव गुन्ह विण आण्या।
वै मरता थे जीव रपाडो। पहलो वरो सुक्यारथ म्हारो ॥ ७७ ॥

(२) जा जा गाडरि छाळी ल्यावै। तां तां हेज घणो करि आवै।
करि+वीछोहि फरजन मारीजैं। तायै अपज अकारण कीजैं ॥ ७८ ॥
वेम लगै से जीव उबारो। दूजो वरो सुक्यारथ म्हारो ॥ ७९ ॥

+प्रति सख्या ४० मे, प्रति सख्या २०१ में "वर" पाठ है। (शेषांश आगे देखें)

१–आपके सगे-संबंधी ठाकुरों के तम्बुओं में बंधे बकरे आदि बेगुनाह जीवों को मारने से बचाएँ।
२–'बेम लगने वाले' (प्रजननशील) जीवों की रक्षा करें।
३–आपके राज्य में कोई "बावरी" (भील, नायक) किसी जीव का शिकार न करे।
४–किसी चोरी किए हुए 'जाम्भाणी दाग' वाले पशु के राज्य की सम्पत्ति मान लिए जाने पर, यदि उसका मालिक प्रार्थना करे, तो उसको प्राथमिकता देते हुए पशु वापस दिलवाएँ।

रावलजी ने इनका संकल्प लिया और राज्य में तद्हेतु ढिंढोरा पिटवा दिया[1]। इस अवसर पर रावलजी ने कन्या का विवाह भी किया। सभी कार्य जाम्भोजी की आज्ञानुसार किए गए। समस्त आयोजनों में किसी वस्तु की कमी नहीं आई। रावलजी ने अपने देश में विष्णोइयों के बसाने की प्रार्थना जाम्भोजी से की। "जमात" में यह बात सुनने पर लखमण और पांडू ने अपनी जन्मभूमि छोड़ कर, यहां के खरीगा गांव में बसना स्वीकार किया। जाम्भोजी ने उनको अपनी अमानत बताते हुए उनके साथ सद्व्यवहार करने को कहा। रावलजी को आशीर्वाद देकर साथरियों सहित वे संभराथळ पर आगए।

यह घटना संवत् १५७० की है, क्योंकि इसी वर्ष जैतसीजी ने "जैतबंद" का निर्माण करवाया था (देखें– वीरविनोद, पृष्ठ १७६२)। इसका महत्त्व अनेक दृष्टियों से है। बोलचाल की मरुभाषा में गेय यह प्रबन्धात्मक रचना है, जिसमें संवाद और पात्र-विशेष के कथन की पुनरावृत्ति के कारण नाटकीयता का पर्याप्त पुट है। ये प्रसंगानुकूल और संक्षिप्त हैं जिनसे समग्र "कथा" अत्यन्त रोचक लगती है। संवादों में ये प्रमुख हैं :–

(१) रावल और जाम्भोजी के– (क) वासणपी में, (ख) जैतसमन्द तालाब पर "वर" मांगने के समय तथा (ग) जैसलमेर में विष्णोई बसाने आदि के सम्बन्ध में।

(२) ग्वाल चारण और तेजोजी चारण का। इस अन्तिम "संवाद" से विष्णोई

---

(३) जितरी आंण तुहारे दावीं। अतरी बावरी जीव रषावीं ॥ ७९ ॥
अतरी मांहे जीव उबरिस्ये। तां धरम काज घणां ही नर्यस्यें।
अतरी रा थे जीव उबारो। तीजो वरो मुक्यारथ म्हारो ॥ ८० ॥
(४) जांहि चोर चोरी करि आवे। थांरी सीव मां ढांढो ल्यावे।
दाग दीठ जै छै भांभाणो +। चोर जाय हुवै ठाकुर वांणो ॥ ८१ ॥
निरति हुवै वेठिगर आवे। आय परो दीवांणि सुणावे।
उपरि करि नै पाछो दिराड़ी। चौथो वरो मुक्यारथ म्हारो ॥ ८२ ॥
+ यह अर्द्ध पंक्ति प्रति संख्या ४० से है।

१–अ च्यारि वरा सतगुर मांग्या। संकळप करि नै रावळ त्याग्या ॥ ८३ ॥
धंनि धंनि तूं धरमां धंणी, पापा करण प्रहार।
तोडंता जीव उबर्या। कई एक जीव हजार ॥ ८५ ॥
केहक आगळि वेम री, बाळ विछोहे व्रजि।
ढंमके ढंढोरो फिर्यो, मुणियो मोह परजि ॥ ८६ ॥
ढंमके ढंढोरो फिर्यो, मेल्ही आंण दिराय।
बावरि मत को मांडियो, रावळ कह्यो रीसाय ॥ ८७ ॥

लोगो की उत्पत्ति, वेश और जाम्भोजी की महत्ता आदि अनेक बातों के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं का पता भी लगता है[1]। पात्र-विशेष के कथनों में दो प्रमुख हैं, जिनकी पुनरावृत्ति हुई है- (१) जाम्भोजी का कथन जो उनके सेवक ने रावलजी के दरबार मे ज्यों का त्यों सुनाया। (२) उसी सेवक द्वारा रावलजी की स्वीकारोक्ति को जाम्भोजी से कहना। दोनों चारणों के सवाद-समय रावलजी को कही हुई बातो से जाम्भोजी के जीवन-चरित सम्बन्धी जानकारी भी मिलती है। उदाहरणार्थ रावलजी का यह कथन लें :-

मीठ मिलि पालटियै खारा। गुर मिलियै रा ए उपगारा।
गुर पांणी हुतो दूध पियावै।' नीबड़ियां नाळेर निपावै॥ ६५॥

यह राव बीदा वाली घटना से सम्बन्धित प्रसग है। तात्पर्य यह है कि ये घटनाएँ इस प्रसग से पूर्व ही घटित हो चुकी हैं। उल्लेखनीय है कि तेजोजी चारण और लखमणजी गोदारा प्रसिद्ध कवि भी थे। इसमे उनके गुणों का भी पता चलता है:- एक के वाक्-चातुर्य, साम्प्रदायिक-महत्व और ज्ञान का तथा दूसरे के सम्प्रदाय-प्रेम, गुरु-भक्ति और आज्ञाकारिता का। दोनो के विषय मे इतनी जानकारी भी कम महत्व की नहीं है। इसी "कथा" मे यह सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक कवित्त है जिसमे ६ राजाओं का उल्लेख है। ये जाम्भोजी के प्रभाव मे

१—गुवाळ कहे : देवजी रै साथै मगाती। कुण जाति नै कुण नीमाती।
कुण कुळी माहे उतपंना। चारण कहै मुणावो काना॥ ५१॥
तेजो कहे : प्रथमे तो जाट कुळी माहे उतपना। गुर मिळियो जु हुवा सुग्याना।
पाप हुवा पाळटिया परिया। उतिम संगति हू निसतरिया॥ ५२॥
सतपथ मेल्हि न जाहो जूवा। कुळ पालटे नै भूमळ हुवा॥ ५३॥
गुवाळ कहे : जीकारो जाणै नही, पर कुवर का वाणि।
वतळाया हो हो करै, नूमळ कहि न बखाणि॥ ५४॥
सीसो तो मोहटो विकै, नही कचण रै मोलि।
जाट म जाई जाट छै, बारहट कना न बोलि॥ ५५॥
आपर अकनि मु आपरी, गुण वायके सुजाण।
माथो काय मुडाडियो, एथ कणि हुवो अजाण॥ ५६॥
तेजो कहे : माथो तो निहुं अगळा, ऊगै नही मुवाळ।
म्हे गुरमुखि मुड मुडाडियो, अळियो म चवि गुवाळ॥ ५७॥
चौपई : मुदरा देपी आदेस कहीजै। माळा देपि राम राम कहीजै।
मुसलमान सलामा लेप। राह मारग का अं ही भेप। ५८॥
नीगुर सुगुर की परप लहीजै। वानूं देपि वदना कीजै।
मुंडत भेप भगत रो वानू, आनुं नूं वणि करै सुग्यानू॥ ५९॥
मुड मुडाया वेचर नींदै। पलंतर की बात न बींदै॥
कोडि तिनाणवै नरपति राया। गुर मिलियो जा मूंड मुंडाया॥ ६०॥
गुर कै सबदि सुमपर रीधा। कुल पाळटि नै सत पथ सीधा॥
कुळ माहे म्हे हुता मारण। करता अनरथ जुलम अकारण॥
कुळ पालटि नै कीया जूवा। पाप मरहरि नै चारण हुवा॥ ६१॥
दुहा : मारण ता चारण हुवा। मंन ता मेल्हो मार।
चारा पणि मारा नही। अै सतगुर का उपकार॥ ६२॥

थे या उनको गुरु मानते थे :-

दिल्लो सिकंदर साह, दे परचौ परचायो।
महमंदखां नागौरि, परचि गुर पाए आयो।
दूदो मेड़तियो राव, आय गुर पाय विलग्गो।
रावळ जैसलमेर, परचतां सांसो भग्गो।
सातिळ संनमुखि आय, सुचील जित हुवो सिनांनो।
सांग रांण सुणि सीख, जका गुर कही स मानी।
छव राजिंदर के के अवर, आचारे ओळखियो।
वील्ह कहै मांगो पुंन्ह, जांह मुकति नै हाथो दियो॥ १८॥

रावलजी के श्रद्धा और प्रेम भरे उद्गार, उनके हृदय में उत्तरोत्तर विकसित होती हुई दास्यभाव की भक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं। एक कवित्त में कवि ने जाम्भोजी की "सहनाणी" और "पारिख" भी बताई है[1]। रावलजी की कन्या के विवाह सम्बन्धी कतिपय छन्दों से जैसलमेर के राजघराने की तत्कालीन रीति, नीति और विवाह-पद्धति का अच्छा परिचय मिलता है। चौथे "वर" से स्पष्ट है कि पशुओं पर "जाम्भाणी दाग" लगाने की प्रथा इस समय तक बहु प्रचलित हो चुकी थी। अन्यत्र भी वील्होजी ने इसका संकेत किया है[2]। जैसलमेर राज्य में सर्वप्रथम विष्णोई इसी समय बसे थे। जाम्भोजी और विष्णोई सम्प्रदाय के उत्तरोत्तर फैलते हुए प्रभाव का पता इससे लगता है। इसमें संक्षेप में ऊँटों और उनकी सजावट का भी उल्लेख किया गया है,[3] जो डेल्ह कवि-कृत "कथा अहमंनी' में वर्णित 'सांढों' के वर्णन से तुलनीय है।

(७) कथा श्रोरड़ां की[4] : यह राग "आसा" में गेय ३२ दोहे-चौपइयों की रचना

१-सतगुर पारपि एह, प्रथंमि मुपि कड़ न भापै।
झुरै नहो दसूं दवार, पांच इंद्री वसि रापै।
पुख्या तिसनां नींद, ताहु रै मूळि न व्यापै।
प्रति न छिपै पाप, पुंन छिपै गुर आपै।
कुपह कुंमारग वरजि करि, सुपह साच करणी कहै।
सहनांण सुगुर तणा सुरता सुंणो, प्र मंन की प्रगट कहै॥ १७॥

२-अन्यत्र भी वील्होजी ने इसका संकेत किया है :—
अपए नांव चौपदा, जोपी गळ पीसि जाय।
वोहत दिनां का वीछड्या, दाग पिछांणी आय॥
अपणां किया उवारि ल्यौ, मेटो अगिला पाप।
दरगै सूं दागेल हुवा, मसतगि दीन्हो छाप॥-छुटक साखियां, प्रति २०१।

३-उजळ वागा सुं हयेयारा। माता ऊंठ र धंणां सतारा।
कूंची साज नै वरगे सुधा। सांमि साथ नै संत स मुंधा॥ ३५॥
स्य सारिपी करै सभाई। कसणे सीरप डोरि वंणाई॥ ३६॥
ऊंठ सिणगारि किया ज्यौं उभा। झोळ साथै सोहावै सोभा॥ ३७॥
ऊंठ तीन्यसै और पचीसा। महमां धंणी करै जगीसा॥
झोलो झुलरि मुंहरै छाजै। अनंत कळा सूं आप विराजै॥ ३८॥

४-प्रति संख्या ३९, ६५, ७१, ८१, २०१।

है। प्रति संख्या ३६, ६५ और ८१ में अन्त मे यह दोहा अतिरिक्त है :—

अमियां गरुड दवार थी, ज्यों विख निरविख होय।
विसन जपता पाप ख्यो, बोहड़ि न करिमो कोय ॥ ३३ ॥

इसमें सोत (सोतर) गाव के झोरड जाति के रावण और गोयद के बैल की चोरी करने पर जाम्भोजी द्वारा छुडवाये जाने का उल्लेख है। चोरी इनका पेशा था। जाम्भोजी से भेंट होने पर ये मुंडित होकर विश्नोई पथ मे तो आ गए किन्तु मन मे गुरु की परीक्षा न करने के कारण संशय रह गया। सोचा, हम चोरी करेंगे, यदि पकडे गये तो जाम्भोजी को सच्चा गुरु मानेंगे। योजनानुसार उन्होने एक सफेद रग का बैल चुरा लिया। पता लगने पर लोग शीघ्र ही उनके समीप जा पहुचे। अब तो घबरा कर उन्होंने जाम्भोजी से अपने उद्धार की प्रार्थना की। जाम्भोजी ने सफेद बैल को काले वर्ण का कर दिया। विश्नोई जान कर लोगो ने चोट तो नही मारी किन्तु पकड कर जाम्भोजी के पास झगडा निपटाने हेतु ले गये। उन्होने बैल को पुन: सफेद कर दिया। इस पर दोनों का अज्ञान दूर हुआ। जाम्भोजी ने उनके पूर्व-जन्म की बात बताते हुए दुष्कर्म त्याग कर सुकृत करने का उपदेश दिया।

कथा से जाम्भोजी की सिद्धि और महत्ता का परिचय मिलता है जिसका उल्लेख कवि ने प्रथम और अन्तिम–दो छन्दो मे किया है[1]। साथ ही इससे उनकी कतिपय विशेष शिक्षाओं का भी पता चलता है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि तत्कालीन समाज मे—"मुंडित–वेश विश्नोइयों" का विशेष सम्मान था। उनके अपराधी होने पर भी लोग साधारणतः उनका मान ही रखते थे। इनमे रावण और गोयद को विश्नोई जान कर ही उन्होंने चोट नही लगाई थी। सवाद और कथन–विशेष की पुनरावृत्ति से कथा मे रोचकता और नाटकीयता भी आगई है।

(८) कवत परसंग का (प्रति सख्या २०१ मे). यह १३ कवित्तो (छप्पय) की रचना है। इसमे यत्र-तत्र छन्दोभग है। रचना मे अतिथि–सत्कार की महत्ता बताई गई है। एक बार जाम्भोजी परीक्षा हेतु किसी गाव मे पहुंचे और एक घर में भोजन की प्रार्थना की। पर्याप्त भोजन तैयार होते हुए भी स्त्री ने इन्कार कर दिया। एक दूसरे घर की स्त्री ने उनको सादर इच्छानुसार भोजन करवाया। समराथळ पर जाम्भोजी ने इस स्त्री की सराहना की।

पहले वाली विश्नोइन किसी गांव में आई तो उसने जाम्भोजी के दर्शनों की इच्छा प्रकट की किन्तु उसको आज्ञा नही मिली। इस पर उसने अपना गुनाह जानना चाहा तो जाम्भोजी ने कहलवाया—तुमने असत्य–भाषण किया है और भूखे अतिथि का सत्कार नही किया। क्षमा-प्रार्थना किए जाने पर उन्होंने कहा—स्वभाव नही बदला जा सकता और अपनी करनी का फल प्रत्येक को भुगतना पडता[2] है। जाम्भोजी की इस बात से पथ की

१–करूं सुगर नै वदना, मेटै अघ अपराध।
मधिम ता उतिम किया, चोरा हुंता साध ॥ १ ॥
साध सगति थर सतपथ, भाग परापति लाध।
वील्ह कहै धन्य सो गुर, चोर भी कीया साध ॥ ३२ ॥

२–आप कहै थे इम मुंणी, रग काळा कदे न रता। (शेषांश आगे देखें)

शोभा बढ़ी[1] ।

इसमें गृहस्थ के लिए दो गुणों-अतिथि-सत्कार और सत्य-भाषण पर बल दिया गया है। साथ ही धर्मपालन में सामर्थ्यानुसार सतत जागरूकता की आवश्यकता और कर्मफल भोग की अनिवार्यता भी बताई है।

(९) कथा ग्यांनचरी[2] : यह १३० दोहे-चौपइयों की मुक्तक रचना है जिसमें ज्ञानाचरण संबंधी बातों का वर्णन है। इस वर्णन को मोटे रूप से पांच शीर्षकों के अन्तर्गत लिया जा सकता है। आदि के १५ छन्दों में भगवद्-महिमा वर्णन के पश्चात् मूल बात आरम्भ की गई है।

(१) पाप-पुण्य विचार[3] । यह विधि-निषेधात्मक रूप में किया गया है (छन्द १६-३५)।
(२) अगति (नरक वास) के कारण[4] । जीव अपने किए कर्म याद करता है जो 'अगति' के कारण हैं (छन्द ४०-५२)।
(३) नरक-दुख-वर्णन[5] (छन्द ५९-९२)।
(४) स्वर्ग-प्राप्ति के उपाय (छन्द ६६-१०४)[6] ।

साहित्यिक दृष्टि से ज्ञानचरी का उतना महत्त्व नहीं, जितना धार्मिक दृष्टि से। "सबदवाणी" के पश्चात् सम्प्रदाय के प्रमुख आचार-विचार, तत्त्वचिंतन और धर्म-नियमों का आधार यह रचना रही है; इसमें इनका प्रामाणिक विवरण मिलता है। परवर्ती कवियों ने इसका किसी न किसी रूप में अनुकरण किया है। उदाहरण के लिए सुरजनजी कृत 'ग्यांन-महातम', 'ग्यांन तिलक', और "धरमचरी" को देखा जा सकता है। रचना का प्रमुख उद्देश्य

कायंम कहे वळि कलंम, परा पत चीत वचीता।
भूठली नै भांभांणी तंणी, मांडियो विहुंवां तंणां माहे मता।
उण नै लिपिया भारी भूप दुप, उण नै इधक सुरग सुप अनंता।
नुंणही होयसी सूकरी, लंहणी पूरी न लहै।
आ लीळ करेसी सुरग मां, गुंण अवगुण ए गुर प्रछ कहै ॥ ११ ॥
१-मुजस मुणाई सोभ, पंथ ओपम चडै इधकाई।
धन्य अंम दियै सो धन्य, बीधि सेई लहै वटाई।
बळे को चेतै जीव, चेतिस्यो चेतंणहारो।
वीणां वीगसै मंन, लपंण उजाळे लारो।
वाहियै वीज नीपज निछै, वीणि वाह्यं रहियै चुसा।
मापि कुमापि दहुवां तिणी, ओसर वेण सुणिजै असा ॥ १३ ॥
२-प्रति संख्या १५२ (घ), २०१ तथा ३४६।
३-संभळि सुगुर तंणां उपदेस। पाप धरंम का कह नवेस।
मनि अभिवांन न आंणै अव। ओपति पपति संभाळे सव ॥ १४ ॥
४-जो गुर कह्यो स मंनि करि, मेल्हा मंनि आपांण।
जिवडा डर करि सांभळी, अगति तंणां इहनांण ॥ ३६ ॥
५-दोरै तप अकारणी, दुप भाळाहळ देह।
जो करतो मंनि मोकळे, ते फळ पाया एह ॥ ५८ ॥
६-गुर दया करि दापवै, हेलै न गंवि अयांग।
हीय हरप करि सांभळी, सुरग तंणां सहनांण ॥ ९५ ॥

पाप और पुण्य का वर्णन करना है। इनका ज्ञान होना और तदनुसार आचरण करना लोक और परलोक सुधार के लिए परमावश्यक है। कवि ने अन्त मे अत्यन्त संक्षेप में एक प्रकार से "कथा" का सार दे दिया है[1]। उसने दोनों 'पंथ' बता दिए हैं, यह स्वयं मनुष्य पर निर्भर है कि वह कौन सी राह अपनाए[2]। रचना में "गुरवट"[3] पर चलने तथा झूठ न बोलने का अनेक बार उल्लेख किया गया है। इससे जाम्भोजी और सम्प्रदाय पर कवि की दृढ़ आस्था का पता चलता है। अन्तिम उल्लेख "सचअखरी विगतावळी" के महत्त्व की ओर संकेत करता है। "कथा" के बीच-बीच मे कई दोहो मे संसार की नश्वरता, जीवन की क्षण-भंगुरता आदि की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है[4]। प्रभावान्विति के लिए यह शैली प्रसंगानुकूल और उपयुक्त है। स्वयं कवि की दृष्टि मे यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है जिसका सोल्लास उल्लेख उन्होंने अपनी अन्य कृति—"विसन छत्तीसी" मे इस प्रकार किया है :—

> उदिम कर रे आदमी, उदिम दाळिद जाय।
> जीभ विसन को नांव ले, अं निस सांमि धियाय।
> अं निस सांमि धियाय, ध्यांन धरि हरि सूं राचौ।
> करौ किसन की सेव, मेल्हि दे मनसा काचौ।
> ग्यान कथा मां सभळो, तीनि लोक को राय।
> विसन जपौ उदिम करौ, पाप पराछित जाय॥ ४॥

(१०) *सच अखरी विगतावळी*[5] : जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है (सचअखरी=सत्याक्षरी) इसका वर्ण्य-विषय सही शब्दो की "विगत" देना है। इसमे दैनिक व्यवहार और बोलचाल मे प्रयुक्त होने वाले अनेक अशुद्ध शब्दों और उक्तियों के साथ उनके सही प्रयोग बताए हैं। यह ५४ दोहे-चौपइयों की रचना है। नीचे शुद्ध और अशुद्ध प्रयोगो के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं :—

१-टाकर साकर मान एक। गुर फुरमाई वहै वमेक।
जीवत मरै सोई सुप लहै। गुर परसादे वील्ह क कहै॥ १२७॥
पाप ता डरिस्यै, करणी करिस्यैं, कारिज सरिस्यै ताह तणा।
पार गिराए वास लहिस्यैं, सामळियो साधु जणां॥ १२८॥
साभळि प्राणी सुगुर वाणी, साच करि हिरदै सही।
गुर मुषि जांणी, मति परवाणी, ग्यानचरी वील्है कही॥ १२९॥

२-सगते धम्म करा दियैं, तां धरमा उपरि भाव।
दोन्यौं पथ बताइयै, मनि भावै जिह जाह॥ १३०॥

३-कुळ की कुळवटि छाडि करि, गुरवट जे चालति।
डावौ डाडो परहरै, विसति विवाणि चडति॥ ९४॥

४-मनवा मरण समाळ रे, जुग सपनतर जाणि।
निहचै निरवाहो नही, जीव सहेसी हाणि॥ ३७॥

५-प्रति संख्या ६५ (८); ६८ (फ), ८१ (ग); २०१। प्रथम तीन मे कतिपय छन्द त्रुटित हैं। उदाहरण अन्तिम प्रति से है।

अशुद्ध	शुद्ध
१–आंधी झांख.	वाव पुंवंण (वायु, पवन)
२–तैं कितकै वरसायो मेह ?	तूं कित थो जदि वूठो मेह ?
कहै–वरसायो उमकै गांय ।	मेह मंहीं हुंतो उंण ठांय ।
(प्रश्न–तूने मेह कहां वरसाया ?	(प्रश्न–जब मेह वरसा तब तू कहां था ?
उत्तर–कहता है–अमुक गांव में वरसाया	उत्तर–मेह में मैं अमुक स्थान पर था)
३–वाहळो वुहो, खाल वुहो	पांणी वुहो ।
(वरसाती नाला वहा) ।	(पानी वहा) ।
४–नदी वुही आई	पांणी वुहो आयो ।
(नदी वहती आई) ।	(पानी वहता आया) ।
५–वळद पीयो ।	वळदे पांणी पीयो ।
(वैल पिया) ।	(वैल ने पानी पिया) ।
गाय पीवी ।	गाए पांणी पीयो ।
(गाय पीयी) ।	(गाय ने पानी पिया) ।
६–दो पौ पीयो, चौ पौ पीयो	दो पौ पांणी पीयो, चौ पौ पांणी पीयो ।
(आदमी पिया, चौपाया पिया) ।	(आदमी ने पानी पिया, चौपाए ने पानी पिया) ।
७–अगनि, आगि	वसंदर देव ।
८–वसंदर वाल्यो	वसंदर जगायो ।
९–खोडा खाड काढ्या	अंन काढ्यो
(खलिहान निकाला) ।	(अनाज निकाला) ।
१०–खोडा खाड उघाड़्या	खाढ उघाड़ि र काढ्यो अंन
(खलिहान उघाड़ा) ।	(खलिहान उघाड़ कर अन्न निकाला) ।
११–पंथ कित जयसी ?	इण पंथ जाईजै किणि गांय ? अथवा
ओ पंथ उंमक गांय जयसी ।	किस गांव को पंथ ।
(प्रश्नः रास्ता कहां जाएगा ?	(इस रास्ते से किस गांव को जाया जाएगा ?
उत्तरः यह रास्ता अमुक गांव जाएगा) ।	अथवा (यह) किस गांव का रास्ता है ?) ।
क्योंकि, पंथ कितकै आवै नहीं जाय ।	(रास्ता न कहीं जाता और न आता है) ।
१२–मारग वुहो	दोपाया पंथे वहै ।
(मार्ग चला)	(आदमी मार्ग पर चलता है) ।
	चौपाया पंथे वहै
	(चौपाया मार्ग पर चलता है)
१३–पंथी कहै–पुळियो पंथ	कहै मारग चाल्यो आयो ।
(पथिक कहता है–रास्ता चला)	कहता है–(मैं) मार्ग चल कर आया हूं ।
१४–पंथी कहै–गांव आयो	कहै–आपंण गांए आयो

(पथिक कहता हैं–गांव आया)। — (मैं गांव आया)।

१५–गाय वळद चीना — खड चारो चोनू
(गाय बैल खाया)। — (चौपाए ने खली या चारा खाया)।
मीढा गाडर वाकर छाळी चीनां
(मेढा, भेड, बकरा, बकरी खाया)।
साढि ऊठ घोडा घोडी चीनां
('साड', ऊँट, घोडा, घोडी खाया)।
चौपं चोनू
(चौपाया खाया)।

१६–हू जीम्यौ, तू जीम्यो — मैं जीम्यो तैं जीम्यौ।

१७–राति थकी कहैं–उगो सूर
(रात्रि के होते यह कहना कि सूर्य उदय होगया)।
उगं सूर कहैं–जे राति
(सूर्योदय होने पर यह कहना कि रात है)।
दीसै सूर कहैं–सझ पई
(सूर्य के दीखने यह कहना कि साझ पड गई)। — सूरज ओल्है आयो मेर
सवेर हुवो — (सूर्य की ओट मे सुमेरु आगया या
(सवेरा होगया)। — सूर्य सुमेरु की ओट मे आगया)।

दिहुवं नें दिहुवो कहे, सझ पई नै सझ (दिन होने पर दिन और सध्या पडने पर सध्या कहना चाहिए)।

१८–गाडो गाडी हाक्यो — बळद हाक्या
(गाडा, गाडी को हाका) — (बैल को हाका)।

१९–बळद मर्‌या — छाटी छाली
(विणजारा कहता है–बैल मरा) — (छाटी भरी, बोरा भरा)।

२०–नर नै मादी कहै अजाण,
साच झूठ न बोलै छाण
(अनजान लोग नर को मादा कहते हैं।
मादी बोलै नर कहैं,
नर नू मादी कहत।
भेद विना सतगुर तणै,

निगरा कूड़ पडंत।
(जिसको मादा बोलना चाहिए
उसको नर कहते हैं)।

२१–तीतर तीतरी स्याळ र स्याळी,
हिरणी हिरणां कहैं संभाळी।
चिड़ी चिड़ो दोय नांव कहै,
परहरि कूड़ साच संग रहै।
(तीतर–तीतरी, शृगाल–शृगाली,
हरिण–हरिणी, चिड़ा–चिड़ी को
उनके लिंग–भेद के अनुसार कहने
वाले सत्य बोलते हैं)।

२२–दुबली भेंस और गाय को 'निबली'
या 'अधारी' कहना चाहिए।

२३–धीणो दुही (दुधारू दुहा)।
धीणो मेली दूह्यो दूध ('धीणे' से दूध दुहा)

२४–सेवणी रिडै (हांडी, 'कढावणी')
सीजती है।
अंन र पांणी रिडै (अन्न या पानी सीजता है)

२५–वंणि चुंणी (कपास का पौधा चुना)
चुंणी कपास (कपास चुनी)

२६–खेत मांहि चौपो पड्यो
(खेत में चौपाया पड़ा)
खेत मांहि पठो वड्यो
(खेत में पट्टा घुस गया)।

२७–खाधो खेत
(खेत खा गया, जिसमें रेत
पड़ी है)।
खड़ अर अंन चरियो।
(खली और अन्न चर गया)।

२८–गांव वुठो
(गांव बरसा)
वुठो मेह
(मेह बरसा)।

२९–घांणी चूरी
(घांणी को चूरा, दला या मसला)।
तिल चूर्या, जो चूरीजै सोई कहणा।
(तिल चूरा, जो वस्तु चूरी जाए उसी का
नाम लेना चाहिए।

३०–आटो पीस्यो
(आटा पीसा)
अंन पीस्यो
(अन्न पीसा)

३१–दालि दळी
(दाल दली)
जो अंन चीर्यो सोई कहणां
(जो अन्न दला जाए, उसी का नाम कहना
चाहिए।

३२–जिस बर्तन में जो वस्तु रहती है, वह उस वस्तु का 'ठांव' (बर्तन) कहलाता है, लोग
भूल से वस्तु को बर्तन कहते हैं। पहले वस्तु का नाम कहना चाहिए; वह जिसमें है,
उसको उसका बर्तन कहना चाहिए।

३३-ढाचो घडा लादो
(ढाचो, घडा लादो)।

३४-खळो खाधो
(खलिहान खा गया)
वाडो पाधो
(वाडा खा गया)

— — ॰ —

३५-घोड़ा ऊ ट मीडो
(घोड़ा, ऊ ट कसो)

लादण लादणां लादो
(पशु पर लादा लादो)।

ग्र न र चारो चीनो
(अन्न और चारा खा गया)।
गौत चरीजे
(गौत चरा)
चारो चीन्हो
(चारा खायो)
(वाडे मे के पेड़ चरा)

पूठि उपरि माडियं पलाण
(इनकी) पीठ पर 'पलान माडो'।

केवल विश्णोई साहित्य में ही नहीं, सम्पूर्ण मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य मे यह अपने ढग की अनोखी रचना है। भाषाशास्त्र के क्षेत्र मे निर्विवाद रूप से इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ने बडी सूक्ष्म दृष्टि से दैनंदिन लोक-व्यवहार मे प्रयुक्त एव प्रचलित बोली और उसके शुद्धाशुद्ध प्रयोगो की परख करते हुए उसे सोदाहरण स्पष्ट किया है। बोलचाल मे जिन छोटे-मोटे अशुद्ध प्रयोगो की ओर साधारणत किसी का ध्यान नही जाता, वील्होजी ने उन्ही की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है, जिसको पढकर अनपढ और साधारण आदमी भी अपनी बोली पर सतर्कता से विचार करने को बाध्य हो जाता है। इसमें लोक-भाषा की लाक्षणिक शक्ति और अर्थ का सहज ग्राह्य और सुन्दर रहस्योद्घाटन किया गया है। इससे वील्होजी का मरुभाषा के मार्मिक ज्ञान तथा उनकी तल-स्पर्शिनी और व्यापक दृष्टि का पता चलता है। लोक मे शुद्ध भाषा प्रयोग और व्यवहार उनका ध्येय है, जिसकी सार्थकता वे इस प्रकार सिद्ध करते हैं —मोक्ष प्राप्ति के इच्छुकों को गुरुवाणी से ज्ञान ग्रहण करना चाहिए, गुरु ने झूठ त्याग कर सच बोलने को कहा है[1], और जैसे विष्णु नाम सत्य है वैसे ही सतगुरु जो कहते हैं, वह सत्य होने के कारण माननीय होता है[2]। जिसकी पहचान सत्य से है, मोक्ष का अधिकारी भी केवल वही है[3], अत सत्य बोलना चाहिए। जैसे व्यापारी वस्तु को तराजू से पूरा तोलता है, वैसे ही शब्दों को पूरा तोलना चाहिए। कम तोलना और पूरा बताना, झूठ बोलकर सच कहना नही चाहिए[4]। प्रस्तुत रचना म कवि ने यही बताया है। इसके अतिरिक्त इसमें तत्कालीन मरुदेशीय समाज की

१-जे जण कर मुगत की आस। गुरवाणी सभळ परगास।
फुरमायो साचो बोलणो। कूड बोल्यै अवगण घणो॥ ४॥
२-साचो नाव विसन को, सतगुर कह्यो स साच।
गुर सोई सत वदियो, जीह की अवचळ वाच॥ १॥
३-साच पियारो साम्य दरि, सति साच दीवाणि।
मुरा सभा सो साचरै, जिह साच सू पिछाणि॥ २॥
४-जह वोपारी तोलणो, तापर पूरो तोलि।
ओछो दे पूरो कहै, अतरो कूड न बोलि॥ ४८॥

झांकी के भी दर्शन होते हैं। वील्होजी का भाषा-ज्ञान और बोली-सुधार का यह प्रयास हिन्दी के सन्त-भक्ति-साहित्य में विरल है। विष्णोई साहित्यकारों में भी केवल केसोजी ही इसके अपवाद हैं।

(११) साखी[1] :- कवि की भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में गेय निम्नलिखित दस साखियाँ प्राप्त हुई हैं:—

१-आवो मिलो साघो मोमिणों, रळि मळि जंमूं रचांय। १। पंक्ति १२, कणांकी, मुहव।
२-भंणों गुंणों गुंणवंतो देव जेह के गुणे न लाभे छेव। पंक्ति २२, कणां की, सुहव।
३-वावो सांभळे जै छै वागड़ देस, पोहमी पीतंमर आवियो। ५ छन्द, छंदां की, घनांसी।
४-दोय तरवर इह वाग मां, एक पारो एक मीठ। ५ दोहे।
५-करि क्र पंण कहियै विसनोई, घरंम नेम तांह वुत न होई।
घरंम छुह न चाले जुता, घरंम हारि वे दीन विगुता। १० चौपई, राग धासा।
६-गुर तारि वावा जिवड़ो लोभी लवधी खूनी, एणि खून किया वोहतेरा।
पंवित्र १०। कणांकी, राग जंगळी गोड़ी।

पहली साखी "जम्मे की" (द्रष्टव्य-विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय) होने से विषय, भाव और भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है[2]। दूसरी और तीसरी[3] में विविध प्रकार से जम्भ-महिमा, चौथी में चार त्याज्य दूषण और चार ग्रहणीय गुणों का उल्लेख और पाँचवीं में धर्मभ्रष्ट विष्णोइयों के पाप-कर्मो का निर्भीकतापूर्वक वर्णन किया गया है।

१-प्रति संख्या २; ४; ६७; ६८; ७६; ९३; ९४; १४१; १४२; १४३; १५१; १५२; १९१; २०१; २१५; २३६; २६३; २९१; ३४८।
२-साच सिदक जंमले वोहर्रा, विसंनो विसंन जपांय ॥ २ ॥
विसंन जप्यां सुप सांपजे जंम गंजंण ना छुटांय। ३।
जां वाह्यो तांही लुंण्यो, विण वाह्यां न लुणांय। ४।
लुंणी चुंणी साघो मोमिणो, संवळ गांठ कजांय। ५।
कजे संवळो वेड़ै चढ़ां, भुंय जळ ज्यों र लंघांय। ६।
वात वीज न वीजियो, पाछे हाथ मळांय! ७।
हाथ मल्यां ता पाछै क्या हुवै, मुकेल मुके जांय। ८।
सुपहा सुरगे नावड्या, कुपहा दोरै जांय। ९।
मंनसा भोजंन मंन संवी, हरि दीदार मिलांय। १०।
फुलो हळवी पाटो कुंवळी, वीजण इयक पिवांय। ११।
वील्ह कहे गुर भाइयो, करणी साच तरांय ॥ १२ ॥
३-एक छन्द इस प्रकार है:-
मोमिणां मंन्यै मोटी आस, सांचां नै सतगुर तारिसी।
देसी अंमरापुरि वास, आवगुंवंणि नीवारिसी।
आवा त गुंवंणि नीवारिसी, जे मंन सुव घ्याइयो।
जीवत मुवा पाक हुवा, ते अंमरापुरि पाइयो।
सुव गुर की आंण वहिस्यै, तांण थंदे हारिसी।
वील्ह जंपे आस कीजे, सांचा नै सतगुर तारिसी ॥ ५ ॥

छठी मे भावभरा दैन्य और आत्मनिवेदन है। यह कवि ने सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पूर्व मुकाम-मन्दिर पर गाई थी। (द्रष्टव्य–पृष्ठ सख्या ६४१)।

. ७–आल्हांणी आतम थकै, आळोचवो मन मांहि।
जा जां जुग मां जीवियै, ते दिन सुख मा जांहि॥ १७ दोहे।

इसको साखी 'तिलासणी की' (प्रति सख्या १६१ मे) कहा गया है। इस गाव के विष्णोई पूर्णरूपेण धर्म पालन करने वाले थे। उस समय खेजडली गाव भाटी गोपालदास का था। वहा के करपो तथा अन्य भाटी खेजडी वृक्षों को काटने लगे। जब इसकी खबर इस गाव के विष्णोइयो को मिली तो धर्म रक्षार्थ मरने का उचित अवसर समझ कर वे वहा के पच—भाटी के दरबार म गये। सुबह स्नान कर उन्होने मरने के लिए तलवारें निकाल ली। सर्व प्रथम खीवणी, तत्पश्चात् मोटो और नेतू नैण ने अपने प्राण[1] दिए।

८–पहळ मेळै की मांड हुई, सोळा सै अठताळ।
तेरा धरमी धरम करै, तीरथ कल्यो उजाळ॥ ७ छन्द, छदा की, राग सिंधू।

जाम्भोळाव पर सर्वप्रथम मेले का आरम्भ सवत् १६४८ के चैत वदि म वील्होजी ने किया था। ऐसे ही एक मेले म एक ब्राह्मण किसी की "दोवड" चुराकर भागा पर पकड लिया गया। उसको भाखरसी राजपूत ने अपने पास रख लिया। इस पर राजपूतो और विष्णोइयो म लडाई होने लगी[2]। चुखनू विष्णोई ने भाखरसी को मार डाला। लडाई शान्त कराने के लिए धानू पूनिया विष्णोई ने सबके बीच तलवार से सिर काट कर आत्म-बलिदान दिया। यह देख कर राजपूत भाग गए और लडाई बन्द हुई। जाम्भोजी ने "आपो' मारने का कहा था, सो "गुरमुखि" धानू ने स्वय को मार कर ऐसा कर दिखाया। यह घटना सवत् १६६४ के चैत वदि १४ को हुई थी।

१–वन सिधार्यो भाटिया, कुबधी कागा जोय।
जीणि उपरि मोटो पड्यो, सुरगि पहुतो सोय। ४।
खेजडलै करपो वसै, भाटी गोपाल दास।
सक न मानै करपो देव री, वन री करै विणास॥ ६॥
जमाते आळोचियो, मरणो इण परि थाय।
इण ओसरि मरियै नही, नेकी रहै न काय॥ ११॥
पोह फाटी पगडो हुवो, साधे माड्यो हाण।
सुरा होय ससा वहै, जित झबकी तरवारि॥ १३॥
पहलि मु हि पीवणि पडी, मत सु घणी करारि।
वीसन भगत मोटो पड्यो, गुर सु हेत पियार॥ १४॥
जै उपरि नेतू पटी, चाली जळम सुधारि।
सुरगि वडीवानै उतर्यी, जिह चडि पु हता पारि॥ १५॥
जामण मरण जुरा नहो, नित नवला हाण।
वील्ह कहै गति मामलो, साधा तणा वपांण॥ १७॥

२–एक दोवड दुज हडो, सुप मा सोर उपायो।
नाठो चोर पकडि लीयो, भापर जोरि छुडायो।
जोर करि रजपूत रुता, चोर वासै घातियो।
घका घूमग न छाडो, सारति मेळो साथियो॥ ३॥

९-करमंणि चलणां इणि संसारि, संबळ करि करि चालियै ।
जीवड़ां नै जोख्यौ होय, सोई डर पालियै ॥ ५ छन्द, छंदां की, आसापाहड़ी ।

यह साखी "रामासड़ी की" नाम से प्रसिद्ध है। इसमें करमा और गोरां-दो विष्णोइनों का खेजड़ों के बदले बलिदान होने का वर्णन है। रामासड़ी (रँवासड़ी, जोधपुर) में खेजड़ों के काटे जाने पर, वहां के चौहटे में जाकर करमां ने अपना सिर दिया। गोरां ने भी उसका अनुसरण किया। जाम्भोजी ने अवसर आने पर परजीव-उद्धार के लिए अपना बलिदान करने को कहा था सो इन दोनों ने वृक्षों के लिए ऐसा ही किया[१] । यह घटना संवत् १६६७ के जेठ वदि २, शनिवार की है। स्त्रियों का वृक्षों पर 'धर्म-रक्षार्थ' आत्म-बलिदान करने का यह अनुपम उदाहरण है। कवि ने प्रवाहपूर्ण शैली में समस्त घटना का भावभरा वर्णन किया है।

१०-"उमाहो" : वावो जांवू दीपे परगट्यौ, चौहचकि कियौ उजास । २२ दोहे, धनांसी ।

"उमाहो" वील्होजी की सर्वाधिक प्रचलित और हृदयग्राही रचना है जो उन्होंने अपने स्वर्गवास से कुछ पूर्व कही थी (देखें-पृ० ६४८-४६)। यह भक्त-हृदय की मर्मभेदी वाणी है। इसमें कवि जाम्भोजी के गुण, कार्यों और माहात्म्य को आतुरता पूर्वक स्मरण करता हुआ अपने भावोल्लास भरे उद्गार प्रकट करता है। गुरु के महिमामंडित व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि पर अपनी असमर्थता और जीवन की क्षणभंगुरता देख कर वह अत्यन्त दीन और निरीह हो गया है किन्तु अन्य विष्णोइयों की भांति गुरु पर दृढ़ आस्था और नाम-स्मरण उसका सबसे बड़ा सम्बल है। कवि ने हृदय के सैकड़ों उमड़ते भावों को मर्मभरे शब्दों में बद्ध करने का प्रयास किया है। इसमें परमतत्त्व से मिलन की उत्कट लालसा, भावानुभूति के निश्छल उद्वेग, जीवन का रहस्योद्घाटन और तत्त्व-प्राप्ति के सार्थ संकेत अत्यन्त सहज रूप से व्यक्त हुए हैं। ये वील्होजी के समग्र व्यक्तित्व को साकार करते हैं। इस दृष्टि से यह कवि की समस्त रचनाओं में अनुपम कृति है। यह वील्होजी की अन्तिम रचना है। विष्णोई सम्प्रदाय में दीक्षित होते समय उन्होंने गुरु से अपने उद्धार की विनय की थी, जीवन के संध्याकाल में वे "उमाहो" के रूप में गुरु से मिलने की प्रबल कामना करते हैं। इस समय मुकाम-मन्दिर के छज्जों पर बैठे कबूतरों को भी वे नहीं भूले। मानव-हृदय की ममता और भावों की सरिता मानों बुद्धि और ज्ञान के कगारे तोड़ कर वह निकली हो। अपना 'विष्णोई' जीवन उन्होंने यहीं से-मुकाम से आरम्भ किया था और अब रामड़ावास में

१-वाहि तेग संमाहि आसो, हहकारौ अतियौ :
धन्य तेरो ध्यांन करमंणि, सीझती साको कियौ ॥ ३ ॥
गुर फुरमाई छै पंडावार, औसर लै सारियै ।
आपंणड़ो जीव कवूल, प्रजीव उवारियै ।
उवारियै जीव जीव काजै, रापि सधीरो हियौ ।
रूंपां ऊपरि मरंण मातो, कीजै ज्यौं करमंणि कियौ ।
करणी पाळि उजाळि सतपंथ, परंम जोति उपाइयौ ।
जीव काजै जीव पुरम्यो, कियौ गुर फुरमाइयौ ॥ ४ ॥

अंतिम सास लेते हुए वे उसी के पास जाना चाहते हैं, जिसकी वहा (मुकाम मे) समाधि है।

स्पष्ट है कि साखियाँ मुख्यत तीन प्रकार की हैं —१-आत्म-निवेदन परक, २-इतिहासिक, ३-जम्भ-गुणगान विषयक।

(१२) हरजस [1] कवि के निम्नलिखित २१ हरजस प्राप्त हुए हैं —

१-अलाह अलेख निरंजण देव, किणि विधि करू जो तुहारी सेव। पक्ति १०, भैरू।
२-ओ ससार नदी जळ पूरि, बीच अथग ढिग पली दूरि। पक्ति ५, भैरू।
३-अमलो रे भइया अ मल चडावो, अपणां अपणां सत बुलावो। पक्ति ५, आसा।
४-दिल अवर मुखि अवर सु णावै, दिल को कपट धणी नू न भावै। पक्ति ४, आसा।
५-अवधू नै अभिमान न होई, दुनियां को मानि न रीझै सोई। पक्ति ५, आसा।
६-हरि को आरणियो मांडि रे सुहारा, कूड कपट छाडि गिंवारा। पक्ति ६, आसा।
७-दिल दुरमति दुज साध कहावै, ताको माहि अचभो आवै। पक्ति ७, आसा।
८-ऐसा मूळ खोजो भल तत चानू, सतगुर पथ बताय दीहो। ५ छन्द, आसा।
९-गिरधर गाइयै जी, पाइयै सुरां सगति पार।
अवरण ओळगियै इण परि, पकियै उरवार॥ ६ छन्द, गवडी।
१०-जन रे तू भरम छाडि भजि केसो। ६ छन्द, गवडी।
११-हरि का ढिकोळिया दुळो मेरा भाई, असी सींचो वाडी सूकि न जाई।
-पक्ति ५, विलावल।
१२-उ नमन खेतो राचि मनां रे, एक मतो करि पाच जणा रे। पक्ति ४, विलावल।
१३-सुजिया सोवणो सोविले सवारो दिन वरतै निस होय अ धियारो। पक्ति ५, सोरठ।
१४-अब मैं ग्यान रसि रुचि मांणी, जदि गुर की पारिखि जांणी। ५ छन्द, गवडी।
१५-सतो भाई घरि ही झगडो भारो। ५ छन्द, गवडी।
१६-गवरी का गीत न गाय समझ मनि बोरी हे।
गवरी नै गाळ न देह, झोल की झोरी हे। ६ छन्द, गवडी।
१७ मोह न कीजै रे मानवी, मोह ता हुवै अकाज, म्हारा प्राणिया।
गरब गल्यो गजराज रो, गयो रांवण रो पाज, म्हारा प्राणियां। १० छन्द, गवडी।
१८ राम रहीम विसन विसमल्ला, किसन करीम हमारै।
कुकरम जुलम गाय बकरी परि, रुसेल मीसलि तुम्हारै॥ ५ छन्द गवडी।
१९-सतो गुर बताई एक बूटी रे। छन्द ५, गवडी।
२०-बळि जाव प्रभ की मूरति पै बळि जाव।
मेरा बाबा चरण कु वळ बळि जाव। ५ छन्द, मलार।
२१-सतो अैसा डर डरिये। पक्ति ८, धनाश्री।

हरजस वील्होजी के मुक्त-हृदय के स्वाभाविक उद्गार हैं। इनमे अत्यन्त आत्मीयता से कवि ने स्वानुभूति और भावों को सहज रूप मे वाणी दी है। उनकी विचारधारा को

१-प्रति सख्या ४८, २०१, २०७, २२७।

समग्रता में, सम्यक्रूपेण सक्षेप में समझने के लिए भी इनका महत्त्व है।

इनमें अनुस्यूत रूपक और प्रतीक-योजना कवि की विशेषता है। ये जनसाधारण के दैनंदिन जीवन से सम्बन्धित होने के कारण सहजग्राह्य और प्रभावशाली हैं। अमल,[1] लुहार,[2] ढेंकुली और बाड़ी,[3] दरजी[4] और बूटी[5] को माध्यम बना कर लिखे गए हरजस ऐसे ही है। कई स्थलों पर बहुत रोचक प्रतीकों द्वारा पंचेन्द्रिय, उनके विषय और कामक्रोधादि भीतरी शत्रुओं सम्बन्धी सशक्त अभिव्यक्ति कवि ने की है। एक हरजस[6] में स्त्री-पुरुषों के साथ अपने घर में हो रहे निरन्तर झगड़े का हृदयग्राही वर्णन है। स्त्री निर्लज्ज, स्वेच्छाचारिणी और व्यभिचारिणी है तथा पांचों पुत्र भिन्न-स्वादी हैं।

१-वाड़ी न नीपनां मोलि नही लीया, सतगुर ले संतन कूं दीया। २।
पोता पोलि संतन कै आगै, ल्योह मेरा वीर जितो तंनि लागै। ३।
भिळै नही अंमल है चोपा, ल्योह मेरा वीर हरै सम घोपा। ४।
वील्हाजी अमंल विसंन लिव लागी, वोहत दिनां की वायड़ भागी। ५। -हरजस ३।

२-क्रंम करि कोयला माया जाळी, ब्रंभ अंगनि मां ले परजाळी। २।
तंन करि अहरंणि सुरति अंकोड़ा, सास धुंवणि करि सहज हथोड़ा। ३।
पांणी पेम घट सांचि विचारा, सबद सांडसी पकड़ि पसारा। ४।
घंण करि ग्यांन मंन कुं वारा, वारत वारत होय निसतारा। ५।
वील्हाजी भल कारीगर मोई, घाट पड़ै पोटा नही होई। ६। -हरजस ६।

३-काया कूप चित चांच बंणाई, सुरति करि नेजु जीभ्या थाई। २।
हरि नांव नीर सुरसरी धारा, सहज पांणती सुरति के यारा। ३।
सींचत सींचत जब रुति आई, फूली फळी वाड़ी विसंन सहाई। ४।
वील्हाजी विसंन कंणक जोवारा, चुंणि चुंणि हरिजंण उतरे पारा। ५।-हरजस ११।

४-कत करि कपड़ो गज गुर सापी, ग्यांन कतरणी कुरपी नै रापी। २।
तपता वीति जतंन मूं रांपया, छोटि दे पेनवो पांचि ले वपिया। ३।
सुरति करि सूई ध्यांन धरि धागा, माहिवजी को नांव ले सीविले वागा। ४।
वील्हाजी वागो विसंन मन भांणो, लागै मैल न होय पुरांणो। ५। -हरजस १३।

५-वूंटी परपि गांठि ग्रह वांधी, जंम भव वेदंनि तूटी ॥ टेक ॥
जांहकै रोग सदा अंगि रहता, वोहत होती तपनांई।
या वूंटी रस चापि र पीया, जीणि वोहटी संताप न पाई ॥ २ ॥
वोहत रोग तोड्या इणि बूंटी, वोह तंन कंठ रहाई रे।
अजूं अंनंत कूं गुण करता है, बूंटी पूटि न जाई रे ॥ ३ ॥
धंनि ओह गुर साचै गुर कूं धंनि, जीणि बूंटी सरस वताई रे ॥
वा वूंटी जा संता साधी, अंगि भई मितळाई रे। ४।
अंमर जड़ी अपरंपर वूंटी, कंटक हाथि न आई रे ॥
वील्ह कहै रही सार्वा पै, जीनि तिसनां तपति बुझाई रे। ५। -हरजस १९।

६-राति दिवस मोहि उठि उठि लागै, पांच ढोटा एक नारी ॥ टेक ॥
पांचूं भोजंन जूजवा चाहैं, पांचूं पांच सवादी।
निळजी नारी कह्यो न मांनै, अवरति आप मुरादी ॥ २ ॥
किया उपाय पोषंण कै तांईं, अपति कदे न मूता।
लोकी लाज मरै जां वातै, वोहळि वार विगूता ॥ ३ ॥
आप घर छाड़ि सैंण घरि न रहै, पर घरि क्यों सचि पाइयै ?
घर को टावर कह्यो न मांनै, औरे के समझाइयै ॥ ४ ॥ (शेषांश आगे देखें)

जिन बातो से लोक लाज मरता है, वे ही घर मे हो रही हैं। स्त्री दुर्मति की और पुत्र पञ्चेन्द्रिय और उनके विषयों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार स्वर्ग-पथ को अवरुद्ध करने वाली पाँच स्त्रियो-मीरा, कहरा, मानकी, सेरा और मोहनी का रोचक उल्लेख कवि ने किया[1] है। सारे ससार को इन डाइनो ने दबोचा है जिनसे सावधान रहना चाहिए। ये क्रमश काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह की प्रतीक हैं। अन्यत्र 'गवरी' को काम-प्रताक मानकर उसको घर मे न रखने की सलाह[2] दी है।

हरजसो मे कवि ने श्रेष्ठतर जीवनोपलब्धि और मुक्ति हेतु स्व और पर को भली-भाँति समझने, जाचने और पहचानने तथा विश्वस्त, अनुभूत और सत्य-पथ ग्रहण करने का निष्ठापूर्वक उल्लेख किया है।

(१३) बिसन छत्तीसी। (प्रति सख्या ३८, २०१) -इसमे वर्णमाला के ३६ अक्षरों पर क्रमानुसार ३७ फुटकर कु डलियाँ हैं। ३६ अक्षर ये हैं—अ, आ, इ, उ, ए, =५। क से य वग तक (ञ) को छोडकर) = ४८। स, प और ह = ३। कुल ३६। अन्तिम छद मे जाम्भोजो से मुक्ति-कामना है। ऐसी रचनाओ के अन्त में एकाध छ दो में गुरु-स्तुति,

---

दुरमति दारी करू दुहागणि, झूठा थाप थपेई।
वील्ह कहै सोई गुर मेरा, घर को न्याय नवेई ॥ ५ ॥ —हरजस १५।

१-एक मीरा दूजी मानवी, दोयी वहण विकार।
घट घट भीतरि साचरी, मु ठो सोह ससार ॥ २ ॥
मु ठा राणा राजवी, लीया अपणी एरि।
मु ठा बामण वाणिया, ततषण लिया घगेरि ॥ ३ ॥
अ ए जाग्या जोगी मुस्या, लीया पेड पगेडि।
सन्यासी सर पर मुस्या, लीया झाडि झझेडि ॥ ४ ॥
मु ठा भगत वमेष वीणि, जा कुछि आई दाय।
नाद निरति वै नाचणा, सेरी पठी आय ॥ ५ ॥
सेरी लाधी मानकी, मीरा मोहण साथि।
नीकचु था से उबर्या जा कुछि आई हाथि ॥ ६ ॥
पिडत मु ठा प्रगटा गीळि करि पाया पेटि।
रूडा सीनानी मोडिया, अ पणि लिया लपेटि। ७।
तापस न्हाठा बन नै उत पणि पोहती जाय।
भेद विहू णा सह मुस्या, डाकणि बैठी पाय ॥ ८ ॥
मीरा मोहण मानको चौथी कहरा माहि।
रूपो पञ्च मुरा को, दोरै नै घीसाहि ॥ ९ ॥
नीकचु कै घरि पैसि कै, जरणा ताक वणाय।
वील्ह कहै से उबर्या, आपो रह्या छिपाय ॥ १० ॥ —हरजस १७।

२-ग्रोल्ण चोळी काचळी, माहे थूक विकार।
परहरि हीड हिंडोळणो करि माळा को हार ॥ ३ ॥
मूळ गु मावे अ न को, देव न आवे दाय।
जे आ गवरी घरि रहै, घर की सुत मति पति सा जाय ॥ ५ ॥
वील्ह कहै सु णि वावळी, करि कायम वापाण।
बिसन जप्या सुप सापजे, चूके आवाजाण ॥ ६ ॥ —हरजस १६।

भगवद्महिमा आदि की गई मिलती है। प्रत्येक कुंडली की अन्तिम पंक्ति में "विसंन जपो संसारि" की पुनरावृत्ति हुई है जो मूल विषय--विष्णुजप को स्मरण कराती है। इसमें प्रधानतः दो प्रकार से समस्त कथन किए गए हैं:—

(१) एक ही छन्द में कई वातों का उल्लेख करके[1] तथा

(२) एक छन्द में एक वात का उल्लेख करके[2] ।

इससे यह भली-भांति स्पष्ट है कि वील्होजी नाम-जप को मुक्ति का प्रमुख हेतु मानते[3] हैं।

(१४) छपइया (छप्पय) : वील्होजी के कुल ४५ छप्पय प्राप्त हुए हैं। हस्तलिखित प्रतियों में "छपइया" नाम से ये पृथक् रचना के रूप में लिपिवद्ध मिलते हैं। मुक्तक छन्दों में इनकी वहुत प्रसिद्धि हुई है, इस कारण विभिन्न लिपिकारों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल कम-वेश छन्द चयन कर लिखे हैं[4] ।

इनमें आत्मोत्थान का भावपूर्ण प्रयास है। ये कवि के अनुभव, ज्ञान और चिंतन-मनन के परिचायक हैं। उन्होंने पूर्ण अधिकार और आत्म-विश्वास से अपनी वातें कही हैं। इनके मूल में सत्य है, चाहे वह अनुभव, तथ्योद्घाटन, वस्तुस्थिति, नीति, धर्म या समाज-सम्वन्धी-किसी भी प्रकार का हो। इस कारण ये सहज-ग्राह्य और प्रभावशाली हैं। भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है। इन कारणों से ये अनायास ही लोक प्रचलित हो गए। अनेक तो कहावतों की भांति आज भी यथावसर कहे जाते हैं और "वरस सात संसारि, वाळ लीला निरहारी" छप्पय को तो प्रतिदिन हवन के पश्चात् पूजा-समाप्ति स्वरूप वोलना सम्प्रदाय

१—कका क्रिया न छाडियै, कुकरंम कळह नीवारि।
विसंन भगति विणि आदमी, कूंण पहुंतो पारि।
कूंण पहुंतो पारि, कुपह मेल्हि सुपह जे आवो।
परमांनंद सुं प्रीति करि, नांव निज देपि धीयावो।
सुपह दिषाळे सांम्यजी, कुपह राह सभ मेटि।
विसंन जपो संसारि, कका क्रिया न मेटि ॥ ६ ॥

२—ननां नंद्या परहरी, पर नंद्या न करेह।
सोभ नहीं संसार मां, पळते पत्र गहि लेह।
पळते पत्र गहि लेह, अस देपो नर सोई।
और पाप कूं नफो, निंदन नफो न कोई।
एती चालो जांणि, छाटो मंन ही मंन नंद्या।
विसंन जपो संसारि, ननां परहरि नंद्या ॥ १० ॥ —'न' अर्थात् ङ।

३—टटा टर करि चालियै, टाहा होय सुजांण।
विसंन नांय विलंव्यो रही, जुंवर न मळिसी मांण।
जुंवर न मळिसी मांण, तांण सैतांन न चाले।
ओ मंन रापो ठांय, गोठि सुरां की माल्है।
लाभै सुरग सुप वास, गुर फुरमाई चाली।
वीसंन जपो संसारि, टटा टर करि चाली ॥ १७ ॥

४—प्रति संख्या १५; ३८; ४३; ४७; १७८; २०१; २०३; २०८; २१३; २३०; २७२, २९०; २९७; ३१२; ३१६; ३९९।

में आवश्यक नियम है। छप्पयों का वर्ण्य-विषय प्रधानतः निम्नलिखित है—

१-कर्त्तव्याकर्त्तव्य-निरूपण, २-विषय-विशेष के गुण, लक्षण, परिभाषा या तत्त्व कथन तथा ३-जाम्भोजी के जीवन-प्रसंग, कार्य और माहात्म्य-कथन। इनको सामान्यतः पाँच प्रकार से व्यक्त किया गया है —

१-प्रसिद्ध और लोक-प्रचलित प्रसंगोल्लेख के साथ, गुण-अवगुण-विशेष का कथन[1]।

२-दो परस्पर विरोधी या विपरीत स्वभाव, गुण या विषय का पृथक्-पृथक् छन्दों में क्रमशः वर्णन। पाप-पुण्य, सुगुरु-कुगुरु, बसने-न बसने योग्य गाँव आदि पर रचे छन्द ऐसे ही हैं। इनमें कभी-कभी विधि-निषेधात्मक रूप में शब्द-विशेष की पुनरावृत्ति करते हुए भी विषय-विशेष स्पष्ट किया गया मिलता है, जैसे-जोग और पाखण्ड[2]।

३-ऊँच-नीच, अच्छी-बुरी चीजों के गुण-कार्यों के उदाहरण सहित अपना कथन, जैसे-विचार तथा गुरु-महत्ता[3] वर्णन।

४-प्रश्नोत्तर रूप में कथ्य-विशेष का स्पष्टीकरण, जैसे अलख-पुरुष-पूजा विधि[4]।

१-अंतरी तणै गुमांनि, दोष लापण नै दीयो।
बीत व चीत गुमांनि, भीषण्णा ऊपरि कीयो।
चलण कटाय चौरगी, कोपि कूवै मा राल्यो।
साध सुदरसण सेठ, पकडि सूळी दिस चाल्यो।
नर देवा साधा सिधा, दोस दु नि दीनो घणा।
वील्ह न कीजै और तो, पाचू वसि करि आपणां॥ ४३॥

२-जोग नही पाषड, कोप काया मां वसै।
जोग नही पाषड जीव बोह बोधि तरसै।
जोग नहीं पाषड, वीर जपि गाव जळावै।
जोग नही पाषड, कूड कथि दु नी डुलावै।
जोग पंथ जाणं नही, पाप करतो न डरै।
कान सिको करग छुरी, करम कसाई को करै॥ ३१॥
जे जरणा तो जोग, जोग जे जीवत मरियै।
जीव दया तो जोग, जोग जो सनि भाषीजै।
सहज सील तो जोग, जोग जो तिसना वारै।
पंच वसि तो जोग, जोग जो कलोभ निवारै।
तजै मान अभेवान, ग्यान ध्यान रातो रहै।
जोग तणा आरभ अंह, विसन भगत वील्हो कहै॥ ३२॥

३-अंतर थळी सुमेर, नाडी अर मानसरोवर।
अंतरो हस अर काग अंतरो तुरगम अर खर।
अंतरो पायक अर पतिसाह अंतरो तारा अर सिसिहरि।
अंतरो आक अर अंब, अंतरो चदण अर छाहरि।
काच कथीर हीर अंतर, अह निम जिसो पटतरो।
अवर गुरा अर अभ गुर, सूर अंधेरै अंतरो॥ ३९॥

४-भूष नहीं भगवत नै, भाय भोजन जिमाइयै।
तिस नही अलोकनाथ नै, आण उदक पाइयै।
उघाडो नही आदि पुरिस, आण पगरण उढाइयै।
पोढै नही पारब्रह्म, पर्यरि पालिगो पोढाइयै।

(शेषांश आगे देखें)

५–दो परस्पर विपरीत और विरोधी स्वभाव, गुण या विषय का एक ही छन्द में साथ-साथ उल्लेख, जैसे सुगुरु-कुगुरु का[1] ।

जाम्भोजी के गुण-गान सन्दर्भ में तो कवि अपनी बात ललकार के साथ कहता है[2] । वारबार समझाने पर भी न समझने वाले और अज्ञानांधकार में पड़े हुए लोगों के कार्यों को देखकर कवि कभी फटकार बताता है, कभी आक्रोश और कभी उन "बापड़ों" पर अफसोस प्रकट करता है। उल्लेखनीय है कि वील्होजी अखाद्य और अपेय वस्तुओं का नाम तक लेना भी उचित नहीं समझते और उनको "बुधनास"[3] (भांग) "कुमल" (मांस) आदि संज्ञा से अभिहित करते हैं।

(१५) दूहा मंत्र अपरा, "अवतार का" : प्रति संख्या २०१ में फोलियो ९८ पर वील्होजी के 'खंमावची' राग में गेय २६ सोरठिये दोहे लिपिबद्ध मिलतेहैं। प्रत्येक सोरठे के अन्त में आया 'देवजी' शब्द जाम्भोजी का पर्याय है। इनमें जाम्भोजी के गुण, लोकोपकारक, उद्धारक-कार्य और महिमा का अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति पूर्ण सारगर्भित और रस-स्निग्ध वर्णन

निराकार निरंचन नहें, वरतंण दे वरताइयै ।
वील्ह कहै इण पुरिष रो, किणि विधि भलो मंनाइयै ? ३४ ॥
भगत नै भोजन दियो, जांणि भगवंत नै भायो ।
जंण नै जळ दियो, जांणि जगदीस नै पायो ।
अतीत नै पंगरंण दियो, जांणि आदि पुरिष नै उढायो ।
संत नै सुप दियो, जांणि साहिब नै सुहायो ।
आदू आंण न मेटियै, वायक लोपि न जाइयै ।
वील्ह कहै इण पुरिष रो, इणि विधि भलो मंनाइयै ॥ ३५ ॥

१–सुगर ध्यायां सुप होय, कुगर ध्यायां दुप पायस ।
सुगर भेद क्रंम छेद, कुगर भेद पाप कंमायस ।
सुगर संगि सुप रंग, कुगर संगि साथि विगोवै ।
सुगर उतारै पारि । कुगर बूडै अर बोवै ।
सुगर सेव लाभै सुरग, कुगर दुप दोरै तंणो ।
वील्ह कहै एक वीनती, सुगर कुगर अंतर घंणो ॥ ११ ॥

२–कांय केकांणि प्रहरो, वारि रास्यप के जावो ?
अंब वाढि जड़ उपणों, आक एरंड कांय वाहो ?
उपंणि नागरवेल, कांय विप वयारी सिंचावो ?
छोडि सूध मारग, असर उभड़ कांय धावो ?
प्रगटे सूर पगड़ो हुवौ, पंथ लाध भूला धुंवों ।
झंभ महागुर मेल्हि कर, कांय दोसगरां भूतां नुंवों ? ॥ २८ ॥

३–(क) जंनम विगांस्यौ जेह, जे बुधनास ज पीयो ।
नीज विसंन को नांव, सोच करि कदे न लीयो ।
जीवां उपरि जांणि, दया करि कदे न दीठो ।
भीतरि भेद्यो पाप, ग्यांन नहि लागै मीठो ।
आप सुवारथ मंनमुषी, कीया कुबधी पापड़ा ।
वील्ह कहै भवसागरां, वह्या जाहि रे बापड़ा ॥ १९ ॥

(ख) पांहि कुंमल पीवें बुधिनास, कुचल चाल चालैं असी ।
वील्ह कहै रे भाइयो, वां दोन्हों कित लाभिसी ॥ २४ ॥

मिलता है। रक कवि को इस जीवन मे तो "रत्न" मिल गया, आगे के लिए वह मुक्ति की प्रार्थना करता है। गुरु-महिमा से अभिभूत कवि उन लोगों पर बलिहारी है, जिन्होने जाम्भोजी के दर्शन किए तथा वे लोग पुन्यार्थी हैं जो गुरु-कथन पर चलते हैं।

दोहो से कवि के प्रौढ ज्ञान और अनुभव तथा भक्त-हृदय का पता चलता है। भाषा निखरी हुई और प्रवाहपूर्ण है।'कतिपय छन्द नीचे दिए गये हैं[1] ।

(१६) छटक साखी (दोहे) : प्रति सख्या २०१ मे आरम्भ के फोलियो १६-१७ पर "लीखतु छुटक साखी" शीर्षक के अन्तर्गत वील्होजी के १३ फुटकर दोहे लिपिबद्ध किए गये मिलते हैं। इनका उल्लेख इस प्रति म आगे फोलियो २७ से आरम्भ होने वाले सूची-पत्र मे लिपिकार ने नही किया है। शीर्षक से स्पष्ट है कि वील्होजी के अन्यथा छूटे हुए दोहे यहां लिखे गए हैं।

इनम गुरु-महिमा, उनसे प्रार्थना, भक्तोद्धार, चारण-भाटो के कार्य, नीति-कथन, कृपण आदि विभिन्न विषयो का सीधा-सादा वर्णन किया गया है[2] ।

१-रहिया रोगीळाह, वोह्ळी विथा वियापियां ।
वेदनि वीचरियाह, तू दारू मिलियो देवजी ॥ ४ ॥
घघ विगि थरहरताह, बेडी बोह जळ डूपता ।
जळ जोपै पडियाह, कर गह काढया देवजी ॥ ५ ॥
पढिया नही पुराग, सुर पूछि सीख्यो नही ।
अमरापुर अह्नाण, त दापविया देवजी ॥ ७ ॥
चोरासी चवताह, जू णि भुवता जुग गयो ।
तो विण ताह जीवाह, दुप न भागो देवजी ॥ १४ ॥
पळ सीरि थिर मडेह, तत तेल वातो प्र म ।
नीकम तिरलोकेह, दीपग तू ही देवजी ॥ २१ ॥
काया कळ क विनाह, मोत बिना मडळि रहण ।
पायो पुर तीयाह, दान तुहारा देवजी ॥ २२ ॥
कळप्या कोडि किनक, लीला ही लाभै नही ।
मो रानडै रतन, दियो दया करि देवजी ॥ ११ ॥
तारग तू ही ताह, जा जाण्यो जीवां घणी ।
सुप सारो मुरगाह, दीय दया करि देवजी ॥ २३ ॥
तारग तिहु लोकाह, लप चोवरासी सारवै ।
हू बळिहारी ताह, जाह सनमुपि दीठो देवजो ॥ २० ॥
प्रथमी पावडेह, भु य उपरि मुं विया घणा ।
सुवियारथा जकेह, तो दिस दीन्हा देवजी ॥ १८ ॥

२-तीन दोहे ये हैं —
डाग ठहूको कडि हयो, नीणा उपरि हथ ।
वील्ह बुढापो आवियो, गयो ज धीगड सथ ॥ ११ ॥
न को मागै दूध घी, न को चोपड चाहि ।
वील्ह कहै वीपै समै, चोपड अन ही माहि ॥ १२ ॥
जनु वैर पुराण रिण, मरत वियावर गाभ ।
मागि वळदै पोल्हडै, जो नीकळै स लाभ ॥ १३ ॥

महत्त्व और मूल्यांकन :

वील्होजी का व्यक्तित्व बहुमुखी, महान् और प्रभावशाली था। अनेक दृष्टियों से उनका महत्त्व है। सम्प्रदाय में उन्होंने नव-जीवन का संचार किया, स्वस्थ-चेतना, चिन्तन-शक्ति दी और प्रत्येक प्रकार से उसको व्यापक, सुदृढ़ और ठोस धरातल प्रदान किया। समाज में सदाचरण, उदात्त गुण और नैतिकता के प्रति आस्था उत्पन्न की; जीवन, उसके उद्देश्य और जगत को समझने-समझाने का विवेक, तदनुसार कार्य करनेकी प्रेरणा तथा सहज जीवन-यापन का संदेश दिया। निर्भीकता, सत्य और व्यावहारिकता उनकी वाणी के गुण हैं। साहित्य के माध्यम से वे जिस पयस्विनी के उत्स बने उसका प्रवाह आज भी अमंद है। लोगों की बोली के शुद्धाशुद्ध प्रयोग और पहचान के क्षेत्र में उनका प्रयास अप्रतिम है। तत्कालीन मरुदेशीय-समाज के सम्यक् ज्ञान के लिए उनकी रचनाएँ बहुमूल्य सामग्री प्रदान करती हैं। इनमें आए अनेक उल्लेख इतिहास की विस्मृत धरोहर है। उनका साहित्य और शब्दावली सांस्कृतिक अध्ययन के लिए परम उपादेय है।

अपने युग के वे विशाल और उच्च ज्योति-स्तम्भ थे। अतीत और आगत को उन्होंने प्रकाश-किरण दी; धुंधले अतीत को स्पष्ट किया, आगत को मार्ग-दर्शन कराया और वर्तमान को झिलमिल आभा से आलोकित किया।

उनकी समस्त साहित्य-साधना के मूल में लोक-कल्याण और आत्मोत्थान का सर्वांगीण प्रयास है। उन्होंने अनुभूत सत्य को हृदय-रस से सिंचित वाणी दी, उनके विचार सीधे-सादे और सर्वग्राह्य हैं। यही कारण है कि वे व्यावहारिक हैं और उनका प्रभाव गहरा और व्यापक है।

वील्होजी मोक्ष-प्राप्ति मानव का चरम लक्ष्य मानते हैं। इसके लिए प्रधान उपाय और सम्बल विष्णु नाम-स्मरण है। तात्त्विक दृष्टि से प्रभु के अनेक नाम-रूपों में कोई अन्तर नहीं है। एक हरजस में इसका स्पष्टीकरण करते हुए नाम-स्मरण को ही वे सबसे बड़ी हरि-सेवा बताते हैं[1]। "विसंन-छत्तीसी" का प्रमुख विषय ही विष्णुनाप-जप का संदेश देना है। विष्णु और जाम्भोजी एक ही हैं। बिना जप के तो मानव-जीवन ही व्यर्थ है[2]।

१-अलाह सोई जो उमंति उपाय, दस दर पोलै सोय य पुदाय ॥ १ ॥
लप चौवरासी रोहु परवरै, सोई करीम बावा एती करै ॥ २ ॥
विसंन कहूं जाको विसतार, किसंन सोई सिरज्यो संसार ॥ ३ ॥
गोम्यंद सो ब्रह्मंटा गहै, सोई ज सांमी जुगि जुगि रहै ॥ ४ ॥
गोरष सो आंन गम की कहै, महादेव सो पर मंन की लहै ॥ ५ ॥
सिध सोई जो साझै अती, नाथ सोई बावो त्रभुवण पती ॥ ६ ॥
जोगी सो जिणि जरणा जरी, भगति सोई जिणि भाव सूं करी ॥ ७ ॥
आप मुसै मुसै न औरांण, मंहमंद कहियै स मुसिलमांण ॥ ८ ॥
जपै एक भेप जूजूवा, सिध साधु पकंवर हूवा ॥ ९ ॥
अपरंपर का नांव अनंत, वील्हाजी सिवरि सोई भगवंत ॥ १० ॥-हरजस १।

२-किसौ दया विणि ध्रम, ग्यांन वाझौ चुतराई।
किसौ पिमां विणि तप, दांन विणि किसी वडाई। (शेषांश आगे देखें)

इसका दूसरा उपाय सुकृत करना है जिसका उल्लेख अनेक प्रकार से बारबार उन्होंने किया है[1] । इससे लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। कर्मफल-भोग अनिवार्य है, यह भोगते हुए किसी को दोष नही देना चाहिए[2] और जो सुकृत करने वाले हैं, उनको साहस दिलाना चाहिए[3] । ससार मे अनेक प्रलोमन हैं, किन्तु प्रेम तो उसी से करना चाहिए, जो यहा सदा रहे। नश्वर चीजों से कैसा[4] प्रेम ? धर्म के नाम पर बहुत पाखण्ड प्रचलित था, अतः वील्होजी ने लोगों को इस ओर से सावधान किया। ससार की वास्तविकता का उल्लेख करते हुए उन्होने इसमे फंसे भ्रम को अनेक विधि से[5] बताया। धर्म-ठगो से अध्यात्म-पथ के पथिक को सावधान किया[6] और पथ-भ्रष्ट करने वालो से सतर्क रहने को

किसी साध विणि गोठ, जाप विणि किसौ जमारौ।
किसौ अमर विणि वास, मरण आह किसौ पसारौ।
किसौ सुष सुरगा विना, जा जा जम जोवे जिसौ।
वील्हाजी केवळ क्रम विणि, अवर जपै सो जन किसौ ॥ ७ ॥-छपइया।

१-धरम किया सुष होय, लाछ लिछमी घन पावैं।
धरम उतिम कुळ अवतरैं, जळम दाळिद नही आवैं।
धरम सु मानि महत, रूप ओपम इधकारी।
धरम जीव जुगि वालहो, ग्यान सू प्रीति पियारी।
ससार जुगति आगे मुगति, लाभ घणौ छै दहु परि।
वील्ह कहै आळस म करि, जो गुर गह्यौ स धरम करि ॥ १ ॥-छपइया।

२-किया क्रम करूरि, भोगवता भारी हुवा।
मन माहरा म झूरि, दोस न दीजैं देवजी ॥ १७ ॥-दूहा।

३-धरमी करै धरम, सती नैं साहस दीजैं।
मन गपीजैं माय, मुष्यौ सुवचन बोलीजैं।
वापाणीजैं विसन, आस उतिम की कीजैं।
परषे पात सुपात, दान द्याईजैं दीजैं।
जा जा विसन न भावई, सासो कुपरि न कीजियैं।
वील्ह कहै न विरचियैं, धरमे धको न दीजियैं ।। ३३ ॥-छपइया।

४-जाता सू राता मन मेरा, फिरि फिरि दुष सह्यौ वोहतेरा ॥ २ ॥
रहता सू रहियैं लिव लाई, जासे ओ तन विणस्य न जाई ॥ ३ ॥
उनमन राता पु हता सोई, वील्ह कहै दळि आवण न होई ॥ ४ ॥-हरजस १२।

५-भरम उपाय पाहण गुर अरपै, साध सेवा नही जाणी।
नरजीव आगे सरजीव मारै, बूडि गया विणि पाणी ॥ २ ॥
भरम उपाय तीरथ कू चाले, अठसठि घरि ही वताया।
भूले लोक वेद के वायक, भटकत कहू न पाया ॥ ३ ॥
भूली नारि भीति कू पूजै, ले ले भोग लगावैं।
भोग विलास स्वाद रस जाणैं, ढिग ऊभो विललावैं ॥ ४ ॥
भूत अऊत वीर जण जोगणि, छाडि भरम तस देवा।
पार गिराय तो पुहचस प्यारे, करै विसन की सेवा ॥ ५ ॥
वील्हाजी भरम मुकद नर भूले, कहो कौस समझावैं।
छाडि भरम तदि होय निभरमा, तो हरि चरणां आवैं ॥ ६ ॥-हरजस। १०।

६-वैमि सभा मा ग्यान विचारैं, भीतरि लषण बिली का धारै ॥ २ ॥
बाहरि सेत भीतरि मसि वरणा, कहा भयौ तेरैं हाथि सिवरणां ॥ ३ ॥

(शेषाश आगे देखें)

कहा[1]। आत्मा के कारण[2] शरीर "रतन" है, अतः आत्म-ज्ञान प्राप्ति ही सबसे बड़ा काम है। यह जानबूझ कर भी यदि कोई कूएँ में पड़े तो वह बुद्धिमानी की बात नहीं[3]। तीसरे, सत्य-कथन पर वील्होजी का विशेष आग्रह है। परमतत्त्व की उपलब्धि सत्य से ही संभव है।

इसके लिए गुरु का होना आवश्यक है जिसकी पहचान अनेक जगह बताई गई है। कवि के अनुसार जाम्भोजी ही "महागुरु" हैं, विष्णु हैं। साम्प्रदायिक मान्यता के अतिरिक्त भी उन्होंने इस सम्बन्ध में कई और तर्क दिए हैं। उनके "सबदों" की सच्चाई का अनुभव वील्होजी ने दिल में किया है,[4] उसके दिल की "टिगिमिगि" जाम्भोजी के कारण दूर हो गई है[5]। दूसरे, तत्कालीन मरुदेशीय-समाज में हिन्दू धर्म और मुसलमानी मजहब-दोनों में बाह्य दिखावा मात्र रह गया था, किन्तु विष्णोई सम्प्रदाय जन-साधारण के लिए

टोरियं मिरघ ज्यों दोह रचावै, बरंन देपि बपड़ो मिरघ ठगावै ॥ ४ ॥
पीवरगु सरप ज्यों छळ करि पीवै, बुग ज्यों ध्यांन अवर कूं टीवै ॥ ५ ॥
पर धंन प्रीति लगी जउ भागी, जांणि मूसै ध्यांन बिलाई लागी ॥ ६ ॥
धरंम ठगां का एही इहनांणा। वील्ह कहै मैं देपि डराणा ॥ ७ ॥-हरजस ७ ।

१-तिह कुसंगी को संग नीवारि, जांह नांव विसंन को न भावै।
तिह कुसंगी को संग नीवारि, भूत भूतणी धियावै।
तिह कुसंगी को संग नीवारि, सील सावितो न चलै।
तिह कुसंगी को संग नीवारि, ध्रम ध्यांवतां नै पलै।
सुगर मुमारग मेल्हि कै, साध संगति हूं टळि रहै।
तिह कुसंगी को संग न कीजियै, वील्हाजी मुपह ता कुपह गहै ॥ ४१ ॥-छपइया

२-थया थिर करि जीवड़ो, दह दिस टिगण न दे मंन।
हंस कया मां पाहुणों, तायें तंन रतंन।
तायें तंन रतंन, ईं पिंट पड़िसी काईं।
मुकरत पहली संचि, पछै पछतायस भाई।
साच सही संसार मां, मुप अवपळ न भापी।
विसंन जपो संसारि, थथा जीव थिर करि रापी ॥ २१ ॥-विसंन छतीसी।

३-लाभै इम्रत पीरि, जांणि कै जहर न पीजै।
मेल्हि सजंण की गोठि, पिसंण सूं गोठि न कीजे।
लाभै सुध्य केकांणि, टार वेछाड़ न चढ़ियै।
मेल्हि गोप मुप सेज, देपतां कूंप न पड़ियै।
तारै मुगुर तरियै भै जळ, सुपह मुमारग अड़ियै।
वील्ह कहै जी पारिपू, कुगर कुमारग बूड़ियै ॥ ३६ ॥ -'छपइया'।

४-कव कथणी कांनिह, गुंण गाथा सुणियां घंणांह।
सचि पायो सबदेह, दिलमो भीतरी देवजी ॥ ८ ॥-'दूहा'

५-सतगुर सोई असत न भापै, सबद गरू का साचा।
छंद न मंद न सभ विवरजत, नीत नीरोतरि वाचा ॥ २ ॥
मेरा गुर सदा संतोपी सहजे लीणां, जीती तिसनां आसा।
पुंवंणां पांणी जे वसि कीया, तवा न भेड़ै पासा।
मेरा गुरु केवळ न्यांनी अंभगियांनी, माया मोह न कीया।
जागत जोगी नींद न सूता, वासा भोमि न लीया ॥ ४ ॥
उंध कुंवळ जोणि सुंधा कीया, मति अंतरि गति जागी।
वील्ह कहै पूरा गुर पाया, मंन की टिगिमिगि भागी ॥ ५ ॥-हरजस १४।

ऋजु राजमार्ग के समान था। कवि ने सगर्व अपने सम्प्रदाय और उसके प्रवर्तक की महत्ता का सोदाहरण उल्लेख किया है[1] । जाम्भोजी ने जीव को चौरासी लाख योनियो में भटकने से बचाया[2] । जिसने उनकी शरण-ग्रहण की उसका उद्धार हो गया, उन्होंने ही नाम-स्मरण को पाप-मोचन का उपाय बताया था[3] ।

कवि की सभी रचनाओ मे प्रकारान्तर से उपर्युक्त विचारों की यत्र-तत्र भावपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। वील्होजी की ६ रचनाएं (कथा औतारपात, कथा गुगळियै की, कथा पूल्होजी की, कथा दूंणपुर की, कथा जैसलमेर की तथा कथा भोरडा की) जाम्भोजी के चरिताख्यान हैं और शेष सभी मुक्तक हैं। "कथा ग्यान चरो" और "कथा घडावध" मे नाम "कथा" अवश्य है, किन्तु यहा "कथा" का आशय एतद्विषयक चर्चा से ही लेना चाहिए। अलौकिक तत्त्वो का समावेश प्रायः सभी रचनाओ मे है।

चरिताख्यान राजस्थानी साहित्य की आख्यान-काव्य-परम्परा की महत्त्वपूर्ण कडियां हैं। ये वर्णन-प्रधान, सक्षिप्त, गेय और अभिनेय भी हैं। भाषा बोलचाल की ओर प्रवाहपूर्ण है। लोक-प्रचलित घरेलू शब्दावली उनकी विशेषता है। आख्यान-काव्य के सभी तत्त्व इनमे सुष्ठु रूप से विद्यमान हैं। इनमे कवि का ध्यान सर्वत्र मूलकथा और उससे अविभाज्य रूप से सम्बन्धित उल्लेखो पर ही रहता है, इतर वर्णनों या घटनाओ में नही। एकान्विति इनका गुण है। कवि इनमे किसी प्रकार की भूमिका न बाध कर सीधे ही मूलकथन आरम्भ करता है। कथा मे आए विभिन्न चित्रण, कथा-प्रवाह के आवश्यक अ ग बनकर आए हैं। किसी भी प्रकार से अनावश्यक कथा-विस्तार, अन्तर्कथा या धुर-प्रसग नही है। शब्दावली नपी-तुली है, उसका प्रयोग प्रसगानुकूल और प्रभावोत्पादक है। जहा शब्दो और वाक्यों की पुनरावृत्ति है, वहा वे काव्य-सौष्ठव मे वृद्धि ही करते हैं। यह गुण कम कवियो मे मिलता है।

इनमे वर्णित सवाद और कथन-विशेष की पुनरावृत्ति भाव-सौन्दर्य और सहज जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण अनायास ही ध्यान आकृष्ट करते हैं। पढने पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वास्तविक जीवन सजीव हो गया हो।

मनोदशा परिवर्तन के भी वडे भव्य चित्रण कवि ने किए हैं। इसके सामूहिक-

---

१–ब्राम्हण बाचे वेद पुराणा, काजी किताब कुराणा।
पथर थरपै मसीति पुजावै, हळति दहुं नही जाणा ॥ २ ॥
हीदू हरि कहि हारि न मानै, तुरक तावसी लीणा।
मेरी कहै हमारी जाणै, दोऊ लडि वीडि पीणा ॥ ३ ॥
हीदू फोरि फीरि तीरथ धोकैं, मुसिलमान मदीना।
अलाह निरजण मन दिल भीतरि, अ तरि डेरा दीन्हा ॥ ४ ॥
हीदू कै मनि पूरब मानै, पछम मुसिलमाना।
वीच वीच वील्हजी को सामी, सब दिल माहि समाना ॥ ५ ॥–हरजस १८।

२–चोरासी चवताह, जू णि मु वता जुग गयो।
तो विण ताह जीवाह, दुप न भागो देवजी ॥ १४ ॥–'दूहा'।

३–सामि तुहारी साव, ओट लई ता उबर्या।
पापा पालण नाव, औ दान तुहारो देवजी ॥ २५ ॥–'दूहा'।

मनोवृत्ति और पात्र-मनोवृत्ति, दोनों के उदाहरण मिलते हैं। पहली श्रेणी के लिए "कथा औतारपात" और "कथा गुगळियै" की द्रष्टव्य हैं। पात्र प्रधानतः दो प्रकार के हैं– एक वे जिनकी मनोभावनाओं में परिवर्तन और चरित-विकास होता है तथा दूसरे वे जिनमें ऐसा न होकर उनके कतिपय गुणों का उद्‌घाटन किया गया मिलता है। पहले के अन्तर्गत राव वीदा (कथा दूंणपुर की) और दूसरे में रावल जैतसी (कथा जैसलमेर की) की गणना की जा सकती है।

चरिताख्यान और एकोद्देश्यीय घटना प्रधान (कवत परसंग का तथा "सड़ाणे" की साखियाँ) दोनों प्रकार की रचनाएँ किसी न किसी रूप में जाम्भोजी और सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। इनसे दो बातों का पता चलता है– एक तो जाम्भोजी के व्यापक प्रभाव, सम्प्रदाय और उसके प्रचार-प्रसार का तथा दूसरे, लोगों को सुपथ पर लाने और सम्प्रदाय की उन्नति-हेतु किए गए विभिन्न प्रयासों और कार्यों का।

मुक्तक रचनाओं (हरजस, साखी, दोहा, छप्पय आदि) में कवि ने अपनी भावानुभूति का अत्यन्त, हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। उपमा, रूपक और विविध अप्रस्तुत योजना के माध्यम से हृदय की अनेक भावनाओं को वाणी दी है। इनमें कवि जितना खुल सका है उतना कथापरक रचनाओं में नहीं क्योंकि वहां इसका न तो अवकाश था और न ही प्रसंग। फिर भी उनमें एकाध स्थलों पर उसके भावुक भक्त-हृदय के उद्‌गार मुखरित हो गए हैं। कथा जैसलमेर की में रावल जैतसी का आत्म-निवेदन ऐसा ही है।

समष्टिरूप से वील्होजी की रचनाओं में अनेक बातों की ओर ध्यान दिया गया मिलता है, जिनमें कुछ ये हैं :-(१) मानवीय भावनाओं का परिष्कार और उसको पशु-वृत्ति से ऊंचा उठाने का प्रयास, (२) लोक को नैतिक और शुद्धाचरण की भूमि पर खड़ा कर अध्यात्म की ओर उन्मुख करना। नीति-कथन इनकी स्वाभाविक परिणति है। जाम्भोजी के जीवन, कार्यों और महिमा का अनेक-विध उल्लेख इसीलिए वह करता है। (३) जन-जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात और अपने ढंग से समाधान। इसके सम्यक्‌रूपेण दिग्दर्शन के लिए कवि को कई प्रकार से सामाजिक वर्णन करना पड़ा है। कहीं वह मूल वक्तव्य और प्रभाव के लिए सीधा ही किया गया है (कथा गुगळियै की, कथा औतारपात), कहीं वह अनायास हो गया है और कहीं-कहीं ध्वनित है। प्रायः सभी रचनाओं में समाज-चित्रण किसी न किसी रूप मे मिलता है। यह अत्यन्त व्यापक, बहुमुखी और वैविध्यपूर्ण है। इनमें लोगों के रहन-सहन, चाल-चलन, आचार-विचार-व्यवहार, विश्वास-मान्यता, भावना, रीति-नीति, पूजा-पद्धति, धर्म-सम्प्रदाय, जीवन-यापन के साधनों, तौर-तरीकों आदि के मनोरम वर्णन मिलते हैं। जीवन-वैविध्य के जीवन्त-चित्रण होने के नाते ऐसे उल्लेख न केवल साहित्यक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण हैं अपितु सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त मूल्यवान हैं। इनसे स्पष्ट है कि वील्होजी की दृष्टि जीवन के प्रत्येक पहलू पर गई थी। इनमें उनकी स्पष्ट-वादिता, सत्य के प्रति अटल आस्था और निर्भीकता का पदे-पदे पता चलता है।

उनका साहित्य जाम्भोजी, उनकी विचारधारा, विष्णोई सम्प्रदाय तथा मरुदेशीय-

समाज सम्बन्धी अनेकानेक बातो की प्रामाणिक जानकारी का आधार है। "सच अपरी विगतावळी" तथा "कथा औतार पात' के आरम्भ मे कवि के निवेदन से पता चलता है कि किसी भी प्रकार का असत्य भाषण न उनको रुचिकर था न सह्य। जिस रूप मे सत्य मिला उसको उसी रूप म उचित शब्दो द्वारा कह देना उनको इष्ट था। इसी कारण वर्ण्य विषय की प्रामाणिकता की दृष्टि से उनके साहित्य का महत्व सर्वोपरि है। वस्तुत वील्होजी सच्चाई और प्रामाणिकता के स्वय स्रोत थे।

अत्यन्त सहज रूप से वे आत्म और पर-दर्शन कराना चाहते हैं। उनके साहित्य मे व्यष्टि और समष्टि के कल्याण की व्यापक और उदार मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। वे स्वय सिद्ध योगी थे, किन्तु योग-चर्चा उन्होंने नही की और जो भी की,[1] वह उनकी अपनी अनुभूत साधना का दिग्दर्शन ही कराती है। गृहस्थ के लिए वे हठयोग नही, नाम जप करने को कहते हैं। हठयोग के नाम पर प्रचलित पाखण्ड को लक्ष्य करके भी उन्होने इसकी चर्चा को ठीक नही समझा। उनके अनुसार, सिर लेना बडी बात नही सिर देना बडी बात है। रावळ जैतसी जाम्भोजी से वर मागते हुए यही कहते हैं— मैं स्वय डरू किन्तु किसी को डराऊ नही'[2]। अन्यत्र भी कवि ने यही कहा है (हरजस सख्या १)। आत्मबलिदान का भाव आत्मविस्तार का कारण है। यह उदात्त गुणों का उद्भावक और पोषक है। वील्होजी ने यही सिखाया और ऐसे बलिदानो का सोल्लास वर्णन किया। 'खडाणे' की घटनाओं वाली साखियां इसका सम्यक परिचय देती हैं। कहना न होगा कि सिर देने वाले जाम्भोजी की किसी न किसी बात पर ही ऐसा कर रहे थे, जिसकी पुनर्शिक्षा वील्होजी ने दी थी। आत्मविश्वास के ऐसे उदाहरण ढूढने से ही मिलेंगे।

मरुभाषा के भाषाशास्त्रीय, विशेषत लोगों की बोली के अध्ययन के लिए वील्होजी का नाम चिर-स्मरणीय रहेगा। केवल 'सच अपरी विगतावळी' ही नहीं, उनकी समस्त शब्दावली इस सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण है। उल्लेखनीय है कि समाज-सुधार, मनोवृत्ति परिष्कार,

---

१–घुर नीसाण म त्रीक धुनि उपज, सुज आवघ विण वीण वाजै।
ताळ सुर नाद सुर पथ सुर सभळो, गिगन वीणा घरहर मेघ गाजै॥ २॥
आनिध्य पाइय को न दुराइय, आप पर आतमा जाणि रहियै।
वरजियै वाद इहकार तजि तामसी, एक ही एक दोय कु ण कहिय॥ ३॥
एक मन जाचिय रूप वीण राचिय पोहम प्रमळा पर्लो वास लीजै।
मु न मा सोझियै अवळ पथ षोजियै, अगम अतीत सू प्रीति कीज।
मनण नीदियै अवर चप सोझियै, कठण औपा कहो कु ण कहिय।
अलाह अलेप किम लपिय वील्हजी, सबद सू सुरति लिव लाय रहियै॥ ५॥
–हरजस ८।

२–रावळ सार एक वीनती साई एक असी सु णिजै।
कळिजुग मा जे जीव, मुकति ताह नू न कहीजै।
सा मयों म्हानू होय, म्हे पापी उपराधी।
दरसण थाहरो दीठ, आह निधि मोटी लाधी।
मागू छू जू ण मिरघ री, हवान भत धावो कही।
पड चू टि न अ भसरि पाणी पियो बीहू पणि वीहाहू नही॥ १५॥

अध्यात्म-सन्देश और चेतावनी तो अनेक सन्त-भक्तों ने दी है परन्तु इनके अतिरिक्त बोली-सुधार का सोदाहरण प्रयास केवल वील्होजी ने ही किया।

राजस्थानी साहित्य और संस्कृति को वील्होजी की अभूतपूर्व देन है। उनकी रचनाएँ बहुत लोकप्रसिद्ध हुईं। अनेक समकालीन और परवर्ती कवियों ने न केवल उनसे प्रेरणा ग्रहण की, बल्कि उनके आधार पर अथवा उनको समाविष्ट करते हुए अपनी रचनाएँ भी लिखीं। अनेक मुक्तक रचनाएँ तो लोक-प्रसिद्धि के कारण श्रद्धालुओं द्वारा अन्य कवियों के नाम से भी प्रचारित कर दी गईं। इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा। इनका एक हरजस (संख्या १५) "संतो भाई घर ही झगड़ो भारी", सुप्रसिद्ध ग्रंथ संगीत रागकल्पद्रुम[1] में किंचित् परिवर्तित रूप में कबीर के नाम से मिलता है। परम्परा, काव्य-रूप, भाषा-शैली, विचारधारा आदि की दृष्टि से वील्होजी ने राजस्थानी साहित्य में अपने ढंग से महान् योग दिया।

५६. दसुंधीदास : (विक्रम १७ वीं शताब्दी) :

प्रति संख्या २०१ में "केसवजी के सवइये" (फोलियो १९७-१९९ पर) शीर्षक के अन्तर्गत केसोजी के अतिरिक्त गोपाल, मान, किसोर आदि कवियों के कुल ४० फुटकर छंद लिपिबद्ध मिलते हैं, जिनमें एक सवैया दसुंधीदास का भी है। यह छन्द किंचित् त्रुटित प्रतीत होता है।

इसमें श्रद्धा-भक्ति पूर्वक कवि ने जाम्भोजी का महिमा-गान किया है :—

जैसे मथि सायर मां चवदै रतंन काढे, तैसे तिहुं लोक ही मां पंथ ही चलाया है।
जैसे काळी नाग नाथी जळ उरध घाट कियो, भगत कै तारिवै कूं देह धरि धाया है।
चालत की छांह नांही, नींद भूख व्यापै नांहीं....सबद सुनाया है।
कहत दसुंधीदास सुचील सीनान सझि, कंचन सी काया ताकूं कळस बनाया है।२९।

दसुंधीदास वील्होजी के सात प्रमुख शिष्यों में से एक थे (देखें-परिशिष्ट में-'साधु परम्परा')। मोटे रूप से इनका समय सत्रहवीं शताब्दी है।

५७. आनन्द : (अनुमानतः विक्रम १७वीं शताब्दी) :

इनके विषय में विशेष ज्ञात नहीं है। रचनाओं में आए उल्लेखों और शैली से कवि का विष्णोई होना ध्वनित है। इनकी ये रचनाएँ उपलब्ध हैं:—

१-कवत गोपीचन्द का-१० कवित। (प्रति संख्या २०१, फोलियो ५४१-४४)।
२-कवत कैरुंवां पंडवां का महाभारथ का-१० कवित्त। (वही, फोलियो १९१-९२)।

१-कृष्णानन्द रागसागर विरचित, खण्ड २, पृष्ठ ४६५।

३-फुटकर छन्द-१ सवैया, १ दोहा (प्रति संख्या ३८७)।

प्रथम रचना मे बंगाल के राजा गोपीचन्द के जोग लेने का वर्णन है। एक समय राजा को प्यासा जानकर रानी ने उसको पानी पिलाया। पानी पीते देख, पिता के समान ही उसकी सुन्दर देह को नश्वर जान कर माता मैणावती के आंसू बहने लगे। राजा के पूछने पर माता ने यह कारण बताया और अमरता प्राप्ति हेतु जालंधरनाथ को गुरु बनाने को कहा। राजा ने पहले तो तर्क किया किन्तु अन्त मे उसने सर्वस्व त्याग कर "जोग" लिया[1]। ध्यातव्य है कि इसमे 'मैणावती' के रोने का कारण अन्य ऐसी रचनाओ से भिन्न है। एतद् विषयक रचनाओ मे इसका विशेष स्थान है।

दूसरी मे महाभारत-क्षेत्र मे भगवान श्री कृष्ण द्वारा टिटिहरी पक्षी के अंडो की रक्षा किए जाने का वर्णन है। युद्ध से पूर्व भगवान ने टिटिहरी को अंडे लेकर उड जाने को कहा किन्तु उसने उनकी शरण-ग्रहण कर ऐसा नहीं किया। कौरवो और पाण्डवो मे भयंकर युद्ध हुआ जिसमे अनेक योद्धा मारे गए। प्रभु ने एक ढाल से अंडों को ढांप कर सुरक्षित रखा[2]। भगवद्महिमा का बहुत सुन्दर वर्णन इसमें किया गया है।

दोनो रचनाओ म लघु संवाद और वर्णन विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं। ये भाव-

---

१-चौकस गोपीचंद एक दिन पैठो इंदरि।
सामा मोळ महस, सरस सोभति सुंदरि।
अपावत प्रिय जाणि, आणि पाणी जळ पावै।
जातो दीसै कंठि, कवळ नाळी जिम जावै।
तिण समै देषि मीणावती, मात मनि लागी डरण।
असी देह तात वणसण, आंसू पाति लागी करण ॥ २ ॥
चौकस पूछै गोपीचंद, मन मा कुंवण दुष माता।
हूं बेटो ताहरो, दियण सबै सुप दाता।
मात कहै मति वात, सुणो राजा दुष म्हारो।
मैं देष्या सम और, सरूप मनोहर थारो।
या काया कचनी, सदा सुन्दरी जो रहती।
जा जी बुंहता साम्य, दुष ले क्लेस न सहती।
न रहै अति संसार मा, माटी जाय माटी रळै।
माता कहै मैणावती, आंसू इंणि कारजि ढळै ॥ ५ ॥

२-थारा इंडा ऊपरि थट, बरडकि ज्यौं बगतर वटै।
दड ज्यौं दाट दडग, टोप रगावळि थटै।
पडै जीव रपियै पड, गुट ज्यौं सूर गरकै।
चमकि तुरिया पुर चाळ, सभै चाळ सूर सळकै।
पड पाग नर पळहळै, सूरा वल्य सोम्हा सहै।
तिण वार त्रिकम राष्या तकै, हरि राषै सेई रहै ॥ ६ ॥
भडां नरा उरि भांजि, उरि उरि मता उछटै।
धीक एक उरि धीक, बरत बोहरता वटै।
लोथ बोथ बग लोथ, काटि कुटि त्रिकट करता।
रुंड मुंड नै पग रपा, रुदर मिनप पव करता।
आनद सुष करता अनत, जाण अंणियाळा भाला सह्या।
रिण मझि राय राष्या रूडा, हरि राष्या सेई रह्या ॥ ७ ॥

पूर्ण और चित्ताकर्षक हैं। दूसरी रचना में युद्ध की भीषणता का सजीव चित्रण है[1]।

फुटकर छन्दों में भक्त के गुणों का उल्लेख है[2]। सवैए की भाषा पिंगल है और शेष सबकी राजस्थानी। समष्टि रूप में कवि का भावुक भगवद्-भक्त होना प्रमाणित होता है।

५८. कवि - अज्ञात : (अनुमानतः विक्रम १७ वीं शताब्दी) :

साखीः—सतजुग सतपंथ प्रगट्यो, साहिब तंणै सहाय।
आदू देवां दांणवां, ऊं ही चाली जाय ॥ १ ॥–प्रति २०१, साखी ६६।

६० दोहों की इस साखी में बीकानेर के अनेक विष्णोई स्त्री-पुरुषों का कारणवश स्वेच्छा से प्राण त्यागने का वर्णन है।

साहिबदास और कल्याणमल द्वारा शेखे से दंड लिए जाने पर करनू और दौलत ने प्राण दिए; फिर रामसिंह के रुपए मांगने पर कूदसूं में हरपाल, वाली, धरमणि, पुल्ह, करमंणि आदि अनेक विष्णोई स्त्री-पुरुषों ने 'तड़ाग' किया। कुछ समय पश्चात् जसवंत और मेघे के कहने पर राय रायसिंह ने उनको कर उगाहने का काम सौंप दिया। नाये पर 'धूंवे' का कर लगाने के बदले पीयू ने अपने प्राण दिए। पश्चात् चोरों ने जांभाणी बकरों की चोरी की, जिनको छुड़ाने के लिए रूड़ो, दामो और बहुत से विष्णोइयों ने अपने प्राण त्यागे।

ठाकुरों ने मुकाम-मन्दिर के गिरे हुए कलश को पुनः वहां पर चढ़ाने नहीं दिया। तब आगो, कान्हो, वरसिंह, गोयंद, गोपाल आदि ने अजमेर में बादशाह के पास जाने का विचार दिया। आगे सूरसिंह का डेरा था। डेरे में से निकलते देख कर उसने उनको बुला लिया। राजा के साथ तीन मंजिल तक तो वे दक्षिण की ओर चले किन्तु बाद में साथ छोड़ कर अजमेर पहुंचे। वहां से उपर्युक्त विषय का परवाना लिखा लाए। तब जांगळू, पारवा, ऊदासर आदि स्थानों से अनेक स्त्री-पुरुष एकत्र होकर मुकाम आए और 'तड़ाग' किया। फलस्वरूप कारीगर पुनः कलश चढ़ा कर ही उठे। यह घटना संवत् १६७२ के आर्द्रा

१–की लोक मंझि कुरपेत, मंडलीक मरद मंडांणां।
धूवां धूंकळ घोर सूर, सळवळै सपांणां।
धंमंट घाव गहगट थट, फिरै गींवर गज थांणां।
विढै मांवंत सूर विकट, आवध इंद मैं समांणां।
गुड़ै गज थाटां गयंद, थांण जकै हसती थया।
आप उबार्‌या से उबर्‌या, मुकतिनाथ कीवी मया ॥ ५ ॥

२–सील संतोष सुबुध सुलखण, धीर गंभीर मिलैं जुग च्यारे।
धरम दया निरलोभ निरासिक, निरभै भक्ति अरावन हारे।
करम करै सु करै प्रभु अरपंण ही फल चाह न बुध विचारे।
स्वात की ग्यांन अनंद भनैं, सोई भक्त सदा भगवंतहि प्यारे ॥ १ ॥

नक्षत्र में शुक्ल पक्ष की एकादशी को हुई थी[1] । कवि ने महीने का उल्लेख नहीं किया है ।

इसमें वर्णित विभिन्न घटनाओं का समय लगभग संवत् १६०० से १६७३ तक है । उल्लिखित कल्याणमल, राय रायसिंह और सूरसिंह बीकानेर के शासक रहे हैं[2] । रायसिंह कल्याणमल के दूसरे पुत्र थे । इसमें रायसिंहजी के किला बनवाने का भी उल्लेख है[3] । यह संवत् १६५० में पूरा हुआ था[4] । साखी से ध्वनित होता है कि रुपयों की विशेष आवश्यकता इसके लिए थी । "खड़ाणे" सम्बन्धी साखियों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है । इससे विश्णोइयों की सम्पन्नता, धर्म-पालन में दृढ़ता और तद् हेतु निस्संकोच प्राण देने का पता चलता है । साथ ही तत्कालीन राजकीय शिथिलताओं, आवश्यकताओं, और आपसी ईर्ष्या-द्वेष के संकेत भी मिलते हैं । कवि ने यत्र-तत्र इनका प्रभावपूर्ण उल्लेख किया है[5] ।

५६ नानिग (नानिगदास) . (अनुमानतः विक्रम १७ वीं शताब्दी) :

रचनाएँ— १-साखी : जीवळा जी धन्य महूरति धन्य सुवेळा, गुर झांभेसर आयो[6] ॥१॥
२-नीसाणी . मुलतांनी बलक बखारे दा, हो मुलतानी बलक बखारे दा ॥
—प्रति ४०६ ।

१६ पंक्तियों की 'कर्णा की' प्रस्तुत साखी में जाम्भोजी का महिमा-गान और नागौर के किसी रामदास का खनहेड़ा में विश्णोई धर्म-पालनार्थ सोत्साह अपने सिर देने का उल्लेख है । कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं[7] ।

१-ऊ हाडिये भेळा करि, होतासण होम्या ।
तीथि ग्यारसि तेहोतरै, मोमिण पैल किया ॥ ५९ ॥
सुकळ पषि आदरा नषत, मोमिण मुकति गया ।
धारा किया माहि जां, बाहर करि बाबा ॥ ६० ॥ ६६ ॥

२-ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १३६-२२८, सन् १६३६ ।

३-आस पियासी राजवी, लीयो कोट चिणाय ।
दमडाल्या विसनोइया, ज्यौरया सूत फिराय ॥ १७ ॥

४-ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १७९, सन् १६३६॥

५-कळि काठा कुरलोमिया, घाल्या हाथ सवाहि ।
कागळ ऊपरि लिषि लिया, घु मो नाथे रै लाय ॥ १४ ॥
वाडी ज कीजै जतन नै, पालण नै हरियाव ।
वाडी चरै जे षेत नै, करणो क्योंई न जाय ॥ १५ ॥
हरियावा नै राजवी, षेत दियो मुकळाय ।
करसण हरियाव चरि गया, हाथ गया घूडी माहि ॥ १६ ॥

६-प्रति संख्या ६८, १५२, २०१, २१५ तथा २६३ ।

७-जीवला जी दोय पष निरमळ दिल दिल दायम विषम पथ चलायो ॥ २ ॥
जीवला जी पतडा पापी दोरै जायस्यैं, आयो विसन न ध्यायो ॥ ३ ॥
जीवला जी आसति करि करि नासति करिस्यैं, जा सिरि गुरु लिषायो ॥ ४ ॥
जीवल जी नागौर सू रामदास चडियो, वग्य खनहेडै आयो ॥ ७ ॥
जीवला जी काढी तेग गरदनि वाही, सीस उतारि मुय थायो ॥ ८ ॥ (शेषांश आगे देखें)

नीसांणी कुछ पाठभेद से अल्लूजी कविया के नाम से भी प्रचलित है किन्तु उनकी रचना नहीं है। इसमें बलख–बुखारा के सुलतान सम्बन्धी वर्णन है। भाषा पर किंचित् पंजावी प्रभाव है[1]। (इस सम्बन्ध में पृष्ठ २११, ५८१ भी देखें)।

६०. लालोजी : (विक्रम १७ वीं शताब्दी) :

साखी:– 'आंवलो',–हूं बलिहारी साधां मोमिणां जांरी छै अवचळ वाच।
विसंन सगाई जे करो, काज सरैं सह साच ॥ १ ॥ टेक।–प्रति २०१।

ये वील्होजी के सात शिष्यों में एक थे (द्रष्टव्य–परिशिष्ट में 'साधु–परम्परा') सुरजनदासजी पूनिया ने एक गीत में 'सुपात्र' लालोजी के ज्योतिष–ज्ञान की प्रशंसा की है,[2] जिससे अनुमान होता है कि ये सम्भवतः जाति के ब्राह्मण विष्णोई थे।

'राग सुहव' में गेय लालोजी ने २८ दोहों की इस साखी में एक लघु–कथा के द्वारा पाण्डवों के गुणों का दिग्दर्शन कराया है। बीच में ८ छन्द (संख्या १०, १२, १४, १६, १८, २०, २३ और २५) मरुभाषा मिश्रित अशुद्ध संस्कृत 'श्रलोक' (श्लोक) हैं। 'श्रलोक' एक प्रकार से दोहा ही है। पाण्डवों को कष्ट देने के लिए कौरवों ने दुर्वासा को आम की एक गुठली 'उन्हार' (भून) कर दी। ऋषि ने पाण्डवों के पास जाकर कहा–मुझे इस गुठली से उत्पन्न आम के रस से भोजन करवाओ अन्यथा शाप दूंगा। इस पर युधिष्ठिर, अर्जुन, सहदेव, नकुल, द्रौपदी तथा कुन्ती–प्रत्येक ने बारी–बारी से स्नान कर आम के बदले अपने पुण्यकर्म समर्पित किए। इससे गुठली से उत्पन्न आम वृक्ष से पका आम प्राप्त हुआ जिसके रस से ऋषि को मनोवांछित भोजन कराया गया।

जीवला जी सुरगे कांमंणि पड़ी उडीके, रांमदास वग्य वधायो ॥ १३ ॥
जीवला जी देव विसंन म्हे सेवग तेरा, जिण मुरगां माघ बतायो ॥ १५ ॥
जीवला जी गुर परसादे नानिग बोलै, मीठो दीन मुंणायो ॥ १६ ॥
दीन (धर्म) को मीठा समसदीन और अंमियादीन ने भी बताया है :—
ओह महारस संमसदीन बोलै, मीठो दीन संनेहा ॥ ११ ॥–समसदीन।
दीन मीठो मेवो, जुग करि देपो पारो ॥ १ ॥–अंमियादीन।

१–दासी सूति परी विगूती चाबक चोट चकारे दा।
बातसाह नै जाव दीयो है यो ही हवाल तुहारे दा ॥ १ ॥
धिन है चेरी सतगुर मेरी मेटण दुप संसारे दा।
यो तन पासा मल मल पहरता च्यार टांक चौतारे दा ॥
अब तो बोझ उठावंण लागा गूदड़ सेर अठारे दा ॥ २ ॥
पहलां जीमता चीज निवाला ताता तुरत तुहारे दा।
अब तो टूका पांवण लागा वासी सांझ सवारे दा ॥ ३ ॥
पहलुं चडता गढ दल बादंल नव लप तुरी नगारे दा।
इतनां तज करि लई फकीरी विन आकींद विचारे दा ॥ ४ ॥
पीर पकंवर अमर अवलीया सिव पुरप दी रैणी दा।
नानिगदास जपै वैरागी साचा फकर अपारे दा ॥ ५ ॥ ३ ॥ –प्रति ४०६।

२–नीण छपै निपालेस नेतो, जोतेग लाल सुपात जिसो ॥ ३ ॥

रचना का उद्देश्य पाण्डवों के सत्कर्मों और गुणों का परिचय कराना तथा अव्यक्त रूप से पाठकों को उनके अपनाने का संकेत और प्रेरणा देना है। आरम्भ में उत्पन्न पाठक की कौतूहल-वृत्ति शनैः शनैः पाण्डवों के गुण-प्राकट्य के साथ, उनके प्रति श्रद्धा में परिणत हो जाती है। इससे प्रत्येक के विशिष्ट गुणों का भी पता चलता है। कतिपय छंद द्रष्टव्य हैं[1]।

६१. गोपाल (विक्रम १७ वीं शताब्दी)

इनके विषय में विशेष कुछ पता नहीं चलता, अनुमानतः ये केसोदासजी गोदारा के समकालीन रहे होंगे। प्रति संख्या २०१ में विभिन्न स्थानों पर (फोलियो-१५५, १८१, १८८, १९७, २००) इनके १२ फुटकर छंद (१ सवैया, ४ कवित्त और ७ कुंडलियाँ) उपलब्ध हैं।

आत्मोद्धार-निमित्त एक सवैए में कवि का निवेदन जाम्भोजी के प्रति ध्वनित[2] है। "कुंडली" का कथन और शब्दावली भी यही द्योतित करती है[3]।

१—आविल बीज उन्हारियो, दुरभा रिप हाथि दिवाय।
ले दुरभा रिप चालियो, कैरवा रळी कराय॥ ३॥
नाव दहूठळ धरम सुत, तू पडवा को राय।
ध्यानी हू दूरि पथसरी, मन वछ्या मोहि जिमाय॥ ५॥
भून्यो आव उपाय कैं, अब रस हुवै रसोय।
नहीं तर सराप ज देविस्यों, इणि विधि जीमण होय॥ ७॥
भुय विणि बीज न उगवै, रुति विणि नाही मेह।
किणि विधि आवो उपजै, क्यो सत रापै देव॥ ६॥ (द्रोपदी का कथन)
आंबो रोप्यो पाचे पाडवे, पालिक के दरबारि।
पीष पडैली आव सोवनी होडैला के सुचियारि॥ २७॥
साधा मनि आणद हुवो, गाफिला मनि अणराय।
बीनतडी भालो कहै, आवगुंवणि चुकाय॥ २८॥

२—गोपाल कहै प्रतिपाळ सुणो, मो पूनी के पून विसारियो जी।
मैं आप अलेप की ओट गही, अरि हू करि आदे उबारियो जी।
सिरज्या री लाज सवारियो काज, अपणो जण जाणि उधारियो जी।
भेप की लाज नीवाजि निरंजण, मारि क बोहडि न मारियो जी।
बान की पति करो गति गोम्यद, ऊतब लार न जाइयो जी।
मो कपटी के काज मरै हरे ठीक असी म्हराइयो जी॥ गोपाल०॥

तुलनीय—केसोदास गोदारा की साखी —
(क) हरि चरणे लागी रहूं, जै सुणी वात वमेष।
अग धाने की वहो, साम्य रापौ टेक॥—साखी, संख्या ५॥
(ख) हरि हिसाब न पूजियै, विडद वाने की वही॥—साखी, संख्या ६॥

३—वदा ता साहिब कू यादि करि, जिणि मेदनी उपाई।
जिणि सिरजी हित परीति, दुनी जिणि धधै लाई।
अधर धरयो असमाण, अचळ करि धरती रापी।
सिरज्या पाणी पुवण, चद सूरज दोय सापी।
सिरज्या परवत मेर, वणी। अठारै भार। (शेषांश आगे देखें)

कवित्तों में त्रिया-लक्षण वर्णित है। इनमें तीन छन्दों में फूहड़[1] और एक में सुशील[2] स्त्री के लक्षणों का बड़ा खरा और स्पष्ट उल्लेख है।

कुंडलियों में नीति-कथन,[3] मृत्यु की अनिवार्यता, हरिनाम-स्मरण, तथा यौवन के बीतने और वृद्धावस्था का वर्णन है[4]।

कवि ने व्यावहारिक जगत से सम्बन्धित बातों को सहज भाव से लोक-प्रचलित उपमाओं के माध्यम से कहा है। इनमें उसका अनुभव और लोक-ज्ञान प्रकट होता है। जिन

नवसै नदियां नीर, सिरज्या जिरण सागर पार।
सत्य करि सांम्य धियाइयें, प्रथी पाळग लछवर।
कह गुंणीयरण गोपाळ, ता साहिब कूं यादि करि ॥ ५ ॥-तुलनीय-सबद ५१।

१-क-सूवर सी सो ल्याळ, भेंसि सी लांका भीणी।
जिसी पाडे को पूंछ, असो कंवरि की वीणी।
बतळाई बोले नहीं, लपंरण लोतरां विहूंणी।
भमकि न लागे कांम, वुडे कातंरण नें पूंणी।
कह्यो न मांनै कंत को, सिर तो फड़को करि ढिलो।
गोपाळ कहै नारी नहीं, घर मां ऊंनथ गोधिलो ॥ ८३ ॥

ख-गोपाळ नारि ठिठकारि, जास मंनि घंणा मुकेरा।
हांढे घर घर बारि, करे गांव मां फेरा।
हांढि हूंढि घरि आय, धंणी हरि कदे न ध्यावै।
बड़कै बोलै वढकती, बोलती कहीं न सुहावै।
कांणि न करई कहीं की, भली छाडि साही वुरी।
गोपाळ कहै सुंणियो नरां, सूवर कहूं क सुंदरी ॥ ८५ ॥

२-सा सुंदरी गोपाळ, आप ता उठै सवारी।
करि दांतंरण दांन सिनांन, दे अंगंरण बुहारी।
सफ सगळा सिरणगार, जुगति सूं सांम्य धियावै।
बोले मधरी वांणि, बोलती सभा सुहावै।
कहि न मेटै कंत को, न भंपै आळ जंजाल।
आं लपणां जांणियै, सा सुन्दरि गोपाळ ॥ ८४ ॥

३-परहरि गांव कुगांव, जास मां वसै कुठाकर।
परहरि सींरण कुसींरण, कहै पाछली आपर।
परहरि ताकी प्रीति, कियो उपगार न जांणै।
परहरि मीत कुमीत, आप ही आप वपांणै।
परहरि नारि कुनारि, कंत कै कह्यो न चालै।
परहरि पिंडत सोय, धरंम करते नूं पालै।
परहरि मन्यौ गुंमांन गुर, गुर चेलै जुंवळा मता।
कहै गुणीयरण गोपाळ, जग ऊगरि परहरि अता ॥ ७ ॥

४-गई नींरण की जोति, गया डसंरण भलकंता।
गयो नाक को नूर, गया वदंन विगसंता।
अहर गया कुमळाय, देह तें नूर पलट्या।
गयो महाबळ तेज, गयो जोबंन वोह हट्या।
थरहरी काया चलंरण डोग्या, जोर जरब लियै जुरा।
कहि गुणीयंण गोपाळ, जोबंन जातै अह जुरा ॥ ३ ॥

बातों का अनुभव जन साधारण प्राय: करता है, उनका प्रभावशाली और रोचक वर्णन कवि ने किया है।

६२ हरियो(हरिराम) : (अनुमानतः विक्रम १७ वीं शताब्दी) :

ये मारवाड के विश्णोई साधु थे। हस्तलिखित प्रतियों में लिपिबद्ध रचनाओं के आधार पर इनका जीवन-काल उपर्युक्त माना जा सकता है, रचनाकाल संवत् १६५० के आसपास रहा होगा। इनकी राग 'जैतश्री' मे गेय ४१ दोहों की 'गोपीचन्द की साखी' मिलती है[1] ।

'साखी' मे माता की प्रेरणा से राजा गोपीचन्द के "जोग" लेने का वर्णन है। एक बार राजा स्नान के लिए उद्यत हुए। उस समय उनकी माता मयनावती महल पर खडी हुई थी। वह उनको देख कर रोने लगी। अकस्मात् बूँद देखकर राजा ने ऊपर देखा और माता से रोने का कारण पूछा। वह बोली—तुम्हारे पिता की देह भी ऐसी ही थी जो नष्ट हो गई। राजा ने देह को अमर बनाने का उपाय पूछा, तो माता ने उत्तर दिशा मे जाने और देह अमर बनाने को कहा। राजा ने पहले तो आनाकानी की किन्तु बाद म हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर वन चले और पात्र को 'खीर खाड' से भरकर 'जोग' लेने के लिए गोरखनाथ के पास गए। गोरख ने उनको अ ग मे भभूत लगाकर अपने ही घर से पहले भिक्षा लाने को कहा। इस हेतु गोपीचन्द धौलागिरी आए। पाटमदे रानी सज-धज कर सम्मुख आई तो उन्होंने उसको 'माता' कह कर संबोधित किया। रानी ने घर मे ही जोगी बनकर रहन की प्रार्थना की, किन्तु सब व्यर्थ। रमते हुए गोपीचन्द परमनगर म आए और धूनी रमा कर बैठ गए। सभी लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। वहा की राणी उनकी सगी बहन थी। वह भी उनसे मिलने के लिए आई और बोली—मयनावती तो मेरी माँ है, और तू गोपीचन्द मेरा भाई है। उसने भाई से घर चलने का अनुरोध किया। वे बोले—मैं गोपीचन्द तो अब भिखारी हूँ। 'जामणिजाई' बहन के विछोह का दुख बहुत बडा है, किन्तु फिर यहा मत आना। वे इसी प्रकार जगलो और "देस-दिसावर" मे घूमते-फिरते रहे। भरथरी के पूछने पर उन्होंने अपने पूर्व वैभव की बातें संक्षेप मे बताईं। 'हरियै" की 'साखी' है कि राज्य छोड कर राजा ने "जोगू टा" लिया और अलख पुरुष से "लौ" लगा कर वह अमर हुआ। उदाहरणस्वरूप कतिपय छन्द नीचे दिए जाते हैं[2] ।

१-प्रति संख्या १४२, १६१, २०१, २०७।

२-ना दध आपर माता कहियो, ना कहियो कोई नारी।
माता मणावती सुपह बतायो, अ मर कियो संसारी ॥ २८ ॥
मरियो मरियो असडी माता, जीणि श्री कुवर विसार्यो,।
दूजो दुनिया दरसणि आवै, क्यो नारी नेह निवार्यो ॥ २९ ॥
रोह रोह म्हारी बाई बहणा, माता दोस न दीणा।
माता मैणावती घणा अस जीवो, मुखि बोलो इम्रत मीणा ॥ ३० ॥ (शेषांश आगे देखें)

कवि की लोक-प्रसिद्धि का कारण उसकी रचना-'साखी' है। यह बोलचाल की प्रभावपूर्ण भाषा में रचित, भावपूर्ण संवादात्मक गेय लघु कृति है जिसमें सर्वत्र घरेलू वातावरण की छाप है। रचना में माता-पुत्र (२-९), गोपीचन्द-राणी (१५-२२) परमनगर में दर्शक-स्त्री और गोपीचन्द (२६-३०), वहन-भाई (३२-३५) तथा भरथरी-गोपीचन्द (३७-३६) संवाद नपे-तुले शब्दों में, प्रसंगानुकूल और नाटकीयता से ओतप्रोत हैं। साखी में माता, पत्नी, वहन और जिज्ञासु लोगों के विभिन्न कथन और प्रश्नों से मानव और उसके जीवन के विविध पहलुओं पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। सुख-दुख भरे जीवन की अनेक झाँकियों के मूल में अमरत्व-प्राप्ति का संदेश निहित है। इसका सामूहिक प्रभाव लोक-मानस के शोधन और आत्म-विस्तार की क्षमता रखता है। वहन और भाई का संवाद तो अत्यन्त ही करुणा-पूरित है।

इसके अनुसार "जोगियों" का स्थान उत्तर दिशा में था, वहीं गोपीचन्द को गोरखनाथ मिले थे। निष्कर्षतः सत्रहवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध में राजस्थान में गोरख उत्तर के माने जाते थे। लोग घर के झगड़ों के कारण भी "जोग" लेते थे, यह भी इससे स्पष्ट है।

यह साखी गोपीचन्द-विषयक परवर्ती काव्यों की प्रमुख आधार रही है। उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध गोपीचन्द[1] काव्य में इसको निपुणतापूर्वक समाविष्ट किया गया है तथा इसमें आए उल्लेखों को कल्पना द्वारा संभावित रूप देकर उसमें घटनाओं और वर्णनों का वर्द्धन किया गया मिलता है, जो पाठालोचन के विद्यार्थी के लिए अध्ययन का रोचक विषय है।

६३. दुरगदास : (अनुमानतः विक्रम संवत् १६००-१६८०) :

ये बीकानेर राज्य के निवासी थे। इनके निम्नलिखित दो हरजस मिलते हैं[2] :-

क- विसंन नांव भजन विनां अंनेक वार हार्यो ॥ १ ॥ टेक ॥-५ छन्द, राग विहाग।

माता मेणावती माय भणीजै, तूं गोपीचंद भाई (जी)
मरि मरि जांऊं थारी सुरत नै, वेंहण मिलण नै आई ॥ ३२ ॥
गोपीचंद ज्यों हित करि मिळियो, भाई भुजा पसारी।
रोह रोह हे म्हारी जांमणि जाई, हंम गोपीचंद भिपियारी ॥ ३३ ॥
सीप दीय गोपीचन्द राजा, मिळिया वंहण र भाई।
जांमणि जाये को दुख दोरो, वहंनड़ वळै न आई ॥ ३४ ॥
गोपीचन्द जी वोले ज वोल्या, उवि उवि आंसू आया।
हेकर सों घरि चाल म्हारा वीर, वंहनड़ सवद सुनाया ॥ ३५ ॥
सीप दियो सासति करि मांनी, वहंनड़ वात विचारी।
तम तो भए गढपति राजा, हंम भए भिपियारी ॥ ३६ ॥
राज तजि जोगूंटो लीयो, अलप पुरिष लिव लाई।
अमर हुवो गोपीचंद राजा, हरियै साषि सुंणाई ॥ ४१ ॥

१-गोपीचंद : सम्पादक-श्री मनोहर शर्मा, राजस्थान साहित्य समिति, विसाऊ(राजस्थान)।
२-प्रति संख्या ४८; २०१; २२७।

ख– सोई संता तारण साम्यजी, पहलाद उबारण हार ॥ १ ॥ टेक ॥–८ छन्द, राग म्वडी।

पहले मे विभिन्न भक्तो के प्रति भगवान की कृपा तथा दूसरे मे भगवान के अनेक्श "प्रवाडो' का उल्लेख है। प्रकारान्तर से दोनो ही कथनों के द्वारा कवि भगवद्–महिमा गान ही करता है। उदाहरण स्वरूप पहला हरजस नीचे दिया जाता है[1] ।

प्रति सख्या ४८ म इसम तीन छन्द और अधिक हैं जिनमे इसी भांति अन्य पौराणिक भक्तो का वर्णन है। इसके एक छन्द म जाम्भोजी से सम्बन्धित बादशाह सिकन्दर लोदी और हासिम–कासिम दर्जियो (द्रष्टव्य–जाम्भोजी का जीवन–वृत्त) का उल्लेख है।

गजराज के जद फध काटे, नाव लियो तेरो।
दिलीपती कू दियो परचो, सु सुजियां को बेरो ॥ ४ ॥

हरजसों म जाम्भोजी से सम्बन्धित कतिपय प्रसग लक्षनीय हैं। ऊपर "मोतियें" का नाम उससे और राव बीदा से सम्बन्धित घटना का परिचायक है। इसी प्रकार दूसरे हरजस के ये कथन भी —

१–नीवाई मा राखिया, मुजारो सुत दोय।
ऊपरि पावक प्रजल्यो, सांम्य उबार्या सोय ॥ २ ॥
२ साच सील सतसग रह्यो, नगरि चीकाणे जाय।
खडग उभारयो त्रियां नें, हाथ गह्यो रघराय ॥ ३ ॥
३–पुरबिया पथ चालतां, रांणों मार्ग रांण।
सीत तणी सुक्लावणी, रांणी झाली नें सहनांण ॥ ६ ॥
४–मगवत भगतां तारणें, गुर धार्यो भगवें वेस।
कमधज राजा कारणें, वरस अठारा देस ॥ ७ ॥

इनम प्रथम दो के विषय म अन्यत्र किसी प्रकार की जानकारी नही मिलती। तीसरा राणा सागा और झाली राणी से सम्बन्धित बहु-प्रचलित कथन है। चौथे में राव जोधाजी का सकेत है जिनको जाम्भोजी ने १८ वर्ष की आयु, सवत् १५२६ में बैरीसाळ नगाडा दिया था। (द्रष्टव्य–जाम्भोजी का जीवन–वृत्त) इस सदर्भ में इसी हरजस का *कृष्ण–'प्रवाडे'* सम्बन्धी यह छन्द भी द्रष्टव्य है, जिससे कवि के अनुसार भगवान् और जाम्भोजी का अभेद सिद्ध होना है —

लाख मडप क्यों जलै, साम्य करै जा सार।
लज्या राखी द्रोपती, दुसासण री वार ॥ ४ ॥

१–हिरण कू जब भीर परी, बधक आन्य घेरयो।
बानें हू की लाज राखी, बल अन फेर्यो ॥ २ ॥
द्रोपता की लाज काजे, चीर हू बढायो।
मोतियै की मदति कीनी, दूणपुरे आयो ॥ ३ ॥
नामदे भल भगति कीनी, नाव ले ले तेरौ।
भगत वछळ भगति कारणि, देहर वळ फेर्यो ॥ ४ ॥
थे से सत अनेक तारे, कूण सोभा गाऊ ।
(दुरगदास की अरदासि है, विसन दरस पाऊं ॥ ५ ॥–प्रति २२७ से।

अन्य पौराणिक और प्राचीन भक्तों के साथ उसी धरातल पर जाम्भाणी भक्तों के तथा भगवान् के विभिन्न कृत्यों के साथ उसी श्रद्धा-भक्ति से जाम्भोजी के कार्यों के उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये जाम्भोजी और विष्णोई सम्प्रदाय की चतुर्दिक फैलती हुई कीर्ति, प्रभाव और प्रसिद्धि के निसंदिग्ध प्रमाण हैं। कहना न होगा कि सम्प्रदाय को संजीवित रखने में ऐसी रचनाओं का बहुत बड़ा योग है।

कवि की एक और विशेषता यह है कि वह प्रत्येक हरजस के अन्त में उसके वर्ण्य-विषय का सार रूप में उल्लेख कर देता है। इस सम्बन्ध में दूसरे हरजस का अन्तिम छन्द देखा जा सकता है :—

केता प्रवाड़ा तें किया, गुर कंहंत न पाऊं सार।
दुरग कहे दीदार द्यो, गुर तूठां लाभे पार ॥ ८॥

६४. किसोर : (अनुमानत : विक्रम संवत् १६३०-१७३०) :

प्रति संख्या १५२ और २०७ में मेहोजी की रामायण में यत्र-तत्र केसोदास गोदारा, सुरजनदास पूनिया, किसोर तथा अज्ञात कवियों के फुटकर छन्द भी लिपिबद्ध मिलते हैं। नाम वाले सभी कवि विष्णोई हैं, अतः अज्ञात कवि कृत कवित्त और गीत भी विष्णोई कवियों की रचना होनी चाहिए। विष्णोई-राम-काव्य-कृति में अन्य विष्णोई कवियों के एतद् विषयक छन्दों को विष्णोई लिपिकारों द्वारा सम्मिलित किया जाना सहज सम्भव है। प्रति संख्या २०१ में फोलियो १७७-१७९ पर "सवइया फुटगर" के अन्तर्गत राम-चरित के विभिन्न प्रसंगों से सम्बन्धित १९ छन्द मिलते हैं, जिनमें उल्लिखित ज्ञात कवियों के साथ अज्ञात कवियों के ६ कवित्त तथा ४ गीत भी सम्मिलित हैं। इस प्रति में पृथक् रूप से आरम्भ करके दी गई कवित्त, गीतों की छन्द संख्या तथा ४ गीतों में से एक[1] को रामायण के अन्त में (प्रति संख्या १५२, २०७) देने से अनुमान होता है कि ये कवित्त एवं गीत दो भिन्न कवियों की रचनाएँ हैं।

इन १९ "सवइयों" में आरम्भ के तीन छन्द किसोर कवि के होने चाहिएँ, क्योंकि तीसरे[2] में उसका नामोल्लेख है।

१-लंक रे कांगरे वांदरा लूंबिया, कीमती कोट नै हाथ कीयो।
तीसरी पोळि सूं रोळि मातीहरी, लापणे चोट सूं कोट लीयो ॥ १ ॥
दल राघुवरा घेरि सिरि आंगियां, असर रा आकरा वार सारी।
देवरा अंमरा आभ ज्यों उलट्या, लापणो लोपियो संग सारी ॥ २ ॥
चांदणी चौक मां चत्रभुज ओसर्‌यो, हदळां वदळां रंग रातो।
हुकळां वुकळां चालिया वाहळा, महपति आंवता ध्रुव मातो ॥ ३ ॥

२-रांणीजी कहत रांण, पीव क्यों न छांडो प्राण,
सारका कवांर एक पायक पठाया है।
गुंनी तो गुंनेस सा कव तो है सारद सा,
देपो राजा रूप एक अैसा भूप आया है। (शेषांश आगे देखें)

ये तीनो (किसोर और दो अज्ञात) कवि मोटे रूप से केसौदासजी गोदारा (सवत् १६३०–१७३६) के समकालीन होने चाहिएँ। आगे इनके विषय मे क्रमश लिखा जा रहा है।

किसोर के उपयुंक्त तीनो छन्दों मे रावण द्वारा सीता–हरण और उससे जटायु का युद्ध, हनुमान का अशोक–बाग विध्वस तथा रावण को दी गई मन्दोदरी की "सीख" का वर्णन है।

प्रति सख्या २०१ मे फोलियो १९७–२०० पर "केसवजी के सवइये" के अन्तर्गत कई अन्य कवियो के छन्दो मे इस कवि के भी चार "सवैए" हैं,[1] जिनमें ससार की नश्वरता, हरिगुणगान[2] और जम्भ–महिमा[3] का वर्णन है।

इनम कवि की हरिभक्ति–भावना सहज रूप से मुखरित हुई है। प्राय सभी छन्दो मे लिपिदोष के कारण छन्दोभग है। इनको भाषा मरुप्रदेश म प्रचलित पिंगल है। स्वतन्त्र रूप से कवि की कोई रचना प्राप्त नही है।

६५ कवि - अज्ञात : (विक्रम १७ वीं शताब्दी) गीत–४।

गीतो मे राम की सेना और लका–युद्ध[4] का चित्ताकर्षक जीवन्त वर्णन किया गया

जाकी पूठि तो पहार सी, ल्गूर घोरी धारसी,
सीस अर्‌यौ समेर पीड आप ही उपाया है।
कहत किसोर लक सारी पड्यौ सोर,
दुरति उपाड्या बाग देष ही दिषाया है ।। ३ ।।

१–प्रति सख्या ४० म भी इनमे से जाम्भोजी के जन्म सम्बन्धी एक छन्द है।

२–नीर सू भिकोरि पोरि हीर चीर पहरे कहा, मोतियो जराव रे।
कामनी कुरगन की भावनी के मु ह देषि कहा भूलो बावरे।
धु वे के से धोल हर ढहत न लाव बार ओस का सा मोती अंसी तेरी आव रे।
कहत किसोर और छोडि धु ध फु धवाव गोम्यद गुन गाव रे ।। २५ ।।–प्रति २०१।

३–साम्य कू नवाऊ सीस, बिसन बिसोवा बीस,
तेतीसा के तारवे कू, आयो सुर राय रे।
पळक की आळ जाळ छोडिया सभे जजाल,
आळ तजि गुर भजी घणी पूरो ध्याव रे।
हारियं न भ्र मचार, मन तन छाडं मार,
• गोम्यद कू गाव रे।
कहत किसोर और जरब न कीजे जोर,
जिनि गु न ऊवरे, सोई गु न गाव रे ।। –प्रति २०१।

४–सीत री बाहर श्रीरामजी आविया, नाळि गोळा सर बाण वाहै।
पदम अढार लषण राघव चड्या, षेट पुरसाण करि पौळि ढाहै ।। १ ।।
पोळि ता नीसर्‌यौ चदगोर चौहटै, राम रा वागिया रीठ वावें।
अरण वरण जोगता भोगता, जोगणी जग मा वगि आवें ।। २ ।।
षजरे मजरे धु वरे साबितो, सीस उतारितो रिण सारी।
घरहर्‌यो आभ नै उपरै वीजळी, उघड्यो आभ दीय कु ण कारी ।। ३ ।।

है। मन्दोदरी के मुख से रावण को समझाने के लिए राम की सेना का यह वर्णन भी विशेष प्रभावशाली है :—

पदम अढार रीछ रिण वांदर इळा किळंव दळ वदळ वहै जाडो।
अनंत अवीह असर दिस उठियो, अरड़ियो आप हुवै कुंण आडो॥ १॥
सळवळै सेळ जिम भाद्रवै वीजळी, घरहरै भेर जिम इंद्र गाजै।
लायणो कोपियो लंक गढ पालटै, घड़हड़ै कोट ज्यों घुंस वाजै॥ २॥
लांघियो समंद नै सेन वाय उतरी, फरवरै फौज जिम धरंणी धूजै।
इळा असमांण विच इंद सो ओवड़्यो, चीस चिंघाड़ पाहाड़ गूंजै॥ ३॥
सांम्यजी साझियो साय सोह सूरिवो, फेर्यो वंधवां घरि भेद दीजै।
कहै मंदोवरी छाडि रंढ रावंणां, जानकी देह गढ लंक लीजै॥ ४॥—प्रति २०१ से।

निखरी हुई भाषा के सहज प्रवाह और प्रसंगानुकूल ध्वन्यात्मक शब्द-योजना के कारण एतद्विषयक गीतों में इनका विशेष महत्त्व है।

६६. कवि - अज्ञात : (विक्रम १७ वीं शताब्दी) : कवित्त।

६ कवित्तों में हनुमानजी, उनकी वीरता और अशोक वाग-विध्वंस तथा लंका में रामदल, उसके प्रभाव और युद्ध का प्रवाहपूर्ण वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए माली के कथन और रावण-मन्दोदरी के संवाद स्वरूप निम्नलिखित छन्द द्रष्टव्य हैं[1]। छन्दोभंग इसमें भी यत्र-तत्र है। इनकी उपमाएँ तो बहुत ही सुन्दर हैं।

१-क-छांटो वंगो छळंट पुरिष पुरिषां फुरताळो।
जुगति जोवंता जवान, अवीह जिसो मंनि वाळो।
लांबो पंणो लंगूर, काया नै कंध भुचंगो।
दीसंतो विकट विट रूप दिसै चंचळ चतरंगो।
भिळै जी भिळै वाड़ी भिळै, कूक जी कूक माळी कहै।
घरि न छाजै राम वरणि, जिण रै इसो भीछ वाहर वहै॥-प्रति संख्या १५२, २०७।
ख-मंछ हुवै मैमत, प्रांणी को पार न लभै।
पंड हुवै परचंड, गरगभ जळ गभै।
जोरि हुवै झूंझार, मल ज्यों जुड़ै अपाड़ै।
दुण दुणागिर थरहरै, जां एक एक न पाड़ै।
वर धूजी तर कंपिया, अरि सूं जाय अरियण अड़ै।
रांण कहै रांणी मुंणो, एम कोट यो घड़हड़ै।
आप चड़ै उगरीम, साथि सुगरीम संजोए।
कोपि कोपि तर होय, जोरि लंका दिस जोए।
लील निपट करि जोरि, सेन लै चड्यो अपरती।
हणवंत हाक हकारि, धीर नहीं झलै धरती।
पायक पदंम अठार सूं, चाल करे लछमण चड्यो।
रांण सुंणो रांणी कहै, एम कोट यो घड़हड़ै॥

६७. काल्‍ू : (अनुमानत. सवत् १६३०-१७३०) :

राजा भरथरी से सम्बन्धित इनकी दो साखियाँ मिलती हैं —

१-सुंणि राजा रांणी कहै, वेगा महलि पधारो ।
जिणि जोगी भरमाइया, ताका सग निवारो ॥ टेक[1] ॥

राग 'रामगिरी' मे गेय यह १७ छन्दो की रचना है ।

२-सोदागर सोबै मिल्या, जांणै लोक बटाऊ रे ।
दोन्हा वनफळ देषि करि, हम भए थाट बटाऊ रे[2] ॥ १ ॥

२१ छन्दो की यह साखी राग 'जैतश्री' और 'मलार' म गेय है, बीच मे दो 'श्लोक'[3] हैं, जो एक प्रकार से दोहे ही हैं ।

प्रथम साखी भरथरी और उसकी राणियों के सवाद रूप मे है । राजा के जोग लेने पर राणियाँ अनेक तर्क, दुखाभिव्यक्ति और अनुनय-विनय से उसको वापस महल मे चलने की प्रार्थना करती हैं । भरथरी निर्ममता पूर्वक उनकी बातों का उत्तर देते हुए अपने निश्चय पर ही दृढ रहता है, उस पर कोई प्रभाव नही पडता । भाग्य-विडम्बना से, भिन्न-भिन्न बधनो मे बधे, एक दूसरे के सामान्य मार्ग के सर्वथा प्रतिकूल, भोग और जोग के पथिक-राणी और राजा की आशा-आकाक्षाओं और उद्देश्य का दोनो के सवाद मे मार्मिक चित्रण कवि ने किया है । घरेलू वातावरण की पीठिका पर बोलचाल की भाषा में रचित यह साखी नाटकीय गुणो स सुशोभित है । इसका समग्रता मे एक विवशता मिश्रित करुणा-पूरित भाव पाठक के मन मे उद्बुद्ध होता है । उल्लेखनीय है कि राणी के तर्क का उत्तर न बन पडने पर राजा अन्त मे भाग्यवाद का ही सहारा लेता है । राणी को, बोल तीखे होते हुए भी

१-प्रति सख्या ७८,२०१, २७६, २७७ । प्रति सख्या २०१ मे इसके कुल ७ छन्द लिपिबद्ध हैं, जिनमे से यह एक छन्द उपर्युक्त १७ मे नही है —
भवगा छोडि काचळी, भीते छोड्यो लेवो ।
राज तज्यो राजा भरथरी, भावें सो लेहो ॥ ७ ॥
इस प्रति के शेप छहो छन्दो मे भी व्यतिक्रम है ।

२-प्रति सख्या २०१ । इसमे उल्लिखित दोनों साखियो को एक साखी माना गया है । दोनों की पृथक-पृथक् छन्द सख्या न देकर क्रमश. एक साथ ही दी गई है, किन्तु विभिन्न राग-निर्देश और किंचित् विषय-भिन्नता के कारण ये दो मानी जानी चाहिएँ । पहली साखी अन्य प्रतियो म पृथक् रूप से लिपिबद्ध है ही । सम्भवत भरथरी से सम्बन्धित और एक ही कवि की कृति होने के कारण ऐसा किया गया है । दूसरी साखी के छदों मे भी व्यतिक्रम लगता है । इस कारण, पाठ-परम्परा की दृष्टि से भी कवि का उपर्युक्त समय अनुमित होता है ।

३-कुचील कथा कुचील पथ, उन्हा ठाढा भोजन्न ।
वरसं वरसं निरदई मेहा, भरथरी भए निहचल ॥ १॥
बने बाघ गुफा सर्प, पर्वत ते सिला डिगमग ।
बरसि रे निरदई मेहा, भरथरी मने निहचल ॥ २ ॥ २६ ॥

विवशता इनमें स्पष्ट है। साखी नीचे उद्धृत की जाती है[1]।

दूसरी में राजा के जोगी बनकर जाने, मार्ग में उसको अन्य लोगों और राजा विक्रमादित्य के समझाने, जंगल में उस पर आई विभिन्न आपत्तियों तथा उसका दृढ़ता–पूर्वक जोग साध कर जन्म सुधारने का भावभरा वर्णन है[2]।

एतद् विषयक राजस्थानी काव्य-परम्परा में कवि की दोनों लघु-कृतियां अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। गोपीचन्द नामक प्रकाशित काव्य में (राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ, राजस्थान) हरिराम की साखी की भांति काळू की रचनाओं को भी प्रकारान्तर से सन्निविष्ट किया गया लगता है।

१–कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—
राज पाट घोड़ा तज्या, छाडी सब माया।
महल तज्या राजा भरथरी, भसमी चित लाया ॥ १ ॥
पांन फूल रांण्यां तज्या, सोळे सिणगारा।
अबला झूरै नाथजी, कछु करो विचारा ॥ २ ॥
हम जंगळ वासा किया, अब क्या परमोधो।
राजकंवर कलि में घंणां, नीकां करि सोधो ॥ ३ ॥
हीरा वैरागर घंणा, तिन्य भोग विलासा ॥
किंहि कारण राजा भरथरी, तुम भये उदासा ॥ ४ ॥
रांणीं झूरै सात सै, सब करै विलापा।
हथलेवा री गुन्हैगार, कोई पूरबलो पापा ॥ ५ ॥
भोळे भुगती कांमंणी, अब करो सबूरी।
हमैं समझाया नाथजी, अब किया हजूरी ॥ ६ ॥
पहली जोगी क्यूं न भया, अब भया बटाऊ।
परणि पाप कांहे लिया, विचि बोई नाऊ ॥ ७ ॥
मति झूरो हे कांमंणी, मति करो अंदोहा।
लिषणहार यूं हीं लिष्या, हम तुम इहै विछोहा ॥ ८ ॥
जननी जणै न वार वार, थिर रहै न काया।
जा कारंण हे कांमंणी, हम भुगतां नहीं माया ॥ ९ ॥

२–कतिपय छन्द इस प्रकार हैं :—
राज तज्यौ वंनवासियो, मंन तैं छाटी मेरा रे।
सबद मुंणे मुंणि सरबंगां, राजा वीर विक्रंमाजित आया रे ॥ ६ ॥
जळणी नीर निवांण ज्यों, भल भल मोती छूटा रे।
वीर करै छै वीनती, राजा चलो अपूठा रे ॥ ७ ॥
इण परि बोलै राजा भरथरी, हरि का नांव पियारा रे।
नं हूं काहु का बंधवा, नं को वीर हंमारा रे ॥ ८ ॥
जळणी जळंम न वीसरै, अछ धार चुंधाई रे।
भीड़ पड़ै जदि वाहड़ै, जांमंणि जाया भाई रे ॥ ९ ॥
साच सबद काळू कहै, अछ ग्यांन विचारी रे।
जोगी हुवो राजा भरथरी, हरि भज जळंम सुधारी रे ॥ २१ ॥

६८. केसोदासजी गोदारा : (विक्रम सवत् १६३०-१७३६) :

जीवनवृत्त : केसोजी नोखा (बीकानेर) के पास माढिया गाव के गोदारा जाति के थे और कुमारावस्था मे ही वैराग्य-भाव से वील्होजी के शिष्य होकर साधु बन गए थे। वील्होजी के सात प्रमुख शिष्यो मे इनकी तथा सुरजनजी की ही सर्वाधिक मान्यता हुई। अवस्था मे ये सुरजनजी से बडे बताए जाते हैं, इस कारण इनका जन्म सवत् १६३० के आसपास अनुमित है। सवत् १७३६ में माढिया गाव मे ही इनका स्वर्गवास हुआ। परमानन्दजी वणियाळ ने इनका देहान्त सवत् १७३५ मे होना लिखा है,[1] जो तत्कालीन मारवाड मे प्रचलित सावन वदि १ से गिने जाने वाले सवत्[2] के अनुसार दिया गया प्रतीत होता है। पचाग के अनुसार यह सवत् १७३६ होगा। केसोजी ने 'कथा अघलेखा की' सवत् १७३६ के चैत सुदि १४ को बीकानेर मे पूर्ण की थी[3]। स्पष्ट है कि उनका स्वर्गवास इस तिथि के पश्चात् ही किसी समय हुआ होगा।

वील्होजी के आदेश से केसोजी ने विष्णोई सम्प्रदाय और समाज के सर्वांगीण विकास हेतु दो महान् कार्य किए-एक तो विभिन्न साथरियों और स्थानों की सुव्यवस्था और दूसरा पचायत-सगठन सम्बन्धी। इनका उल्लेख अन्यत्र कर आए हैं (देखें-पृष्ठ ४४०-४४१)। साहित्य-निर्माण के अतिरिक्त केसोजी के ये कार्य युगान्तरकारी थे। इससे समाज म उनकी कीर्ति चिरस्थायी हो गई।

ये अनुभव-ज्ञानी, बहुश्रुत, परम-सिद्ध और गायन-विद्या मे अत्यन्त निपुण थे। भ्रमणशील साधु होने से ये एक स्थान पर जम कर अधिक समय तक कभी नही रहे। इन योजनाओ को कार्य रूप मे परिणत करने के कारण भी ऐसा सम्भव नही हो सका। इनके शिष्यों मे, लिपिबद्ध रूप मे केवल दो की ही परम्परा मिलती है और वह भी पूर्ण नही है (द्रष्टव्य-परिशिष्ट मे-'साधु-परम्परा')।

'भक्तमाळ' म आलमजी के साथ इनको कथा-कीर्तन वखान-गान करने वालो में प्रमुख गिनाया है। सुरजनजी ने इनको 'कथा-काव्य' का विशेष कवि बताया है —'केसो कथा अरथ नै करमू, तप सूजो आलमू तांति'। हीरानद के 'हिंडोलणो' मे अन्य विष्णोई भक्तो के साथ इनका नामोल्लेख है। साहबरामजी ने प्रसगवश "जम्भसार" (प्रति सख्या १६३) के २३ वें प्रकरण में सुरजनजी के ठीक बाद केसोजी की कथा भी दी है। इससे केसोजी के उल्लिखित गुणो की पुष्टि के सकेत मिलते हैं,[4] साथ ही कतिपय नवीन बातो

१-'समत १७३५ माढीय गाव केसोजी पड्या'- 'साका', प्रति २०१, फोलियो ५४६ ४७।

२-आसोपा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ २२४-२२५, पादटिप्पणी, जोधपुर।

३-सतरा सै सम छतीसो, जुग मा सुण साध जगीसो।
अम लेषा नपत उचारी, गढ बीकानेर विचारी ॥१२६॥
चैत चादण पष चवीजै, तिथि चवदसि ग्यान गिणीजै।
गिणि गुर परसादे गाई, केसै कही कथा सुणाई ॥१२८॥
-प्रति २०१, फोलियो २६०।

४-अब केसव की कथा बपानौं, केसव तो केसव सम जानौ।
केसव भक्त भए प्रिय जभा, जभ मिले तेहि कहा अचभा ॥ (शेपाश आगे देखें)

का भी पता चलता है, जिनका सारांश इस प्रकार है :—

'एक वार ये रामड़ावास में गए। वहां इनके दर्शनार्थ जोधपुर के महाराजा जसवंत-सिंहजी भी आए। उनके अनुरोध से कवि के प्रार्थना करने पर वर्षा हुई। महाराजा ने ५०० वीघा धरती "डोली" में दी और सात गुनाह माफ किए। इन्होंने अनेक स्थानों पर भ्रमण किया, वहुत से राजा, खान और सुलतानों को "परचाया" तथा रामड़ावास में आकर विवाह किया जिससे उनके ३ वेटियाँ और २ वेटे हुए'—जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ३१-३२।

साहवरामजी के इस कथन की जाँच का कोई साधन हमारे पास नहीं है। इससे उनकी सिद्धि, व्यापक प्रभाव और विस्तृत भ्रमण की पुष्टि अवश्य होती है। उनके विवाह और संतति की वात सर्वथा गलत और निराधार है। वर्तमान में, सर्वत्र उनका आजीवन ब्रह्मचारी और साधु रहना ही प्रसिद्ध है। गोदारों तथा साधुओं में ऐसी किसी भी प्रकार की वात प्रचलित नहीं है और न ही ऐसा कोई उल्लेख गोदारों के भाटों की वहियों में है।

रचनाएँ :—केसोजी की निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं :—

१-साखियां—१९।
२-हरजस—१३।
३-कवित्त—८१ (इनमें कुछ कुंडलियां, दोहे, डिंगल गीत और सवैए भी सम्मिलित हैं)।
४-सवैए—२७।
५-चन्द्रायणा-८५ और ४ दोहे।
६-दूहा—११६।
७-स्तुति अवतार की-१३ सोरठे।
८-दस अवतार का छन्द—११ (१० इन्दव, १ कवित्त)।
९-कथा वाळलीला—६१ दोहे-चौपई।
१०-कथा ऊदे अतली की—७७ दोहे-चौपई (रचनाकाल-संवत् १७०६)।
११-कथा सैंसे जोखांणी की—१४४ दोहे-चौपई।
१२-कथा मेड़ते की—१७२ दोहे-चौपई (रचनाकाल-संवत् १७०६)।
१३-कथा चित्तौड़ की—१६८ दोहे-चौपई।
१४-कथा इसकंदर की—२१५ दोहे-चौपई।
१५-कथा जती तळाव की—८० दोहे-चौपई (रचनाकाल-संवत् १७११)।
१६-कथा विगतावळी—३७४ दोहे-चौपई (रचनाकाल-संवत् १७१५)।
१७-कथा लोहापांगळ की-१८१ दोहे-चौपई (रचनाकाल-संवत् १७३०)।
१८-पहळाद चिरत-५९६ छन्द।
१९-कथा भौंव दुतासंणी—६६ छन्द।
२०-कथा सुरगारोहंणी—२१७ छन्द।

गाय गाय केई जन तरेऊ, जनम मरन मिट कारज सरेऊ।
गान विद्या केसव वहु करे, सुंन मुंन जीव हजारां तरे॥

—प्रकरण २३, पत्र ३१।

२१-कथा बहसोवनी—५५० छन्द ।
२२-कथा अघलेखा की—१३६ छन्द (रचनाकाल-संवत् १७३६)।

इनका विवेचन क्रमशः आगे किया गया है।

(१) साखियाँ[1] *: केसोजी की निम्नलिखित १९ साखियाँ पाई जाती हैं —*

१-जीव के काजै अमलै आइयँ, कीजै गुर फुरमाई । पंक्ति १२, कथा की, राग सुहव ।
२-रे मन मेरा न करि मुकेरा, काया हुलैली काची । ४ छन्द, छदा की ।
३-ओह निज तीरथ ताळवो, देह सही सति साम्य की । ४ छन्द, छदा की ।
४-आपि लियो अवतार, सांम्य संभरथळि आवियो । ५ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
५-साधो सिवरो सिजणहार, पारबरंभ पहलो नऊ । ५ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
६-सिवरो सिरजणहार, झांभेसर जीवां धणी । ४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
७-जिवड़ा जपि जगदीस, झांभेसर जीवा धणी । ४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
८-सिलह पछिम रै देसि, हींवर तुरी सिलाहिसी । ४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
९-कळिजुगि किसन पधारियो, सतां करण सभाळ । ४ छन्द, छदा की ।
१०-सिवरो सिवरो सिरजणहार, कळिजुगि कायम राजा आवियो । ४ छन्द, छदा की, मारू ।
११-सिवरो सिवरो झांभेसर देव, कळिजुगि कायम राजा आवियो । ५ छन्द, छदा की, मारू ।
१२-सति सतगुर जी साहिब सिरजण हार । पंक्ति-१२, कथा की, राग हंसो ।
१३-जा दिन सत मिलै मेरा जो हो, वाजै सुरगि वधाई । ४ छन्द, छदा की, राग सोरठि ।
१४-कूचो बारै कोडि सूं कियो वैकुंठे वास । १५ दोहे ।
१५-देव दया करि दाखवै, पापा करण प्रछेद । २८ दोहे-चौपई ।
१६-मेळो करि मोटा धणी, गिणि लेतीसूं ग्यान ।
दरसण दीजै देवजी, विसंन विछोहो भानि । टेक । २७ दोहे, राग सिंधु ।
१७-हटवाडै हळचो मड्यो, असरे दीन्हीं आण ॥ ४ दोहे, १० छन्द, राग सिंधु ।
१८-जुगि जाग्यो झांभेसर राजा, कळिजुग कायम आयो । ४ छन्द, छदा की ।
१९-रे मंन रागी करि सुकरत सगी, साच सुचीन्ह बतायो । ७ छन्द, छदा की, राग सुहव ।

मोटे रूप से इन साखियों का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है —

(क) जम्भ-महिमा और स्वर्ग-सुख-वर्णन (साखी संख्या १, ४, ५, ६, ७, ६, १०, ११ १२, १३, १८)। इनमें अनेक प्रकार से "सृजनहार" जाम्भोजी का महिमा-गान, उनके यहाँ आने का प्रयोजन, कार्य, ज्ञानोपदेश तथा जीवन की क्षणभंगुरता और आत्मोद्धार की प्रार्थना करते हुए, उनकी "फुरमाणी" पर चलने एवं नाम-स्मरण करने का अनुरोध है। ऐसा करने से जीव को उसका चरम प्राप्तव्य-मोक्ष प्राप्त हो सकेगा जिसकी ओर आकर्षित करने के लिए स्वर्ग-सुख का लुभावना वर्णन कवि ने किया है। दो छन्द नीचे दिए जाते हैं[2] ।

१-प्रति संख्या ६७, ६३, १४१, १४३, १७८; २०१; २१३, २२१; २२२; २३३; २३६, २३७, २६३; २८०; २८९, २९१; ३२१ ।

२-जहा सोहैं कुवर सुरताण, किरिया करि सुरगे गया ।
प्रति मोमिणां की पुगी आस, मोटै गुर कीवी भया ।

(ख) मुकाम-माहात्म्य (साखी संख्या ३) "साखी मुकाम के महातम की" (-प्रति संख्या १९३):- इसमें मुकाम-मन्दिर का वर्णन है। इसकी महिमा इस कारण है कि यहां सबसे बड़े देव जाम्भोजी की देह समाधिस्थ है। साखी का अन्तिम छन्द उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है[1] ।

(ग) मन को तत्त्वप्राप्ति के हेतु समझाना (साखी संख्या २, १९)। इन साखियों में दो बातों की ओर प्रेरित किया गया है। एक में घट में ही "अलख पुरख" से 'लौ' लगाने और 'त्रिकुटी-तीर्थ' में "अमीरस" पीने का वर्णन है[2] । दूसरी में सतगुरु के बताए "सुकरत" का उल्लेख करते हुए उनके पालन पर वार-वार[3] जोर दिया है। कवि ने इनके द्वारा "पार पहुंचने" का मार्ग बताया है।

मया कीवी साम्य सतगुर, सुरां सरस संपै सही।
वरस वारहांणी विरहंणी, पुरिप अठारै की वही।
जहां भोगवैं संजोग सरसा, जांस र रंग सुहांवणां।
सुरग पहुंता मिटै सांसौ, साध सदा सुहांवणां ॥ ३ ॥
मुहि मुहि मेळि सुजांण, कंवरां कै मंनि कांमंणी।
वांकी काया थैं इधक उजास,जांणि वादळ वळकै दांवंणी।
दांवंणी वादळ वळकै, सर रंग तांहूं संणां।
नौरंग नेवर पहरि नारी, करैं ओसर अंति घंणा।
नाटक कुंजर पहरि नारी, सरस सुंदरि सोहंणी।
सुर सुंदरि तंन चीप चंचळ, महळि कांमंणी मोहंणी ॥ ४ ॥ -साखी ११।

१-कळी विराजै कांगरां, सोभा मुगट वखांणियै।
रूपावळि रळि आंवंणी, सांम सही सति जांणियै।
जांणियै जां सांम सतगुर, पात जंण जां पेपणां।
इंडो त मुकटि मुकांम सोहै, देव दरगं देपणां।
कळस सीरि अमूळ सोहै, भांत हरि मेळी मिळी।
देपि सोभा कहै केसौ, कांगरां सोहै कळी ॥ ४ ॥ -साखी ३, प्रति २०१।

२-रे मंन मेरा नं करि मुकेरा, काया ढुळेली काची।
निरति सुरति लिव लाय पियारा, सवद अंनाहद राची।
तन मां तीरथ न्हाय त्रवेणी, गिगंन गुफा करि डेरा।
गुर प्रसाद रही मंन उंनमंन, ॐ समझी मंन मेरा ॥ १ ॥
रे मंन हंसा परहरि परसंसा, सांसौ सोग न कीजै।
त्रकटी तीरथ मंनवां काछैं, महा अंमीरस पीजै।
वडपंण मांण वडाई मेटौ, वडपंण गाल्यौ वंसा।
अंतरि ध्यांन उलटि धुनि धरियै, करि हरि सूं हित हंसा ॥ २ ॥

३-रे मंन राजा नं करि अकाजा, काया गढ छै काचो।
झूठी वात कहे मत काई, संवझि र वोली साचो।
सुकरत साथि करो क्यौं संवळौ जव लग पिंजर साजा।
भवसागर मां मूळि न भूली, मूंढ मुगध मंन राजा ॥ २ ॥
रे मंन भोळा तजि लाभ हिलोळा, डीभ कियै दुप पावौ।
एकाएकी रहो निरंतर, सहजि संमाधि लगावौ।
सतगुर सिवर्‌यां सांसौ भाजै, लाभै सुरग हिंडोळा।
भजन कियां भोवसागर तरियै, भेद सुंणी मंन भोळा ॥ ३ ॥

(घ) बलिदान की– "खड़ाणे की साखियां" (साखी संख्या १४, १५, १६, १७) : इन साखियों में विभिन्न कारणों से विष्णोई लोगों के बलिदान होने की घटनाओं का प्रभावशाली वर्णन है।

(१) साखी १४ :– बूचा एचरा मेड़ता परगने के पोलावास गाँव का रहने वाला था। इस गाव से तीन कोस दक्षिण की ओर स्थित राजोद गाव के मेड़तिया ठाकुर ने पोलावास के जगल से होली जलाने के लिए खेजड़ी वृक्ष कटवा लिए। इसकी खबर होने पर आसपास के विष्णोई राजोद मे एकत्र हुए। प्रतिवाद स्वरूप बूचोजी ने अपने प्राण देने का सकल्प किया और रतनोजी से कहकर तलवार से अपना सिर कटवाया। यह घटना सवत् १७०० के चैत वदि तीज को हुई थी[1] । रचना के आरम्भ मे कवि ने पोलावास के वन और वृक्षों सम्बन्धी विष्णोइयो की आन का सुन्दर वर्णन किया है। कतिपय पंक्तियाँ नीचे दी गई हैं[2] ।

(२) साखी १५ :– इसमे "गगापार के"– कालपी और अन्य स्थानो के १४ विष्णोई स्त्री पुरुषों का जाम्भोळाव पर स्वर्ग प्राप्ति की आशा से स्वेच्छा से अपने सिर कटवाने का उल्लेख किया है। इनके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं – फूलवो, मिठिया, रूपो, खड़गो, प्रेमा, भगिया, खेमो, भावतो, रमलो, नारायण, सुखो, परमू, दुरगो और खोजो। उनके कहने पर राऊ ने तलवार से उनके सिर काटे थे। यह "मरणा" सवत् १७१० के जेठ वदि ११ को हुआ था। कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं[3] ।

१–हसत नपत बो तीज दिन, होळी मंगळवारि।
करि सुकरत सुरगे गयो, केसौ कहै विचारि॥ १५॥
इसमे यद्यपि सवत् नही दिया गया है तथापि १७०० ही प्रसिद्ध है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी का भी ऐसा ही कथन है – देखें– "साखी-संग्रह-प्रकाश", पृष्ठ ७२–७६, प्रथम संस्करण, ११ अक्टूबर, सन् १९१४।

२–मेड़ताटी मा मानियें, मरगट पोलावास।
जिण नगरी विसनोई वसें, रूंखा तणो निवास॥ २॥
सर पर नींवा सुहावणा, तर रहिया घर छाय।
वन विगताळा रायिया, मेड़तावाटी मझारि॥ ३॥
जाही दीठो जा कह्यो, वनरावन उणहारि।
अंभ गऊ देवजी खेजड़ी, तुळछी अं ततसारि॥ ४॥
राखै विसनोई खेजड़ी, जे चालै गुर राह।
राय रखावै तो रहै, का पण पाळै पतिसाह॥ ५॥

३–दुजलि कै मिठिया पडी, माड्यो कंध करारि।
राळ पऊग समाहियो, तनि वुही तरवारि॥ १०॥
सतरा सैं दसहोतरैं, तिथि ग्यारसि वदि जेठ।
वड तीरथि मरणौ हुवौ, पूगी आय सहेट॥ २७॥
बागड कनवज काळपी, सबळी सारै रीति।
रायै सिदक तळाव मूं घटै नही परतीति॥ २॥ (शेषांश आगे देखें)

(३) साखी १६:- ('साखी खड़ाणे की'- प्रति संख्या २२१) :- इसमें संवत् १५९३ के मार्गशीर्ष वदि नवमी को लालासर में जाम्भोजी के वैकुण्ठवास का समाचार जान कर अपने प्राण त्यागने वाले अनेक विष्णोई भक्तों का नामोल्लेख किया गया है[1] ।

(४) साखी १७ :- इसमें कापरड़ा के मेले में संवत् १७०० के चैत सुदि ११, मंगलवार के दिन धवा गांव के विष्णोई रामू खोड के "दाण" के वदले वलिदान होने का वर्णन है। (विशेष द्रष्टव्य- "रामू खोड", कवि संख्या ७२)।

(ङ) कल्कि अवतार :- एक साखी (संख्या ८) में इसका सुन्दर वर्णन किया गया है, जिसके उदाहरण स्वरूप एक छन्द देखा जा सकता है[2] ।

अनेक कारणों से केसोजी की साखियां महत्त्वपूर्ण हैं, जिनकी चर्चा अन्यत्र की गई है।

(२) हरजस[3] : केसोजी के १३ हरजस प्राप्त हैं, जिनमें आठवां "जांगड़ो" गीत है। इनकी "टेक" की पंक्तियां नीचे दी जाती हैं :-

१-अैसा ध्यांन हरजी सूं धरै, गंग जंमन विच आसण करै।

—५ छन्द, राग विलावल (भैरूं भी)।

२-सोदागर सोदो कर भाई, इणि सोदै भाई भूलि न जाई ॥

—५ छन्द, राग विलावल (भैरूं भी)।

३-खांने जाद खुदाय का तक्य वंदा तेरा।
खळ मेटो करि खालिसै, अघ मोचो मेरा ॥१॥ ७ छन्द, राग विलावल।

सहर वसै सोह काळपी, पोजो नांव् कहाय्।
देव् दयावै सीपवै, तीरथ परसंण जाय ॥ ३ ॥
कळी काळ काया तजै, जैंह का एहं आचार।
सिर दीन्हू केसो कहै, सुरगि गया सुचियार ॥ २८ ॥

१-जळ विण मरै ज माछळा, सारस मरै स नेह।
हरि पापो हरिजंण मरै, दुंनी तियागै देह ॥ ४ ॥
ज्यों र पपिहो वूंद विण, वाळक पयो ज माय्।
तो विण जग जीवां धंणी, धारा साधां असी विहाय ॥ ५ ॥
वाळ विरच तरंणी तरळ, काया तजै कितांन।
कुंण जांणे कितनां पट्या, गोम्यंद करिसी ग्यांन ॥ २३ ॥

२-दुल दुल चढ़िसी देव्, जुव करिसी जीवां धंणी।
चीण म चीण कटक, फौजां फरव्रिसी घंणी।
फरवरैं फौजां धरंणि धूजै, असमांण उपरि थरहरै।
पुंवंण सूं परवत ढोलै, छतर निकळंक सिर धरै।
पांच सात नव् वार, कोड़ि तेतीसूं मिलै।
तिधारो तिणि वार सजिसी, सांम्य चढ़िसी दुलदुलै ॥ ३ ॥

३-हरजस संख्या १ से ११ तक प्रति संख्या २०१ में तथा संख्या ११ के अतिरिक्त सभी प्रति ४८, २२७ में पाए जाते हैं। इन प्रतियों के अतिरिक्त कुछ हरजस प्रति संख्या ६०, ६७, १७० और ३०३ में भी पाए जाते हैं।

४–निस वासरि निज नांव भजो मन मेरा रे। ८ छन्द, राग गवडी।
५–तजियं अवर जजाळ, झभ जस गाइयं। ६ छन्द, राग गवडी।
६–साच पियारो साम्य नै, सिवरो सिरजणहार।
ज्यं सिवर्‌यं सासो मिटं, आवागुवण निवारि॥८ छन्द, राग मलार।
७–ए रसनां हरि रस न लं। २५ पक्ति, राग मलार।
८–जागडो . तोरथ वडो कियौ कळि श्रीकम, जण तारण झाभेसर जांणि।
झाभोळाय गयां रुग झडिस्यं, पोह लहिस्यं पारखु पिछाणि॥ १॥
–६ दोहले, राग हुसो।
९–दान दु नो मांहे वडो, विधि सूं सु णौं वमेकि।
करता ज्यौं अपियं करन, दान तणा फळ देखि॥ १॥ ११ छद, राग सुहव।
१०–आरति तेरी हो, प्रभु चिता मेटो मेरी हो॥ ५ छद, राग मारू।
११–दीयं तळं अघेरा, ग्यान कथं वोहतेरा॥ ६ छद, राग गवडी।
१२–रे मन मोह मोटी खोडि। पक्ति ४, राग केदारो।
१३–इस विध विसन जपीजं सतो, तायं जुगि जुगि जीजं। ४ छन्द, राग धनाश्री।

हरजस अध्यात्म विषयक और आत्मपरक हैं। इनमे हरिभक्ति, नाम स्मरण, इन्द्रिय-विषयो से विरक्ति,[1] भीतर-बाहर के विकार और प्रदर्शन-त्याग (सख्या ४, ५, ७, १२), *आत्म-निवेदन एव आत्मोद्धार के लिए प्रार्थना (३, १०), दान (९), सत्य-महिमा* (६), सुकृत करने (२), कथनी को करनी मे बदलने (११), घट के भीतर परमतत्त्व को प्राप्त करने, जीवन्मुक्ति पाने (१, १३) तथा जाम्भाळाव की महिमा[2] का प्रभावोत्पादक

१–पाप न करि रे प्राणिया, दोष म धारि राति।
सूर सवारो उगिसी, पति पडिसी परभाति॥ २॥
वन गयद सुप लाडतो, अचगळ पेली आळि।
काम क्या ठाम्यो नहीं, आकम सह्यौ कुपाळ॥ ३॥
भुवग पताल्यौ नीसरं, सामळि राग इळाप।
घरि घरि हुढायो गोडियं, पड्यो पिटारं साप॥ ४॥
कु वळ वळी वर केतकी, अवर सुगधी सीर।
भुलि भुलि भु वर रस वासना, अळियळ तजं सरीर॥ ५॥
जिभ्या रस मछळी मुवी, मन्यौ न कीवी माठि।
जाळ पड्यो जळ विछड्यो, मछ विकाणो हाटि॥ ६॥
तन मन सू पं तेज करि, देखं रग सुरग।
नेह नजरि कं कारणं, पावकि पडं पतग॥ ७॥
केसो तसकर तनि वसं, वसि वसि कर विराव।
पाचू पकडं प्राणियो, पोहचं पार गिराव॥ ८॥ –हरजस ४, प्रति २०१।
२–गहमह मेळ हुई गुर वायक, सर काठं सोहैं सुघट।
तबसु तुरी अर ऊ ठ अटगर, नर नारी मिळिया निपट॥ २॥
वाना आय हुवा सह भेळा, चळ घोळा वर मगळ चार।
तट तीरथि इम सोहै सु दरि, तरणी तीज रमं तिह वार॥ ३॥
तरगम तीर तरवारि कटारी, करि क लासं जोध कवाण।
ढऊके ढाल भळहळं भाला, झुलरि झीलता फिरै जवान॥ ४॥ (शेषांश आगे देखें)

वर्णन है। सभी हरजसों में कवि ने अत्यन्त आत्मीयता और भावुकता के साथ स्वानुभूति और हरिभक्ति का विविध प्रकार से रोचक वर्णन किया है जिसमें किसी न किसी प्रकार से आत्म-दर्शन एवं तत्त्वप्राप्ति की ओर उन्मुख करने का भाव और प्रेरणा व्यंजित है।

(३) कवित्त : कवित्तों के अन्तर्गत केसोजी के ८१ छन्द मिलते हैं,[1] जिनके बीच में यत्र-तत्र शीर्षक भी दिए गए हैं। इनका वर्ण्य-विषय निम्नलिखित है :—

(क) विविध-विषयक फुटकर छन्द : इनके अन्तर्गत नीति-कथन,[2] नाम-माहात्म्य,[3] मूर्ख-स्वभाव और करनी, करणीय कृत्य, हरिमहिमा[4] और शरण-ग्रहण, काया की नश्वरता, नाते-रिश्तों की असारता, गर्भवास में किए कौल और उसके पालन तथा चेतावनी-परक अनेक छन्दों की गणना की जा सकती है।

(ख) गाहा : इनमें गूढ़ार्थ और दृष्टिकूट सम्बन्धी ६ छन्द हैं जिनमें संख्या, शहर-नाम, और खेती की चीजों के माध्यम से अभिव्यक्ति की गई है। तन खेती विषयक एक

सतगुर तंणी सायरी सुगरा, धंणी धियाय नर द्यें छै धोक।
पांतांणि पाळ मंड्यो अंति ओसर, आगळि आप मंड्यो इंदलोक ॥ ५ ॥
पातंणि पाळि निरपि नर नारी, वंहंता पुरिप विराजै वाट।
स्याह सपेत सुरंग रंग केसव, जळ थळ वीचि थिर किया थाट ॥ ६ ॥
-हरजस ८, प्रति २०१।

१-प्रति संख्या २०१ में फोलियो १८१-८८ पर 'केसोजी के कवित्त' शीर्षक के अन्तर्गत कुल ९१ छन्द दिए गए हैं। इनमें से ५९ कवित्त, ५ कुंडलियां, २ सवैए, ११ दोहे और १ डिंगल गीत, कुल ७८ छन्द तो केसोजी के हैं, शेष १३ कवित्त वील्होजी, तत्त्ववेत्ता कमंच, गोपाल, कील्होजी और गद्द के हैं। इनके अतिरिक्त इसी प्रति के फोलियो ५५५ पर कवि के ३ और कवित्त मिलते हैं। इस प्रकार यहां इनके ८१ छन्द विवेचनीय हैं।

२-परहरियै सो संग, (जित) साध की संगति नांही।
परहरियै सो मीत, गुफि रापै मंन मांहीं।
परहरियै गुर सोय, दया हींण अग्यांनी।
परहरियै सो सेंण, धरंम हट की मंन मांनी।
परहरि पापंड पाप तजि, अकलि पुरिप मुंहो चरी।
छोडि कपट केसो कहै, हरि सिंवरै सा विधि करी ॥ २ ॥

३-कह्यो सुदांमां किसंन, ताहि दाळद गुमायो।
ध्रू जंन कहियो विसंन, सीत गिरि मेर थपायो।
कह्यो वळि राजा किसंन, चत्रभुज रहै चौमासो।
वोभीपंण कहियो विसंन, विसंन लंक दीन्हो वासो।
केई भगत तर्‌या भगवंत भजि, स्ठ रुघवीर रावंण रहंत।
कुंण लंक लीयंत रांवंण कंनां, विसंन विसंन रांवंण कहंत ॥ ३ ॥

४-कदवी चुगै कपूर, हंस हाल्यो दिन कटै।
क्या मंन की मरजाद, वात वेहमाता थटै।
स्वांनि चढ़ै सुपपाल, गळ सून गूंगि उठावै।
करि केहर कूं कैदि, पिटत पर भोमि हंढावै।
पुरप पलीतां पदमंणी, दातांरां दाळिद दिवंण।
पार तुहारा परंम गुर, केस कहै पावै कवंण ॥ ११ ॥

कवित्त द्रष्टव्य है[1] ।

(ग) बुढ़ापा वृद्धावस्था का बड़ा यथार्थ और प्रभावशाली वर्णन कवि ने किया है जिसके मूल में चेतावनी है । तरुणाई के[2] सन्दर्भ में वृद्धावस्था-दुख का उल्लेख करते हुए[3] उसके न आने की कामना तथा इस अवस्था में सामान्यतः होने वाली दशा का हृदय-ग्राही वर्णन कवि ने किया है[4] । प्रथम दो कवित्तों में शब्द-चयन भी विशेष आकर्षक है ।

(घ) सूम संवाद : इसके अन्तर्गत सूम और सूम-पत्नी तथा सूम और लक्ष्मी का संवाद है। कवि ने सूम पर गहरा व्यंग्य करते हुए,[5] सूम-लक्ष्मी संवाद के माध्यम से संसार में कृपण व्यक्ति की हालत का प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। मरते समय सूम लक्ष्मी को अपने साथ चलने के लिए कहता है, किन्तु वह इन्कार कर जाती है,[6] उसकी निरीह

१–हरिकि सोई महळ, चाहे चउवा चित दीजै ।
नीकसि कसी इम गठि, करि करसण इम कीजै ।
रहण नही इम हाल, नेसवो पाछो नाई ।
वळदे बोल संभाळि, बीज पेती इम वाही ।
नाडो जुवाडो नीरपि, तन पेती मन मोर छै ।
पिडत करिल्यो पारिषो, हळ नही फळ और छै ॥ १३ ॥

२–ऋतब मु ध्रम बोह करण, आथ संपति उपावण ।
लाम तीय लप लयण, आभ उडळ उपाड़ण ।
दुरिजण धग द्रोहवण, सण सजण संतोषण ।
तुरी कुमत बोल, बळे रस पेम स वघण ।
रग करग राव गुण रीझवण, रूपिवन्त अभिनवो मयण ।
हमण रमण बिनसण सयण, तू म म जावै तरण पण ॥ ३४ ॥

३–मैण लेण दुष दाग, नेण मभ रंग जगावण ।
करम भरम बोह करण, भरण भी दण दियावण ।
गति मति छानि रति हरण, वरण तन आव नव फरण ।
हसण रसण लड छडण, मरण दुरिजण जण तेडण ।
पिड प्राण गजण गिडण, मीर धीर भजण भिडण ।
केस कहै अळगो रहै, तू मत आए ब्रधपण ॥ ३५ ॥

४–प्रीति पियारा की घटी, घट्यो सनेही सीर ।
जागीरी रूधी जुरा, तरणापो तागीर ।
तरणापो तागीर, सेत रग काया धारै ।
नेण रहै जळ पूरि, द्यौस बामला चितारै ।
मन लायो लागै नही, चाहि घटी रस रीति ।
कहि केसो जा सजणा, घटी पियारा प्रीति ॥ ३७ ॥

५–बैर ज पूछै सूब की, कता क्यों वदन मलीन ।
का कुछि पोयो गाठि को, का काहू कुछि दीन ॥ ४२ ॥
ना कुछि पोयो गाठि को, ना काहू कुछि दीन ।
देता देख्या और कू, ताथ वदन मलीन ॥ ४३ ॥

६–जदि तू मागी मगता, भाव करि भीतरि घली ।
जदि तू मागी वधवा, कठ लाय घरणि दवली ।
जदि तू मांगी रावळे, सीस चीरडो वयधो ।
माया थारै कारणै, मुषि मीठो नही दीधो । (शेषांश आगे देखें)

प्रार्थना व्यर्थ जाती है[1] । लक्ष्मी के रूखे उत्तर पर अन्त में उसको अपने पर ही पश्चाताप करना पड़ता है[2] ।

(ङ) 'अमली-सोफी का दूहा' : में अफीमची पुरुष और उसकी स्त्री का संवाद है, जिसमें उसकी हालत का यथातथ्य एवं सजीव वर्णन किया गया है[3] ।

(च) 'त्रिया-लखंण' : में गुणहीन और गुणवन्ती स्त्रियों के लक्षणों का सुन्दर वर्णन है[4] ।

हूं सांच थो साथ नै, ओरां हूंता जीव मुसि ।
कृपंण दीयै ओळंभो, हूं चाल्यां तूं रही पीसी ॥ ४८ ॥
प्रथम पाव तो एह, भाव करि भगत पोषीजूं ।
दूजा पाव तो एह, अरथ उधारी दीजूं ।
तीजा पाव तो एह, तह्याय नीवांणि टईजूं ।
चौथा पाव तो एह, होम करि विरांन जपीजूं ।
पगां विहूंणी पांगळी, कहि साथै क्यों करि चलूं ।
लछि कहै रे सूंबड़ा, गाडी ही रहिस्यों भळूं ॥ ४९ ॥

१-म करि माया सूं मोह, और सगळां सूं तोड़ी ।
म्हारी जांणै लागो जीव, जेण विध लछम जोड़ी ।
अड़व थकै अंन न भख्यो, त्रप पांणी तंन रख्यो ।
दही घ्रत विस करि गिण्यां, दूध दोरै ही चख्यो ।
भूप दुप दोरै दुकट, पुंवि रहियां तंन ही परो ।
सूंम कहै माया सुंणो, मत मोसूं असटो करो ॥ ५४ ॥

२-सूंव सिवारो एकलो, हाथ ता गयो ज हीरो ।
वार वार कांय विळविळै, आथि विणि परो अधीरो ।
कर मसळै कायर थको, रुंड मंन मांहिं रोवै ।
लछ रही मुंह फेरि, सूंव संनमुपो न जोवै ।
निरवारो रहियो निछै, विरचि कियो लछ वेकलो ।
लछ कहै लालच न करि, सूंव सिधारो एकलो ॥ ५५ ॥

३-कांमंणि पूछै कंत तांम नायो ताकंता ।
तुणी वरती तांम, जांम आयो झाकंता ।
आंपि नहीं उघाड़ै, प्यांत करि गात पुंझावै ।
सर कंठ नाहीं साद, वाव भूंकंणी वजावै ।
मुप भंणणाटो मापियां, वर मुंहटै पांणी वहै ।
नीस उघाड़ो सूंपिया, केथ पाध कांमंणि कहै ॥ ६५ ॥
गयो गात गळ मास, आस भगी गुंण गोयो ।
गई प्रीति पदमणी, मुंध पूंणी वड़ि रोयो ।
गयो सील संतोष, गयो ईमांण अरथी ।
गई सादि पारेष, अंति रह्यौ दाळिद सथि ।
उडि गय हीर उदिम नियो, तेणि मांणु छूटी मया ।
जिणि काजि राजि पीया जहर, गळळी संगि एता गया ॥ ६८ ॥

४-मुध जका मति हीण, लपण लोतणं विहूंणी ।
कदे न फिरकां गही, फिरै अलंघू वीणी ।
हांच न लेई हालती, चालती नावंण चीसै ।
आय पहीलै जाइयै, नारि तदि नीसो दीसै ।

(शेषांश आगे देखें)

(४) 'सवैए' : विभिन्न प्रतियों मे यत्र-तत्र लिपिबद्ध केसोजी के २७ 'सवैए' मिलते हैं[1]। प्राय सभी मे पंक्तियो की घट-बढ, व्यतिक्रम, यति-भग, वर्ण या शब्द-त्रुटि आदि किसी न किसी रूप मे विद्यमान हैं। ये मुख्यत निम्नलिखित तीन विषयो पर लिखे गए हैं -

क-आध्यात्मिक : इनमे हरिमहिमा और नाम-स्मरण, जरा-काल-प्रबलता, सासारिक-माया-मोह की असारता, करणीय कृत्य, आत्मनिवेदन,[2] नीति आदि का वर्णन करते हुए भावभरी चेतावनी दी गई है[3] ।

ख-जाम्भोजी की बाललीला का विविध प्रकार से ७ छन्दो मे श्रद्धा-भक्ति युक्त चित्रण किया गया है, जिनमे यह छन्द तो बहुत ही प्रसिद्ध है। होम-समाप्ति पर इसको बोलना आवश्यक समझा जाता है :—

> प्रगटे जद रूप निरंजन(हो) जांभेसर नांव कहावंन कूं ।
> भगवां कपड़ा करि जाप जपं, संभरथळ जाग जगावंन कूं ।
> गुर ध्यांन ही ध्यांन को ध्यांन धरं, बहु लोकन कूं समझावंन कूं ।
> धरणी उर जंघ पाव न धरहू, बळ हूं बळ हूं इन पावंन कूं ॥ ८ ॥
>
> —प्रति १९४ से।

ग-४ छन्दो मे लका-दहन और युद्ध का सजीव और प्रवाहपूर्ण वर्णन किया गया है[4] ।

सदा सपाणी सा तया, पवरि पयो कभी पिलै।
कहि केसो सुविचारि नर, मदमूदन रुठं मिलै ॥ ७८ ॥
सुक्ळीणी सुंदरि जका, आप ता रहै ज ओल्है।
वीणा सुण्या सुप ऊपजै, मधर मोणा सुर बोलै।
सभा चातरि सुजाण, चालती मुनियर मोहै।
सोनै जिसो सी लाकि, मभि सालू मा सोहै।
वोळकळत दोसै वदन, भाय भहळा खजका।
कहि केसो सुविचारि मन, सुक्ळीणी सुंदरि तका ॥ ८१ ॥

१-प्रति संख्या ४०; १९४, २०१; २०७, २३०।

२-चात्रग मास चउ निस वासरि, तूही तूही तू जपनां।
पानी विनि प्यास मिटै को कैसे, धान विनां कैसे धपना।
उरि अतरि भीतरि आच जगै, भगवत विना भीतरि तपना।
हरजी हरजी हरि वेर हजार, कहो एक वार केसवा अपना ॥ २४ ॥

३-देह थकी कुछ लेह भया रे, देह मिटी तू भी मरि है।
देह की पेह, भई क भई, परी न परी पल मा परि है।
तेरी औध घटी पिंड ह घटि है, फुन मोह गर्‌यो जिवरो गरि है।
तेरो सास को वास अर्‌यौ हिचकी, जीव अर्‌यो जिभिया अरि है।
पीलग छाडि धर्‌यो धरती, केसोदास भनै तब क्या करि है ? ॥ १२ ॥

४-चुको हो रावन राय, पूछ रे पळीतो लाय,
पून कै सहाय भड, राय जोत जागी है।
कूदियो पुवग पाय, जारियो महलि जाय,
देपि सभा डरी साह, (इत उत) भागी है।
नारि तो कहै विचारि, पीव को तो भई हारि,
जानकी कै काजि राजि, कून लका दागी है। (शेषांश आगे देखें)

(५) चन्द्रायणा (-प्रति संख्या २०१) : 'चन्द्रायणां ग्रंथ' के अन्तर्गत ८५ चान्द्रायण और ४ दोहे हैं। इनमें विविध प्रकार से मनुष्य को मुक्ति-प्राप्ति की ओर उन्मुख करने का प्रयास है। आरम्भिक छन्द में ही इसका आभास कवि ने दिया है[1]।

'ग्रंथ' में मुख्य रूप से निम्नलिखित विषयों पर छन्द-रचना की गई है जो पृथक् प्रतीत होते हुए भी मूल मन्तव्य के स्पष्टीकरण की दृष्टि से एक-दूसरे से सम्बन्धित है।

क-मानव अवस्था :-जीव के गर्भवास और जन्म-समय से आरम्भ करके बीस साल की आयु[2] से उत्तरोत्तर प्रत्येक दशक की अवस्था का सौ साल[3] तक भावपूर्ण वर्णन किया गया है और इस प्रकार शनैः शनैः आती हुई जीवन-सांझ का उल्लेख कर सुकृत और नाम-स्मरण करने का अनुरोध किया है।

ख-जाम्भोजी रत्नों का व्यापार करने-मोक्षमार्ग बताने आए थे। अतः उनके उपदेशों का पालन करना चाहिए। इसी प्रसंग में कवि ने जाम्भोळाव-माहात्म्य कथन करते हुए वहां पर आने वाले श्रद्धालु भक्तों का सुन्दर चित्रण किया है।

ग-संसार की नश्वरता, मृत्यु की अनिवार्यता और प्रबलता तथा दिन पर दिन क्षीण होती

कवि कहै केसीदास, अंबरे भयो उजास,
लांयणो सुंण्यो तिलोक, लंका लाय लागी है ॥ ६ ॥-प्रति २०१ से।

१-सुंणियो संत सुजांण जुगति आ जीव की।
पापी नै प्रतीति न आवै पीव की।
चरंण अकासे ओड़ रसातळि सीस रे।
जहां अरज जगदीस विसोवा रे ॥ १ ॥

२-वीस वरस कै वेस मिल्यौ मंनि मांण रे।
मगर पचीसी मांहि क जोध जवांन रे।
संका करै न सोच जिसौ मंन सीह रे।
कहि केसौ तिण हांणि क लोपी लीह रे ॥ ६ ॥
तीस वरस तिसनां हुई, धंन कै कारंणि धाय।
पूत कळत कांमंणि तंणा, पासी पहरी पाय ॥ ७ ॥

३-निवै वरस निज नांव कहावै डोकरो।
छोटा टेकै पाव जिसौ मंनि छोकरो।
महळी मंन्यौ विसारि डरे आछर्‌यो।
कहि केसौ तज सेझ क सोवै साथरो ॥ १७ ॥
सौ वरसे टकराय सभा हूं टाळियो।
रंड अळीणी टोड़ तहां लै राळियो।
महि मंडळ मां मीच कहैं नर काह रे।
कहि केसौ उंन मोत क वंदै व्याह रे ॥ १८ ॥
सुचौ थकै संभाळि निरंजंण नांव रे।
निस पुंहचैली आय न सूझै गांव रे।
कीया क्रतब हीण बोहत नर भूरि है।
हरि हां, केसौ पिसंण घंणां पंथ मांहि क पिडो दूर है ॥ ५० ॥

आयु का[1] अनेक प्रकार से अत्यन्त प्रभावोत्पादक वर्णन कवि ने किया है। संसार के माया-मोह मे भ्रमित न होकर अवसर रहते जीव को चेतना चाहिए[2] ।

घ–इन अयामो का सविस्तर वर्णन अमावस्या से आरम्भ करके महीने की प्रत्येक तिथि पर क्रमशः प्रासंगिक छन्दो की रचना द्वारा किया है । इनमे प्रमुख करणीय-अकरणीय कार्यों का उल्लेख है। सुदि और वदि पर लिखे दो छन्द द्रष्टव्य हैं[3] ।

चान्द्रायण छन्द को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाना केसोजी की विशेषता है।

(६) दूहा प्रति सख्या २०१ मे 'दूहा' शीर्षक के अन्तर्गत प्राप्त ११६ दोहो मे निम्नलिखित तीन विषय वर्णित हैं, जिसकी पुष्टि इनके बीच म दिए गए शीर्षको और उनके साथ पुन आरम्भ की गई छन्दसख्या-क्रम से भी होती है।

क–दूहा "राग सभावची ' मे गेय आरम्भ के ४१ सोरठो को साम्यजी का दूहा" कहा जा सकता है क्योकि प्रत्येक सोरठे के अन्त म इस शब्द का प्रयोग है, जो जाम्भोजी के लिए प्रयुक्त किया गया है। इनम जम्भावतार-समय, स्थान उनकी शारीरिक विशेषता, गुण, आने का प्रयोजन और विभिन्न कार्यों का भक्ति-भाव भरा वर्णन है। तत्कालीन मरुदेशीय लोक-चित्रण की पृष्ठभूमि पर जाम्भोजी के कार्यों का महत्त्व स्पष्टता से उभर कर सामने आया है। जाम्भोजी के प्रति असीम श्रद्धा के साथ अज्ञानान्धकार म पडे, आचार-विचार हीन, कुकर्मों म रत केवल वेशभूषा प्रदर्शित करने वाले लोगों के प्रति कवि का कही हलका रोष और कही दया-दुख प्रकट हुआ है। सवेदना स्वरूप वह उनको क्षमा करने की प्रार्थना ही करता है। उदाहरणस्वरूप कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं[4] ।

१–करि साहिब कू यादि कया ही घात है।
दिन दिन तूटै आव दिहाडा जात है।
नीएा न सूझै साथ जबर जदि आवसी।
हरि हा काया छोडि क जीव अब जावसी ॥ ५० ॥

२–पथीयो हुवै परदेस भूले जन बावरे।
औसर चेति अपत घणी दिस धाव रे।
तेरे मसतग उपरि मौत क केसौ काळ रे।
सिर उपरे सैतान उबगी ताळ रे॥ ४२ ॥

३–(क) सु दि नारायण नाव नीधु नर नेह करो।
तेरो घणौ गयो परवार क तू भी जयहै मरो।
काया थकी कमाय, पछै पछतायस्यै ।
हरि हां, वाध्यो जम कै साथि जमपुरि जायस्यैं ॥ ६४ ॥

(ख) सु य नितप्रत ल्यो नांव निरजण को जपो।
हूय परसर तजि पोट पालेव सू पपो।
पवौ पवारी पेह क जीवत होय रह्यो।
हरि हा, डावो डाडो छोडि वडै रसतै रहो ॥ ८० ॥

४–उनवियो आमान्य, घड बधे घण औवडयो।
गह करि वूठो ग्यान, साच सबदे साम्यजी ॥ २३ ॥ (शेषांश आगे देखें)

ख—"साखी" शीर्षक के अन्तर्गत ४५ दोहों में गुरु–महिमा, सूम, साधु, दुष्ट, सत्संगति, कर्म-फलभोग, संसार की असारता, नश्वरता, भ्रमत्याग, नीति-कथन आदि–आदि अनेक विषयों का विविध प्रकार से लोक–प्रचलित उक्तियों में प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में कतिपय दोहे देखे जा सकते हैं[१]।

ग–नाटारंभश्च : 'नाटारंभ" के ३० दोहे पति–पत्नी के संवाद रूप में हैं। दोनों में इस बात का झगड़ा है कि पुरुष और स्त्री में कौन बड़ा है। अपने–अपने पक्ष में दोनों अनेक प्रमाण देते और तर्क–वितर्क करते हैं। अन्त में फैसला कराने के लिए वे कवि के पास जाते हैं। एक बार तो वह संशय में पड़ जाता है पर अन्त में न्याय करके झगड़े का निपटारा कर देता है। संवाद की नाटकीयता विशेष रूप से आकर्षक है। कुछ

छुरियां करता छेद, मीढा गाडर मारता।
बुधर दाख्यौ भेद, तैं समझाया साम्यजी ॥ २० ॥
टांणै हूं टळियाह, इण अवसर का आदमी।
वावं ते वळियाह, सीप न मांनी साम्यजी ॥ २५ ॥
जड़िया था जंम जाळि, भूत परेते भोळव्या।
सिरंजण हार सहाय, सावळ आंण्यां साम्यजी ॥ २६ ॥
कउवा कीर कहार, गांवां मां गाडर गिणी।
अंण जपियै उपगार, सूर सिरज्या साम्यजी ॥ २६ ॥
रंग मां मांडै राड़ि, कुबधि सदा काया वसै।
अंतरि सदा उजाड़ि, सरंम नहीं जां साम्यजी ॥ ३१ ॥
विसंन भगति री भंति, उरि अवगंण आंणै नहीं।
कुवचंन ही कहियंति, सुवंचन बोलै साम्यजी ॥ ३२ ॥
मसतगि रापि मुवाळ, पासै वांणी पाघड़ी।
कुजौ करैं कुपाळ, सुधै सिर हूं साम्यजी ॥ ३५ ॥
गहि गेडियो गिवार, वांने हूं विरता फिरै।
भीतरि सदा विकार, सुवधि न आवै साम्यजी ॥ ३६ ॥
पालिक मेटी पोडि, आवा गुंवण चुकाय कै।
कहै केसो कर जोड़ि, सुरग समंपौ साम्यजी ॥ ४१ ॥

१–अड़वो चरै न चरंण द्यै, मांणस की उंणिहारि।
कहि केसौ ओ पारिपो, सूम असौ संसारि ॥ १४ ॥
क्रंम भ्रंम को संकळो, पासी पड़ी सरीर।
कहि केसौ पुल्है नहीं, जाळिम जड़्या जंजीर ॥ १७ ॥
उतिम संग केसौ कहै, देपि वंण्या है दाव।
अज्या फळ ऊंचा चरै, धरि गिरवर सिरि पाव ॥ २४ ॥
जे पुळियां धंन सांपजै, सुंणहो फिरै सो वार।
कहि केसौ दीठो नहीं, कूकर कै कोठार ॥ २७ ॥
गांय गूवाड़ैं गोरिवैं, जळ मिलि कियौ कुसंग।
कहि केसौ नूमळ हुवै, जळ सिळता को संग ॥ ३२ ॥
नीवौ विणौ चाल्यौ नगरि, केसौ क्या मोलाय।
हाटि हाटि अवगंति हुई, रीतो ही उठि जाय ॥ ३५ ॥
काचौ कुपौ चांम को, तंह मां मीन न मेप।
सिर चढ़ि चालै साह कै, संगति का फळ देप ॥ ४२ ॥

दोहे नीचे दिए जाते हैं[1] ।

(७) स्तुति अवतार की (प्रति १९ मे गोकलजी की रचनाओं के बीच, पत्र ५–६ पर) :

१३ सोरठों की इस रचना मे सृष्टि-उत्पत्ति,[2] नो अवतार, उनका हेतु तथा नारायण-जाम्भोजो के गुण और महिमा का भक्ति-भाव पूर्वक वर्णन है ।

(८) दस अवतार का छन्द (प्रति संख्या २०१, फोलियो २९–२७)

यह ११ छन्दा (१० इन्दव और १ कवित्त) की छोटी सी रचना है जिसमे भगवान के दस अवतार (मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम-लक्ष्मण, कृष्ण, 'बुधर' और कल्कि) और उनके प्रधान कार्यों का भक्तिभावपूर्वक वर्णन करते हुए कवि उनकी शरण-ग्रहण और मुक्ति-कामना करता है । नृसिंहावतार पर एक छन्द इस प्रकार है—

चोथे अवतारि चहुँचकि सुणियो, नारेंसिंघ रूपी नारायणो ।
हिरणाकस हूवौ हरि दोखी, भगत संताया गाढ घणौ ।
पहळाद उधार्‌यो कारज सार्‌यो, हिरणाकस हायळ हणो ।
चरण अवतार भणै जन केसौ, चित राखे चक्रधर चरणौ ॥ ४ ॥
अन्तिम पंक्ति की पुनरावृत्ति सभी इन्दव छन्दों के अन्त मे होती है ।

(९) बाळ लीला[3] (अपर नाम "कथा बाळचिरत"-प्रति संख्या १ और १२) :

यह ६१ दोहे-चोपइयों की "राग हंसो मे गेय छोटी सी रचना है । इसम जाम्भोजी की बाललीला का वर्णन इस प्रकार है —

जाम्भोजी के जंगल मे ही रहने और 'पाळ' (पशु) चराने के कारण लोहटजी का दुख प्रकट करना, जाम्भोजी का अपनी आज्ञा से सब पशुओ को चराना, लुकमिचौनी खेलना और पृथ्वी म चले जाना, हांसा का दुख, एक मास पश्चात् निकल कर अपनी माता से मिलना, यत्न से ऊँटो के 'टोलो को छुडाना, लोहटजी को वर्षा-धार से कलश भर पानी पिलाना, हल जोत कर खेती निपजाना, पीपासर के कूएँ पर अपने आदेश से पशुओ को पानी

१-म्हे हुकल ही उजळा, सूना करा न सक ।
नाह विहूणी नारि नै, कामणि चढै कलंक ॥ ६ ॥
पर घरि पुरुष ज एकलो, जाए सर्क न जुगि ।
नारि विहूणी नाह नै, काढै छेडि छबुकि ॥ ७ ॥
मनि मानी परणे पुरिष, एक जणी केई वीस ।
भरता कही न साभल्या, एकण के दस बीस ॥ १६ ॥
नारी अनू नुवाविया, पर तर देयो गोजि ।
धारा धणी धुजाडियो, उणि भागवती भोजि ॥ १७ ॥

२-हरि होनो तिण वार, धर अंबर होता नही ।
तैं कीयो करतार, जळ पैदा जीवा घणी ॥ २ ॥
जदि सिरज्यो समार, वार कितो लागी विसन ।
एकण ओउंकार, कमठाणा कीया विसन ॥ ६॥

३-प्रति संख्या १, १२, ३९, ६८, ७१, ८१, १५४, २०१ (फोलियो २०६, २०८) ।

पिलाना, राव दूदा का यह देखना, इच्छापूर्ति के लिए प्रार्थना करना, जाम्भोजी का उनको मेड़ता और काठ की मूठ की तलवार देना।

रचना में वर्णनात्मक ढंग से जम्भ-लीला का उल्लेख भर किया गया है। दो स्थल-लोहटजी तथा हांसा का दुख और उनकी मनोदशा-वर्णन अवश्य भावपूर्ण हैं जिनमें उनका वात्सल्य प्रेम झलकता है। उदाहरणस्वरूप बालकों और हांसा की दशा का वर्णन द्रष्टव्य है[1]।

(१०) **कथा ऊदै अतली की**[2] : यह राग 'हंसो' में गेय ७७ दोहे-चौपइयों की कृति है जिसकी रचना संवत् १७०६ के भादवा वदि दशमी, मंगलवार को हुई। कतिपय प्रतियों (संख्या ३, २५, ११८) में भूल से इसके रचयिता सुरजनजी बताए गए हैं। इसमें पति-पत्नी ऊदै-अतली की कथा के माध्यम से अतिथि-सत्कार और "भाव" की महत्ता बताई गई है। कवि के अनुसार भाव के अनुरूप ही धर्म, कर्म और सुख-समृद्धि की प्राप्ति होती है।

मेड़तावाटी के पंडवाळो गांव में अतिथि प्रेमी ऊदो और अतली रहते थे। अधिक साधु-सन्तों की सेवा-भावना से वे हिंगूणियों गांव में चले आए, जहां चार घर विष्णोइयों के पहले से ही थे। यह सोच कर कि यदि पांच भक्त आए, तो उनके हिस्से में एक ही आएगा, वे वहां से कूदिनू और तत्पश्चात् जाम्भोळाव के मार्ग में स्थित एक स्थान पर जा बसे। वहां विष्णोई-'जमातें' आती थी। आस-पास के अन्य लोगों की देखादेखी उनका "भाव" भी घट गया और मन कठोर हो गया। उनके लोक-दिखावे के कारण अभ्यागतों ने भी आना बन्द कर दिया। "भाव" घटते ही धन भी समाप्त हो गया। भूख से लाचार होकर उन्होंने खोदासर में खेती की, किन्तु अन्न नहीं हुआ। इस पर अतली ने जाम्भोजी से अन्न की प्रार्थना की। उन्होंने मनसापूर्ति करते हुए पारवा गांव में बसने को कहा। वहां उनके अन्न-धन तो हो गया, किन्तु अतिथि एक भी नहीं आया। ऊदोजी के कारण पूछने पर जाम्भोजी बोले-अतली ने अन्न मांगा सो मैंने दिया। तुम्हारे मन में जब साधु-सत्कार का भाव था तब वे आते थे। अब धन से प्रेम है, इसलिए व्यर्थ के बकवादी हो गए हो[3]। ऊदोजी उदास हो चले आए। इस पर अतली ने जाम्भोजी से पूछा तो वही उत्तर मिला। उन्होंने धन खर्चने का निश्चय करके "गंगापार" के विष्णोइयों को भोजन का

१-दिन मां बाळक आई दया, गाढ करै हांसा पै गया।
बाळक कळपै हुवै कमूत, घर मां पैसि गयौ तो पूत ॥ २८ ॥
हांसा मंनि हुई अंगराय, जहां लुक्यौ सा ठौड़ बताय।
आगी बाळक बांसी माय, वग करि पुंहता वंन मांहि ॥ २९ ॥
ठीक न ठाहर काई ठोड़, न का विगति नहीं का ठोड़।
हांसा झूरै करै कळाप, को पुरिबली लागो पाप ॥ ३० ॥
पूत तणी दोरही पहार, हियै वहै ज्यौं करवत धार।
मन लोच रंन नाही लहैं, सुत को दुप कहि क्यौं करि सहैं ॥ ३१ ॥
२-प्रति संख्या ३, १३, २५, ६८, ७१, ८१, ११८, २०१।
३-जदि थे आया पारवै, धन सूं प्रीति पिछांणि।
अब रळिया रोळायता, सतगुर कहै सुवांणि ॥ ४७ ॥

निमन्त्रण देकर अपने घर बुलाया। परीक्षार्थ जाम्भोजी भी "ढेढ" का मैला-कुचैला वेश बनाकर वहां गए। अतली ने उनको भी उसी प्रेमभाव से लपसी और भरपूर घी दिया। प्रसन्न होकर जाम्भोजी ने उसको मोक्ष का वर दिया।

रचना में छोटे-छोटे संवाद और वर्णन हैं। अतली और जाम्भोजी का संवाद तथा ढूंढे[1] का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यत्र-तत्र सुन्दर लोक-प्रचलित उक्तियां तथा प्रसंगानुकूल नीति-कथन[2] हैं, जिनका विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। जाम्भोजी के पास से लौट आने और अतली के पूछने पर ऊदोजी की मनोदशा का बहुत स्वाभाविक उल्लेख कवि ने किया है[3]।

(११) कथा सैंसै जोखाणी की[4] यह राग 'हंसो' में गेय १४४ दोहे-चौपइयों की रचना है, बीच में दोहों की दो "ढाळ" भी हैं। इसमें जाम्भोजी द्वारा सैंसे जोखाणी के दान की परीक्षा और उसकी सेवा-भक्ति का वर्णन है।

एक समय सम्भरायळ से जाम्भोजी ने पांचू और नापूसर गांवों के बीच भीमाळा में डेरा किया। इसकी खबर होने पर स्थान-स्थान से अनेक लोग वहां दर्शनार्थ आने लगे। नापूसर की जमात भी आई जिसका सरदार सैंसा था। सन्ध्या-समय सैंसा ने वापस जाने की 'सीख' मांगी तो जाम्भोजी ने आज्ञा देते हुए, घर आए को भीख के लिए मना न करने और निस्वार्थ-भाव से दान देने की बात तीन बार कही। वह बोला-मुझे बारबार क्यों कहते हैं, मैं तो ऐसा करता ही हूं। जमात के चले जाने पर जाम्भोजी ने उसकी परीक्षा लेने का विचार किया। वेश बदल कर भिक्षा-पात्र लिए उन्होंने सैंसे के दरवाजे पर भीख मांगी। उसकी स्त्री ने वाद-विवाद करते हुए उनको भीख तो दी ही नहीं, उलटे धक्के देकर वह पात्र भी खण्डित कर दिया। कलह होती देखकर दो स्त्रियां वहां आईं, एक ने 'कुरकण' और दूसरी ने दूध उनको दिया। सारी बस्ती देख कर वापस जाते समय पुनः उसके घर जाकर ओढने के लिए वस्त्र मांगा। सैंसे ने उनको टालने के लिए एक अत्यन्त जीर्ण शीर्ण वस्त्र इस हेतु दिया।

दूसरे दिन सतगुरु की दान संबंधी उपर्युक्त बात का सैंसा ने प्रतिवाद किया, तो उन्होंने वे दोनों वस्तुएँ दिखाई। वह लज्जित होकर क्षमा-याचना करने लगा। जाम्भोजी

१-काया पलटि आयो करतार, ढेढ को दीसै उणहार।
कायम को कपड़ै रंग तणो, छह छीक्या मैला अति घणो ॥ ६१ ॥
लहपटियो काया लडपडी, कर कांरे अर काया कुडी।
तन छीनो दीसै दुरबळो, एक छीण दूजै दुबळो ॥ ६२ ॥

२-अन विणि अतना परहरै, मात पिता सुत वीर।
भाव घटयै आवै भगत, देखि हुवै दळगीर ॥ २२ ॥
रळी रमण रस रूप रंग, नातो नेह आचार।
अन विणि अतना परहरै, सुत मित प्रीति पियार ॥ २७ ॥

३-सतगुर वायक संभल्या, कहि अतळी कुण आस।
बात कही न कहि सिकै, उरि हुवै अमायो सास ॥ ४९ ॥

४-प्रति संख्या ३, २४, ६८, ६९, ८१, ११७, २०१ (कोलियो २४०, २४५), ३३०।

ने उसको विभिन्न प्रकार से लोगों की सेवा करने का उपदेश दिया जिससे उसको मोक्ष-लाभ हुआ।

केसोजी की कथाओं में यह अपेक्षाकृत प्रौढ़ और श्रेष्ठ रचना है। इसकी भाषा लचीली और प्रवाहमयी है। इसमें तीन बातें विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करती हैं :—(क) वर्णन, (ख) संवाद और (ग) वातावरण-चित्रण ।

वर्णनों में दो मुख्य हैं:-भीभाळो में आए लोगों का सामान्य रूप से तथा स्त्रियों का विशेष रूप से। दूसरे के अन्तर्गत उनके रूप, शृंगार, चेष्टाओं और कार्यों का सुन्दर वर्णन है। ध्यातव्य है कि कवि के शब्दों में यह कर्ता की कला और शोभा का वर्णन है[1] ।

संवाद स्वाभाविक, सटीक और प्रभावशाली हैं। इनमें दो उल्लेखनीय हैं :—जाम्भोजी और सैंसो का तथा भिखारी वेश में जाम्भोजी और सैंसो की स्त्री[2] का। दूसरे में श्रेष्ठ नाटकीय गुण है। उसको गांव की अन्य दो स्त्रियों द्वारा दी गई फटकार तो अत्यन्त यथार्थ और चित्ताकर्षक है[3] ।

भीभाळो के समस्त वातावरण का समग्रता में विहंगम दृष्टि से चित्रण करने का प्रयास भी कवि ने किया है। इसमें भक्तिभाव भरी उस वातावरण की एक झलक दिखाई देती है। शब्द-योजना से प्रतीत होता है मानों आसपास का समस्त दृश्य सामने आ गया हो।

१-सरवंतरि साहिब रहै, विसंन तणी विसतार।
सोभा सिरजणहार की, करता कळा अपार॥ १६ ॥

२-सांमि कहै सैंसै के आय, घातो भीष विसंन कै नांय॥ ५० ॥
रूप अभावो दीसै पटौ, सैंसौ कहै अब फळिसी जटौ । ५१ ॥
सैंसै कहियो वैण विचारि, सुंणि करि सांम्ही आई नारि ॥ ५२ ॥
वार ढकूं चलि बाहरौ, निरिपि कहै ऊं नारि।
पिडकी झालि र के पड़ो, लहणायत सौ बारि॥ ५३ ॥
आयं उत्तर मत दियौ, सुणि सतगुर आ सीष।
करि पतिरी आगै करै, क्यों थोड़ी बोहती भीष ॥ ५४ ॥
मोहि पाली मेल्हो मत, हूं करि आयो आस।
सैंसै को घर ताकि कै, मेल्हो मत निरास॥ ५५ ॥
वाहरि नीसरि कांम करि, किसी चलाई रीति।
पिसी आघूं पिड़की दियौ, आयो वडो अतीत ॥ ५६ ॥
वसती मांहे जे वडा, जे जुता घंणि भारि।
लोग कहै सैंसौ वडौ, सुणि आयौ आचारि॥ ५७ ॥
वा धका दियै वोह सा सहै, निरपि कहै ऊं नाल्हि।
वोह उघाड़ै वा ढकै, पांचै पिड़की झालि॥ ६० ॥

३-कांमणि आई कळह सुंणि, लागी करंण विचार।
फिटि सीरंणि सैंसै तणी, फिटि घर को आचार॥ ६२ ॥
थारो घर कहियै वडौ, वड कहियै अवताक।
फोड्यो पतर अतीत को, इह वडपंण मां पाक॥ ६३ ॥
दया करि वोली दोय नारि, धूळि दियौ वेटी की लार॥ ६४ ॥

(१२) कथा मेडते की[1] : राग "हूमो" में गेय यह १७२ दोहे–चोपइयों की रचना है, जिनमें ७ छन्दों की एक–एक पंक्ति त्रुटित है। इसकी रचना संवत् १७०६ में हुई थी[2]। इसमें राव दूदा, राव सातिल, नेतसी सोलंकी और अन्य सरदारों, मल्लूखा तथा मगोवळ से सम्बन्धित घटनाओं और कथाओं की पृष्ठभूमि में जाम्भोजी की महत्ता प्रदर्शित की गई है।

राव दूदा ने अपने 'घटवाळों' (पशु चराने वालों) से जाम्भोजी के पास एक बढ़िया भैंस भेजने को कहा। उन्होंने बाझ भैंस भेजी जो वहां ब्याई और दूध देने लगी। इसका पता लगने पर दूदाजी ने जाम्भोजी से क्षमा–याचना की।

बादशाह ने मेडता लेने के इरादे से सेना के साथ सरियाखान को वहां भेजा। लोगों ने दूदाजी को मेडता छोड देने की राय दी किन्तु उन्होंने युद्ध किया जिसमें शाही सेना की हार हुई और सरियाखान मारा गया। जाम्भोजी ने उनको मेडता दिया था, सो लाज रखी।

अजमेर के सूबेदार मल्लूखां के सम्मुख किसी चारण ने राठौडों के भानजे टोडा के नेतसी सोलंकी की प्रशंसा की। शंकित होकर खान ने टोडा को लूटा और नेतसी को अजमेर में बन्दी बना लिया। उसको छुडाने के लिए, जोधपुर के राव सातल ने जोधावत उमरावों के साथ सेना सजाकर थावळा गांव के पास कावोळाव तालाव पर डेरा डाला। मन में वे दुखी थे। उस समय जाम्भोजी थावळा में थे। राव दूदा के कहने पर राठौड उनसे मिले और दुख–निवारण की प्रार्थना की। जाम्भोजी हिन्दुओं को कोई वर देंगे,[3] यह सुन कर, नगाडे बजाते हुए ससैन्य मल्लूखां भी उनके दर्शनार्थ वहां चला। गुरु ने राठौडों से पृथक् डेरे करने को कहा। खान ने जाम्भोजी के चरण–स्पर्श किए। उनके कहने से उसने नेतसी को वहां मंगवा कर छोड दिया।

राव सातल ने एक पुत्र की प्रार्थना की। वे बोले–तुम्हारे पल्ले पाप न होने से किसी का कुछ लेना–देना नहीं, अतः पुत्र नहीं होगा।

रिणसीमर का रावल भी युद्ध में खान की सहायतार्थ गया था। वह जाम्भोजी की कीर्ति सुन कर वहां आया। जाम्भोजी ने उसके भागते हुए ऊंट को 'हाथ पसार कर पकडा' ब्याई हुई 'सांढ' (ऊंटनी) के मलपूर्ण हाथों से एक रैबारी के दूध लाने पर, यह अनसुनी अनदेखी बात कही, खीर के लिए जमीन में गडे हुए बर्तन और रेत में मिले हुए चावल बताए। यह देखकर रावल 'केश उतरवा कर' उनका शिष्य हो गया। अपनी राणियों को भी उसने 'विश्नोइन' किया।

नीवडी गाव के करो जाट की बेटी लाहणी रिणसीमर के मगोवळ को ब्याही गई

१–प्रति संख्या ७१, १५४, २०१, (फोलियो २३६–२४०), २०७, २३४।

२–सतरा सै छहोतरै, तिथ नुय मगळवारि।
जन केसो की वीनती, सतगुर पारि उतारि॥ १७२॥
प्रति ७१ (क) में "छहोतरै" के स्थान पर "छिडोतरै" पाठ है। इस दोहे में तिथि, बार के साथ मास का उल्लेख नहीं है।

३–राठौडा वद्यो विसन, चाल सुणी चहू फेरि।
कुण वर देसी हिंदवा, पोन सुण्यो अजमेरि॥ ६५॥

थी। मगो और लाहंणी विष्णोई हो गए। वरो ने अपने प्रभावशाली भाई भोजो जाट को वहां भेज कर लाहंणी को बुलवा लिया। उसके पीछे मगो भी अपनी ससुराल गया किन्तु जाटों ने विष्णोई होने के कारण उसकी हंसी–मजाक और भर्त्सना करते हुए[1] कैद कर लिया और आठ पहर बाद मारने की सोची। रात्रि में जाम्भोजी ने उसको कहा–जाटों ने भोजो के मरने की बात सुनी है किन्तु वह नवें दिन यहां आ जाएगा। तू यह चमत्कार दिखा। उसने ऐसा ही किया। भोजो के आने पर जाट जाम्भोजी की महिमा-गान करने लगे। उन्होंने मगो को सम्मानपूर्वक लाहंणी के साथ रिणसीसर विदा किया।

अलौकिक तत्त्वों को छोड़ कर रचना में कतिपय महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है तथा तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक दशा–मान्यताओं की जानकारी देने वाले उल्लेखनीय संकेत और सूत्र हैं। इनकी चर्चा अन्यत्र की गई है (द्रष्टव्य–जाम्भोजी का जीवन वृत्त तथा विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)। अन्य ऐसी कथाओं की भांति इसमें कई अच्छे संवाद हैं।

मेड़ता पर सरियाखान की चढ़ाई के समय सेना और युद्ध का सजीव वर्णन कवि ने किया है, समस्त "कथा" में इसका निराला स्थान है[2]।

कवि अत्यन्त आत्मीयता के साथ पाठक–श्रोता से अपनी बात कहता है जिससे एक विश्वासपूर्ण घरेलू वातावरण की सृष्टि होती है[3]।

(१३) **कथा चित्तोड़ की**[4] : यह राग 'रांमगिरी' में गेय १६८ दोहे–चौपइयों की

१–मूरिष सह फीटि फीटि करें, भुंछ जिड़ग ज्यां भूत।
 थे रिणसी बेटा जाया असा, सगळा ही ज कपूत॥ १५३॥

२–वाजे भेर नगारा घुरे, दळ आया दुदै उपरें।
 वेढि करंण रो कियौ मतो, दुदै दळ कियौ सावितो॥ २३॥
 मोड़ वंधा बांधे अब मोड़, रिण संगिरांम मिल्या राठोड़।
 रिण मांहि तेजी तंत्राळ, धज्य वांधी सोहैं मुंडाळ॥ २४॥
 रिण मांहि तेजी हिणहिण्या, पाषर टोप संजोवा वंण्या।
 रिणपेत तंणां पहर्‌या पहरांन, करे कबांणि कड़े मुयांन॥ २५॥
 ढाल तुपक तरवारि सभ, कुंत कटारी सेल।
 दळ दोन्यौं भेळा हुवा, पळ दळ करिण्यां पेल॥ २६॥
 मुंह मिलिया छुटा तदि बांण, दहूं दळे घुरिया नीसांण।
 सूर विढै छुटै मंनि मोह, अंणी मिली वाज्या रिण लोह॥ २७॥
 तुरियां पुरियां उडी पेह, तरवार्‌यां तड़ छीजें देह।
 सूरां करि सीस पड़हड़ै, सर गोळी उलटा सह पड़ै॥ २८॥
 दुदै नै देवजी वर दियौ, सरियापांन तंणो सिर लियौ।
 रिण आयो राठौड़ां हाथि, पळ पेस्या आप निरंजणनाथ॥ २९॥

३–द्रष्टव्य:–
 (क) उवट वाट वहैं दळ पेरि, अरि उपरि चाल्या अजमेरि।
  थांवळै ता नैड़ो एक गांव, तहं गांव तंणो नहीं जांणो नांव॥ ४७॥
 (ख) रावळ रथे आयो जगनाथ, के रावळ कै आरे साथि।
  सतगुर मत बुलावै झूठ, रावल के चड़णै थो ऊंट॥ १०९॥

४–प्रति संख्या ६५, ६६, ७१, ८१, १०७, १५४, २०१ (फोलियो २३१–२३६), २०७।

रचना है। इसमें पूर्व के 'लादिया' विश्णोइयों का, चित्तोड़ में जकात मांगे जाने पर मरने का निश्चय, जाम्भोजी के 'सबद' और भेंट-सामग्री से भाली राणी और राणा सांगा को प्रतिबोध तथा भीयों की शका का समाधान होने का वर्णन है।

कन्नौज के भादू गाव के लादिया बनिये विश्णोई-'पुरवार', 'मौधिया' और 'उमरा' सौदा करते हुए चित्तोड आए, वहा क्रय-विक्रय किया किन्तु चुगी देने से इन्कार कर दिया। राणा सांगा को विश्णोई 'धर्म' के विषय मे बताते हुए उन्होंने चुगी के बदल तीन दिन बाद अपने सिर देने के निश्चय से अवगत कराया और द्वार पर 'धरणा' दे दिया। भाली राणी ने उनसे तत्सम्बन्धी बात जान कर, बैलों के लिए 'बीड' (चरागाह) दिया और कहा— जाम्भोजी से पूछ आओ, यदि वे कह तो देना, अन्यथा नहीं। तब उनम से कुछ व्यक्ति सम्भराथळ पर गए।

दिल्ली में ठहरी विश्णोइयों की एक 'जमात' से भीया नामक शास्त्रज्ञ व्यक्ति ने जाम्भोजी के विषय मे जान कर उनके 'अवतार' होने मे शका व्यक्त की। जमात ने जाम्भोजी से भी यह बात कही। ६ महीने बाद पुन: उन विश्णोइयो न उससे, शका-निवारणार्थ जाम्भोजी के पास चलने का 'धरणा' देकर आग्रह किया। वह मन मे चार 'द' विचार कर सभराथळ चला। जाम्भोजी ने उसके प्रश्नों का उत्तर और 'द' का भेद बता दिया तथा अपने पाँच साधुओं के साथ उसको 'सोवन नगरी' दिखाई। वहा से उन्होंने 'मूण' (मोम), घडा, 'सुळभावणी' (कघी), भारी और माला-पांच वस्तुएँ भी ली। भीयो का भ्रम निवारण होगया।

चित्तोड मे आए विश्णोइयों को जाम्भोजी न अपना कथन और 'सबद'[1] तथा भेंट स्वरूप भारी, कघी और माला दी। वापस आकर उन्होंने भेंट दी, जाम्भोजी की 'सीख'— 'सबद' और चुगी क्षमा करने की बात कही। इस पर राणी को प्रतिबोध हुआ, उसको अपना पूर्व जन्म स्मरण हुआ। इस प्रकार ये दोनो तथा रायमल, वरसल राह पर आए[2]। राणा ने चुगी माफ कर दी और पाहळ लेकर जम्भ-सेवक हुआ[3]। पश्चात् भी उनकी आज्ञा मानता रहा।

रचना म यत्र-तत्र ऐसे सकेत मिलते हैं,[4] जिनमे पता चलता है कि 'कथा' का आधार लोकश्रुति है। स्वय कवि के कथन से भी ऐसा ही ध्वनित होता है[5]। इसके अति-

१-सुरता इणि ओसरि कहौ, आतरि पातरि राहौ रुपमगि ॥ १३७ ॥ (सबद सख्या ६१)
२-धरणीधर मन माहे धरौ, करणी कही तका गुर करौ।
सुन सागो झालीजी माय, रायसल वरसल आण्या राह ॥ १४५ ॥
३-पळू लियौ विसनोई किया, गर वायक माथै चढिया ॥ १४७ ॥
४-(क) च्यारि क पाच न जाणो दोय। गुर साम्हा जण मेल्ह्या जोय ॥ ४९ ॥
(ख) मोल लियौ क माग्यो जोय। सा विधि सतगुर जाणे सोय ॥ ५५ ॥
(ग) परसेसर जांणे परवार। लोगा के मुहि सुण्यो लुहार ॥ ५६ ॥
(घ) घाटि बाधि जाणै करतार। तीजै दिन पुहता दरबार।
पारब्रम कै लागा पाय। सतगुर वायक कहै सुणाय ॥ १५५ ॥
५-केस कहै करतार सू, सतगुर राखौ साव।
को आपर कावळ कह्यो, बकस करी वळ जाव ॥ १६८ ॥

रिक्त काव्योचित कल्पना तथा सम्भावनाओं और साम्प्रदायिक आग्रह का पुट भी है। तथ्य की दृष्टि से मूल बात यह है कि झाली राणी और राणा सांगा का अपरोक्ष रूप से जाम्भोजी से सम्पर्क हुआ था। इससे चित्तोड के राजघराने की धार्मिक-सहिष्णुता, राजस्थान के वाहर उत्तर-प्रदेश मे विष्णोई-धर्म प्रसार, शास्त्रज्ञान से आत्म-ज्ञान की महत्ता, तत्कालीन राजस्थान, विशेषतः मेवाड में 'अकर' जातियों और प्रसिद्ध धर्म-मतों का पता चलता है। भीयों (भीवराज) एक हुजूरी कवि था, उसके सम्बन्ध में इतनी जानकारी पहली वार यहां मिलती है। (द्रष्टव्य-भीवराज, कवि संख्या ४८)।

"कथा" में संवाद उत्कृष्ट रूप में हैं, जिनमें ये प्रमुख हैं।—

क-राणा सांगा और विष्णोइयों का (१४-२४),
ख-झाली राणी और विष्णोइयों का (दो वार, ३४-४८),
ग-जमात और भीयों का (दो वार, ६५-७० तथा ७३-७५)।

(१४) कथा इसकंदर की[1] : यह राग सोरठ में गेय २१५ दोहे-चौपइयों की रचना है। विभिन्न प्रतियों मे छन्दों की कमी लिपिकारों की संख्या-भूल के कारण है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमें जाम्भोजी द्वारा दिल्ली के पठान वादशाह सिकंदर लोदी को प्रतिवोध कराए जाने और उनके ज्ञानोपदेशानुसार चलने के संदर्भ में घटी घटनाओं तथा तत्सम्बन्धी प्रासंगिक कथाओं का उल्लेख है।

जाम्भोजी के दर्शनार्थ 'गंगापार' के विष्णोइयों की एक 'जमात' दिल्ली में हासिम-कासिम नामक शाही दर्जियों के घर के सामने आकर रुकी और उसने रात भर "जुमला" किया। इससे प्रभावित होकर वे भी जमात के साथ चल पड़े तथा जाम्भोजी के ज्ञानोपदेश को हृदयंगम किया। दिल्ली में वे मनसा-वाचा-कर्मणा उसी के अनुसार रहने लगे। उनके हिन्दू और मुसलमान—दोनों से भिन्न आचरण देख कर लोगों को आश्चर्य हुआ और बात बादशाह के कानों तक पहुची। उसके पूछने पर उन्होंने 'सतगुर' और 'सतपंथ' के विषय में बताया जिसे सुनकर वादशाह ने उनको अंधेरी कोठड़ी में बन्द करवा दिया और बोला—इनका पीर छुड़ायगा, तभी छोड़ूंगा (१-५४)।

जाम्भोजी रणधीरजी के साथ, मनसा से उत्पन्न किए ऊंट पर सवार होकर चले तथा आकाशमार्ग से वादशाह के महल में उतरे। ऊंट के "करकने" से वह जग गया और मन में दरवाजा खोलने वालों को मरवाने की सोची। जाम्भोजी वोले-मैं दरवाजे से नहीं आया; मेरे सन्तों को तूने कैद किया है, उनको छुड़ाने आया हूं। तभी वहां दिव्य-ज्योति विकीर्ण हुई। उनको एक व्यक्ति और ऊंट के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं दिया। आश्चर्यित वादशाह ने उठ कर उनके चरण छूने के लिए हाथ फैलाए तो वे आपस में ही मिल गए। उसको जाम्भोजी के दर्शन तो हुए किन्तु बीच में जल की दीवार हो गई। जाम्भोजी ने दोहराया-उन साधुओं को छोड़ो। इस 'परचे' से वादशाह को सुधि आई।

१-प्रति संख्या ७२, ८१, ११६, १५२ १५४, १५५, १९८, २०१ (फोलियो २१८-२२५), २०७, २६२।

उसने "जीव गति" की विधि उनसे पूछी। जाम्भोजी ने दो टोपियों का कपड़ा देते हुए कहा—हक और हलाल की कमाई खाओ। उसकी संशय-निवृत्ति हो गई और वह इस "राह" मे आया। वे "अलोप" हो गए किन्तु 'फोग' की एक 'कामड़ी' (छड़ी) रणधीरजी के हाथ से वही गिरी रह गई (५५-८३)।

दूसरे दिन बादशाह ने दर्जियो को बुलाकर उस छड़ी के विषय मे पूछा तथा प्रसन्न होकर प्रशंसा करते हुए उनको मुक्त कर दिया (८४-९०)।

अब बादशाह प्रतिदिन दो टोपियाँ बनाने और उनसे हुई आय से गुजर करने लगा। 'पंथ' मे न आने के कारण उसने एक के अतिरिक्त शेष बेगमो को भी छोड दिया किन्तु वह भी कष्टों से थक गई। उसके पिता ने बादशाह को मारने का इरादा किया। घात के समय बादशाह के हाथ और पाव अलग-अलग दिखाई दिए। तब उसने अपनी बेटी को सिकन्दर की सेवा करने के लिए ही समझाया (९१-१०६)।

बादशाह जाम्भोजी की महिमा तथा हिन्दू और मुसलमान, दोनो धर्मों की आलोचना करता, पर किसी से उपयुक्त उत्तर देते न बन पडता था[1] (१०७-१२०)।

बीमारी मे टोपी न बना सकने के कारण बादशाह ने हक की कमाई का अनाज लाने को कहा। हक के नाम पर केवल एक बुढ़िया ने ही अनाज दिया पर उसने भी इस हेतु पराई मशाल के उजाले मे सूत काता था, सो बादशाह ने ग्रहण नही किया (१२१-१३३)।

भगवान नामक एक ज्ञानी ब्राह्मण बादशाह से मिला। उससे पूछा-हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मो मे कौन बडा है ? उत्तर मिला—जो रहमान को पहचाने और जिसमे ईमान हो[2]। इस पर बादशाह ने उसको मुसलमान हो जाने को कहा तो वह बोला-यदि मेरे तीनो प्रश्नों का उत्तर मिल जाए तो हो सकता हूँ। बादशाह ने एक काजी को उसकी शंका-निवारणार्थ कहा जिसने उसकी हत्या करदी। ब्राह्मण का लडका भागवती बादशाह से मिला, तब वही प्रश्न उससे भी पूछा गया। अपने पिता की हत्या की बात बताते हुए उसने तीन प्रश्नो के उत्तर की बात दोहराई। ब्राह्मण की हत्या और प्रश्नो का उत्तर न दे सकने के कारण बादशाह ने काजियों को खूब फटकारा और परमत के ज्ञाता जाम्भोजी

१-पातिसाह मुला सू कह्या, पूछ्या गुण्या थे पाली रह्या।
हिन्दू वेद करै वोहै आस, करणी पाषो रहै निराम ॥ १०८ ॥
हिन्दू तुरक दहु वै दूजि, सतगुर पापो रहैं अळूझि।
गुर मिलियो जिन पायो पीव, गुर पापो जगळ का जीव ॥ ११० ॥
काजी मुल्ला बाभंणा, धरम विचारै जोइ।
इसकंदर पतिसाह सू, सुद्दी जाव न होइ ॥ १११ ॥

२-पूछै इसकंदर पतिसाह, हिन्दू तुरक कहैं दोय राह ॥ १३४ ॥
सची बात कहो करि चीन्ह, दोनूं माहि वडा कुण दीन।
भगवान कहै सामळि पतिसाह, अलील पुरिष का दोयो राह ॥ १३५ ॥
क्या हिन्दू क्या मुसिलमान, वडा सोई चीन्है रहमान।
सोचै समझै कोई सुजान, दोयो वडा जिस मा ईमान ॥ १३६ ॥

श्रौर पंथ की प्रशंसा की[1] । जाम्भोजी की परीक्षा के लिए एक करोड़ के एक रत्न को सात परदों में रख कर, ऊपर शाही मोहर लगा दी श्रौर उसको भेंट स्वरूप एक नारियल के साथ मंजूषा में रखा तथा भागवली श्रौर श्रन्य व्यक्तियों को भेजने की योजना बनाई । बिना देखे वह वस्तु श्रौर उसका मोल यदि जाम्भोजी बतादें तो परीक्षा हो जाएगी । उमराव सैफनखां कजलिये ने भी जाम्भोजी से श्रपने एक संशय की बात पूछने की इच्छा प्रगट की । तभी एक शाह ने एक बनिये से वापस धन दिलाने की तथा बनिये ने उसके चोरी हो जाने की फरियाद बादशाह से की । वह बोला—सबका न्याय जाम्भोजी करेंगे । (१३४-१७७) ।

जाम्भोजी ने बिना खोले रत्न का नाम, दाम ही नहीं बताया उसको निकाल कर बदले में २ करोड़ का दूसरा रत्न भी डाल दिया । भागवली, सैफनखां, शाह श्रौर बनिये-सबका भली-भांति शंका-समाधान श्रौर न्याय किया । बादशाह के कठोर तप से विष्णु ने उसको वैकुण्ठवास दिया (१७८-२१५) ।

इस कथा का महत्त्व इतिहास की दृष्टि से है । इससे एक बात का पता तो निसंदिग्धरूप से चलता है कि बादशाह सिकंदर लोदी का सम्पर्क जाम्भोजी से हुश्रा था श्रौर उनके ज्ञानोपदेश से उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन भी हुश्रा । इसकी पुष्टि सबदवाणी (सबद संख्या २७) तथा श्रन्य श्रनेक उल्लेखों से होती है । (देखें-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) । वर्तमान में फरिश्ता श्रौर श्रन्य लेखकों[2] के कथनों के श्राधार पर कबीर श्रौर सिकंदर का जो सम्बन्ध-सम्पर्क स्थापित किया जाता है, वह वस्तुतः जाम्भोजी श्रौर सिकंदर का होना चाहिए । एतद् विषयक सामग्री के श्राधार पर विद्वानों से इस सम्बन्ध में पुनर्विचार करने का श्रनुरोध किया जाता है ।

इसमें सर्व-साधारण के लिए केसोजी ने श्रत्यन्त संक्षेप में जाम्भोजी के प्रमुख विचारों का श्रपने ढंग से श्राकलन किया है । उदाहरणार्थ भागवली के तीन प्रश्नों के सम्बन्ध में जाम्भोजी का कथन द्रष्टव्य है[3] ।

१-काजी को पायो उनमांन, जीव हतो श्रर कथो गियांन ॥ १४८ ॥
पातिसाह एम कहै परवांण, जंभ गरु का ए इहनांण ।
पुछ्या तिसनां नींद न सोवैं, पर मंन की परगट सो कहै ॥ १५१ ॥
छाया पोज न दीसई, है सोई श्रगंम श्रथाह ।
पातिसाह काजी सूं कहै, सचा गुर सचा राह ॥ १५२ ॥

२-डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : योग-प्रवाह, पृष्ठ-९८, १०३ पर उद्धृत,
काशी विद्यापीठ, बनारस, संवत् २००३ ।

३-श्रागी दीन्हों श्रत भोगवै, श्रत दीन्हों श्रागी सुप हुवै ।
जपियां नांव श्रनंत गुण होय, रिण श्रर वैर मिटै नहीं दोय ॥ १८६ ॥
मन तन वचन धरै नहीं दोष, जीवत मुगति ज श्रागै मोष ।
मन रापै निरंजण लाय, तन उपगार करै ठहराय ॥ १८७ ॥
वचन साच मुपहो उचरै, सो साधु जन दुतर तरै ।
हिन्दू तुरक का सांई एकि, दोन्यों वाद विलुधा देपि ॥ १८८ ॥ (शेषांश श्रागे देखें)

(१५) कथा जती तळाव की[1] : यह राग सोरठ में गेय ८० दोहे-चौपइयों की रचना है जिसम कुछ छन्दो की एक-एक पक्ति त्रुटित भी है। इसकी रचना सवत् १७११ के कार्तिक बदि चौथ को पूरी हुई थी[2] । इसमे विविध लघु कथा-प्रसगो द्वारा जाम्भोळाव का माहात्म्य बताया गया है जिसका साराश इस प्रकार है —

पडियाळ गाव मे एक दुष्टा स्त्री ने घर मे आकर ठहरे हुए एक 'वटाऊ' के साथ मिल कर रात्रि मे अपने पति को कटारी से मार दिया और उसके साथ भाग कर सुबह होन तक जाम्भोळाव आगई। पाप के कारण वह कटारी उसके हाथ मे ही चिपक गई। यह देख कर वह पुरुष भाग गया। स्त्री ने वहा एक बडा 'नाडा' (तालाव) खोदा, जो वर्षा से भर गया। गर्मी मे अन्यत्र तो पानी सूख गया किन्तु उसमे पडा रह गया। जगल मे एक सांड की खदेडी हुई प्यासी गाय वहा आई। दोनों ने उसमें पानी पिया। इस पुण्य से चिपकी हुई कटारी उस स्त्री के हाथ से गिर पडी (१—२४)।

जाम्भोजी ने इस तीर्थ की महिमा बताई—एक थोरी चोर और जीव-हत्यारा था। उसने 'जाम्भोळाव पर एक तीर चलाया, जो उसमे गिर कर गड गया। उसको निकालते समय तालाव' की मिट्टी उसके शरीर पर पड गई। इससे उसका पाप-मोचन हुआ (२५-३५)।

जाम्भोळाव की खुदाई हो रही थी। एक स्त्री घू घट निकाले, सबसे अलग, मौन धारण किए बराबर मिट्टी निकाल रही थी। लोगों के पूछने पर जाम्भोजी ने कहा—वह अपने पूर्व-जन्म को जानती है, एक बूढे के घर मे रासभी थी। उसकी पीठ पर ढोया गया पानी किसी साधु पुरुष ने पीया, जिससे वह इस योनि मे आई। अब इस मिट्टी से प्रेम होने से आवागमन नही होगा (३६-४४)।

ननेऊ गाव मे तातू रहती थी जो अपने 'थटवाळे' (पशु चराने वाले) से किसी कारण नाराज होगई। उसने फासी से मरने का विचार किया, किन्तु सुबुद्धि आने पर वह जाम्भोळाव चला आया। वहां उसने मिट्टी निकाली और देह-त्याग कर मोक्ष-लाभ लिया (४५-५२)।

अली (ब्राह्मण) ने जाम्भोजी को प्रसन्न कर तालाब पर आने वाले लोगों के लिए मुक्ति का वर मागा। जाम्भोजी के पश्चात् यहा सवत् १६४८ में चैत बदि ११ से वील्होजी ने मेला शुरू किया था।

वाद तजै पिछाणं पीव, सो आवा गु वसि न आवै जीव ॥ १८९ ॥
रचना मे यत्र-तत्र सुन्दर सवाद भी मिलते हैं।

१—प्रति सख्या १३, १७, ३१, ५४, ५६, ६७, ६३; २०१ (फोलियो २४७-२५०), २४८।

२—सतरासै समै इग्यारो वदि काती चौथि विचारो ॥ ७८ ॥
किसन पखे परवाणी, केसै जति जोडि वपाणी ॥ ७६ ॥
प्रति सख्या १३, ३१, ५४, २४८ मे सवत् सूचक पाठ इस प्रकार है —
"पचासै सइयै समै, कातिग चौथि वपाण" । यह भूल है क्योंकि सवत् १७५० तक तो केसोजी जीवित ही नही थे, उनका स्वर्गवास सवत् १७३६ में ही हो गया था।

अन्त में कवि ने मेले में आए स्त्री-पुरुषों, उनके क्रिया-व्यापारों, पशुओं आदि का सुन्दर वर्णन किया है, जिससे लोगों के उल्लास और पहनावे आदि का बड़ा अच्छा परिचय मिलता है[1] ।

(१६) कथा विगतावली : (प्रति संख्या २०१, फोलियो ३७०-३८३) : यह ३७४ दोहे-चौपइयों की रचना है। अन्त में एक डिंगल गीत के तीन द्वालों को तीन छन्द मानने के कारण लिपिकार ने दोहा-परिमाण से कुल छन्द संख्या ३७७ दी है। इसकी रचना संवत् १७१५ के मार्गशीर्ष सुदि ६, शनिवार को हुई थी[2] । कवि के अनुसार विगतावली विष्णु की कथा है,[3] जिसका सारांश इस प्रकार है :—

सत्ययुग में हिरण्यकशिपु ६६ कोटि लोगों से अपना जप करवाने लगा। उसके पुत्र प्रह्लाद की हरिभक्ति से प्रभावित होकर इनमें से ३३ कोटि लोग उसके उपदेश पर चलने लगे। हरिण्यकशिपु ने प्रह्लाद के पांच कोटि लोगों को मार कर उसको मारना चाहा किन्तु नृसिंह भगवान से स्वयं ही मारा गया। प्रह्लाद के इन ३३ कोटि जीवों के उद्धार का वचन मांगने पर भगवान ने चार युगों में ऐसा करना स्वीकार किया। इनमें से ५ कोटि की मुक्ति तो प्रह्लाद के साथ ही हो गई (१-६१)।

त्रेता में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र और द्वापर में धर्मराज युधिष्ठिर के साथ क्रमशः सात और नौ कोटि जीव तरे (६२-७२)। कलियुग में पैगम्बर मुहम्मद के साथ एक लाख अस्सी हजार लोगों ने स्वर्ग-प्राप्ति की (७३-८७)। जब किसी भी साधु-सन्त, पीर-पैगम्बर से कार्य पूरा नहीं हुआ तो १२ कोटि जीवों के उद्धारार्थ अलख पुरुष अपनी समस्त कलाओं सहित जाम्भोजी के रूप में 'वागड़ देश' में सम्भरायळ पर आए[4] । कवि उनके

१-अवरण सीस अंनेरी, मोजा सीस चंगेरी।
जीना जंग जांगि झणकै, घंगा घुघरमाळ घमकै ॥ ७२ ॥
अपणी अपणी करि टोळी, तरणी तंन पहरि पटोळी।
पहरंती पाट पंवाळा, उरि देपि वंण्या पगवाळा ॥ ७३ ॥
अपणी अपणी करि टोळी, पुरिष पुळै ल्यें झोळी।
पहरे नवरंगा नाड़ा, मळय घाति सुरंगा साडा ॥ ७४ ॥
पहरि त्रिगोहटिया चंगी, लोः तंनि लाल सुरंगी ॥ ७५ ॥
घंगि माणिक चौक घुमावै, तिलिया तंनि सरस सुहावै।
लहंगा डंडिया कनि डोरी, अपणां गुंण गावै गोरी ॥ ७६ ॥
पहरि तिलक मंनि मोहै, टुकरी तनि सूथणि सोहै।
अ जंण करि उरि जगीसै, मुनड़ा घड़ि ते वड़ि दीसै ॥ ७७ ॥

२-सतरासै पंनरोतरै, तिथ छठि थावर वारि।
सुदि मंगसरि केसै कही, विगतावळी विचारि ॥ ३७७ ॥

३-सोचि समंझि, कुपहां ता टळी, विसन कथा सुंणि विगतावळी।

४-पीर पुरिस मेल्ह्या घंणां, संमस सरीपा सेप।
कोड़ि कहीं पुगी नहीं, आयौं आप अलेप ॥ ८७ ॥
केसै कथा कही कर जोड़ि, आवागुंवण मिटावौं पोड़ि ॥ ३७३ ॥
पंनरासै र अठोतरि इळा, कायंम ले परगटियौ कळा।
वदि भादवि आठवि अवतार, करि किरपा आयौं करतार ॥ ८८ ॥ (शेषांश आगे देखें)

गुण, विशेषता, कार्य और उपदेशों का अनेक प्रकार से सविस्तर वर्णन करता है (८८–२३६)।

भविष्य में भगवान दसवां—कल्कि अवतार लेकर समर्थ कलियुग को मारेंगे (२३७-२९५) और पृथ्वी के साथ उनका विवाह होगा (२९६–३२७)।

मृत्योपरान्त भगवान प्रत्येक जीव से उनके कृत्यों का हिसाब मांगेंगे तथा करनी के अनुसार फल देंगे। स्वर्ग में अनन्त सुख हैं, जो जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं, वे ही उनका उपभोग करते हैं[1] (३२८–३७२)।

रचना में ३३ कोटि जीवों के उद्धार सम्बन्धी साम्प्रदायिक मान्यता तथा जाम्भोजी और उनके उपदेशों का बड़ा विशद वर्णन किया गया है। इसी प्रसंग में केसोजी ने वील्होजी कृत 'सच अखरी विगतावळी' की भांति लोगों की बोली-सुधार का महान प्रयास भी किया है। उन्होंने कतिपय शुद्धाशुद्ध प्रयोगों के उदाहरण देकर ठीक बोली बोलने के लिए प्रेरणा दी है। इस दृष्टि से इसका महत्त्व वील्होजी की उल्लिखित रचना के समान ही है। सम्प्रदाय में ये दूसरे कवि हैं, जिन्होंने बोली-सुधार पर ध्यान दिया है। कुछ प्रयोगों की सूची इस प्रकार है —

	अशुद्ध	शुद्ध
(१)	बळद पीया, गाय पीवी ओठाम्, एवड और भैंस पीया।	बळद जळ पियो, गाय जळ पीवी, ओठार, एवड और भैंस जल पीयो।
(२)	आटो पीस्यो, दाळ दळी, सीजवणी ऊकणी।	धान पीस्यो, मोठ दल्या, अन्न धाणी ऊफण्यो।
(३)	अमुकडी ठोड़ बरसाय आयो	तूं कित थो जदि वूठो मेह, मेह मही यो उमर्क गाय
(४)	खोडो खाड काढी, माणस जीम्यो	धान काढ्यो, मिनख धान जीम्यो
(५)	वहि कर मारग जायसी किसो ? वोह मारग वेह नगरी जाय। बाट वहै	हूं जू नगरी पथ बताय। वोह नगरी जाय। बटाऊ वहै।
(६)	लाटो आण्यो	धान आण्यो
(७)	धाणी चुराई	तिल चुराया
(८)	आधो, माख	पुरुष, वायरो
(९)	नीगल्यो बासण, दोहणी, तावणियो कुल्हडियो को कुल्हडो, मुल्य को आळा, आळी को काचो नहीं कहना चाहिए।	रूहो बासण, पारी, तावणी

आई चकि अवतरियो आय, जावू दीप भरथ पड माहि।
बागट देस विराजे दई, समरायळि परगटियो सही ॥ ८९ ॥

१–सुख करता जुग जाहि अनत, तोऊ सुषा न आवै अंत।
से सुख तो सोई जन लहै, जुग जीवत अतग होय रहै ॥ ३७१ ॥

(१०) ऊंठ वळद वांध्या	दुसमंण, चोर वांध्या, ऊंट वळद के दांव दियो
क्यों कारो	'हुंकारो' तथा 'जीकार' कहना चाहिए ।

सम्प्रदाय में मान्य दसावतार में अन्तिम-कल्कि के 'कालिंग' से युद्ध तथा वसुधा के साथ विवाह का वर्णन प्रायः सभी विष्णोई कवियों ने किसी न किसी रूप में किया है। यहां केसोजी ने इस प्रसंग को अत्यन्त विस्तार से कहा है। इसमें पृथ्वी के तथा स्वर्ग-सुख-वर्णन में अप्सराओं के रूप शृंगार-वर्णन का अवसर भी कवि ने विशेष रूप से निकाल लिया है।

पैगम्बर मुहम्मद साहब का प्रशंसासूचक और उनके अनुयायियों की करनी का एक विशेष प्रसंग में सविस्तर वर्णन पहली वार इसी रचना में मिलता है। विष्णोई सम्प्रदाय की धार्मिक-सहिष्णुता का यह ज्वलन्त प्रमाण है। इसकी एक बहुत बड़ी विशेपता यह है कि इससे समग्रता में विष्णोई सम्प्रदाय की आधारभूत मान्यताओं का संक्षेप में स्पष्ट परिचय मिल जाता है। 'कथा' में यत्र-तत्र सवदवाणी तथा अन्य रचनाओं का उल्लेख-संकेत किया गया है। इससे कथन-विशेप की प्रामाणिकता तथा संकेतित प्रमाण की महत्ता सिद्ध होती है।

(१७) कथा लोहापांगळ की[१] : १८१ दोहे-चौपइयों की यह कृति-हंसो, सोरठ और ललित राग में गेय है, बीच में दो स्थल "रास की ढाळ" के भी हैं। इसकी रचना संवत् १७३० के जेठ सुदि ५, शनिवार को हुई थी[२]। इसमें नाथ योगी लोहापांगल के अन्य आयसों सहित विष्णोई सम्प्रदाय में आने की कथा है।

गोदावरी के तट पर अनेक नाथ-योगी एकत्र हुए। वहां जाम्भोजी को परास्त करने के लिए बीड़ा घुमाया गया जिसको लोहापांगल ने लिया और अपने ५०० शिष्यों के साथ अनेक प्रकार के आडम्बर करते हुए बीकानेर के हिमटसर गांव में १४० "धूइयां-धुका" कर डेरा डाला। वहां के सोढ़ों की माता लाछमदे ने यह खबर जाम्भोजी को दी। उन्होंने अपने भक्तों से आयसों को भोजन-पानी देने को कहा। विष्णोइयों के बुलाने पर, डर के कारण उन्होंने भोजन के लिए अलग-अलग न जाकर एक साथ ही जाना चाहा। जाम्भोजी ने "सावन-भादों" नामक दो कड़ाहों में भोजन बनवा कर सबको एक साथ ही भरपेट खिलाया।

अपने डेरों के सामने से एक रूपवती विष्णोइन को जाते देखकर सब जोगी मोहित हो गए। स्त्री उनके दर्शनार्थ उधर चली तो लोहापांगल ने कहा-माई! यहां मत आओ, हम जती पुरुप हैं। उसने उनके पाखण्ड की निंदा की और फटकारते हुए कहा—"माई" विना तो संसार ही नहीं हो सकता।

लोहापांगल मौन धारण कर बैठ गया। जाम्भोजी ने उसको अपने पास बुलाने के लिए केल्हण को भेजा। "आदेस" करने पर भी वह नहीं बोला, तो केल्हण ने यह कहते

१-प्रति संख्या ७, ७१, २०१, (फोनियो २१३-२१८), ३३०।
२-सतरासै तीसौ समूं, जेठ सुदि पांचवि थावर जांण।
गुर मुषि ग्यांन सुणाइयौ, विधि सूं केसै कह्या वषांण ॥ १८१ ॥

हुए कि या तो इसके मन में अहङ्कार है अथवा सुनता नही, उसके कान पकड़ लिए। क्रुद्ध होकर वह बोला-जोगी तो हम हैं, तुम लोग तो नारी के दास हो। उसके स्त्री की निंदा करने पर केल्हण ने समुचित उत्तर दिया, जिससे उसको समझ आई।

उसको प्रतिबोध कराने के लिए जाम्भोजी "साथरियों" सहित चले और उनके भय-निवारणार्थ अकेले ही सामने आकर "आदेश" किया। उन्होंने तो मौन साध लिया किन्तु "धु इयों" और अग्नि से 'आदेश-आदेश' प्रत्युत्तर आने लगा। यह सुनकर आयस उनकी शरण म आ गए। जाम्भोजी की आज्ञा से सूर्य अति प्रचण्ड होकर तपने लगा। लोह दहकने से कलाप करता हुआ लोहापागल छाया म आया, जड़ी-बूटी की ओर अन्त में धरती पर लेट कर शरीर पर धूल डालने लगा। न तो लोह गिरा और न ही उसका दहकना बन्द हुआ। उसके कुछ चेलो को छोड़ कर सब भाग गए। अब वह जाम्भोजी की शरण में आया। उनके सिर पर हाथ रखने से लोह झड़ गया। प्रभात में आने की आज्ञा देकर जाम्भोजी चले आए।

सुबह होते ही आयस लोहापांगल के साथ जाम्भोजी की शरण म आए और 'पाहळ' लेकर विश्णोई हो गए। पगु होने और लोह जड़ने के कारण लोहापागळ नाम पड़ा था, जिसको बदल कर जाम्भोजी ने 'रूपो' रखा। "लोह" से "रूपो" बनाया और उपदेश देकर साधु-सेवा करने की आज्ञा दी। वह 'कावड' मे पानी ढोकर सेवा करने लगा।

एक दिन कुछ विश्णोइयो ने चमत्कार दिखाने के लिए उसको बहुत उत्तेजित किया। उसने मन्त्र-शक्ति से भैरव और भूत चलाए और आग से उनके वस्त्र जला दिए। विश्णोइयो ने इसकी शिकायत जाम्भोजी से की। जाम्भोजी ने रूपो का पक्ष लेते हुए उसकी चमत्कार शक्ति खींच ली तथा खीदासर गाव का भडार और 'थाट' सौंपा। 'गुरुवाट' पर चलने से उसको मोक्ष प्राप्ति हुई।

इस रचना का कई कारणो से बहुत महत्त्व है।

काव्य-रूप की दृष्टि से उल्लेखनीय बात यह है कि कथा के बीच-बीच में टेक वाले पाँच गेय पद भी हैं। टेक के अन्तर्गत आने वाला छद दोहा है। टेक की पक्तियाँ ये हैं -

(क) रूप घणा जण मोहिया (८ छन्द, ५६-६६)।
(ख) तैं माई कदि परहरी (४ छद, ६७-७०)।
(ग) मोनी मुखि बोलै नही (१० छद, ७२-८१)।
(घ) मोनी मुखि बोल्यो सही (८ छद, ८२-८९)।
(ङ) सुधि मन होय जप विसन (२१ छद, १६२-१८२)।

समस्त रचना मे ये स्थल अत्यन्त भावपूर्ण और चित्ताकर्षक हैं। इनमे आए सवाद और वर्णन भी उत्कृष्ट रूप मे हैं। विशेषता यह है कि टेक की पक्ति से ही उस पद के वर्ण्य विषय का अनुमान हो जाता है। पदों मे रचना का मुख्य और मूल कथ्य भी सन्निहित है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से नाथ जोगियो का नारी के प्रति उपेक्षा भाव था किन्तु मानवीय

दुर्बलता-वश वे उसकी कामना भी करते थे। इससे उनकी अधूरी और कच्ची साधना तथा उसकी दुरूहता का भान भी होता है। समाज के व्यापक सन्दर्भ में ऐसी भावना व्यावहारिक रूप में कैसे और कितनी ग्राह्य हो सकती है, इसका संकेत भी कवि ने दिया है। इसके सम्यक् निदर्शन स्वरूप कवि ने रूपवती विष्णोइन[1] और केल्हण के प्रसंग की उद्भावनाएँ की हैं। इस सम्बन्ध में पहले प्रसंग से कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य हैं[2]। अन्तिम पद (ङ) में, जाम्भोजी की प्रमुख शिक्षाओं का सार समाहित है।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार के नाथ-सिद्ध, उनकी साधना-प्रणाली, कार्य-कलाप, तंत्र-मंत्र, वेश-भूषा आदि का बड़ा प्रामाणिक और भव्य-चित्रण केसोजी ने किया है। उनके प्रति जन-साधारण के मन में भय की भावना थी, लछमादे[3] तथा केल्हण[4] के कथनों से इसकी पुष्टि होती है। एतद्विषयक चर्चा अन्यत्र विशेष रूप से भी की गई है।

इसके संवाद संक्षिप्त, प्रसंगोचित और कथा को प्रवाह देने वाले हैं। भाषा में एक निखार और सहज- गतिशीलता है। अन्य ऐसी कथाओं की तुलना में यह तथा सैंसे जोखाणी की कथा दोनों अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ कृतियाँ है।

(१८) **पहळाद चिरत**[5] : यह राग मारू, धनाश्री, केदारो और सोरठ में गेय ५९६

१–कांनि कुंडळ झळका करै, पगवाल्य उरि सोहै सूलि।
रूप विकांणी रै आयसो, रूप तंणै रंगि रहिया भूलि ॥ ६२ ॥
आयस यों मंन परघल्यो, ज्यों कागळ जळ आगळि जाय।
अै नारी हंम कूं दीयो, आइसियै गुर पूछ्यो आय ॥ ६३ ॥
लोहापांगळ यों कहै, भुला वीर न जांणो भेव।
अै नारी तंम कू सहु, जोगी का वित जोगी लेह ॥ ६४ ॥–पद 'क' से।
२–गळि पहरी माई मेखळी, करि झोळी, सो माई होय।
तिणि जायो माई तका, जिणि पिलायो माई सोय ॥ ६७ ॥
जिणि नुहावियो माई जोय, तो तंन तो माई सही।
माय विनां संसार न होय, धर माई जिणि उपरै ॥ ६८ ॥
धंण अहेरण विच ठाहरै, परपि पड़ै कंचंण अर काचि ॥
जाव न आवै जोगियां, नफरि झांझांणी बोलै साचि ॥ ६९ ॥
अकलि विहुंणा भूलि रह्या, आयस तंणी न लागी काय।
जोति करि चाली सही, सतगुर तंणै जाय लागी पाय ॥ ७० ॥–पद 'ख' से।
३–वोहळा जुड़िया देवजी वुबनां, थां दुप देस्यैं देव।
अजूं वंणो छै आंतरो, पेट करंण री टेव ॥ २३ ॥
अरज करै आतर थकी, वळि वळि लगै पाय।
हुकंम दियो हरि हेकला, भांवणियो गढि जाय ॥ २४ ॥
मुंणि लाछां सतगुर कहै, गुर का ए आचार।
करता रिप कोई नहीं, जां रिप तां करतार ॥ २५ ॥
४–कर जोड़ै केल्हण कहै, धरणीधर मोहै वंधै न धीर।
मो पै मंत्र को नही, वोह वेताळ जगावै वीर ॥ ७२ ॥
५–प्रति संख्या २६, ३६, ४४, ६६, ६८, ७५, ७६, ८१, ८७, १३७, १५२, १५३, २०१, २०४, २०६, २०८, २१३, २४३, ३७२, ३९६, ४०८।

छन्दो की रचना है, जिनमे दोहा- चोपई प्रधान हैं। शेष छन्दों मे नीसाणी, छप्पय, मोतीदाम और 'छन्द' हैं। विभिन्न प्रतियो मे छन्दो की घट-बढ लिपि-दोष के कारण है।

इसमे प्रह्लाद- उद्धार की सुप्रसिद्ध कथा का वर्णन है।

कवि मच्छ, कच्छ और वराह अवतार के कारण और कार्यों के पश्चात् मूल कथा प्रारम्भ करता है। भगवान विष्णु ने अपने दरवानो- जय विजय से युद्ध की इच्छा व्यक्त की जिसे उन्होंने सविनय अस्वीकार कर दिया। वैकुण्ठलोक मे रोके जाने पर सनकादिको ने उनको असुर होने का शाप दिया और कहा- सात जन्म तक हरि-सेवा करने अथवा तीन जन्म तक हरि से युद्ध करके वापस यहा आ सकोगे। उन्होने दूसरा विकल्प ही स्वीकार किया। पश्चातापवश सनकादिक भी उनके यहा प्रह्लाद रूप मे अवतरित हुए।

राजा जमघट शिकार में अनेक जीवों की हत्या करता था। इस पर सब मृगों ने प्रतिदिन एक मृग भेजने का वादा करके यह काम छुडवाया। 'परची' डालने पर सर्व प्रथम एक लगडे मृग की बारी आई। राह मे भस्मासुर की भस्म के बीच एक मृगी के साथ वह चार पहर रहा। जमघट ने मृग के बदले मृगी के मरने का सकल्प देख कर दोनो को ही छोड दिया। उस मृगी के गर्भ मे हिरण्यकशिपु आया और अठारह महीने तक दुख देता रहा। नदी पर चढे शिव-पार्वती कहीं जा रहे थे। मार्ग म बैठ कर मृगी जोर-जोर से 'हरि-हर' करने लगी। पार्वती ने हरिणी को सकट-मुक्त करने के लिए शिवजी को विवश किया। उनसे अनेक वरदान लेकर हिरण्यकशिपु बाहर आया। वह मुल्तान मे राज करने लगा। इन्द्र की अप्सरा उमा के साथ उसका विवाह हुआ। उसने कठोर तपस्या करके ब्रह्माजी से भी अमरता का वर प्राप्त किया। उसके तपस्याकाल मे इन्द्र ने असुरों को नष्ट-भ्रष्ट किया और गर्भवती उमा को भी वह ले चला। नारद ने उसको छुडा कर गर्भस्थ प्रह्लाद को हरि-उपदेश दिया।

हिरण्यकशिपु के डर से नारायण का नाम मिट गया। प्रह्लाद जन्म से ही हरिभक्त था। पाठशाला मे उसको असुर विद्या सिखाने के सब प्रयास तो विफल हो ही गए, अन्य विद्यार्थी भी उसका कहा मानने लगे। इससे चिंतित, शकित होकर हिरण्यकशिपु ने उसको मरवाने के अनेक उपाय किए जो असफल रहे। उसको लेकर आग मे बैठने पर फागुन की पूर्णमासी के दिन होलिका ही जल गई। दूसरे दिन उसने लोगों को उपदेश और 'पाहळ' दिया। ६६ करोड लोगो मे से, इस प्रकार ३३ करोड 'विष्णोई' हुए और 'प्रह्लाद-पथ' चला। अन्त मे हिरण्यकशिपु ने उसके पाँच करोड सेवकों को मार कर उसको मारना चाहा। तभी खम्भ मे से नृसिह भगवान प्रकट हुए और शिव और ब्रह्मा के वर की रक्षा करते हुए दैत्य को मार दिया। प्रह्लाद की प्रार्थना पर भगवान ने चारो युगों मे इन ३३ कोटि लोगों के उद्धार का वचन दिया जिनमे पाँच कोटि तो उसके समय मे ही मुक्त होगए। त्रेता में हरिश्चन्द्र और द्वापर मे युधिष्ठिर के साथ क्रमश सात और नौ कोटि जीवो का उद्धार हुआ। अन्त मे शेष १२ कोटि के उद्धारार्थ स्वय विष्णु जाम्भोजी के रूप मे आए। भविष्य मे साधुओ की रक्षार्थ "निकळकी" के रूप मे प्रभु आकर कलियुग का अन्त करेंगे।

केसौजी के पौराणिक आख्यान-काव्यों मे सर्वाधिक प्रसिद्धि 'पह्ळाद चिरत' की है।

यह एक श्रेष्ठ आख्यान-काव्य है। इसमें वर्णन और संवाद प्रधान हैं। ये छोटे-छोटे, सजीव और हृदयग्राही हैं। इसके प्रायः सभी पात्र, चाहे वे अलौकिक शक्ति-सम्पन्न हों अथवा मानवेतर पशु, सहज मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं। परिस्थिति-विशेष में जन-साधारण सामान्यतः जो कार्य करता या करने का विचार-उपाय करता है, वही इसके पात्र भी करते है। इस कारण संवाद और इनसे संबंधित वर्णन अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं तथा उनका प्रभाव व्यापक है। इस सम्बन्ध में उदाहरण स्वरूप कतिपय प्रसंग द्रष्टव्य हैं।

गर्भवती हरिणी को देखकर पार्वती इस नारी सुलभ दुख की समवेदना में शिवजी से कष्ट-मुक्ति की प्रार्थना करती है। शिवजी के बात टालने पर वह उनको अत्यन्त तीखे और मर्मभेदी वचन कहती है, जिनको सुन कर वे कार्य करने को विवश हो जाते हैं। जीवन और मृत्यु के झूले में झूलते हुए निरीह प्राणी के कष्ट का अनुभव करके यथाशक्ति सहायता करना मानवीय गुण है, जिसका भाव-भरा निदर्शन इस स्थल पर कराया गया है[1]।

मानवेतर प्राणियों में लंगड़े हरिण के प्रति हरिणी का प्रेम एक आदर्श और श्रोता-पाठक की एतद्-विषयक भावना को दिशा-निर्देश करता है। हरिणी हरिण को पति मान कर किसी भी हालत में उसको मरने देना नहीं चाहती। राजा जमघट के सामने हरिण के अपने ही मरने की बारी के प्रमाण स्वरूप 'परचो' दिखाने पर, उसके बदले में हरिणी के मरने का प्रश्न समाप्त हो गया। अन्त में अपने प्रेम को प्रकट कर उसको कहना पड़ा कि यदि हरिण मारा गया, तो वह भी जीवित नहीं रहेगी। प्रेम की यह पराकाष्ठा देख कर राजा भी दयार्द्र होगया। एक मध्य-युगीन भारतीय नारी के एतद्विषयक परम्परागत आदर्श की पुष्टि कवि ने हृदयग्राही रूप में मूक पशुओं के माध्यम से करवाई है जो पाठक-श्रोता

१–ओदर आय इयक दुख दीनों, पूजि धंणी दुप पायो।
गवरी साथि गउ सुत चढियो, आप महादेव आयो॥ ९४॥
जिणि मारग ईसरजी आवै, तिणि मारग जाय बैठी।
हरि हर करै पुकारै हिरणी, गवरां गह करि दीठी॥ ९५॥
पारवती पूछै प्रीतंम नै, सांभळि वचन विसेको;
कसटी तया तया क्यूं चालै, तया तया गति एको॥ ९६॥
सांभळ वचन कहै सिव संकर, अरज सुंणी इक असी।
करम कसट लिपिया जे कांमंणि, भवभवी से भोगविसी॥ ९७॥
सिव का वचन सगति सांभळिया, योनि कहै आवांणी।
बाळ वचन कहै सुप हुंता, रविणि कहै रीसांणी॥ ९८॥
कुंडळ कांन जटा सिर जोगी, काया निगन निरधारो।
लोकी लाज मरै जां वातां, से सझिया सिणगारो॥ ९९॥
भसमी गात रहै रणवासौ, व्रपभ चड्यौ ले भीपो :
जामूं गुझ किसौ घर वासो, सुणै न मांनै सीपो॥ १००॥
गह करि नारि नहोरो कीयो, हरि करि जिभ्या हारी।
ना अवता तूं पुरप हमारो, ना हूं नारि तुहारी॥ १०१॥
सगति वचन सिवजी सांभळिया, तक न चाल्यौ तांणी।
हिरणाकस हिरणीकसी, मूरप मंड्यौ मांणी॥ १०२॥

को घनायाम ही प्रभावित करती है। सम्बन्धित प्रसग से कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं[1]।

दोनो प्रसगों मे छोटे-छोटे सवादो की छटा भी द्रष्टव्य है।

कवि ने उमा के विवाह के समय उसके नख-शिख तथा अन्य स्त्रियों के भी रूप और शृगार का सुदर वर्णन किया है[2]। इसके उपमान परम्परागत होते हुए भी मरुप्रदेश के

१–च्यारि पहर मिल चागर कीवो, इणि विधि तन मन माडै।
मिरघो उठि चाल्यौ मरणं नैं, मिरघी मोह न छाडै।। ७४।।
परदेसी सू प्रीति लगावै, इण विधि काल्हो रीझै।
मिरघो कहै सुणो मिरघाणी, मो सों मोह न कीजै।। ७५।।
हिरणी कहै सुणो हिरणा जी, साभळि वचन विचारो।
हू चौरस थेरो छू थाहरी तू म्हारो भरतारो।। ७६।।
जमघट तणी रसोई जायस्यां, ऊगते आदीतो।
च्यारि पहर कै काजै मिरघी, कहा करो परतीतो।। ७७।।
तो जोया जीऊ जुग मडळ, मुध न छाडै माणी।
एक पलक हू प्रीत न दाखौं, पिव सग तजौं पिराणी।। ७८।।
दोन्यो जीव जुल्या करि नहचो, नहचै मुकतो होई।
रवि ऊगतै जाय पहुता, जमघट तणी रसोई।। ७९।।
पडिहारै कै पानै पडिया, समहै तेग समाहो।
हिरणै सू हिरणी घसि आगै, मुकतै नाडि नवाहो।। ८२।।
समहि पाग आण्यौ उरि उपर, हिरणा करै हकारो।
मेरी वारी मोह विणासो, अवला मूळ न मारो।। ८३।।
राजा पासि गयो पडिहारो, दुवो दया करि दीजै।
मारू एक मरै छै दोन्यो हुकम करो सो कीजै।। ८४।।
राजा हुकम कियो मिरघा नैं, हित करि लिया हकारी।
महिपति कहै मरो वयू दोयौं, कहो कुणां की वारी।। ८५।।
मिरघे मिल करि पानू दीन्हो, दई वणायो दावो।
मोह कै काज मरै छै मिरघी, नरपति करो नियावो।। ८६।।
हिरणी हित वाटै हिरणां सू, लोचि लियो म लागे।
राजा जी पूछै पडिहारा, मिरघी मूळि न मारो।। ८७।।
मिरघी कहै सुणो राजाजी, ध्यान असो पर धरस्यौं।
मैं र वनि कहू एक साचो, मिरघ मूवा हू मरिस्यौं।। ८८।।
राजा देपि दया दिल आणी वाम्फ सिकारो मारो।
राजा नहचो कियो मन मा, मिरघा मूळ न मारो।। ८९।।
राजा लिपि कर कागद दीनू, सही विसोवा वीसो।
वन मा घास चरौ जळ पीवौ, द्यो राजा आसीसो।। ९०।।

२ उमा वर्णन —
विचारि विधि सू साभळो नैं रूप सरस साय।
वीज वादळ भिळमिलै, नैं एम पायल पाय।। १३३।।
विछिया मल वाजणा, झांगळी झधकार।
सुरलोक सुर नर सभळै, झणहणें झणकार।। १३४।।
पाय नप चप एम सोहैं, जघ कदली जाण।
कामणि कडि लाक चीता, वेणी विसहर डाण।। १३५।।
चावन चदण करै मजण, कांमणी कियलासि। (शेषांश आगे देखें)

लोकजीवन में रमे हुए हैं, उनसे एक विशिष्ट प्रकार का सौन्दर्य-बोध होता है। इस अवसर पर वैवाहिक उल्लास और रीति-रिवाजों का भी उल्लेख किया गया है।

प्रह्लाद की मृत्यु की आशंका से उमा मातृ-प्रेम वश विह्वल हो जाती है किन्तु उसके पुनः मिलने पर उसकी प्रसन्नता का वारापार नहीं रहता[1] । दो स्थलों पर उसका वात्सल्य-प्रेम उमड़ता दिखाई पड़ता है। होलिका-दहन के समय तो केवल वही नहीं सभी हरि-भक्त दुखी और प्रह्लाद के वापस आने पर सभी प्रसन्न होते हैं। कवि ने दोनों दशाओं का सुन्दर वर्णन किया है[2] ।

चोवा त चोपा पहरि परमळ, अंग इधक सुवासि ॥ १३७ ॥
साड़ी त सोहै मुंध मोहै, अवर ओढण चीर।
कांमणी तन किनक वरणी, हीय सोहै हीर ॥ १३८ ॥
केल करसळ जेम काया, घाट सुघट घड़ाव।
कांच वकस लाल झळकै, जड़्या हीर जड़ाव ॥ १३९ ॥
गंग जळ सी भुंवड़ी, नै नाभ निरमळ नार।
कांमणी कुच असा सोहैं, ताल उर उणहारि ॥ १४० ॥

१-प्रह्लाद को कूएँ में बन्द करने पर :—

पुत्र पियारो माय नै, झूरि उठि करि झाड़ि।
जठा ज वाहरि जोवती, तठा उठि धसि धाड़ि ॥ ३६२ ॥
॥ धवल ॥ उमां मंन अंणराय, काया करवत ज्यूं वहै।
जांणै जाति न होय, पर दुप परमेसर लहै ॥ ३६३ ॥
पर दुप परमेसर लहै, नै पूत प्रीतम नेह।
भृंग चोर चकोर चात्रग, यां वसै मन मेह ॥ ३६४ ॥
पूत दुप अवेसास अंसो, हेत करि धड़कै हियो।
ऊभी झूरै मंझि मारग, अंणराय मंन उमां कियो ॥ ३६५ ॥
उमां मन आणंद, पहळादो माता मिल्यो।
वाड़ी विगस्यो फूल, पुसी हुई मन यों खिल्यो ॥ ३६६ ॥
पुसी हुई मंन यों पिल्यो, नै सीतळ हुवो सरीर।
भूपां नै भोजन मिल्यो, तिरप तिसायां नीर ॥ ३६७ ॥
सरद रुति और सोम सीतळ, चहचह्यो जिम चंद।
पहळादो माता मिल्यो, उमां उरि आणंद ॥ ३६८ ॥

२-॥ धवळ ॥ उमां मंन अंणराय, देपि न दीन्हों दांनटो।
पूत कहां पहळाद, निजरि न आवै नांन्हड़ो ॥ ४६७ ॥
निजरि न आवै नान्हड़ो, नै पेलतो दरवारि।
पूत नै ग्रह गोद लेंती, ऊजळी उणहारि ॥ ४६८ ॥
कै दियो हुलरांवंणो, कै लियो उर लाय।
आंगणै घरि आव वाळा, माय करै अंणराय ॥
देपि न दीन्हों दांनटो ॥ ४६९ ॥
। दोहा ॥ रैंण पड़ी आयो नहीं, वीछटि कियो विजोग।
असरां उरि आणंद हुवो, साधां रै मन सोग ॥ ४७० ॥
झूरै झाकै चोह दिसा, उर मां इधक अधीर।
सुत पायो सांसों कियो, नैंणे मुकै नीर ॥ ४७१ ॥
नर नारी पसु पंपियां, सह साधु सुर सेस।
सोग हुवो संसार मां, अतरा करै अंनेस ॥ ४७२ ॥ (शेषांश आगे देखें)

—९ हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद के पाँच करोड़ अनुयायियों के मारे जाने का वर्णन इसकी मृत्यु की पृष्ठभूमि तैयार करता है। यह कवि की काव्योचित अवतारणा है।

हिरण्यकशिपु के जन्म की कथा केसोजी की अपनी उद्‌भावना है। सम्भवत नाम-साम्य के कारण उन्होने हरिण-हरिणी प्रसंग की कल्पना की है।

समस्त कथा जनसाधारण की बोलचाल की भाषा मे बड़े रोचक ढग से कही गई है। केसोजी ने पौराणिक कथा के कगारों में, मानवीय-भावनाओं की अन्त सलिला का जीवन-दान देकर लोकप्रचलित उक्तियों और घरेलू शब्दों के फबते हुए प्रयोग मे जन-मानस का रजन और परिष्कार किया है, उसको भगवद्-आस्था और नैतिकता का सम्बल दिया है।

इसमे व्यापक परिधि म मानव-जीवन के चित्रण का प्रयास है। गुरु शुक्राचार्य का प्रह्लाद को राजनीति समझाना, राजा के लौकिक जीवन का प्रमुख पहलू है, प्रह्लाद का इसको त्याग कर जीव के परम कल्याण की बात कहना जीवन का उद्देश्य है। दोनों के सवाद मे जीवन के लौकिक और पारलौकिक दृष्टिकोण को बड़ी सच्चाई से प्रस्तुत किया गया है।

केसोजी ने इसमे बिश्नोई-सम्प्रदाय-प्रवर्तन की आधारभूमि और मान्यता को सुन्दर ढग से सक्षेप मे सामने रखा है। होली के दूसरे दिन सुबह बिश्नोई-समाज म 'प्रह्लाद-बाचने' की प्रथा है, जो केसोजी की इस रचना से ही आरम्भ हुई थी। आगे चल कर जो अन्य 'प्रह्लाद-चरित' लिखे गए उनकी मूल प्रेरणा केसोजी के इस आख्यान से मिली।

(१९) कथा भींव दुसासणी (प्रति सख्या २०१, फोलियो ३४५-३४७) यह ६६ दोहे चौपइयो की रचना है जो राग 'हसो, मारू' और 'मलार' मे गेय है। इसमे द्रौपदी के अपमान करने पर भीम द्वारा दुःशासन के मारे जाने की कथा है।

कौरव और पाण्डव हस्तिनापुर मे रहते थे। युधिष्ठिर अपनी समस्त सम्पत्ति जुए में हार कर भाइयों सहित वन मे चले गए। द्रौपदी के स्वयवर मे अन्य राजाओ के साथ वे भी पहुचे।

आज कवर आयो नही, अतगि भागी आस।
सह साधु सामै पड्या, नारी लियो निसास ॥ ४७३ ॥
भगत कहै मार्‌यो भगत, साध न राख्यो स्याम।
कुण ल्यैसी करतारजी, नारायण को नाव ॥ ४७५ ॥
घणा नामी म्हेल्हो घरै, कर पकड्यो करतार।
साध विना सासो कियो, साम्य कह्यो ससारि ॥ ४७६ ॥
सिरजणहारा साध का, सदा सवारै काज।
अतरजामी आणियो, परभाते पट्टराज ॥ ४७९ ॥

छद मोतीदाम ॥

आयो पह्ळाद अवाज असी, जळ पीया जाय पियास जिसी ॥
घद भोजन लाधा भूप घटी, मिलिया अमला बायट मिटी ॥ ४८० ॥
माय धाय सहु सह साध मिल्या, ढूका जिम पासा जेम ढुल्या ॥
चरचा भुप चौक पुराय चवं, हरखे जिम भेळा लोक हुवं ॥ ४८१ ॥
उर माहि आणद उमेद उछाह, मिलि मगळचार मड्या महोछाह।
सुरताल आवाज सरोज सुणी, घण मा दळ घोर हुई ज घणी ॥ ४८२ ॥

कूएँ पर नहाती हुई द्रौपदी के हार को श्रीकृष्ण ने उठा लिया। उसने अपनी माँ से वही हार पहनने का हठ किया। कड़ाहे के तेल में देख कर हार वेध देने की शर्त थी। श्रीकृष्ण ने वाण छोड़ कर कर्ण और दुःशासन को उसमें उलझा लिया। तभी अर्जुन ने वाण से हार वेध दिया जो नीचे भीम के हाथों में गिरा। अर्जुन के वरमाला डाली गई। कौरवों ने अपार सम्पत्ति के बदले द्रौपदी को मांगा। भीम ने कहा—विवाहित स्त्रियां ऐसे नहीं मिलतीं प्रतौलि-द्वार पर ही मुण्ड दिखाई देंगे। दुःशासन ने द्रौपदी का हाथ पकड़ा जिस पर भीम ने लात मार कर उसको धरती पर पछाड़ दिया। पाण्डव हस्तिनापुर आगए।

नकुल ने द्रौपदी पर व्यंग्य किया किन्तु कुन्ती ने डांटते हुए कहा—अवगुण किसमें नही ? तुम में भी[1] हैं। द्रौपदी ने अपने अपमान के बदले भीम से दुःशासन को मरवाने के लिए कुन्ती को विवश किया। फलस्वरूप भीम ने उसको पटका, गले पर पैर रख दिया और बोला—दोनों दलों में कोई भी इसको छुड़वाए। अर्जुन इस हेतु उठा पर कृष्ण के कहने से बैठ गया। उसके मरने पर द्रौपदी ने 'सिर गुंथवाया'।

छोटे-छोटे संवादों और वर्णनों से युक्त इस लघुकथा में दो स्थल विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—(क) नकुल का द्रौपदी को ताना और कुन्ती का चुप करवाना तथा (ख) दुःशासन को मारने के लिए द्रौपदी का कुन्ती से कथन[2] जिसमें उसका आक्रोश, दृढ़ता और प्रतिशोध-भावना अत्यन्त तीखे रूप में मुखरित हुई है। 'कथा वहसोवनी' की भांति शकुनों का उल्लेख इसमें भी है। दुःशासन को युद्ध में जाते समय बुरे शकुन होते हैं[3]।

(२०) कथा सुरगारोहणी[4] : राग 'हंसो' में गेय यह २१७ छन्दों (२१६ दोहे-चौपई और अन्त में १ डिंगल गीत) की रचना है। इसमें पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा है, जिसका सार इस प्रकार है :—

१-आह तो चाळा करिसी हंमां, पांणी जांती हार गुंम्यां ॥ ४४ ॥
जो इण मां हुंता लपंण बतीस, पूंणी बैसि न न्हायो सीस।
रोह रे निकळा न बोलि वंणी, एक एक ओगंग छ सोहै कंणी ॥ ४५ ॥
जा दिन करवां सूं पेली आळि, बोहळा ठोल्हा सह्या कपालि।
रोह रोह निकळा कुवंण न भंणि, जाय वसे कुवपरी तंणी ॥ ४६ ॥

२-गंधारी री वहू कहांय, लाज मरै कुंतादे माय।
इणि दळ थारै असो न कोय, मारंण घाव नै आटो होय ॥ ४७ ॥
सीस न गुंथांऊं मंनि अणराय, दळि करवां रै वैसूं जाय।
भींव कुंवर दुसासंण मारि, क छुरी कटारी ले छै नारि ॥ ४८ ॥
छुरी कटारी ले करि मरूं, दुसासंण घरि पांणी भरूं।
जाय वैसूं दुसासंण पासि, नीर छळूं चेड़ी होय दासि ॥ ४९ ॥
रोह रोह वहू न बोलै वैण, मांगी दे आजो की रैण।
काठ सहेड़ जुंहर करूं, वींह मारूं का हूं मरूं ॥ ५० ॥

३-रावतियो रथि पग दे चढ़ै, वांवै पपि पर आरड़ै ॥ ५७ ॥
दोय अवळा हुई मथवाळि, नागी हुई वसतर राळि।
दिस दांहंणी नीसर्‌यो भुवंग, किसंन काग बोलियो कुरंग ॥ ५८ ॥
रथ मारियो गिजा रो घाव, भड़ दुसासंण टिकियो पाव ॥ ५९ ॥

४-प्रति संख्या ६६; २०१; २०७।

धर्मराज युधिष्ठिर रात्रि मे सोए हुए थे । कलियुग ने एक स्त्री के रूप मे आकर राजा से कहा—अब तुम्हारी आन मिट गई है, कलियुग आगया है, इसलिए यह देश छोड़कर दूर हो जाओ[1] । दूसरी रात भी वही हुआ । तीसरी रात वह बोली- या तो मेरा कहा करो अन्यथा कोई दूसरा उपाय करूगी[2] ।

सुबह दरबार मे भाइयो के पूछने पर राजा ने अपनी उदासी का कारण बताया । इस पर चारो भाइयो ने रात्रि के एक-एक प्रहर मे पहरा दिया किन्तु कलियुग के सामने किसी की भी न चली, उलटे सबको उससे अपने प्राणो की भीख मागनी पड़ी । जब राजा के धर्म-खड्ग का भी उस पर कोई असर नही हुआ तो उन्होंने देश छुड़ाने का कारण और यहा रहने की विधि पूछी । उसने कहा—धर्म और पाप एक साथ नही रह सकते । तुम धर्म त्याग कर यदि पाप कर्म करो तो रह सकते हो, अन्यथा देश छोड़ो । राजा ने दूसरा विकल्प ही स्वीकार किया ।

वे भगवान श्रीकृष्ण के यहा गए । उन्होंने बन्धु-हत्या का दोष बताते हुए कुरुक्षेत्र मे जाने, महादेव का दर्शन करने और हिमालय मे शरीर त्यागने को कहा । कुरुक्षेत्र म बारह वर्ष रहने पर भी ग्रहण का सयोग न मिलने से, सहदेव के अतिरिक्त वे सभी हिमालय की ओर जगल मे चल पड़े । तभी सूर्य-ग्रहण हुआ । सहदेव तो स्नान-साथ कर उनसे आ मिला किन्तु वे इससे वचित रहने से दुखी हुए । सहदेव से शिवजी के मिलने का स्थान पूछ कर सभी आगे चले । शिवजी भैसो के साथ भैसे बने हुए थे । केदार पर्वत की घाटी म भीम के पूछ पकड़ने पर वे छुड़ा कर भाग गए । शिवजी ने पाण्डव-आगमन की सूचना देने के लिए गणेशजी को शिखर पर बैठा दिया । उनके यहा पहुचने पर गणेशजी के सकेत से शिवजी अदृश्य होगए । उनको न पाकर भीम न गणेशजी का सिर काट दिया । सबके दुखी होने पर उन्होंने कहीं से हाथी का सिर लाकर लगाया और गणेशजी सजीवित हुए । गणेशजी ने शिव-मन्दिर को ही 'धोक देकर' वापस जाने को कहा, किन्तु वे आगे चले । भीम ने गदा से पर्वत तोड़ कर रास्ता बनाया । पहले पर्वत ने रास्ते के बदले द्रौपदी मागी किन्तु वे उस पर चढ गए । दूसरे पर्वत के दण्ड मांगने पर द्रौपदी को सौंप कर वे आगे चले । युधिष्ठिर को दुखी देख कर भीम पर्वत को परास्त कर द्रौपदी ले आया । तीसरे और चौथे पर्वत से भी इसी कारण भीम को युद्ध करना पड़ा । अब वे हिमालय पर आगए और ससार से मन हटा लिया । कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, सहदेव और नकुल क्रमश वहा गले । प्रत्येक के गलते समय राजा भीम को धैर्य बधाते गए किन्तु अन्त में उसके गलने पर वे स्वय अधीर और दुखाभि-भूत होगए । धर्मराज कुत्ते के रूप मे आए । राजा ने दुख का साथी समझ उसको गले से लगा लिया । भगवान के भेजे हुए विमान में वे कुत्ते के साथ ही स्वर्ग पहुचे । वहा कुन्ती, द्रौपदी और चारो भाइयो से उनका मिलन हुआ ।

१-सु हिणो एक विचारैं भूप, कळि आई कामणी के रूप ॥ १३ ॥
कळि बोली कियो मनि भाण, राजा मिटी तुहारी आण ॥ १४ ॥
कळि आई परवाणें पूरि, छोडो देस हुवो पे दूरि ॥ १५ ॥
२-दिन तीजै दीठो दरसाव, कह्यो करो का करूं उपाव ? ॥ १६ ॥

रचना में आए संवाद और वर्णन संक्षिप्त, प्रसंगानुकूल और प्रभावशाली हैं। इस सम्बन्ध में भीम और कलियुग का संवाद और युद्ध द्रष्टव्य है[1]। अपने पूर्व सम्पादित दुःसाध्य कार्यों के सन्दर्भ में एक नारी से हुई पराजय के कारण, चारों भाइयों की ग्लानि, लज्जा और असमर्थता–मिश्रित दशा का अत्यन्त स्वाभाविक और मनोरम वर्णन कवि ने किया है। रात्रि में कलियुग से हार जाने पर दरबार में जब इस सम्बन्ध में उनसे पूछा गया, तो उनकी दशा विचित्र हो गई[2]।

प्रत्येक ने स्पष्ट रूप से सलज्ज अपनी हार स्वीकार की[3]।

हिमालय में प्रत्येक के गलते समय करुण वातावरण घनीभूत हो जाता है, किन्तु कवि ने इसके विमोचन का प्रसंगानुकूल अवसर निकाला है। बिछुड़ने वाले के मोह से अभिभूत भीम को युधिष्ठिर प्रत्येक के दोष बताकर इसका परिहार करते हैं। उल्लेखनीय है कि

१–कळि आई पसरै ज्यों पूंण, भीव कहै कांमंणि तूं कूंण ॥ २४ ॥
नारि कहै मेरो कळिजुग नांव, गढ छाडो हथणापुरि गांव।
सादकी आवै जौं सीह, भीव गिजा ले उठ्यो अबीह ॥ २५ ॥
सुधि पापो पर घरि सांचरै, क्यों अबळा अण आई मरै।
कळि उठि मंनि कियो करोध, रिण संगरांम मंड्या रिण जोध ॥ २६ ॥
सोहड़ गिजा करि संमही, कहर कियो मंनि कोप।
कळि मारी क्यों करि मरै, आगळि हुवै अलोप ॥ २७ ॥
कळि तमंकी कियो मंनि तांण, भींव तंणा गहि मळिया मांण।
वरंणि पछाड्यो धरै न धीर, कांपण लागो सोहड़ सधीर ॥ २८ ॥
हरि सिवर्यो भींवड़ तदि हारि, इवकै कळि मेरो जीव उवारि ॥ २९ ॥
२–पोह विगसी उगो आदीत, स्याम वरंण मंनि हुवो सचीत।
दळ जुड़ियो मंडियो दरबार, राजाजी पूछै परवार ॥ ५८ ॥
मोनि करि रहिया सह वीर, दिल माहें सगळा दलगीर।
राजा संनमुषि न सकै जोय, उंची नजरि न करही कोय ॥ ५९ ॥
संनमुषी देषि रह्या सोह सैंण, जळ छलिया गहवरिया नैंण।
उचळ चिता मंने उदास, सरमांणां घातै सह सास ॥ ६० ॥
वरती पोतै धरंम विचारि, किसै पतीगे आई हारि।
भड़ सगळा दीसै भंणहंणा, मंन मांहे आमंण दूमंणा ॥ ६१ ॥
३–क–मार्यो कीचक गह्यो क वीर, वंधो वंधु छुडाया वीर।
परव अठारा जीता जंगी, मांण मल्या एकंणि कांमंणि ॥ ६४ ॥
हार्यै हीय न क्योंई होय, मो ता कारज सर्यो न कोय ॥ ६५ ॥ (भीम)।
ख–अरिजंन कहै सांभळो वंमेप, अरि सात लाप हूं हुंतो एक ॥ ६६ ॥
धरणीधर हुंतो मो धई, तीण वरावर तोल्या सही।
मो वळ भागो मुवयो मांण, आगळि तया न चाल्यो तांण ॥ ६७ ॥ (अर्जुन)।
ग–आंण्यो मंडप सोचि संभाळि, मार्यो दांणो पैसि पयाळि ॥ ६९ ॥
इण विध वोलै निकळ नरेस, इणि अवळा आगळि आदेस ॥ ७० ॥ (नकुल)।
घ–इण अवळा सूं सवळ न कोय, सहदेव पूछै जोयस जोय।
सहदेव कहै निरष नरेस, निरदळि नारि छुडावै नेस ॥ ७२ ॥ (सहदेव)।

भीम के गलने पर स्वय युधिष्ठिर सहज मानवीय वचन-वश फूट पड़ते हैं[1] । कलियुग के दुर्गुणों का नाटकीय ढग से उल्लेख करके कवि ने प्रच्छन्न रूप से उनको त्यागने का भाव ध्वनित किया है। विभिन्न प्रकार से इसका उल्लेख दो बार किया गया है-कथा के आरम्भ मे द्वापर युग के बीतते समय ब्रह्माजी द्वारा और युधिष्ठिर के पूछने पर स्वय कलियुग द्वारा। दूसरे प्रसग की अवतारणा तो कथा प्रवाह म स्वयमेव उपस्थित हो गई है, जिसको पढ-सुन कर पाठक-श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । कहना न होगा कि कलियुग द्वारा कथित ये बातें जितनी कवि के समय मे सत्य थी उतनी आज भी हैं[2] । रचना के अन्त में कवि ने इनके सार और मूल-कथ्य स्वरूप हरि-कथा सुनने और धर्म कर मोक्ष-प्राप्त करने का एक डिंगल गीत के दो द्वालो में भावभरा अनुरोध किया[3] है। केवल इस गीत की ही नही पूरी 'कथा' की भाषा सहज प्रवाहमयी और बोलचाल की है। कथा में नवीन प्रसगोद्भावनाएँ कवि की उल्लेखनीय विशेपता है।

१-क-इणि करन तणी न कही पिछाणि, कुंता करन मरायो जाणि ।। १५२ ।।
इणि माता रो सबळो हियो, दोह पूता बिच वेहरो कियो ।। १५३ ।।
(कुन्ती के विषय में) ।
ख-सील सती द्रोव ततनार, इण विधि साधु पुंहचे पारि ।। १६५ ।। (द्रोपदी को) ।
ग-हारि आई जदि अहमन हयो, तदि अरिजन इंदरासणि गयो ।। १७२ ।।
कद को प्रीतम अरिजन पान, अवडी वेळा न हुवो साथ ।। १७३ ।। (अर्जुन के लिए) ।
घ-मीत मुणो राजा कहै भेव, लाधो गहण न दीन्हो भेव ।। १७७ ।।
(सहदेव के लिए) ।
ङ-जुध मडियो वाज्या जदि सार, वारं पहर मझ्या सिणगार ।
विढि रिण नायो भाराथ, निवळो कदे न हुवो साथ ।। १८३ ।। (नकुल के लिए) ।
च-राव रुदन कियो घणो, अतरि इधक अघोर ।
तो विण दुष कैने कहूं, जामणि जाया वीर ।। १६१ ।।
२-कळि बोली विधि एह विचारि, साच किसौ मुसै मुजारि ।
धरम पाप न होई धडै, धरम सदा पापा नै हडै ।। ५० ।।
नर नेकी मत को करो, वदी विलुधा सोय ।
सील सुभाप्या साच सुचि, केळिजुग करो न कोय ।। ५२ ।।
छाडि किनक करि पकडो काच, बोलो मूठ परहरो साच ।
राजा कैमि न करियो न्याव, ल्योह अकोड करो अनिवाय ।। ५३ ।।
झूठा झगडा करो उपाय, दान दया मेटो मनि भाव ।
विपरा तणी दुहो थे गाय, राजा राज करो कळि माहि ।। ५४ ।।
रुडा करता कीजै राडि, बाहण भाणजियाँ लीजै भाडि ।
रापी थापणि धरमा धरो, तो राजा निहच निमतरो ।। ५५ ।।
कळि अपणा कहिया उपदेस, का आओ का छाडो देस ।। ५६ ।।
३-कथा हरि समळो पाप पासै टळो, पिराणिया पार गिराय वास पावो ।
कह्यो करता करो, धरणि अमी धरो, धरम करि जीवडा धणी ध्यावो ।
दास केसौ कहै, सुग्ग मा सुप लहै, हरप करि प्राणिया हेत कीजै ।
अरज केसौ करै, अति सो उधरै, अेम गुर गाइयै प्रीति कीजै ।। २१७ ।।

(२१) सोवंन कथा (कथा वहसोवंनी)[१] : यह ५५० छन्दों की रचना है[२] जो गवड़ी मारू, सोरठ और सिन्धु–चार रागों में गेय है। छन्दों में दोहा–चौपई ही प्रमुख हैं।

इसमें राजा पाण्डु के नरक–वास और उससे मुक्ति के निमित्त पाण्डवों द्वारा स्वर्णयज्ञ किए जाने की कथा है, जिसका सार यह है :—

हस्तिनापुर में राजा पाण्डु के यहां एक गर्भवती घोड़ी थी। कृष्ण द्वैपायन व्यास ने राजा को वताया कि इसके जो वछेरा होगा उस पर तुम कभी मत चढ़ना, चढो तो पूर्व दिशा की ओर मत जाना, जाओ तो काले हरिण को मत मारना, और मारो तो प्राण त्यागते समय उसके पास मत जाना, यदि जाओगे तो वहुत पछताना पड़ेगा और 'गति' नहीं होगी। घोड़ी के वछेरा हुआ जिसको भय से राजा ने गुफा में रखवाया।

करणमाल नामक एक ब्राह्मण रात्रि के समय अपने नगर जा रहा था। मार्ग में उसको "वेहमाता" मिली। पूछने पर उसने एक धोवी की लड़की से उसका विवाह होना वताया। उसने उस लड़की को अपने मां–वाप के लिए भोजन ले जाते देखा। जव वह नदी के किनारे नाव की रस्सियों के पास पहुंची तो करणमाल ने उसकी ओर कटार फेंकी और रस्सियों को नदी में वहा दिया। उनके सहारे वहती हुई घायल लड़की को नदी के किनारे पर खड़े एक ब्राह्मण ने निकाला और अपनी कन्या के समान पाला–पोषा।

इस पाप के कारण करणमाल परदेश में धर्म–ध्यान करने लगा। एक दिन उसकी भेंट इस ब्राह्मण से हुई। इसने उस लड़की का विवाह करणमाल से कर दिया। 'वेहमाता' के मिलने पर उसने उसके लेख अन्यथा कर दिखाने की वात कही, किन्तु अपनी पत्नी के घाव देख कर उसके वचन का निश्चय हो गया। हत्या–पाप के निवारणार्थ अपनी पत्नी को त्याग कर वह गंगा–तट पर घने वन में तप करने के लिए चला गया और समाधि लगा ली। उसके चारों ओर वनस्पति फैल गई। एक चिड़ा और चिड़ी उसके कान में घोंसला वना कर रहने लगे। एक दिन उन्होंने उड़ान भरी। वर्षा–तूफान के कारण चिड़ा तो वापस वहीं आ गया किन्तु तेज हवा के कारण चिड़ी को रात्रि किसी वृक्ष पर वितानी पड़ी। सुवह चिड़े ने उसके चरित्र पर सन्देह करके घोंसले में नहीं आने दिया। उसने कलियुग की स्त्रियों के पापों का वर्णन करते हुए सूर्य की सौगन्ध खाई और यह कहते हुए कि यदि मैंने कोई अवगुण किया हो तो करणमाल की भांति पाप में पड़ूं, घोंसले में आ वैठी। अपना नाम सुन कर करणमाल ने कान में अंगुली डाल कर उसको रोका और इस विषय में पूछा। वह वोली–मैंने तो लाखों जीवों को एक वहेलिए के प्रति ऐसा कहते हुए सुना है। पूर्व–पापों

१–प्रति संख्या ६६, १००, १५२, २०१, (फोलियो ३२६, ३४५)–उदाहरण प्रति २०१ से।

२–प्रति संख्या २०१ में कुल छन्दसंख्या ५५६ भूल से दी है। छन्द १६७ के वाद १७१ तथा ३२४ के वाद ३२६ की संख्या लगाने से ४ छन्द और ३२९ वें छन्द के पश्चात् १ कवित्त के ३ छन्द मानने से २ छन्द, कुल ६ छन्द अधिक लिखे गये हैं। कवित्त के अतिरिक्त शेष छन्द-संख्या दोहा–परिमाण में है। इनमें यत्र-तत्र २२ छन्दों की एक-एक पंक्ति त्रुटित है।

के बारे मे तो दुर्वासा ही बता सकते हैं।

पूछने पर दुर्वासा ने कहा—तेरी पत्नी तेरे वियोग मे मर कर एक हरिणी की योनि मे आई है। उसकी हत्या का दोष तेरे सिर पर है। तुम हरिण बन कर उसके साथ रहो तो इसका शमन हो जायगा। तपस्या के प्रभाव से काया नष्ट कर वह काला हरिण हुआ और उसके साथ रहने लगा। एक दिन दोनो हस्तिनापुर की ओर गए तथा वहा के जगल में वास करने लगे।

वह बछेरा अत्यन्त बलशाली और वायु–वेगवाला हुआ। राजा पाण्डु उस पर चढ कर पूर्व की ओर शिकार को चले। मार्ग म वे हरिण–हरिणी केलिक्रीडा कर रह थे। राजा ने हरिण पर तीर मारा। वह आहत होकर एक ऋषि के रूप म गिर पडा। हरिणी ब्राह्मणी के रूप म रोन लगी। राजा वहा गया। ब्राह्मणी ने शाप दिया–त्रिया–सभोग के कारण मर कर नरक मे पडोगे और धरती पर जब स्वर्णयज्ञ होगा तभी मुक्त होओगे।

राजा वैराग्य लेकर तपस्या के लिए वन म आ गया। इन्द्र, पवन और धमराज की कृपा से कुन्ती के क्रमश अर्जुन, भीम और युधिष्ठिर हुए। नारदजी आकर कुन्ती से सब वृत्तान्त पूछने लगे। तभी राजा को भोजन कराने के लिए शृगार करके माद्री गई। उसके साथ सभोग से राजा मर कर नरक मे पडे। वह गर्भवती हुई जिससे नकुल, सहदेव उत्पन्न हुए। नारदजी से नरक म पडे राजा ने प्रार्थना की कि वे पाण्डवों को स्वर्णयज्ञ करने को कहे। उन्होने पाण्डवों को इसके लिए प्रेरित किया जिसमे भीम ने सर्वाधिक उत्साह दिखाया। स्वर्णयज्ञ के लिए आवश्यक वस्तुओ की सूची ज्योतिषी सहदेव ने बताई। प्रत्येक भाई ने इसके निमित्त एक-एक प्रधान कार्य अपने जिम्मे लिया और पूरा न कर सकने की स्थिति मे मृत्यु का सकल्प किया।

सबसे पहले सहदेव कृष्ण को लान के लिए चला। उसको अनेक अपशकुन हुए। मार्ग म पाञ्चाल देश म जोगिनियाँ मिली। शनिवारी चौदस को भद्रा का दिन बतात हुए उन्होंने युद्ध करन अथवा उनका दिया पानी पीने को कहा। उसने बुद्धिबल से जोगिनियों को युद्ध में 'कुरप' बाण से नगा कर परास्त किया, उनकी सहायता से द्वारका म अपनी सामर्थ्य प्रदर्शित की और कृष्ण को प्रसन्न करके अपने साथ ले आया।

अब अर्जुन कृष्ण के साथ लका से सोना लान के लिए गया। मार्ग म पहाड से उतरती एक स्त्री से राह पूछी। आकाश-मार्ग से जाते हुए उनके रथ को हनुमानजी ने खीच लिया। उन्होंने न तो अर्जुन के अभिवादन का उत्तर दिया और न स्वागत ही किया। इस पर अर्जुन क्रुद्ध हुआ और दोनो म युद्ध होने लगा। नारदजी ने हनुमानजी को समझा कर इससे विरत किया। हनुमानजी उनके साथ ही चलने लगे। अर्जुन ने धनुर्धारी राम का पत्थरो से पुल बाँधना अनुचित बताया जिसका प्रतिवाद हनुमानजी ने किया। शर्त हुई कि यदि अर्जुन तीरों से पुल बाँध दे तो हनुमानजी बारह वर्ष तक उसकी सेवा करें और न बाँध सके तो वह जीवन त्याग दे। उसने पुल बाँध दिया। हनुमानजी के जाँच करने पर भी वह नही टूटा। श्रीकृष्ण दोनो को बराबर का वीर बताते हुए रथ को पुल पर लाए जिससे वह

पानी में बैठ गया। आकाश-मार्ग से वे लंका पहुँचे। विभीषण ने अपार स्वर्ण भगवान को सौंपा जिसे लेकर वे वापस आए।

पश्चात् भीम जरासंध का सिर लाने अकेला ही चला और उसके नगर की सीमा में गदा गाड़ कर सो गया। पता लगने पर जरासंध की सेना ने सोते हुए भीम को कूएँ में पटक दिया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन, सहदेव के साथ आकर उसको निकाला। अपनी गदा निकाल कर ब्राह्मण के वेश में वह जरासंध के नगर में पहुँचा। द्वार पर आए उसके तीन पुत्रों को मार कर उससे युद्ध करने लगा। अठारहवें दिन श्रीकृष्ण के संकेत से उसने जरासंध को चीर दिया और सिर काट कर ले आया।

नकुल मंडप लाने के लिए पाताल पहुँचा। वहां कणियासर दैत्य से युद्ध होने पर वह आहत हुआ किन्तु एक पद्मिनी के अमृत पान-कराने पर संजीवित हो गया। दैत्य को मार कर वह मंडप ले आया।

अन्त में युधिष्ठिर ने कामधेनु लाने का उपाय पूछा और गर्म तेल से भरे कड़ाहे में अपनी देह त्यागने का संकल्प किया। उन्होंने कौरवों को बुला लिया, द्विजों और गुरुओं को दान दिया। चारों भाई चारों दिशाओं में शेष राजाओं को लाने चले। युधिष्ठिर ने इस प्रकार देह त्यागी और प्रभु को प्रसन्न कर कामधेनु लाए।

श्रीकृष्ण ने फिर स्वयं मंडप बनाया। नवों खण्डों के राजा स्वर्गयज्ञ में एकत्र हुए। अनेक प्रकार से दान, धर्म और साधुओं को संतुष्ट किया गया। इस प्रकार राजा पाण्डु का उद्धार हुआ।

यह एक श्रेष्ठ आख्यान-काव्य है। इसके वर्णन संक्षिप्त और भावपूर्ण, संवाद प्रसंगानुकूल और छोटे-छोटे, तथा भाषा बोलचाल की लोकप्रिय उक्तियों से भरपूर सीधी-सादी और प्रवाहमयी है। समस्त रचना नाटकीय गुणों से युक्त और गेय है। विभिन्न पात्र और घटनाएँ एक-एक करके श्रोता के सम्मुख खुलती चलती हैं।

इससे मनोरंजन, नीति-धर्म पालन में आस्था, संस्कार-परिष्कार और सुरुचि-निर्माण का कार्य तो होता ही है, पर इसका मुख्य उद्देश्य माता-पिता के प्रति सुपुत्रों के कर्तव्य बखान करना, उनकी महत्ता बताना और अपरोक्ष रूप से ऐसी भावना जाग्रत करना है। रचना के अन्त में कवि ने इसका संकेत किया है[1] तथा इस बात पर और अधिक बल देने के लिए पाण्डवों से पूर्व हुए श्रवण, प्रह्लाद और भगीरथ का नामोल्लेख किया है।

चिड़ी के मुख से किया गया स्त्री के अवगुणों का वर्णन मध्ययुगीन सामान्य नारी के एक पहलू का यथार्थ रूप से स्पष्टीकरण करता है। "त्रिया-लखंण" का वर्णन कवि ने अपने कवित्तों में भी किया है।

कथा में अनेक नवीन उद्भावनाओं और लोक-प्रचलित प्रसंगों का समावेश है। मुख्य पौराणिक कथा में अनेक स्रोतों से संचित सामग्री को एक-रस कर रखा गया है जो अत्यन्त

१-धंण जायां औगंण वंणा, काल्ही जंणै कपूत।
वंनि वरणी घर उपरै, सुंदरि जंणै सपूत ॥ ५४३ ॥

मनोहर, सुरुचिपूर्ण और प्रसंगोचित है।

यों तो इसके सभी पात्रों में अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, किन्तु तीन पात्र-माद्री, नकुल और भीम विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं। माद्री का कुन्ती से सौतिया डाह ध्वनित होता है। ऋषि और साधु-सेवा से कुन्ती के तो तीन पुत्र हो गए किन्तु परमेश्वर की सेवा करने पर भी माद्री निपूती रही[1]। इस कारण और कुन्ती के कहने पर वह अहंकार-वश शृंगार करके राजा पाण्डु को भोजन कराने गई तथा नियम-भंग कर उनकी मृत्यु का कारण बनी। इससे उसको हर्ष ही हुआ। यह उसने जानबूझ कर किया था। कवि ने इस दोष का परिहार नकुल, सहदेव के जन्म के पश्चात् उसको सती करवा कर किया है[2]। इस प्रसंग में कवि ने माद्री के रूप और शृंगार-वर्णन का भी उपयुक्त अवसर निकाल लिया है[3]।

सहदेव सर्वमान्य पंडित और ज्योतिषी था। स्वर्ण-यज्ञ जैसे महान् कार्य के निमित्त एकत्र की जाने वाली वस्तुओं के विषय में केवल उसी से पूछा गया था और जो कुछ उसने

१—नारदजी पूछै करि नेह, दुरबळ काय तुहारी देह।
या सिरि भोपत कुसळे भूप, राणी क्वण तुहारो रूप ॥ १५८ ॥
नरपति छाडि गयो निरधार, किणि कारणि म्हे करां सिणगार ?
बाळक फल कुंता बारि, किण विधि जाया किसै विचारि ॥ १५९ ॥
रिष सेवा कीवी आधीन, तिण कारण फळ हूवा तीनि।
कुंता सेवै साध अनाथ, तूं सेवै तिहु लोकानाथ ॥ १६० ॥
रिष सेवा फळ हुवा कुंत, पारब्रह्म तोहे न दियै पुत ॥ १६१ ॥
नारद पूछै नेह करि, राणी कह्यं न राचि।
सौकि वचन क्यों मा सहैं, सौकि न बोल्यै साचि ॥ १६२ ॥
वन मा कुंत जिमावण जाय, तूं रायो वाते बिलमाय।
सोच करि कहियो समझाय, तूं पणि राय जिमावण जाय ॥ १६३ ॥
२-माद्रि सुणैं मनि कीयो मांण, नारें निरप सजोयो न्हाण।
छाडि घरम दिल दुजी धरे, काया मजण कामण करे ॥ १६४ ॥
चौवा चन्दण चहर चपेल, परमळ सुधो वास फुलेल।
कानें कुंडळ दीपै घडी, रखणि सिरि सोहैं राखडी ॥ १६५ ॥
वाळी वेसरि बींदली बणी, रूप सरस सुंदरि सोहणी।
आपे अंजण सारें सळी, आरोम तांम ति उजळी ॥ १६६ ॥
अलि पोत पिनग हेम हंस, कदळि केहरि कीर।
कोकिळि कुंवळ कुरंग हरि, सोभा इधक सरीर ॥ १६७ ॥
हार हियै उरि सोहै हीर, चोळी चहरि बिराजै चीर।
साडी पहरि सझ्या सिणगार, पगि पायळ नेवर झणकार ॥ १६८ ॥
चौवा चंदण परमळ पोळि, टावा टीका तिलक तंबोळि।
टाळी मांग हुई वैर पता, मोहती सुर नर देवता ॥ १६९ ॥
हंस गुवणी सिस वदनी जोय, हरखी मरण राय को होय।
जदि विरहणि वनवासे गई, राजा सुंदरि दीठी सही ॥ १७० ॥
उरि अवळा जदि लोपी आण, तदि पंड राजा तज्या पिराण।
कुंता तणी कह्यो नहिं कियो, राजा मारि पतीगो लियो ॥ १७१ ॥
३-पंड पाछै मासे दसैं, कुल्यो उतारे काट।
सुत दोन्यों सुंप्या सती, कामण लीयो काठ ॥ १७२ ॥

बताया उसको बिना किसी सोच-विचार के स्वीकार कर लिया गया था[1]। प्रश्न केवल उन वस्तुओं के लाने का ही रहा था। इस प्रसंग में कवि ने प्रचलित शकुन, लोक-विश्वास और मान्यताओं का उल्लेख भी किया है[2]।

भीम को स्वर्ण-यज्ञ पूर्ति की विशेष चिंता प्रतीत होती है। वह भिन्न-भिन्न स्थानों में जाते हुए प्रत्येक भाई को किसी न किसी प्रकार की चेतावनी दे ही देता हैं। यहां तक कि युधिष्ठिर के तन-त्यागने के समय दान-पात्र विप्रों को भी[3]। वह शकुनों से नहीं डरता, 'कर्म-लिखो' पर विश्वास करता है[4]।

युधिष्ठिर के देह-त्याग के समय बड़ा करुण-दृश्य उपस्थित होता है। कवि ने इस अवसर का मार्मिक चित्रण किया है[5]।

रचना में अनेक संवाद और वर्णन हैं। उदाहरण स्वरूप करणमाल और 'वेहमाता'

१-मुत माता भेळा हुआ, अंतरि अटकळि एह।
जिण विधि राजा उवरै, सा दापवि सहदेव॥ २०३॥
सोच करि कहियौ सहदेव, दुंनियापति आंणौ जगदेव।
आवै धंणी करै सनमांन, सोच करिइ आंणौ सोव्रंन॥ २०४॥
जोरासेण आंणीजै सीस, सहदेव कहै विसोवा वीस।
सहदेव कहियौ सोच संभाळि, आंणौ मंडप पैसि पयाळि॥ २०५॥
सहदेव कहियौ सोच सुंगाय, ल्यावौ जाय सुरग सूं गाय।
सहदेव कहै सांभळो प्रवेम, नवां पंडां रा आण्य नरेस॥ २०६॥
कारज कोई अता जे करै, इणि विधि पिता पंड उवरै॥ २०७॥

२-प्रोहित जी रथ दीन्हो पाव, वळ करि आटौ फिरै विलाव॥ २२८॥
दिस बांई नीसरियो नाग, मूकै लाकड़ि कुरळै काग।
उडि परेवो मोड़ै पांप, सहदेव करै सूंगां री सांक॥ २२९॥
वांयस लव कपाळी वांणि, अवसि हरषि हुवै घरि हांणि॥ २३३॥
गरळाटै वोलै घरि धंणी, परदेसां आवै पाहुंणी॥
वळै ज बोलै मधरी वांणि, वंधु अवसि मिलावै आंणि॥ २३४॥
परगट वोलै चांच पलारि, पाछौ मिलै नही परवारि॥
वुरा भला सूंणां फळ एह, सांभळि भीव कहै सहदेव॥ २३५॥
काग करेवौ कोचरी, अह वंदर हिरणांह।
दांहुणै लीजै अता, वांवां और धंणांह॥ २३६॥
ससौ सरेवडौ महमहकार, साम्हौ आवै सरप सुनार।
ठग नाई बांभण अर नारि, भीव पुरिष वा दिसा निवार॥ २३७॥
दिज वोल्यौ किसडौ एक दीह, वांसी वाहर आंगी सीह।
वांसी कोहर आगी पाड, सूंण लिया अब करिस्यां लाट॥ २३८॥

३-त्रिपरां भींव वतावै भेद, सुगर परषि करां थां सेव।
राज भुवंणि जो नावै राय, मिसरां दिउं कटाहे मांहि॥ ५१३॥

४-सूंगां तंणौ न लावौ भेव, भींव कहै सांभळि सहदेव॥ २३९॥
भूलो जोयसी मांगै सूंण, करंम लिपी सा मेटै कूंण॥ २४०॥

५-देपत ही कुंता सती, उरि हुई अंणराय।
राजा ज्यौं तन त्यागियो, मात पड़ी मुरझाय॥ ५२१॥

(शेषांश आगे देखें)

का सवाद[1] तथा अर्जुन हनुमानजी का युद्ध[2]-प्रसग द्रष्टव्य है।

(२२) कथा मृगलेखा की (प्रति सख्या २०१) ' यह राग 'हसो', 'सोरठ' और 'धनासी' में गेय, १३६ दोहे-चोपइयों की रचना है (११ छन्द एक-एक पक्ति के हैं)। इसकी रचना सवत् १७३६ के चैत वदि १४ को बीकानेर में हुई थी।

मृगलेखा की कथा के माध्यम से कवि का उद्देश्य यह बताना है कि जो किसी को अकारण दुख देता है, उसको बदले मे उससे अधिक दुख भुगतना पडता है,[3] इसलिए किसी को दुख नही देना चाहिए[4]।

एक वेश्या ने मुर्गी के अडो को पीले रग से रग कर रख दिया। उनको न पहचानने पर मुर्गी ने चार पहर तक बलाप किया। वर्षा से जब वे सफेद हुए, तो वह प्रसन्न हुई। अनेक योनियो मे भटकने के बाद वह वेश्या एक सेठ के घर मे जन्मी और मृगलेखा नाम से प्रसिद्ध हुई। मन्दिर मे जप करते समय उसका प्रेम एक सेठ के पुत्र दत्तसागर से हुआ और दोनों का विवाह हो गया। बुद्धि-भ्रष्ट होने से दत्तसागर ने उसको महल से निकाल कर कष्टप्रद, ऊजड स्थान में स्थित एक हवेली म वास दिया। उसको चवला और तेल खाने

॥ धवळ॥ मात पडी मुरभाय, सहम गई कु ता सती।
उरि इधकी अ णराय, मरण सजोयो महपती ॥ ५२२ ॥
मरण सजोयो महपती, नै दिल माहे दळगीर।
सनु सिघासण चु तिरो, करै विसूरो वीण ॥ ५२३ ॥
कळपै कु ता द्रोपती, उरि माहे अ णराय।
कियो विसूरो राणिया, मात पडी मुरझाय ॥ ५२४ ॥

१–इह वेहमाता नहीं वसेव, लोका मसतक घातू लेव।
विपर कहै वेह सु णो वमेव, किणि कामणि सू माहरो लेव ॥ १७ ॥
घर उपरि धोबी धरम, तो वसही विसराम।
सुत माता परबै पिता, निरखि वतायौ नाव ॥ १८ ॥
विपर कहै वेह सांभळि मूढ, काली कामणि बोलै कूड।
इधक उपावन धोवी धरा, क्यों सगपण होयस्यै सादरा ॥ १९ ॥
लिखिया लेख टळै क्यों परा, अै सगपण होयस्यै सादरा।
कुळछ करी मनि कीयो छोह, अ तरि पाडे हुवो अ नोह ॥ २० ॥

२–हणवत कहै न अब करि, देखि न वणियो दाव।
ढोढा ढब ढुकै नही, अरजन बार्य आव ॥ ३२१ ॥
बिन्है जोध वड बथिया, घर उनकी धरथी।
घसळा तणी, जा धुस, घर उबकी धरती।
हणवत मारै हाक, चक्र सारो चळचळियो।
अद विळगी गैण, माण उपरि भीमळियो।
जालिम दोय मपाड बुडि, जोघ कुण करिसी जुवा।
पूणसुत नै पात ज पारिथो, हरि आगळि बाथे हुवा ॥ ३३० ॥

३–च्यारि पहर चित लायो, चौईस वरस दुख पायो ॥ १३४ ॥
को काहू कळपावै, तो जाण अैसा दुख पावै ॥ १३५ ॥

४–दुख काहू दीजै नही, जिभिया कीजै जाप।
सुरता होय साभळो, अ तिरायण रो पाप ॥ २ ॥

को दिया जाने लगा। उसने बारह वर्ष तक जगदीश का जप किया पर कोई फल नहीं हुआ, फिर एक पहर तक यक्ष-सेवा की। उसने प्रसन्न होकर सहायता का वचन दिया और दत्तसागर को डरा कर उससे मिलने के लिए कहा। वह रातों-रात, अपनी 'मूंदड़ी' दिखा कर मृगलेखा से मिला और सुबह होते ही परदेश चला गया। दोनों के पुनर्मिलाप का ठीक पता तो किसी को नहीं चला पर सन्देह हो गया। सास-ससुर ने उसको दासी सहित बाहर निकाल दिया।

वह भटकती हुई एक नगर में आई और एक सेठ के यहां काम करने लगी। दासी ने उसको गर्भवती जानकर उसकी झोंपड़ी में एक छोटी सी गुफा बनाई। दुर्भाग्य से दासी मर गई। मृगलेखा के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको उसने एक वस्त्र में लपेट कर गुफा में रखा और कार्यवश बाहर गई। पीछे से एक कुत्ता उसको मुंह में उठा कर ले गया तथा पुत्र के लिए देवी की जात आए हुए एक सेठ के डेरे मे, लोगों के दुतकारने पर छोड़ कर चला गया। देवी का वरदान समझ कर, सेठ उसका पुत्रवत् लालन-पालन करने लगा। मृगलेखा पुत्र को न पाकर बहुत रोई। निस्सहाय उसने उन्हीं के यहां बारह वर्ष तक दासी के रूप में काम किया।

बड़े होने पर उस बालक ने अपने मां-बाप के विषय में जानने की उत्कंठा प्रकट की। सेठ से पूछ कर वह वस्त्र उसने मांग लिया। जिस नगरी में वह मिला था, उसमें जाकर एक दासी खरीदने के उसके आग्रह पर सेठ ने संयोगवश प्राप्त तीस रुपयों में मृगलेखा को ले लिया। लड़के ने मृगलेखा से सब बातें पूछीं, वह वस्त्र दिखाया और इस प्रकार मां–बेटे मिले। माँ के मना करने पर भी वह अपने पिता से मिलने के लिए चल दिया।

इधर वापस आकर दत्तसागर ने जब मृगलेखा को नहीं पाया, तो वह उसकी खोज में चल पड़ा। मार्ग में उस लड़के से सब वृत्तान्त जानकर, बाप–बेटे परम प्रसन्न हुए। बालक को पालने वाले सेठ ने मृगलेखा और दत्तसागर का पुनः विवाह कराया।

कवि ने सुनी हुई कथा को अपने ढंग से कहा प्रतीत होता है[1]। इससे इसकी लोक-प्रसिद्धि का पता चलता है। कतिपय प्रमुख कथानक– रूढ़ियों के सहारे कथा को मनोनुकूल मोड़ दिए गए हैं। यत्र-तत्र सुन्दर. लोक-प्रचलित उक्तियां और नीति-कथन पाठक को प्रभावित करते हैं[2]।

१–(क) नगरी साह न जांणों नांव, साह सबळ की आई सांव ॥ ६५ ॥
(ख) घाटि बाधि जांणै जगदीस, कांनै सुंण्या रुपइयां तीस ॥ ९५ ॥
२–(क) रोवै झुरवै करै विळाप, परगटियो पुरिबलो पाप ॥
अबलेषा मुरछाई मरै, न का नंणंद नहोरी करै ॥ ३० ॥
(ख) सा दासी पालिक नीवीं पोसि ॥ ७२ ॥
(ग) देपणहार गया सह दूरि, उंपरि पाळी पड़ै जं पूरि ॥ ७४ ॥
(घ) मोत बिनां मारै नहीं, सिरजंणहार सहाय ॥ ७६ ॥
(ङ) थांरी दासी थे लियो, मो पलै रुपइयां घाति ॥ ९९ ॥
(च) काळ किसी विधि कियो, महिं मुवो के पांणी पियो ॥ १०८ ॥(शेषांश आगे देखें)

महत्त्व और मूल्यांकन : केसोजी ने जन मन रंजन करते हुए लोकोत्थान और आत्म-कल्याण का मार्ग दिखाया, उसको विविध प्रकार से प्रशस्त किया तथा तद्हेतु भावभरी प्रेरणा दी। जीवन, जगत, जन्म मृत्यु-प्रक्रिया के चेतावनी व्यंजित बहुविध हृदयग्राही वर्णन से जनसाधारण को तत्व-प्राप्ति की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया और स्वानु-भूति प्रकाशन कर आत्मविश्वास और निष्ठा प्रदान की। उनकी धारणा है कि हरि-महिमा-गान से पाप मोचन होता है –

रातो आद अनाद सों, खोज्या वेद कुराण।
मुचस्यं पाप सरीर का, कर हरि तणा वखांण ॥ १ ॥
–स्तुति अवतार की।

उनकी समस्त रचनाओं के मूल में यह भाव किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है।

केसोजी की रचनाएँ प्रबन्ध और मुक्तक दो रूपों में हैं। 'विगतावळी" और "अघ-लेपा" के अतिरिक्त प्रबन्धात्मक कथाएँ आख्यान काव्य हैं। परिमाण, गुण और काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से राजस्थानी और जाम्भाणी आख्यान-काव्य-परम्परा में इनका महत्व-पूर्ण स्थान है। आख्यानों के विषय पौराणिक तथा जाम्भोजी के जीवन से सम्बन्धित हैं। "अघलेपा" लोकप्रसिद्ध काल्पनिक पद्यात्मक कथा है, जिसको आख्यानों के समकक्ष लाने का प्रयास कवि ने किया है। "विगतावळी" में साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार चारों युगों से सम्बन्धित विष्णु-कथा की "विगत' वर्णित है। सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक मान्यताओं और वैचारिक परम्पराओं के क्रमबद्ध सम्यक् परिचय, स्पष्टीकरण और गुम्फन की दृष्टि से इसका बड़ा भारी महत्व है जिसका उल्लेख प्रकारान्तर से कवि ने भी किया है[1]। इस दृष्टि से दूसरी उल्लेखनीय कृति "पहळाद चिरत" है। यह तथा पाण्डवों के जीवन-चरित से सम्ब-न्धित तीन कथाएँ-भीव दुसासणी, सुरगारोहणी और वहसोवनी, पुराणों और महाभारत पर आधृत हैं। शेष आठ कथाओं में जम्भ-चरित-कथाएँ वर्णित हैं।

आख्यान काव्य नाटकीय गुणों से युक्त हैं, उनके संवाद और वर्णन छोटे-छोटे तथा मूल कथा को आगे बढ़ाने वाले हैं। इनके पात्र और घटनाएँ एक-एक करके स्पष्ट होती

(छ) वर माभळ विधि कहू वमेव, न टळै वेह लिख्यो जै लेप।
काबळ साबळ जोग विजोग, विधाता मेल्यो संजोग ॥ २३ ॥
(ज) भूप तणा आरित सु ण एह, नारि पुरिष को तुं नेह।
पूत पिता मिता परहरै, अकरण भूप सवाया करै ॥ ३२ ॥
(झ) मुंध कहै मारो मत, हतिया हूं तै हारि।
भलै कियै होयसी भलौ, सुंदरि कहै विचारि ॥ ९० ॥

१–कथा विगतावळी, सुरति करि माभळी, पाप पासैं टळो।
केसौ त जाणी जैसी वषाणी, सुणो सति विगतावळी ॥ १ ॥
सुगर सरणो कथा वरणौं, नाव हरि हिरदै धरै।
कहै केसौ मिटै सांसौ, सति सुण करणी करै ॥ २ ॥
सुगर सामों, पवों पामी, सबळ गुर आया साव ॥
केसौ त आख्या ,मल्य माख्या, सी वकसियै वळि जाव ॥ ३ ॥–अ तिम "कवत" ।

चलती हैं। प्रचलित राग-रागिनियों में ये गेय हैं तथा न्यूनाधिक रूप में प्रायः सभी रसों का इनमें समावेश है। प्रह्लाद और पाडण्व-आख्यानों में यत्र-तत्र लोकप्रचलित कथाओं और मान्यताओं का भी बड़े सुन्दर ढंग से नियोजन किया गया मिलता है। श्रोता इनसे काव्य, नाटक और संगीत-तीनों का मिश्रित आनन्द प्राप्त करता और उसमें सहज ही रम जाता है। उदात्त गुण-ग्रहण, संस्कार-परिमार्जन, सुरुचि-निर्माण और नीति-शिक्षण इनमें ध्वनित है, प्रच्छन्न रूप से ही इनका प्रतिपादन किया गया है। कथा-प्रवाह में श्रोता अनजाने ही इनको ग्रहण करने की प्रेरणा पा लेता है।

'खड़ाणे' (वलिदान) की चार साखियों (संख्या १४-१७) में भी किसी न किसी घटना या कथा का उल्लेख है।

कथाओं का महत्त्व निम्नलिखित दृष्टियों से है :—

(१) इतने पाण्डव-आख्यान विष्णोई कवियों में केवल इन्होंने ही लिखे, प्रह्लाद-चरित पर पहली रचना इन्हीं की है। राजस्थानी साहित्य में भी एतद् विषयक आख्यान और चरित-कथा काव्यों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी मूल कथा में नवीन जोड़-मोड़ और लोकतत्वों का प्रभूत परिमाण में सन्निवेश कवि की अपनी विशेषता है। इस दृष्टि से इनकी तथा तत्कालीन और पूर्वनिर्मित ऐसे राजस्थानी काव्यों की तुलना और मूल्यांकन, अध्ययन का एक रोचक विषय होगा।

(२) जाम्भोजी के जीवन-चरित और कथाओं पर वील्होजी द्वारा प्रवर्तित ऐसी काव्य-परम्परा में सर्वाधिक आख्यानों का निर्माण इन्होंने ही किया। ध्यातव्य है कि इस संबंध में वील्होजी, केसोजी और सुरजनजी की इस प्रकार की रचनाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं और सब मिलकर जाम्भोजी के व्यक्तित्व और कृतित्व की महत्ता को स्पष्ट करती हैं।

(३) लोकप्रिय काल्पनिक कथा-काव्य-परम्परा में "कथा अवलेपा" उल्लेखनीय है।

(४) इनसे अनेक कथानक-रूढ़ियों का परिचय मिलता है। युद्ध-विराम या विजय हेतु जोगिनियों का नंगी होना या किया जाना एक नवीन रूढ़ि की सूचना है। कथा वहसोवंनी में नकुल ने जोगिनियों को "कुरप" वाण से नंगी करके विजय प्राप्त की थी[1]।

१-पुसतग वांच करि मंनि प्रीति, जुध मां कुरप वांण री जीति।
सहदेव वाह्यो कुरप संमाहि, जोगंणि जोगंणि लागो जाय॥ २६०॥
नाळा कव्या निनंग सह नारि, हरखे जोगंणि आई हारि।
भरंमी जोगंणि न नहीं भेव, सरमांणी जोयसी सहदेव॥ २६१॥
आपो जोवे नहीं अ उठि, तदि प्रोहितजी दीन्हीं पुठि।
मुंह मिळियां मुप रहियो मोड़ि, कुळ नै कांय लगाई पोड़ि॥ २६२॥
नारि मुंणी भागो नहीं, विधि मूं सुंणी विचारि।
पर त्री सभ सहोदरी निनंग न देपूं नारि॥ २६४॥
कसर तका थां मां हेक जी, अंण देपि जोगंणि ओलजी।
नीची वैठी निरषि निहाळि, सोचि वसतर लिया संभाळि॥ २६५॥
ओढि पहरि जदि आई दाय, भदरा तूठी आई भाय।
कहो किसी परि जीती जगि, मया करि अब तूठि मगि॥ २६६॥

सुरजनजी कृत 'उपापुराण' मे शक्ति के नगी होने पर शिव और कृष्ण के युद्ध-विराम का उल्लेख है (देखें-सुरजनदास, कवि सख्या ६९)।

(५) तत्कालीन लोक-प्रचलित मरुभाषा का अन्यतम रूप इनमे तथा शेष मुक्तक रचनाओ मे सुरक्षित है। केसोजी का काव्य प्रचुर लोकोक्तियो और लोकप्रचलित शब्दावली का प्रामाणिक भडार है। उनकी शब्दावली सांस्कृतिक दृष्टि से भी मूल्यवान है। जहा सुरजनजी की भाषा साहित्यिक और बोलचाल की मरुभाषा है, वहा केसोजी की समस्त रचनाएँ बोलचाल की भाषा मे ही हैं। दोनो कवियो की रचनाओ का सम्मिलित अध्ययन, उस काल की राजस्थानी का प्रतिनिधि और सर्वांगीण अध्ययन कहा जाएगा।

(६) तत्कालीन मरुदेशीय समाज और सस्कृति-ज्ञान के लिए केसोजी की रचनाएँ अपरिहार्य हैं। कथाओ का क्षेत्र बडा विशद और व्यापक है। समाज का तलस्पर्शी ज्ञान कवि को था। प्रत्येक वर्ग और पेशे के लोगो का सुन्दर और यथार्थ चित्रण इनमे मिलता है। गृहस्थ-साधु-सन्यासी, निम्नवर्ग-किसान, कलावत, व्यापारी-राजा राणी-सामान्य स्त्री, हिन्दू-पण्डित, मुसलमान-काजी, नाथयोगी, विष्णोई एव अन्य लोग, प्रचलित पूजा-उपासना-पद्धति, शकुन, हथियार, आचार-विचार, व्यवहार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, नाते-रिश्ते, आपसी सम्बन्ध, विश्वास-मान्यता, मूल्य-दृष्टिकोण, वेश-भूषा-आभूषण, क्रिया-कलाप, आशा-आकाक्षा-प्रेरणा, लोक प्रचलित दैनदिन शुद्धाशुद्ध बोली-प्रयोग आदि के प्रसगवश यत्र-तत्र अनेक उल्लेख मिलते हैं। 'कथा विगतावळी' के आधार पर यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि कवि के कथन अत्यन्त विश्वसनीय हैं। इस दृष्टि से वे बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण हैं। यहा तक कि समाज मे उपयोगी पशुओ तक की जानकारी भी इनसे मिलती है। 'कथा सैंसै जोखाणी की' मे ऊँट, बैल, और विविध प्रकार की गायो का तथा 'कथा मेडतै की' मे राणा सागा के भेजे हुए 'ओठी' के ऊँट को जाम्भोजी द्वारा गुड दिलवाए जाने का उल्लेख है।

इनमे नारी से सम्बन्धित और व्यजित तथा नाथ-योगियों के उल्लेख विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं।

नारी :—नारी के रूप, शृगार और वेशभूषा का सुन्दर वर्णन तो अनेक स्थानो पर किया गया है, कुछ ऐसे उल्लेख भी हैं जो युगीन नारी-मनोवृत्ति, स्वभाव और उसके सामान्य कार्यों का पता देते हैं। द्रौपदी कूएँ पर गहने उतार कर घड़े से नहाती थी[1]। भिखारी बने जाम्भोजी को दी गई सैंसे की स्त्री की दुतकार-फटकार आज भी उन्ही शब्दो मे ऐसे अवसरो पर सुनी जा सकती है (कथा सैंसै जोखाणी की)। पराई स्त्री का हाथ पकडना बडी अशिष्टता है, किन्तु उच्च वर्ग के लोग ऐसा करने मे सकुचाते नही थे। दुशासन

१-कुभ उळीचं कुवं छलै, हार ककण ले पासे मेल्है।
आछी पाणी परो नीपग, द्रोव मळि मळि धोवै अग ॥ १६ ॥
—कथा भीव दुसासणी।

की मृत्यु का कारण द्रौपदी का हाथ पकड़ना ही था। अर्जुन ने भी एक स्त्री का हाथ पकड़ कर लंका का मार्ग पूछा था। इस पर उसके प्रतिवाद और झगड़े की सम्भावना देख अर्जुन को बहन कह कर अपनी सफाई देनी पड़ी थी[1] । आपत्ति काल में विवाहित स्त्री को भी कभी-कभी किसी को सौंप दिया जाता था। स्वर्गारोहण-समय पाण्डवों ने मार्ग देने के बदले दूसरे पर्वत को द्रौपदी सौंप दी थी[2] । सौतिया डाह-वश माद्री जान-बूझ कर अपने पति की मृत्यु का कारण बनी थी। मृगलेखा और करणमाल की धोबिन स्त्री की कहानी (कथा बहसोवंनी) नारी जीवन का उत्सर्गमय पहलू सामने लाती है। कुन्ती (कथा बहसोवंनी) और उमा (पहळाद चिरत) वात्सल्य-प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। झाली राणी ने पूर्व के विष्णोइयों को राज-धर्मपालन और दयावश उनके पशुओं के लिए 'बीड़' दिलाया था[3] । ब्याही हुई स्त्रियां किसी कारणवश या स्वेच्छा से भी दूसरों के घर जा बैठती थीं (भींव दुसासणी), तथा अपने पति की हत्या कर पर-पुरुष के साथ भाग भी जाती थीं (जती तळाव की कथा)। बेटी के ससुराल वालों से नाराजगी होने पर बाप उसको अपने यहां बुला लेता था (कथा मेड़ते की)। कठिन कार्यों से घबरा कर भी स्त्रियां अपने पतियों से सहयोग नहीं करती थीं (कथा इसकंदर की)। कथा बहसोवंनी में चिड़ी के मुख से स्त्री के अनेक दुर्गुणों का उल्लेख करवाया गया है। कवित्तों में भी कवि ने स्त्री के अच्छे-बुरे लक्षणों का वर्णन किया है[4] ।

१-पंथ पुलावि नै पूछ्यो, चढि गिरवरि गयो ज ऊंचौ।
वांह पकड़ि करि पूछै, वा रोस धणीं करि रूचै ॥ ३०८ ॥
आगिल गिरि पिळंब अनेरा, मेरा पीहर वाड़ि वसेरा।
वांसिल गिरि वात वताई, मेरी सासर वाड़ि सुवाई ॥ ३०९ ॥
हूं लीक धणी तोहि लायस, वोहळा हूं भील बुलायस।
परगट कर वंव पुकारूं, वोहळा हूं पिळंव हकारूं ॥ ३१० ॥
पांणी अणथाघै पैसैं, से अग आई ही जैसें ॥ ३११ ॥
पर त्री सम सहोवरी, गहली संभाळि गझि ।
लंका मारग दाखवां, त्रिया पूछां तुझि ॥ ३१२ ॥-कथा बहसोवंनी।

२-अहो दोळा हुवा द्रौपती, पंथ चाल्या सुंपी द्रौपती ॥
पांचूं पांडू साथै सती, दे चाल्या पांडु द्रौपती ॥ १२३ ॥
-कथा सुरगारोहंणी।

३-अंतर की कीवी अरदासि, धंण लागै परच दिहाड़ां घासि।
रांणी साघां लह पर पीड़, वाळदि कारंणि वकस्यो बीड़ ॥ ४५ ॥
जग जीवंण म्हां दई जगाति, तो घास चराय न करां ताति।
थांहरी भगवंत भांनै भीड़, म्हे वाळदि नै वकस्यो बीड़ ॥ ४८ ॥
-कथा चित्तौड़ की।

४-कुळवंती कांमंणि जका, सील सा सुंदरि पाळै।
प्रथमि उठै पोह संवीं, दंतंण ले टसंण उजाळै।
चुतराई रापै चेहरि, केस करि कांमंणि पोवै।
मधि मही लेवा टळै, नीर ले न्हांण संजोवै।
कीर कुरंगम कोकिला, किनक थंभ विसहर रहै।
आचार अ ओळपै, कुळवंती केसो कहै ॥ ७९ ॥ (शेषांश आगे देखें)

नाथ जोगी :—तत्कालीन नाथ जोगियों के प्रचार, वेशभूषा, क्रिया-कलाप, स्थान, साधना-पद्धति और सामग्री का अत्यन्त चित्ताकर्षक वर्णन कवि ने किया है[1]। नाथजोगियों की विचित्र वेशभूषा और कृत्यों को देखने के लिए मेला जुड़ जाता था। यह वर्णन राजस्थान में नाथ पथ के प्रभाव का भी द्योतक है। रात्रि में कलियुग से हुए युद्ध के सम्बन्ध में, युधिष्ठिर के पूछने पर नकुल-"अबला नै आदेस", "इणि अबळा आगळ आदेस" कह कर नाथ पंथी अभिवादन शैली में उत्तर देता है।

समाज सम्बन्धी अन्य संकेत :—इस सम्बन्ध में इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य संकेत भी उल्लेखनीय हैं। किसी को भ्रमाने, ठगने या धोखा देने का सबसे सरल और प्रचलित उपाय वेशभूषा से साधु-सन्यासी, जोगी, पंडित आदि बन जाना था। किसी सांसारिक कार्य में असफल होने पर भी लोग साधु बन जाते थे। भीम पंडित बन कर जरासंध को मारने उसके नगर में गया था। अपनी पत्नी को घायल करके करणमाल तपस्वी बना था (कथा बहमोचनी)। निपुत्र व्यक्ति किसी बालक को कहीं से या तो यों ही अथवा खरीद कर ले आता था (कथा चित्तौड़ की-भीयो पंडित)। लोक में चमत्कार-प्रदर्शन की पूजा होती थी। गुरु से मिलते समय पहले भेंट आगे रख कर फिर उनके चरण-स्पर्श करने की पद्धति

सुघड नरां नैं सुपणी, वदन कुरै भैं राडी।
काति र कत न ढावही, आप परणि फिरै उघाडी॥
वर वरजी न रहै, चालि चौहटै आवै।
सभा पूछै आ कूण, कत उत पडो लजावै।
भदमल उधराळै घणां, लपसे नारि कुलपणी।
कहि केसो विचारि मन, सुघड नरां छै सुपणी॥ ८०॥

१—जोगी जुडिया गोदावरी, मोनी मुदराळा डवरी।
कान्य सिंगी करि साहै छुरी, दिल माहे दुरमती परवरी॥ ७॥
तन भसमी मन मा अवधूत, विद्या ताणि रहैं सुगि भूत।
मडघटि रहैं मुसाणा तीर, रन मा रहैं जगावैं बीर॥ ८॥
करड कमोदी तनि मेखळो, गळि सींगी हाथि वागली।
चकमक बटवौ कपे कसि कटी, करि डंड अधछाला पावडी॥ ९॥
नाद पतर अवरा अळ वेसि, आदेसा कीजै आदेस।
जोग विना जोगुट रहैं, काधै भार घणो ले वहैं॥ १०॥
जा जा गावा नीसरैं, उरि अ तरि अभिमान।
छाडि मढी चाल्या घणा, कनचीरिया कितान॥ २१॥
हुम करै नैं मारैं हाक, नर निपरा बोलैं नापाक।
टाळो करे न पासैं टलै, छक दीठा माणस नैं छळै॥ २४॥
सींगी नाद र सख बजाय, उलटी भति अघोरी आय।
इण विध आयस करै इळाव, वीर ता मने न बधे वाव॥ २५॥
पटपची डेरा किया, पडपची पापड।
विधि सू किया बिछावणा, धरि मिरघछाळा डड॥ ३२॥
धरिया डड कीया डेरा, सझि पूर्या नाद सवेरा।
सझि सींगी नाद बजाया, तकि लोग तमासैं आया॥ ३३॥
नर देखि डरैं उणिहारा, आयस दीसैं असकारा।
हरखे डेरा जित हुई, सात वीस मढी सह घूई॥ ३४॥

थी (कथा सैंसे जोखांणी की)। लंका को सोने का भण्डार मानते थे (कथा वहसोवंनी)। युद्ध में स्त्रियों से हारना लज्जा की वात थी। ज्योतिष और शकुनों पर वहुत विश्वास था। पुरुष अनेक विवाह कर सकता था। लोग तीर्थों-मेलों और गुरुजनों से मिलने जाते समय भी हथियार वन्द होकर जाते थे।

विष्णोई समाज सम्वन्धी :— विष्णोइयों में अतिथि-सत्कार विशेष रूप से था, इसके लिए प्रतिस्पर्धा भी करते थे (कथा ऊदे अतली की)। सम्प्रदाय में दीक्षित होते समय सिर के वाल मुंडवाना आवश्यक था, किन्तु लोक में यह कार्य किसी के मृत्यु-शोक का सूचक माना जाता था (कथा मेड़ते की)। समाज में विष्णोई लोग दूसरे व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न थे। वे अपने को 'अकर' मानते थे। खरे विष्णोई सिर देकर भी 'धर्म' पालन करते थे। पोलावास के वूचा एचरा और धवा के रामू खोड ने यही किया था (साखी)। पूर्व के विष्णोइयों ने अपने सिर देकर राणा सांगा को अपने "धर्म" का परिचय देना चाहा था। "गंगा-पारी" या पूर्वी-विष्णोइयों का केसोजी ने विशेष उल्लेख किया है। "कथा चित्तोड़ की" के तो प्रधान पात्र भी वे हैं। एक साखी में १४ "पूरबिए" विष्णोई स्त्री-पुरुषों के स्वेच्छा से जाम्भोळाव पर सिर कटाने का उल्लेख है। नोयों पंडित और हासिम-कासिम पूर्व की "जमात" के साथ ही जाम्भोजी के दर्शनार्थ आए थे। चान्द्रायणों में भी उनके श्रद्धापूर्वक जाम्भोळाव और सम्भराथळ पर आने का वर्णन है[1]।

मुक्तक रचनाओं में आतम-निवेदन, आत्मानुभूति, लौकिक अनुभव और ज्ञान, विचार, इतर विषयोल्लेख, संदेश आदि के भावोल्लास भरे उद्‌गार प्रकट किए गए हैं। इनका सबसे बड़ा महत्त्व इन्हीं कारणों से है। कुछ अन्य कारण ये भी हैं :—

१- ये एतद्‌विषयक परम्परा की उल्लेखनीय कड़ियां हैं,

२-अनुभव की सच्चाई के कारण, पाठक निष्ठा और निश्छलता से इनको ग्रहण करता है,

३-आत्मोद्धार, लोक-कल्याण और मंगल-कामना-वश ये कहे गए हैं, अतः इनका प्रभाव व्यापक और गहरा है। इनमें व्यक्त और व्यंजित संदेश को अनायास ही अपनाने और कार्यरूप में परिणत करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

४-कवित्त, हरजस, सवैया, साखी, दोहा, गीत और चान्द्रायण छन्द परम्परा में इनका उल्लेखनीय योगदान है।

१-के पूरव का लोक घंणां गंग पार का।
रळिमळ चाले साथि संगाति सार का।
मेळे मिलैं तळाय भगत भगवांन का।
हरि हां, परसंण आवै पीव उमाह्यं पार का॥ २७॥
जेणि धुरै दमांमां रोढ विराजै वाट मां।
जाकि नारी लपेटी होय करै संम पाट मां।
क जैं क जावा जांण्य क तेजी धांवंणां।
हरि हां दीनां रा भिणकार क साघ सुहांवंणां॥ २९॥

चान्द्रायण छन्द का बहुल प्रयोग, विश्णोई कवियों में केसोजी ने ही किया है। इसके अतिरिक्त चान्द्रायणो का महत्व तिथि-परक काव्य-रूप परम्परा में भी है। 'ककको-काव्य' में जैसे वर्णमाला के अक्षरों पर क्रमिक-छन्द-रचना की जाती है, वैसे ही इनमे एक महीने की प्रत्येक तिथि पर, अमावस्या से आरम्भ कर, क्रमश प्रासंगिक छन्दो की रचना की गई है। अन्य विश्णोई कवियो के 'ककको-काव्य' तो मिलते हैं, किन्तु "तिथि-काव्य" नहीं।

गीत कवि ने दो ही लिखे हैं किन्तु इस क्षेत्र मे उनकी काव्य-प्रतिभा का परिचय देने के लिए वे पर्याप्त हैं।

आत्म-निवेदन : मुक्तक रचनाओ, विशेषत दोहो, हरजसो और सवैयो म कवि का आत्म-निवेदन वाणीबद्ध हुआ है। इनम भगवान के प्रति आत्म-समर्पण, आत्मोद्धार की उत्कट लालसा, आतुरता और निरीहता भरा निवेदन सहज रूप से मुखरित हुआ है। उदाहरणार्थ एक हरजस[1] और एक सवैया[2] द्रष्टव्य है।

भाव और विचार : मूलत. केसोजी के विचार वे ही हैं, जिनका प्रतिपादन जाम्भोजी ने किया था किन्तु आत्मोद्धार- निमित्त उनमे से उनके अनुभव मे आने वाली कतिपय प्रमुख बातो पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया और उनको अभिव्यक्त किया। कथन-शैली सर्वत्र उनकी अपनी है। उनके कथन और विचारो का समग्रता मे परिचय और सार-सग्रह एक साखी[3] मे मिलता है, जो इस दृष्टि से उनकी प्रतिनिधि रचना है। इसमे निहित बीज हो

१-मोहि मुलक राजा करो, जुग फिरत दुहाई।
कहता मैं मेरी कहा, सभ तो हू वडाई॥ २॥
घरि घरि विपिया कू फिरयो, अति विष रचाई।
तो न कहू मैं दूबळा, मोहि ऊणति आई॥ ३॥
अज्या का सरवणु माट्या, साहिब करि तेरा।
भावणि काटो पेड तैं, अथवा ऊचेरा॥ ४॥
सेयो पोज पियाति करि, अजिया आधीना।
सिंघ स सुपी गजराज कू, चडि वन फळ चीना॥ ५॥
मैं दागिल दरबार का कोई ग्रहण न पावै।
राव गरासै रक कू, कहि कूण छुडावै॥ ६॥
केस भणैं करतार सू, प्रभु राखो पाये।
निन सरणाई ऊबरै, सबळा की आये॥ ७॥ -हरजस सख्या ३।

२-अरदास अतीत की चीत करो, मोहि मीत ते मूळ न विसारो जी।
दापि दया दुप दूरि करो, अपनू जन जानि उवारो जी।
जिवरौ जम तैं डरपै किरपै, मारि कै बोहरि न मारो जी।
केसोदास की आस प्रवान करो, प्रभु भुंय जळ पारि उतारो जी॥ १४॥ -'सवइयो'।

३-जीवडा जपि जगदीस, भाभेसर जीवा धणी।
धरमैं धरो धियान, नास हुवै पापा तणी।
पाप परळै करै प्रीतम, पार घरि वासो दिवैं।
अनत पाप अघोर मेटैं, हेत हरि राखो हियैं।
मूढ कपट कलोभ परहरि, साध वायक ऊं सुणी। (शेषांश आगे देखें)

उनके समस्त काव्य-क्षेत्र में अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुए हैं। इस साखी की वैचारिक भूमिका पर केसोजी की समस्त काव्य-साधना को भलीभांति समझा जा सकता है।

(क) जाम्भोजी विष्णु हैं। वे प्रह्लाद से वचन-बद्ध होने के कारण बारह कोटि जीवों के उद्धारार्थ आए थे। विष्णु के दसावतारों में सम्प्रदाय का उत्स चौथे-नृसिंहावतार में है। अतः दसावतार मान्य होते हुए भी तेतीस कोटि जीवों के उद्धार-सम्बन्धी कल्पना को लेकर सम्प्रदाय की एक विशिष्ट मान्यता है, जिसका सम्पूर्ण क्रमबद्ध और स्पष्ट निदर्शन 'पहळाद चिरत' और 'विगतावळी' में मिलता है। दसावतार और कल्कि-वर्णन इसी परम्परा में किया गया है। मोक्ष-प्राप्ति हेतु कवि ने अनेक प्रकार से हरि-महिमा-गान किया है, जिनमें इनके अतिरिक्त प्रकारान्तर से जाम्भोजी से सम्बन्धित रचनाएँ अधिक हैं। यही नही, सम्प्रदाय के दो पीठ-जाम्भोळाव और मुकाम पर भी कवि ने भाव-सुमन अर्पित किए हैं। जाम्भोळाव का विशेष उल्लेख तो चार स्थानों पर है। जती तळाव की कथा, जांगड़ो गीत और खड़ाणे की साखी (संख्या १५) तीनों इसी से संबंधित हैं तथा चान्द्रायणों में इसका प्रासंगिक उल्लेख है।

(ख) केसोजी की दृष्टि में हरि-नाम-स्मरण और सुकृत, दो मुक्ति-प्राप्ति के श्रेष्ठ उपाय हैं, अन्ततोगत्वा जीव के साथ ये ही चलते हैं। चेतावनी देते हुए इनका प्रभावोत्पादक और हृदयग्राही उल्लेख पृथक् पृथक्[1] और एक साथ, दोनों ही प्रकार से कवि ने

सांपजै सुप वास सुरगे, जीवड़ा जपि जीवां धंणी ॥ १ ॥
सुकरत करि संसारि, कथ मांनूं गुर की कही।
अवसर चेति अजांण, वळि अवसर लाभै नही।
नही लाभै असौ ओसर सुपह छाडि कुपह क्यों पड़ौ।
कुटुंब काचै कांय विलंबौ, प्रांणियौ पंथ सिरि पड़ौ।
कुळ रीति एह अनीत इवकी, प्रीति पापां परहरौ।
हक हलाल पिछांण प्रांणी, संसार सुकरत यों करौ ॥ २ ॥
सुप नांही संसारि, जंम वैरी वांसै वहै।
विषमां कोट न ओट, रंग महलि नांही रहै।
रहै न रंक फकीर राजा, हुंस करता हारिया।
असपति गजपति छत्रपति, मैंड्य महले मारिया।
लिवै लेपो आपे पालिक, लोक परळै होय जहीं।
सांम्य नांम संभाळि प्रांणी, संसार सुप कोई नहीं ॥ ३ ॥
सुप सगळा सुरलोकि, मंन चिता मंन की मिटै।
जित जुंवर न गंजे जीव, घट आउपो नां घटै।
घटै न घट ता आव पिरांणी, जुरा देह न झंपई।
वाव वेदंनि नांहि व्यापै, काया काळ न कंपई।
ताव सीव न रोग तिसनां, दया करि मेटै दई।
कहै केसो करो किरिया, सुरगि सुप पावौ सही ॥ ४ ॥

१-(क) हुवै ज सुकरत साथि, आथि पंगि साथि न चलै।
काळ दियै कंठ ताळि, जीव जंमराय ले झलै।
प्रांण निकाळै पीटि, भीड़ि नंही भंजै भेळा।
मात पीता सुत सीर, वीर विरचै तिणि वेळा।

(शेषांश आगे देखें)

किया है[1]। एक हरजस में सौदागर के रूपक से सार रूप मे इसका स्पष्ट वर्णन इस प्रकार किया है :—

सोदागार सौदो करि भाई, इणि सौदं भाई भूलि न जाई ॥ १ ॥ टेक ॥
हिरदो करि हाट प्रभु नांव पसारा, लिमां खिडक सत खोलि दवारा ॥ २ ॥
पासंग करि प्रीति वचंन करि बाटं, ले सोदो आवं हित साटे ॥ ३ ॥
हित हट उवा सुरति करि साजू, अकलि उपाय तत जीभ तराजू ॥ ४ ॥
इण सौदं दुख दाळिद जावं, केसोदास तोटो नहीं आवं ॥ ५ ॥—सख्या २ ।

यों तो इन्द्रिय विषय-त्याग और योग-साधना से घट के भीतर भी "भगवत" से भेंट की जा सकती है किन्तु यह मार्ग सर्वसाधारण के लिए न होकर 'गरवा' लोगों के लिए है[2] ।

(ग) जो लोग ऐसा नही करते उनकी भावी दुर्दशा का मार्मिक वर्णन करते हुए कवि ने भावभरी चेतावनी दी है। "स्वर्ग-मार्ग" की खोज करने वाले व्यक्ति बहुत भाग्य-शाली हैं, किन्तु जो ऐसा नही करके आजीवन अपना पेट भरने मे ही लगे रहते हैं, वे लोभ

थकं चलरा रसना रहे, छाडि पिलग साथरि सोवं ।
कहि केसो विरचं अवर, साथि एक सुकरत हुवं ॥ २० ॥ —कवित्त ।

(ख) तु ही पिता परवार, तु ही तिणि वार उवारं ।
हठ सगठ तो है लाज, काज हरि तु ही सुवारं ।
श्रुति तु हि भगवत, साथि चाकर नही चेलो ।
आथि न सगपण साथि, रहै जदि हम अकेलो ।
हुली जीव हिचकी चडे, काया कु वळ कु भळाय मू ।
तिणि वेळा केसो कहै, पारब्रंम परवार तू ॥ २२ ॥ —कवित्त

(ग) कहा भयो जै टोडर पहर्‌यो, कहा हुवो कु डळ छमकायं ।
कहा भयो भू परि मा बैठ्यो, कहा भयो वड महल चिनायं ।
कहा भयो मिसटान क भोजन, कहा भयो वन के फळ पायं ।
कहा भयो एकल दिन काट्या, कहा हुवो परवार बढाये ।
सोचि विचारि कहै जन केसो, छूटिस नाहि विना हरि ध्यायं ॥ १७ ॥ —'सवइये' ।

१—इनका एक माथ उल्लेख इस छप्पय में द्रष्टव्य है :—
आळस म करि हरि ध्यान धरि, काळ सिर ताळ उवगी ।
मात पिता सुत नारि, साथि करि सुकरत सगी ।
प्राणी पाप पिछाणि, जाणि काय जहर विसाहै ।
नट वाजी चित चाव, भाव क्यो अहळ गुमावं ।
जरा जवर वासं वहै, अवर लाप इकवीस अरि ।
साम्य सिवरि सासो मिटं, केस भणं आळस मं करि ॥ ३३ ॥ —कवित्त

२—भंवर गुफा मा पेलै भंवरा, रूप वरण विण रीझै ।
ईडा पिंगळा प्रेम रसायण, तीन महारस पीजै ॥ २ ॥
भवरा गुफा ताजी पुर पाटण, सहजे रहै सुपाळा ।
वाकी बाट पिवै रस भोगी माचि रह्या मतवाळा ॥ ३ ॥
काम क्रोध लोभ तज लालच, मोह माया मद मेटै ।
केसो कहै सोई जन गरवा, भीतरि भगवंत भेटै ॥ ४ ॥
—हरजस सख्या १३ ।

का जहर पीते रहते हैं, उनके लिए आगे "अगति" तैयार है। उदाहरणार्थ नीचे उद्धृत गीत देखा जा सकता है :—

माघ सुरगां तणां थाघ लहिस्यै जकै, भाग माथै तकां घणों भारो ॥ १ ॥
त्याग कीयो नहीं तकै नर तरसिसै, लाग लेस्यें हुवै दागदारो ॥
भांनि मळधारियां दाखिस्यैं दुबळी, राखिस्यै अवगणै आदि गारी ॥ २ ॥
असत खेती करै आंनरा ओळगू, पेट नट छलिस्यै खेलि सारी ॥
लोभ री लहर सूं जहर पीयो जका, खता खयस्यै घणों होय खुवारी ॥ ३ ॥
मता पंगि मेल्हिस्यैं, विसण तां पेलस्यैं, मार सहिस्यैं घणी मुकति नांहीं।
जगत मां जींवतां भगति जांणी नहीं, अगति आगो लगी त्यार तांही ॥ ४ ॥
—'कवित्त' में से, छंद संख्या ७४।

ऐसे जहर पीने वाले व्यक्ति का दूसरों को दूध-दही पिलाने का प्रयास एक विडम्बना है किन्तु समाज में ऐसे 'मूर्खों' की भी कमी नहीं थी, जो स्वयं अज्ञानी होते हुए भी 'माया' के लिए ज्ञान-कथन करते थे। दूसरों को मशाल दिखाने की चेष्टा में वे स्वयं ही कूएं में पड़ते थे। केसोजी ने ऐसे लोगों का चित्रण इस प्रकार किया है :—

माया काजि दुनी परचावै, आपा परचै नांहीं।
औरां ने वैकुंठ बतावै, आप अगति नै जांहीं ॥ २ ॥
ग्यांन कथै से ग्यांनी कहियै, ते अपणै मंनि झूठा।
हळति पळति हरि मेळो नांहीं, जांसूं संइयां रूठा ॥ ३ ॥
एक लख तरवारि घड़ै लुहारा, तंत ताव करि साधैं।
घड़-वढाव अवरां नै सूंपै, आप एक नहीं बांधै ॥ ४ ॥
सिकलीकर सिकली कर सूंपै, मळि मोरिचा काढै।
उजळी करि कर अवरां सूंपै, आप जरै ही हांढै ॥ ५ ॥
दूध दही अवरां नै पावै, आप जहर ई पीवै।
हाथि मसाल कुवै मां पड़ ही, कहि केसो किम जीवै ? ॥ ६ ॥—हरजस ११।

(घ) ऐसे तथाकथित 'ज्ञानियों' की दो विशेष बातें थीं—(१) वे जो कथन करते थे, उनका पालन स्वयं नहीं करते थे; (२) वे विभिन्न वेश-भूषा द्वारा तत्त्वज्ञानी होने का प्रदर्शन करते और दुनिया को ठगते थे। केसोजी के अनुसार ये दोनों ही तत्त्व प्राप्ति के भ्रामक, विकृत और त्याज्य रूप हैं। व्यावहारिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में वे कथनी और करनी में अभेद और एकरूपता अपरिहार्य गुण मानते हैं। मुक्ति-साधना के साथ वे इनको जीवन-पद्धति भी स्वीकार करते हैं। काया का राजा मन है, असली कर्ता वही है इसलिए बाह्य वेश व्यर्थ है। ऐसे लोगों से अमृत की कामना दुराशामात्र है। इन दोनों का स्पष्टीकरण बड़े ही रोचक ढंग से कवि ने "पहळाद-चिरत" में किया है।

प्रह्लाद के असुर-भजन के अवगुण बताने पर[1] सहपाठियों ने कहा कि हृदय में

१—नारी नरपत वासदे, स्वांन सरप सिंघ नेह।
पहळाद कंहै सुंणियो सपा, असर भजंन फळ एह ॥ २५० ॥

तो हम भावद्-प्रेम रख, किन्तु जीभ से हिरण्यकशिपु का जप करें, प्रकट मे तो हरि को गाली दें, किन्तु हृदय मे "हेत" रख, तो भी हम प्रेम का फल–मोक्ष प्राप्त होगा। तात्पर्य यह कि मन तो किसी में रखें और कहें–कर कुछ और तथा जो कह वह करें नहीं। प्रह्लाद ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया :-(क) मन म गगा–तीर्थ की इच्छा हुई जो पूर्व मे है, किन्तु यदि जाएं पश्चिम की ओर तो तीर्थ नहीं कर सकते। विष–बलि बो कर मन म उससे अमृत–फल की आशा करना व्यर्थ है। विष–पान कर मन मे अमृत धरने मे अमर नहीं हो सकता। (ख) मुख मे कुछ कहें और हृदय मे कुछ रख तो चोरी करते हैं, चोर साधु नहीं हो सकता[1]। मुख खाड–शक्कर कहने मात्र से मीठा नहीं होता। अन्न–जल कहने म भूख-प्यास नहीं मिटती, उसको ग्रहण करने से ही मिटती[2] है। ऊपर कथित (ग) अज्ञानी लोगों के प्रसग में इन बातों (घ) को ध्वनित करते हुए केसोजी ने इस हरजस म मार्मिक चेतावनी दी है :—

फिरै अलूधा मूरिया, मेर करै मन माहि।
सतगुर सार न जाणई, खपि खपि खालो जाहि॥ २॥
मूंछ मुडावै मूरिखा, धरै भदर को वेस।
जो कुछि दरैस मन करै, कहा बिगाड़ै केस ?॥ ३॥
दरसण ले दुनिया ठगै, अंतरि अवर धियान।
दिल मा दया न ऊपजै, कहा चिरावै कान ?॥ ४॥
खासा पहरि खामी हुवा, क्निक धतावै कानि।
गहला गरब न कीजियै, मरणो नीछ निदानि॥ ५॥
दिन थकै पथ देखि ले, आय मिलै अंधियार।
कहि केसो काया थकी, करि कोई उपगार॥ ६॥–सख्या ५।

अतः एतद् विषयक कथन को सान्द्र और प्रभविष्णु बनाने के लिए तथा इसमें निहित चेतावनी के प्रमाण और भावना स्वरूप कवि ने व्यावहारिक जगत से सीधे सम्बन्धित दो

१–उर अक्षर राखा आन, जिभ्या हिरणाकुस रो जाप।
हरि हालो का फळ होय, जग जीव मिलसी म्हा आय॥ २५१॥
हरि हीआळो हिरद पालि परगट दे घणा मा गालि।
कर जोड़ै पहलादा कहै, सो वायक क्यू करिसा सहै ?॥ २५२॥
चित गगा की हुई चाहि, पूरब गग पछिम दिस जाय।
गुर का बचन न जाई किले, तीरथ मिनषो क्यू करि मिलै ?॥ २५३॥
विष बलि अपणै कर वाहि, इम्रत फळ की हुई चाहि।
विष पीवै इम्रत मन धरै, अमर हुवण की आसा करै॥ २५४॥
हिरदै औरै जाप करि, मुखे सुणावै और।
साध नहीं ससार मा, चोवन कहियै चोर॥ २५५॥
२–षाड सक्कर कहि देषो जोय, मुष मीठो षाड कह्या नहीं होय॥ २६६॥
जळ बिण पिया तिस न जाय, अन विण भूष वियापै आय।
गह मूठी पावै परसाद, सकर मणी जदि लहे सवाद॥ २६७॥

पहलुओं का वर्णन विशेष रूप से किया है। इनमें एक है बुढ़ापे[1] का तथा दूसरा है मृत्यु की अनिवार्यता और प्रबलता का[2]। बुढ़ापा मृत्यु का सन्देशवाहक है। ये दो जीवन के कठोर और अनिवार्य सत्य हैं, मनुष्य का इन पर कोई वश नहीं, अतः समय रहते चेतना बुद्धिमानी है। सुकृत क्यों करने चाहिएँ, इसका प्रमुख उत्तर कवि ने कर्म-फल-भोग की अनिवार्यता बताकर दिया है। दूसरे, जाम्भोजी के आधार पर उनका कहना है कि जीव ने गर्भवास में ऐसा करने का प्रभु को वचन देकर ही उस दुख से मुक्ति पाई थी[3]। इसलिए अपने किए हुए 'कौल' का स्मरण करके भी जीव को सुकृत करने चाहिएँ। 'कथा अघलेपा की' तो कर्म-फल-भोग विषय पर ही आधारित है। सांसारिक माया-मोह में पड़कर जीव भ्रमवश अपने महत् उद्देश्य-मोक्षप्राप्ति को भूल जाता है। लोगों का इस ओर से ध्यान हटाकर कवि ने उनके विचारार्थ एक दूसरी बात रखी है। सांसारिक विषय-वासना नश्वर है, मानव-देह से उनका भोग भी अल्प समय के लिए ही सम्भव है, इसका उल्लेख करते हुए मनुष्य को स्वर्ग सुख-भोग का सुभाव और विकल्प प्रदान किया है जो अनन्त और चिरन्तन है। इस कारण भी मनुष्य को लौकिक सुख-भोग की अपेक्षा पारलौकिक सुख-भोग की ओर सचेष्ट होना चाहिए। यही कारण है कि कवि ने अनेक रचनाओं में यथावसर स्वर्ग-सुख-वर्णन का संयोग निकाला है।

१-नीण जोति निरसाय, चलण पंगि रहैं चलंता।
काया पालटै नूर, कांनि कथ रहै सुणंता।
पीट तजै परताति, दसण डिगमिगा हाले।
जोवंन जुरा गढ पालटै, करि किरवांण न भाल्है॥
रसनां रूड़ ठिक न पड़ै, वया कूड़ नीची निछै।
केस भंणै ओसर गयै, कहि कामुंण करिस्यै पछै ?॥ ३२॥ -कवित्त

२-काळ जाळ की चोट न सूझै जीव कूं।
माया करै स नेह विसारै पीवू कूं।
जहर जड़ी मति हीण पुसी मां पात है।
हरि हां, केसौ जे नर जीव संमूळा जात हैं॥ २६॥
जंवंर तंणां दळ जोरि दंमांमां सिरि घुरैं।
पुहचै पार गिरांय् पिरांणी ऊवरैं।
मोत दिया मेल्हांण क हूई अवाज वे।
हरि हां, केसौ आयौ काळ करि कोप धंणी दिस भाज रे॥ ३५॥
केई जोजंन कोटि नगर जिनके वसैं।
दळ वादळ असवार इळा नित आदसैं।
कहि केसौ से मीर असा मयमंत था।
हरि हां, गिर्‌या गरद मा जाय, जिनां सिरि छत्र था॥ ४६॥ -'ग्रंथ चंद्रायण'।

३-उळंम लियौ संसारि पिंट ता पड़दा पुल्हा।
अवर न आवै चोति वाव लागे सह भुला।
जदि कर मींच्या कुंढ, रुंट जदि रोवण लगो।
गयौ ज वासौ भूलि, अवर नहीं सूझै अगो।
सुरति सरीर न संचरै, जळो जथा जिव जांणियै।
कौळ किया ग्रभवास मां, जकै वैंण विसार्‌या प्रांणियै॥ २८॥-कवित्त।

कतिपय लुप्त और अप्राप्य रचनाओं के संकेत :–केसौजी की रचनाओं में कतिपय अन्य महत्वपूर्ण बातों की जानकारी और पुष्टि होती तथा कई प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का निराकरण होता है। ऐसे कई उल्लेख तो स्पष्ट हैं, कई संकेतित, ध्वनित और अनुमित हैं। नीचे इनका परिचय दिया जाता है :—

१–सत्यवादी महाराजा हरिश्चन्द्र-चरित या कथा पर किसी विष्णोई कवि के पृथक् काव्य की सम्भावना :—सम्प्रदाय में चारों युगों में क्रमशः प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर और जाम्भोजी के साथ ५, ७, ९ और १२ कोटि जीवों के उद्धार की मान्यता है। प्रायः सभी विष्णोई कवियों ने किसी न किसी रूप में न्यूनाधिक मात्रा में इसका नामोल्लेख या संकेत किया है। इनमें केसौजी ने सत्य, द्वापर और कलि-तीन युगों से सम्बन्धित चरितों पर तो स्वतन्त्र रूप से रचनाएँ की हैं, किन्तु त्रेता के हरिश्चन्द्र-आख्यान पर नामोल्लेख के अतिरिक्त नहीं। इसका कारण उनसे पूर्व या समकालीन किसी विष्णोई कवि की एतद् विषयक प्रसिद्ध रचना का उनके सम्मुख रहना प्रतीत होता है। स्वतन्त्र रूप से रचित ऐसी कोई कृति शेष विष्णोई साहित्य में भी उपलब्ध नहीं है, जो होनी चाहिए। यह कड़ी टूटी हुई लगती है। समग्र विष्णोई साहित्य तथा केसौजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के आधार पर हमारा अनुमान है कि ऐसी रचना हुई तो अवश्य होगी, किन्तु काल-कवलित होने या कहीं अज्ञात पड़ी रहने से प्रकाश में नहीं आ पाई है। जिज्ञासुओं को इस ओर प्रेरित होना चाहिए।

२–सबदवाणी के कतिपय अप्राप्य और लुप्त सबद :—कथा विगतावळी में केसौजी ने सम्प्रदाय में मान्य आचरण, धर्म-नियमों और प्रमुख विचारों का उल्लेख किया है तथा अधिकांश के समर्थन में स्पष्ट रूप से जाम्भोजी या सबदवाणी का प्रमाण दिया है। ऐसे अनेक उल्लेखों के प्रमाण तो सबदवाणी में मिलते हैं, किन्तु कतिपय के नहीं भी मिलते। जिनके प्रमाण नहीं मिलते, उनसे सम्बन्धित 'सबद' अवश्य होने चाहिएँ। ध्यातव्य है कि जहां कवि ने अपने कथन के प्रमाण-स्वरूप कुछ नहीं कहा तथा जाम्भोजी के वचन का प्रमाण न देकर दूसरे सिद्ध कवि का प्रमाण दिया या संकेतित किया है, उसका विचार यहां नहीं किया गया है।

(क) नीचे पहले उन विषयों में से कुछ का उल्लेख 'विगतावळी' के उदाहरण सहित किया जा रहा है, जिनसे सम्बन्धित सबद अद्यावधि अप्राप्य और लुप्त हैं :—

(१) बिना छाने पानी पीने के अवगुण : पानी ईंधन और वाणी–तीनों को 'छानने' सम्बंधी :—

—सबदवाणी में इसका उल्लेख मात्र ही है (११२ : २)।

(क) अणछाण्यं जळ अवगण अंति, भेस्य हुई कहियो भगवंति।
अणछाण्यो जळ वरतें इवं, चौरासी भुंय मंडिळि भुवं ॥ १०२ ॥

(ख) पार ब्रम पोह दाखवं, ताको रहो ज तंत।
अणछाण्यो पांणी पिवं, अवगंण पाप अनंत ॥ १०३ ॥

(ग) ईंधण पाणी बोलणो, कह्यो जगत गुर जाण।
देव दया करि दाखवं, अं तीन्यो तत छाणि ॥ १०८ ॥

(२) सांप मरवाने पर नरकवास, एतद् विपयक जीव–हत्या स्वरूप सवद :—

इसमे सवदवाणी का प्रमाण है किन्तु ऐसी कोई साखी भी उपलब्ध नहीं है।

पारब्र'भ परगट जहां आप, अ'तेवरी मरायौ साप।
सापि सवद मां साधे कही, सरप पाप ता दोरै गई ॥ १७६ ॥

(३) दलाली न करने सम्बन्धी :—

चितौ परहरी गुर की चाल, करै दलाली हुवै दलाल।
कूड़ कपट करि मेलै साटि, पाप पड़सी आंणै खाटि ॥ १८५ ॥

(४) दूना–ड्योढ़ा व्याज लेने और उसकी "अखाज" कमाई सम्बन्धी :—

दू'णी दोढी लिया वियाज, अ'तरजांमी कह्यौ अखाज।
सुरगे जांहि कंवळ फेरि, निकळि जीभ हुवै ढंमढेरि ॥ १९१ ॥

(५) "सात छोत" टालने सम्बन्धी :—

पोह लहि पातर मंज्य परोटि, पहली छोति गिणीजै ओटि।
आहार उकति जदि नांपै वळि, दूजी छोति अवस्यै करि टाळि ॥ २२४ ॥
तीजी काया छोति कुसंगि, रुही अछोप निकाळै अ'गि।
पांचवीं छोति गिणी पेसाव, जळ पापो जीव हुवै अजाव ॥ २२५ ॥
सुचि करि काया पिंड पपाळि, छोति छठी रंवणी रुति टाळि।
छोति एक मिरत की गिणी, धारी धरंम वतायो धंणी २२६ ॥
सुपन सेझ संजोग मां, गंद्रफ झड़ै निहाळि।
सात छोति गुर दापवी, अै नर सुधि करि टाळि ॥ २२७ ॥

(६) पाँच दिन रजस्वला स्त्री की और तीस दिन सूतक की "छोत" सम्बन्धी :—

(रजस्वला का उल्लेख छन्द २२६ में भी है)।

टाळी छोति कही जगदीस, रुति पांच जापै दिन तीस।
जां जां काया रहै असुध, तां तां थंणां न दुहियै दूध ॥ २२८ ॥

(७) बेटी, बहन, भतीजी, भानजी के दाम न लेने सम्बन्धी :—

(सवदवाणी में "वियादान" का उल्लेख तो है, किन्तु स्पष्ट रूप से इनका नहीं)

बेटी बांहंण भतीजी भंणी, भाड़ि लियैं भांणजियां तंणी।
वायक मेटै सतगुर तंणौं, भवसागर मां भु'विसै घंणौं ॥ १७४ ॥

(८) तमाकू, शराब, अफीम, भांग के वर्जन सम्बन्धी :—

(तमाकू सम्बन्धी कोई उल्लेख सवदवाणी में नहीं है)

लेहै तमाकू आफू जांणि, मल्य पोशत जळ पीवै छांणि।
वरजी भांग लीय ने बुरा, संहंस जू'णि होयस्यै सुकरा ॥ १७१ ॥

(९) लोगों की शुद्धाशुद्ध बोली के सोदाहरण प्रयोग सम्बन्धी :—(वील्होजी की 'सच अपरी विगतावळी' तथा आंशिक रूप में केसोजी की 'विगतावळी' की भांति)।

क-अपरम हू तो औसरी, परति न छिपै पाप ॥
सुगुर सुवांणी दाखवो, अभपळ परज्यो आप ॥ १३३॥

(ख) अब कुछ ऐसे छंद उद्धृत किए जा रहे हैं, जिनके उल्लेखो के प्रमाणस्वरूप "सबद" प्राप्त हैं। ऐसे विशेष उल्लेख मोटे अक्षरो म छपे हुए हैं।

१-सकळ पाप मन ता परहरै, किरिया करि अभपळ उचरै।
साखि सबद मा सतगुर कही, रतन कया मुख सूवर सही ॥ १४९ ॥
सबदवाणी २८ ४१, ४२, ८२ २।

२-जीवारों जिम्या कं ताणि, मिरजणहारै कह्यौ सुवाणि।
देव दया करि दीन्हौ दान, गरमुखि खोजो केवळ ग्यान ॥ १४० ॥
-सबद ७२।

३-गुर की कह्यो न खोजै ग्यान, कुपहा दियो कुपातां दान ॥ २०६ ॥
-सबद ५४।

४-राख सिदक सतगुर कै साथि, दसबद सरचै जीव जगाति।
करि करणी पाव मनि मोख, टाळं अवसि अठारा दोख ॥ २१८ ॥
-सबद ५६, ६०।

५-गहण इग्यारसि मावस मूळि, सेत्र रमै ते परतकि थूळि।
सोम इग्यारसि रवि दिन गिणो, वरजी विसन वाडै मत वणो ॥२२१ ॥
-सबद ६।

६-बाळग कहै वाल्हो तथा, बोनो साच समाळि।
काठ तणो घोडा करू, देखि चराऊ दाळि। २५६ ॥
-सबद ९०।

७-तजियन खोटा अर खड्डहड्या, भुय जळ सू पूठा वाहडया।
साख सबद मा सतगुर कही, भ्रांति भिसति न जाई सही ॥ ३३२ ॥
-सबदवाणी ७५ ५, १०१ ४।

८-फुरमाई रहणी मा रही, सिवरि विसन गुर मारग गही ॥ २१३ ॥
-अनेक सबद।

इसम ऐसे भी उल्लेख हैं जिनमे अन्य सिद्ध कवियो की रचनाओं का सकेत है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

पडि पडदो पाडै मत, कहो न घाती घात।
चोरी ता दोरै गया, वड तीरथ की वात ॥ १७५ ॥

इसमे एतद् विषयक वील्होजी की साखी सख्या ९ को सकेतित किया गया है।

३-जाम्भाणी विचारधारा, उसकी धार्मिक पृष्ठभूमि का परिचय तथा सम्प्रदाय पर नाथ-पथ या मुसलमानी प्रभाव की धारणा का निरसन —

केसोजी की रचनाओ से एक ओर जहा जाम्भाणी विचारधारा और विश्णोई सम्प्रदाय सम्बन्धी स्पष्ट तथा प्रामाणिक जानकारी मिलती है, वहा दूसरी ओर दो भ्रांत धार-

णाओं का भी निराकरण होता है। ऐसी कतिपय बातों का उल्लेख नीचे किया जाता है :—

(क) जाम्भोजी ने ब्राह्मण, मुसलमान, नाथ और जैन-चारों 'धर्मों' के अनुयायियों को चेताया और उनको ज्ञानोपदेश दिया था। कवि ने इन चारों को प्रमुख विशेषताएँ भी बताई हैं। (कथा विगतावळी, छन्द १५५-१५६)। अनेक मार्गों को मथ कर जाम्भोजी ने उत्तम पंथ चलाया था[1]। इस आधार पर साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि को भली-भांति समझा जा सकता है।

ख-पुराण और कुरान को त्याग कर विष्णुजप का उपदेश जाम्भोजी ने दिया था।

ग-नाथपंथ और विष्णोई सम्प्रदाय में सैद्धान्तिक और साधनात्मक अन्तर था। हठयोग की अपेक्षा इसमें विष्णुनाम-स्मरण ही मोक्ष का सर्वप्रमुख साधन है। दूसरे, विष्णोई सम्प्रदाय, यद्यपि गृहस्थ और सन्यासी दोनों को स्वीकार कर मुक्ति-साधन बताता है तथापि विशेषतः और मुख्यतः वह गृहस्थ लोगों के लिए आत्मोद्धार का मार्ग प्रशस्त करता है। नाथपंथ में इससे उलटी बात है। विष्णोइयों और नाथजोगियों के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण का बहुत अच्छा परिचय कवि ने "कथा लोहापांगळ की" में दिया है। उदाहरण-स्वरूप केल्हण और लोहापांगल का संवाद द्रष्टव्य है[2]।

घ-सम्प्रदाय में मान्यता है कि मुहम्मद साहब के साथ एक लाख अस्सी हज़ार जीवों का उद्धार हुआ था। उन्होंने अपने अनुयायियों को कलमा, नमाज, रोजा आदि के पालन का उपदेश दिया था। कालान्तर में मुसलमानों ने उनकी शिक्षा को छोड़ दिया और अनेक कुकर्म करने लगे। इनका उल्लेख मुसलमानों के लिए चेतावनी-स्वरूप समझना चाहिए। पहळाद चिरत[3] में आए उल्लेखों से इसका संकेत मिलता है, जिसकी पुष्टि

१-तीनि सै तेसठि मथि मारग, पंथ उतिम चलाइयो ॥-साखी संख्या १०।

२-केल्हंण आयस नै कहै, उरि मांहे मेटो अंणराय।
अवळा मां औगंण किसो, बिध सूं आयस मोहि बताय॥ ८९॥
आयस केल्हंण सूं कहै, सांभळि विधि मूं बात विचारि।
अै कांमंणि सभ कारवी, उरि अपांवंन निपरी नारि॥ ९०॥
नारी निपरी का नहीं, आयस रे उरि अंतरि रैणि।
अपावंन आयस तूं ही, अै रवंणी रतनां री पैणि॥ ९१॥
रवंणी माया जगत मां, रवंणी उपजी पैणि चियारि।
राव रंक नर देवता, रंवंणी लद्ध भुगतै संसारि॥ ९२॥
केल्हंण आयस आप मां, गाढ करि कियो मंनि गुझि।
तैं बारै बरस हरि नां भज्यो, आयस मुप अपावंन तुझि॥ ९३॥

३-पांच सात नव भेळा जोड़ि, बाकी रह्या दवादस कोड़ि।
हुकंम करै महमंद नै आप, जिभिया विसन जपावैं जाप॥ ५६७॥
मुप महमंद को कलमों करो, मार बादि मुप ता परहरो।
अनूं नवाया महमंद आप, पालिकजी री पढ़ैं थिलाप॥ ५६८॥
पीर पैकंबर सहुवा सार, हाजरि एक लष असी हजार।
कोड़ि कही पूगी नहीं कांम, महमंद मरद कियो विराम॥ ५६९॥

कथा इसकंदर की[1] तथा विगतावली[2] में आए वर्णनो से भी होती है।

केसोजी के सवाद अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं, वे उनको विशेष प्रिय प्रतीत होते हैं। आख्यान-काव्यो के अतिरिक्त कवित्तों और दोहों मे भी सवाद-सृष्टि कवि ने की है। उनके नीति-कथन अधिकाश में व्यंजित ही हैं। जहा ऐसा सीधा कथन किया गया है, वह जन-साधारण के दैनदिन जीवन से घुलामिला होने के कारण अत्यन्त प्रभावशाली खरा और चुटीला है[3]। नाथ जोगी, मुसलमान और नारी सम्बन्धी इतना विस्तृत वर्णन विष्णोई कवियो मे पहली बार इनकी रचनाओं म मिलता है। इनके काव्य म पाठक को लुभान का विशेष गुण है। कई बातों को कवि ने दोहराया भी है, पर प्रत्येक बार उनमे नवीनता प्रतीत होती है। मरुदेशीय समाज और सस्कृति का जीवन्त चित्रण इनम मिलता है। कवि की भाषा, तत्कालीन

१–जोगी अरु मोनी धारी, हिरद ब्रह्म ग्यान विचारी ॥ २४ ॥
तुम पिड पपाळो पाणी, सुचि साभि लियो ब्रह्माणी।
रोजा करि कलमा सारी, तुम साच निवाज गुजारी ॥ २५ ॥
निज धरम दया मनि आणो, हिरदै मुष विसन वषाणो।
मन कू उनमन धरि आणो, तुम मुष बोलो सुर बाणी ॥ २६ ॥
–जाम्भोजी का हासिम-कासिम को उपदेश।

२–महमद को कहियो कीजिसी, रज रज को लेपो लीजिसी।
चोवस न्याव कर चुनिरै, अरज उमति की महमद करै ॥ ३३० ॥
रोजा राषै करै निवाज, ताह की महमद वहिमी लाज।
जाह की महमद करै सहाय, ताय नै सुरग दियै सुरराय ॥ ३३१ ॥
–मरने पर फल-प्राप्ति के सदर्भ म।

३–एतद् विषयक तीन छद द्रष्टव्य हैं —

(क) किसी सूब री सीव किसो कोंदू को करसण।
किसो मुछ को भाव, भूत को किसो दरसण।
किसो कायर को सग, किसी खर की असवारी।
किसो बाद को चीज, किसी दासी की यारी।
धर कायर भुछ भिया निघर, काद कुएँ न लजई।
कोंदू करसग सूब दत, भूतां भीड न भजई ॥ ४ ॥–कवित्त

(ख) सीरै सुरनि लगाय, षाड की षबरि न जाणी।
गुड गोलो गटकाय, पेट छालियो पिराणी।
रेवाड्यां रढ लाय, स्वाद करि कदे न चषी।
जळेबी न जुडी, नवा त नीएं नहीं परषी।
सन मुरबो न मिल्यो, कहि मेवा माणो किसी।
पक्वान पान पाया नहो, पळि जीमी हुवो षुसी ॥ ५ ॥–कवित्त।

(ग) मोतिया की माळा रगि, इधक विराजै अगि,
ऊजरि दिपाई देत, कहा पेटि जीजियै।
सोन रन्य कटारि होय, इधक सवारी होय,
ऊजरि दिपाई देत, कहा पेट दीजियै।
कपतो सरीर आय पावक पासे बैठै जाय,
इधक पियारी होय, कहा गाँठि बाधि लीजियै।
अतरि अनेक धात, आयें की न बुझै बात,
रूप ही अनूप होय (कव कहे केसोदास) कहा धोय पीजियै ? ॥ २९ ॥–'सवइयं'।

लोगों की बोलचाल की भाषा का सही शब्दों में प्रतिनिधित्व करती है। केसोजी का व्यक्तित्व और कृतित्व विष्णोई साहित्य में ही नही, राजस्थानी साहित्य में भी निराला है। अनेक कोणों से वह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है।

६९. सुरजनदासजी पूनिया : (संवत् १६४०-१७४८) :

जीवनवृत्त : सुरजनजी (अपरनाम- 'सूजोजी') गांव भीयांसर के और जाति के पूनिया थे। छोटी उमर में कुमारावस्था में ही, केसोजी की भांति, वैराग्य-भाव से ये वील्होजी के शिष्य होकर साधु बन गए थे। वील्होजी के सात शिष्यों में सर्वाधिक प्रसिद्ध सुरजनजी और केसोजी हुए है। संवत् १६७३ में वील्होजी ने अपने स्वर्गवास के समय इनको रामड़ावास का महन्त बनाया था। इससे उनके प्रभाव, महत्व और वैचारिक प्रौढता का पता चलता है। वील्होजी के स्वर्गवास पर कहे गए मरसियों से इनकी भाषा- परिपक्वता का प्रमाण मिलता है। इस समय इनकी आयु अनुमानतः ३०-३३ साल की मानने से जन्म संवत् १६४० के लगभग ठहरता है। इनका स्वर्गवास संवत् १७४८ में जाम्भोळाव मे हुआ था[1]। वहां से इनके शव को भीयांसर लाकर पूनियों के 'गुवाड़' में समाधिस्थ किया गया। प्रसिद्ध है कि समाधिस्थान पर लाल पत्थर का एक चबूतरा भी बनाया गया था जो अब रेत में गड़ा हुआ बताया जाता है।

सुरजनजी रामड़ावास में न रह कर उससे एक कोस दूर पूर्व- दक्षिण में स्थित एक 'नाडी' (तालाब) पर ही प्रायः रहते थे। यहां इन्होंने अपने लिए एक छोटी सी 'छान' (झोंपड़ी) बनायी थी। तब से लोग इस तालाब को 'छान नाडी' या 'सुरजन नाडी' कहने लगे। अब भी यह इन्हीं नामों से प्रसिद्ध है। ये प्रदर्शन और आत्म-प्रशंसा से दूर, वीतरागी महात्मा थे। यही कारण था कि इन्होंने किसी को भी अपने शिष्य-रूप में स्वीकार नही किया, फलतः इनकी शिष्य-परम्परा नही चली।

इनकी शिक्षा-दीक्षा के विषय में विशेष ज्ञात नहीं है किन्तु रचनाओं से विदित होता है कि ये अनेक विषयों के विद्वान्, संस्कृत के पण्डित और मरुभाषा के मर्मज्ञ थे। जाम्भाणी विचारधारा,- साहित्य और सम्प्रदाय का इनको तात्त्विक ज्ञान था। इसकी पुष्टि के लिए यही कहना पर्याप्त है कि आगे चल कर इनको विष्णोई सम्प्रदाय का 'सूतजी' मान लिया गया था। गद्य में पौराणिक पद्धति पर रचित 'जाम्भोळाव-महातंम' (प्रति संख्या ३९३ (क) की कथा के वक्ता सुरजनजी ही है[2]। 'हिंडोलणो' और 'भक्तमाळ' में इनका नामोल्लेख

१-"समत १७४८ झांभोळाय सुरेजंनजी चलांणो कीयो"—"साका" प्रति संख्या २०१, फोलियो ५४६-४७।

२-"एक समें श्री सूरजंनजी महाराज जहां तहां उपदेश करते हुए दर्शन के लिए पश्चम (पश्चिम) तीर्थ जम्भसरोवर अर्थात् जांभोळाव तळाव को गए। वहां पोहोच विधि पूरवक होम जाप स्नान विधान करके मिट्टी काटते हुवे। सुरजनजी का बरताव देखकर (शेषांश आगे देखें)

है। साहबरामजी ने सुरजनजी के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है— 'वे योगी, कवि, शास्त्रज्ञ- पंडित, ज्ञानी, भक्त, संगीत विद्या के जानकार, निःशंक और निर्भीक व्यक्ति थे। उनको और केसोजी को जाम्भोजी का मन मानना चाहिए। शास्त्र से अविरोधी 'निशक सास' सुरजनजी की ही थी, तथा धर्म नियम पालन में वे बड़े दृढ़ थे। योग-ध्यान से वे 'उनमुन' होकर 'अगम घर' में विचरण करते थे' (प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र २४, ३०, ३२)। उन्होंने 'जम्भसार' (प्रति संख्या १९३) में प्रसंगवश सुरजनजी के विषय में किंचित् विस्तार से लिखा है, जिसका सारांश इस प्रकार है –

बिश्नोई धर्म को विचलित होते जान कर सुरजनजी जोधपुर गए और वहां लोहा पोळ पर उतरे तथा अनेक प्रकार से हरि गुण-गान किया। इसे सुन कर महाराजा अभयसिंह, आवड़दान चारण के साथ इनके दर्शनार्थ वहां गए। भेंट-समय चारण के प्रश्नों का उन्होंने समुचित उत्तर दिया। 'दुरगदास' के 'मेह का परचा मांगने' पर खड़े होकर उन्होंने "गुड़े अब निमाण" गीत (संख्या ३) कह कर वर्षा करवाई, जिससे दुष्काल दूर हुआ। तब राजा ने प्रसन्न होकर उनकी इच्छानुसार परवाना कर दिया। वे गांव गुढा में आए और इस प्रकार अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए रामड़ावास में चातुर्मास्य करने लगे। तभी कापरडा में मेला लगा जिसमें उन्होंने भी अपने बैल भेजे। हाकिम 'दुरगदास' ने बारहट के भमाने पर वे बैल अपने पास मंगवा लिए और 'मरणभै' जानने के लिए सुरजनजी को बुलवाया। वे वहां गए, बारहट का शंका-समाधान, और हाकिम को ज्ञान दिया तथा बैल छुड़वा कर वापस आए। उन्होंने बहुत समय तक ज्ञानोपदेश दिया और योगसाधना से ब्रह्मलीन हुए— प्रकरण २३, पत्र २४-३२। इस कथन से सुरजनजी की सिद्धि, साधना, हरिभक्ति, योग, प्रभाव और प्रसिद्धि का निःसंदिग्ध रूप से पता चलता है। इसमें सुरजनजी का मिलन महाराजा अभयसिंजी से बताया गया है जो भूल है। अभयसिंहजी के जन्मकाल संवत् १७५९[1] में तो सुरजनजी को स्वर्गवासी हुए ११ वर्ष बीत चुके थे। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि इनके स्थान पर महाराजा जसवन्तसिंहजी का नाम होना चाहिए, जिनकी मृत्यु के पश्चात् हुई मारवाड़ की स्थिति पर स्वयं कवि ने भी रचनाएँ की हैं। उल्लिखित गीत 'इन्द को' से मारवाड़ में मेह बरसाने की दन्तकथा बहुत प्रसिद्ध है। यही नहीं, फलोदी और जैसलमेर में भी, इससे वर्षा करवाने की बात प्रचलित

चेत्र की अमावस्या पर आये जो जातरी लोग कहते तथा भीयासर मुजासर के चाखु चमीना आदि के सरदार लोग बूझते हुवे कि हे महात्माजों हम सबं को कृपा करके जाभोळाव का महात्म्य सुनावो कि क्या महातम है बूझते हैं जिसके प्रभाव से आप भी तपसी ध्यानी वैरागवान होने पर इस जाभोळाव की बडी पूजा करते हो। श्री सुरजनजी ने कहा कि हे सरदार और विष्णु भक्तो तुमने बहोत अच्छा बूझा कि यह ससार के कल्याण का मार्ग है और यही बात येक वार जैसलमेर के राजा श्री रावल जैतसी राजा और श्री रणधीरजी ने बूझी थी, श्री जम्भेश्वरजी महाराज सभराथळ पर विराजमान थे-"। -प्रति का आरम्भिक अंश।

१ (क) ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खंड, पृष्ठ ६०५, संवत १९९८।
(ख) रेउ मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ३३१, सन् १९३८।

है, जिसके समर्थन में सुरजनजी का एक कवित्त भी कहा जाता है। ध्यातव्य है कि सम्बन्धित कवित्त[1] 'जम्भसार' में सुरजनजी रचित बताया गया है। कापरड़ा का मेला सुरजनजी से पूर्व भी प्रसिद्ध रहा है जिसमें धवा गांव के विष्णोई रामू खोड के बलिदान की कहानी तो बहुत प्रचलित है (द्रष्टव्य–रामू खोड, कवि संख्या ७२)। इन घटनाओं के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अपने गुरु बील्होजी के प्रति तो सुरजनजी की असीम श्रद्धा-भावना थी। उनके वैकुण्ठवास पर कहे गए मरसियों में सुरजनजी का हृदय चीत्कार करता सुनाई पड़ता है। यह खेद की बात है कि सुरजनजी जैसे पहुंचे हुए सिद्ध विष्णोई कवि के जीवन-चरित के विषय में इससे अधिक और कुछ भी सामग्री नहीं मिलती। विष्णोई भाटों, यहां तक कि पूनियों के भाटों के पास भी तत्संबंधी कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं है।

रचनाएं : सुरजनजी की मुक्तक तथा अन्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं :–

(१) साखी (९)।
(२) गीत (१८)।
(३) हरजस (४८, इनमें अंतिम ८ डिंगल गीत हैं)।
(४) साखी : अंग- चेतन (दोहे १७६)।
(५) दस अवतार दूहा (छंद २०)।
(६) असमेध जिग का दूहा (४५)।
(७) छन्द ("सुरजनजी के छन्द" ७३)।
(८) कवित्त (३३६)।
(९) कवित्त-बावनी (३०)।
(१०) सवइए (३०)।
(११) कथा चेतन (३१)।
(१२) कथा चितावणी (२५)।
(१३) कथा घरमचरी (८०)।
(१४) कथा हरिगुण (१९२)।
(१५) कथा ओतार की (२३७)।
(१६) कथा परसिघ (१९५)।
(१७) ग्यान महातंम (२००)।
(१८) ग्यान तिलक (१०४)।

१–कर घटा कूंजरे, दरक कोरण घर बारे।
असलूंब आरंभ, धज बीजळ पग धारे।
महर मोज झड़ लाय, कहर उपकार करंतां।
अमी धार ओसर्‌यो, पीर वूठो कवि-पेतां।
सो भीजै राळ गिगन छत्र, धज रज बंधियो सेल घर।
गरजियो तम जेसांण धरा, इंद्र गात वूठ्यो अंमर। –प्रति १६३, प्रक. २३, पत्र २७।

(१९) कथा गज मोख (६९)।
(२०) कथा उषा पुराण (२३२)।
(२१) भोगळ पुराण (३०३)।
(२२) रामरासो (कवित्त रामरासे का) (१७६)।

इनके रचनाकाल के विषय मे निश्चित रूप से कुछ कह सकना सम्भव नही है। मोटे रूप से इनका निर्माण लगभग सवत् १६६० से कवि के स्वर्गवास पर्यन्त रहा है।

मुक्तक रचनाओं मे, प्रति सख्या ८१, १२१ और २०१ मे लिपिबद्ध कवित्तो की रचना ही नही, सकलन- सग्रह भी सवत् १७३० से पूर्व तक अवश्य हो जाना चाहिए। कारण यह है कि इन प्रतियो मे महाराजा जसवन्तसिंहजी की मृत्यु (सवत १७३५) के पश्चात् कहे गए ऐतिहासिक कवित्त लिपिबद्ध नहीं हैं। प्रति सख्या २०१ म कवि के सर्वाधिक कवित्त पाए जाते हैं। इसमें 'सबदवाणी' तथा 'पोथे' की अतिम पुष्पिका में लिपिकार परमानन्दजी के कथन से भी उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है। रामरासो की रचना सवत् १७०० के लगभग होने का अनुमान है।

आगे क्रमशः इन रचनाओं का परिचय और विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) साखियाँ : सुरजनजी की निम्नलिखित ९ साखियाँ मिलती हैं[1] -

(१) रे गुर भाई मांनूं विसन सगाई, जीव सुधारय सोई ॥ छन्द ४, छदा की।
(२) बाबो झिलियो छै अमुं वण तार, जोति विराजै निज थळा ॥
—छन्द ५, छदा की, राग धनासी।
(३) पनरासै अवतार लियौ आठम्य सोम अठोतरै ॥ छन्द ४, छदा की, राग धनासी।
(४) सतजुग वाचा थयौं सरै, क्यौं घर हुई उ मेद ॥ छन्द ४, छदा की।
(५) विसनो विसन वखांणो, वल्य सारगप्रांणी ॥ छन्द ५, छदा की, राग मारू।
(६) अंतरजामी आतमा प्रभवास पुजाए। पक्ति २५, कणा की।
(७) देस पछिम कं गरजि करं जो, धण ओल्हरि आयो। छन्द ४, छन्दा की।
(८) झड करि वूठो भाव करं, भगता कं ताईं। छन्द ४, छन्दा की।
(९) ओदरि वास लियो मेरा जी हो, ता दिन वार करारी।
—छन्द ४, छन्दा की, राग सोरठि।

साखियों के मूल मे दो बातें हैं—चेतावनी और जम्भ-महिमा। दो साखियों (सख्या ६ और ९) मे कवि ने विविध प्रकार से सासारिक-व्यवहार, मानव-जीवन और आवागमन-प्रक्रिया, सार तत्त्व, चरम-प्राप्तव्य, सुकृत आदि का सकेत करते हुए अत्यन्त मार्मिक चेतावनी दी है। दर्शनीय यह है कि इनमें शुष्क उपदेश नही हैं। प्रत्येक कथन के समर्थन में कोई न कोई कारण या विशेष बात बताई है, जिसका अनुभव ससार और लोक-व्यवहार में आए दिन जनसाधारण को होता रहता है। अपनी बात को कवि ने बडी आत्मीयता

१—प्रति सख्या ६५, ६८, ७६, ८३, ८४, १४१, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, २१३, २१५, २६३, २८९, ३२१।

से भाव-भीनी सरल वाणी में कहा है और जो कुछ कहा है उसमें अपने समस्त अनुभव का सार निचोड़ कर रखा है। परदुख-निवारण उसका उद्देश्य है[1] ।

शेप साखियों में प्रकारान्तर से जाम्भोजी की महिमा, गुण, कार्य, उनके यहां आने का उद्देश्य, पंथ-प्रवर्तन, उपदेशों और कार्यों का सार तथा खरे विष्णोई के लक्षण आदि-आदि का अनेकविध वर्णन है, जो सहज भाव से व्यक्त किया गया है।

विष्णोई-साखी-परम्परा में विपय, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सरस वाणी में भाव-प्रकाशन की संक्षिप्तता इनकी विशेपता है।

(२) गीत (प्रति संख्या २०१) : कवि के कुल २५ गीत प्राप्त हैं। इनमें से ८ की गणना "हरजसों" में किए जाने के कारण यहां शेप १७ का उल्लेख किया जा रहा है :—

(१) काळ हंस ऊपरें ठाळ करतो कहर, सधार वो पार अधार सांई। दोहला ४।
(२) करतार तंणी परमोधे वडा कवि, जंण जंण तंणा वखांणे नेम । दोहला ५।
(३) गुड़े वंब नीसाण नें क्षिल पड़े गिरवरां, आज रा पुंन पाळग आवो। दोहला ४।
(४) मंन सुध सींवरी मं भूले मंन, घात चूके दाव घरि। दोहला ५।
(५) राजकुंवरी पेखे पटरांणी, गहि आतंम नांखियो गरद। दोहला ५।
(६) सुखपति दुखी ए जीव एक सरि, सिरजंणहारो एक सहि। दोहला ४।
(७) मूक्षि वळ राजि अवतांण मेटो मरंण, असंख दळ दैत वक्रि रुकंम आया। दोहला ५।
(८) ब्रंभा इंद महेसर वैठा, सुर नर नाग करें तो मेव। दोहला ५।
(९) किसो मोढि सांमांन्य राजा न बीजा किसूं, ब्रद केण्य छाजयसी ब्रद वाया। दोहला ५।
(१०) कळाहिणि फौज करे कप कोरंण, आवध धुरें दवादस ईंद। दोहला ५।
(११) मांनियो नाग पुर वीर सुर मंडळी, संकिया भुंवंण दस च्यारि सारी। दोहला ५।
(१२) आंवंणहार तको अवतरियो, माता लखें न पिता मंन्य। दोहला ५।
(१३) मेडुंनी आपंणी मं ग्यंणि रे मांनवी, यावियां साथि नहीं अंति यारी। दोहला ५।
(१४) आपरी एक अहोनिस आदमी, सांम्य सूं सासि अरदासि सारी। दोहला ५।

१-इस सम्बन्ध में अंतिम साखी के २ छन्द द्रष्टव्य हैं :—
विहंगम उटि चल्या मेरा जी हो, आए वुग वहेला।
औघट पार लंघो मेरा जी हो, हरि सूं जाव दुहेला ।
जाव दुहेला जीव अकेला, दुत दहुं दिस देपियें ।
गांठि गरथ न नांहि थिरे जीव, परवार साथि न पेपियै ।
सुकरत पापो मीत माया, चीत ओ तंन वीसरे ।।
उडिया विहंगम वुग वयठा, चेति जीव इण औसरे ।। ३ ।।
सागर पार मिटै मेरा जी हो, सुकरत करि संसारी ।
ओ तंन पाक मिलै मेरा जी हो, पर उपगार चितारी।
उपगार सार चितार रे जीव, कह्यो गुर को कीजियै ।
जीवत मरियै अजर जरियै, नांव निहचळ लीजियै ।
सुरगि सुप अनूप इधका, विसंन दरसंण भेंटियै ।
सुरजन जन की वीनती, संसार सागर मेटियै ।। ४ ।।-प्रति २०१।

(१५) मितर न क्यों घरे मिवरे, भाइये भोर न का भलाई । दोहला ४ ।
(१६) आदे पुरेख भने नुमळ आंमी, कळि विरोध परहरि चित कांमी । दोहला ३ ॥
(१७) दुरेस कहू मन मानै दुलिया, दु नियां कहत स नावै दाय । दोहला ४ ।

वर्ण्य-विषय और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ये गीत निम्नलिखित पाँच प्रकार के हैं :—

१-आत्म-निवेदन एव स्वानुभूति-कथन । ऐसे दो गीत हैं (सख्या १ तथा १७) । एक मे कवि अत्यन्त दीन और निरीह होकर भगवान से मुक्ति मागता है एव दूसरे मे अपने अनुभव और लोक-कल्याणकारी कार्यों के सन्दर्भ मे ससार के कार्य-कलापों तथा प्रतिक्रियाओं का खरा और स्पष्ट वर्णन करता है[1] । इस प्रकार के गीत राजस्थानी मे कम ही मिलते हैं ।

२-रुक्मिणी सम्बन्धी (गीत सख्या ५, ६, ७) । इनमे अनेक प्रकार से श्रीकृष्ण से रुक्मिणी की अपने उद्धार-हेतु करुणापूरित प्रार्थना है[2] ।

३-लका मे राम, लक्ष्मण के युद्ध सम्बन्धी (गीत सख्या १०, ११) । दोनो ही गीतों में युद्ध का बडा सजीव चित्रण किया गया है । वर्णन-त्वरा और ध्वन्यात्मकता इनकी विशेषता है । राम के युद्ध-खेत का रूपक, "वेलि क्रिसन रुक्मणी री" के एतद् विषयक प्रसग की याद दिलाता है[3] ।

१-दुरेस कहू मन मानै दुलिया, दुनिया कहत स नावै दाय ।
अठा स कुवण दूसरो इद्र, वरजू तका गुमावै वाय ॥ १ ॥
बुधि दीता आलोचण वैसै, मत मिलै नही पिण मात ।
थापू जका जोरि उथपै, घट मा हल पीण री घात ॥ २ ॥
चाव नीत वधिया चाळा ख्याति वधि दिन राति खसै ।
थापू जका जोरि उथपै, वीर तो घट भीतरि वसै ॥ ३ ॥
घर एक भेळा पण जांमी साह चोर रहे किम साथि ?
सुरिजन कहै माहरा सामी, हरिजी पिसण पकड द्यो सो हाथि ॥ ४ ॥ १७ ॥

२-वीनती चक्रघर सप लीयै विहग । रुपमणी राषि पति जगत राया ॥ १ ॥
जुरासिध दैत सिसपाळ आया जरू । काळ रिछपाळ करि टाळ कामी ।
भगत नै भगति जो दैत दीजै भुवण । सगतिपति राषि हरि जगत सामी ॥ २ ॥
रुदन मसि अकजो राजि मेटो रजा । जळम सिर लाज मरजाद जासी ।
हरान तुरकाणि जो कपलि दे हीदवा । अब काय वीसर वार आयसी ॥ ३ ॥
आज जो भीड भरतार भाजै नही । लह पही वार हरि नाव लीजै ॥
वीपर सू वीनती वाच मोटा विसन । किसन सिरि छत्र धरि वीद कीजै ॥ ४ ॥
रुपमणी लाज भला रापी राजग्नि । सुरजन साव हरि नाव सामो ।
मगळ दीजै धवळ किसन आया महलि । प्राणिया जगतपति प्रीति प्राभो ॥ ५ ॥ ७ ॥

३-पैमि लोळ छल पुवण पराक्रम, चडि गढ आयो रामचद ॥ १ ॥
गडा अनड झड हाक गरजै, धडकै लका गाज धर ।
वीजळ चमकै वाउजळ, वरसण लागो सीत वर ॥ २ ॥
ववि पुतरां गजड काढेवा, हथळ नहरि वेरोत्य हळ ।
सिरा सीस दत करि समहरि, षेत लका पीडि लीध पळ ॥ ३ ॥ (शेषांश आगे देखें)

४–हरि की महिमा और शक्तिमत्ता–वर्णन के साथ माया–मोह त्याग, सांसारिक नश्वरता और असारता का उल्लेख करते हुए उदात्त गुण–ग्रहण, नाम–स्मरण और सुकृत करने का अनुरोध (गीत संख्या ४, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १६)। प्रभविष्णुता के लिये कवि ने गीत–विशेष में इनमें से किसी भाव–विशेष पर वल देकर उसकी प्रधानता प्रकट की है। उदाहरण के लिये एक में हरि महिमा का वर्णन प्रमुख है,[1] दूसरे में नाम–स्मरण पर वल दिया है और तीसरे में सुकृत–सम्पत्ति को खर्च करने का आग्रह[2] है किन्तु सामूहिक रूप से सभी में उपर्युक्त तीनों भाव संकेतित और ध्वनित हैं।

५–विषय या व्यक्ति विशेष का वर्णन करने वाले फुटकर गीत (संख्या २ और ३)। अनेक दृष्टियों से दोनों ही गीत महत्वपूर्ण हैं, जिनमे एक नीचे दिया जाता है[3]।

सुगही करे तळी पुड़ सोझै, जंम छाजलियां जुवा जांणि।
तुस वाकस दत करि तुंतड़ा, काढे निज गुंण सीत कंण ॥ ४ ॥
झड़ै सर वांण असर झरहरिया, आदे विवर धरा लग धीर।
उडियो भुंवर करे सुर अवरत, वहे रगत वरसै रुघवीर ॥ ५ ॥ १० ॥

१–अदतां न को तुहारी आतंम, दाता मंवों न कोई देव ॥ १ ॥
दत्र संधारि भगतां दूतर, मारंण उतारंण रापंण मांन।
सुवं न को जगदीस सरीकत, सती न को हरि नांव संमांन ॥ २ ॥
काळ सुकाळ करै तूं करता, चीता हरण करंण तूं चीत।
मारंणहार न को वड मीरां, रापंण (हार) नही हरे रीति ॥ ३ ॥
वर आकाम दुंनी चा धंणीयप, आतंम देव न को तो ईढ।
कहर संमांन्य न को तो करता, महर संमांन्य न को तो मीट ॥ ४ ॥
जामंण मरंण अगोचरि जीवंण, गुण हरि नांव सुरेजंन गुझि।
मारि सुधारि मया धरे मोनै, तारि सुधारि वीनगूं तुझि ॥ ५ ॥ ८ ॥

२–परचिस्यै तके वंन आपनै पटिस्यै, परचियै विन विप हुंत पारी ॥ १ ॥
साह पतिसाह सुरतांण हुंता सीरै, परचियै मुकति की मरति मंची।
पोट संसार मां सरव परची पषो, सो जयसी नाग होय लछ गंची ॥ २ ॥
रपै संपति सास वेसास्य कोई रहै, चालतां साथि नही ग्रंति चालै।
सांचणी आपणी मेल्हि संसार मां, ठाकुरा भोज ज्यौं हाथ ठालै ॥ ३ ॥
तका परि देपि दातार सुंवां तंणी, दुरमती नंद जळ मांहि दाटी।
संचणी सेठ वुवक री संभळो, परचियै ऋंन दातारि पाटी ॥ ४ ॥
पेपतां मांहि पित मात होयसी परै, धरा तावुत करि गुफा वारी।
सांभळो कांन्य कलांम सुरेजंन कहै, मोलवंण अछै दिन च्यारि भारी ॥ ५ ॥ १३ ॥

३–कहि करमावत मीत नीवीरति, तै आपर सांभल्या तेम ॥ १ ॥
वातां वील्ह तेज कवि वांणी, सुरिजंन गीत धरंम सुवांति।
केमों कथा अरथ नै करमू, तप मूजो आलमूं तांति ॥ २ ॥
नीण छपै निपालेस नेतो, जोतिग लान्न सुपात जिमौ।
परतर गोठि आगरी परचंण, जंन उधौ तापसां जिसौ ॥ ३ ॥
पूजा काजि पुंवार जसौ परि, वेदग मेप हवीव विचारि।
दळपति साह परगट्यौ दांणी, चावागुंण नै देस चियारि ॥ ४ ॥
दूहे देद करमसी दूजौ, थपनाइ दावुद थयो।
कीरति अली मोम दिल काजे, जंन सुरिजंन उपदेस दयौ ॥ ५ ॥ २ ॥

सभी गीतो मे भावानुकूल भाषा की गति और नाद-सौन्दर्य पूरित शब्द-योजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन दृष्टियों से डिंगल-गीतों में सख्या मे कम होते हुए भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(३) हरजस[1] :

कवि के निम्नलिखित ४८ हरजस मिलते हैं। इनमे अ तिम ८ डिंगल गीतो को भी हरजसो के अन्तर्गत लिया गया है।

(१) मंन की दया विणि तंन का कपट है, साबण लाख मजीठ लपट है। पक्ति ६।
(२) कह्या न होई भइया कीया होई, अैसे भरंम मत भूलो कोई। पक्ति ५।
(३) मंन मेरे विसन नांव नहीं लिया, काहा बोहत दिन जीया ॥ छन्द ६।
(४) अवधू देखि भरंम को बाजो, जातें अलाह विसंन बेराजी ॥ छन्द ६।
(५) मन मेरे पूरा बेद पिछांण्या, अंमर जडी ता जाण्यां ॥ छन्द ६।
(६) संतो गुण का अरथ गंभीरा, कोई जाणेगा सत सधीरा ॥ छन्द ६।
(७) अवधू अंमर सब्द हंमारा, हिन्दू तुरक दुहू तें न्यारा ॥ छन्द ६।
(८) मंन मेरा मंन ही उलटि विचारी, मेरा गुर पुरिख न नारी ॥ छन्द ६।
(९) विसन सिवरि मंन विसंन सहाई, विसन सिवरि तिहुं लोक बडाई ॥ पंक्ति ४।
(१०) विसंन सूं विणज करो मेरा भाई, या तन कीजे पोठि घणाई ॥ पक्ति ४।
(११) सहज की धेन सुषम दुहि लीजे,
पीवणा पेट छत्य जुगि जुगि जोगीजे ॥ पक्ति ७।
(१२) जागो जागो सिवरो हरे, हरे सेवा साधु नीसतरे ॥ पक्ति ७।
(१३) हरि विसन हरि विसन हरि बिसन हरे,
विसन सिवरि तिहूं लोकां तरे ॥ पक्ति ७।
(१४) तू मेरा सांई मैं बदा तेरा, सरणे राखि सवारथ मेरा ॥ पक्ति ६।
(१५) मैं मंन सोच नहीं मन मेरा, त्रभवन ताश्या सरणा तेरा ॥ पक्ति ५।
(१६) समझि भई सतगर पहचाण्या, मुकति गरू मेरा मन माण्या ॥ पक्ति ६।
(१७) हरि की भगति षीणि जगत अंधेरा,
म मं करि ढील नर चेति सवेरा ॥ पक्ति८।
(१८) अैसा ध्यान धर गुर मुखी, जीवत मुगति हुवै तंन सुखी ॥ पक्ति ११।
(१९) पाया है कुछि पाया है, प्रेम की गाठि बंधाया है ॥ छन्द ७।
(२०) जा कारणि जुग ढूंढिया, सोई गुर पाया,
चरण कुंवळ छाडूं नहीं, रहिस्यों लिपटाया ॥ छन्द ५।

---

[1] १-प्रति सख्या ४८, ७८, ९५, १४०, १४४, २०१, २२७, ३०२। हरजस सख्या १-८, २४-२६, ३४-३५, ३७, राग भ्रासा मे, ९-११, २०-२३ "विलावळ" मे; १२-१९ भैरू मे, २६, ३८, ४१-४५ सोरठ मे, २७-२८, ४० धनाश्री में; २९-३० मारू में; ३१-३३ "गवडी" मे, ३९ केदारो मे; ४६ मलार और ४७-४८ खमावची में गेय बताए गए हैं।

(२१) सोई कायंम मांगियै, सबही को दाता ।
मंनसा वाचा करंमंनां, दुख हरंण विधाता ।। छन्द ५ ।

(२२) आंपणां सांई आपमां, कसि देखौ काया ।
तीरथ बरत अचार है, सतगुर की माया ।। छन्द ७ ।

(२३) क्या कुदरति अपराव की, संमझ्यै कूं लागै ।
हीर कथीर सरीर दोय, पोया एकण धागै ।। छन्द ७ ।

(२४) संतो अणबोल्यां क्यों सरियै, साच सबद ता तरियै ।। छन्द ५ ।

(२५) संतो पूत गंहण मां जाया, जाके लोही मास न काया ।। छन्द ७ ।

(२६) प्रांणी लाल डर है रे उस दिन का,
जंम की भीड़ पड़ै इस जीव कूं धोखा सबही धंन का ।। पंक्ति १० ।

(२७) संतो अैसा सुकरत कीजै,
पळ पळ छिन छिन घड़ी महूरति, विसंनो विसंन जपीजै ।। पंक्ति ६ ।

(२८) संतो मरणा है जुग मांहीं,
अवर जीव कूं ज्यांन न दीजै लेखा लेगा सांईं ।। पंक्ति १० ।

(२९) भज मंन विसंन हरि विसराम ।। छन्द ६ ।

(३०) अवधू जोग अध्यातंम जांणी ।। छन्द ७ ।

(३१) संतो भाई सुंदरि सूं मंन मांन्या, नहीं तर था बेगान्यां ।। छन्द ५ ।

(३२) ओ संसार विकार सभ तज्य भज्य रज सारंगप्रांणी ।
जुगां जुगां को जोगी मेरा गुर, अंनहद अकथ कहांणी ।। छन्द ६ ।

(३३) अैसा ब्रंभ गियांन संमझि मंन मेरा रे ।। छन्द ७ ।

(३४) अवधू नांव धर्‌या नहीं जाई, मेरा गुर पिता न माई ।। छन्द ४ ।

(३५) संतो सांभळि अंमर कहांणी,
गुर परतापि अंमर घर पाया वजर कहर होय पांणी ।। छन्द ४ ।

(३६) संतो भाई जोति विमळ दळ जागी,
जामंण मरंण जुरा दुख भागा अंनहद ताळी लागी ।। छन्द ६ ।

(३७) संतो दोय दोय नारी न करणी, तातैं मरियै अपणी मरणी ।। छन्द ५ ।

(३८) सुजिया सोई जुग्य जुग्य जीवै, विन ही कपड़ै धागो सीवै ।। पंक्ति ८ ।

(३९) रे मंन दरस परसिस्यौं ताही, भजि सूं पाप परळै जांही ।। छन्द ६ ।

(४०) आरती जी भाई आदि कुंवार की किसन हरि आरती ।। छन्द ८ ।

(४१) अवसर जाहि रै छक वले न आवै, पाषंड छाडि पिरांणी ।
करि सेव न कीजै कांमां, विसंनो विसंन वखांणी ।। छन्द ४, जांगड़ो ।

(४२) तापस एकलो होह सुंणि तसकर मो चरजंती मोदरि ।
रांवंण खि अधावंण राजा, केवळ नाद कूं नंदरि ।। छन्द ६ ।

(४३) आखूं वीनती हरि सो दिन आयो, ग्रभ जको दिन गायो ।
सुंण गुर वायक कोड़ि सुंणंता, सरळ सादि सुंणायो । छन्द ४ ।

(४४) अवसर जाहि रे छक थके न आवे ।। छन्द ४ (टेक स्वरूप दो पंक्तियाँ हरजस ४१ वाली ही हैं किन्तु शेष तीन छंद भिन्न हैं ।

(४५) ग्रस छाडि अवसर थाया, किसन किसन कहि हरि किसन ।
साद लियो प्रभु गज सादे, विहग तज्य आविया विसन ।। छन्द ४ ।

(४६) अब जो चंद मुरालि, चाम्रग कोकेल कुंवळ कीर लिपटाणी ।
कंचन ताळ बाळ फुनग पुन्यै पावन, वदन कुंदल फंसे विलखाणी ।। छन्द ७ ।

(४७) हुवं आरती मगळाचार आचार, पूजं हरे घर धरे चौक मांणिक घेरा ।
आरती उतरं इंदपुरी ऊपरं, झहळकं चंद बहरख डेरा ।। छन्द ५ ।

(४८) सिव मछ कछ वारा नारिसिंघ, बावन फ्रसराम कन्ह बुधवणि ।
नी कियो किसन कीयो आंमेसरा, जीवत सुरग दिखाल्या जेणि ।। छन्द ५ ।

हरजसो म कवि की स्वानुभूति और अध्यात्म–वाणी मुखरित है । इनमे अनेक रूपक और प्रतीको के सहारे आत्मानुभव का भावभरा प्रकाशन किया गया है । टेक–पंक्तियो से भी इस बात का पता चलता है । इनका विशेष महत्त्व तो कवि की साधना और सिद्धि–ज्ञान के लिए है । कवि ने अनेक प्रकार से घट के भीतर "सहज सरूप मे समाणे"[1] और "गिगन दवार" म वैठने का अपना अनुभव बताया है[2] । इस जीवन मे प्राप्त "जीवन-मुगति" पद का उल्लेख करते हुए,[3] आत्म–प्राप्ति की आनन्दानुभूति भी व्यक्त की है।

१–रगत न पीति नही पिंड जाकै, सास न मास समावै ।
तिसना भूप सुवै नर नाही, सहजे समाध्य लगावै ।। २ ।।
भुंवर गुफा ताजो पुर पाटणि, अरधक उरध बसेरा ।
आवै जाहि मरै नहा जीवै, जुग्य जुग्य होत वडेरा ।। ३ ।।
अनहद सबद सरम धुन्य लावै, तहा लो लाय मन मेरा ।
अगम की बात निगम क्या जाणै, तजि हदि बेहदि डेरा ।। ४ ।।
माया चंद सूर तहा माया, धरणि गिगन जहा माया ।
विस्य माया कै एक विसभर, ना कहू गया न आया ।। ५ ।।
असट कुंवळ गिगन मुषि गरजै, सबद की सुरति पयाणा ।
गुर परताप भई गम सुरिजन, सहज्य सरूप समाणा ।। ६ ।।–हरजस ७, –प्रति ४८ ।

२–निरती सुरति ता आगै डेरा, सबद की संधि अगेरा ।
आवै जाहि मरै नही जीवै, जुगि जुगि होत वडेरा ।। २ ।।
अगम की बात निगम सब मारग, अनहदि लगनि लगाई ।
जहा नही नाद वेद निस वासर, जहा एक अचळ समाई ।। ३ ।।
पंछी का षोज मीन का मारग, गुर परतापि लपाया ।
ममता छूटि गई तन भीतरि, हीरै हीर समाया ।। ४ ।।
हीर की वात जोरि का परचा, पाणी मा घ्रत पाया ।
दिसटि मुसिटि नाही दुनिया गति, सतगुर सहज लपाया ।। ५ ।।
अपडति जोति अचळ एक आसण, वैसण गिगन दवारी ।
सुरजनदास आस सतपुर की, वा मूरति की बलिहारी ।। ६ ।। हरजस ८ ।

३ तजि ब्रहमंड पिंड रनि काम, अब सामल्य मन को विसराम ।। २ ।।
मध्य भुवण मा मन समाय, परम जोति सू परचौ लाय ।। ३ ।।
इळा पिंगळा सुषमन जहा, आसण भुंवर गुफा एक तहा ।। ४ ।। (शेषांश आगे देखें)

इस सम्बन्ध में एक हरजस में तो 'अध्यात्म', 'जोग' और 'घट-चक्रों' का भी सविस्तर वर्णन है (हरजस ३०) जिससे तद्विषयक साधना को समझने में सहायता मिलती है। यह साधना-प्रकाशन उसका अपना है, जनसाधारण के लिए आवश्यक कृत्य नहीं। उसके लिए तो विष्णु-नाम-स्मरण ही तत्त्व-प्राप्ति का एक मात्र उपाय है।

उल्लेखनीय है कि अंतिम आठ हरजस विभिन्न डिंगल गीत हैं, जिनमें वैण-सगाई का पालन भी किया गया मिलता है। ये कई राग-रागिनियों में गेय बताए गए हैं। 'हरजसों' में इनकी गणना इसी कारण है। यह एक नवीन बात है क्योंकि डिंगल गीत प्राय: गेय नहीं होते, उनका स्वर-विशेष से पाठ किया जाता है। राजस्थानी गेय-पद-परम्परा में कवि के हरजसों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(४) साखी : अंग-चेतन :—प्रति संख्या २०१ में इसके अन्तर्गत सुरजनजी के १७६ फुटकर दोहे मिलते हैं। 'चेतन' शब्द से स्पष्ट है कि इस 'अंग' का विषय ज्ञान और अध्यात्मपरक है। यहां 'अंग' का तात्पर्य प्रकरण और "साखी" का दोहा है। प्रधान वर्ण्य-विषय निम्न-लिखित है :—

(क) हरि : उनकी महिमा, सर्वशक्तिमत्ता, व्यापकता, वत्सलता, दया, शरण-ग्रहण, नाम-जप आदि[1]।

(ख) गुरु : उसकी महिमा, प्राप्ति, शरण, गुण-दोष, बताए मार्ग का ग्रहण, प्रकार, गुरु-शिष्य, 'ठोठ' गुरु[2]।

(ग) जीव (आत्मा), कर्मफल-भोग, मुक्ति, उसका उपाय।

(घ) मन, संसार, उसकी नश्वरता, मृत्यु की प्रबलता, काया, उसकी महत्ता[3]।

भुंवर गुफा ताजी पुर पाट, विषंम पंथ जहां अवघट घाट ॥ ५ ॥
निरंजण कुंवळ अकळ आकार, तिस मां तीनि लोक विसतार ॥ ६ ॥
सिसिहर कै घरि सूर समाय, आवागुंवणि मिटै ते भाय ॥ ७ ॥
अनहद सबद सरस धुनि लाय, धुनि भीतरि हरि जोति निपाय ॥ ८ ॥
वा जोती सूं मिलि मन मेरा, तजि हदि वेहदि कीया डेरा ॥ ९ ॥
अगम की बात निगम क्यों लहै, गंवी सो अजगव की कहै ॥ १० ॥
गुर परसाद साध की सेवा, जन सुरजन भजि आतम देवा ॥ ११ ॥ —हरजस १८।

१-(क) मैं तोड़ी मैदांन मां, पोकारो न करंति।
सांई वहरा न थियै, आकासे भु सुणंति ॥ ५९ ॥
(ख) हळति पळति जांमण मंरण, गुंणे न आतंम गंन।
वाळ विसारै माय् पप, माय् न पंचै मंन ॥ २४ ॥
(ग) दुनियां पोषण देत है, गिणत न लाभै गंन।
वाळ विसारै माय् नै, माय न पंचै मंन ॥ १३४ ॥
२-(क) रुहो पळटै पेम तै, हुवै पीरि धगोह।
लपे ही लाभै नहीं, लाधो गुर वैंगोह ॥ ६१ ॥
(ख) परचै वाजि विटंवणां, भेष भीति का चीत।
सेवग नीला रूंपड़ा, सूका काठ अतीत ॥ १०१ ॥
३-तंन की भूख अळप है, तीनि पाव का सेर।
मंन की भूख अपार है, गीळत मेर संमेर ॥ ६२ ॥ (शेषांश आगे देखें)

(ङ) भक्ति-भाव, प्रेम, गुरु-प्रेम, हरि-प्रेम, ज्ञान-अज्ञान[1]।

(च) आचार-विचार, आत्मानुशासन सत्य-झूठ, भला-बुरा, पाप-पुण्य, सपूत-कपूत, करणीय कृत्य, अज्ञानी जीव, लाभ, सन्तोष, मधुर वचन, पत्थर-पूजा, परमार्थ, तन, मन पवित्रता कैसे, 'जरणा', जीभ (वाणी) की महिमा[2]।

(छ) नीति, कौशल, लोक-धर्म।

(ज) साधु : उसका स्वभाव, माहात्म्य, लक्षण, कार्य, साधु-हरि की एकता, भली-बुरी संगति और फल[3]।

(झ) वील्होजी पर दो मरसिये।

साखियों में कवि का हृदय लिपटा हुआ दिखाई देता है। कुछ चुने हुए दैनंदिन प्रयोग के शब्दों में कवि ने अपनी बात कही है। उसका अप्रस्तुत विधान भी सरल और आकर्षक है। पाठक इनको पढ़कर प्रभावित होता और सोचता-विचारता है। पाखण्डियों का उल्लेख ऐसा है कि एक ओर तो पाठक के मन में उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है और दूसरी ओर कथित पाखण्ड-त्याग के प्रति सजगता। इस सम्बन्ध में सुरजनजी के तर्क

सुरिजन इक ब्रह्मंड संगति, असत मेर थळ मास।
नाद वेद गिगन मझि, गंग जमना सुर सास॥ १५॥

1-जिणि गुणि लोही दूध हू, नीरौ भळकै नीर।
एणि हेत हंस दुनर तरै, धन्य गुर पेम सधीर॥ ५६॥
रती मती जगत सू, अण रती हरि रति।
ताहे तपति न थिया, माहि दुमति अपति॥ १४२॥

2-कूकर मिंदर काच कै, छांह देखि घुरराय।
मा गुर मिल्यो न गति हु, मू कि भू कि मरि जाय॥ १०५॥
साबण सांपी साध जळ, सतगुर सरवर तीर।
मन धोबी तन पाटडो, पावन कियो सरीर॥ ११०॥
सुरिजन घर जरणा सहै, तास पटतर जोय।
पांक पण सिध पेलवा, सिर चाडै सोहू कोय॥ ३॥
भाव स योहरि ईष वड, एकै घरि अवतार।
साई जिभ्या लप कटै, जिभ्या लपै विकार॥ ८०॥
जीभ स सकर, जीभ दुध, जम पियारी जगि।
जीभें सा जळ रळि मिलै, जीभे लगै अगि॥ १॥

3-जळ साबणि मळ ऊतरै, ऊ छूटै अपराध।
दरसणि परसणि दुष मिटै, जग का दीपक साध॥ ८२॥
धरती अंबर आदे देव, रवि सिस पाणी पूण।
मंडप कीवी साध कूं, नहीं त कारण कूण॥ १६७॥
तिल काळो दळि उजळो, एक दुनी चै घाति।
वास मिली ज्यो तेल मा, साध मिले हरि साथि॥ ११६॥
जळ की बुंद जिहान है, फळ फळ अ सरि फेर।
लोह तिरलो दोठ मैं, काठ संगीणो केर॥ ४३॥
भाग, दीवाना, पोसती, ठग, चोर पर नारि।
कुगर, कुमीत, कुमारिजा, इनका संग निवारि॥ १०७॥

सामान्य और सीधे होने पर भी अकाट्य प्रतीत होते हैं। तत्त्व प्राप्ति की ओर प्रेरित करने के लिए कवि ने आदेश-निषेध की शैली न अपनाकर सांसारिक विषय और जीव-दशा का सार रूप में उल्लेख कर इस ओर इंगित भर किया है। अधिकांश अभिव्यक्ति उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा के सहारे की गई है।

इस सम्बन्ध में कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं[1] ।

(५) "दस अवतार[2] दुहा" (प्रति संख्या २०१) :

इसके अन्तर्गत ३ दोहे, १३ मोतीदाम और ४ कवित्त हैं जिनमें प्रत्येक अवतार के माता-पिता, क्षेत्र, गुरु, और प्रमुख कार्य का नामोल्लेख किया गया है।

(६) असमेध जिग का दूहा (प्रति संख्या २०१) :

यह ४५ दोहों की लघु कृति है जिसमें हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ, अश्वानुगामी पाण्डव योद्धाओं पर आई आपत्तियों और अन्त में आयोजन की सफलता का उल्लेख किया गया है[3] । रचना महाभारत के आश्वमेधिक पर्व की एतद्-विषयक कथा पर आधारित है।

(७) "सुरजनजी के छन्द" (प्रति संख्या ७७, २०१) :

"छन्द" शीर्षक के अन्तर्गत ७३ फुटकर छन्द विभिन्न विषयों पर तथा अन्तिम २० 'दस अवतार दुहा' के हैं। लिपिकार के अनुसार इनकी कुल छन्द संख्या १३६ है, जो क्रम-संख्या में भूल होने और एक कवित्त के तीन छन्द मानने के कारण है। यहां "छन्द" के अन्तर्गत दसावतार सम्बन्धी छन्दों की गणना नहीं की गई है। छन्दों में १३ 'वेग्रक्खरी' २१ मोतीदाम, ६ कवित्त, २ गाथा, २६ इन्दव (या पटंतरी) और २ दोहे-कुल ७३ छन्द

१-जिणि गुंणि हंस दुतर तरै, औगंण होय न अकज।
गुर अपर फूटो नहीं, फीटि रे हिया निलज ॥ ५७ ॥
पथर ही का देहरा, मांहि ज पथर मांहि।
रिव का डेरा रह विच, तासूं अंतर नांहि ॥ १२२ ॥
कांम सीळ ता क्रोध दह, मंनिसा लहै न मघ।
तंन सरवर मंन मछळी, अठ्यां नीर अथघ ॥ ७७ ॥
सुरिजंन एक सरीर मां, तंन मंन का गुंण जोय।
तंन मुड्यां तै भेप है, मंन मुड्यां गति होय ॥ १२४ ॥
सेवग सेर न आदरै, मंगण मंग मांगै साध।
हठि कियां भठि जीवंणां, धरम कै नां उपराध ॥ १२८ ॥
जिण घरि भगति न भाव रस अंम भाख मिटि जाय।
से घर संभळि रूप ज्यों, वासो वसैं त कांय ॥ १५२ ॥

२-मछ कछ वांवंन परस बुध, नारिसंघ वाराह।
लछमंण राघौ कंन्य कल्य, दस दांणौं गज ग्राह ॥ १ ॥

३-साव सती अर सूरिवां, सिध सेवग अर संत।
आचारे वीर जिग जतंन, जोग जंत के मंत ॥ ४२ ॥
अतने सिले असमेद जिग, किए दहूठळ काज।
हथणापुरि हरि की दया, धंन्य धंन्य दिन आज ॥ ४३ ॥

हैं। इसमें (क) सृष्टि की आदि उत्पत्ति से हरि के मच्छ और कच्छप अवतार और उनके कार्य, (ख) जाम्भोजी की विशेषताओं, गुणों और महिमा का भक्ति-भाव भरा वर्णन तथा (ग) वैकुण्ठ और उसके सुखों का उल्लेख करते हुए नाम-स्मरण को इसका मुख्य प्राप्ति-साधन बताया है। इनमें एक तारतम्यता तथा पाठक की मनोवृत्ति को स्वाभाविक ढग से वर्ण्य-विषयानुसार मोडने का प्रयास है।

अन्तिम १४ छन्दों म ससार की अनेक वस्तुओं मे सबसे बडी और श्रेष्ठ वस्तुओं की नामावली प्रस्तुत करते हुए पुन 'गुगर' जाम्भोजी का महिमा-गान किया गया है। उदाहरणार्थ दो छद नीचे दिए जाते हैं[1] ।

(८) कवित्त [2] (सख्या ३३६)

"सुरजनजी का कवत्त" शीर्षक के अ तर्गत कुल ४७० कवित्त मिलते हैं। इनमे सुरजनजी की दो पृथक रचनाओं-बावनी (कवित्त ३०) और रामरासौ (कवित्त ६४) के १२४ कवित्त भी सम्मिलित हैं। ये निकाल देने पर ३३६ फुटकर छद रहते हैं। यहा इन्ही का विवेचन अभीष्ट है।

भाव व्यजना और विचारधारा की दृष्टि से "कवित्तों" को सुरजनजी की प्रति-निधि रचना कहा जा सकता है। इनम उनके समग्र व्यक्तित्व का सार समाहित है। नीचे इनमे अभिव्यक्त कवि की विचारधारा और वर्ण्य-विषय का सक्षेप मे उल्लेख किया जाता है।

विचारधारा जीव के लिए सबसे बडा दुख आवागमन का चक्कर है। अनेक "अप-राधों' के कारण जन्म-मरण-प्रक्रिया लगी रहती है। अपने किए कर्मों के कारण जीव-"भार घर' कर वापस ससार मे आता, गर्भवास, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि अनेक कष्ट सहता और फिर उसी फेरे मे फिरने लगता है[3] ।

इससे छुटकारा पाना ही मुक्ति है। मुक्ति जीव का चरम प्राप्तव्य है जिसके अनेक

१-(क) चडिय न चूक न चात न चावर, दुप न दाळिद पिसण दहै।
घग न घटक न धुलक न पहर, रोग न कोई माद रहै।
अग न लाग न वार न व्रत, सोग न कोई नीद सुवै।
करतार किसन मिलिसी अणीक्र, हरि कहता प्रताप हुवै ॥ टेक ॥ १ ॥

(ख) सेया श्रीराम हुणौं सावता, फीर त नारद कळह फिरै।
दाणों मिर राग करन दातारा, सरब विहगा गुरड सिरै।
चद सीरि कळा रहैण घ्रू निहचळ, धळि सभरि केवळ ग्यान धट।
नावे हरि नाव रिषा दुरभासा, वासा सिर हरि वैकुंट ॥ टेक ॥ २ ॥

२-प्रति सख्या ४७, ६६, ७७, ८१, १२१, १९३ (च), प्रकरण २३, पत्र २५ से २७, २९ तथा ३१-३२। २०१, २०३, २०७।

३-केई बार अवतार, भार धरि पाछा आया।
जुरा काळ जम राण, ताण भगोतर काया।
तर लता परहरे, बळे फळ डाळि बिळगी।
हरि तू राघणहार, आगि रूमिदर लगी।
परहरे प्राण पीजर थकै, जळम जीव दुमर थियो।
निज नाव घात भूलो नरू, कुमति घात घरि घरि कियो ॥ १७५ ॥

उपाय हैं। अन्ततोगत्वा उसी को प्राप्त करने का प्रयास मनुष्य को करना चाहिए। अतीत में मुक्ति के लिए ही अनेक महापुरुषों ने सर्वस्व त्याग किया था। कर्मफल-भोग अनिवार्य है। कर्ता और कर्म चाहे जैसे हों, फल-प्राप्ति कर्मानुसार ही होती है। अच्छी करनी का फल अच्छा और बुरी का बुरा है। जीव जैसा करता है, उसके साथ वैसा ही किया जाएगा[1]। मनुष्य योनि सब योनियों में श्रेष्ठ है। कर्म-बन्धन काटने और मुक्ति के लिए सर्वोत्तम उपाय मनुष्य जीवन में ही सम्भव है। यह जीवन दुर्लभ और अनमोल है। जरा, मृत्यु और भवितव्यता तो भगवान के हाथ है, उससे जोर कैसा ? किन्तु मनुष्य देह से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है, अतः इस मौके से चूकना न चाहिए[2]। काया में वास करने वाला जीव "शिव" का ही अंश है, किन्तु सृष्टि में व्याप्त माया के बन्धन में बंध जाने से गति प्राप्त नहीं होती। इसलिए इस काया को "खोजने" का प्रयास करना चाहिए। यह काम सरल नहीं है। भीतर के शत्रु और बाहर के प्रलोभन मनुष्य को अभीष्ट पथ से विरत करते हैं, मुक्ति-मार्ग में वे बाधक हैं। मन को वस में करके यदि वाह्य प्रलोभनों से निस्संग रहा जाय, तभी यह सम्भव है, किन्तु स्वार्थ के लिए व्यक्ति आत्मा को गिराने वाले हीन कर्मों में रत रहता है। "भठियारी" की भांति वह केवल टुकड़ों से ही प्रेम करता है,[3] "पेट" के लिए बुरे और अकरणीय सभी कर्म करने के लिए तैयार रहता है[4]। फिर,

---

१-मूरिष मुंक्यो मांण, गैण तजि पड्यो दसूं दरि।
पापंणि कियो पाप, मुवो भरतार बुरी परि।
जो वंछ्यो, जगि जीव, तको अंतरायंण लगो।
पणी पाट पर काजि, तेरिण पड़ी पींजर भगो।
मंन मूंढ देषि नेकी वदी, दरगं लेपो लीजिसी।
दरपंण मां मुप देषि ले, ज्यों कियो त्यों कीजिसी ॥ १७८ ॥

२-जुरा कालि अत हांणि, दई मूं केहा दावा ?
होतिव हरि कै हाथि, कहा तिनि का पछतावा ?
काजी वदै कुरांण, पुरांण क्या पूछै जोयसी ?
जो हूंणा सो हुवा, वळे हूंणां सो होयसी।
न गिणी दोय नेकी वदी, परचै ई सुप पायसी।
मानिषा देह लाभे मुकति, असी घात कदि आयसी ? ॥ २३२ ॥

३-करै लगंनि वीणि लाज, राज आगै ज पधारो।
ठंडा पाणी पाट, एह घर वार तुहारो।
करै सवारथ सेव, परमारथ नहीं जांणै।
घर की सीरप सूंपि, आप पड़ि रहै पगांणै।
संमरथ करणी कपट की, रांम नांम नहीं रीति।
भठियारी की भगति ज्यों, टुकड़ै ही की प्रीति ॥ २६४ ॥

४-पेट काजि पड़ि वंज, वोहत छंदा वोलावै।
पेट काजि पढि वेद, भेद संमारि सुंणावै।
पेट काजि गुंण गीत, चित वोह राग अंनेरा।
पेट काजि वन वंदि, वीर वीरां संगि डेरा।
पेट काजि वोह काज करि, लाभ जीव कहि क्यों लहै?
अ पंच हाथि करि आपणै, कथंन एम सुरजंन कहै ॥ २६ ॥

पचेन्द्रियो की विषय-वासना का भी कोई अन्त नही है[1] । प्रतिपल कोई न कोई इन्द्री विषय-रत रहती ही है। दशा यह है कि इनमे एक को वस मे करें तो दूसरी विषय-लिप्त हो जाती है, और दूसरी को करें तो तीसरी[2] । इनसे पिंड कैसे छुडाया जाय ? विषयो से विरत कैसे हुआ जाय ? और यदि ऐसा न किया गया तो फिर कर्म-बन्धन के कारण आवागमन का चक्कर चलता ही रहेगा। कवि ने तीन प्रकार से इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उपायो का सकेत किया है। यह सदा याद रखना चाहिए कि मृत्यु सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वजनीन सत्य है, वह सबके लिए अनिवार्य है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु विनाशशील है, फिर मनुष्य-देह इसका अपवाद हो ही कैसे सकती है ? मनुष्य का किया-कराया, सब-कुछ इस "साकडी बार" म यही रह जाता है[3] । 'क्रमहीण" के "अक्रम" केवल उसके कुल में "काट" ही लगाते और मुख मे ' रेत घतवाते" हैं, क्योंकि अन्त म तो मरना निश्चित है[4] ।

दुनिया का व्यवहार ऐसा है कि प्राण निकलते समय सब अलग हो जाते हैं[5] ।

१-श्रवण नाद नही ध्रपति, काम इद्री नही कजै ।
नास बास नही ध्रपति, नैण पर रूप न लजै ।
रसणां रस नही ध्रपति, मन जुग माया अडै ।
पच पच सू पच, चिति चचळ नही छडै ।
चळ छोडि अचळ चश्ल भयो,हाथ उठाय पुकारि हरि।
सुरजन समति गुण उचरै, सुणो साद सारगधरि ॥ १११ ॥

२-नैणराय वसि करू नैण वोह रूप निरखै ।
नैणराय वसि करू, नास वोह वास तरसै ।
नास जास वसि करू, कान अनकार न छडै ।
कांनराय वसि करू, चित वोह चाळा मडै ।
चित रहै जा मन रहै कहर, कहर हाथि वोह माण करि ।
एतळा पिसण लागू अवर, हू सरणागति नाव हरि ॥ ६८ ॥

३-सुखाणी बोलती, जीभ बोलै कुसराणी ।
केवळ कथ कथती, कथ वीसरै कहाणी ।
कथा वेद वाचती, कथ हुई अणकथी ।
श्रवण नैणि करि चलण, साथ रह्या अणसथी ।
गीत कवन श्लोक छद,घण घणा घाट वेसारि घर ।
साकडी बार उबारि हरि, सरणि तुम्हि सारगधर ॥ ३०१ ॥

४-जा रे जीव पलीत म करि कुळ काट लगाविस ।
आप घात पर घात म करि चोरी मराविस ।
दरपण मा मुप देपि परम हति दुप पाविस ।
अणदीठी अणसुणी म कहि मुप रेत घताविस ।
लज हीण पसू गुर लाजविसि, क्रम हीण अक्रम करिस ।
म म करिस रीछ एता मछर, उदघाट मेटि आपरी मरिस ॥ ४३ ॥

५-पिता पूत छडियो, नेह छडे वर नारी ।
मात पूत नैं मेल्हि, नेह तूटो ससारी ।
पूत मीत परवार, तजै घर मिदर छाया ।
मोह माण छडियो, प्राण इम छडसि काया ।

(शेषांश आगे देखें)

लाश को श्मशान में ठिकाने लगा कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं[1]। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस एक 'पींजरे' के अनेक 'लागू' हैं,[2] और फिर भी मनुष्य इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता। अंतिम स्थिति यह है कि उसके हाड़ कहीं बिखरते, मांस गिद्ध, गीदड़ आदि खाते और माया यहीं धरी रह जाती है[3]। ऐसे समय में केवल सुकृत और हरिनाम ही साथ देते हैं[4]।

बुढ़ापा मृत्यु की सूचना लेकर आता है। सुरजनजी ने वृद्धावस्था का उल्लेख करते हुए बड़ी मार्मिक चेतावनी दी है। यौवन और बुढ़ापा दो भिन्न दिशाओं में हैं। उनमें आपस में वैर है। यौवन में जो कुछ किया जाता है, बुढ़ापे में प्रायः उसके प्रतिकूल होता है[5]।

थरहर्‌यो हंस कायर थियो, पत्ताचार लागी परैं।
तिणि वार कांम तोसूं हुवै, संसार पधार्‌यो साथ रैं ॥ १५ ॥

१–घणो हेत पित मात, रह्या घरि वैसि मया करि।
सुपंम सेझ परहरी, आय सूतो तिणि साथरि।
मीत ताळ मां मेल्हि, आया घरि आपो अपंण।
रहै अगनि मां हाड, पाड मां रहियो पफंण।
नीसर्‌यो पटंम सारैं कुटंम, करैं साद सरळा तरणि।
रुघनाथ साथ वासैं रह्यो, अनांथनाथ असरणि सरंणि ॥ ९४ ॥

२–पिता मात कहै पूत, नारि कहै नेह न छडिस।
चाहै हाड मसांण, पाड कहै अंत म गटिस।
अगनि कहै भप अंग, वीर वांणी संभाळै।
सास कहै मुझि सीर, नेण नारंग निहाळै।
स्यावजां मास वासो सगति, पुवंण जीव चाहै जुवो।
पींजरो एक लागू घणां, हैरांन देपि इचरज हुवो ॥ १४ ॥

३–रहि वैसि भारिजा, अंन रहियो अरगाहे।
पिता पूत छडियां, माल रहियो घर माहे।
मीत पूत अवलजा, लज पर हथि अलजे।
रुळे हाट एकन, गीध पावो स्यावजे।
गति रही भंति पड़ियो अगति, चरंग वदि कंध चड़े।
तिणि वार नार सिर धूड़ि दे, प्रति हंस दोजकि पड़े ॥ १६ ॥

४–न वर्यो आप कीरति, न वर्यो परवार वटाई।
न वर्यो मात पितियै, न वर्यो भलियापंणि भाई।
न वर्यो आथ संचियै, न वर्यो घरि साह कहाया।
न वर्यो राज बीजियै, न वर्यो सिरि छत्र धराया।
गुर मुपी दानं सहजां गुंवंण, कंण गरीबी हाथि करि।
सुरजंन जगत साथी नहीं, हुवै संगाती नांव हरि ॥ १८ ॥

५–जुरा वैर जोवंन, जांणि जागीरी लेसी।
भई वेस छाटिसी, देपतां दावा देसी।
तांण मांण त्यागिसी, थांन प्रवांन पलटै।
हेत प्रीति हुवै हांण, जांणि जिभिया गुंण घटै।
जास री आस भूलो भजंन, प्रांणी रंग पतंग सो।
पळ मांहि जगत छाडै परो, कहो विसास कीजै किसो ? ॥ २६६ ॥

इसमें इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और प्रिय से प्रिय व्यक्ति भी साथ छोड़ने लगता है। "गोली जुरा" जीव लेने के लिए ही आती है[1] । शनैः शनैः यौवन के "गुण" क्षीण होने लगेंगे, इसलिए ऐसा होने से पहले ही 'जतन' करना चाहिए[2] । स्पष्ट है कि ये 'जतन' मोक्ष हेतु ही हैं।

इनका उल्लेख कवि ने प्रकारान्तर से अनेक बार किया है। इनके नाम-स्मरण और सुकृत—दो प्रमुख उपाय हैं। नाम-जप की महिमा बहुत प्रकार से अनेक प्रसगों मे की गई है। पापों का नाशक हरि-नाम है,[3] मानव के सुख-दुखों का मूल कारण भी नाम-जप मे निहित है[4] । सुकृत का उल्लेख सुरजनजी ने दो प्रकार से किया है-एक तो एक छन्द मे कई गुणो की गणना करके तथा दूसरे, गुण-विशेष पर पृथक्-पृथक् छन्दों की रचना करके। चाहे जिन उपायो से भी हो जीते जी ही मुक्ति जीवन्मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए[5] ।

जब अच्छे गुणों से तत्त्व प्राप्ति होती है, तो उनको त्याग कर बुरे क्यो अपनाए जाएँ ? खरी वस्तु को त्याग कर खोटी लेने में न तो कोई बुद्धिमानी है और न ही लाभ।

१-करा तुरी ठमता, पोति छूटती न पलै।
चरणि महलि चलता, चरणि देहळी न चलै।
सरवण नैणि जिह नासिका, सीप करि सैणा सथै।
घात हुई निरघात, वात हुई विह हथै।
पालटी वैसि रहियो बैसि, घण घणा मीत छूटा घरा।
घातती रोळि आई घरै, जीव लेण गोली जुरा ॥ २६८ ॥

२-जुरा जुध मडिसी, जाण जोवन गुण छीजै।
ढलन करि दे ढोल, दया दळ पगळ कीजै।
राषे सील सतोष, दोष नव दूण निवारै।
निज नाव जपै निरकार, कहा भूलो आकारै।
मद आठ्र माह थका, धरणीधर सू ध्यान धरि।
पछै जुरा जुध मडिसी, जीया पहलू जतन करि ॥ २७१ ॥

३-काया करण वदूक, सोर किरिया सचरिया।
सृत डोरी गुर ग्यान, ध्यान लै आतस धरिया।
कीयो जम सिकार, सुरजन मन पारधी।
नर निरषै नीसाण, ओट जरणा तकि वधी।
साध सगि सुमति धीर जकी, गुण राय अवगण गडिया।
धणघोर सुणि हरि नाव की, अघ पषेरू उडिया ॥ १०५ ॥

४-एक सहै दुष भूष, एक उपगार पयपै।
एक चढै सुषपाल, एक सिर भार समपै।
एक स काया सुचग, एक देष्या दुरगछी।
एक छुडावै बदि, एक वेचै जळ मछी।
एक मरै एक उधरै, ठाह वतावो ठाव का।
एक गरू दोय आतरा, परताप जको हरि नाव का ॥ ६४ ॥

५-निठर जीव पापी नयण, वैण कुवचन परहरे।
विसराम नाम सुरजन विसन, मरण जीव पहलो मरे ॥ २७ ॥

आंगन की "अमीवेलि' की उपेक्षा कर "तुसवेलि" को "कौन तके"[1] ? कवि ने अनेक प्रकार से दुर्गुण, दुष्कर्म और पाखण्ड से दूर रहने का संकेत किया है। कहीं साधु[2] और नीच[3] के लक्षण बताकर और कहीं विशेष इन्द्रियों के अवगुणों का उल्लेख[4] करके। लोग विभिन्न देवों की पूजा-उपासना करते और एक देव से दूसरे देव में अन्तर मानते हैं। भिन्न-भिन्न जाति के लोगों की मान्यताएँ भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु प्रभु तो एक ही है[5]। एक हरि के अतिरिक्त इतर सबकी पूजा-उपासना व्यर्थ है, अतः अन्य देव-पूजा का त्याग करना चाहिए, "अवर देव की आखड़ी" होनी चाहिए[6]। पूजा-हेतु किसी भी प्रकार का बाह्य-प्रदर्शन

१-अमी वेलि आंगणं, तुस वेलि कुंण तकै।
 अंब पीर ओळपे, आक थोहरि कुंण भकै।
 परमळ वास सुगंध, ल्हसंण कुंण अंगि लगावै।
 देव सभा देपतां, कूंण घरी भूत पिलावै।
 परहरे सेभ पाटंवरी, साथरि सूळ न अटियै।
 संपजे गंग नृमळ सुवळ, छार नीर घर छटियै ॥ २२५ ॥
२-काछ वाच निकळंक, भेष की लज्या रापै।
 सहज सील संतोष, जांणि मुप असत न भापै।
 हंस दिसा गुर ग्यांन, भजन सुं नेह लगावै।
 तजे वाद अहंकार, सत संजम घरि आवै।
 जीवत मरै अजर जरै, गुर वरजी सो न करै।
 उनमनी कला औंळी दसा, असा साव भव उवरै ॥ ४५ ॥
३-आदि कुलपंण एह, द्रोह करि जीव सिघारै।
 दुजा कुलपंण एह, धात पेलै घर सारै।
 तीय कुलपंण एह, वात नहीं लभै वारी।
 चवें कुलपंण एह, पाक मुप सैंण पुवारी।
 कांण की मेछ संन्या करै, काढै सांग चलाय कर।
 नारि कहै भरतार नै, नीच कुलपण एह नर ॥ २८६ ॥
४-कळह कुवांणी मीच, भूठ चोरी मंन रचै।
 पर निंद्या परहरै, वैंण सुणि सैंण विरचै।
 जिभ्या आळ जंजाळ, साल टीगि वयों ज कहंती।
 अण दीठी मत उचरें, फिकै मुपि न्याव फिरती।
 मुंणी दोढ पूंणी कही, पांणी उतिरि जाय पंण।
 कवित भांति सुरजंन कहैं, अै जिभ्या आठ अवगंण ॥ ११७ ॥
५-गोरप जोग गियांन, दत संन्यास पयठो।
 किसंन दीठ जादवे, रांम रघवंसी दीठो।
 ब्रंभ दीठ ब्राह्मणे, जैण ध्रंम जांण तिर्थंकर।
 महावीर मंटळे, देव देवां वोह अन्तर।
 सुरजंन सुघर घर संपनों, वंणे दिहाड़े हेक घर।
 सकळ को देव दीठो नहीं, अकळ नांव एको अमर ॥ ७० ॥
६-वोकै काट पपांण, पूजि पर लिग परसै।
 जड़िय लोह जंजीर, तेण चढ़ि फूल वरसै।
 पोटि सेवग सालि, नग जौहरी निरपै।
 पतिभरता चो कांम, सति ईमांन परपै। (शेषांश आगे देखें)

केवल ढोंग और मूर्खता है, वह सब पेट के लिए है, परमार्थ के लिए नहीं। इसी प्रकार, तत्त्व-प्राप्ति के निमित्त शरीर पर धारण किए जाने वाले भिन्न-भिन्न वेश दिखावा मात्र है, वह शरीर का स्वांग है[1]। कवि ने जोगी, अघोरी, सन्यासी, वैरागी, शेख, पीर, निरजणी आदि को देखा है जो किसी न किसी विकार और दोष से ग्रसित हैं, कृष्ण तो "काछ वाच निकळक" रहने से रीझते हैं[2]। किसी भी तरह का दिखावा तत्त्व-प्राप्ति का साधन नही है।

शरीर आत्मा का निवास-स्थान है, आत्म-दर्शन घट के भीतर किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि साधना के क्षेत्र मे सुरजनजी को नाम-जप के अतिरिक्त "जोगपथ" और "मन-मजण" के लिए "पुवण-मारग" भी मान्य है,[3] पर यह मार्ग सर्व-साधारण के लिए नही है। सुरजनजी ने वर्तमान-स्थिति से भी पाठक को अवगत कराते हुए उसको चेतावनी दी है, ताकि वह सम्भल जाए। कलियुग का "इहनाण" और लक्षण बताकर[4] कवि ने इसी ओर सकेत किया है। पर इससे निराश होने की कोई बात नही है, घोर कलियुग मे "धरानाथ आदि निरजण" और निष्कलक जाम्भोजी ने "धर्म की धजा" बाधी

परहरं आन साकार पति, साहै गति साहै चडी।
सिर चाडि हाथि सिरदो करण, अवर देव मुझि आपडी ॥ १२२ ॥

१-न क्यो कान छेदियै, न क्यों गळि ताग लगायै।
न क्यो नाद नीसाण, न क्यो रिणसीग वजायै।
न क्यो कुराण पढियै, पुराण वाचियै अनेरा।
न क्यो नाटक चेटके, न क्यो तीरथ घण घेरा।
जटा तिलक टीका भदर अं सभ साग सरीर का।
मन वीच क म सावित मुकनि, अं घर मूर सधीर का ॥ २४४ ॥

२-जोय दीठा जपि जोग, रोग तहा व्याधि अघोरी।
जोय दीठो सन्यास, तेज तहा तामस चोरी।
जोय दीठो वैराग, राग अनराग अनेरा।
सेपम सायक साग, पथ डावै दिस डेरा।
पीरा पूरिया निरजणी, अजण दीठा लोग अह।
कहै सुरजन रीझै किसन, काछ वाच निकळक रह ॥ ६३ ॥

३-सावधान गुर ग्यान, ग्यान उपदेस निरजण।
सहज सील सतोष, पुवण मारग मन मजण।
सुगुर भेंट सुरजन, मति धरि दुरमति छूटी।
गग धार विचि गुवण, मझि जळ गागरि फूटी।
तत खोजि मित चिता हरण, जुरा काळ भजै जुगति।
उडि गिगन हस मिळियो अलप, महलि जोति चिता मुकति ॥ १७२ ॥

४ गउ बीज को नास, लोभ सवारथ कै कीजै।
ले बेटी का दाम, दाम ले वेस्या दीजै।
सिध साधा सू वैर, गरू का वचन विसारै।
मात पिता सू पूत, झगडि दरबारि पुकारै।
जेह देस रीस जगदीस री, नित काळ मेह वरसै नहीं।
नर नाग देव निंद्या करै, कहो लोक जायसैं कहीं ॥ २६५ ॥

है,[1] मुक्ति-मार्ग बताया है। कवि ने तो ऐसे समर्थ स्वामी और उसके पंथ की शरण-ग्रहण की है, यह उसके लिए बड़ी उपलब्धि है[2]।

अपरोक्ष रूप से अनेक नीति-कथन भी[3] यही द्योतित करते हैं, लोक-हित की कामना तो उनके मूल में है ही। इनसे कवि की बहुविध निरीक्षण शक्ति और लोक-मानस की जानकारी का पता चलता है।

उपर्युक्त विचारधारा से सम्बन्धित अनेकशः कवित्तों के अतिरिक्त कवि ने ऐतिहासिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों पर भी छन्द-रचना की है। कुछ कवित्तों में वस्तु, व्यक्ति-नाम-गणना, दृष्टिकूट और मरसिये कहे गए हैं।

१-इतिहासिक : ऐसे कवित्त मुख्यतः दो प्रकार के हैं :—

१-क : जो जाम्भोजी के जीवन-चरित से सम्बन्धित हैं। जाम्भोजी से "परचने" वाले प्रमुख व्यक्तियों के नामोल्लेख तथा रावल जैतसी से सम्बन्धित कवित्त ऐसे ही हैं।

१-अचळ प्रांण आपत अंमर, उथपि मेछ अचगळो।
वरानाथ झांभो धणी, आदि निरंजण उजळो॥ ३०२॥
विसंन नांव सुचि साच, घट ता अवगंण घटै।
खिमां दया दिढ जोग, पाप कुळ सापि पलटै।
अंतरि ग्यांन अनंत, अंग के अरियंण गंजै।
पांणी अंन अहार, जांणि पर जीव न भंजै।
भेदां न भेद भव भंजिवा, अंम क्रंम छूटी कजा।
जग प्रगट झांभो जती धरंम तणी बांधी धजा॥ ८॥

२-सरंणि तुझि संमरथ, पंथ झांभेसर लावो।
जोग जीव जंजाळ, बोहत लोभारथ वावो।
पंच तंत परगासि, सास तंन मास संमायो।
घटि घटि अवघटि अछै, सब घरि राह संमायो।
ब्रहमंड पिंडि एको बसै, तेणि चरचा बंदूं चरंणि।
तिणि काळि सास घटि तुटि है, सुरजंन जीव संभू सरणि॥ ७॥

३- दो कवित्त द्रष्टव्य हैं :—
(क) कहा सूंब कै मिलै, कहा विणि अवसर मांगै।
कहा पर नारी सूं प्रीति, सील वीणि त्रिया सुहागै।
कहा फागंण की बूंद, चुगल सूं किसी भलाई।
किसो चोर सूं संग, साह सूं किसी ठगाई।
भोजंन दांन सुभाव विणि, दिल कपटी अंतरि दिवै।
जप वीणि जमवारो इकरथ, सुरिजंन कवि साचो चवै॥ ४१॥
(ख) दई बाग बोह दीठ, कहा एक डाळी सूकी।
वीणी वेन पचास, कहा एक भेड विसूकी।
पटरांणी दह पंच, कहा एक नारि अपती।
देंवणहार करतार, कहा अदतार अदती।
दातार अदती पारिखो, सूंब नाटि कीवी सही।
अगर बांझ व्याई नहीं, किसी पूंट पाली रही॥ १४४॥

ख : जो जाम्भोजी के सम्पर्क मे आने वाले या सम्प्रदाय से सम्बन्धित व्यक्तियो पर हैं। हूमू भादू (१८१), केल्हण-वरसिंह (१८३), सोवा (१८४) आदि पर लिखे गए कवित्त इस कोटि के हैं।

२–जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् हुई मारवाड की दशा, राठौड़ दुर्गादास और खीची मुकुन्ददास पर लिखे गए छन्द। मारवाड की तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियो के ज्ञान के लिए तो ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

क : महाराजा जसवन्तसिंह का स्वर्गवास सवत् १७३५ म हुआ था। उनके पीछे औरगजेब ने मारवाड की दुर्दशा करनी आरम्भ की। राठौड दुर्गादास ने अपने साथियों समेत बादशाह से डट कर लोहा लिया और उसको सफल मनोरथ नही होने दिया। खीची मुकुन्ददास ने वेश बदल कर राजकुमार अजीतसिंह की रक्षा की। कवित्तों मे इन सबका बड़ा मार्मिक और यथातथ्य वर्णन कवि ने किया है। इनसे तत्कालीन मारवाड की करुणापूर्ण स्थिति का चित्र सामने आता है, साथ ही आदर्शों के लिए मौत को ललकारने वाले वीरो की भावभरी गाथा पढकर गौरव-भावना का भी उदय होता है[1]। कवि ने आखो देखा हाल इनमें लिखा है।

ख दुर्गादास · महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् बहुत वर्षों तक मारवाड़-शासन की बागडोर एक प्रकार से राठौड दुर्गादास के हाथ मे रही थी। उन्होंने अपने प्राणो की बाजी लगा कर स्वामिभक्ति का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया था। कवि ने उन पर आई आपत्तियों को ध्वनित करते हुए ओजपूर्ण शब्दो मे साहस बधाया

१–उदाहरणार्थ ये छन्द द्रष्टव्य हैं —

हेक वडो हैरान, पाव जसराज पसारे।
मेह्या गढ मेडतो, जाय " जोधाण जुहारे।
महल गया घर मेल, पीव परदेस पधारे।
दिज मूरत देहरा, गाय बाजार सिधारे।
मूवो न कोई मीर छल, ध्यार पूट काने चडी।
हैरान आठ हेकण संमै, हुआ ज मुरधर बापडी ॥ १ ॥

दिज मूरत देहरां, पड़ै जसराज पडता।
घणा गढा सिर ढाक, चढै वैकुंठ चडता।
अज्या मेल इकठा, चरै सो मिघ भुजाळा।
सोहू लोग असार, आज तो बाज दुपाळा।
पहलोक अ धेरो प्रिथमी, साहा राहा भागो सरो।
सुरजन सुमत गुण ऊचरै, घरै नही वड राजा गजसाह रो।
चूथ कवि चारणा, भाट भोजग ब्रह्मागा।
मठ खोसण सामिया, भार देवण भगताणा।
न्हानी दुनी निचोड, कीध ज्यूं चोरां कीधी।
किसो त्याग छत्रियां, लाग जाताई लीधी।
जो नरा पोसी नागी तया, मा जात कीवी महल।
धणी मरण छूटी धरा, छरा लगाडी न्यात छळ ॥ २ ॥

और उनके वीरतापूर्ण कार्य और धैर्य की जी-भर प्रशंसा की है। मारवाड़ में औरंगजेब की विफलता की पृष्ठभूमि पर दो छन्दों में कवि ने जूझते हुए दुर्गादास की वीरता का बड़ा प्रभावपूर्ण वर्णन किया है[1]।

(ग) खीची मुकुन्ददास सपेरे के वेश में राजकुमार अजीतसिंह को दिल्ली से राजस्थान में लाए थे और वहां साधु-वेश में गुप्त रूप से उसकी देखभाल करते रहे थे। इस बात को द्योतित करते हुए कवि ने ऐसे 'रजपूत अवधूत' को नमस्कार किया है[2]। कहना न होगा कि काव्योत्कृष्टता और इतिहासिक दृष्टि से एतद्विषयक छन्द अत्यन्त मूल्यवान हैं।

२-अर्द्ध-इतिहासिक, पौराणिक : इनमें लोक-प्रसिद्ध व्यक्ति, गोरख, गोपीचन्द-भरथरी[3], विक्रम-भरथरी, शुकदेव, नारद, जनक, सागर-मंथन, पाण्डव, अश्वमेध-यज्ञ, शिव-पार्वती, विदुर, चन्द्रहंस, वींजराव, हंसावली, आदि-आदि पर लिखे गए कवित्तों की गणना है।

३-नामगणनात्मक : इनमें कृष्ण, पवन, धरती, अग्नि, चन्द्रमा, आदि के पर्यायवाची तथा

१-(क) विषो नरंदां नाहरां, घड़ी पलकां होय।
सिंघ पड़ै पड़ आपणें, सांझे भूषो सोय।
सांझे भूषो सोय, करै परभाति वळावळ।
हाथळ कूंज उठाय, जाय ढायै मोत्यांहळ।
जो आरंभै सो करै, पाड़ कोटां पछाड़ै।
आंण पराया माल, खाय घोळै दीहाड़ै।
थरहरै थाट आगै वड़ै, वांसै वहै ज वाहरां।
कायरां विषो हालै नहीं; विषो नरंदां नाहरां॥

(ख) सिंहां कूंण सीषवै, घड़ कुंजरां मोड़ भंजै।
वाराह कूंण सीषवै, सिर केहर रै गंजै।
करंण कूंण सीषवै, हेम दीनो हथाळै।
हंणवत कूंण सीषवै, जाय लंका परजाळै।
किसी सीप सायर सुतंन, कोड़ विकावण एक कण (रा)।
ताई सीप येही परी यो दुरगा आसकरण रा॥

२-वर सफर वागली, सार चक्र समसेरां।
वांधी गांठ वटूक, टंक वंक हक टेरां।
पेहू घूंणी पेरवै, वंक तूं ज वैरागर।
अंग वभूत भूरी जटा, जरद कंथा जोगेसर।
रजपूत धूत अवधूत मल कुंत झलंकै नेज कंन।
विनती निमो आगळ अमर आरंभ अपाड़ सिव जोग कंन॥

३-सोवंनगिर की सिपर, धज वंधी छत धारी।
धोळागिर को राव, मुप भुगतै इधकारी।
दीन्हु मात उपदेस, भगति विगि मुकति न जाई।
कूंकूं वरणी देह, अंति नै चरिसी काई।
दिल मां दीपग प्रगट्यौ, हूवा सुरां सारीप।
गोपीचन्द अर भरथरी, गुर सिप मांगी भीप॥ २०३॥

दिक्‌पाल, बारह मडलियाँ, तीर्थंकर, चौबीस अवतार, भागवत के अध्यायों का परिमाण, बारों की जाति, राग और उनके रग आदि का नामोल्लेख किया गया है।

दृष्टिकूट कवित्तो मे अध्यात्म और यौगिक प्रसग एव चर्चा है।

इतिहासिक कवित्तों की भाति सुरजनजी के मरसिए भी विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं। वील्होजी पर लिखे गए मरसियों को उनके प्रसग मे उद्धृत किया जा चुका है। गूढ विषय-विशेष को स्पष्ट करने के लिए अनेक कवित्त प्रश्नोत्तर शैली मे भी लिखे गए हैं[1]।

कवित्तो मे सुरजनजी का व्यक्तित्व समग्रता मे मुखरित हुआ है। इनमे उन्होंने बडे सहज रूप से अपनी समस्त भाव-सपदा अर्पित की है। उनके जीवन-पर्यन्त प्राप्त अनुभव की अभिव्यक्ति इनमे हुई है। उनका अध्ययन, चिन्तन, साधना, ज्ञान, भक्ति और प्रेम-भाव, काव्य के निर्मल और अजस्र अमृत-स्रोत मे घुलमिल कर लोक-हित के कगारो म बहा है। इनमे एक शोधक-शक्ति है जो पाठक के मन और हृदय मे छाए कलुष, सकीर्णता और अहमन्यता को दूर करती है। उल्लास-पूरित आत्माभिव्यक्ति के साथ व्यक्ति और लोक की मगल-कामना इनके मूल मे है। तत्कालीन मरुदेशीय जनजीवन की झाँकी के दर्शन इनमे किए जा सकते हैं। सुरजनजी ससार के राग-द्वेषों से दूर, तत्वदर्शी साधु और महान् कवि थे। उन्होने जो कुछ कहा है, वह अनुभव और प्रत्यक्ष-दर्शन के आधार पर है। अतः उसमे ओज, सच्चाई और प्रभविष्णुता है। जिस रूप मे उन्होंने अभिव्यक्ति की है, वह सरल, बोधगम्य और प्रभावशाली है।

कवित्तों के तो सुरजनजी बिना मुकुट के एकच्छत्र सम्राट हैं। भाषा उनकी पूर्णत वशवर्तिनी है। वह भावो के अनुकूल रूप ग्रहण करती और कवि के सकेत पर थिरकती दृष्टिगोचर होती है।

(९) कवित्त-बावनी[2] यह अध्यात्म और नीति सम्बन्धी ३० कवित्तो की रचना है।

१-(क) प्रश्न . कहा वसत है हस, परम हस वासो पूछै।
कहा वसत है नाद, बेद सू सगति अछै।
कहा वसत है धीरि, रुही तैं रहत नियारा।
कहा वसत है सुषम, विषम आ बात बिचारा।
कहा वसै मन उनमनी कहा, कहा क्रम वासो करै।
ब्रहमड पिडि एका विगति, उपध्यान बेद किम उचरै ? ॥ ८० ॥

(ख) उत्तर : असट कु वळ परवरे, हस का तहा पयाणा।
सहस कळा पपडी, परम हस मझि समाणा।
असतगि ओउकार, वेद लिपि उवरि मेळा।
गग जमना सुरसती, त्रवेणी नाद विंद का मेळा।
धीरि पेम कै मझि, रुही तैं रहत नियारा।
सुषम नीद कै सगि, नींद है काळ पसारा।
मन रहै ग्यान उनमन रत, भ्रम क्रम वासो करै।
ब्रहमड पिड एका विगति, उपध्यान वेद सति उचरै ॥ ८१ ॥

२-प्रति सख्या ७७, ८१, १२१, २०१।

इसमें वर्णमाला के २८ अक्षरों पर, प्रत्येक वर्ण से क्रमशः आरम्भ करके फुटकर छन्दों की रचना की गई है। वर्ण निम्नलिखित हैं :—

ए, क, ख, ग, घ, ङ (न), च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, स और ह। रचना का नाम 'बावनी' इस पद्धति पर लिखी जाने के कारण ही है, अन्यथा ५२ अक्षरों में शेष २४ वर्णों (दोनों ऋ और लृ के अतिरिक्त २०) को इसमें छोड़ दिया गया है।

प्रथम छन्द में ही कवि ने बावनी के उद्देश्य और वर्ण्य-विषय का उल्लेख किया है[1] जिसके अनुसार, मुक्ति-हेतु अनेक प्रकार से ज्ञान-प्रकाश करने का यत्न किया गया है। मुक्ति को ही वह अन्तिम ध्येय मानता है और हरिगुण-गान करता हुआ स्वयं भी इसकी कामना करता है। इस हेतु मनुष्य को संसार में जो काम करने चाहिएँ, उनका नामोल्लेख यहां है। इनमें करणीय-अकरणीय कामों, हरिनाम-स्मरण और माहात्म्य, गुरु-कथनी-पालन, नीति, गुण-ग्रहण, अवगुण-त्याग आदि का विविध प्रकार से वर्णन है। यह वर्णन तीन प्रकार से किया गया है :-(क) निषेधात्मक रूप में[2], (ख) आदेशात्मक रूप में[3] और (ग) तटस्थ और सामान्य रूप में। पिछली कोटि के कवित्तों में कवि के आत्म-कथन, हरि-महिमा आदि की अभिव्यक्ति हुई है। भाषा बोलचाल की राजस्थानी है।

अध्यात्म, नीति-विषयक 'कवित्त-बावनियों' में प्रस्तुत रचना उल्लेखनीय है। इसका महत्त्व इस कारण भी है कि सुरजनजी के एतद्विषयक प्रमुख विचारों का समाहार इसमें मिल जाता है।

(१०) 'सवइये' : प्रति संख्या २०१ के फोलियो १६५-१६७ पर सुरजनजी के ३० फुटकर

१-पर नंद्या परहरे, पेम उपगार चितारिस।
मंन मोह अहंकार, मवि जो आपो मारिस।
दांन सीळ तप भाव, चित सुर भोमि मिधारिस।
मनसा वाचा क्रंम, तीनि गुंण तंत चितारिस।
मान्यपा देह करणी मुकति, जुगति हीरा जांमे मरै।
बावंनी ग्यांन प्रगासि बुधि, अरथ पोजि भव उवरै॥ १॥

२-टळो विटळ कांमंणी, टळो वंणि सीह लहंतां।
टळो रीस रावंतां, टळो गजराज वहंतां।
टळो ताति पारकी, टळो रिण चोर मारंतां।
टळो वैर बंधवां, टळो अपराध करंतां।
टळि जाहि मतै गुर टेक तैं, टोळी भेदान्नग अटळ।
रापियै टेक मोटा मरंणि, छोटां टेक एकाळ छळ॥ १२॥

३-करो साध सूं गोठि करो सुमारग साकरि।
करो नेम भ्रंम कथ, करो हरिजाप ज्यौ करि।
करो कथ केवळी, करो मत मीन मुकरणी।
करो जीभ जीकार, करो दडिया घट करणी।
करि कांम जको गुर दपयौ, गुर वरजी साइ नं करि।
कळि रापि लाज कुळ उजळी, कर जोड़ि वास वैकुंठ करि॥ ३॥

'सवइये' लिपिबद्ध मिलते हैं[1] ।

इनमे निम्नलिखित विषयों पर एकाधिक छन्दो की रचना की गई है –
(क) अहकार[2] तथा इन्द्रिय-विषय त्याग, (ख) मन की चचलता और उसको बस मे करना[3] (ग) हरि-महिमा[4], (घ) मनुष्य की करनी, जीवन की नश्वरता, मृत्यु की प्रबलता और अनिवार्यता[5], तथा (ङ) जाम्भोजी के गुण-कार्य-कथनी[6] आदि ।

१–इनमे अनेक छन्दो की पक्तियाँ और बहुत सी पक्तियो मे मात्रा, शब्दो की घट-बढ है। एक एक छन्द म दो दो पक्तियो से लेकर ६-६ पक्तियाँ तक हैं। कई छन्दों के बीच मे अन्य छन्दो की पक्तियाँ तथा एक अन्य कवि गोपाल की दो पक्तियाँ भी लिखी गई हैं। पाठालोचन की दृष्टि से इसके कई कारण हो सकते हैं, यथा– (१) आदर्श का खण्डित, त्रुटित या अस्पष्ट होना (२) आदर्श के हाशिए मे छूटी हुई पक्तियो का लिखा होना, (३) आदर्श की मूल लिखावट पर हरताल फिराए जाने पर भी उसका पढा जा सकना, (४) लिपिकार का सुन कर या अपनी स्मृति के आधार पर लिखना अथवा दृष्टि दोष, एव (५) आदर्श प्रति के लिपिकार का या प्रस्तुत प्रति के लिपिकार का सचेष्ट प्रक्षेप प्रयास, किन्तु इसकी सम्भावना कम ही है।

२–जाति कै गुमान सु जिहान तै अग्यान भए,
ग्यान कै गुमान तै पिरान ज्यान पायो है।
तप कै गुमान सीगी रिप मारि हारि पाई,
वेद कै गुमान ते ब्रह्म हू उठायो है।
रूप कै गुमान हेत सीत हरि लै गयो,
दान कै गुमान ते करन फिरि आयो है।
सायर गुमान ता रतन हू गुमाया है,
सेस कै गुमान सामी नाग नाथि लायो है।
द्रव कै गुमान चक उठि पूठि कीनी,
तीनि लोक धाय सोई साध सरणि आयो है।
सुरजन साच की सुनाई बात अभिमान कै वहाये,
तै थी न्यारा पथ पायो है ॥ १ ॥

३–धरि ही हरि सु हित लाय रहो, मन रे मत जाह भटकण कू ।
वण पापो काम वेकाम करे, थोथा झूर फटकण कू ।
भरम्यो कुळ काज अकाज करै, आयो है परची पटण कू ।
मनवा मत जाहि हुवो मतवालो, पर घरि पापड थटण कू ॥ १३ ॥
(इसम प्रथम दो पक्तियो के पश्चात गोपाल कवि की दो पक्तियाँ लिखी हुई हैं)।

४–रे मन सोचि विचारि कहू, आप अलेप की बात न पाई।
दाता कू निरधन वणावत, सूम कू सपति देह सवाई।
घोडा कू घड घिरळ न देई पर कूकर कू पक्वान मिठाई।
एक अउत कू पूत न देई, एक कू दस बीस देवाई।
गोमिद की गति गोमिद जाणै, सागर पार इम्रत बरसाई।

५–बाल हु गोपाल ख्याल, जोवन भयो जजाल, छुटिगो पिरान मान कवहू कमाय है।
लिछमी लपट जैसो नट को कपट लालच कै लागो को को दिन ललचाय है।
राव(न) को रक न को गगन गरीव न को रही तब अव कव ताहू हराय है।
कहै कव सुरेजन, सुण मन मेरे धुनि तेरी पेयार छार पवार होय जाय है॥१८॥

६–कळ मा केवळ ग्यान परगट, दल देवळ दीन मुकाम उठायो।
तिन की महमा कुछ पार नही, निसताह हुवै दिस सीस नु वायो। (शेषाश आगे देखें)

इस प्रकार, सवैयों का मुख्य-वर्ण्य विषय अध्यात्म है, जिसके अन्तर्गत प्रकारान्तर से हरि-महिमा-गान करते हुए मोक्ष-कामना करना[1] और तद्हेतु विविध प्रकार से उद्-बोधन कराना कवि का प्रधान उद्देश्य है। भाषा के सहज प्रवाह और लालित्य तथा कथन की सत्यता के कारण, समष्टि रूप से ये छन्द अत्यन्त प्रभावशाली हैं। राजस्थान में व्यापक रूप से लोक प्रचलित और प्रसिद्ध सात सुखों सम्बन्धी यह कथन सुरजनजी का ही है :—

एक ज सुख नीरोगी काया, दूजो सुख खरचंण नै माया।
तीजो सुख वचंन वसि नारी, चौथो सुख पुत्र हितकारी।
पांचवों सुख राज सूं पासो, छठो सुख सुथांने वासो।
सातवों सुख सुफळ ने होई, हरि की भगति करो जंन कोई॥ ५॥

सुरजनजी की लोकप्रियता का यह सबसे बड़ा प्रमाण है। इसके मूल में उनका सामान्य जन की भावना, आशा-आकांक्षाओं का तलस्पर्शी ज्ञान और अनुभव तथा उसकी सहज रूप से अभिव्यक्ति करना है।

(११) **कथा चेतन**[2] : यह ३१ दोहे-चौपइयों की रचना है जिसमें मोक्ष-प्राप्ति के लिए 'धरंम'[3] करने की चेतावनी दी गई है। कर्मफल भोग अनिवार्य है, अच्छी फल-प्राप्ति के लिए वैसे ही कर्म भी धर्म-पूर्ण होने चाहिएँ। इसके लिए सुरजनजी ने प्रमुख रूप से सत्संगति पंचेन्द्रियों सहित मनसा-वाचा-कर्मणा निर्मलता, गुरु-आज्ञा और उपदेश-पालन तथा सुकृत करने की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए प्रत्येक इन्द्री के पवित्र करने की युक्ति भी बताई है[4]।

उल्लिखित उद्देश्य की प्राप्ति स्वरूप प्रस्तुत रचना का महत्त्व स्वयं कवि ने अपनी एक अन्य रचना 'कथा धरमचरी' में प्रकट किया है[5]।

जागि रे जागि अभागि न भूलिस, भाग वडो सचड़ो पंथ पायो।
सुरेजंनदास विचारि कहे, गुर ग्यांन जको मेरे मंनि भायो॥ २०॥

१-अब कियो तदि भाजि गयो, सिंघ कियो तदि मारंण धायो।
राजा कियो तदि दांन दियो, रक कियो तदि मांगि कै पायो।
जोई कियो सोई मांनि लियो, अब और सोई हरि के मनि भायो।
गायो अगायो नीनूं सब गोविंद, गायो है सोई सब तेरो ही गायो॥ ४॥

२-प्रति संख्या ६६, ६८, ७५, ८१, १३६, १९९, २०१। उदाहरण अन्तिम प्रति से।

३-हळति पळति हुवं धरंम सहाय। पाप करै तो परळै जाय।
कीजै ध्रंम न कीजै पाप। जो करिसी सो भुगतै आप॥ १०४॥

४-पावंन कांन सुंणै गुर ग्यांन, मनंसा पावंन धरै वियांन॥ ८॥
जिभ्या पावंन कीजै जाप, जलंम जलंम का मिटीजै पाप॥
कर पावंन जे धर दत करै, चरंण निपाप धरंम दिस धरै॥ ८९॥
ग्यांन ध्यांन सरवर को तीर, किरिया पावंन सभ सरीर॥
सिवरंण मूळ जीव को सही, सत का नाळ बंधै गुर कही॥ ९०॥

५-जदि उठैं घर का सह लोग। किरिया धरंम चलांवंण जोग।
चेतंन कथा हिरदै उचरो। रंतन कथा ले दुतर तरो॥ १२॥

(१२) कथा चितावणी[1] (अपर नाम—प्रभ चितावणी-प्रति सख्या १९९) : यह २५ दोहे-चौपइयो की रचना है। इसमे कवि ने गर्भवास और बालकपन के दुख, युवावस्था मे किए गए अज्ञानपूर्ण कार्य, हरि-भक्ति द्वारा अनेक भक्तो के उद्धार का उल्लेख तथा नश्वर जीवन की चेतावनी देते हुए मानव को भगवदोन्मुख करने का प्रयास किया है। अन्तिम दोहे मे कवि ने एक प्रकार से अपने समस्त कथन का सार दे दिया है[2]। जीव अपने पूर्व कर्मों के फलस्वरूप आवागमन के चक्कर मे भटकता है। इससे मुक्ति की प्रेरणा देना ही कवि का उद्देश्य है, वह स्वय इस हेतु 'जम्भगुरु' की शरण ग्रहण करता है।

रचना मे गर्भवास और बालकपन के दुखो का प्रभावपूर्ण उल्लेख किया गया है। ससार में जन्म होना मानो एक दुख से छूट कर दूसरे दुख मे पडना है[3]। बालकपन के वर्णन मे कवि की निरीक्षण शक्ति का भी पता चलता है।

(१३) कथा धरमचरी[4] : ८० दोहे-चौपइयों की यह रचना धर्माचरण से सम्बन्धित है। अनमोल मानव जीवन मे मोक्ष-प्राप्ति-हेतु यत्न करना चाहिए। पाप और धर्म का भेद जाम्भोजी ने बताया था, 'धरमचरी' के रूप मे कवि उनके एतद्विषयक उपदेशों का उल्लेख करता और प्रमाण स्वरूप कतिपय उदाहरण देता है। डूमू भादू, लोचा, केल्हण, वरसिंह श्रेणिक, अभयकुमार, सेठ सुदर्शन, भाणवती-भोज, चन्द्रहास, विदुर आदि की कथाओं का उल्लेख कर, धर्माचरण की महत्ता दिखाता है। प्राय. प्रत्येक लघुकथा के वर्णनोपरान्त निष्कर्ष स्वरूप एक एक दोहे मे धर्म, गुण-विशेष और फल-प्राप्ति का उल्लेख करके उदात्त गुण ग्रहण और तद्नुरूप कार्य करने की प्रेरणा दी गई है[5]।

(१४) कथा हरिगुण (प्रति सख्या २०१, फोलियो २८७-२९३) : यह दोहे (९६), वेमखरी

१-प्रति सख्या ५८, ६६, १९९, २०१, २०७, २५०, ३३०। उदाहरण अन्तिम प्रति से हैं। कतिपय प्रतियो मे छन्द सख्या २५ से अधिक भी मिलती है।

२-साच का धरि एक सुरिजन, धरं मुनी जन ध्यान।
रहै नाव अलेप का, कै अपणा ईमान ॥ २५ ॥

३-जलम कै दिन हुवो जाहर, थाळ वाज्यो सुष।
एक दोजक छाडि भूडू, पड्यो दूजै दुष ॥ ६ ॥

४-प्रति सख्या ६६, ६८, ७१, ७५, ८१, १२०, १३९, २०१, २४५, ४००। उदाहरण-प्रति सख्या २०१ से।

५-डूमू भादू भाव करि, परचो गुर उपदेस।
अजर जर्यो जीवत मुवो, रतन कथा पहरेस ॥ २३ ॥
सेणक सू हसावळी, केणक अभै कवार।
फळ लागा भव तीसरै, असा श्रो उपगार ॥ ३४ ॥
सोदो सावळ साह सू, रापी रेप रतन्य।
जा दिन पर उपगार करि, सोप दीहाडो छै धन्य ॥ ६३ ॥
भलै भलाई सपनी, बुरै बुराई लघ।
वै अवळा की गति हुई, रावळ रीछे पघ ॥ ७० ॥
चोरी पकडी चोहटै, दूति पूगो दाव।
मुकति विदर कै पूत नै, विदर नै सिरपाव ॥ ८० ॥

(८), मोतीदाम (११६) और कवित्त (२), कुल १६२ छन्दों की रचना है। इसमें विविध प्रकार से हरिगुण गान किया गया है। जिसका सारांश इस प्रकार है :—

हरि-महिमा-वर्णन के लिए कवि अनेक प्रकार से अपनी लघुता और असमर्थता प्रकट करता है। एक जीभ से और अल्पायु में हरिगुण कैसे कहा जा सकता है ? केवल पक्षी की भांति हरिगुण-सागर से चोंच मात्र ही भरी जा सकती है। परन्तु मनुष्य जीवन में 'रामरस' की चर्चा करना परम कर्तव्य है, 'नांवरस' तो संजीवन-मंत्र और सब सुखों का मूल है, इसलिए उसको नही भूलना चाहिए[1] । यह मार्ग-दर्शन सतगुरु कराते हैं।

प्रत्येक युग में ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन और संहार हरि ही करते है। हरि सब का मूल कारण है। वह निराकार है, तथापि साधु और भक्तों के लिए उसने विभिन्न अवतार रूपों में अनेक कार्य किए हैं[2] और भविष्य में भी कल्कि अवतार लेकर करेंगे। इस सम्भावित अवतार का वर्णन भी छः छन्दों (१२९-१३४) में कवि ने किया है।

लोग अनेक प्रकार से हरि-प्राप्ति का उपाय करते हैं किन्तु वह तो और किसी प्रकार का नही, केवल शुद्ध मन से किए गए प्रेम और सुकृत का नाता ही मानता है[3] तथा सर्वत्र

१-एक जीभ मुष नान्हडो, अळप आव इण ठांय।
हरिगुण सायर ता घणो, मो मुषि क्यों र समांय ॥ ६ ॥
ज्यों पंपी समंद मां, नीरि चंच छलि लेह।
सायर ऊंणो न थिये, हरि गुंण पारिष एह ॥ १० ॥
परंम संनेही परंम गुर, सिष साधुवां सनेह।
अरिचा चरचा रांम रस, मिनष जळंम गति एह ॥ १३ ॥
रिदा न भूले नांव-रस, ओही सुजीवंण मंत।
अनंति नांएं एक नांव, एकंणि नांय अनंत ॥ १८ ॥
छन्द मोतीदाम :
नित प्रति दीह लिये तो नांव। विसंभर जोति लहे विसरांम।
चवे तो नांव अनेरा चीत। सदा सुष जीव न व्यापे सीत ॥ १५८ ॥
छते हरि नांव भजे गुंण छंद। न व्यापे राकस सीह निरंद।
जपे तो नांव जीपे हरि जंग। भजे तो नांव पड़ै नही भंग ॥ १५९ ॥
भषे तो नांव मिले हरि भेल्य। पगां पग दोष रसातल्य पेल्य।
नारांयंण तुझि निरां गुंण नांम। सेवे तो नांव मिटे संग्रांम ॥ १६० ॥
आभ फुहारा महि कणां, कुंण जाणे करतार।
कवंण अवारै आतमां, आभ जेवडो भार ॥ ६ ॥
२-पाफरपांन सरसा पेल। हाथे नव दत रमांवंण हेल।
चाड भगतां आप चड़ै। धंणियांवंण कोय न एण्य घड़ै ॥ १२८ ॥
रूप न रेष नही तो रंग। साध्य सतोष धिआवे सग।
हाड न गुड नही हरि हाथ। अनांथ अनांय अनांथ अनांथ ॥ १०५ ॥
पेट न पूठि नही हरि पाव। जाया हरि केण्य किसे घरि जाव।
आया हारे काहु मूल उपाय। माहव तुझे नही को माह ॥ १०६ ॥
३-बीरघे जीव हरै परवीत। चड़ावे पूजा चोरां चीत।
मुसै परवीत रहैं वंन मेर। नारांयंण तुझि तंणां नाळेर ॥ १५२ ॥

(शेषांश आगे देखें)

निवास करता है।

हरि महिमा से अभिभूत[1] कवि तो नंत मस्तक होकर केवल उनकी चरण-शरण और मुक्ति मागता[2] है। इसका सर्वश्रेष्ठ उपाय नाम-जप है जिसका उल्लेख बार-बार कवि ने किया है। ध्यातव्य है कि रचना के बीच मे (छन्द १५६ से १७० तक) भी वर्णमाला के 'ख' अक्षर से आरम्भ करके क्रमश 'ह' तक एक-एक पक्ति मे बावनी या 'कक्को' की भाति कवि ने नामजप की महिमा का वर्णन किया है।

समग्र रचना हरि-भक्ति से ओत-प्रोत है।

यह रचना चारण कवि ईसरदास कृत 'हरिरस' की भाति ही है। ऐसे काव्यो की परम्परा म कतिपय बडे महत्वपूर्ण भक्ति काव्य उपलब्ध होते हैं। हरिरस के पश्चात् यह दूसरा ऐसा काव्य है। इसी परम्परा म आगे चल कर पीरदान लालस (विक्रम अठारहवी शताब्दी उतरार्द्ध) तथा बिश्नोई कवि ऊदोजी अडीग (कवि सख्या १००) ने अपने काव्य लिखे थे। इसमे दस छन्दो (८२ से ९१) मे प्रसगवश कृष्ण को किसान और सृष्टि को उसका खेत मानकर बडा ही व्यापक रूपक उपस्थित किया गया है। इसमे हरिभक्त कवि गद्द का भी उल्लेख है, जो सम्भवत बिश्नोई कवि रहा होगा[3]।

(१५) कथा औतार की[4] : यह राग 'आसा' में गेय २३७ दोहे-चौपइयो की रचना है। इसमे जाम्भोजी का जीवन चरित-वर्णन है, जिसका सार इस प्रकार है —

उठ अधराति करै उपराध। सरणै चाडि हुवै पहु साध।
आपोप माहि वेगुच अपरत। कहै करतार दीन्ही ज कुमति ॥ १५३ ॥
नातो गिणै न नारियण, मन सुध हेत न मद।
करि सुकरत कितरा हुवा, इद सरीपा इद ॥ ३८ ॥

१-आवै जाहिं अपार, सार ससार न देपै।
लष चवरासी जीव, लेप लिप आप अलेपै।
कीडी कुजर कीट, कर धर अवर काया।
कारीगर न मरै, मरै तरवर गिर माया।
ऊपजै षपै जामै मरै, सिध साधा उसरा सुरा।
अवघट घाट मजै घडै, अलष पुरिष आदेस गुरा ॥ १९२ ॥

२-सरणि राषि गुर साव, चरण दासे का वितारै।
सरणि राषि गुर सांव, मिरध आपरी न मारै।
सरणि राषि गुर सांव, सरणि गज मीन उधारै।
सरणि राषि गुर साव, अति सेवगा उवारै।
सरणि राषि गुर साव, किसन सांम्य सुरेजन कहै।
विसराम नाव सासो न गिणि, राज्य हुत लज्या रहै ॥ १९१ ॥
जुगां जुग जैति भव वेध्य जाण्य। बर्णै कुर्ण दत करै वापांण।
दापै मैं तुझै दसू अवतार। निरजण मुझि करो निसतार ॥ १३५ ॥
न मांगू पूत पेता जग्य नाव। सदा सिघ राषि पगा री साव।
मुवा के वार अलू णी मीच। वीरषी गागरे गगा वीच ॥ १३६ ॥

३-द्रष्टव्य-परिशोध अ क ४, हिन्दी विभाग, पजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ, में लेखक का "राजस्थानी के विस्मृत कवि गद्द और उनके कवित्त" निबन्ध।

४-प्रति सख्या ४५, ६६, २०१। उदाहरण अंतिम प्रति से।

हांसा को जोगी का आदेश, जाम्भोजी का जन्म, धरती पर पीठ न लगाना, दूध-पान न करना, भोपों से पूछना, उनका तेरह जीव मार कर ग्यारह बताना, नागौरी पंडित से पूछना, उसके "नाटक-चेटक", जाम्भोजी का जल से कच्ची मिट्टी के दीपक जलाना, पंडित को प्रबोध, अपनी आज्ञा से ग्वालों के संग लोहटजी के पशु चराना, दुर्भिक्ष (सं० १५४२ के) में लोगों को अन्न, धन और मनसा से गूगल का ऊंट देना, सुकाल होने पर जाम्भोजी का लोगों के पास जाना, ज्ञानोपदेश और प्रह्लाद से वचनबद्ध होने के कारण "पर-काज" हेतु अपने आने का उल्लेख, पूल्होजी पंवार की शंका, उनको स्वर्ग-दर्शन और विश्वास, पंथ-स्थापना, अनेक जाति और पेशे के लोगों का उसमें आना (१-९९)। आगे कवि कतिपय सुने हुए प्रसंगों का उल्लेख करता है :—

विष्णोइयों की जमात के साथ जाम्भोजी के दर्शनार्थ संभराथळ पर भीयों पंडित का आना और सम्प्रदाय में दीक्षित होना, जाम्भोजी के सबद संख्या २७ कहने पर रणधीरजी की शंका और उनको समुद्र-पार ले जाना, काबा की यात्रा में जाल में फंसी मछली की रक्षा और काजियों को ज्ञानोपदेश, लोहापांगल का विष्णोई होना, सिकन्दर लोदी को प्रतिबोध और हासिम-कासिम को छुड़ाना, द्रोणपुर में मोती चमार को छुड़ाना, बादशाह बाबर का जाम्भोजी से मिलना, कर्नाटक में शेख सद्दो से गो-हत्या बन्द करवाना, पठान मोहम्मदखां को ज्ञानोपदेश, जैसलमेर जाना, अन्त में जाम्भोजी के उपदेश, विष्णोई सम्प्रदाय की विशेषताओं, विभिन्न संस्कारों और विष्णोई के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विस्तार से उल्लेख करता हुआ कवि मुक्ति की कामना करता है। जाम्भोजी के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने के लिए कवि के अनेक उल्लेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

(१६) **कथा परसिध** (प्रति संख्या २०१, फोलियो २९३-२९९) : यह 'रास की ढाळ" पर लिखी गई दोहा, गाथा, भुजंगी, त्रिभंगी, रोमकन्द, और छप्पय-कुल १९५ छन्दों की रचना है। इसमें जाम्भोजी के जीवन-चरित सम्बन्धी 'प्रसिद्ध कथाओं' का उल्लेख है, जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

जाम्भोजी की विभिन्न बाल-लीलाओं का उल्लेख, राव दूदा को मेड़ता देना, संवत् १५४२ में अकाल-ग्रस्त लोगों की सहायता, पूल्होजी की शंका और उसका निवारण, सम्प्रदाय-प्रवर्तक जाम्भोजी का विस्तृत भ्रमण, २७ वें सबद पर शंका और रणधीरजी को समुद्र-पार ले जाना, लोहापांगल की कथा, नागौर के "महमदखां" को ज्ञानोपदेश, पंडितों, काजियों के जीवगति सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर, सिकंदर लोदी से हासिम-कासिम को छुड़वाना, मक्का जाना, बाबर का जाम्भोजी के दर्शनार्थ आना, मुल्तानी पीरों, पठान तथा चगतई लोगों को प्रबोध, रावल जैतसी के आमंत्रण पर जैसलमेर जाना, वहां जीव-हत्या छुड़वाना, द्रोणपुर में मोती मेघवाळ को छुड़ाना, मोहिल राणों, राव मालदेव, तेजो, कान्हो, अल्लू चारण, दुगदुगी भंति, वछू नाह आदि का शरण में आना, बीकानेर, नागौर, मेड़ता, जोधपुर, फलौदी, जैसलमेर, हिसार, दिल्ली, गंगापार के प्रदेश, अन्तर्वेद, कन्नौज, लखनऊ, राजपुर, कालपी, उज्जैन, हरिद्वार, आगरा आदि अनेक प्रदेशों में भ्रमण और वहां के लोगों में व्याप्त अज्ञानांधकार को मिटाना, जाम्भोजी का रूप-वेश-वर्णन, उनकी शरण में आए अनेक लोगों

और उनकी जातियो का उल्लेख, सवत् १५९३ मे वैकुण्ठवास, उनके पश्चात् अनेक लोगों का अनेक स्थानो पर प्राण-त्याग, स्वर्ग-वर्णन और हरि-स्मरण-महिमा।

प्रस्तुत रचना कवि की एक अन्य रचना 'कथा औतार की' की पूरक कही जा सकती है। इससे जाम्भोजी के जीवन, कार्यों और सम्प्रदाय सम्बन्धी बहुमूल्य सूचनाएँ मिलती हैं। जाम्भोजी के देश-विदेश भ्रमण, बाबर के मिलन सम्बन्धी कथन ऐसे ही हैं।

(१७) ग्यान महातम[1] : यह २०० दोहे-चौपइयो की रचना है। विभिन्न लिपिकारों ने इसकी छन्द-सख्या भूल से अधिक लिखी है। कवि ने अधिकाश स्थलो पर प्राय प्रत्येक-चौपई के पश्चात् १२-१४ मात्राओ वाली पक्ति की टेक लगाकर पूरे छन्द को एक नवीन रूप दे दिया है।

इसमे सवाद रूप म बुरी मनोवृत्तियो पर अच्छी मनोवृत्तियो की विजय दिखाई गई है। प्रत्येक मनोवृत्ति अपने गुण, कार्य का सोदाहरण बखान करती है। रचना का उद्देश्य है आत्मतत्त्व-प्राप्ति की ओर मानव को प्रेरित करना। 'जीव' का यह 'सुवारथ' इस 'ज्ञान' को सुनने और उदात्त गुण-ग्रहण करने से पूरा होता है, जिसके लिए उसने गर्भवास मे 'सिव' से कौल भी किया था[2]।

काया मे विवेक और मोह दोनो का वास है। ज्ञान अमृत की तथा मोह, अज्ञान विष की भांति है। पहला 'अलख' का और दूसरा शैतान का अश है[3]। इनमे मन जिसके साथ होता है, विजय उसी की होती है[4]। ज्ञान की पत्नी सुमति और मोह की कुमति है[5]। मोह के कायागढ़ मे 'सग्राम रचने' पर ज्ञान ने उसको परास्त करने का विचार किया। मोह के चार प्रधानों-काम, क्रोध, लोभ और अभिमान को ज्ञान के शील, क्षमा, सतोष और निरहकारिता (नी कुछ) ने क्रमश वादविवाद मे हराया।

काम ने इन्द्र, 'करण', कीचक, राजा मुज, शृगी ऋषि आदि के उदाहरण देकर अपनी शक्ति का परिचय दिया जिस पर शील ने गोरख, द्रोपदी, कुती, सेठ सुदर्शन, सुभद्रा, अजनी और सीता के उदाहरणो द्वारा अपने गुण बता कर उसको पराजित किया। इस पर

१-प्रति सख्या ६६, ८१, १२३, १५२ २०१ तथा ३३०। उदाहरण प्रति २०१ से।
२-जीव कियो हुतो सिव सू कौळ। मेल्ह अग्यान ज्यौं होय वेकौळ ॥ ७ ॥
३-ग्यान दोन्यौं मरी एण्य समारि। गुर मुखी चाल्यजो ग्यान विचारि।
ग्यान सीतळ सदा इम्रत धार। मोह अग्यान छै विषं विकार ॥ ८ ॥
कहै अभेय अभेय रो अस। मोह अग्यान सैतान रो वस।
माडियो मोह वमेप सू वाद। साभळो सरवणं होय सवाद ॥
मोह वमेप पटतरो ॥ १० ॥
४-मन सू ग्यान कीवी अरदासि सोय जीपै जीगि सू हुवै पासि।
मन निरजण अजण माहि, जीव्य काया जिण दिसी थाय ॥ १३ ॥
५-ग्यान राजा कियो मन्य विचार, बधवा चेतन ताहरी वार।
सुमति सुभारिजा मू कहै वात, पर उपगार करे दिया हाथ ॥ १७ ॥
मोह राजा घरे हळ परधान, पाप रो मूळ वडो अग्यान।
कुमति रांणी पटवणी नारि, तेण्य लियो अछे काम हकारि ॥ २२ ॥

क्रोध आया। उसका संचार होते ही काया की दशा विचित्र हो गई[1]। अपने पक्ष में उसने सनक-सनन्दन का उदाहरण दिया। क्षमा ने प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, मोहम्मद साहब और अम्बीरीष के उद्धरणों द्वारा उसको शान्त किया। तब लोभ ने अपना कर्त्तव्य बखाना जिसका समुचित उत्तर सन्तोष ने दिया। अन्त में अभिमान को भी "नी कुछ" ने निरुत्तर और विनष्ट किया। इस प्रकार क़ायागढ़ में ज्ञान की विजय हुई। संवादों के बीच यत्र-तत्र कवि ने दोहों में स्वकथन भी किया है। उदाहरणार्थ काम, क्रोध और लोभ पर कहे गए छंद ऐसे ही हैं[2]।

(१८) ग्यांन तिलक (प्रति संख्या ६६, २०१) : यह १०४ दोहों की रचना है। इसमें भी कवि ने विविध कार्यो और गुणकथन द्वारा बुरी मनोवृत्तियों पर अच्छी मनोवृत्तियों की विजय दिखाते हुए मोक्ष-प्राप्ति का उपाय बताया है।

कायागढ़ में मोह के प्रधानों-काम, क्रोध, लोभ और गर्व ने एक-एक करके अपनी-अपनी करतूतों का उल्लेख करते हुए प्रलय मचा दी। यह देख कर विवेक ने उनके विरुद्ध क्रमशः शील, क्षमा, संतोष और निरहंकारिता को भेजा। सबने अपने-अपने गुण-कार्यो का विस्तार किया जिससे मन की ज्योति विकीर्ण होने लगी और भक्ति दृढ़ हुई। मोह का बल शनैः शनैः घटने लगा, अन्ततोगत्वा उसकी हार हुई। इस प्रकार, उदात्त गुणों द्वारा जीव को 'गति' मिली।

'ग्यांन महातंम' और 'ग्यांन तिलक' दोनों का उद्देश्य और वर्ण्य-विषय एक ही है; शैली, कथन में किंचित् अन्तर है। पहली रचना में प्रत्येक वृत्ति बारी-बारी से अपनी महिमा का अपेक्षाकृत विस्तृत रूप में बखान करती है। उदाहरणार्थ कतिपय छन्द नीचे दिये जाते हैं[3]।

१-क्रोध केवी वंग बंधियो चीर, कंपियो हाथ अहूठ सरीर ॥
क्रोध कया मां संचरै ॥ ८० ॥
क्रोध ज्वाला क़ियो काळ सूं संग, रगत पीती सही दियो रंग।
तेज बासो करै सास उसास, विण एक कहो बीण पचास ॥
सीसते सुळो नैं उतरै ॥ ८१ ॥
वरा लाल लोयण विकराळ, सीस मेल्हंत क्रोध दे भ्काळ।
क्रोध रा बांण छाती बस बार, तेण मां जीभ तीषी तरवारि।
व्याकुल वेण विमारणी ॥ ८२ ॥

२-चरचा च्यारयों वेद की, रीमत सोह संसारि।
कळंक लिपूं जे काम का, तोउ न पाऊं पारि ॥ ४१ ॥
क्रोध वेण विमहर कहर, सरवंग व्यापै सोय।
इमडो क्रुंग संसार मां, जहर गरामी होय ॥ ८३ ॥
मात पिता वर बंधवां, लोपै लाज निसंक।
लोभ गरथ कै कारणै, दोह कुळ चढ़ै कळंक ॥ १२१ ॥

३-बी सूं वैर बंहंण का वैरी, मा सूं व्याह मगाई।
लज्या गई रही बुरी नांणति, तो भी सरंम न आई ॥ १४ ॥
क्रोध कुमति का आपरि डंबंण, रहै न गुर का हटक्या।
बांदर कै पगं विछू विलग्या, पूंछ धरंण सूं पटक्या ॥ १६ ॥

(१९) कथा गज मोख (प्रति संख्या ६६, २०१) :—यह दोहा (६), मोतीदाम (५६) तथा कवित्त (१), कुल ६९ छन्दों की रचना है। कथासार इस प्रकार है —अहंकारवश, एक ऋषि की दी हुई माला तोड़ने पर गज को शाप लगा। उसकी प्रार्थना पर द्वापर में भगवान विष्णु द्वारा उसके उद्धार का आशीर्वचन ऋषि ने दिया। ग्रीष्म-ऋतु में जल पीते समय ग्राह ने उसको रसातल में खींचना आरम्भ किया। दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। गज की शक्ति निरन्तर घटने लगी, आर्त्तभाव से उसने भगवान् से अपने उद्धार की प्रार्थना की। विष्णु ने दोनों को कर्म-बन्धनों से मुक्त किया।

आरम्भ के ९ दोहों और अन्तिम ९ छन्दों में भगवान् की स्तुति है। शाप-समय गज की भयातुरता, वन की शोभा, गज-ग्राह की अहं-भावना, युद्ध और तद्जन्य उत्पन्न स्थिति और हारते हुए गज की मनोदशा का कवि ने अच्छा वर्णन किया है।

रचना के उदाहरण-स्वरूप कुछ छन्द द्रष्टव्य हैं[1]।

(२०) कथा उषा पुराण (प्रति संख्या २०१, फोलियो ३०१-३०७) :—यह दोहे, चौपई तथा 'छन्द', कुल २३२ छन्दों का आख्यान काव्य है[2], जिसका कथासार इस प्रकार है :—कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का बेटा अनिरुद्ध कामदेव का अवतार था। 'शं तहपुरी' के बाणासुर की बेटी के रूप में रति, उषा नाम से अवतरित हुई। उसका किसी यादववंशी के साथ विवाह होना जान कर शत्रुतावश बाणासुर ने कन्या को कुँवारी रखने का विचार किया। राणी ने इस पर आपत्ति की और कुँवरी द्वारा गौरी-पूजन का विचार रखा, जिसको दैत्य ने मान लिया। समझदार होने पर उषा ने ऐसा ही किया। गौरी ने कहा—तेरा पति कामदेव है, वह स्वप्न में तुझे मिलेगा और दैत्य-वंश का दुश्मन होगा। बाणासुर ने गौरी के वरदान को अन्यथा करने के लिए शंकर की तपस्या की। उन्होंने वर दिया कि तेरा सिर और भुजाएँ अत्यन्त बलवान होंगी, तू अजेय होगा। बाणासुर ने अपनी नगरी में चोर न

१–अहो बळ जोध किन्है अहंकार, करैं कैई जोजन हु किलकार।
जुडे दोय मीछ वडा मनि जोर, सुर नर नाग सुणै जळ सोर ॥ ४० ॥
किसो बळ थाह अथाह कहू, उलटे के वार पलट अहू।
तिमें जळ बुडि जिमे जळ तीरि, विढे निसवासरि एकळ वीर ॥ ४१ ॥
दतुमळ नाळ घटा विच दंत, विढे वरियाम चढे विरचंत।
घणो बळ ग्राह इजगर घाट, झटकें कान फटके झाट ॥ ४५ ॥
गज ग्राह तणो तदि पूछ गह्यो, रिव की गति देषण थंभि रह्यो।
छुटती गांठि पड़ै जिम छाळ, नदी करि गंग सुरसती नाळ ॥ ४६ ॥
जोध जळ होत विछोडण जीव, करै मनि सोच सुडाळ करीव।
थयो मन पग गयो बळ राह, गहर जळ पाचे जाय गराह ॥ ४९ ॥

२–लिपिकार के अनुसार इसमें २३२ छन्द हैं, किन्तु सात छन्द (छन्द संख्या २४, ७७, ११०, १२५, १५४, १६५ और १८८) केवल आधी "चौपई" के ही हैं। इसमें सात छन्द) २०६-२११, २१३-१५ तथा २१७, २३२) "साखी छंदा की" वाले हैं किन्तु लिपिकार ने प्रत्येक छन्द में दोहा-परिमाण से (२ छन्द मानकर) कुल २१ छन्द माने हैं, इनमें भी छन्द संख्या २०६ तथा २२९ एक-एक पंक्ति के हैं। लिपिकार के अनुसार ये २१ छन्द "धवळ मंगल" के हैं और राग "मारू" में गेय हैं।

आ सकने का वरदान मांगा। शंकर ने अग्निबाण देकर उसको नगरी में स्थापित करने को कहा। उसने नगर में ध्वजा पर अग्निबाण को लगा दिया (१-४०)।

उषा नव-यौवना हुई। स्वप्न में राजकुमार अनिरुद्ध को देख कर वह उसके विरह में व्याकुल हो गई। उसकी सखी चित्रलेखा ने समस्त क्षत्रियों के चित्र बना कर दिखाए। अनिरुद्ध का चित्र देखते ही वह उसके पाँवों में गिर पड़ी। चित्रलेखा ने उसको कुमार का परिचय दिया और द्वारिका गई। वहां अनिरुद्ध को उषा के प्रति आकर्षित किया। आकाश मार्ग से वह उसको कुँवरी के पास ले आई (४१-८५)। कुछ समय पश्चात् उषा के गर्भवती होने का पता बाणासुर को लगा। दैत्य ने देखा कि ध्वजा खण्डित थी। उसने नगर के प्रधान को बुलाकर चोर को मारने की आज्ञा दी। उषा ने अनिरुद्ध को और सब युद्ध-विद्याएँ तो सिखा दीं, किन्तु एक बाकी रह गई, तभी सेना आ पहुंची। युद्ध में बाणासुर ने 'नाग-फांस' से कुमार को बांध लिया तथा सांपों के अन्धेरे भाण्डार में गिरा दिया। उषा बहुत ही दुखी हुई (८६-११०)।

पता लगने पर नारदजी उसके पास आए और द्वारिका जाकर कृष्ण को सब बातें कहीं। वे यादवों के साथ बाणासुर के नगर के समीप गए। वहां चारों ओर शिवजी की कृपा से अग्नि जल रही थी। कृष्ण ने तब गरुड़ से सागर का जल मंगवा कर अग्नि को बुझवा दिया। इस पर बाणासुर सेना सहित युद्ध के लिए आया। दोनों ओर के योद्धाओं में विभिन्न प्रकार से भयंकर युद्ध हुआ। प्रद्युम्न ने भी इसमें भाग लिया। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से बाणासुर की सहस्र भुजाएँ काट दीं। असुरों की हार हुई (१११-१५७)।

बाणासुर ने शंकर के सम्मुख वरदान व्यर्थ होने की बात कह कर पुकार की। इस पर महादेव अत्यन्त क्रुद्ध होकर यादवों के विरुद्ध युद्धार्थ चले। वे मन में विचारने लगे कि पहले भी कृष्ण ने अनेक रूप बना कर दानवों को मारा है। अब निर्दोष बाणासुर के साथ युद्ध छेड़ा है किन्तु ऐसा अहंकार वह भविष्य में नहीं करेगा। उन्होंने डमरू बजा कर अपनी सेना एकत्र की। वे स्वयं ही सेनापति बने। पार्वती ने समझाया—देव और दैत्य एक ही घर के हैं, युद्ध मत कीजिए। ईश्वर बोले—इससे मेरी प्रतिज्ञा भंग होती है, मैं योग-पंथ को लाज क्यों मारूं? सांट चला कर वे ससैन्य यादवों के सम्मुख जा डटे। पहले तो उनके और कृष्ण के वाहनों में युद्ध हुआ। फिर स्वयं शिवजी आए। उन्होंने कृष्ण को खूब फटकारा। कृष्ण ने भी वैसा ही प्रत्युत्तर दिया। पश्चात् दोनों में युद्ध होने लगा (१५८-१९०)।

सुरों, मनुष्यों और नागों ने सोचा कि अब संसार नष्ट हो जाएगा। सबने नारदजी से ब्रह्माजी को बुलवा कर इस स्थिति से अवगत कराया। ब्रह्माजी ने विचारा—मेरी तो लगाई हुई बाटी ही नष्ट हो रही है। सबने मिलकर निष्कलंक, निराकार, अलक्ष्य रूप ब्रह्म से पुकार की। अलख ने शक्ति को आज्ञा दी। वह दोनों दलों के बीच में वस्त्रहीन होकर खड़ी हो गई। बोली—मैं तुम्हारी माता हूं, तुम मेरे बच्चे हो। सावित्री, लक्ष्मी और शक्ति—तीनों में मेरा ही अंश है। जोगी हो, चाहे क्षत्रिय, नंगी स्त्री को कोई नहीं देखता। दोनों बोले—तुम वस्त्र पहनो, जिससे जगत में लाज रहे। जो तुम कहोगी, हम करेंगे। तब कृष्ण

और महादेव प्रसन्नता-पूर्वक मिले। सब मृतक पुनः जीवित होगए। दोनों ने माता का कहा माना। उषा अपने कुटुम्ब से और अनिरुद्ध यादवों से मिला। वैशाख सुदि तीज को दोनों का विवाह हुआ (१९१-२३२)।

विष्णोई साहित्य मे उषा-चरित पर यह पहला आख्यान काव्य है। यद्यपि लिपिकार ने 'धवल' के २१ छन्दो के अतिरिक्त शेष दोहे-चौपई छन्दों के राग-निर्देश नही किए हैं, तथापि वे भी गेय ही हैं। स्वय रचयिता ने इसका उल्लेख काव्य के अन्त म इस प्रकार किया है :—

> आनि माय सहाय हुई, सकळ राख्या मांन।
> सुरजंन गावै मुकति पावै, घरि पहूंती जादमां री जांन।
> हुवा राज्य वधांवणा ॥ २३२ ॥

'धवल' का छन्दोविधान 'छन्दों की' साखियो के ही समान है। कवि की ऐसी साखियाँ अधिकाश मे राग सोरठ, मारू और धनाश्री मे गेय हैं। 'धवल' के राग 'मारू' मे गाये जान का उल्लेख लिपिकार ने किया ही है। इससे पूर्व केल्ह रचित सुप्रसिद्ध आख्यान काव्य "कथा अहमनी" मे भी यही तीन प्रकार के छन्द हैं, और समस्त काव्य धनाश्री, मारू, सोरठ, गवडी, आसावाहडी आदि म गेय है। इसी प्रकार, अधिकाशत. दोहे-चौपई मे रचित मेहोजी की आख्यान काव्य कृति "रामायण" भी बहुत सी राग-रागिनियो मे गेय है। साखियो के अतिरिक्त कवि के 'हरजसो' का आसा, बिलावल, भैरू, सोरठ, धनाश्री, मारू, गवडी, केदारो, मलार, खमावचो आदि राग-रागिनियो म गाए जाने का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार, प्रस्तुत काव्य भी समग्र रूप मे अनेक राग-रागिनियों मे गेय है।

छन्दो के प्रयोग की दृष्टि से इसमे 'कथा अहमनी' तथा परिमाण की दृष्टि से 'रामायण' और पदम कृत 'हरजी रो व्यावलो' का अनुसरण किया गया है।

इसकी कथा पौराणिक और बहु-प्रचलित है। नाम के साथ इसका 'पुराण' शब्द भी यही सूचित करता है। कहने की आवश्यकता नही कि इसमे आख्यान काव्य के सभी तत्व सुष्ठु रूप मे उपलब्ध हैं। कवि ने इसी पद्धति पर इसकी रचना की है।

काव्य के प्राय सभी पात्र अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी मानवीय भावनाओ से ओतप्रोत हैं। इसके वर्णन, सवाद और मन स्थिति के चित्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वर्णन दो प्रकार के हैं—(क) विषयगत और (ख) विषयीगत, अर्थात् पात्र-विशेष की मनोभावनाओं का वर्णन। प्रथम के अन्तर्गत सेना, युद्ध, अन्त पुर, युद्ध-सज्जा, विवाहोत्सव, रूप आदि के वर्णन लिए जा सकते हैं। दूसरे म उषा तथा बाणासुर की प्रार्थना पर शकर के हृदय म उत्पन्न रोष की गणना है। सवादो मे प्रमुख ये हैं —(क) बाणासुर और उसकी राणी का (ख) उषा और चित्रलेखा का, (ग) अनिरुद्ध और चित्रलेखा का, (घ) नारद और कृष्ण का, (ङ) शिव और पार्वती का तथा (च) शिव और कृष्ण का। ७ गेय 'छन्दो' मे (लिपिकार के अनुसार २१ छन्दो मे) कवि ने उषा-अनिरुद्ध के विवाहोत्सव पर, राग 'मारू' म गेय 'धवळ' के रूप मे लोकरीति और मान्यताओ का सुन्दर चित्रण किया है। यह लोक-प्रसिद्ध

'धवल-मंगळ' प्रथा का पालन है। कृष्ण और शंकर के युद्ध को क्षत्रिय और जोगी का युद्ध कहना कवि की नवीनता है। रचना के उदाहरण स्वरूप-(क) शंकर-कृष्ण संवाद तथा (ख) 'धवळ' सम्बन्धी कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं[1] :—

(२१) भोगळ पुरांण (भूगोल पुराण) (प्रति संख्या २०१, २०७) :—दोहा-चोपई (२९७) मोतीदाम (५) तथा कवित्त (१), कुल ३०३ छन्दों की यह रचना चार अध्यायों में विभक्त है[2] । प्रथम तीन अध्यायों की समाप्ति पर 'एते हरि चेरत लेपा वंधण नाम····अध्याय समाप्त' लिखा होने से इसके उद्देश्य का किंचित् आभास मिलता है। इसमें कवि ने मुख्यतः ब्रह्माण्ड विषयक अनेक वातों का 'लेखा' किया है जो अलेख ब्रह्म की निर्मिति है। यद्यपि 'अलेख' का 'लेखा' नहीं किया जा सकता[3] तथापि ब्रह्माण्ड-वर्णन से उसकी महत्ता की कुछ झलक अवश्य मिलती है।

१-(क) सांभल्य किसंन कहै परवांण, तेरे जुध का कहूं वपांण।
इजगर वांधि फूल्यौ अपार, कीट कोड़े का करे अहार ॥ १८२ ॥
एक सैस तें नाथ्यौ जोय, मेरे गल्य अभूषंण होय।
दैत मारि तें कीयौ गुंमांन, से नहीं मेरे रूंम समांन ॥ १८३ ॥
अह मत जांणे मुथरा पेति, जोग पंथ सूं वांध्यौ नेति।
संभलि मेरा ध्यान विचार, तें कोटि वार लिया अवतार ॥ १८४ ॥
जोग पं (थ) जांणे नहीं, माया रूपी कान्ह।
जादंम वंस छुडाय करि, दीयो अहंम निदान ॥ १८५ ॥
सिव सूं किसंन कहै समझाय, घंणा दिनां का वडा न थाय।
संहंस वरस को जीवण होय, अगंनि पळक मां वाळै सोय ॥ १८६ ॥
तें भेदहियो भसमागीर हाथि, नट होय नाच्यौ गवरि साथि।
भूत र दत वुलाया संगि, खेचर भूचर ल्यायो जंगि ॥ १८७ ॥
दैत वंस मेटी अ्रंदांन, पत्री रूप अवतर्‌यौ कान्ह ॥ १८८ ॥
संक्र पत्री अंम सूं, वाद चलायो आय।
संकळप करि द्यौ अहंम नैं, सिव को लोक छुटाय ॥ १८९ ॥
(ख) मिलिया मोगर थाट, जादंम दळे वधांवंणां।
घरि घरि मंगळचार, घरि घरि गीत सुहांवंणां।
घरि घरि गीत सुहांवंणां, नैं वरि धूप वास प्रमळा।
कांनि कुंडल झधक सोहै, गळ माळ मोती उजळा।
विपर वेद अनेक सोभा, भंणे वांभण भाट।
मंटहव कुंठ माळा, मिलिया मोगर थाट ॥ २१५ ॥
आया जादंम राव, दवारा नगरि वधांवंणां।
कीजे कुळ आचार, चोह दिस गीत सुहांवंणां।
चहुं दिस गीत सुवांवंणां, नै वाजे अघ वधाव।
कंवर कंवरी कोड कीजे, सरस केळ सुहाव।
आदि माय सहाय हुई, सकळ राप्या मांन।
सुरजंन गावें मुकति पावें, घरि पुंहती जादमां री जान।
हुवा राज्य वधांवंणां ॥ २३२ ॥

२-आदि से छन्द ८४, ८५-९९, १००-१५३ तथा १५४-३०३।

३-लेपा नहीं अलेप का, आदि वंनादि अपार।
धर अंवर गिणती गिणे, तव कुद्धि भोगळ सार ॥ ४ ॥

निरंजन, जाम्भोजी और सुर, ब्रह्मा आदि की वन्दना के पश्चात् कवि प्रथम अध्याय में सृष्टि-उत्पत्ति की बात कहता है, जो 'कलश पूजा' मंत्र का भाव है। फिर पृथ्वी, पर्वत, आठ स्वर्ग, जम्बू सहित सात द्वीप, नव खण्ड, 'धोरम', शेष नाग, आठ पर्वत, चार पुरी, चौदह यम, सूर्य की गति और दूरी, चौदह लोक और विष्णुलोक का वर्णन करता हुआ उनकी विशेषता, स्थिति, विस्तार, दूरी, परिमाण, कार्य आदि के विषय में बताता है।

दूसरे अध्याय में "आदि त्रैया सोमवती माय" से लेकर सप्तऋषियों में से एक कश्यप ऋषि तक की वंशावली, उनकी तेरह रानियों और उनसे उत्पन्न अनेक प्रकार की सृष्टियों का उल्लेख है।

तीसरे में शक्ति-शिव के प्रश्नोत्तर रूप में काया-खण्ड का वर्णन है। काया-संबंधी शक्ति के चार प्रश्न करने पर शंकर ने "आदम जाति" की उत्पत्ति, गर्भवास में जीव-दशा और शरीर-निर्माण, देह के विभिन्न अंगों के माप, नाड़ियां, मन, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, "भवरगुफा", "निरंजण-ज्योति", कर्मानुसार फलभोग, चौदह चक्र, उनकी विशेषताएँ और फल तथा छः चक्रों की 'मर्यादा' आदि के विषय में बताते हैं।

चौथे अध्याय में दसावतार, उनके माता-पिता, गुरु, स्थान, हेतु और कार्यों का सविस्तर वर्णन है। अन्तिम कवित्त में इस अंश का सारांश कवि ने दिया है[1]।

इसमें मुख्यतः ब्रह्माण्ड, काया, उत्पत्ति-विनाश और दसावतार सम्बन्धी अनेक प्रकार का ज्ञातव्य वर्णनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ज्ञान-वर्द्धन के अतिरिक्त प्रकारान्तर से भगवद्-महिमा वर्णन भी मिलता है। काव्यत्व की दृष्टि से दसावतार-वर्णन को छोड़ कर शेष अंश नगण्य हैं।

इसका महत्व सम्प्रदाय में प्रचलित 'कलश पूजा' मंत्र की एक अर्द्धपंक्ति का ठीक पाठ देने के कारण भी है। मंत्र की सम्बन्धित प्रचलित पंक्ति है—कुलाल कर्म करत है सोई, पृथ्वी ले पाके तक होई, जिसमें 'ले पाके तक' पाठ विकृत है। प्रस्तुत रचना में इस मंत्र की कतिपय आरम्भिक पंक्तियां आई हैं, जिनमें उपर्युक्त पंक्ति से सम्बन्धित अर्द्धाली है—'पृथ्वी लेपा केतक होई' जो प्रसंग, प्रयोग और अर्थ की दृष्टि से ठीक है। मंत्र में मूल-पाठ के 'पा' को भ्रम से 'पा' समझने के कारण यह भ्रान्ति हुई है। 'पा' मानने पर अर्थ-संगति बैठाने के लिए उसको 'ले' से पृथक् कर आगे के अक्षर 'के' के साथ मिला कर 'ले पाके' किया गया, फलतः वर्तमान पाठ प्रचलित हुआ। किन्तु इस रचना में प्राप्त "लेपा" पाठ ही शुद्ध है, जिसका प्रयोग इसी प्रसंग में प्रथम अध्याय में अनेक बार हुआ है।

१–मछ संखासिर मारि, कुंभ मथ कोच संघारे।
मुरदाणों वारा(ह), हाक हिरणाक्स मारे।
वावन छळि बळिराव, परस भुज खसा संघर।
रांवण राम विरोधि, लंक लीवी सरपधर।
बुध गयासिर कन्ह कळि, कळि वीती काल्यग मारिसी।
कर जोडि साम सुरिजन कहै, तिणि वार भगवा तारिसी॥ १०३॥

(२२) रामरासौ : (कवित्त रामरासै का[१]) : यह १७६ छन्दों की रचना है जिसमें ५३ "दवाळा" (सांणोर और वेलियो गीत के), १० लीला (सावभड़ो गीत के द्वाले) १९ दोहा और ९४ कवित्त हैं । लिपिकार परमानन्दजी वणियाळ ने इसको "रामचिरत" (प्रति संख्या १५२ (ड) और स्वयं कवि ने "रामायण" भी कहा है[२] । इसके द्वारा कवि गोविन्द[३] का, कर्ता का यशगान और महिमा-वर्णन करता है,[४] यद्यपि वह इसके योग्य स्वयं को नहीं समझता । यह वर्णन राम-रावण की "कळह" से सम्वन्धित है[५] ।

"रासै" (रासौ) का तात्पर्य भी कलह ही है । इस 'कळह' का मूल शूर्पणखा थी[६] । उसके अपमान का वदला लेने में राम-रावण युद्ध हुआ[७] ।

'रामरासौ' की कथा वनवास में राम के पास शूर्पणखा के आने से आरम्भ होकर, उनके लंका-विजयोपरान्त अयोध्या जाने तक है । इसमें रामचरित से सम्बन्धित मोटी-मोटी घटनाओं का ही उल्लेख है । मुख्य विषयवस्तु निम्नलिखित है :—

कश्यप ऋषि का देव-सभा में जाना, वहां आदर न किए जाने के कारण क्रुद्ध होकर शाप देना, जिसके फलस्वरूप देवों का भिन्न-भिन्न रूपों में अवतार लेना[८] ।

१-प्रति संख्या ६६, १५२, २०१ ।

२-गांवंण पद सुर सुर गहे गांवंण, सति के कवि अनेक सहति ।
गुंण निध्य पछै एम रांमांयण, कंठ सुलीळ वाळका कहंति ॥ ४ ॥

३-गोम्यंद गुण गाय निगुंण निध्य गावंण, लपंण कंवार करि लपंण लहंति ।
देवा तंण चिरत कहां लग दांपूं, सर पर मूंढ पतंग सति ।

४-कहिवा तणी चाहि नी कीरति,करता जस कुछि नीकुछकहंत ।
सपोत विहंगम हंस सरोवरि, रिघ अंव मीहका रहंत ॥ ५ ॥

५-जड़ जोग भोग जांणै जगत, मेंण समंदर मथियै ।
नर वेव अजोव्या लंक सूं, कळह रांम दळि कथियै ॥ ३ ॥

६-लंकपति वळि देव कांम श्री रांम वंन करि ।
सिघपति लुघवीर रिघ घरि जांणी संकरि ।
रंवंणि एक घरि रूप भंवंणि आई भरमंती ।
भरस जोवि ऊतरी, देपि दुप मान्यों सती ।
वेसास घात ले विसतरी, सळी सळी कुल सोधिया ।
सुपनंप्या वेघ कीयो संवळ, रांवण रांम विरोधिया ॥ ४ ॥

७-तेणि दुप चष नीर, आजि हूं मुंघ अपत्ती ।
लटी चटा पोसती, नीठि नव चौकि पहत्ती ।
नही केस मुप नाक, मांण तजि वाहंण अलगो ।
तेणि वैर दहकंध, लंकपति अवगण लगो ।
कहै वंधु वैर काढूं कही, जैम तुझ दुप वीसरै ।
वन रहैं रांम सीता वरे, एम नाक मुप नीसरै ॥ ८ ॥

८-एक समै सुरदेव सिघ सझि पुंवंण स मंगळ ।
कपडा गात कुचील ढील अंगि मंझि निरमळ ।
इंद चन्द सुरयंद सुरदेव सगती सिवा ।
देव सभा सोह दीठ कंणी नही आदर किया ।
होलिव काजि हठवाद करि वीण विरोध विचपिया ।
एक एक तंन तीनि करि, तिणि सराप सुर तिपिया ॥ १ ॥

८-प्रति संख्या ६६ ।

वनवास मे शूर्पणखा का राम से विवाह-प्रस्ताव और सीता-त्याग का कहना, उनके क्रुद्ध होने पर उसका विकराल रूप, लक्ष्मण का उसकी चोटी और नाक काटना, राम का खर, दूषण त्रिसरा-वध, शूर्पणखा की रावण के पास पुकार, मारीच का स्वर्णमृग बनना, सीता आग्रह पर राम का उसको मारने जाना, मरते समय लक्ष्मण को पुकारना और उनका रक्षार्थ जाना, तापस-वेश म रावण द्वारा सीता-हरण, राम का सीता-वियोग मे दुखी होना, लक्ष्मण का समझाना, जटायु मरणोल्लेख, सीता- खोज के लिए सुग्रीव का चारो ओर सेना भेजना, दक्षिण दिशा की ओर अ गद, हनुमानजी, जामवत आदि बारह वीरो का प्रस्थान, उनका समुद्र-तट के पास एक पर्वत पर चढ़ना, प्यास के कारण एक विवर देखकर उसमे घुसना, वहा विश्वकर्मा की स्त्री का जल पिलाना रामावतार की बात कहना, सपाती का यह सुनना, उससे उनका मिलन और उद्देश्य-कथन, सपाती का उड कर सीता को देखना और पता बताना,[1] प्रत्येक योद्धा द्वारा अपनी-अपनी गति-कथन, अ गद के आग्रह पर हनुमानजी का समुद्र-पार जाना, मार्ग मे मनसा देवी द्वारा उनकी परीक्षा[2], स्वर्णगिरि को[3] उनसे विश्राम करने की प्रार्थना, कामिनी राक्षसी के राह रोकने पर नाभी फाड कर निकलना,[4] लका तट पर बिलाव-वेश धारण करके सीता को ढू ढना, उनके पास पहु च कर राम की 'सहनाणी' देना, विराट रूप दिखाना और रामदल का वृत्ता त कहना, सीता की आज्ञा माग कर अशोक बाग के फल खाना, युद्ध मे राक्षसो का मारा जाना, कुम्भकर्ण द्वारा पकडे जाने पर आग से अपनी मृत्यु बताना, लका दहन, सीता से विदा लेकर वापस चम्पगिरि पर पहु चना, सबके साथ श्री राम के पास जा कर सीता का समाचार कहना, लका पर चढाई, समुद्र-पार उतरना, सैन्य-वर्णन।

अशोक-बाग मे सीता मदोदरी सवाद, म दोदरी का रावण को समझाने का असफल प्रयास, महिरावण की मृत्यु का उल्लेख, बदला लेने के लिए वाराही देवी का पाताल से साप भेजना, उसका लक्ष्मण के पैर मे काटना और उनका मूच्छित होना, हनुमानजी का बूटी लाना, लक्ष्मण का सजीवित होना, इस पर मन्दोदरी का पुन रावण को समझाना।

१-अ तरवेद उडियो अतळी बळ, मनसा जोय आवियो मन।
कहो जठै दीठी हरि कामणि, धुरा जोध भेंटिया धन ॥ १७ ॥
इधकी कहू न आपू ओछी, पिंड मोहर अ मोहणी पछै।
वणियो गढ त्रकट विकट धट विच मां, असोध बाग जानकी अछै ॥ १८ ॥

२-चीत विचीत एम सोह चालै, मनसा देवी छोळ्यो मन।
जोजन निवं करे मु ह जोयो सो जोजन धारियो अन ॥ २७ ॥

३-सोवनगिर सिघर बोलिया सर पर, बदर हम सू कहो विचार।
बैरी नहीं मेल्हियो विच मां, तात तणो बधु तत सार ॥ ३० ॥
माघ वडै हालियो सुणि मितर, सूधो गुवण वितावो सति।
विच मांहे न लियो विसराम, गिणियो नहीं सरीक्त गति ॥ ३१ ॥

४-कटक निवाहण करूर एक कामणि, रात्रि वसै उतर री रुप।
गणगाट कर जिम कोई गिरवर, माहरै आय जायस्य भुप ॥ ३३ ॥
पुवन सुतन पैसि होय पातळ लहसै नाभ फाडियो लुप।
कामणि तणा करंग बे कीया, जडडाटे सांभळियो जुग ॥ ३५ ॥

अंगद का रावण-दरबार में आना, सभा में पैर रोपना और सबको लज्जित करके वापस आना, रामदल की लंका पर चढ़ाई।

युद्ध-वर्णन, जामवंत-मेघनाथ, सुग्रीव-कुम्भकरण, हनुमान-कुम्भकरण का। राम-द्वारा कुम्भकरण समेत रावण के अनेक योद्धाओं की मृत्यु, लक्ष्मण के हाथों भी अनेक शत्रुओं का वध। राम-रावण युद्ध, रावण के न मारे जाने पर राम का विचार करना, सभा में इस हेतु फिराए गए बीड़े को लक्ष्मण का लेना, राम द्वारा उनकी प्रशंसा,[1] मन्दोदरी का तीसरी वार रावण को समझाना, लक्ष्मण रावण-युद्ध, रावण की मृत्यु किन्तु साथ ही लक्ष्मण का भी मूर्च्छित होना, राम-रुदन, सीता के 'सरजीत मंत्र' से उनका चैतन्य होना। विभीषण को लंका का राज देकर, राम, सीता, लक्ष्मण का अयोध्या-आगमन, वहां उत्सव-उल्लास तथा राम का अपनी माता से मिलाप[2]।

रामरासो की कथा में कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएं और उद्‌भावनाएं हैं जो नीचे दी जाती हैं:—

१-देवसभा में कश्यप ऋषि ने शाप दिया था,[3] जिसके अनुसार प्रत्येक देवता तीन-तीन तन करके वन, लंका और वैकुण्ठ में रहा था[4]। प्रथम कवित्त में कवि ने वर्ण विपर्यय करके 'तिपिया-सुर' को 'सुर तिपिया' लिखा है। तिपिया-तृक्ष, कश्यप ऋषि

१-सापि दियै श्रीराम, कुंवर तो अजूं कंवारो।
कथ सुंणी एक कांनि, वीर मंनि वात विचारो।
विपै रहां वनवासि, जानकी झली झेल्यो।
वैसंदर रै पासि, घिरत रहै किम रेल्यो।
कामणी कूड़ कळियै नही, पोहमी पाम न मेल्हियो।
उदक अहार निदरा नही, जिण नर ओ जुध झेल्नियो॥ ७८॥

२-अजोध्या उछाह, करै सुर मंगळ कथा।
विपर वेद वाचियै, नही भापियै अमंथा।
संप झालरि नीसांण, तंव सुर नाद तंहके।
मिले सीत कौसल्या, गुंवंण सुर पातग हके।
पळहळे पाप अंम झळहळे, सत सीता जत नरमळे।
ख़िळकुळे वदंन चुंवर ढुळे, श्रीराम आय माता मिळे॥ ९४॥

३-एक समै सुरदेव सिघ सभि पुंवंण स मंगळ।
कपड़ा गात कुचील, ढील अंगि मंझि निरमळ।
इंद चंद सुरयंद, सुरदेव सगती सीवा।
देव सभा सोह दीठ, कंणी नही आदर कीवा।
होतिअ काजि हठवाद करि, वीण विरोध विचपिया।
एक एक तंन तीनि करि, तिणि सराप सुर तिपिया॥ १॥

४-कोई इंद कोई चंद, कोई रवि रुप अवतरि।
कोई केवळ कोई कांम, कोई हरि हेत निरंतरि।
कोई सिघ कोई साव, रीछ वांदर विसतरिया।
अंभा विसंन महेस, अंगि अंगि अवतरिया।
वंनवास लंक वैकुंठ पुरि, तीनि तन करि रपिया।
सुपनंण्या सीत राघव लषंण, दंह सिर मांरण दपिया॥ २॥

का नामान्तर है जो सप्तर्षियों में एक और सृष्टिकर्ता प्रजापतियों में प्रधान माने जाते हैं।

कवि ने इस कथन की पुष्टि अन्य एक कवित्त में भी की है, जिसमें 'तीप' शब्द का प्रयोग है[1]। तथा 'भोगळ पुराण'' में इसको उन्होंने 'तिरप' लिखा है[2]। बिश्नोई साहित्य में अन्यत्र भी 'त्रप' ऋषि का उल्लेख मिलता है[3]।

२–शूर्पणखा अपना परिचय देते हुए केवल राम से ही विवाह-प्रस्ताव करती है, साथ ही वह 'कुलहीन' सीता को त्यागने को भी कहती है। राम के कहने पर लक्ष्मण उसको 'वदसूळि' करते हैं।

३–सीता–वियोग में दुखी राम को लक्ष्मण सान्त्वना देते हैं, वे उनका घड़े के पानी से मुंह धुलवाते हैं। दोनों भाई हिम्मत बांधकर सेना एकत्र करने को रवाना होते हैं[4]।

४–लंका में सीता की खोज के लिए हनुमानजी मार्जार-वेश धारण करते हैं[5]।

५–रावण-सभा में हनुमानजी अपनी मृत्यु का उपाय-भाग स्वयं ही बताते हैं[6]।

६–लंका-दहन के पश्चात हनुमानजी सीता को अपने साथ ले चलने का प्रस्ताव भी करते हैं, जिसे वे कई कारणों से स्वीकार नहीं करतीं[7]।

१–धरम च्यारि धीरवे क्रम कर आठ अळगा।
  भरम घात भोळवे, देव नर सव विळगा।
  ताम कोडि तेतीस, तीप रिष तामस आया।
  वनवासी तन तीनि, रीछ कपि धारे काया।
  श्राप पाप सीता हरण, अवसर चूका एक छिन।
  राम काम रावण कथा, जाम जीव राप जतन॥ ३३२॥

२–पूरव दिसा अपूरव वातु रग रळी जहा होय प्रभातु॥ ६०॥
  तहां तिरप रिष किरिया सारू, जोग ध्यान बठे अवधारू।

३–द्रष्टव्य कवि सख्या ५४ तथा केसोदास गोदारा (कवि संख्या ६८) कृत "कथा विगता बळी' म कल्कि विवाह प्रसग में—
  वग दालेव सोगी रिषं सुंणी, गुर गर्गव गोतम रिष गिणी।
  कपला रिष त्रप सुर सार, मारकुंड तबर तत सार॥ ३२४॥

४–लापण ले जळ कुंभ वीर मुंह धोय वेसासे।
  कोडि एक राज कवारि रांम आणों घर वासें।
  काय ग्रह वेसो करो, सोग कोमल्या सुंणिसी।
  मनि करिसी अंगराय, मात विणि सुणता मरिसी।
  उठिया जोध दसरथ सुतन, करो दळ मूंछां मेलि कर।
  चाडिया धणा चढि चालिया, सुर व्र गहिया उसर सुर॥ ११॥

५–ध्यान पलटि मुंजा तन धारे, रांजि कामि किया बोहरंग।
  निरषि निरषि सव निस वीति, अवत भवत हूवो मन भंग॥ ३७॥

६–वजर देह विसन वळि वजर, जोग स एक रांवणा जोय।
  मरिस्यों नहीं कणी हू मुनियर, होनासण मरण मांहरो होय॥ ४८॥

७–जो बर्भ जळ पाज, राज बीभीषण दीजे।
  बदि छुटे तेतीस, दंत हति लंक लीजे।
  आवें जांम श्रीराम, तांम दिन च्यारि दुहेली।   (शेषांश आगे देखें)

७–लक्ष्मण दो बार मूर्च्छित होते हैं तथा क्रमशः हनुमानजी और सीता द्वारा बचाए जाते हैं :—

(क) पहली बार महिरावण की मृत्यु के पश्चात् वाराही देवी द्वारा पाताल से भेजे गए सांप के पैर में काटने पर,[1] तथा

(ख) दूसरी बार मरते हुए रावण के अन्तिम प्रहार से[2]।

पहली मूर्च्छा के समय राम-रुदन का कोई प्रसंग नहीं है। हनुमानजी 'अमरजड़ी' वाला कैलास पर्वत इसी अवसर पर लाते हैं; वाराही देवी 'ईश' भजती हुई यहां भी वैठी मिलती है[3]। दूसरी के समय राम शोक-विह्वल होते हैं। उनकी "होकार" सुनकर सीता "सरजीत मंत्र" से लक्ष्मण को चैतन्य करती है। ध्यातव्य है कि इस मूर्च्छा का कारण

आज चलूं तोहि साथि, काल्हि मो हंसै सुहेली।
घर जांव गुमांऊं रांण घर, मुकति देव देतां मरंण।
पुटवै मेछ लीजै पळो, हुवै कथ सीता हरंण॥ ३४॥

१–ठग मूळी महरांण, हाथ ले आप ठगायो।
घट भागो घर भेद, मांण करि आप मरायो।
पैसे पिनंग पयाळि, वैर काढियो विराही।
हीरो हाथि उसाटि, रांम दळि रांग विसाही।
उपनी चित चिताहरंग, पाधो वंधू काळ पगि।
कहो दाव कीजै, किसो, लागो पांन लपरोस पगि॥ ४३॥

इसकी पुष्टि वीड़ा घुमाने के समय राम के इस कथन से भी होती है :—

वांधी पपांणा पाज, रूड़ां लोप्यो रैगायर।
महरांवंण मह छेद, कळह उत रच्यो कळायर।
कियो विराही वेध, पुवंण सुत सों विस पल्यो।
कूंभकरंण कळि करंण, भुजा वळि भीछ उथल्यो।
वंधू सुत आही समंद, तोलियो तेज दांणव तणों।
श्रीरांम कहे सुणो सांवतां, कोई रावंण वीड़ो ऊपणों॥ ७५॥

२–नवग्रह छूटा जोगि, देव छूटा दुग काया।
देत छूटा दहकंध, महल गढि छूटी माया।
जुरा मीच जंमजाळ, छूटिवा राघव दांवंणि।
रावण छूटो राज, मांण छूटो महरावंणि।
मेछ छूटा घर महल, जंण जंण छूटा जीव।
इळ छूटो आकास ता, छूटा छूटी सीव॥ ८७॥
महरांण कुंभरांवंणि भुवंणि, रार्कस पोहंणि रंक।
वीर मरंग वैराग करि, कहा करूं ले लंक॥ १८॥

३–राघव वैद हकारि, तांम सुर कांनि सुंणावै।
अमर जडी कंवळासि, सूर वीणि उगै आवै।
कपि हंणों तसळीम करि, सिरि कंध नुवायो।
जांगि पंपी अधराति, उडि उदियागर आयो।
पांनि पांनि दीया प्रठि, वैठी आही ईस भजि।
उपाड़ि भीछ लेग्यो अंनड़ि, कीयो थांणो रांम कजि॥ ४४॥

(शेषांश आगे देखें)

और सजीवन–दोनो बातें स्पष्ट न कही जाकर ध्वनित हैं[1] ।

८–लक्ष्मण की पहली मूर्छा और चेतना के पश्चात् अंगद रावण-सभा मे जाते हैं, वे रावण को उसके सात दोष भी बताते हैं।

९–राम के भीषण युद्ध करने पर भी रावण नही मारा जाता, तब वे उसकी मृत्यु के उपाय के विषय मे सोच कर निश्चय करते हैं कि लक्ष्मण ही यह कार्य कर सकता है[2] ।

१०–इस हेतु राम अपने प्रधान योद्धाओ के नाम ले-ले कर बीडा घुमाते है, किन्तु वे लज्जित होकर नीचे की ओर देखने लगते हैं। लक्ष्मण उसको उठा कर रावण मारने का सकल्प करते हैं[3] और उसको पूरा करते हैं। •

घसि मूळि जळ घात, इक सिरि वैद लगावै।
साद करै श्रीराम, ताम सुर कानि सुणावै।
हरि दीन्हौ होकार, राम वैराग निवारै।
राघी रेप अलेप, सेन सोह हथ पसारै।
उदगर सूर भागो तिमर, कहियो सुर नर वेद कथि।
भणै वेद मरिसी भुवर, लक लीजै लपणेस हथि ॥ ४७ ॥

१–गळि लागै श्रीराम, ताम सुरकानि सुणावै।
पगि लागो कपि प्राण, जागि सिध नीद जगावै।
हरि दीन्हौ होकार, सीत सुरकानि सभाळै।
जागि जती तजि नीद, बीद उठि जांन विचाळै।
चौह दिसी भीछ ढोळै चवर, छिं न सूरिज रीणछळ।
विळकुळे वदन बधव मिले, दुप भागो रुघनाथ दळ ॥ ८९ ॥
मिले मीत श्रीराम, बध लपणेस बुलावै।
कह्यौ गरु इम कथि, साथ सोह सावति ल्यावै।
एहो जत एहो सत, एहो तप राम सतपण।
एहो जाम सुगरीम, एहो गणवत विचषण।
सरजीत मत्र सींचै सती, ग्रघ बाळ तरणा वही।
राम दळे रिण वदगं, सुगध कामि आयो सही ॥ ९० ॥

२-राकस सुर नर रीछ कपि, कुण कुण भारथ किध।
श्री राम वीर विचारियौ, सबळ चीत विणि सिध ॥ १६ ॥
सवळ चीत विणि सिघ, विधि किणि दैत विरधा।
लवै नही लपणेस, चवै सोह सिध चिरधा।
नही भूप तिस नीद, काम वसि नोघ निवारै।
काछ वाच निकलक, तको नर रावण मारै।
सोह भाथ हाथ जोडै षडा, कहियो औछे एम कथि।
अ समति सूर साथे भुवर, दहसिर मारण दई हथि ॥ ७४ ॥

३–झळकिया जोध औभा पड्या, लाज रा आडी लजिया।
दळि उपनो दोचीत, वादर रीछ उपराजिया।
ऊचा न सकै न्हालि, धर दिस नीण निरपै।
हाकार करै नही कोय, सूर सावत सोह सकै।
प्रथमादि फेरि वीडयौ फिर्यौ, वियै तियै चौकै चवै।
पाद्या पान भोळी पड्या, अणराय करै मनि राघवै ॥ ७६ ॥ (शेषांश आगे देखें)

यह वीर रस की उत्कृष्ट और फड़कती हुई रचना है जिसकी कथा के बीच-बीच में कवि ने संवाद और वर्णन रखे हैं। ये संक्षिप्त और प्रसंगानुसार हैं तथा इनसे कथा-प्रवाह में एक अद्भुत गति का संचार होता है। प्रमुख संवाद ये हैं :—

(१) मन्दोदरी-सीता। (२) मन्दोदरी-रावण।
(३) हनुमान-सीता तथा (४) अंगद-रावण।

उल्लेखनीय है कि इनमें एक पात्र द्वारा कथित बात का दूसरा पात्र समुचित उत्तर तो देता ही है, साथ ही इनसे कार्य या विचार-विशेष के सम्बन्ध में उसकी दृढ़ धारणा का भी पता चलता है। नीचे क्रमशः पहले, दूसरे और चौथे संवाद से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं[1]। वर्णनों में सेना और युद्ध-वर्णन प्रमुख हैं। ओज, क्षिप्रता और प्रवाह इनकी विशेषता है। ये निम्नलिखित प्रकार से किए गए हैं—

(१) योद्धाओं के बल का वर्णन दो तरह से किया है :—(क) उनके द्वारा किए जाने वाले

लापंण लीळ विळास, लपंण परगासि लपोवर।
कंवळ वदंन किळकिळ्यो, सोभंतो पोहप सरोवर।
रसनां रस स मीठ, कंठ सुरवांणी बोलै।
अप्रवळ अपार, तीनि भुंवण तुलि तोलै।
सूर वीर सिंघ दाव्यो न दड़े जस जांणि सभा मां जगियो।
आप मंनी आप उछाह आछै मतै, महपति बीड़ो मंगियो॥ ७७॥

१- क-सोहड़ सीत कही जैसाटी, वर क्यों छाड्यो रांम सुंवाटी।
चावी होय चोहचकि चाटी, कहि क्यो कियो मुंध कहाटी॥ ३॥
रांवंण मारंण तुझि रंटेपो, दांणव दुप दियो सो देपो।
लहिस्यो क्यों आगोतरि लेपो, एहवो कीजे कांय अभेपो॥ ४॥
ख-लीह न लोपी प्रांण रपायो, राह दहूं गुरडे रुधायो।
इम करतो हरि चरणे नायो, गहि दापूं तें राज गमायो॥ ६॥
आंणी सीत ज मुंध अंनेसो, कीध विटंवंण कारण केमो।
कहंती कोय कुवंण केहेसो, रोह मंदोवरि कांय रहेसो॥ ७॥
वर दापे ज मंदोवरि वारी, तूं जांणे होयसी सोकि हमांरी।
सर पर करूं सुहागंणि सारी, तिल नहीं मांनूं सीख तुहारी॥ ६॥
ग-हीण जाति मति हीण, आज तें आधिक केतो।
रावंण कह्यो रिसाय, जाहि कपि जीव सहेतो।
काळै मुंही कर्सीण, कांय विसटाळै आयो।
आज किसी तो लाज, काल्हि तें राज गुमायो।
माराय वाप तांही मिल्यो, हुवो कीर तंम राम हथि।
किसी सोभ नट वांदरै, सिर धरि मारै ट्रक हथि॥ ५६॥
रावंण सांभळि रीति, चीति पालणै हिटावै।
तो लपणे मो वाप, पाप तिणि आप मरावै।
ससे सीह वकारि, धंणी विणि हीण किसी घर।
कीड़ी कुंजर साथि, वाद कांय करैं विसंघर।
दहकंध अंध हूं दपळं, जोय लंक बीचै जिसी।
चोर घं गाळि मूळी चढ्यो, कतो मात सोभा किसी॥ ५७॥

विभिन्न कार्यों या विशेषताओं के संदर्भ में ध्वनित करना, जैसे रामदल के विषय में हनुमानजी का सीता को यह कथन —

सामि माथि सावत, सासि पाहाड सरकै।
आभि थभ उधरे, इळा पगि चपि सरकै।
हाक थभ है कप, गात मीढ़ियं गिरोवर।
ताड ब्रल ऊ नाड, तिसा वड केस तरोवर।
मे दीठ एक बीजा तिसा, पिघराण सपात पिघ।
परहरे कोटि काचा पिंडब, सुणो सीत आखाडसिंघ ॥ २८ ॥

तथा (ख) कार्यों के सम्पादन में आने वाली बाधाओं की भीषणता और विकटता का वर्णन करके, जैसे—'अमरजडी' पर्वत का यह वर्णन, जिससे हनुमानजी के बल का अनुमान किया जा सकता है —

सायर सात सघोर, अनड जळ ऊपरि आयौ।
सात लाख सु डाळ, वसे मैमता हाथी।
तरवर केई करोडि गिणत जा अत न लभै।
एह अपरचळ धू ण, इळा ऊपरि उरि अभै।
काजि सामि कार्य कियो, आयो अतरि लोपि छळ।
एहो भीछ राघव तणा, निमो स बदर तूंसि बळ ॥ ४५ ॥

(२) चित्रात्मक ढंग से। इसमें वर्ण्य-वस्तु का चित्र खींच कर उसकी अभिव्यंजना पर बल दिया जाता है जिससे पाठक के सम्मुख एक वास्तविक रूप उपस्थित होता है। प्रस्तुत रचना में युद्ध-वर्णन के प्रसंग में ऐसे अनेक भव्य उदाहरण मिलते हैं, जिनमें कतिपय द्रष्टव्य हैं :—

(क) लका मे हनुमानजी का युद्ध —

गुण तसळीम प्रवाडा गाहक, सति भड हुत कोपिया सरि।
छिळता असर छछोहा छूटा, किळब चहू दिस चोट करि ॥ ४५ ॥
घाव चोट निहुम घरहरे, झाळ दु ग ऊछळै झस।
चूही तेग मेर सिरि बजर, बजर देह खगधार बज ॥ ४६ ॥

(ख) जामवत युद्ध —

जामवत जम केस देत दस थभ थरकै।
पडै समदा पारि, सूर मंरि दंत सरकै।
नागपख पखराय, घघ मारत सिधारै।
सूर दंत सुरमुखि, चिढे चकडड चिकारै।
उलटै भीछ पलटै मळेछ, अरघ लक जड उधडै।
रिणखेत विढतां राकसां, पहलि केस बाबर पडै ॥ ६२ ॥

(ग) कुम्भकरण युद्ध —

बज पडी गज उपरै, सूकै आभि सळाह।

गल्ह रहिसी कल्ह कूं, कुंभा कपि कहाव ॥ ९ ॥
तीनि विवर सिर उपरें, वहै रगत विपरीति ।
अदियांवण कुंभी उठ्यो, करि राकस इंद रीति ॥ १० ॥
करि राकस इंद रीति झुरै नकसांण रुही झड़ ।
सोक केस सोभंत, गाज मुख वाज महा भड़ ।
रज उपड़ै नख रेख, भुजा गजि सुंडि भळकें ।
खिवैं दांत वतीस, सोभ मुख दांत झळकें ।
संमेटि भीछ वायां सहति, भड़कि खोहणि गयो भखि ।
भला भला भीछ पासै टल्या, मिले कुंभ श्रीराम मुखि ॥ ६९ ॥

(३) ध्वन्यर्थ व्यंजना शैली से । ऐसे उदाहरणों में प्रयुक्त शब्द, नाद व्यंजक होते हैं, नाद के द्वारा अर्थ ग्रहण होता है । इसका प्रयोग दो प्रकार से किया गया है :—

(क) अनुकरणात्मक शब्दों के माध्यम से, जैसे रावण और लक्ष्मण के इन वर्णनों में :-

फळ फळ तप्यो फलूळ, झळ झाळां झळहळियो ।
दह मसतगे नेणि, कोई रांम दळे सांभळियो ॥ ८२ ॥
धवळ स लंका धड़हड़े, खड़हड़िया नव खंड ।
लखमंण वांण संजोवियो, करै धूप कोवंड ॥ १७ ॥

(ख) प्रसंग, कार्य एवं भावानुकूल शब्दयोजना से । उदाहरणार्थ, इन छन्दों में प्रयुक्त शब्दों की ध्वनि से कार्य-सम्पादन की त्वरा का भी पता चलता है :—

१-रावण द्वारा सीता-हरण :—

तांम तेज तंन सझ्यो, विख आवध अवधूल्यो ।
डग डग टेरूं वाय, नाद कै विप विकस्ल्यो ।
जटा मुगट मसतगि, करण कंठ जपमाळी ।
वंन फळ ल्योह भगवंत, विनै बोलंती वाळी ।
संति सुरति करि पग ठयो, डहकि टेरूं डंड भयो ।
जसरथ नंदण छळ करि छळण, अछळ वीर छळ करि गयो ॥ १४ ॥

२-लंकादहन :—

भल भल रूप अरूप भकभकियो, खालिक जोति हुई खंटि खंटि ।
हालिया उठि दरियाव दिस हंणवंत, महलि महलि दीपका मंढि ॥ ५० ॥

(४) गणना और संख्यात्मक रूप से । यह दो प्रकार से किया गया है :—

(क) एक वह जिसमें योद्धाओं अथवा अस्त्र-शस्त्रों की नाम गणना की गई है, जैसे-रामयुद्ध में बाणों आदि की :—

कुंत वांण केवांण कुरप वांणे नर कंपै ।
गदा वांण गज वांण, नाग वांणे नर झंपै ।
छोही वांण पिनाख, वांण कोवंड निछतो ।
अगंनि वांण इंद बांण, मेघ वांणे जुध मंतो ।

तर भखर मुदगर कहर, हाक धीक जम हुथ ।
सिरदार वकारै सावतां, दळ राघौ दसरथ ॥ ६२ ॥

(ख) दूसरे, जिसमे सख्या गिना कर प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास है, जैसे रावण के ऐश्वर्य-वर्णन मे —

सोळा चौक सहस, पासि वैसं पटराणी ।
बीस भुजा दससीस, जोहू दहकध कहाणी ।
पची चौक हजार, पूत मेल्है पासरणा ।
जिसा कध कू भेण, तिसा दस भाई तरणा ।
सो कोडि सिपाई सांवतां, सवा लाख नाती सहति ।
नव कोडि नीसांण तव सुरां, पाटि विराजै लकपति ॥ ५१ ॥

ध्यानव्य है कि राजस्थानी साहित्य के सभी वीररसात्मक काव्यो में, सेना और युद्ध-वर्णन के प्रसग मे उल्लिखित पद्धतियाँ ही अपनाई गई हैं ।

कथा मे अनावश्यक रूप से घटनाओ का घटाटोप, वर्णनो की भरमार या सवादों का फैलाव नही है । इनका प्रयोग उतना ही है, जितना मुख्य-कथा को आगे बढाने अथवा मूल उद्देश्य की पूर्ति म सहायक है। मूल उद्देश्य हरिगुण गान करना है जिससे सम्बन्धित क्षेत्र-विस्तार और विभिन्न कार्यों का उल्लेख भी प्रकारान्तर से कवि यथावसर करता गया है। ऐसा तीन स्थलो पर हुआ है —

(१) हनुमानजी को कहे गए सीता के कथन से, जिसम वे उनके साथ न चलने का कारण बताती हैं (कवित्त ३४),
(२) अगद द्वारा गिनाए गए रावण के दोषो से (कवित्त ५३) तथा
(३) सीता-खोज के पश्चात राम-सेना की चढाई के समय कहे गए कथन से (छन्द ४०) ।

काव्य मे हनुमानजी और लक्ष्मण-चरित को विशेष गरिमा प्रदान की गयी है । समुद्र-पार जाने मे आई बाधाओं और पहाड सम्बन्धी भीषणता का वर्णन हनुमानजी के तथा रावण-वध के लिए केवल लक्ष्मण की सामर्थ्य और उनके बीडा लेने पर राम द्वारा की गई प्रशसा लक्ष्मण के चरित को वशिष्ट्य प्रदान करती है ।

कथा का चयन कवि ने अनेक स्रोतो से किया है । उल्लेखनीय है कि इनमें एतद्-विषयक प्रथम कृति मेहोजी (कवि सख्या ५०) की रामायण का भी अनुकरण किया गया प्रतीत होता है, जो स्वाभाविक है । दोनो रामायणों मे कई प्रसगो में अद्भुत कथन-साम्य मिलता है, जैसे —

(१) सीता वियोग में राम-रुदन पर लक्ष्मण का घडे के पानी से उनका मुह धुलवाना और धोने के लिए कहना ।
(२) अशोक बाग मे सीता-मन्दोदरी सवाद ('रडेपो देना') तथा तुरन्त उसके पश्चात्
(३) मन्दोदरी-रावण सवाद ('सौत आना') ।
(४) लका मे हनुमानजी का सीता को अपने साथ ले चलने के लिए कहना और उनका कारण बताते हुए अस्वीकार करना ।

(५) रावण-सभा में हनुमानजी का स्वयं अपनी मृत्यु का उपाय (आग) बताना।
(६) 'वाराही' का उल्लेख।

इससे जहां मेहोजी की रचना की प्राचीनता और प्रसिद्धि का पता चलता है, वहाँ सुरजनजी की समन्वय-भावना और सारग्रहण का भी। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है, कि उल्लिखित प्रसंगों में दोनों का मूल स्रोत एक रहा है किन्तु अधिक सम्भावना उपर्युक्त बात की है।

मेहोजी की रामायण के पश्चात् रामचरित पर यह दूसरी विष्णोई काव्य-कृति है। कालक्रम से राजस्थानी की एतद्विषयक स्वतंत्र प्रबन्ध-काव्य-परम्परा में इसका तीसरा स्थान है, दधवाड़िया माधोदास रचित रामरासो इस विषय का दूसरा काव्य है। इस प्रकार रामकाव्य परम्परा में प्रस्तुत रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यह भी उल्लेखनीय है कि इसमें कवित्त, विभिन्न डिंगल गीतों के दोहलों तथा दोहों का प्रयोग हुआ है जो राजस्थानी के प्रमुख काव्य-रूप रहे हैं।

महत्त्व और मूल्यांकन:—सुरजनजी की काव्य-साधना मानव-जीवन के अभ्युत्थान का महान् प्रयास है, मानव-हित की कामना उसके मूल में है। उनके अनुसार, मानव का परम हित मोक्ष-प्राप्ति होने में है। उनका काव्य स्वानुभूति-प्रकाशन के अतिरिक्त इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया गया महत्त्वपूर्ण प्रयास है। उनके अनेक कथन प्रकारान्तर से इसी ओर इंगित करते हैं, अन्ततोगत्वा मोक्ष-प्राप्ति की ओर उन्मुख करना उनका लक्ष्य है।

इस सम्बन्ध मे सुरजनजी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण जानना आवश्यक है क्योंकि उनकी भावाभिव्यक्ति तदनुरूप हुई है। वे वीत-रागी जीवन्मुक्त साधु थे, किन्तु मानव और समाज से उदासीन नहीं थे। स्थितप्रज्ञ रह कर उन्होंने ऐहिक मनुष्य-जीवन और उसकी समस्त आवागमन प्रक्रिया को अपने ढंग से समझा और समझाया था। निम्नलिखित 'साखी' में जीवन-प्रक्रिया, जगत, प्राप्तव्य, व्यवहार-कला और उद्धार सम्बन्धी उनके विचार और निष्कर्ष सूत्र रूप में गुम्फित मिलते हैं, साथ ही काव्य-विषय और प्रयोजन भी संकेतित हैं:-

अंतरजांमी आतमां, ग्रभवास पुजाए ॥ १ ॥
जा दिन जग परगटे, लछ केतक ल्याए ॥ २ ॥
जामण मरण अगोचरं, क्यों करम लिखाए ॥ ३ ॥
भाव लिख्या उसवास मां, पूरण दत पाए ॥ ४ ॥
वरस दवादस वाळमतो, पित मात खिलाए ॥ ५ ॥
(जीव) उंच नीच कुळ अवतर्यो, वोह जूंणि अघाए ॥ ६ ॥
भुंय वोहळा भूप घंणा, सिरी छत्र धराए ॥ ७ ॥
जात वडी कुळ पेखिया, वोह जोबंन भाए ॥ ८ ॥
दिन कटंत न देखिया, तर वेस वणाए ॥ ९ ॥
वाहर धाड़ि उडोकतड़ा, जंम ताळ वजाए ॥ १० ॥

मात पिता पख दोय चले, एक दिन पराए ॥ ११ ॥
कोठी हुई नाज ज्यों, घट छेह दिखाए ॥ १२ ॥
एक रहीम पुकारिग्या, एक राम सुंणाए ॥ १३ ॥
अंतरजामी एक सही, क्यों दोय लखाए ॥ १४ ॥
हक ता नाय हजूरि सदा, दोय पंथ कहाए ॥ १५ ॥
विदिया भणि बाणारसी, तोउ पार न पाए ॥ १६ ॥
जतर ताळ स तंत मत, सरल कठि गाए ॥ १७ ॥
राग छतीसूं अळापिग्या, सुर सात ,सुंणांए ॥ १८ ॥
गीत कवल वेधान कह्या, कवि पात कहाए ॥ १९ ॥
एक विसन भगति विना, सोह वकि गुमाए ॥ २० ॥
साध संगति हरि भगति विना, जमवारो जाए ॥ २१ ॥
चही ते अकथ अजांण, अवेसर जाए ॥ २२ ॥
ओ ससार विकार सम, संकट वणाए ॥ २३ ॥
सुरजन ते जन ऊबरे, जे हरि हरि गाए ॥ २४ ॥—साखी संख्या ६ ।

सुरजनजी के काव्य की मूल चेतना का स्वर इसमें समाहित है। जीवन में कतिपय प्रमुख और मूलभूत बातों के पालन का उल्लेख करते हुए,[1] उन्होंने अनेक बार मृत्यु की चेतावनी दी है, क्योंकि भौतिक वैभव क्षणिक और निस्सार है, उसमें मन को लगाना जीवन के महान उद्देश्य से विचलित होना है। मन-रंजन करने वाली समस्त कलाएँ, उपादान और काव्य अंत में कुछ भी सहायता नहीं करेंगे[2]। कवि का कहना है कि मैं विशेष रूप से कवित्त इसलिए कहता हूँ कि काया का राजा मन संभल जाय[3] क्योंकि मन जिस वृत्ति

१-पहली जीव जीवता, नाव नारायण लीजै ।
ग्यान सीप सीपियै, कठ सुर पावन कीजै ।
साच वाच मभळ, सोचि बोलै सुरवाणी ।
जीहा जपि जीकार, कथा भ्रम मिथ कहाणी ।
न करि मोच इधको वके, भणदीठी मत उचरै ।
आपरी लाज राजी अवर, सघ देपि बोल सरै ॥ ११६ ॥
२-कथै वदे भें जाणि, सूत भाख्या पारसी ।
दूहा गाहा ग्रंथ, कोक सुकाव्य सरसी ।
नाद वेद गुण जाण, धवळ तिरळोक धरती ।
कस रीभ कामणी, काज सिणगार करती ।
छद गीत कवत भाख्या सुमति, नग नीसाणी भाषि नर ।
मनराय चेन अंतह मरण, सरण मति सारंगधर ॥ १५९ ॥
३-लोभ जीव जजाळ म पडि परळै पुन संग्रहि ।
छाडि पाप सताप रहण करि एहस थिर रहि ।
विसन नाव वाघाणि, आप उबारि प्रभी परि ।
नही भूलिसि न भाविसि, नहीं भोळाविसि अंतरि ।
मापति सति आदित मगति, सुकवि स्याम सुरजन सुगुरि ।
मं भूलि मन मत मानिसो, कवत कहूं तिम तिम करि ॥ १४५ ॥

के साथ होगा, विजय उसी की होगी। 'ग्यांन महातम' और 'ग्यांन तिलक' में इसका बड़े अच्छे ढंग से उल्लेख किया गया है। कवि ने इसलिए मनुष्य को मन की चंचलता से सावधान किया है[1] ।

मुक्ति-प्राप्ति केवल मनुष्य-देह से ही सम्भव हो सकती है[2] । जीवन थोड़ा है, फिर अनेक प्रकार की दुर्बलताएँ और प्रलोभन उसको विचलित करते रहते हैं। एक हरजस में मनोवृत्तियों के रूपक से इस बात का सारगर्भित वर्णन कवि ने किया है[3] । ऐसी दशा में अभीष्ट लक्ष्य कैसे प्राप्त हो ? सुरजनजी ने इसका उपाय बताया है-चरित्र-निर्माण से, "कहणी", "रहणी" और "समझणी" में एक रूपता से। एक दोहे में इसको इस तरह स्पष्ट किया है :—

कहणी रहणी समझंणी, साध संमझि का चीत.।
सेवग मरणं मुगति फळ, जीवत मुगति अतीत ।। १०२ ।।-साखी : अंग-चेतन।

ऐसा न होने से ही व्यक्तित्व में बिखराव और शक्ति में छितराव आता है, जिस कारण सामर्थ्य होते हुए भी व्यक्ति कुछ कर सकने में असमर्थ रहता है। हरिभजन के साथ सत्य कथनी और तदनुरूप रहनी होनी चाहिए, तभी मुक्ति मिलती है। यह काम कहने से नहीं, करने से होता है। निम्नलिखित हरजस (संख्या २) में इसका सुन्दर वर्णन किया है:—

कह्या न होई भइया कीया होई, एसे भरंम मत भूलो कोई ।। १ ।। टेक ।।
गहि आतर करि तुरी नचावै, रिण झूझै सोई सूर कहावै ।। २ ।।
पतिवरता पिव के मंनि मांनी, बिभचारणि भूली बहवांनी ।। ३ ।।

१-कबहू कांम तरंग करै, कबहू विषियांवन कूं तंन हेरै।
कबहू आगि पछंड धरै, कबहू तंन जात है टांहुंग डेरै।
कबहू मन मूढ करोध करै, कबहू अगियांन गुमांन स केरै।
सांमि सुनाथ सुरेजन के हरि, या चित कूं बसि राष दे मेरै ।। २ ।। -सवैया ।।

२-कहा टीका तिलक तंबोळ बणाया, कहा पढि वेद सरस धुनि गाया ।। २ ।।
काळा पीळा दांत ओदर का सगी, नटवा की नाच नचै बोहू रंगी ।। ३ ।।
हरिवंस मिसर कुरांण पढ़ि काजी, सत कै सबद बीणि हरि वेराजी ।। ४ ।।
मन वच क्रंम भ्रंम संजोई, मिनपा गति विणि मुकति न होई ।। ५ ।।
मेरी तेरी कहा पचि मरियै, जन सुरजन भवसागर तरियै ।। ६ ।।
-हरजस संख्या १।

३-काटै कपट जहां मन मुंसो, जहर कहर दोय पानां।
भूंकै स्वानि कुवधि की वांणीं, मिनटी लवधि दुकांनां ।। २ ।।
पांणी पूत भया जुग पहले, सबद पिता पीछै आया।
दहूं की माता मंन्यसा रांणी, संमझि भई सचि पाया ।। ३ ।।
लूंका लाज जगत मां फैली, करै पसंम कुळ सेवा।
भोपी भरंम कायागढ पैठी, तो पूजै आंन देवा ।। ४ ।।
कुकरंम काग करंम तहां कायथ, भुंछ वळ ता टरियै।
सुरजनदास कहै रे संतो, अं परहरि निसतरियै ।। ५ ।। -हरजस संख्या २४ ।

तन चोपडि मंन खेलण हारा, पासा पेम चित चलंण विचारा ॥ ४ ॥
कहणी साच रहणी अपारा, जन सुरजन भजि उतरो पारा ॥ ५ ॥

मोह–चक्कर की गाठ मे जगत बधा जा रहा है, साईं शरीर मे ही है फिर भी इसके लिए तीर्थ–व्रत किए जाते हैं। लोग उसको रूप और राग से रिझाते हैं, किन्तु वह तो सत्य मे है। कुकर्मों से भ्रम उत्पन्न होता है। पार उतरने के लिये मनसा–वाचा–कर्मणा "रहनी एक रस" होनी[1] चाहिए। अनेक हरजसो मे प्रकारान्तर से कवि ने इसका उल्लेख किया है।

"कहणी, "रहणी" और "समझणी" के लिए कवि ने "आचार-विचार" शब्दो का प्रयोग किया है तथा अपने समर्थन मे जाम्भोजी का प्रमाण दिया है। जाम्भोजी के व्यक्तित्व और कृतित्व सम्बन्धी एक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए सुरजनजी ने कहा है कि 'ब्राह्मण–धर्म' मे आचार प्रधान है और योग (नाथ पथ) मे आत्म–विचार, आत्मस्थ रहने का भाव, किन्तु जाम्भोजी ने आचार-विचार दोनो पर सम्यक् ध्यान दिया तथा उनकी शिक्षा दी। सम्बन्धित दोहा यह है —

आचारे ब्रभा सही, जोगी आतंम सार।
जाभोजी बोड्या सही, दोय आचार विचार ॥ २३५ ॥–कथा औतार की।

"कथा घरमचरी" (छन्द १३) और "ग्यान महातम" (छन्द १९८) मे भी यह दोहा इसी रूप मे प्रयुक्त हुआ है तथा "कथा हरि गुण" म भी इस बात का उल्लेख किया गया है[2]।

आचरण सम्बन्धी चर्चा कवि ने तीन रचनाओं–कथा औतार की, कथा धरमचरी, और भोगळ पुराण म यथावसर की है। ये कथन परम्परागत मान्यताओ के अनुसार ही हैं, जिनको अपने ढग से प्रस्तुत करते हुए उन पर चलने का अनुरोध किया है। एक बात इनसे स्पष्ट विदित होती है कि आचरण सम्बन्धी किसी भी प्रकार का प्रमाद या शैथिल्य सुरजन–जी को ग्राह्य नही था। इनमे हवन, सन्ध्या–उपासना, आरती आदि कर्मकाण्ड से सम्बन्धित

१–सकळ वियापी एक है, करि लीजो दाया।
दरपण मा मुष ज्यूं देषि लै, गुर ग्यान बताया ॥ २ ॥
तिल मा तेल पोहप मा रस बास समाया।
प्रेम जतन ता ऊपजै, उपदेस लयाया ॥ ३ ॥
दीन गरीबी बदगी, भजियैं एक धारा।
पर उपगार विचारियैं, करि प्रेम पियारा ॥ ४ ॥
एक रिझावैं राग तैं, एक रूप रिझाया।
सभ का साईं साच मा, गुर ग्यान बताया ॥ ५ ॥
भ्रम क्रम ता ऊपजै, साभळि गुर भाई।
मोह चकर की गाठि मा, जुग बंध्यो जाई ॥ ६ ॥
मनसा वाचा क्रमना, रहणी एक धारा।
जन सुरजन की वीनती भज उतरो पारा ॥ ७ ॥'–हरजस २२।

२–बिधि दोय कीघ अचार विचार। चलावै आरभ पंथि वियार।
चक उपाय किसी तो चाड। पपाय अपाय छलै कुण धाड ॥ १०१ ॥

हैं। सुरजनजी के अनुसार, इनका उपदेश जाम्भोजी ने दिया था। हवन के प्रति विशेष श्रद्धा का भाव सम्प्रदाय में है, क्योंकि ज्योति में ही जाम्भोजी के दर्शन माने जाते हैं। कवि भी ऐसा ही मानकर इसकी पुष्टि करता है[1]। यही नहीं श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक ज्योति (अग्नि) और हवन सम्बन्धी दो कवित्त[2] भी सुरजनजी ने बनाए हैं, जो बहुत ही प्रसिद्ध हैं और इस अवसर पर बोले जाते हैं! इसी प्रकार आरतियाँ भी कवि ने बनाई हैं।

जहां तक विचारों का प्रश्न है, सुरजनजी जाम्भोजी का ही अनुसरण करते हैं, किन्तु सर्वत्र उनकी शैली की विशेषता दर्शनीय है। जाम्भोजी ने कैवल्य-ज्ञान का उपदेश दिया था, सुरजनजी भी वही बात कहते हैं। चरम-प्राप्तव्य, मृत्यु की अनिवार्यता, मन को वश में करना, काया की नश्वरता, जाम्भोजी-विष्णु हैं, उनके आने का उद्देश्य, नाम-जप, सुकृत, करणीय-अकरणीय कर्म, पाखण्ड, जीवन्मुक्ति, आवागमन, योग आदि-आदि से सम्बन्धित विचारों की गणना इसमें की जा सकती है। प्रेम और भक्ति का हलका सा स्वर नवीन है। हरिभक्ति, आत्म-दर्शन और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति-तीन बातें उनकी अपनी हैं।

सत्य और शुद्ध आचार-विचार श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण करते हैं, व्यवहार में उनका पालन और एक रूपता-रसता श्रेष्ठ चरित्र की कसौटी है, लोक में सुख, शान्ति, समृद्धि, सौहार्द तथा परलोक सुधार के लिए ये आवश्यक शर्तें हैं। इनका पालन सर्वांगीण उन्नति की कुंजी और जीवन-पद्धति भी है। लोक-कल्याण की भावना के कारण इनका उल्लेख करना सुरजनजी के लिए स्वाभाविक ही है।

आचार-विचार की गणना कवि द्वारा प्रयुक्त एक व्यापक सीमा-सूचक शब्द "सुकरत" के अन्तर्गत है। इसमें वे सभी कृत्य सम्मिलित हैं जो सुरजनजी की मान्यता के अनुसार, व्यक्ति का लोक-परलोक सुधारते, मोक्षोन्मुख करते और इसकी प्राप्ति में सहायक होते हैं। सत्य आचार-विचार का इनमें प्रथम स्थान है, शेष प्रमुख कृत्यों में "सात्र संगति

१-मरवंतरि सांमि अछै मंन्य संगठ, हरि होतामंण हेक हुवै।
जोपो जंम लोक जंही दिन जांतां, जगत गरू करि पंथ जुवै।
वाचा निज साच विसंभ थळि विगतो, धरणीधर वंदां धरणो।
आयो गुर भंभ अचंभ अजूंनी संभू, करता मांडै सभ करणो॥ ५॥ -छन्द।

२-परगास्य जोति पूरा धंणी, वंनवासी मन रंजण
पावक मुप पेषतां, दोष मिटै हुटै दुरिजण।
अरि गंजण आदेस, दरस परसै पणधारी।
होम जाप हरि भेंट, करैं संत सेव तुहारी।
मुकळ गोत रसणां सपत, कपलि मात पिता वरंण।
विनवै दास प्रगास होय, वासदेव वंदां चरंण॥ ३२६॥
आतस इंद्री पांच, धूप ले ध्यांन धरीजै।
ग्यांन थिरत मन पोहप, चित चरणांमति लीजै।
परसि पुरिष संमाधि पूज, नित नांव निरंजंण।
जथा जुगति परवांण, तथा सिवरंण मन मंजंण।
संनमुषि सदा सहाय मति, लील जिभ्या लीलंग परि।
दया दरसंण धोक धुन्य, तो प्रांणी पावक होम करि॥ ३२७॥-प्रति २०१।

ग्रोर हरिभगति" है। इन सबका मिला-जुला उल्लेख बड़ी ही स्पष्टता और सुन्दरता से कवि ने किया है[1]। हरि-भक्ति को कवि ने एक प्रकार से नाम स्मरण का ही पर्याय माना है। रामरस और नामरस एक ही है, और यही "सुजीवण" मन्त्र है—

परम सनेही परम गुर, सिष साधुआं सनेह।
अरचा चरचा राम रस, मिनष जनम गति एह ॥ १३ ॥
रिदा न भूले नाव रस, ओही सुजीवण मत।
अनत नाए एक नाव, एकणि नाव अनत ॥ १८ ॥ —कथा हरिगुण।

कवि ने जो तत्कालीन समाज में धर्म-कर्म के नाम पर व्याप्त प्रदर्शन-पाखण्ड आदि की चर्चा की है, वह इसी कारण कि उनमें आचार और विचार में भिन्नता और वैषम्य है। यह विषमता 'भरमबाजी' है जो पथभ्रष्ट करने वाली है। सुरजनजी ने इससे सचेत करते हुए हिन्दू-मुसलमान के एक पक्षीय दृष्टिकोण और व्यवहार का वर्णन किया है[2] तथा ऐसे ही अन्य भेषधारियों के पाखण्ड को बताया है[3]। ध्यातव्य है कि पाखण्डियों पर सुरजनजी आक्रोश या आक्रमण न करके उल्लेख भर करते हैं और इस ढंग से करते हैं कि पाठक उन पाखण्डों से विरत हो जाए[4]।

१—आव जाय स हरि के लेखै, घटि वधि सोच न कीजै ॥ २ ॥
भूलि बिसरि कबहू काहू कू, कवडी ज्यान न दीजै ॥ ३ ॥
सील सतोष सहज की बाणी, सतगुर कह्यौ स कीजै ॥ ४ ॥
अवगण गारा भू गुण राखो, जरणा अजर जरीज ॥ ५ ॥
जप तप किरिया भाव भगति सू, दस वध गुर को दीजै ॥ ६ ॥
मनसा वाचा क्रम नीरोनरि, ग्यान सुण्या मन भीजै ॥ ७ ॥
आपा मेटि अलप कू ध्यावै सरणै साम्य वसीजै ॥ ८ ॥
सुरजन सतगुर मुकति बताई, जुगि जुगि अमर रहीजै ॥ ९ ॥—हरजस २७।

२—तरवर एक दोय फळ लागा कुण मीठा कुण खारा।
अलह निरंजण रहि गया अंतरि पथर पेम पसारा ॥ २ ॥
पथर देव देहरा पथर, पथर कळस बणाया।
पूरब पीठि पछम दिस सिरदा, हिंदू धरम गुमाया ॥ ३ ॥
एक गळै दोय हत्या कीनी एक पिता एक माई।
मात पिता की पवरि न पाई, दोय घरि अकलि गुमाई ॥ ४ ॥
ग्रह उतारै प्रेम मिघारै, अबै ई दोपण लावै।
एक सरप दोय अंघा पाया काकू कुबण छुडावै ॥ ५ ॥
हिंदू तुरक का एको साई, सब जीयन का जीया।
सुरजनदास सुगर मति सूधी, कुफर का कागद कोया ॥ ६ ॥—हरजस ४।

३—न क्यों सेष पेखियै, भेष दीठै मिषियारी।
न क्यों कोडि सचियै, बोडि गडै धन सारी।
न क्यों हरे अकरे घरि बधे घण हाथी।
नहीं वेद वाचियै, दई रहियौ दिल साथी।
मेषळा डंड धरियै मुकट, करै कोडि पापड कई।
हरिनाव साच लाधो हियै, लाभ केम भोद्धो तई ॥ ५४ ॥—कवित्त।

४—पथर घडै सिलावटा, सिलवट घड्या करीव।
कुदरति की गति छाडि कर, पथर धोकै कीव ? ॥ ५२ ॥

(शेषांश आगे देखें)

उल्लिखित उद्धरणों से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि सुरजनजी कवि किसको और काव्य का वर्ण्य-विषय क्या मानते हैं। उनकी दृष्टि में कवि दो प्रकार के हैं:- एक वे जो अपने काव्य में हरिगुणगान करते हैं तथा दूसरे वे जो इतर ऐहिक विषयों का वर्णन करते है। वास्तविक कवि पहले प्रकार के ही होते हैं,[1] शेष तो एक प्रकार से अरण्य-रोदन करते हैं—'जंगळ का गीत'[2] ही गाते हैं। कहना न होगा कि सुरजनजी का काव्य प्रथम प्रकार का है।

सुरजनजी की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सार-सूत्र रूप में—(क) जाम्भोजी के व्यक्तित्व और कृतित्व, विचारधारा, उनसे पूर्व की वैचारिक-परम्परा एवं सम्प्रदाय के स्वरूप को सहज बोधगम्य रूप में प्रस्तुत किया और (ख) इन सबके सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान निष्कर्ष दिए। सामाजिक स्थिति, चिन्ताधारा, साधना और धर्म के क्षेत्र में, विष्णोई सम्प्रदाय-प्रवर्तन की पीठिका के संदर्भ में कवि के अनेक कथन महत्त्व-पूर्ण तथ्यों का उद्घाटन करते हैं जिनका संकेत यथावसर किया गया है। सुरजनजी ने राज-स्थानी के अनेक काव्य-रूपों, परम्पराओं और प्रमुख छन्दों में अत्यन्त सफलतापूर्वक रचनाएँ की हैं। एतद्-विषयक अध्ययन के लिए उनकी कृतियाँ अपरिहार्य हैं।

पूर्व विवेचित रचनाओं से कवि की विषय-व्यापकता, विस्तृत-ज्ञान, अनुभव तथा काव्य-रूपों और परम्पराओं की तल-स्पर्शी जानकारी का पता चलता है। उन्होंने राज-स्थानी काव्य की केवल दो मुख्य परम्पराएँ छोड़ी हैं—(क) ऐतिहासिक चरित या कथा काव्य और (ख) प्रेम काव्य। इसका कारण जीवन और काव्य के प्रति उनकी विशिष्ट दृष्टि का होना है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन दोनों के अतिरिक्त सुरजनजी ने १८वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक प्रवहमान और प्रचलित प्रमुख धाराओं, परम्पराओं और रूपों में उत्कृष्ट कृतियाँ साहित्य-संसार को प्रदान की हैं। प्रत्येक कृति अपने-अपने क्षेत्र में एक विशेष गौरव और महत्त्व की अधिकारिणी है। इतनी बहुमुखी काव्य-प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति, अगाध ज्ञान का धनी और आत्मज्ञानी, सिद्ध-साहित्य-परम्परा में तो हुआ ही नहीं, समूचे राज-

---

पथर ही का देहरा, मांहि ज पथर मांहि।
रिव का डेरा रुह विच, तासूं अंतर नांहि ॥ १२२ ॥ साखी : अंग-चेतन।

१-कवि जांण सो हरि कथं, जीह सरि गोमिंद जंपै।
निरपि वचंन नर नाह, साच सरि साच पयंप।
पूत पिता मरजाद, पुरिप सो वाचा पूरै।
पिंटत मो परवाणि, जको पर सभा चूरै।
गज मैंण वसै फणियंद मंयण, मुंघ तई साधै मयण।
देव दोम लगै नहीं, सजंण सो वंदे वयण ॥ ११० ॥

२-पंनरा वीस पचीस, कोस दस कुकंरम धावै।
पापि फिरै परदेस, अंम टुकड़ो न आवै।
सुगुर सेव न करै, कुगुर दिस कंध नुवावै।
चोरी झगड़ो झूठ, गीत जंगळ का गावै।
अंमी वेल उपणी, सींचै मंयल आक मिणी।
जंगळी जीव जांमै मरै, भगति न लाभै भाग विणी ॥ २४८ ॥ -कवित्त।

स्थानी साहित्य मे भी ढूंढने से मिलेगा। अपने व्यक्तित्व और कृतित्व की समग्रता में सुरजनजी का कोई प्रतिद्वन्द्वी नही है। रामरासो, डिंगल गीत, हरजस और कवित्त ही उनकी महत्ता का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं। प्रबन्ध मे रामरासो और मुक्तक मे डिंगल गीत उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

स्वानुभूति, आत्मनिवेदन : मुक्तक रचनाओ, विशेषत. गीतो और हरजसों मे कवि के मुक्त उद्गार, सहज सरलता और निश्छल भाव से मुखरित हुए हैं। अत्यन्त भाव-विभोर और तन्मय होकर सुरजनजी ने स्वानुभूति, आत्मनिवेदन और "रामरस-नामरस" के आनन्द को वाणीबद्ध किया है। यह वाणी प्रगाढ आत्म-विश्वास से पूरित, मर्मभेदी, और निर्मलता की स्रोतस्विनी है। *भाषा भावों की वशवर्तिनी है। इसका प्रभाव गहरा और व्यापक है।* भावो के उमडते प्रवाह मे पाठक स्वत ही बह जाता है। उदाहरण स्वरूप दो डिंगल गीत *द्रष्टव्य* हैं। नीचे के गीत में आवागमन और यमत्रास का वर्णन करते हुए कवि अत्यन्त आर्त्त होकर प्रभु से आत्मनिवेदन और मुक्ति-कामना करता है :—

काळ हंस ऊपर ठाळ करतो कहर, सधार वा पार अधार साई।
जळंम हूं जगत मां भांजि बीजा जळंम, म करि हरि ससार माहीं ॥ १ ॥
स्क अवधूत जमदूत थासै रमैं, लाख फोजा बिचि साखि लहतो।
आज हू खलक मां पलक ओदरि अलख, गंवण हूं राखि हरि भंवणि गहतो ॥ २ ॥
अगम तो थार जोध पोड उतरं, कोळंब तो वार दातार काजा।
केविया काळ विकराळ हुता किसन, राखि रथ वन भर हंस राजा ॥ ३ ॥
आज हूं लाज जमराज रायो अलग, आपरा आपरी साव आयो।
सभळि नाथ अनाथ सुरिजन कहे, गरीब हरि नाव् वेसास गायो ॥ ४ ॥ –गीत १।

निम्नलिखित दूसरा गीत "इन्द" अर्थात् वर्षा का है। इसमे लोककल्याणार्थ कवि निष्ठा और आतुरतापूर्वक प्रभु से वर्षा करने के लिए अनुनय-विनय करता है। मरुधरा के सदर्भ मे *कवि का यह कथन अप्रतिम है, डिंगल गीतो मे यह अनुपम है* :-

गुडे बब नीसाण नं झिल पडे गिरवरां, आज रा पुंन पाळग आवो।
घुंघळे बादळे इद वरसो घरा, छेलि संसार आकास छावो ॥ १ ॥
उपजै हरी चौंहनारि इळा उपरं, सरब सीतळ हुवं ग्रंभ सारा।
ध्यान मोरा तणी ग्यांन मोटा धंणी, घेन ध्यं नीर आसीस धारा ॥ २ ॥
भरतार नै लाज जो छीन तंन भांमणी, लाधणे माळ भावीत लाजं।
आदि गजराज पहळाद घू उघरे, भगतिपनि जगत री भीड भाजं ॥ ३ ॥
निवळ सूं रोस हरि सवळ कीजं नहीं, काळ पंमाळ करि मेह कीजै।
वीनती सांम्य सुरिजन कहे साभळो, दुन्यं कर जोड़ि आसीस दीजं ॥ ४ ॥ –गीत ३।

ये दोनो ही नही, कवि के अधिकाश गीत डिंगल की अमूल्य धरोहर हैं।

हरि-शरणागति और आत्मोद्धार के निमित्त की गई प्रार्थना मे कवि निरीह सा

लगता है, तथापि वह असीम आस्थावान और सब प्रकार से निश्चित है[1] । म्यान में आने पर भी यदि तळवार के जंग लगे तो लगे :-

मुरचा उपजै म्यांन मां, द्रसंण प्रसंण कोय।
आई घरि उसताज कै, अब गति होय त होय ॥ १११ ॥ -साखी, अंग-चेतन।

सिंह यदि कपिला गाय पर प्रहार करे,तो वह केवल पुकार ही कर सकती है। संकट के समय भक्तों की पुकार पर प्रभु आए हैं। उन सर्वसमर्थ सहस्रनामी स्वामी के निरन्तर नाम-जप के समान संसार में और कोई दूसरी चीज है ही नहीं[2] । ऐसे अनेक भावों को अनेक काव्य रूपों में कवि ने प्रकट किया है। आत्म-दर्शन और तत्त्वप्राप्तिजन्य आनन्दानुभूति को सरलता से प्रकट करना आसान काम नहीं है। वाणी का मर्मी ही ऐसा कर सकता है। सुरजनजी ने इस आनन्दानुभूति को भी बड़े सहज रूप से सीधे-सादे थोड़े से शब्दों में व्यक्त कर दिया है :-

जा कारंणि जग ढूंढिया, सोई गुर पाया।
चरंण कंवळ छाडूं नहीं, रहिस्यों लिपटाया॥ १ ॥
फळ इम्रत चोह दिस गहीर नित सीतळ छाया।
सहजे धुन्य लागी रहै, कंहु गया न आया॥ २ ॥
वा फळ की एक फांक तें, सभ जगत धाया।
सिध साधु नृपति भए, रज घटंण न पाया॥ ३ ॥
वा छाया कै रूप है, कोई भांति बतावै।
सूरज कोटि प्रगासिया, तोउ फेरंण न पावै॥ ४ ॥
साध संगति हरि भगति ता, गुर ग्यांन लखाया।
जन सुरजन की वीनती, सचा सबद सुंणाया॥ ५ ॥ -हरजस ३०।

कवि की स्वानुभूतिपरक वाणी की कुछ बानगी उल्लिखित उद्धरणों में मिल सकेगी।

१-हा हा देव दुंनी पचि हार्‌या, ताकी सरणि हरि नांव संभार्‌या ॥ २ ॥
सरण सिंध जे जंब बकारै, मेरा गुर मारै अवर कुंण तारै॥ ३ ॥
आया सांव सबळ की छांहीं, जंम की त्रास मेटो मेरा सांई ॥ ४ ॥
ओह चित रापि सबळ के चरणां, इबकै मारि बोहोड़ि नहीं मरणां ॥ ५ ॥
नेकी बदी लुघ छाडि बडाई, सुरजनदास विसंन सरणाई ॥ ६ ॥ -हर. १४।

२-किसी मीढ सांमांनि राजां न बीजा किसूं, अद किण्य छाजसी अद बाया।
मारि पैमाळ पैदास करैं मेदनी, रमैं पग छांह सुर कमळ-राया ॥ १ ॥
हीरंणाकस केस चंडूर मवहेल करि, बुटिसी माढ राजां न वीया।
मोज महरांण आकास इळ मंडिया, कहर धर गैण पैंकाळ कीया ॥ २ ॥
मारि उधारिसी सार आपो मिले, कुरांण वेदां लग सूत कहिया।
दत भीड़ी जत रापि देवां दया, वेदिया सकति आकास वहिया ॥ ३ ॥
हाथे हेकै सुरलोक तीन्यी हुवा, जीव मूं सीव किण्य भंति जूवा।
हेक हुंकारि दै पैदास्य तीन्यो हुवा, हाथ री हाक पैमाळ हूवा ॥ ४ ॥
धवळ जळ धूप आकासि वाजी धरा, इंद रवि चंद कर जोड़ि आंमी।
नांव सांमांनि राजां न बीजा नहीं, नांव भज्य सुरजनां संहंसनांमी ॥ ५ ॥-गीत ६।

इस सम्बन्ध मे कवि के विभिन्न रूपक, प्रतीक और गूढार्थ सम्बन्धी छन्द भी उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के आरम्भिक काल की पृष्ठभूमि से यदि देखें तो सिद्धो से यह परम्परा बराबर रूप से चली आती हुई मिलती है। इसमे सुरजनजी के एतद्विषयक कथनो का अध्ययन, विशेषत तुलनात्मक अध्ययन रुचिकर, ज्ञानवर्द्धक और प्रवाह को गतिशील बनाने म सहायक होगा। ऐसे कथन मुख्यत निम्नलिखित माध्यम से अभिव्यक्त किए गए हैं :-

(१) सख्या, (२) रग, (३) वृक्ष, फल-फूल, (४) पशु-पक्षी, कीट-पतगे (५) नाते रिश्ते तथा (६) पेशे और पेशेवर लोग। अ तिम से सम्बन्धित एक हरजस मे दर्जी का रूपक उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है :—

सुजिया सोई जुगि जुगि जीवं, विन ही कपड़ै वागो सीवं ॥ १ ॥
वत बोहत्तरि नव सह धागा, दस मास धागै सींवत लागा ॥ २ ॥
हुकम की सूई पुवण अधारा, तोम्य सं साठि इंदर सिणगारा ॥ ३ ॥
सूयणि वागा इकळंग सोया, कोडि अहूंठ कसीदा कीया ॥ ४ ॥
लुघ दीरघ दोय धागा सोया, रज वीरज का लेपन कीया ॥ ५ ॥
एक मन वागा सींयें मेरा साईं, ना खंच पड़ै न ढोला होई ॥ ६ ॥
सुरजन था दरजी सू मन लागा, जामंण मरंण जुरा दुख भागा ॥ ७ ॥

—हरजस ३८।

इसी प्रकार, कथा हरिगुण मे (छन्द ८२-९१) कृष्ण-किसान का बडा भव्य रूपक उपस्थित किया गया है।

कतिपय महत्त्वपूर्ण संकेत और उल्लेख : सुरजनजी की रचनाओ मे कुछ ऐसे सकेत और उल्लेख मिलते हैं, जो साधना, साहित्यक-वैचारिक-परम्परा और प्रभाव आदि की दृष्टि मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमे निम्नलिखित प्रमुख हैं :-

१-गाहा, गाह (गाथा) एक मात्रिक छन्द है[1]। सुरजनजी ने छन्द के रूप में इसका उल्लेख[2] और प्रयोग "छन्द" मे किया है, किन्तु राजस्थानी में इसका प्रचलित अर्थ गूढार्थ या गूढ बात भी हो गया था। कवि के कतिपय कवित्तों से इसका प्रमाण मिलता[3]

१-डा० भोलाशकर व्यास : प्राकृत-पैंगलम्, भाग २, पृष्ठ ४११, प्राकृत-ग्रन्थ-परिषद्, वाराणसी ५, १९६२, तथा वही, भाग १, "मात्रावृत्तम्", पृष्ठ ५२-६३, सन् १९५९।

२-कहा भोगळ कंमियं, कहा लप वेद लहीजै।
कहा पिंगल कथियै, कहा गुंण भ्रमर कहीजै।
कहा कहै दह च्यारि, कहा सुर साधि सुरंगी।
कहा सर्भ सिणगार, कंत विण नारि विरंगी।
गुण गीत कवित छन्द, नीसाणीह गाहा उचरि।
एक सुरिजन लेयं हरि, बाह विळवण नाव हरि॥ ३८॥—कवित्त।

३-पिणि जामं पिणि मरं, पिणि सोवं पिणि जगं।
पिणि देव पिणि दंत, पिणि दुसमण होय लगं।
पिणि पिसण सू पियार, साझ सोवं घर गडं।
पाणी प्रीति अहार, प्राण प्राणी सूं छडं। (शेषाश आगे देखें)

है, जिसकी पुष्टि केसोजी भी करते हैं[1] ।

२–एक कवित्त में डिंगल और पिंगल का उल्लेख मिलता है[2] ।

३–सिद्ध-साहित्य में प्रयुक्त और प्रचलित कतिपय शब्द प्रायः उसी रूप में ग्रहण किए गए हैं :–

क–अवजुवाट[3] (ओजुवाट)=सरल पथ, सहज के अर्थ में। "सबदवाणी" में भी "अळगी रही ओजू की वाट्ट" प्रयुक्त है (११४ : ४)। शान्तिपा और सरह ने इसका प्रयोग किया[4] है।

ख–रामरासौ में (मेहोजी की रामायण की भांति) वाराहीदेवी का उल्लेख भी एतद्-विषयक अन्य राजस्थानी काव्यों की तुलना में नवीन है। ६४ योगिनियों में से वाराही भी एक है। महामुद्रा की साधना जिस स्त्री साधिका के साथ की जाती थी, उसे योगिनी भी कहते थे। सिद्धों की साधना में इस योगिनी का विशेष महत्त्व

दैत न राकस भूत भव, अभप भपै अचर चरै।
संमरत सरस गुण उचरै, एह गाह कुण ऊधरै॥ २९०॥–कवित्त।
(ध्यातव्य है कि यह छन्द "दीसटिकूट" कवित्तों के अन्तर्गत लिखा गया है)।

१–च्यार पेट पग दोय, नाक आठ निरपीजै।
सरवण आठ संभल्या, आठ कुंडळ कहीजै।
पासू पेट बत्तीस, सीस सोळै सांभळिया।
इंद भुवंग दिस आठ, आठ वासेग दिस वळिया।
मंडळि एक मावै नही, संचै एक ढोल्या सही।
अजांण नरां इचरज हुवै, कवि केसव गाहा कही॥ १७॥–कवित्त, प्रति २०१ से।

२–कोक पढ्यां क्या होय, दुंनी करतूति पिछांणै।
गीता का सुधि ग्यांन, ग्यांन का ग्यांन न जांणै।
अमर पढ्यां क्या होय, अमर तै अमर न होई।
पींगळ डींगळ प्रीति, दीन घरि दीठा दोई।
सापी सबदी तंत रस, नाद वेद गुण जांण।
सुरजन सुमत गुण उचरै, संमरत सुणो वपांण॥ ३०३॥
–प्रति ७७, ८१, २०१, ३२७।

३–आसण - अवजुवाट चित अवघाट चलावै।
भीटारेप सरूप सहज सींगी वजावै।
रहंणी जोति रहंति बैसि त्रकुटी की छाया।
चेतन ग्यांन भभूति तप का चक्र चलाया।
साभनां जोग गादी सहज, ध्यांन धूप निहंचळ धुंनी।
अनहद नाद वेहद सबद, मुद्रा सिद्ध उंनमंनी॥ ९०॥

४–शान्तिपा:–"कुलै कुल मा होई रे मूढा ओजुवाटे संसारा"।–चर्या १५।
सरह :– "भनई वापा ओजुवाटे भाईला"।–चर्या ३२।
—(क) चर्या गीति पदावली, डा० सुकुमार सेन : पृष्ठ ६६ तथा ८८, शब्दकोष, पृष्ठ १५७, साहित्य-सभा, वर्धमान, सन १९५६।
(ख) बौद्ध गान ओ दोहा : हरप्रसाद शास्त्री, पृष्ठ २८ तथा ५४, टीका, पृष्ठ २९, वंगीय-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता–६, वंगाब्द १३६६।

था[1] । वज्रयान के परमोच्च देवता हेरुक की शक्ति का नाम भी वाराही या प्रज्ञा है[2] । बौद्ध तन्त्रो मे चडी, तारा आदि के साथ वाराही की उपासना भी प्रचलित है[3] ।

४–उषापुराण मे शिवजी और कृष्ण के युद्ध को क्रमश "जोगपथ" और "खत्री धर्म" का युद्ध कहा गया है, जो समाज मे नाथो के प्रभाव और प्रतिष्ठिता का भी द्योतक है ।

५–"कथा धरमचरी" और कवित्तों मे, एक-एक छन्द मे विभिन्न प्रसगो म अनेक पौराणिक अर्द्ध-पौराणिक और लोक प्रसिद्ध व्यक्तियों, कथाओ और घटनाओ के सक्षेप म उल्लेख और सकेत मिलते है । इनमे बहुत से छन्द पृथक् रूप म देखने पर तत्सबधी किसी प्रबन्ध चरित या कथाकाव्य के अ श भी सामान्यत प्रतीत हो सकते हैं,पर मूलत वे हैं मुक्तक और फुटकर ही । ऐसे सदर्भों का उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है । प्रसगवश, हमारा अनुमान है कि मुनि जिनविजयजी द्वारा उद्धृत पृथ्वीराज रासो के तथाकथित तीन छन्द इसी प्रकार के हैं[4] । ऐसी रचनाओ को प्रबन्धाभास मुक्तक कहा जा सकता है । इनमें वर्णित और सकेतित कथाएँ तत्कालीन समाज मे प्रचलित रूप मे ही ग्रहण की गई लगती हैं ।

६–कई उल्लेखो से कथित व्यक्ति, कथा या घटना की लोकव्यापी प्रसिद्धि का पता चलता है, जो एक प्रकार से एतद्विषयक अध्ययन को सुदृढ आधार प्रदान करता है । उदाहरणार्थ लालच के सबध मे सुरजनजी ने बुवक साह या बुवक सेठ[5] का प्रासगिक

१–डा० धर्मवीर भारती · सिद्ध-साहित्य, पृष्ठ ४२६, किताब महल, इलाहाबाद ।
२–श्री नागेन्द्रनाथ उपाध्याय : तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, पृष्ठ १३९, सवत् २०१५ ।
३–श्री रामदास गौड हिन्दुत्व, पृष्ठ ४९७, काशी, सवत् १९९५ ।
४–पुरातन-प्रबन्ध-सग्रह, 'प्रास्ताविक वक्तव्य', पृष्ठ ९, १०, कलकत्ता, सन् १९३६ ।
५–(क) न चली रावण साथि, लछ सचि आप लीधो ।
बीसळ बीस करोडि, तेण सू सग न कीधो ।
साची बुवक साह, दुष करि मुवो दुहेलो ।
जतन किया बोह जोग, गयो नह नद अकेलो ।
दरजोधन दुरि छतर धरि, जग छळिया बोहला जथा ।
लछि कहै जग लालची, परचि विणि सबळी पता ॥ २९७ ॥–कवित्त ।
(ख) सचणी सेठ बुवक री सभळो,परचियै क न दातारि पाटी ॥ ४ ॥–गीत १३ ।
हरजी वणियाळ की 'साखी' मे (द्रष्टव्य–हरजी वणियाळ)–प्रति २३७ से —
(ग) मन बोयो बुवक साह, लागि गयो मन मोतिया ।
वड्यो लाक्ड माह, रहि गयो मुष पोतिया ।
रहि गयो मुष पोतिया, नै गयो समदा तीर ।
माल भर्यो ले कोथळा, मुकता मोती हीर ।
नारी आई काज कर, ओ वडि बैठयो माह ।
गळ सू बाधा कोथळा, बोयो बुवकसाह ॥ लाग रह्यो मन मोतिया ॥
रथ पर बैठी नार, मत्र पढ्यो चूडावणी । (शेषाश आगे देखें)

नामोल्लेख किया है। विष्णोई साहित्य में अन्यत्र भी इसका उल्लेख मिलता है (द्रष्टव्य-हरजी वणियाळ, कवि संख्या ८७), जिससे यह प्रमाणित होता है कि यह कथा खूब प्रचलित और प्रसिद्ध रही होगी।

७-सुरजनजी के कई डिंगल गीत (हरजस संख्या ४१ से ४८) राग सोरठ, मल्हार और खंभावची में "हरजसों" की भांति गेय भी हैं तथा प्रत्येक में प्रथम द्वाले की टेक का विधान है। राग नामों के अतिरिक्त "हरजसों" के अन्तर्गत उनकी गणना करना भी यही सिद्ध करता है। इन गीतों में "वयणसगाई" का पालन है। "राग सोरठि" में गेय एक गीत का तो नाम भी "जांगड़ो"[1] लिखा गया है, जिसके अंतिम तीन द्वाले उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है[2] ।

सुरजनजी ने सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध और अठारहवीं पूर्वार्द्ध के मरुदेशीय लोक-मानस को समग्रता में आत्मसात् करके उसको विविध प्रकार से मोहक रंगों में चित्रित किया था। केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नही उनकी रचनाओं का महत्त्व तत्कालीन समाज, संस्कृति, इतिहास, चेतना, चिन्ता-धारा, साधना-प्रणाली और लोकमानस के अध्ययन के लिए भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके काव्य में यत्रतत्र प्रस्तुत अनेकविध उल्लेखों और संकेतों से इनके अध्ययन के लिए अत्यन्त प्रामाणिक और बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है। उनका काव्य-क्षेत्र बहुत व्यापक और बहुमुखी था, अतः उसके आधार पर पूर्ण विश्वास के साथ एतद्विषयक सामान्य निष्कर्ष भी सही रूप में निकाले जा सकते हैं।

मूल और मुख्य बात को हृदय-रस- पूरित कर थोड़े से मर्म-स्पर्शी सरल शब्दों में बांध कर कहना कवि का विशेष गुण है। उनका काव्य राजस्थानी मुहावरों, कहावतों और लोकप्रिय उक्तियों का भाण्डार है जिनसे बहुत सी धुंधली सांस्कृतिक रेखाएं स्पष्ट होती हैं।

साहित्य की भांति सुरजनजी की भाषा का भी बहुत बड़ा महत्त्व है, वस्तुतः वह एक पृथक् अध्ययन का विषय है। उन्होंने साहित्यिक और बोलचाल- दोनों प्रकार की मरु-भाषा को सफलता पूर्वक वाणी का माध्यम बनाया है। भाषा पर कवि का विलक्षण अधि-

मन मे करै विचार, पहर एक छै जांवणी ।
पहर एक छै जांवणी, नै धणी बीच में दूर।
रथ भारी हालै नहीं, सही त ऊगै सूर ।
आज लाज कैसैं रहै, नारी करै उचार ।
रथ छिटकायो संमंद में, डूब र मुवो गिवार ।। मंत्र पढ्यो चूड़ावंणी ।।

१-द्रष्टव्य : रघुनाथ रूपक गीतांरो, पृष्ठ १९०-१९१, संवत् १९९७।

२-पिमां दमा जरणा हर पेती, दीन पुरबलै पायो।
भजि हरि बिसंन भूलि मत भेदग, गरथ मनोहर गायो।। २ ।।
लीला किसंन तंणै रस लेपो, गुंण हरि भेदग गायो।
मन वच क्रंम तिहूं रिधि मांही, धंन्य धंन्य क्रंम बियायो ।। ३ ।।
इंदरी पांच सुपह गहि आंणै, सहज भुवंण जे सारै।
सुरजनदास आस हरि सवंदा, ओ गुर पारि उतारै । ४ ।।-हरजस ४१ ।

कार है, वह प्रसग और भावानुकूल रूप ग्रहण करती है। उसमे एक विशिष्ट ओज, गति, निमलता और कसावट है। सुरजनजी की शैली ओज गुणयुक्त और प्रवाहपूर्ण है। उनका शब्द प्रयोग उस तीर के समान है जो सीधा लक्ष्य वध करता है। उनके काव्य में मरुभाषा की आत्मा का निमत्र रूप प्रतिबिम्बित होता है। राजस्थानी क अतिरिक्त कवि ने पिंगल म भी सवैए लिखे हैं। इनमे तात्कालिक पिंगल की बानगी सुरक्षित है। बहुत से फारसी अरबी शब्दो का राजस्थानीकरण और प्रयोग, उनकी भाषा की एक और उल्लेखनीय विशषता है।

सुरजनजी की काव्य प्रतिभा उस बरगद के वृक्ष के समान थी जिसके नीचे अन्य वनस्पति भी फलती-फूलती है। उनके काव्य से अनेक समकालीन और परवर्ती कवियो को प्रेरणा मिली। लगभग पौन शताब्दी तक वे साहित्य-ससार को देदीप्यमान करते रहे और आज भी उनकी आभा मन्द नही हुई है। वे वर्चस्वी, काल निर्णायक और कालजयी कवि थे, जिन पर डिंगल को गर्व होना उचित ही है।

७० मिठुजी (मिठुदास) : (अनुमानत विक्रम सवत १६५०-१७५०)

ये "गगापारी", उत्तर-प्रदेश के निवासी और केसोजी तथा सुरजनजी के समकालीन थे। विभिन्न रागों म गेय इनके निम्नलिखित तीन हरजस और दो फुटकर सवैए प्राप्त हुए हैं —

१-कुण तारै जी मोकू कुण तारै, विना गुर अब कहो कुण तारै ॥ १ ॥ टेक ॥[1]
-४ छद।

२-मना भज्य ले वनवारी हो ॥ १ ॥ टेक ॥[2] -४ छद।

३-काहे कू मन सोचत भाई,
जो कछु लिख्यो लिलाट विधाता, तिल इक घटत वधत नहीं राई ॥ टेक[3] ॥ -३ छद।

ये क्रमश राग रामकली, मारू और विलावल में गेय हैं।

प्रथम मे जाम्भोजी से भवसागर से पार उतारने की दैन्यभरी प्रार्थना है। दूसरे में जाम्भोजी की महिमा, वैकुण्ठवास और तेतीस कोटि जीवो के उद्धार का उल्लेख तथा तीसरे में सब चिंताओं को छोड कर भगवान की शरण-ग्रहण करने का अनुरोध है।

सवैयो (प्रति सख्या १९७) मे जम्म-महिमा के साथ जाम्भोळाव की मिट्टी-स्पर्श से एक पक्षी-वधिक "थोरी" के पवित्र और मुक्त होने तथा दूसरे में "मीयों" को 'परचा देने'

१-प्रति सख्या ४८, २०१, २२७। उदाहरण दूसरी प्रति से।
२-प्रति सख्या ९५, १४०, १४४, १८६, २०१, २२७।
३-प्रति सख्या ६५, १६२। उदाहरण पहली प्रति से।

का उल्लेख है। उदाहरणार्थ पहला हरजस और दूसरा सवैया देखे जा सकते हैं[1]। हरजसों की कतिपय अर्द्ध-पंक्तियों में सबदवाणी की पंक्तियों की पुनरावृत्ति है। उदाहरणार्थ :—

क–नाल्हासर की साथरी, चिरत कियो मुरारी।
दास मीठु वल्य जात है, छकि आई सारी ॥ ४ ॥ –हरजस २।
–तुलनीय सबदवाणी, ७२ : २५।

ख–जळ थळ महि सर्व निरंतर पोखत जाया जूंण सवाई ॥ २ ॥ –हरजस ३।
–तुलनीय सबदवाणी, ८३ : २२।

ग–संभरथळ गुर स्यांम पधारे, वूठो अमरत धार सुहाई।
अनत कोड़ जाकै दांवन विलवा, दास मिठू वाकी सरणाई ॥ ३ ॥ –हरजस २।
–तुलनीय सबदवाणी, २७ : ५।

इससे सबदवाणी के व्यापक प्रभाव और उस पर कवि की आस्था प्रकट होती है। रचनाओं से उसकी दो विशेषताएँ स्पष्ट हैं–भगवान पर अटूट विश्वास और उद्धार हेतु आर्त्त-भाव से आत्मनिवेदन। कवि ने मरु और ब्रज दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है।

७१. माखनजी : (अनुमानतः विक्रम संवत १६५०–१७५०) :

ये नगीना के साधु थे। इनका समय उपर्युक्त बताया जाता है।

हस्तलिखित प्रतियों में "हरजसों" के अन्तर्गत राग 'खंभावची' में गेय इनका एक 'सोहलो'–"आज संभरथळि अणंद अपारा, जिभिया जपियै जंभ सवांरा" मिलता है[2], जो इस टेक समेत ६ छन्दों का है।

इसमें जम्भ-महिमा-वर्णित है। अज्ञानांधकार को दूर करने के लिए जाम्भोजी दिनकर के समान हैं। बड़े बड़े बाईस राजा उनकी शरण में आए थे। उदाहरण-स्वरूप चार छंद द्रष्टव्य हैं :—

जैसें दंणियर उदै होत हैं, तिमर तुटत होत उजारा।
सुर एक वेद पढत है ब्रंभा, धंन्य धंन्य लोहट भाग तुम्हारा ॥ ३ ॥

१–क–जाजरी नाव तंन पाप पांहंन छली, कांम अर क्रोध की लहिर मारै।
कुबधि की पुवंन्य सूं गुंवंन वांवं कियो, ध्रंम लंगर विनां काहा टारै ॥ २ ॥
भुंवर अंति गहर फिरै पाताळ जळ, गरि गयै गरब केरसंन सारै।
भूल्य गई बुध और सुधि चहुं ओर की, नंहीं कोई निकट कहो किस पुकारै ॥ ३ ॥
काळ के ग्राह चहुंपास्य घेरे फिरै, माहा अंति सबळ तिस कूंन टारै ॥
कहै मीठु ब्रध की लाज मोटा धंणी, कर छीन वा पार नहीं लगै वारै ॥ ४ ॥
ख–माटी के काढे बिन जनम ब्ययारथ, संभर के धोके बिन भार सिर भारी है।
सोहत अनंत मूरत गुर भंभ हूं की, दरसण कै देख्य स्यै पाप ग्वारी है।
सबदन की धुन सुन मुनियन के मन मोहे, पद पंकज कै परस स्यै को निमतारी है।
कंचन का मिंद्र मीयां प्रचाय दीये, कहै दास मिठु जब खोल दी किवारी है ॥ २ ॥
२–प्रति संख्या ४८, २०१, २२७।

षोडस अर पट नृपति आए, वडे वडे गढ़पति भूप भुजारा ।
हरख भए सबदन को धुन्य सुन्य, परसत करि करि प्रीति पियारा ॥ ४ ॥
अवगतिनाथ अजोध्या के पति, तम ही व्रजपति नद कवारा ।
अब सभरथलि आए सामी, नव खड प्रथमी खेल पसारा ॥ ५ ॥
जगमग जोति विराजत सभू, कचण नग्र अंनूप क्विारा ।
तीन्य लोक जाकी महमां गावे, पावत मानव मोख दवारा ॥ ६ ॥
–प्रति २२७ ।

७२. रामू खोड (संवत् १६७५, ७६–१७००) : साखी .

ये गाव घवा के रहने वाले धर्मप्रिय विष्णोई कृषक थे । इनका नाम विष्णोई साहित्य मे मृत्यु से पूर्व कथित अपनी एक साखी तथा सम्प्रदाय म 'दाग' (कर) के बदले परोपकारार्थ बलिदान हो जाने के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है । बलिदान की घटना इस प्रकार है :—

सत्रहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे मारवाड के कापडहेडा गाव (जोधपुर से ३२ मील पूर्व मे स्थित) मे चैत सुदि म एक मेला लगता था । उसमे सब ओर से दूर–दूर तक के लोग बडी सख्या मे आते थे । वहा अनेक प्रकार की वस्तुओ और पशुओ की खरीद-विक्री होती और सभी पेशो के लोग इस हेतु एकत्र होते थे । उसम राज्य के कर्मचारी मार्ग मे रास्ता रोक कर लोगो से 'दाण' उगाहते थे । वे एक प्रकार से कर के नाम पर दुनिया को लूटते थे और इसकी खबर तक जोधपुर–दरबार मे नही होती थी । विष्णोइयों ने उनको कर देना अस्वीकार कर दिया । इस पर उन लोगो ने अस्त्र–शस्त्र प्रयोग द्वारा कर लेना चाहा किन्तु सौभाग्य से किसी को चोट नही लगी । रामू खोड दून्हे'बने हुए बरात समेत कापडहेडा मे विवाह के लिए आ रहे थे । मेले मे ऐसा दृश्य देख कर 'मौड' बाधे ही उन्होंने वहा इस अन्याय के प्रतिवाद स्वरूप प्राण तक देने का निश्चय किया और लडाई करने लगे। उनके अन्य व्यक्तियो ने भी इसमे सहयोग दिया । इस तरह लडते–लडते उन्होंने स्वर्ग-प्रयाण किया । उनकी अपूर्व वीरता, धर्म-प्रियता और साहस देखकर कर उगाहने वाले भाग गए । अपने प्राण देकर उन्होंने सदा के लिए दुनिया का 'कर' माफ करवाया । यह घटना संवत् १७०० के चैत सुदि ११, मगलवार की है । उनके समकालीन सुप्रसिद्ध कवि केसोजी गोदारा ने अपनी एक साखी में इस मेले और बलिदान का भावभरा वर्णन किया है[1] तथा साहब-

---

१–हटवाडै हळचो मड्यो, असरे दीन्ही भाग ।
रामइयै कीयो हडा, दुनी छुडायो दाग ॥ १ ॥
जोधाणे लग जाणियो, वळे ज वीकानेर ।
चाल गई चितौड लग, अली सुण्यो अजमेर ॥ २ ॥
तू सूरां सीरि सूरिवो, मौड बधामण मत ।
पनि करियो पतिसाह लग, पोहमी परगट पथ ॥ ३ ॥ (शेषांश आगे देखें)

रामजी राहड़ ने इसी आधार पर इस घटना का सविस्तर उल्लेख किया है (प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ५३)।

युद्ध करने से पूर्व मृत्यु को निश्चित समझ कर रामू ने प्रस्तुत साखी में अपने भावोद्गार प्रकट किये थे। साखी अत्यन्त सारगर्भित और मर्मभेदी है। वधू के रूप मे रामू ने मृत्यु का ही वरण किया। इसमे स्वयं को "दिसावर" में बाग रहित भ्रमर बताते हुए, रचयिता पिंड रूपी पिंजर तोड़ कर अपने साथियों—साधुजनों से भेंट करने की आतुरता प्रकट करता है। मृत्यु के लिए मानो वह अधीर है। उसकी जाम्भोजी पर अगाध श्रद्धा है। अपने सम्भावित बलिदान को "सुकरत" समझकर करनी के अनुसार फलप्राप्ति—आवागमन से मुक्ति चाहता है। इस अवसर के विशिष्ट संदर्भ में हृदय के अनेक उमड़ते हुए भाव मानों साखी में साकार होगए हैं। विष्णोई सम्प्रदाय में ऐसी घटनाओं और साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। राग 'भ्रुंवरो' में गेय 'कणां को' वह

पोड पड़ंतै पळ पिस्या, हुई सकळ सराह।
धंन्यकारी वरत्यौ धरा, धंन्य रांमू धन्य राह ॥ ४ ॥
॥ छंद ॥ मंझि मारू के देसि, कहियै कापड़हेटौ।
मंड्यौ मंडोवर भोम्य, नवकोटि सूं नेटौ।
दुंनी उगाहैं दांण, महरी परज संतावै।
हीर पपो हुजदार, मारग मिनष रुकावै।
रोकि रमता दुप दीजै, दुंनी डण विध्य भीटियै।
पवरि हीणा पलक पोसै, पूरि परजा पीटियै।
दीवांणि दादि न पावही, नर कूकि दुनियां ऊं कहै।
दांणी दुममंण होय लागा, दांण दुनियां उगहै ॥ ६ ॥
अै नर न द्यै दांण, भूंवि हुई भांभांणां।
पळ चड़िया करि पीज, साहि करि कुवांणां।
कुवांण कर गहि मांवहैं, तिण वार तागाळा रहै।
नीसरै तरवारि तीपी, वांण सर गोळी वहै।
लिष्यै वीणि क्यौं लोह लागै, मार अंगि सूरा सहै।
विसनोई पतिसाह परगट, दांण रोक्या न दिवै ॥ ७ ॥
मंगळ रचियां रांम, विध सूं वरी विसाही।
मिलिया मिनष अनेक, जांन जुगति सूं आई।
जुगति जांनी हवा भेळा, निज कंम लाभ निवंधियौ।
रामटो रिण पेति आयौ, मौड़ मनतग वंधियौ।
तरवारि तीरे आरती, रची चवंरी चौहटै।
पिवै माना मंड्यौ भारथ, रचौ मंगळ रांमटै ॥ ८ ॥
वड साको संसारि, पोट पड़ंतै कीयौ।
धाम ववै सुत सूर, जग मांहि जसि लियौ।
जस लियौ जिण जीव काजै, मुकळ पप काया कसी।
मघा नपत नै वार मंगळ, चैत सुदि एकादसी।
सत्रासै सइकै संमै नर दांण काजै सिर दियौ।
मुकति पंहुतौ कह केसौ, संसारि वड साको कियौ ॥ १० ॥

साखी[1] नीचे दी जाती है —

अळियळ टोळी भुंवरो रंम्य रह्यौ, रह्यौ देसांवर छाय।
बाग बिहूणो भुंवरो किम रहै ॥ १ ॥ टेक ॥
जां थळियां देवजी भुंवरा अवतर्यो, ता थळियां छै गाढो नूर।
भल प्रापति भगतां मिल्यो, दिल मा ऊगो सूर ॥ २ ॥
आवो भुंवरा घर चिणा, आयो सावण मास।
भीजण लागो पांखड़ी, छीजंण लागो सास ॥ ३ ॥
बीजळियां झालोरिया, सरसो भादवड़ै रो मास।
घण गरजै बीजळ खिवै, चात्रग मने उदास ॥ ४ ॥
तोड़ू ताड़ू भुंवरा पींजरो, भाजि करूं भकमूर।
साधु जन सुरगे नाश्ड्या, काय रहिया म्हे झूरि ॥ ५ ॥
पंथी एक सनेसडो, मोमिणा नैं कहिया (ह)।
पींजर नाहीं प्राणियो, थांई दिस लहिया (ह) ॥ ६ ॥
हीरा विणजै साधो मोमिणो, वळै न चडिस्यै थारै हाथि।
म्हे सिवरां मोटै साम्य नैं, रम्यस्या कुलरियै रै साथि ॥ ७ ॥
सुरगे सौरभ भुंवरा अंनि घणी, मौरि रही वणराय।
चपो मरवो भुंवरा केवडो, भुंवर रह्या रग लाय ॥ ८ ॥
मेळो गुर पहळाद सूं, मेळो हरिचन्द राय।
मेळो पांचे पाडवे, धन्य कुंतां दे माय ॥ ९ ॥
जांहो वाह्यौ ता लुंण्यो, सुपन सुवाया खेत।
म्हे सींवरां साचै साम्य नैं, म्हारो झाभेंजी सूं हेत ॥ १० ॥
करि सुकरत सुरगे गया, ते जन पुंहता पारि।
बीनतड़ी रामूं कहै, आत्राग्ंवणि नोवारि ॥ ११ ॥–प्रति २०१ से।

७२. रूपो वणियाल : (अनुमानत विक्रम संवत् १६८०-१७५०) :

ये जागळू के गृहस्थ विष्णोई और केसोजी तथा सुरजनजी के समकालीन थे। इनकी चार छन्दों की एक 'छन्दा की' साखी (प्रति संख्या १७८ (ख) प्राप्त हुई है, जिसमें इसके पूर्व 'साषी रूपै वणीयाळ की' लिखा है। अन्तिम छन्द में भी इनकी टेक है। साखी की प्रारम्भिक पंक्तियां ये हैं :—

जंभ गुरू दा (तार) मेरा, मो पर कृपा कीजियैं।
तुम दया करो दयाल, अब (अ) पणां कर लीजियै।

इसमें कवि अपने इष्ट देव जाम्भोजी के प्रति दीनता और अधीनता व्यक्त करता

1–प्रति संख्या ६६, ६४, १४२, १४९, १६१, २०१।

हुआ उद्धार की प्रार्थना करता है। पूरी साखी में कवि की भक्ति-भावना और मुक्ति-कामना का प्रभावशाली वर्णन है। अन्तिम दो छन्द ये हैं :—

जम सें डरपै जीव, थरहर कंपै प्रांणियों।
विष्णु तणां अवतार, मैं मूरख नहीं जांणियों।
न जांण्यौं मच्छ कच्छ वाहरा, और नरसिंघ वावनां।
परसरांमजी राम लिछमण, कांन्ह धेन चरावणां।
बुध जंभजी और निकळंक, दसूं अवतार न जाणियो।
जंम सें डरपै जीव मेरो, थरहर कंपै प्राणियों ॥ ३ ॥
म्हारी आवांगवण चुकाय, अवकै वास द्यो अमरापुरी।
देख डर्यो संसार, कलि में माया अंति बुरी।
अंति बुरी माया मन मोहि लीयो, काज कोइ यक नां सर्यो।
भक्ति थारी मैं भूलि भोंदू, नाव सें चित नां धर्यों।
कर जोड़ रूपो कहै किरता, हेत करि सुंणियों हरी।
म्हारी आवागवण चुकाय, अवकै वास द्यो अमरापुरी ॥ ४ ॥

७४. दामोजी : (संवत् १६८०-१७६८) :

ये वील्होजी की शिष्य-परम्परा में नेतोजी के शिष्य और रासोजी, मुकनोजी जैसे कवियों के गुरु (देखें-साधु-परम्परा) तथा सम्भवतः जाति के वणियाळ थे। परमानन्दजी वणियाळ ने अपने तक की गुरु-परम्परा में इनका नामोल्लेख किया है (प्रति संख्या २२७, 'नमस्कार प्रसंग')। इनका स्वर्गवास संवत् १७६८ को सावण वदि २ को अपने गांव रासीसर में हुआ था[1]। बताया जाता है कि इस समय इनकी आयु ८८/६० साल की थी। इस प्रकार, संवत् १६८० के आसपास इनका जन्म माना जा सकता है। विष्णोई समाज में निष्ठा और नैतिक आस्था बनाए रखने के हेतु इन्होंने बहुत प्रयास किया था।

रचनाएं : इनके (क) १४ कवित्त (प्रति संख्या २०१, फोलियो १७६-१८०) और (ख) पांच छन्दों की राग 'धनाश्री' में नेय एक साखी "छन्दां की"[2] मिलती है।

कवित्तों के शीर्षक "कवत परमोधे रूपी" (परमोधे=प्रबोध) से वर्ण्य-विषय स्पष्ट है। इनके द्वारा वह मानव को प्रबुद्ध करता है। प्रथम नौ कवित्तों में काया की नश्वरता, जुरा, मानव-देह की दुर्लभता, आवागमन से मुक्ति, विष्णु-शरण और उनके नाम जप आदि का उल्लेख है। शेष पाँच छन्दों में कवि अनेक प्रकार से भगवान से अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। इसके लिए उसका एक प्रबल तर्क यह है कि वह विष्णोई "पंथ" में है

१-"समत १७६८ सांवण वदे २ गांव रासीसर्य दांमजी तुरवति लीवी"-प्रति संख्या २०१, फोलियो ५४६-४७ पर "साका" के अन्तर्गत।
२-प्रति संख्या १४१, १४२, १५२, १६१, २०१, २१५।

और भगवान ने इस हेतु एक प्रतिज्ञा कर रखी है[1]। प्रत्येक कवित्त मे पूर्व कवित्त के कतिपय अन्तिम शब्दों की पुनरावृत्ति होने से *प्रवाह-तारतम्य* बना रहता है जिससे समस्त कथन का प्रभाव घनीभूत होता जाता है। जीवन और जगत की वस्तुस्थिति का वर्णन एक चेतावनी के रूप मे है, जिसके मूल मे मानव-कल्याण की भावना निहित है। उदाहरणार्थ दो छन्द द्रष्टव्य हैं[2]।

साखी मे जम्भ-महिमा, नाम-जप, अवतार आदि का उल्लेख है। प्रथम छन्द नीचे दिया गया है[3]।

कवि भक्त है, उसका उद्देश्य मानव जीवन को समग्रता मे समझाते हुए लोगों को मुक्ति की ओर प्रेरित करना है। इसका सबसे सरल उपाय विष्णु-नाम-स्मरण है। उसकी उपमाएँ घरेलू और भाषा बोलचाल की मरुभाषा है।

७५. देवोजी : (*अनुमानतः विक्रम सवत् १७००-१७८०*) :

राग 'विळावळ' मे गेय इनका एक हरजस प्राप्त हुआ है (प्रति ४८, २०१ और २२७ मे) जिसमे जाम्भोजी को परमेश्वर मानते हुए उनकी महिमा का बखान है। स्मरणीय

१-सरणि तुहारी साम्य, रापि प्रतग्या पाळो।
कुल दया करि पाल्य, सदा सनमुपि न्हाळो।
रुपवाळो रहमाण, करो गोम्यद गुवाळो।
द्यो सुर तेतीसा साथ, पिसण सह पासे टाळो।
अरि वो डर आमान्य करि, तारि मया करि महमहण।
मो मीरि छाया छाप की, पथ प्रतग्या रापि पण॥ ११॥

२-जुरा पहुती जाण्य, माण घर छाडि पधार्‌यो।
ताण तज्यो तिणवार, हेत हुरमति सह हार्‌यो।
जदि जोबन थो जोरि, आब को धर्‌यो उभारो।
बीधि गई नर वार, हुवो अगि अपत उवारो।
बाळपणै बुझो नहो, पुषतो ही पोह पुछै लहि।
चेतन होय चौथी वही, नर हू सेई हरि *नाव कहि*॥ ५॥
कहि नारायण नाव, साव सतगुर को आयो।
दोन्ही मिनपा देह, जलम उतिम घरि पायो।
परहरि कुळ की काणि, जाणि जगदीस चितारे।
जीती सार न हारि, जाप करि जलम सुधारे।
एळवी वात हराम तजि, धरणीधर सूं ध्यान धरि।
मोमरि मिनपा देह कै, इसि अवसर उपगार करि॥ ६॥

३-वावो विसनो विसन भणति, जग तारण जीवा धणी।
विसन कायम करतार, हरि हरि जपो ए दुनी।
हरि साचो जपो दुनिया, सकळ माहि उवार्‌यसी।
पहलाद विरिया तुरति आयो, कष काटि उबारेसी।
परमेसर पूरो धणी, मिळो मया करि म्यत।
देव को दीदार दीसै, विसनो विसन भणत। जग तारण जीवां धणी॥ १॥

है कि नीम से नारियल और आक से आम बनाने का उल्लेख (पंक्ति ४) राव बीदा वाली घटना (द्रष्टव्य जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) से सम्बन्धित है। 'थळी' में 'नेम-ध्रम' करने की बात कह कर कवि ने संकेत किया है कि तत्कालीन समाज में लोग इनका पालन नहीं करते थे।

इससे कवि की जाम्भोजी के प्रति भक्ति भावना का पता चलता है। हरजस यह है :-

सतगुर आयो रळिए रळिए, कुंण नेम ध्रंम कियो आं थळिए ॥ १ ॥ टेक ॥
हिरणाकस मारि पहळाद उबारे, अपणे जंन का कारज सारे ॥ २ ॥
रांवंण मारि बभीछंण थापे, सोई गुर आयो आपे आपे ॥ ३ ॥
नीबेइ नाळेर आकेइ आंबा, तह विण कूंण करै देव अंभा ॥ ४ ॥
देवो कहै देवजी मैं अवकै पाए, अवर जळंम फिरि वाद गुमांए ॥ ५ ॥
-प्रति २०१ से।

७६. हरिनन्द : (अनुमानतः विक्रम संवत् १७००-१७८०) :

इनके विषय में विशेष कुछ पता नहीं चलता। इनकी निम्नलिखित फुटकर रचनाएँ प्राप्त हुई हैं :—

क-हरजस—१ (७ छन्द, राग सोरठ, प्रति संख्या ४८)।
ख-फुटकर छन्द—३ (कवित्त-२, दोहा-१, प्रति संख्या २८३, २८६)।

हरजस में जाम्भोजी के प्रमुख कृत्य तथा उन व्यक्तियों के नामोल्लेख हैं जो उनके सम्पर्क में किसी न किसी प्रकार आए थे[1]। इससे कवि की भक्ति-भावना का तो पता चलता ही है, जाम्भोजी के जीवन से सम्बन्धित कतिपय बातों की पुष्टि भी होती है।

फुटकर छन्दों में लंका-युद्ध और राम की सेना-संख्या का वर्णन है[2]। छन्दोभंग इनमें है।

१-पाँच छन्द द्रष्टव्य हैं :—
विड़द किसा दे गाऊं, इण अवतार प्रवाड़ा कीन्हा, पहला पार न पाऊं ॥ टेक ॥
इसकंदर कूं आंणि जगायो, करहा की असवारी।
हासम कासम दरजी रोक्या, फिट काफर मुरदारी ॥ २ ॥
सतगुर का एक सिष्य सयाणां, महंमंद सूं फुरमाई।
सति परणांम कह्या गुर मेरे, मरती गऊ छुडाई ॥ ३ ॥
सांतलि सीष सुणी सतगुर की, ऊंच पदवी मन मांनी।
नरपत नहचै सूं निसतरियो, हुयग्यो सील सिनांनी। ४ ॥
सांगै रांणै सतगुर ओळपियो, चित चोपै चीतोड़ी।
झाली रांणी जगत पिछांणी, तन की तिरसनां तोड़ी ॥ ५ ॥
जैसलमेर जगत सोह जाणै, रावळ नै परचायो।
काचो कळस कियो महमांणी, सतगुर सरणैं आयो ॥ ६ ॥
२-प्रथम वंदरा पदम अठारै राम पेड़ रीसांणै।
च्यार हजार छिनवै, पोळ लंका प्रवांणै।

(शेषांश आगे देखें)

७७ गोकलजी : (अनुमानत विक्रम संवत् १७००-१७९०) :

ये जाति के वर्णियाळ साधु और जोळियाळी (जोधपुर से १८ कोस पश्चिम) के निवासी थे। इनका समय उपर्युक्त है, जिसका किंचित पता हस्तलिखित प्रतियो से भी लगता है। प्रति सख्या ६८ मे अन्य प्राचीन कवियो की साखियों के अतिरिक्त अठारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के प्रसिद्ध कवियो-केसोजी, सुरजनजी और दामोजी की साखियो के साथ इनकी एक साखी (२३ वी सख्या पर)- 'बाबो तेतीसा प्रतिपाळ' भी लिपिबद्ध मिलती है (६८ (प) ७)। प्रति सख्या २०१ म 'ग्र थ साखी' म यह ३१ वी साखी है। प्रथम प्रति की जाम्भाणी रचनाओ का लिपिकाल संवत् १७८८ और दूसरी का संवत १७९७ है। दोनों म सगृहीत 'साखियो' के रचयिताओ मे इनके अतिरिक्त सबसे बाद के कवि दामोजी हैं, जिनका स्वर्गवास संवत १७६८ मे हुआ था (देखें-दामोजी, कवि सख्या-७४)। इन साखियो के प्रचलित और मान्य होने म कुछ समय भी लगा होगा। इस प्रकार, इन दोनो प्रतियों मे लिपिबद्ध साखियो के रचनाकाल की ऊपरी सीमा संवत् १७५० के लगभग होनी चाहिए। इस समय तक गोकलजी भी पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुके होगे। इस आधार पर इनका जन्म-काल संवत १७०० के आसपास अनुमित है। सुप्रसिद्ध 'साखी खेजडली की' में इन्होने संवत् १७८७ के भादो सुदि मे हुए अनेक बिश्णोई लोगो के 'खडाणे' (बलिदान) का उल्लेख किया है, जिससे इस समय तक इनका वर्तमान रहना सिद्ध है। इसके पश्चात ये कितने वर्ष और जीवित रहे, इसका पता नही चलता। लगभग ९० साल की आयु मे, संवत १७९० मे ये स्वर्गवासी हुए होगे। कहा जाता है कि इस 'खडाणे' के समय ये भी वर्तमान थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं :—

१-इन्दव छन्द[1] (३० 'इन्दव छंद', १ कवित्त, १ रेखता=३२ छन्द)।
२-अवतार की विगति[2] (२ दोहे, ४५ मोतीदाम=४७ छन्द)।
३-परची[3] (३७ छन्द)।
४-स्तुति होम की[4] (१० छन्द)।

तिहु लील तियालीस परब चौराणवें उचारा।
तेपन अरब द्वादस कोडि लाख पचास लगारा।
हरिनद कहै रुघनाथ दळ हले गाजी गढ लका गही।
केता केत वदरापोळ पोळ लूब्या सही॥ १॥
नित रो चोर काचडा करतो, नित रो करतो हासा।
भाले कुंभकरण रा भाई, तब्बुवा तणा तमासा॥-प्रति २८३ से।

१-प्रति सख्या १९, २०, २६, २९, ५१, ६०, ६७, ७०, ७८, १२२, १५३, २०६, २४९, २७९, ३९८, । उदाहरण प्रति सख्या २९ से है।
२-प्रति सख्या ८, १९, २९, ५१, ६ , ६७, ७०, ७८, १२२, १५३, २०८, २४९, २७९, ३९८, । उदाहरण प्रति सख्या २९ से।
३-प्रति सख्या ६, १९, २१, ५१, ६७, ७४, ९८, २७९।
४-प्रति सख्या ५१, ६७, १२२, २७९। उदाहरण अन्तिम प्रति से है।

५–साखी–२ : (१) बावो तेतीसां प्रतपाळ घरणीघर अैसी घरो[1] ('छन्दा की', ५ छन्द, राग 'धनांसी')।

(२) पण पालण पिसणां गंजण, रोंखां राखणहार।
जोधांणं जालिम तप्यौ, अजमलजी अवतार[2] ॥ १ ॥ (११ दोहे, १२ 'छन्द'=२३ छन्द, राग सिन्धु) –सापो खेजड़ली की।

इनका परिचय इस प्रकार है :—

१–इन्दव छन्द :—इन्दव छन्दों में प्रत्येक के पश्चात् इन दो पंक्तियों की टेक लगती है :—

आकार करण खटवरण निवाजण, भगत उधारण भाव कियौ।
सोई जंन तारंण जांभेश्वर जुग में, आई चक अवतार लियौ।

हस्तलिखित प्रतियों में 'छन्दों' में पंक्तियों का संख्या–क्रम एक सा नहीं मिलता। अधिकांश छन्दों में चार (छन्द ४, ७, ८, १०, ११ आदि), किन्हीं में पाँच (छन्द १, २, ३, ९ आदि) तथा छः (छन्द, ५, ६, १६, आदि) पंक्तियों तक हैं। वर्ण्य–विषय की दृष्टि से इसके दो भाग किए जा सकते हैं। आरम्भ के १५ छन्दों में सृष्टि–निर्माण से पूर्व की स्थिति, निरंजन का स्वेच्छा से सृष्टि–निर्माण तथा भक्तों के उद्धारार्थ और मुक्ति–हेतु उनके विभिन्न अवतार और कार्यों का संक्षिप्त उल्लेख है। शेष छन्दों में परमसत्ता अलख पुरुष का जाम्भोजी के रूप में अवतार–हेतु, जन्म, जाम्भोजी की विशेषताएँ, विभिन्न कार्यो एवं करणीय कर्म और मुक्ति की कामना वर्णित है। जाम्भोजी ने ही पूर्व में राम–कृष्णादि अवतार लिए थे। इसका प्रमुख विषय इस प्रकार हरिगुणगान ही है। उदाहरणार्थ दो छन्द नीचे दिये जाते हैं[3]।

२–अवतार की विगति :—इसके अपरनाम 'जम्भस्तुति' (प्रति संख्या ८, ७८) तथा 'औतार की स्तुति' (प्रति संख्या ७७) भी हैं। आरम्भ के १५ मोतीदाम छन्दों में जाम्भोजी के अवतार, कार्य और विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन करते हुए शेष छन्दों में विविध प्रकार से

१–प्रति संख्या ६८, ७६, ९४, १४१, १४२, १९१, २०१, २१५।
२–प्रति संख्या ६६, ९४, १४२, १९१, २२९।
३–आयो गुर जंभ अचंभ अजोनी वर्म घुराऊ दापवियौ।
संभरायळ सामी अंतरजांमी वोहनांमी हरि हेत कियौ।
चालवियौ पंथ सुपंथ सुमारग तारग मंतर सांभळियौ।
तारै नर नारि विकार तजैं जी भाग भलैं भगवंत मिलियौ ॥ आकार ॥ २३ ॥
कर सलांम ले नांम गरथ गोविंद गुण गाऊं।
चरणां चित लगाय परसि दरसण सुप पाऊं।
आंन भर्म अभिमांन म्हेलि अहंकार अलगो।
अलप तंणी धरि आस हेत हरि डोरि विलगो।
सिवरियै सांम संभू सरण विषम वाट भौ जळ तरूं।
केवळीनाथ कृपा करो हूं ओट तुहारी ऊवरूं ॥ १ ॥ (३१)

उनकी स्तुति की गई है[1] ।

३–परची –इसमे जाम्भोजी के जीवन और कार्यों का सक्षेप म परिचय देते हुए उन व्यक्तियो का उल्लेख किया है जिनको जाम्भोजी ने "परचा" दिया था । ऐसे व्यक्ति हैं— राव दूदा, पूल्होजी, मुहम्मदखा, सिकदर लोदी, राणा सागा, रावल जैतसी, राव सातल, राव बीदा और लोहापागल । अन्तिम दो व्यक्तियो से सम्बन्धित उल्लेख अपेक्षाकृत विस्तार से किए गए हैं। राव बीदा के अगले जन्म का उल्लेख सर्वथा नवीन है। मृत्योपरान्त वह ऊँट हुआ। भार ढोते हुए बीच मे ही वह बैठ गया किन्तु जाम्भोजी के कहने पर गन्तव्य स्थान तक चला गया और वहा पहुँच कर मर गया तथा कर्मानुसार अन्य योनियों मे गया। ध्यातव्य है कि कवि ने इस सदर्भ मे दो बार यह स्पष्टीकरण दिया है कि वह सुने हुए आधार पर यह कथा कह रहा है[2] ।

४–स्तुति होम की मे अग्नि और हवन का माहात्म्य और भगवद्–स्तुति है।

प्रतीत होता है कि यह हवन के पश्चात पाठ करने के लिए रची गई थी । इसके दो छन्दों की गणना 'धूप' मन्त्रों मे है[3] ।

५–साखियाँ –पहली साखी जाम्भोजी की स्तुति–स्वरूप है जिसमे श्रद्धा–भक्ति पूर्वक मुक्ति की कामना की गई है[4] ।

दूसरी, 'खेजडली की साखी" एक लघु इतिहासिक काव्य-कृति है। इसमे खेजडियो के बदले जोधपुर के पास खेजडली गाव मे अनेक विष्णोई स्त्री–पुरुषो के बलिदान होने का

१–तव कीति स मोर झगोर कर, घन बूठा तूठा दोष हर ।
सुष सारग स्वाति जिसी पपियै, मुखि मीठी वाणी सदा जपियै ।। ४३ ।।
उर अ तर जाए वषाण जिसी, परभू परवाडे पार किसी ।
करता कवि केती सोम करै ता तूठ श्रीकम काज सर ।। ४५ ।।

२–क–करो हरि जाप तरै तेतीस, मिल्यो अवतार विसोवा वीस ।
सुणी सत वात कयू करतार निकम तोरा पार अपार ।
ख–कुळ पूछियो वात कही स कहा, सुरपति मया त माघ लहा ।
सुण सादूनो वाध अथाघ जका, मुप बोल मया कर वोड तका ।। २५ ।।

३–एक छन्द यह है —
आतस इद्री पाच धूप ले ध्यान धरीजै ।
ग्यान अ्रत मन पोहप चित चरणामत लीज ।
परस पुरप समाघ पूजै नित नाव निरजण ।
जथा जुगत परवाण तथा सिवरण मन मजण ।
सनमुप सदा सहाय सत लोल जिम्या लोलग पर ।
दया दरसण घोक धुन प्राणी पावक होम कर ।। २ ।।

४–आस करा अरदासि पारबरम सू दाखियो ।
परि पहलो की पाळि पति वान की राषियो ।
पति वान की राषियो जै कृत जुग री काणि ।
लेपो न लीजै दया कीजै भेप अपणौं जाणि ।
सनमुषि न्हाळो क्वळ पाळो सुणौ साम्य सधीर ।
दास गोकळ आस तेरी सति जाम्भो गुर पीर ।। पति वाने० ।। ५ ।।

आँखों देखा उल्लेख कवि ने किया है। यह घटना जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी के राज्य-काल में घटी थी, जिसकी पूर्णाहुति संवत् १७८७ के भादवा सुदि दशमी, मंगलवार को हुई थी[1]। आदि के दोहों में कवि महाराजा अजमालजी (अजीतसिंहजी) की धर्मरक्षक के रूप में प्रशंसा करता है। उन्होंने तुर्कों के अन्याय को रोका और अजमेर तक अपना अधिकार करके वन-रक्षा की[2] किन्तु राज्य के एक हाकिम भण्डारी गिरधरदास ने (उनकी मृत्यु के बाद) पैसों के लिए खेजड़ली गांव का वन काटने का विचार किया। विष्णोइयों के मना करने पर उसने कहा-यदि यह प्रण रखना है तो पैसे दो। इस पर उन्होंने वृक्षों के बदले अपने सिर देने का संकल्प किया[3]। यह जानकर महाराजा (अभयसिंहजी) ने हाकिम को बुलाया तथा ब्राह्मणों, व्यासों, जोगियों आदि से पूछ कर इस कार्य को अनुचित ठहराया। यह बात भण्डारी को पसन्द नहीं आई। राजाज्ञा तोड़ कर उसने वन कटवाना आरंभ करवा दिया। इसका पता लगते ही अनेक गांवों के सैकड़ों विष्णोई 'साका' करने के लिए तुरन्त एकत्र हो गए। सबसे पहले अणदोजी ने 'तागा किया'। पश्चात् चाचोजी, ऊदोजी, कान्होजी, किसनोजी, देराजजी आदि प्रमुख पुरुषों और दामी, देऊ, चीमां आदि स्त्रियों ने अपने प्राण दिए। इस प्रकार कुल ३६३ स्त्री-पुरुषों ने 'पंथ' के लिए बलिदान होकर अपने 'धर्म' की रक्षा की। अन्त में कवि उन धर्म-वीरों और इस बलिदान की प्रशंसा करता हुआ, ऐसा कार्य न करने की सलाह देता है[4]।

१-सतरा सै सतियासियै, दसवीं मंगलवार।
भादव सुदि साखू पड्या, परतर पंटा धार ॥ १० ॥

२-इंणि कळि मां अजमाल सो कोई राणा हुवो न राव।
तप मेट्या तुरकां तणां, कीया अमर पसाव ॥ २ ॥
वन राख्या वैरी गंज्या, जालिम किया जेर।
पतिसाही ऊपर तज्यो, थिर थांणें अजमेर ॥ ३ ॥
पतिसाही रो पेपणों, पिसणां पूरो साल।
पण पालण पोहमी हुवो, अर गंजण अजमाल ॥ ४ ॥

३-हाकिम मति हरिजी हड़ी, देपि ज कियो दाव।
डाकर करि डंड मांगिस्यां, ईणि विधि करो उपाव ॥ ५ ॥
विरछ कह्यो वन वाढिस्यां, करिस्यां वणी विणास।
पण रापो तो पैसो दियो, दापै गिरधरदास ॥ ६ ॥
भंडारी भ्रमें मतै, विण वादर बेकांम।
सिर सौंपा रोपां सटै, म्हे टुकडो न द्यां दांन ॥ ७ ॥
दाग लगै जो दांम द्यां, पंथ मां पोणौं होय।
पण राख्यां पांणी चड़ै, कलंक न लागै कोय ॥ ८ ॥
चेन्न चाल वर्णी करी, तसकर घात्यो तांण।
साप पड़ी सिर सोंपिस्यां, पहली किसा वपांण ? ॥ ९ ॥
कुंण पोहमी पंण मेटसी, धरम संऊं कुंण धीज।
वन राख्या बिसनोइयां, राठौड़ां री रीझ ॥ ११ ॥

४-कतिपय छन्द इस प्रकार है :—
विरष पड़िया, रिप पड़िया, पंथ की पारिष पड़ी।
तागाळा सों तेग बांधी, हाकिम नै हतिया चड़ी ॥ ८ ॥ (शेषांश आगे देखें)

विश्नोई समाज में वृक्षों पर बलिदान होने का यह सबसे बड़ा 'साका' है। इससे पूर्व और पश्चात् भी अनेक ऐसे अवसरों पर विश्नोई लोगों ने अपने प्राण दिए हैं किन्तु इतनी बड़ी संख्या में 'तागा' करने का यह पहला ही उदाहरण है। यह साखी इस कारण बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित रही है। इसका महत्व इस कारण भी है कि उपर्युक्त घटना का उल्लेख केवल इसी साखी में मिलता है, अन्य समसामयिक रचनाओं में नहीं। इसी के आधार पर साहबरामजी ने इस घटना का अपने ढंग से सविस्तर वर्णन किया है (प्रति संख्या १६३, जम्भसार, प्रकरण २३, पद्य ५५-६८)।

महाराजा अजीतसिंहजी का उल्लेख गोकलजी की काव्य-चातुरी का उत्तम उदाहरण है जो प्रेषणीयता और प्रभावान्विति की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त है। जोधपुर राजघराने की परम्परागत और पैतृक धर्म-सहिष्णुता की पीठिका पर खेजड़ली की इस घटना का ओज भरा वर्णन अत्यन्त उभर कर आश्चर्यजनक रूप से सामने आता है और पाठक की धर्म-बुद्धि को झकझोर कर तत्सम्बन्धी विचार करने को बाध्य कर देता है। इससे महाराजा अभयसिंहजी की धर्म-भावना, भण्डारी गिरधरदास की मनमानी और प्रभाव, धन की आवश्यकता, विश्नोइयों की अपने धर्म और धर्मनियमों पर अटल आस्था सम्बन्धी कतिपय उल्लेख और संकेत ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। *साखी में वर्णित घटना का तो नहीं, किन्तु अन्य कथित या ध्वनित बातों की* पुष्टि इतिहास-ग्रन्थों से भी होती है। ओझाजी के अनुसार, अभयसिंहजी के राज्य-काल में धन का अभाव ही रहा था,[1] प्रस्तुत साखी से भी इसकी पुष्टि होती है। भण्डारी गिरधरदास उस समय का एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। महाराजा अजीतसिंहजी ने संवत् १७७२ में उसको मेड़ता का हाकिम नियुक्त किया था[2]। गुजरात की चौथ के सम्बन्ध में साहू के मन्त्री बाजीराव से बात-

करता करै ज मार, राज करै कुफराणा।
हरिजन पोहला पारि, विधि सू बात बपाणा।
तागाळा सो ताण, काल्हा कदे न कीजै।
अकरा (थं) अहनाण, दुप दे दाण न लीजै।
दाण न लीजै मान दीजै, वरण सतायो रानियै।
सब मदामति सापि पारष, रीत रकम न मानियै।
आपो त मारै वेग सारै, दया पालै देपता।
तीनि सै भेसिठि ऊपरि पथ पूरो पेपता ॥ ११ ॥
ओ तागो संमारि, जुग मा जोर वपाणा।
सति मानै सुरताण, राजा राव वपाणा।
राव वपाणै, सति जाणै, जीव काया रापै जुदो।
परा पोटा खबरि लाभै पेजडली पळक्ट हुवो।
मूळ मरणो अमर नाही, मोमणे कियौ मतो।
पड्या थाड चड्या चवरी, करै अपछर आरतो।
जाति कुळ को त्याति निहचै, पथ पर वाजे मिल्यो।
गु ण गू थि गोकळ कहै सापी, पेजडली पळक्ट सामल्यो ॥ १२ ॥—प्रति १४२ से।

१—जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ६७३, सन् १९४१।
२—वही, पृष्ठ ५६५-५६६।

चीत करने के लिए महाराजा अभयसिंहजी की ओर से यह और भण्डारी रत्नसिंह गए थे[1]। गुजरात में सरबलंदखां के साथ इन महाराजा के हुए सुप्रसिद्ध युद्ध में भण्डारी गिरधरदास भी सम्मिलित था जिसका उल्लेख कविया करणीदान[2] और रतनू वीरभाण[3] ने किया है। गिरधरदास की मृत्यु संवत् १७८९ में हुई थी[4]। महाराजा अजीतसिंह के अजमेर पर अधिकार होने का उल्लेख भी इतिहास-समर्पित है। इस प्रकार, प्रस्तुत साखी एक इतिहासिक कृति है और एतद् विषयक रचनाओं में महत्त्वपूर्ण है।

गोकलजी की सभी रचनाएँ छोटी-छोटी हैं। इनसे उनकी उत्कट भगवद्-भक्ति तथा जाम्भोजी और उनके उपदेशों पर निस्सीम आस्था का पता चलता है। उनका मूल उद्देश्य और मुख्य वर्ण्य-विषय हरि गुण-गान ही है, जिसके साथ एकाध स्थलों पर वे प्रतिबोध कराते और चेतावनी भी देते हैं[5]। इसके अतिरिक्त मुक्ति के लिए उन्होंने सर्वाधिक बल नाम-स्मरण पर दिया है[6]। इन दोनों को कवि ने 'विघन-हरण विध' कहा है[7]।

१-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ६२१, सन् १९४१।

२-दलां खळ भोकि तुरी हुजदार, भंडारिय जूटत जै गज भार।
सकौ सिरपोस गिरधर सूर, पटोधर रुद तणै छक पूर॥ ६२०॥ -आदि।
—सूरजप्रकास, भाग ३, पृष्ठ १७४, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

३-भंडारी गिरधर रतन, विजैराज वर वीर।
यां भळिया वंका अणी, धणी तणी भळ धीर। ३४॥ पृष्ठ ७१६।
अणी धणी जतनै इधकारी, भुजळग हथ आविया भंडारी।
गिरधर रतन दलां विच गाढां, सकजां धुज धतरूप सगाढां॥ २५७॥ पृष्ठ ७५४।
—राजरूपक, नागरी प्र० स०, वाराणसी, संवत १९९८।

४-ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खंड, पृष्ठ ६२७-२९, सन् १९४१।

५-अंन आतम भूप हटै तन की, सिंवर्यां हरि वाहर है जन की॥ ४०॥
जळ पीयां जेम पियास मिटै, प्रणम्यां प्रभु सह पाप कटै।
सुत मित मिल्यां नित प्रीति जिसी, निज नाव जप्यां जगदीस खुसी।
नर न्यांन विना वड चूक पई, रहता सूं राचि गई सु गई॥ ४१॥
—अवतार की विगति।

६-सिंवर विसन सत जांण, गिण्यौ वासग वपाण्यौ।
सिंवर विसन सत जांण, पहल पहळाद पिछाण्यौं।
सिंवर विसन सत जांण, वस्यौ पटजतिया हाली।
सिंवर विसन सत जांण, प्रीत पंडवां सूं पाली।
ध्रू तार्यौ तार्यौ करण, सिंवर दधीच सुधारिया।
तारसी तोह सोई सिंवर, साध अनेक उधारिया॥ ७॥ -स्तुति होम की।

७-सरै काज रहै लाज, तरै हंस होय निरमल।
धरै ध्यांन कर न्यांन, प्रेम प्रगास परमल।
पूरण आस अलेप, दास कहै दरसण चाहूं।
आंब कमोदनि चंद सूं, लगन असी लिव लाहूं।
विघन हरण विध दापवां, मुण्य मुंदर सोभा वरण।
गोकल अकल अलेप भज, सिंवर नाथ असरण सरण॥ ३॥ -स्तुति होम की।

जाम्भोजी साक्षात् हरि हैं, उनकी "वाणी" पाँचवा वेद है,[1] अत उनके द्वारा प्रवर्तित पथ और उपदेश भी उतने ही पवित्र और श्रद्धास्पद हैं। इस प्रकार, इनसे सम्बन्धित वर्णन प्रकारान्तर से हरिगुण-गान के अन्तर्गत ही हैं। उल्लेखनीय है कि "सबदवाणी" को पाँचवा वेद अल्लूजी कविया ने भी कहा है। कही-कही स्थिति और अवस्था-विशेष के अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण मिलते हैं। उदाहरणार्थ ग्वाले के रूप मे खडे हुए जाम्भोजी का उल्लेख देखा जा सकता है[2] । इसी प्रकार, कतिपय उपमाओ का प्रयोग भी बडा आकर्षक है। "खेजडलो की साखी" के अतिरिक्त, प्रभु से आत्मोद्धार और कृपा की प्रार्थना सभी कृतियों मे मिलती है। इस सम्बन्ध मे वह कई प्रकार के तर्क भी देता है। कही वह प्रह्लाद भक्त के साथ की गई प्रतिज्ञा को, कही उनके "भेख" और "बाने" को, कहीं उनके चलाए "पथ" के अनुयायी होने के कारण अपने मुक्ति के अधिकार को तथा कही उनकी शरणागत वत्सलता को याद दिलाता है। "इन्दव छन्द" के अन्त मे दिए गए 'रेखते" मे, दीनता, कातरता और श्रद्धाभक्ति से परिपूर्ण कवि का आत्मनिवेदन अत्यन्त प्रभावशाली और हृदयग्राही रूप मे प्रकट हुआ है[3] । कवि की भाषा सशक्त, वेगवती और भावों की अनुगामिनी सरल मारवाडी है। अठारहवी शताब्दी राजस्थानी के सिद्ध-भक्त कविया मे गोकनजी का प्रमुख स्थान है।

७८ रासानन्द : (सवत् १७००–१८००) :

ये गाव रासीसर के थापन तथा वील्होजी की शिष्य-परम्परा मे दामोजी के शिष्य और मुकनजी के गुरुभाई थे (द्रष्टव्य- परिशिष्ट मे साधु-परम्परा)। दामोजी का समय सवत १६८०-१७६८ है। जिस प्राचीनतम प्रति मे इनके हरजस मिलते हैं, वे सवत् १७९७ तक

१–क–पेह न पोज न छाह न छोति, विराजै जभ निरमळ जोति।
पढै मुप पचवों वेद पुराण, भणकै जोजन झीणी बांण ॥ ११ ॥
–अवतार की विगति।

ख–जगनाथ सुनाथ सुपरसण सिंभु, मया करि मनिषा मिलियो।
गुर पाचूं वेद पढै मुप परगट, सो गुरवांणी सांभळियो ॥ आकार०॥ २४ ॥
–इन्दव छद।

२–जको गढ लका लेवणहार, तको धरि लोहट कै अवतार।
नहीं मन मोह न माया जाळ, रहै वनवास चरावै पाळ ॥ ९ ॥
नही घट काम करोध न अग, इळा पग एक दूजो पग जघ।
नही तन भूप न ताम तिरास, नहीं तन लोही न हाड न मास ॥ १० ।
३–ऊवरू आपरी ओट मोटा धणी, आदि सिर ओपमा छाप थारी।
पाप परळै करो प्रीति पालो तका, करण पैदा तू ही काज सारी।
लाज त्रीलोक मा रापि पूरा धणी, विषम भै जळ लपि वाट भारी।
सर्व सांसो मिटै अब पावा इसो, सदा रापो सरण गदाधारी।
आदि अनादि आदेस ओपै तू ही, जिण पाज पहळाद सगि कोडि तारी।
रह्या बाकी तका वचन पाळो विसन, किसन किरपा करो काज सारी।
दास गोकळ कहै आस पूरो अलप, ऊवरू आदि पुरुष ओट थारी ॥ –इदव छद।

लिपिबद्ध कर लिए गए थे (प्रति संख्या २०१)। इस आधार पर इनका समय संवत् १७०० से १८०० के लगभग प्रमाणित होता है।

इनके राग 'धनाश्री' में गेय निम्नलिखित टेक वाले १० हरजस प्राप्त हुए है :-

(१) संभरथलि गुर हाट पसार्यो ॥ १ ॥ ५ छन्द।
(२) सोवंन नगरी आय विराजे, दरसंन दीठे पातिग भाजे ॥ १ ॥ ६ छन्द।
(३) तेरी अवगति लीला वरणी न जाई, सिध साधां तूं सदा सहाई ॥ १ ॥ ४ छन्द।
(४) अंति काळ कोई नांहीं तेरो, काहे कूं करै मेरो मेरो ॥ १ ॥ ५ छन्द।
(५) अैसो है प्रभु नाम तुम्हारो, जो सिवरै ताको निसतारो ॥ १ ॥ ५ छन्द।
(६) सतगुर सो मंत्र की ज वतावै,
पाखंडी दुंनियां मां वोहतै, कूड़ कहै दुंनियां भरमावै ॥ १ ॥ ४ छन्द।
(७) गूदड़ियो ननगुर हंमारो, जिणि नवखंड प्रथमी कियो पसारो ॥ १ ॥ ५ छन्द।
(८) अैसो संमृथ नांहि न कोई, लख चौरासी सिरजी सोई ॥ १ ॥ ७ छन्द।
(९) ऊंच नीच अंतर नहीं कोई, हरि कूं भजै स हरि का होई।
ऊंच नीच सरण ले आवै, च्यारि पदारथ पावै सोई ॥ ५ छन्द।
(१०) हंम वर दे निराकार पियारे, अपणै जंन का काज सुंवारै ॥ ४ छन्द।

इनमें पहले और सातवें में जाम्भोजी का महिमा- गान है, जिसमें उनके वेश, गुण, कार्य आदि का वर्णन है। दूसरे में भगवान के विभिन्न अवतारों के साथ कल्कि अवतार का विशेष रूप से तथा आठवें में भगवान कृष्ण के भक्त- उद्धारक कार्यों का उल्लेख है। तीसरे और छठे में भगवद्महिमा-गान, पाखण्ड और उनके त्याग तथा 'नीकुछ' होकर सतगुरु पाने का अनुरोध, चौथे में सांसारिक पदार्थों की नश्वरता, नाते- रिश्तों की व्यर्थता और सुकृत तथा नवें में ऐसे कार्य करते हुए हरि शरण- ग्रहण करने का वर्णन है। पांचवें में हरि- नाम स्मरण की ओर दसवें में भगवान की महिमा वर्णित है।

इस प्रकार, समस्त हरजसों में कवि की भगवद्- भक्ति और मोक्ष- प्राप्ति- हेतु प्रयासों का बड़ा तल्लीनता से वर्णन किया गया है। इसके लिए मुख्यतः उसने हरि- नाम- स्मरण, 'नीकुछ' होने और भगवान की शरण ग्रहण करने का अनुरोध किया है। 'नीकुछ' का तात्पर्य है भौतिक पदार्थों या गुणों के संयोग से उत्पन्न किसी भी प्रकार के अहंभाव से सर्वथा विरक्ति। इसका उल्लेख कवि की नवीनता है। नीचे उद्धृत तीसरे हरजस के अतिरिक्त नवें में भी इसका प्रयोग है :-

अैसो होय परंम पद पावै, आवागुवंणि मुचै सुखदाई।
निराकार सूं परदो खुल्है, नीकुछ होय भौ भाजै सोई ॥ ४ ॥

कवि अन्ततोगत्वा निराकार हरि का उपासक है[1]। उल्लेखनीय है कि कवि टेक के

१-(क) सिध साधिक पकंवर मुंनीयर, कर जोड़ें सव आगे ठाढे।
होय हुसियार सतगुरु कूं देषै, निराकार सूं संनमुषि आजै ॥ २ ॥-हरजस २।
(ख) सिर पै टोपी करि जपमाळा, निस दिन जागै नहीं अहागे।
छाया पोज नहीं धर ऊपरि, निराकार आकार तुम्हारो ॥ ३ ॥-हरजस ७।

रूप में मूल भाव रखता है और उसी को आगे हरजस में पल्लवित करता है। इस सम्बन्ध में इनकी तुलना दुरगदास से जा सकती है जो प्रत्येक हरजस के वर्ण्य-विषय का सार उसके अन्त में देते हैं।

रचना के उदाहरण-स्वरूप दो हरजस नीचे उद्धृत किए जाते हैं —

(क) दान करै मन मां बोह फूलै, ज्यौं दुनियां करै बडाई।
पढ़ै गुणै मन मां गरबावै, कर चेहरा उर मान्य सुवाई ॥ २ ॥
तपस्या का अंहूं नहीं छाडै, जटा वधारै खाक लगाई।
ग्रव महा भड सब ता सबळो, तपस्या दान कूं देत डिगाई ॥ ३ ॥
जोकुछ हुवै तदि सतगुर परसै, भौ सागर को सासो जाई।
रासानद हरि दरसंन परसै, सुन्य मंडळ मां जोति समाई ॥ ४ ॥—हरजस ३।

(ख) थाके चलण जुरा जदि, आई, जमराय जदि दीन्हौं डेरो।
पकडै जम माय माय पुकारै, सुत बंधु परवार घणेरो ॥ २ ॥
तंन धन छाडि चल्यो जदि मुदूं, मरतलोक को कूडो मेरो।
राज पाट धंन मिंदर विसरे, भीड़ पडै जदि सोच घणेरो ॥ ३ ॥
सची छाडि गयो घर माहौं, करि कुकरम माया सकेरो।
धरम राय जदि लेखो मागै, पाछौ आर्क पर दिस हेरो ॥ ४ ॥
दान सील जप तप नंहीं कीनूं, नरकि दियो जाहा धुप अंधेरो।
रासानद प्रभु भलो उवार्यो, निराकार अपनूं करि चेरो ॥—हरजस ४।

७९ मुकनजी (मुकनदास) : (लगभग सवत् १७१०-१७९०) :

ये दामोजी के शिष्य और सुप्रसिद्ध सिद्ध कवि परमानन्दजी वणियाळ के गुरु थे[१]। जाम्भोजी और उनकी "वाणी" के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा थी। इनकी रचनाओं के अतिरिक्त इसका पता इसी बात से लगता है कि परमानन्दजी ने सबदवाणी और उसके विभिन्न प्रसगों के लिपिबद्ध करने म वील्होजी और सुरजनजी की पोथिया के बाद इन्ही की पोथी का सहारा लिया था। परमानन्दजी द्वारा लिपिबद्ध सबदवाणी की पुष्पिका (—प्रति सख्या २०१) के एक दोहे (सख्या ३) और काल "एनी सबद श्री वायक सपुरणों समत १७९६" से यह ध्वनित होता है कि इस सवत् तक मुकनजी दिवगत हो चुके थे (द्रष्टव्य—परमानन्दजी वणियाळ, कवि सख्या ८८)।

यह काल सवत् १७९० के लगभग माना जा सकता है। इनके गुरु दामोजी (कवि सख्या ७४) का देहान्त सवत् १७६८ मे हुआ था। इस समय इनको आयु ५५-६० वर्ष की मानने से जन्मकाल सवत् १७१० के आसपास ठहरता है।

१—द्रष्टव्य—परिशिष्ट मे 'साधु-परम्परा' तथा प्रति २०१ मे सबदवाणी की पुष्पिका। प्रतीत होता है कि सवत् १७९६ के आसपास परमानन्दजी रासानन्दजी के 'खोळे' जाकर उनके शिष्य हो गए थे।

रचनाएँ :—(१) फुटकर छन्द–३४ (रोमकंद–२६, कवित्त ४, दोहे ४,–प्रति २०१, फोलियो ११४)।

(२) हरजस–१ (टेक समेत ७ पद,–प्रति २२७, फोलियो १९७)।

वर्ण्य–विषय की दृष्टि से ३४ छन्दों को दो भागों में बांटा जा सकता है :—

(क) आदि के १६ छन्द जिसके क्रमशः रोमकंद और कवित्त छन्दों के २ कुलक (४+१ तथा १०+१) बनते हैं। प्रत्येक कुलक के "रोमकंद" में क्रमशः इन पंक्तियों की टेक लगती है :—

(अ) परणांम विसंन को परमेसर, देव (वैं)कुंठां वास दीयो।

(आ) केवल अवतार संभ जप कांयंम, सबदे हरिजंण साचवियो।

प्रथम कुलक में जाम्भोजी को विष्णु मान कर उनकी स्तुति की गई है और दूसरे में उनके रूप, गुण और विभिन्न कार्यो (सिकन्दर लोदी, राव दूदा, रावल जैतसी आदि से सम्बन्धित) का श्रद्धा–पूर्वक वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ प्रथम कुलक का तीसरा छंद और दूसरे का कवित्त द्रष्टव्य है[1]।

(ख) शेष १८ छन्दों (दोहा–४, रोमकंद १२, कवित्त २) में दसावतार वर्णन करके भगवान की महिमा गाई है, जैसा कि इन दोहों से स्पष्ट है :—

जग सोभा जगदीस री, कीरति सुंणिय ज कांन्य।
मति सारू महमां करूं, गोम्यद हूं ज विग्यांन ॥ १ ॥
अवतार दसुं हरि दापऊं, राज्य सरूपी राजि।
हिरणाक हिरंणकस मारिया, गरव उतारेइ गांज्य ॥ ३ ॥

इनमें कल्कि का किंचित् विस्तार से वर्णन है[2]। उल्लेखनीय है कि कवि ने संक्षेप में

१–किरपाळ दयाल नीहाल करै, प्रतिपाळ गुवाळ सदा पंणमैं।
किळकार चिघार अपार कियौ, सुणं साद तही आए छिन मैं।
करि तंतंण फंधंण दूरि किया, गज मीन उवारि उवारि वियो। परणांम विसंन।
सवदे हरिजंण साचवंण, दांन तप सील दिढावंण।
जीव दया जत सत, भगत वैकुंठ वसांवंण।
कोड्यां तारंण किसंन, आप आयो इभणासी।
अवगंण मेटि अनंत, भंभ काटी जंम पासी।
धुरा पंथ चाल्यौ धरंम, अनंत संत कीया अमर।
कर जोड़ि कवत मुकनू कहै, हूं सरणाई नांव हरि।

२–श्रीपति रीसांणां सभे बांणां, घंण नीसांणां घरहरियो।
नौबति वोह वजे सूरा सभै, इंद गरजे ओवड़ियो।
हीवर वोह हळवळ मुंडि सळवळ, पदमां पुंवगां कोई पार नहीं।
अवतार असा दस आप तंणा, जुध जीपंण जांणि विसंन सही ॥ टेक ॥ ९ ॥
अब के अवतार सभे अपरंपर, साखित पुवंगां सार हुयो।
पड़ग तिघारो पग करारो, पोहंणि दांणव पुटवियो।
दंणीयर उवारंण काळंग मारंण, देतां दारंण आप दई ॥ अवतार असा ॥ १० ॥

बडे सुन्दर ढग से कुलक-विशेष के अंतिम कवित्त मे उससे पूर्व के समस्त कथन का सार-संग्रह किया है। प्रभाव और प्रेषणीयता की दृष्टि से यह शैली विशेष उपादेय मानी जा सकती है।

(२) हरजस[1] राग 'आसा' मे गेय है, जिसमे मोक्ष हेतु किए जाने वाले प्रयासो का उल्लेख है। इससे कवि की विचार-प्रौढता और अनुभव का पता चलता है। जाम्भोजी को 'सम्रुरूप'[2] 'कैवल्य अवतार' और उनके लिए 'सातिक' (सात्विक) रूपी,[3] विशेषण के प्रयोग अत्यन्त साभिप्राय हैं। कल्कि और वैकुण्ठ के ऐसे सुन्दर चित्रण कम ही कवियों ने किए हैं। वैकुण्ठ-वर्णन सम्बन्धित निम्नलिखित कवित्त[4] कवि के आत्म-विश्वास तथा भाव-समाधि का प्रस्फुटन प्रतीत होता है। कवि की भाषा बोलचाल की राजस्थानी है और एकाध स्थलों को छोड कर छन्दो मे 'वयण-सगाई' का पालन किया गया है।

८०. सेवादास : (अनुमानत सवत् १७२०-१७८०) :

ये माढिया गाव (नोखा, बीकानेर) के गोदारा जाति के गृहस्थ थे जो बाद मे साधु हो गए थे। वील्होजी की शिष्य-परम्परा म हुए दामोजी (स्वर्गवास सवत् १७६८) के शिष्य गोयदजी अपर नाम गिरधरदास इनके गुरु थे, जिनका उल्लेख इन्होने 'पिसण-सिंघार' में

१-अवधू अैसा जोग कमावो, फिरि आवागु वण्य न आवो ॥ १ ॥ टेक ॥
एक सबदी भिछ्या मागे, पाच ग्रास रुचि लेई।
रभा देपै पभा जैही, साबति रापै देही ॥ २ ॥
पाचू मारि पकडि पहि आणें, मनसा डिगण न पावै।
सासा सोग करै नही चि(त) मां, आणद मां गुण गावै ॥ ३ ॥
काया कसबे सहरि हिरदै, माया मोह न होई।
सबद विचारि निरतरि बसै सुषमा रहै सजोई ॥ ४ ॥
कोई प्रीति करै इधकेरी, कोई देत है गारी।
दोन्यो ठोड सरीषी देषा, तो तन तिसना जारी ॥ ५ ॥
हिरदै नांव जपै निसवासरि, जुग मारग सोह मेल्हे।
तीन्य गुणा ता रहै नियारा, चौथे पद मा पेलै ॥ ६ ॥
मो जोगी नभै भो नाही, जोग जुहर सू चीता।
मुकनदास आस सतगुरु की, ले हरि नाव नचीता ॥ ७ ॥

२-जोगी जत धारे आप मुरारे सम्रु रूप ज भ्रम थियो।

३-तत जाणि तिरगुण राजस तामस, भजि सातिक रूपी भ्रम भणो।

४-दीय वकुठे वास, आस पूजै अमरापुरि।
रतन जोति झिलमिलै, सुप दीसै सवहि सुरि।
हवद सरोवरि न्हाए, हाणि एकणि उणिहारा।
हस दिसा हरि कथ, जीह जगदीस उचारा।
सचदण दीसै सदा, निसवासरि जित कै नही।
विसन जप्यैं मुकन्द कहै, सद्रव सुप लाधा सही।

किया है[1]। गुरु के लिए 'गाजी' विशेषण इस कृति के वर्ण्य-विषय, रस तथा शैली के अनुरूप और अनुकूल ही है। प्रसिद्ध है कि इसके रचने की प्रेरणा कवि ने सुरजनजी की दो कृतियों-'ग्यांन महातम' और 'ग्यांन तिलक' से पाई थी। इनका भ्रमण बड़ा व्यापक था। लगभग ६० साल की आयु में संवत् १७८० के आसपास ये स्वर्गवासी हुए। इनके जीवन-काल की किंचित् पुष्टि अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की एक हस्तलिखित प्रति के लिपिकाल से भी होती है[2]।

इनकी निम्नलिखित तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं :—

(१) इन्दव छन्द (२० छन्द,-प्रति २०४)।

(२) चोजुगी (३० छन्द, चौपई 'छन्द' तथा दोहे, -प्रति ३८७)।

(३) पिसण सिंघार (पिशुन संहार) (१०२ दोहे,-प्रति २१०, २११, ३९१)।

(१) इन्दव छन्द में जाम्भोजी के जीवन से सम्बन्धित ये उल्लेख हैं :—

लोहटजी को गाएँ चराते समय भगवान का साधु-वेश में मिलना, बछड़ी का दूध पीना, हांसा को पुत्रोत्पत्ति का वर, नवें महीने बाद गायों के बाड़े में बालक-रोदन, हांसा का उसको उठाना, जाम्भोजी की बाल-लीलाएँ, पांच-सात वर्ष के होने पर भी न बोलने के कारण एक सयाने पंडित को बुलाना, दीपकों का न जलना, पीपासर में कूएँ पर राव दूदा का आगमन, उनका जाम्भोजी की आज्ञा से पशुओं का पानी पीना देखना, उनको 'परचा', खांडा और मेड़ता का राज्य देना, दूदोजी का जम्भेश्वर नाम[3] रखना, जाम्भोजी का संभराथळ आना, दिल्ली में सिकन्दर लोदी से हासिम-कासिम को छुड़ाना, संवत् १५४२ के कार्तिक वदि में कलश-स्थापन आदि। जाम्भोजी भक्तों की पुकार[4] और प्रह्लाद से वचन-

---

१-सतगुर मेरे सिरि तपै, गाजी गिरधरदास।
जाकै बलि जंग जीपिया, किया पिसण सब नास॥ १०१॥

२-प्रति संख्या १२६, जिसमें "पिसण सिंघार" भी लिपिबद्ध है। यह प्रति संवत् १७९७ से १८११ के बीच देशनोक में राजरूप मूंधड़ा द्वारा लिखी गई थी। इससे इस काल के बीच रचना के प्रसिद्ध हो जाने का प्रमाण तथा संवत् १७९७ से काफी पूर्व-सं० १७५० के आसपास रचित होने का अनुमान होता है।

३-पीपासर वास कूवै जळ ऊपरां, आंन दूदेजी की फोज परी है।
लाव लसकर पीवण लागे, आय लोहट की गायां परी है।
कूवै निकास कियो फेर पांणी, और की गायां आन अरी है।
गवाळ बिना सब गउवां उभी है, जद दूदेजी नै सुध परी है॥ १॥
गवां उछेर चले उनकै ढिग, मोहन आपकी गउवां चरे है।
दूदोजी आप तुरंग चढ़े जब चाबका मार कर घोरो परे है।
जोर कियो सारे वैयी भागै नहीं, रुंमाल लपेट कै पांय परे है।
पांडो वगस जद मेड़तो दीनो, दूदो जंभेसर नांव धरे है॥ १२॥

४-दुसासन चीर पांच्यां, द्रोपदा पुकार कीनी,
द्वारका सूं दौर आए चीर ले वधार्‌यो है।
कब कहै सेवादास, याही विध मोह भई।
अलप पुरस कहै, सब काज सार सूं॥ १९॥

बद्ध होने के कारण अवतरित हुए थे। इसमें तीन उल्लेख नवीन हैं —

१–जाम्भोजी का गायों के वाड़े में मिलना।

२–राव दूदा द्वारा उनका नाम जम्भेश्वर रखना तथा

३–हुजूरी साधुओं की संख्या और वेश।[1]

इस सम्बन्ध में इतना लिखना ही पर्याप्त है कि सेवादासजी ने तत्कालीन लोक-प्रचलित किंवदंतियों को भी इसमें समाविष्ट कर लिया है। (विशेष द्रष्टव्य–जाम्भोजी का जीवन–वृत्त)।

(२) चौजुगी का दूसरा नाम **'विवाह पाटी'** भी है। विश्नोई समाज में विवाह के अवसर पर चौजुगी या 'पाटी' बोलना एक आवश्यक कार्य है। प्रस्तुत रचना इस कारण आज भी व्यापक रूप से प्रचलित है, यों अन्य 'चौजुगियाँ' भी बोली जाती हैं। 'चौजुगी' के अन्तर्गत चारों युगों में सम्बन्धित चार विवाहों (*शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण रुक्मिणी* तथा कल्कि-लक्ष्मी) का वर्णन रहता है। प्रस्तुत रचना में भी ऐसा ही है। रचना के अन्तिम दोहे में प्रयुक्त 'जोत' शब्द[2] हवन के अतिरिक्त जाम्भोजी का द्योतक भी है क्योंकि ज्योति में ही जाम्भोजी का दर्शन माना जाता है।

(३) **पिसण सिंघार** —यह एक वीर रसात्मक रूपक कथा काव्य है। इसके सभी पात्र मन की अच्छी और बुरी वृत्तियों के प्रतीक हैं, जो काया (मोहनगर) के भीतर युद्ध करते हैं। ये विशिष्ट मनोदशाओं के सजीव रूप हैं। इनमें चरित्र–विकास न होकर स्थिरता है, जो आवश्यक भी है। पहले दोहे में कवि ने 'सबद' से सबदवाणी को संकेतित करते हुए 'दीवान' प्रतीक के द्वारा उसकी महत्ता का सटीक और सारगर्भित परिचय दिया है[3]। संक्षेप में कथा इस प्रकार है —

कायागढ़ (मोहनगर) का राजा मोह है जो अपने अनेक कुटुम्बियों सहित वहां राज्य करता है। भ्रम और अज्ञान उसके मंत्री हैं। इसको जीतने के लिए नाम नृपति ने अपने दीवान 'सबद' और सेना समेत कायागढ़ पर चढ़ाई की। यह जानकर मोह ने अपने सब भाई बन्धुओं को चिट्ठी देकर बुलाया। मोह के चाचा मान ने भरी कचहरी में सबको मृत्यु–पर्यन्त डटे रहने को कहा। सबने ऐसा ही संकल्प किया, केसर, अफीम को गलाकर पीया और केसरिया बाना धारण किया। तभी नाम की सेना आ पहुंची। दोनों में घनघोर युद्ध होने लगा। प्रत्येक योद्धा अपनी बराबरी वाले से भिड़ गया। अन्त में नाम के वीरों ने एक एक करके मोह और उसके समस्त सैनिकों को मार डाला। उनके पीछे उनकी पत्नियाँ सती हुई। इस

१–पाच सैं रो लाल पोस पाच सैं सफेद पोस,
काळी पोस पाच सैं हजूरी साध जाणियैं।
सबद की धुन सुन आवत अनेक लोग,
च्यार भुजा धारी आए जिनकू बखानियैं॥ १७॥

२–आद पुरख जोत की महमा, सेवादास कहै साच।
अ क विधाता लिख दिया, पढ बोलो पुन बाच॥ ३०॥

३–ड नमुन नेजा फरहरैं, अनहद घुरैं निसान।
सहितो भोम्या ऊपरैं, चढियौ सबद दिवान॥ १॥

प्रकार कायागढ़ में मोह राजा समूल नष्ट कर दिया गया और नाम का 'अमल' जमा। कहने की आवश्यकता नहीं कि नाम और मोह दोनों पक्षों के सभी पात्र क्रमशः अच्छी, बुरी मनोवृत्तियों के प्रतीक हैं जिनकी नामावली यह है :—

(क) नाम के सैनिकों के सामने उनके द्वारा मारे गए मोह के सैनिकों के नाम हैं।

(ख) मोह के सैनिकों के सामने उनके पीछे हुई सतियों के नाम हैं।

नाम की सेना	मोह की सेना	सतियां
नाम–राजा		
सबद–दीवान		
१–वैराग्य	१–मोह राजा	१–चिन्ता, २–मिथ्या, ३–वासना
२–संतोष	२–क्रोध (मोह का भाई)	१–कलह, २–कुबुद्धि, ३–कल्पना
३–शील	३–मदन (,, ,,)	१–मनी
४–विज्ञान	४–मान (,, ,,)	१–मान, २–अमान
	५–अज्ञान (,, मंत्री) तथा ६–गर्व और ७–गुमान	
५–प्रेम	८–काम (मोह का भाई)	
६–ज्ञान	९–भ्रम (,, मंत्री)	
	१०–अभिमान (मोह का चाचा)	
७–विवेक	११–संशय, १२–शोक, १३–अंदोह (मोह के बेटे) १४–वाद, १५–विवाद, १६–वकवास (अज्ञान के बेटे)	
८–विचार	१७–अहंकार (मान का पट्टायत)	१–अहं (अहम्)
९–त्याग	१८–लालच	१–तृष्णा
	१९–लोभ	१–लुब्धि
१०–साच	२०–कूड़, २१–कपट (मोह की सेना के मांझी)	
११–सब्र	२२–गुस्सा, २३–गुमर (–मोह की सेना के विरुद्ध खूब लड़े)	
१२–२० जत, सत, निश्चय, रहनी, निज, हित, जिज्ञासा, प्यार, विश्वास।		

२१-२५ वक्त, भाग्य, भाव, परमार्थ, धर्म (-मोह की सेना के विरुद्ध युद्ध मे सम्मिलित थे किन्तु लडने का उल्लेख नही है)।

इससे स्पष्ट है कि कवि ने व्यापक परिपार्श्व मे मनोवृत्तियो का उल्लेख किया है। यह मरुदेशीय वातावरण से ओतप्रोत वीर रस की उत्कृष्ट प्रतीकात्मक कृति है जिसमे सेना और युद्ध का वर्णन प्रधान है। इसमे सेना का जमाव, योद्धाओं की उत्साह-भरी ललकार और मर-मिटने का दृढ सकल्प, रणवाद्य-ध्वनि, घोडों की हीस, अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार, चीख-चिल्लाहट, युद्ध और मृत्यु, जोगिनियों का जुडना तथा स्त्रियो के सती होने का बडा ओज और प्रवाहपूर्ण नाद-सौन्दर्ययुक्त जीवन्त वर्णन कवि ने किया है[1]। उल्लेखनीय है कि इसमे युद्ध के किसी एक पहलू का वर्णन न होकर उसका समग्रता मे वर्णन है जिसके साथ आदर्श युद्धवीर के कतिपय कार्यों और गुणो का उद्घाटन भी किया गया है जैसे-स्वामिभक्ति, अवसर के समय तत्काल सहायता, कार्यसिद्धि हेतु हर्षोल्लास पूर्वक मृत्यु का वरण आदि। कवि की कुछ उपमाओ मे तो मरुदेशीय लोक-जीवन के किसी न किसी रूप की बडी सुन्दर झलक दिखाई देती है।

इसमे राजस्थान की सर्व प्रशसित वीरता-परम्परा के माध्यम से प्रतीक पद्धति के

१-कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

आप आपरा साथिया, भला भला भाषत।
साम्हा छाती सुभड नर, सेला रम चापत ।। ५७ ।।
जडै पडै ऊठै लडै, भिडै करै कर हल।
जाण उपाडै आखड्या, कुमती पेलण मल ।। ५८ ।।
सु णि सु णि सिधू श्रवणा, चडै सावतां छोह।
बापर वीपरिया पछै, वदि वदि वाहै लोह ।। ५९ ।।
सहाइ सहाइ करि सावला, पिसण हन ताकत।
घ्याय घ्याय धुकला थका, वाहि वाहि भाषत ।। ६० ।।
गुर्ज धमकै अरि उरां, वाज रह्या रिण वीच।
जाणक कामण मूमळा ऊपळ पोटै पीच ।। ६१ ।।
सार झलकै मेर मैं, हुय रहिया उजवाळ।
जाणि चमकी वीजळी, मंमतै वरसाळ ।। ६२ ।।
गुर्ज बहै गोळा बहै, बहै अकारा बाण।
अणभै बाणी सारदा, ऊभी करै वपाण ।। ६३ ।।
पेचर भूचर पिळपिळे, नारद निरति कराहि।
तीनू जोगणि अगटि, आण मिली जुध माहि ।। ६४ ।।
जाणि कपोतो झडफियो, सरपटियै सीचाण।
वडा वडा भड पाडिया, गरब गुमान अग्यान ।। ७२ ।।
मोह राव कै ऊपरै कोप्यो टूट्यो भड वैराग।
जाणि कडक्यो केहरी, गरजि नवयो वाघ ।। ७४ ।।
मोह राव कै ऊपरै, पडै सावठो सार।
ज्यू महकीसुत ऊपरै, दे दमरावै मार ।। ७७ ।। आदि ।।

द्वारा दुष्प्रवृत्तियों पर विजय और मुक्ति पाने की प्रेरणा दी गई है[1] । राजस्थानी साहित्य की वीररसात्मक और सिद्ध, दोनों काव्य-धाराओं का बोलचाल की भाषा में बड़ा सुन्दर समन्वय इस छोटी सी कृति में मिलता है। यह रचना अत्यन्त ही प्रसिद्ध हुई। अनेक हस्तलिखित प्रतियों की उपलब्धि इसका प्रमाण है[2] । प्रतीकात्मक रचनाओं की परम्परा में इसका महत्त्व सदा अक्षुण्ण रहेगा और इस नाते कवि का भी ।

८१. चतरदास : (अनुमानतः विक्रम संवत् १७००-१८००) :

चतरदास दामोजी के गुरु-भाई केसोजी कालीपोस के शिष्य मेघोजी के शिष्य थे[3] । अनुमानतः इनका समय अठारहवीं शताब्दी है ।

इनका सात छन्दों का एक भजन प्राप्त हुआ है[4], जिसमें राजा गोपीचन्द के 'जोग' और उसकी रानी की वेदना का वर्णन किया गया है[5] । चतरदास नाम के एक दादूपंथी कवि भी हुए हैं[6] जो इनसे भिन्न हैं ।

१–जहां काळ तणो सारो नहीं, फिरी रांम की आंण ।
सेवादास जंग जीपिया, परस्या पद निरवांण ।। १०२ ।।
२–१–विद्याभूषण ग्रंथ-संग्रह सूची, क्रमांक ६, ७३१ ।
२–मेनारियाः महाराना कैटालोग, उदयपुर, प्रति ५४६ ।
३–हस्त० ग्रंथों की खोज, तृतीय भाग, उदयपुर, प्रति २५, २६, ४६, ७५ ।
४–हस्त० हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ५९३, काशी, २०२१ ।
५–अनूप संस्कृत लाइब्रेरी कैटालोग, क्रमांक ५५, १२६ ।
३–प्रति संख्या १६० तथा २२४, देखें–'साधु-परम्परा' ।
४–प्रति संख्या २७६, २७७ ।
५–जोगी आया नगर भला नहीं, राजा म्हारो कियो रे उदास ।
भूपति भरमायो देस बंगालै को, छाड्या भोग विलास ।। टेक ।।
आज उदासी रे म्हारा नगर में, सब कोई लागै पाई ।
वचन सुनत वैरी लगैं, राजा वन बैठो जाई ।। १ ।।
तिरणां बराबरि ना गिणीं, हस्ती घोड़ा वीर ।
छत्र सिंघासन छाडि करि, आप्पन भया फकीर ।। २ ।।
राणीं करै विसूरणां, सबद कहत है टेरि ।
थाकी नाव समंद में, है कोई ल्यावै फेरि ।। ३ ।।
नगर दुहाई चांवती, जो जांणै इम थाइ ।
जोगियां राजा बस कियो, किसी विधि लिया न जाइ ।। ४ ।।
आवो मिलो सहेलियां, सब मिली बूझां बात ।
राजा कै गळ गूदड़ी, क्यूं तुंम घाली नाथ ।। ५ ।।
तन मन त्याग्या पाक ज्यौं, सब सुष कनक अवास ।
चरण जलंधरी परसि करि, गोपीचन्द भये उदास ।। ६ ।।
सबद सुनत भूपति चल्यौ, ऊभी मेलि बंगाल ।
चतरदास अबला कहै, कवन हमारा हवाल ।। ७ ।।–प्रति २७६ ।
६–स्वामी मंगलदासजी : दादू सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय, पृष्ठ ८०, जयपुर ।

८२. कवि - अज्ञात : (विक्रम १८ वीं शताब्दी) :

प्रति संख्या २७६ और २७७ मे काळू और चतरदास की रचनाओं के बीच भरथरी और गोपीचन्द सम्बन्धी दो अज्ञात कवियों के 'हरजस' भी लिपिबद्ध हैं जो सम्भवतः बिश्नोई कवियों की रचनाएँ हैं। इनका परिचय क्रमशः आगे दिया जाता है।

साध सुखी हो राजा भरथरी महा दुखी संसार।
पर उपगारी हरि के साधवा, भव दुख मेटणहार[1] ॥ टेक ॥

इसमें राजा भरथरी के जोग लेने का कारण और इस विषय मे राजा-राणी का संक्षिप्त संवाद वर्णित है।

उल्लेखनीय है कि काळू (कवि संख्या ६८) कृत साखी मे राणी राजा से उसके विवाह से पूर्व जोगी न होकर पश्चात् होने के पाप का उल्लेख करती है, जबकि इसमें वह राम सीता का उदाहरण देकर स्वयं उसके साथ चलना चाहती है। राजा इसका समुचित उत्तर भी देता है[2]।

८३. कवि - अज्ञात : (विक्रम १८ वीं शताब्दी) : हरजस (-प्रति २७६, ४०७)।

आज नगर मे एक जोगी देख्यौ वीरा गोपीचन्द को उणहार रे लो ॥ टेक ॥

राग 'धनाश्री' मे गेय २२ पंक्तियों का यह 'हरजस' राजा गोपीचन्द से सम्बन्धित है। इसमें राजा और उसकी बहन का भाव-भीना संवाद तथा धौलागढ की दुखावस्था का संक्षिप्त चित्रण है। बहन जोगी को अपने भाई की आकृति का देख कर उसका परिचय और जोग लेने का कारण पूछती है जिसका उत्तर वह देता है। इस पर विश्वास न कर वह बंगाल मे धौलागढ से खबर मंगवा कर इसकी पुष्टि करती है। कवि ने इस प्रसंग मे वहां की दशा-वर्णन करने का भी उपयुक्त अवसर निकाल लिया है। समग्र रचना अत्यन्त हृदयग्राही और बोलचाल की भाषा मे रचित नाटकीय गुणों से युक्त है। भाई के प्रति बहन का प्रेम अध्यन्त रूप से रचना मे सर्वत्र व्याप्त है। राजस्थानी वातावरण की झलक भी इसमें दिखाई

१-प्रति संख्या ७८ में इसके आरम्भिक २ छन्द अंकित हैं।

२-कौण दुखा हो राजा थे नीसर्‌या, धन धन भर्‌या भण्डार।
हस्ती घोडा है घणां, लक्ष्मी अनत अपार ॥ १ ॥
राणी होती राजा थाह रै, पिगला मुखडै लाल तमोल।
चंदन करती लेपनूं, केसर करती घोल ॥ २ ॥
रामचन्द्र बन को चल्या, सीता लीन्ही लार।
तुम बन मैं हम रणवास मैं, कूंन सहै सिर मार ॥ ३ ॥
रामचन्द्र त्यागी नहीं, हम लियौ वैराग।
जो तुम कूं संग ले चलै, पडै जोग मे दाग ॥ ४ ॥
कर डोवी गळ गूदडी, धर्‌यौ भिखारी भेष।
नाथ निरंजण कारणैं, गुरु गोरख दिया उपदेस ॥ ५ ॥ २।'-प्रति २७६।

देती है। धौलागढ़ से खबर 'सांढ-सवार' ही लाता है। प्रस्तुत रचना हरिराम(कवि संख्या ६२) कृत एतद् विषयक साखी से तुलनीय है। कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होने के कारण पूरा हरजस नीचे उद्धृत किया जाता है :—

इसड़ा तो जोगी नै जाण न दीजै आंगण मंढी बंधाये रे लो ॥ १ ॥
सोनां तो रूपा की जोगी नीवी देराऊं, मोतीड़ां खोळ भराऊं रे लो ॥ २ ॥
सोनां तो रूपा बाई घर रा छाड्या, हीरा अनंत अपारा रे लो ॥ ३ ॥
हस्ती तो घोड़ा म्हारै अणगिण होता, समझ र माया त्यागी रे लो ॥ ४ ॥
कुंण दुखां रे जोगी तै कांन फड़ाया, किण दुख मुंदरा पहरी रे लो ॥ ५ ॥
किण दुख रे जोगी तै देसड़लो त्यागो, किण दुख त्यागी नारी रे लो ॥ ६ ॥
गुरु का तो सबदां बाई कांन फड़ाया, द्रण्ण मुंदरा पहरी रे लो ॥ ७ ॥
माता का सबदां बाई देसड़लो त्याग्यो, अमर हवंण नै नारी रे लो ॥ ८ ॥
कुंण रे जोगी थांरै पिता भणीजै, कुंण भणीजै माता रे लो ॥ ९ ॥
कौंण नगर को राज करंतो, कुंण बहन रा भाई रे लो ॥ १० ॥
राजा बहलोचन पिता भणीजे, और मैणावती माई रे लो ॥ ११ ॥
देस बंगाला रो राज करंतो, तुम बहन हम भाई रे लो ॥ १२ ॥
काटूं रे वाढूं जोगी जीभ तुमारी, वीरो जोगी क्यूं होसी रे लो ॥ १३ ॥
माता मैणावती रै पुत्र अकेलो, और न बंधु भाई रे लो ॥ १४ ॥
उठो हे दासी राव बुलावो, पल होत मेरी काया रे लो ॥ १५ ॥
देस बंगाला खबरि मंगावो, एक जोगी देख्यो दाहा रे लो ॥ १६ ॥
देस बंगालै सांढ्यो जाय पहूंतो, धौळागढ विलखांणो रे लो ॥ १७ ॥
नर नारी सब फिरैं उदासा, माता कै मन चाहो रे लो ॥ १८ ॥
ऊभी ऊभी राण्यां करै बिनूरणां, हथलेवा क्यूं जोड्या रे लो ॥ १९ ॥
हूं जांणूं नै जोगी वीर हमारो, आंगण मंढी बंधाऊं रे लो ॥ २० ॥
भाव भक्ति सौं भोजन देती, नित्य उठि दरसन करती रे लो ॥ २१ ॥
जळंध्री प्रसादे राजा गोपीचन्द बोलै, हम तुम यह बिछोहा रे लो ॥ २२ ॥ ३ ॥

८४. सुदामा : बारहखड़ी[1] (अनुमानतः विक्रम संवत् १७००–१८००) :

यह ३६ चौपइयों की रचना है जिसमें क से लेकर ह तथा ळ और क्ष, कुल ३५ वर्णों पर अध्यात्म विषयक क्रमिक छन्दों की रचना की गई है। विष्णोई साधुओं में ये बीकानेर राज्य के किसी स्थान के विष्णोई कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। कवि का विष्णोई

१–प्रति संख्या ६१ तथा २३२ (घ)। उदाहरण प्रथम प्रति से।
बारापड़ी आनंद गुन गाऊं, सब संतन को सीस नवाबूं।
दीन परतीत है दास सुदामा, नमस्कार गुरु देव समाना ॥ ३६ ॥

होना एक छन्द मे भी ध्वनित है[1] । इसमे मानव को जन्म, मृत्यु के बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले उपायो[2] का सक्षेप मे उल्लेख किया गया है, जिसका सर्वश्रेष्ठ उपाय नाम-स्मरण है ।

८५. कवि–अज्ञात : (रचनाकाल–अनुमानत सवत् १७५०)

भजन– 'आछो लागंजी–' (–प्रति सख्या ३४७) ।

५ पक्तियो के इस अपूर्ण भजन म जाम्भोजी का श्रद्धा–भक्ति पूर्वक उल्लेख किया गया है :–

आछो लागंजी महाराज दरसण जाभंजी को ॥ टेक ॥
जोजन धुन सुन सबदन की सुनियै, घट परमल की वास ॥ १ ॥
चोउं दिस सनमुख पीठ न दीसै, कोट भाण प्रकास ॥ २ ॥
चालत खोज खेह नहीं खटको, न दीसै तन छाय ॥ ३ ॥
तिसना भूख नींद नहीं आवै, काम किरोध घट नाय ॥ ४ ॥
भगवीं टोपी भगवौ चोळो भलो सुरगो भेप ॥ ५ ॥

८६ हीरानन्द : (अनुमानत विक्रम सवत् १७५०–१८००)

इनकी १२ छन्दो की राग 'मलार' में गेय एक रचना 'हिंडोलणो'[3] प्राप्त हुई है जो सम्प्रदाय म अत्यन्त प्रसिद्ध है । प्रसिद्धि का प्रमुख कारण यह है कि इसमे ८६ हजूरी और परवर्ती निष्ठावान विश्णोई स्त्री पुरुषों की नामावली है जिनमे बहुत से कवि भी थे । ये सब जाम्भाणी 'झूले मे झूलने वाले' थे । यही इसके महत्त्व का सबसे बडा कारण है । परिशिष्ट मे प्रस्तुत रचना द्रष्टव्य है ।

'हिंडोलणो' मे जितने व्यक्तियो के नाम हैं, उनम काल क्रम की दृष्टि से सुजोजी (सुरजनजी) सबसे परवर्ती है । सुरजनजी का देहान्त सवत् १७४८ मे हुआ था । इसकी

१–डडा डामाडोल चित जनि करो, हृदय ध्यान हरि को धरो ।
आन देव काहे को ध्यावो, दृढ विश्वास विष्णु गुन गावो ॥ १३ ॥
नना नेह हरि सो लावो, प्रेम मगन रसना गुन गावो ।
दुविधा धर्म तजो मन भ्राता, सत जन को कीजै साथा ॥ २० ॥

२–चचा चित निश्चै करि राखो, मिथ्या वाद झूठ मति भाखो ।
सत्य सबद को होत प्रमाना, झूठ बचन सो पाप समाना ॥ ६ ॥
छछा छल बल तजो विकारा, निरमल नाम जपो इकसारा ।
काम क्रोध को तजो प्रसगा, सदा होत सतन के सगा ॥ ७ ॥
ररा रटन हरि सो लावो, हीरा जन्म जनि वाद गमावो ।
एसो हीरा जो गम जाई, अवसर चूकि फेर पछताई ॥ २७ ॥

३–प्रति सख्या ४८, ६६, ६७, ७६, १४८, १५३, १७७, १६१, २६६, ३२०, ३२८ ।

उपलब्ध प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों—संख्या ४८, ६६ का लिपिकाल संवत् १८२५ के आस-पास है। इस प्रकार हीरानन्द का समय अनुमानतः अठारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध है। ये बीकानेर रियासत के विष्णोई साधु थे। साहबरामजी ने एक हुजूरी साधु हीरानन्द[1] की कथा दी है जिनकी धर्म-नियमों पर दृढ़ता देखकर जाम्भोजी ने अज्ञात रूप से होम के लिए समाप्त हो जाने पर भी घृत में कमी नहीं आने दी थी। किन्तु वे इनसे भिन्न व्यक्ति हैं।

८७. हरजी वणियाल : (अनुमानतः विक्रम संवत् १७४५-१८३५) :

हरजी जांगलू के वणियाळ जाति के गृहस्थ यापन थे जो बाद में रासीसर में रहने लगे थे। प्रति संख्या ६६ (ख) की पुष्पिका से पता चलता है कि ये दामोजी के शिष्य थे। प्रसिद्ध है कि २२-२३ साल की आयु में ये दामोजी के शिष्य हुए। आयु में ये परमानन्दजी वणियाळ से कुछ बड़े और लगभग ९० साल की आयु में स्वर्गवासी हुए थे। दामोजी (कवि संख्या ७४) का समय संवत् १६८० से १७६८ (देखें– 'दामोजी') तथा परमानन्दजी (कवि संख्या ८८) का संवत् १७५० से १८४५ तक है। इस प्रकार, इनका जन्म समय संवत् १७४५ के आस-पास होना चाहिए। इनके द्वारा लिपिबद्ध पाँच हस्तलिखित प्रतियों[2] की पुष्पिकाओं से भी इस सम्बन्ध में किंचित् जानकारी मिलती है। इनमें प्रथम चारों प्रतियों का लिपिकाल संवत् १८२० से १८३२ तक है। यह उनके जीवन की ऊपरी सीमा मानी जा सकती है। पाँचवीं प्रति को इन्होंने और परमानन्दजी ने संवत् १८१७ से १८३३ के बीच लिपिबद्ध किया था। इसकी 'कथा वहसोवंनो' (प्रति १५२ (ज) को इन्होंने संवत् १८२६ में लिखा था। इन आधारों पर, संवत् १८३५ के लगभग इनका स्वर्गवास होना अनुमित है।

रचनाएँ : इनकी निम्नलिखित १२ साखियाँ और ४ फुटकर छन्द उपलब्ध हुए हैं[3] :—

(१) लोहट तणो ज लाज, पत राखी पूरै धंणी। ५ छन्द।
(२) सही विसोवा वीस, साचो गुर संभरायळे। ५ छन्द।
(३) देव तणी परमोघ मैं कसवै समों न कोय। १५ दोहे।
(४) महिपत मछ अवतार, संखासुर संतापियो। ४ छन्द।
(५) राजा बळ कै दुवार जांचण आयो नरहरी। ५ छन्द।
(६) रे मन गहला सारां पहला, कूद र फांग मचावै। ४ छन्द।
(७) रे मन मूरख नहचा तूं रख, भगवंत तणा भरोसा। ५ छन्द।
(८) रे मन धरमी भजि सरमा सरमी, सरम धरम दोय भेळा। ५ छन्द।

१–हीरानन्दजी साध हजूरी। जंभगरू की कृपा पूरी।
उनही कूं अगणै कछू भई। तातै मेरी मत हर लई। आदि।
–प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ४२-४३।

२–प्रति संख्या–६६, ६८, ७७, ८१ तथा १५२।

३–प्रति संख्या–१४१, १६१, २१९, २३७, २३८, ३२३, ३५१।

(९) रे मन लोभी लालच कोभी, पार न कोई भाई । ५ छन्द ।
(१०) साधो मन को बुरो सुभाव, इस कै मतं न चालियं । ५ छन्द ।
(११) साधो मन सो बुरो न कोय, सिव सकर सतापियो । ५ छन्द ।
(१२) फिटि रे फिटि नर फिटो । ५ छन्द ।

पहली तीन साखियाँ (क) जाम्भोजी से, चौथी-पाँचवा (ख) दसावतार[1] से छठी से ग्यारहवी (ग) मन और उसके कार्यों से तथा बारहवी (घ) इन सबके सम्मिलित रूप और चेतावनी से सम्बन्धित है। जाम्भोजी से सबधित साखियों म अनेक प्रकार से उनके गुण, महिमा, कार्यों आदि का भक्ति भाव भरा वर्णन किया गया है। पुत्राकांक्षी लोहट और हामा की दशा तथा भगवान से हुए उनके सवाद का तो बडा ही प्रभावशाली वर्णन कवि ने किया है, जिसके उदाहरण स्वरूप पहली साखी का प्रथम छन्द द्रष्टव्य है[2]। इनसे कवि की जाम्भोजी पर दृढ आस्था तो प्रकट होती ही है, उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के अनुयायियो के प्रमुख कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए भी वह गौरव का अनुभव करता प्रतीत होता है[3]।

मन से सम्बन्धित छहों साखियाँ अपने ढग की निराली रचनाएँ हैं। इनम कवि ने विविध प्रकार से मन के स्वरूप, स्वभाव, चचलता, प्रबलता, कार्य और उसके अनुसार चलने

१-नृसिंह और परशुराम स सम्बन्धित दो छन्द इस प्रकार हैं —
(क) धारयो नरसिंग रूप, पत राखी पहळाद की।
छूट गई कर धूप, अवाज सुणी सिंघ साघ की।
अवाज सुणी सिंघ साघ की, नै छूट गई तरवार।
दाणू भाग्यो डरबा लाग्यो, कर पकड्यो करतार।
कीयो पावै आपणो, खाड खिणता कूप।
हरजी सता कारण, धारयो नरसिंग रूप ॥ ४ ॥
(ख) महसा अरजन आय, कामधन हड ले गयो।
जमदगन, रेणका माय, दोना नै दुख दे गयो।
दोना नै दुख दे गयो, मै पुतर हेत पुकार।
कीवी माता रेणका, कान पडी भणकार।
उठ्यो पुरस तज ध्यान नै लीना धनुष उठाय।
एक बाण स मारियो, सहसा अरजन आय ॥ २ ॥-प्रति १६१।
२-गऊ चरावण काज, गोवळ चाल्यो मैं सुणी।
गोवळ चाल्यो मैं सुणी न धणी पहूतो धाय।
भगव बानै विसनजी, दरसण दीयो आय।
लोहट करै ज वीनती सुणो अरज महाराज।
पुतर वगसो पीरजी लोहट नणी ज लाज ॥ पत राखी ॥ १ ॥
३-विसनोया धम जोय रीप पर भजै काया।
विसनोया धम जोय, म्रिग नयू मारै माया?
विसनोया धम जोय, सब दुनिया सू न्यारा।
विसनोया धम जोय, सिनान पणि करै सवारा।
विसन भजन छाडै नही, सावधान अति होय।
जन हरजी संसार मैं, विसनोयां धम जोय ॥ ४ ॥-प्रति २३७ से।

पर व्यक्ति की दुर्गति, अधोगति, अपयश और विनाश आदि का सोदाहरण, युक्तियुक्त, प्रभावशाली और चित्ताकर्षक वर्णन किया है। इनके लिए वह मन को फटकारता, धिक्कारता और उसकी भर्त्सना करता हुआ चेतावनी तथा संदेश देता है कि मन को जीतना ही मनुष्य की सबसे बड़ी जीत है। बहुत ही तर्क संगत रीति से इनका निदर्शन कराते हुए कवि ने व्यक्ति की वृत्तियों को भगवदोन्मुख करने का सुन्दर प्रयास किया है। उसने मन की चंचलता और कुकरनी का अनेक प्रकार से वर्णन करते हुए व्यक्ति को उससे सावधान रहने को कहा[1] है। फिर, जिसके लिए और जिस कारण मन चंचल है, संसार की वे सभी वस्तुएँ नश्वर और असार हैं तथा मृत्यु महा प्रबल और अवश्यंभावी है। सार तो केवल हरि नाम है। यह मन की भूल ही है कि वह तत्त्व त्याग कर इतर बातों और धन्धों में पड़ता है[2]। वह प्रबल और चंचल है, उसके अनुसार चलने से हानि ही होती है। सामान्य व्यक्ति की तो

१-बुरो कहै सब कोई तोकूं, तोहि सरम न आवै।
सरम न आवै सिर में खावै, अमक वाली हूं ला।
इसा ओळंमा नित उठ पावै, कह्यो मांनि मन गहला॥ १॥
रे मन मैला सुधा गैला, छोडि पछै पछितावै।
भव सागर में भूला भूंदू, डगरै पड़ग्या डावै।
डावै डगरै ऊंचै मगरै, नसकर सिर में दैला।
घड़ी घड़ी समझायो तो कूं, सरम नहीं मन मैला॥ २॥-साखी ६

२-रे मन मूरख नहचा तू रख, भगवंत तणा भरोसा।
कीट पतंग सकळ कूं पोखै, दई न दीजे दोसा।
दोस न दीजै हरि सिंवरीजै, चित अत नटणी ज्यूं रख।
वार वार समझायो तो कूं, बिसन सींवरि मन मूरख॥ १॥
रे मन कायर भजि हरि सायर, छीलरिया कांय सोधै?
देवी देवां धोकै मूरखा, भोपा भांड परमोधै।
परमोधै भोपा मति हीणां पोपा, बैठो मूंड मुंडाय र।
परपंच करि करि जग स भुलाणां, वात गुणी मन कायर॥ २॥
रे मन वूसर क्यूं बैठो रूस र, साहिब सेती सांन्यां।
माया देखि भयो मतिवाळो, या बातां मन मान्यां।
धन जोबन अंजरी को पांणी, कर सूं जासी नीसर।
मनखा देही वळे न पावै, हरि गिवरो मन वूसर॥ ३॥
रे मन मंगता कूं रातो जग ता, जग में कोई न रहसी।
राजा राव अर रंक सुरतांणां, एकंण मारग बहसी।
मारग वहदीया लदसी, रोगी रहसी रगता।
भजन कियां भव सागर तरसी, वात मुंणी मंन मंगता॥ ४॥
रे मन भंवरा तोहि ताकत जंवरा, ताको जतन जु कीजै।
कांटे वाळी केतकी है, थाको रस नहीं पीजै।
रस नहीं पीजै, कांनो लीजै, मत लै लाहा लंवरा।
जन हरजी जे हरि कूं सिंवरै, तो उबरै मंन भंवरा॥ ५॥-साखी ७।

बात ही क्या है, शृंगी ऋषि, रावण, इन्द्र, ब्रह्मा[1] तथा शंकर[2] जैसे भी इसके फेर में पड़कर पथ-भ्रष्ट और लोक में लज्जित हुए तथा कई तो विनष्ट ही हो गए। शरीर में जीव तो साक्षी स्वरूप है, वह मन के इरादे और करतूत नहीं जानता[3]। यही नहीं मन की कल्पना, कामना, तृष्णा और सांसारिक धन्धों का कोई अन्त नहीं, उसकी ऐसी सब विचारणा थोथी और निस्सार होती है[4]। फल-प्राप्ति करनी के अनुसार होने से यदि मन के विचार उत्तम हो, तो कार्य भी उत्तम होता है और फल भी वैसा ही मिलता है (साखी ८)। मन अनेक विषयों पर दौड़ता है, किन्तु पाखंड और कुमार्ग त्याग कर सुमार्ग ग्रहण करना ही सर्वश्रेष्ठ है[5]।

१–संतो मन की कहा परलीम, ब्रह्मदेव सूं ना टल्यो।
नियो जगत गुर जीत, रूप मोहणी करि छल्यो।
रूप मोहणी करि छल्यो, नै सही बिसोवा वीस।
सागी पुतरी सुरमती, होय दियो दुरसीस।
सुर नर मुनि जन देवता, सकल हुवा भै भीत।
जन हरजी या मन की, कहो कहा परतीत ॥ ५ ॥–साखी १०, प्रति २३७।

२–माधो मन सो बुरो न कोय, सिव संकर सउ'पियो।
पारवती पति पोय ध्यानाटारभ थापियो।
ध्यानाटारभ थापियो, नै महाबली मन राय।
नाचण लागो डोकरो, कर सूं ताळी लाय।
थुगी धुन थुगी धुन उचरै, लागि रही धुनि सोय।
ईस्वर देव नचाड़ियो, मन सो बुरो न कोय ॥ १ ॥
–साखी ११, प्रति ३२३।

३–मन का मता अनेक, क्या जाणै जीव बापडो।
महा ममत मन एक, सब सिर थापै थापडो।
सब सिर थापै थापडो, नै बापडो ससार।
सुर नर मुनि जन देवता, सबको करै सिघार।
महा ममत माने नहीं, गही न छाडे टेक।
जन हरजी ऐसे कहो, मन का मता अनेक ॥ ५ ॥–साखी ११, प्रति ३२३

४–रे मन पापी तू आपो थापी, थपि थपि करै अपूठी।
हर थापै सो साची मनवा, तू थापै सो झूठी।
झूठी झूठी बात न कीजै, जप ले जाप अजापी।
भजन बिना भव भव भटकाणा, बात सुणी मन पापी ॥ २ ॥
रे मन डाकी क्यूं ही हरि भज बाकी, चित मे राषि गिंवारा।
धधा सेती कदे न धायो, जळम गमायो सारा।
जळम गमायो मरि मरि आयो, तोहिय न त्रिसना थाकी।
साहिब मिलरि हुं ते ज्यूं सोहरो, रसि चाली मन डाकी ॥ ३ ॥–साखी ८।

५–रे मन स्याली सावळ चाली, कावळ पाव न दीजै।
बार बार समझायो तोकूं, हरि भज लाहा लीजै।
परपच पाषड करि क्यूं भूलो, मत चलि चाल कुचाली।
पत कुं पूठि जगत सूं राता, भलो नहीं मन स्याली ॥ २ ॥
रे मन भोळा लेह चभोळा, भवसागर के माहीं।
कूंड मे पडियो रहियो सडियो, कद ही निकसै नाहीं।

(शेषांश आगे देखें)

फुटकर छन्दों (प्रति संख्या २३७) में प्रभु–महिमा–कृपा, शरणागत–वत्सलता[1], भजन–भाव करने और मानव–देह की दुर्लभता[2] आदि का वर्णन किया गया है।

हरजी की भावानुभूति और विचारधारा का समष्टि रूप से सुष्ठु समाहार एक साखी (संख्या १२) में मिलता है। इसमें बोलचाल की प्रवाहमयी भाषा में संसार की नश्वरता, असारता, व्यवहार, भ्रम, पाखण्ड और मृत्यु की प्रबलता आदि का उल्लेख करते हुए कवि समय रहते हरिनाम स्मरण और सुकृत करने की, झकझोर कर जगाने वाली चेतावनी देता है। इसके मूल में मानव–कल्याण और आत्मोत्थान की भावना है जो विविध प्रकार से प्रकट हुई है। इसमें आक्रोश, प्रतिबोध, तथ्य–कथन आदि का सन्निवेश भी द्रष्टव्य है :—

फिटि रे फिटि नर फिटी फीटो फिरै, धूळ सूं जाय करि प्रीत जोड़ै।
पति कुं छाडि कर प्रीत औरां करै, जांण तो जढ नर सीस फोड़ै।
आपणो बाप तजि बाप औरां कहै, ब्रणसंकर हू फिरै सारे।
दास हरजी कहै, भ्रम फंसे रहै, धूड़ि मुंहि धूड़ि मुंहि धूड़ि थारै ॥ १ ॥
आव रे आव नर ओट हरि आप की, आंन की ओट सूं चोट खावै।
भूत अर प्रेत तजि भजि साचो धंणी, जंभ गुर याद कर मुकति पावै।
साच अर सील संतोष हिरदै धरो, कूड़ अर कपट सूं कांम कांई ?
दास हरजी कहै लाज तब ही रहै, याद करि याद करि याद सांई ॥ २ ॥

कूंडो ऊंडो दोजग भूंडो, जम किंकर है दोळा।
गळ में पासी भाजि न जासी, अै भुगत मंन भोळा ॥ ४ ॥
रे मन कोझा सिर पर बोझा, तूं क्यूं भार उठावै।
निंद्या करै भरै जम को डंड, नित उठ चुगली पावै।
पावै चुगली मुप सूं उगली क्यूं, कर रह तस बोझा।
फिटो पड्यो जगत में सारै, जन हरजी मन कोझा ॥ ५ ॥—साखी ६।

१–छिपा हूं की छांन छाई, धनां की खेती निपाई,
सेन धरि भये नाई संतन को चेरो है।
जल्हा के बाळध आई, विस जार्‌यो मीरांबाई,
सुदामा सूं धराई, सदा रह्यो नेरो है।
भीलणी के झूठे बेर, लेत नहीं लागी वेर,
विदर सूं भयो भेर, सत मत तेरो है।
करमां को खीच पायो, लुखो नाहा अळसायो,
हरजी कहत देखो असो प्रभु मेरो है ॥ २६ ॥

२–मनख जळम पाय, भज्यो किन रुघराय,
बार बार कहों नर देह नह पाय है।
तेरे तो कुपेच पर्‌यो, रात दिन पचि मर्‌यो,
मन में विचारि देख प्रिया देह जाय है।
समझ विचार करि, पचि पचि मत मरि,
तेरे भाग लिख्यो सु तो कहो कहां जाय है ?
अब तूं निचंत होय, मत मरि रोय रोय,
हरजी कहत तोहि, तोही तेरी दाय है ॥ २८ ॥

जागि रे जागि नर जागि विरियां पई, नींद सूं नेह क्यूं करै भाई ?
रात अर दिन मैं आणि जम घेरिसी, मात अर तात सूं सरै न काई।
जीव जोखै पई सास हिचकी अडै, सैन ही सैन समझाय हार्यौ।
दास हरजी कहै जीव वासै रहै, धीग सूं थको कुत कांय मार्यौ ? ॥ ३ ॥
चेत रे चेत नर चेत तो सू कही, वार वार ही समझाय थाका॥
तैं नहीं एक घरी चित भीतर, कहत सुनत मांहि पिंजर पाका।
जत अर सत को पाज मेटै मती, सिध अर साध सब साख गावै।
दास हरजी कहै दिढ फंसं रहै, जाण तो जड नर जहर खावै॥ ४ ॥
जाहि रे जाहि नर जाहि जग जोवंता, राव अर रक उठि राह लागा।
ऊ च अर नीच को आंतरो नाहीं, एक ही पथ सब जाहि भागा।
जम की झपट सूं कपट रहता नहीं, लपट ह्वै जीव डर वाट लागा।
दास हरजी कहै, आज दीयौ लहै, लछि वांसै रही जाहि नागा॥ ५ ॥

हरजी मूलत हरिभक्त कवि हैं। उन्होने कई प्रकार से हरि का यश और महिमा-गान किया है। आत्म-दर्शन और लोक-मगल हेतु सुपथ से भ्रष्ट करने वाले मन के स्वरूप और कार्यों का वैविध्यपूर्ण चित्रण करके मानव को प्रबुद्ध और चेतन करने की चेष्टा की है। ऐसा करने मे उनके अनेक भाव वाणीबद्ध हुए हैं। उन्होने अपनी बात को बडी दृढता, प्रोज और आत्मविश्वास के साथ कहा है। उसमे कही भी अनास्था और कम्पन का स्वर नही है। स्वानुभूति की सच्चाई के कारण उसका प्रभाव गहरा है। कवि की सभी साखियाँ अपने विषय की श्रेष्ठ कृतियां हैं। मन से सम्बन्धित ६ और चेतावनी परक अंतिम १-मात्र साखियां तो राजस्थानी साहित्य की एतद्विषयक काव्य-परम्परा की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। 'कायागढ', उसके राजा मन और उसके भीतर होने वाले मोह-विवेक आदि के द्वन्द्व सम्बन्धी प्रतीकात्मक राजस्थानी रचनाओ मे आंशिक रूप से उल्लिखित छहो साखियो की भी गणना की जा सकती है।

कवि की भाषा बहुत सरल, प्रवाहपूर्ण तथा बोलचाल की मारवाडी है। फुटकर छन्दो मे पिंगल का प्रयोग भी है। विक्रम सत्रहवी शताब्दी के अन्तिम और अठारहवी के प्रथम चरण के प्रमुख राजस्थानी कवियो मे हरजी की गिनती है।

८८. परमानदजी वणियाल : (विक्रम सवत् १७५०-१८४५).

जीवनवृत्त · परमानदजी जागळू के वणियाळ जाति के थापन साधु थे। इनके पिता का नाम सुरताणजी था। वणियाळ थापन जागळू के हजूरी भक्त वरसिंह के पुत्र सेणोजी की सन्तान हैं। जांगळू गांव और वर्तमान साथरी के बीच वरसिंह का खुदवाया हुआ तालाब आज भी मौजूद है, जो "वरींग आळी नाडी" (वरसिंह वाली नाडी) कहलाता है। ये थापन सुरताणजी के समय जागळू से रामीसर में आ गए थे। परमानन्दजी ने सुप्रसिद्ध 'पोथो'-'ग्रंथ ग्यान' (प्रति सख्या २०१) यही लिखा था। महलाणा के विष्णोई भाटों के अनुसार, परमा-

नन्दजी अणखीसर के थे जो गलत है, क्योंकि एक तो वहां सांवक और मूंड दो जातियों के विष्णोइयों के अतिरिक्त वणियाळ थापन कभी रहे ही नहीं; दूसरे, उपर्युक्त "नाडी" का होना वणियाळ थापनों को जांगळू निवासी ही सिद्ध करता है।

'पोथे ग्रंथ ग्यांन' के रूप में, अनेक ज्ञात और अज्ञात कवियों की रचनाओं और तत्सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को लिपिबद्ध करके परमानन्दजी ने राजस्थानी साहित्य की, विशेषतः विष्णोई-सम्प्रदाय की सबसे बड़ी सेवा की है। अनेक महान् कवियों की वाणियों की उपलब्धि का एकमात्र प्रामाणिक साधन यही 'पोथा' है। यह परमानन्दजी का घर और निजी संग्रह का ग्रंथ था। उन्होंने अत्यन्त परिश्रम से अपने समय तक की प्रायः सभी सम्प्रदाय-सम्बन्धी ज्ञात रचनाओं को अनेक स्रोतों से एकत्र कर उनको इसमें श्रद्धापूर्वक स्थान दिया था[1]। इस सम्बन्ध में इसमें लिपिबद्ध "सबदवाणी" की पुष्पिका-रूप, उनके दोहे द्रष्टव्य हैं—

> वड पोथी गिण वील्ह की, दूजी सुरेजनदास।
> तीजै मुकन्द मुझ गुरु, सुरतांण पिता मुझ आस ॥ २ ॥
> दसुंधी दासो खीराजजी रासोजी सुरतांण ।
> अै पांचूं परस्यां वांच कै, पोत्यो लिख्यो प्रवांण ॥ ३ ॥
> कै दात सुणी साधां कनां, कै पोथियां मां परवांणि ।
> परमांणंद सुरतांण रै, लिखिया सबद सुजांणि ॥ ४ ॥

१—"पोथे" के अब तक सुरक्षित रह जाने का इतिहास भी बड़ा मनोरंजक है, जो महन्त श्री रामनारायणजी के अनुसार इस प्रकार है :—परमानन्दजी के स्वर्गवास के पश्चात् यह उनके परिवार वालों के पास रहा। संवत् १८६९ में अकाल पड़ने पर ये लोग रासीसर से राजस्थान के बाहर पंजाब और मालवा में जीविकोपार्जन हेतु चले गए। जाते समय यह ग्रन्थ गांव रुणिया (बीकानेर) के एक ब्राह्मण के यहां ८० रुपयों में रेहन रख गए। रुणिया में चीमों नामक एक ब्राह्मण का ननिहाल था। वह नोखा का रहने वाला था। उसने वहां से यह ग्रन्थ अपने लिए ले लिया। उसकी वृत्ति मलूंडे गांव के जाखड़ों के यहां थी। एक बार उसने यह ग्रन्थ वहां पढ़ कर सुनाया। उस समय पीताम्बरजी के शिष्य महन्त खेमदासजी जाखड़ भी वहां उपस्थित थे। खेमदासजी उसी घराने के थे और छोटी अवस्था में ही साधु हो गए थे। उन्होंने इसको सुन कर कहा—यह तो हमारे विष्णोई सम्प्रदाय का ग्रन्थ है और ८० रुपये देकर ले लिया। वे लालासर साथरी के महन्त थे। इस प्रकार यह ग्रन्थ इस साथरी की सम्पत्ति बना। खेमदासजी का स्वर्गवास लगभग ८५ साल की आयु में संवत् १९५१ के आसपास हुआ। भोयांसर साथरी में उनकी समाधि है। उनके शिष्य जगरामदासजी जाखड़ साधु थे जिनका देहान्त सं० १९७५ के चैत वदि ४–५ को ६५ साल की अवस्था में हुआ। जगरामदासजी के शिष्य रमणीकदासजी से यह ग्रन्थ लालासर साथरी के वर्तमान महन्त रामनारायणजी को मिला।

रामनारायणजी बांभू (जन्म संवत् १९५१, आषाढ़) मालास (पीलास, मेड़ता सिटी) के हैं। संवत् १९६५ में इन्होंने लालासर साथरी में 'भेख' लिया था। तब से संवत् १९९१ तक तो वहीं रहे, पश्चात् संवत् १९९८ तक वहां तथा रामड़ावास दोनों स्थानों में आते-जाते रहे, किन्तु इस सम्वत् से स्थायी रूप से रामड़ावास में रहने लगे हैं।

दोठा याच्या मैं लिख्या, सासतर मां था सोय।
ग्याता कोई वांचि कं, दोस न देइयो मोय ॥ ५ ॥
मैं तो माड्या मोह कर, पुसतक देखि विचारि।
सबदा अरथ अनत है, जाणै सिरजणहारि ॥ ६ ॥
कचा सब ससार है, सचा सबद ततसार।
परमाणद सूं परम गुर, राखो हेत पियार ॥ ७ ॥

सवत १७६६ से १८१०, १४ वर्षों तक वे इसे लिपिबद्ध करते रहे थे। पोथे के अन्त मे दी गई पुष्पिका से उनके इस महान् प्रयास का पता चलता है —

'लीपतु परमाणद सत जात्य वणहाळ थापन सुरताणजी रा सुत रासजी रा चेला देमजी रा पोता सोप मारवाड नव कोटी रा थापना अतीता गगा पार रा अतीता रा जुना पुसतक देख्य महला री पोथी देखि ओह ग्रंथ ग्यांन लीख्यो छ समत १७९८ पोथो कीयो समत १८१० चत सुदे १ पोथो सपुरण लीख्यो छ वार बुधवारि वधनारथो कान्हा गाव रासीसर सुभ सुथाने रामजी री थापना।" यहा 'पोथे" का आरम्भ काल सवत १७६६ की अपेक्षा सवत १७९८ भूल से ही लिखा गया है, क्योंकि इसी में लिपिबद्ध 'सबदवाणी' की पुष्पिका है — 'एनि सबद श्री वायक सपरणो समत १७९६"।

परमानन्दजी दो गुरुओं के शिष्य रहे थे। आरम्भ मे वे मुकनोजी के शिष्य थे, किंतु सवत १७९६ के लगभग रामोजी के 'खोळे (गोद)जाकर उनके शिष्य बने। 'पोथे' मे लिखित सबदवाणी की पुष्पिका के समय सवत १७९६ म मुकनोजी उनके गुरु थे, जैसा कि ऊपर उद्धृत दोहे म वर्णित है, किन्तु इसकी उतिलिपित समाप्ति-पुष्पिका सवत १८१० मे, वे अपने को रासोजी का चेला बताते हैं। ऐसा कभी गुरु-विशेष के आग्रह पर अथवा गुरु-परम्परा-विशेष को लुप्त होने से बचाने के लिए या उसकी समृद्धि-हेतु, और कभी शिष्य की इच्छा से होता था। केवल यही नहीं, कभी-कभी कारणवश, स्वर्गवासी गुरु के 'खोळे" भी शिष्य जाते थे। सुप्रसिद्ध सिद्ध कवि साहबरामजी राहड आरम्भ म गोविन्दरामजी के शिष्य थे, किन्तु पश्चात स्वर्गवासी महन्त गुनाबदासजी के 'खोळे" जा कर उनके शिष्य बने थे (द्रष्टव्य-राहड, कवि सख्या ११४)।

परमानन्दजी के जीवन-काल का पता कई हस्तलिखित प्रतियो से लगता है। प्रति २०७ की विभिन्न पुष्पिकाओ से पता चलता है कि छबूजी के शिष्य इलाजी ने परमानन्दजी की पोथी से वील्होजी कृत कथा "औतार पात" लिखी थी, तथा सवत १७८९ के पौष वदि १०, बृहस्पतिवार को परमानन्दजी ने उनको मेहोजी रचित "रामायण" लिखाई थी। सवत १७९१ मे स्वय परमानन्दजी ने अनेक रचनाएँ लिपिबद्ध की थी (प्रति सख्या २०७, "क, ञ तथा ढ")। "पोथे' (प्रति सख्या २०१) का लिपिकाल सवत १७९६ से १८१० है। प्रति सख्या १५२ को परमानन्दजी और हरजी वणियाळ, दोनो ने सवत् १८१७ से १८३३ के बीच लिखा था। प्रति सख्या २२७ को उन्होंने सवत् १८३८ मे लिखा था। इस प्रकार, ५० वर्षों के दीर्घ समय तक उनके द्वारा निरन्तर अनेक रचनाओं के लिपिबद्ध किए जाने का

प्रमाण मिलता है ।

उपर्युक्त तथ्यों से पता चलता है कि संवत् १७८९ से पूर्व भी वे कई रचनाएँ लिपिबद्ध कर चुके थे । यदि इस समय उनकी आयु कम से कम ३९/४० साल की मानें तो उनका जन्म संवत् १७५० के आसपास ठहरता है। उनका स्वर्गवास कब हुआ, इसका निश्चित पता नहीं लगता, किन्तु अनुमानतः १८४५ के आसपास, लगभग ९५ वर्ष की आयु में हुआ ।

बचपन से ही इनकी प्रवृत्ति अध्यात्म की ओर थी और होश सम्भालने पर इन्होंने 'भेख' ले लिया । 'भेख' लेने के बाद भी ये विरक्त होकर अपने कुटुम्बियों के पास ही अधिकतर रहे । ये आत्मज्ञानी, सिद्ध पुरुष और अपने समय के 'अणभै वाणी' के प्रसिद्ध कवि माने जाते थे । इनका जीवन सम्प्रदाय-प्रेम, अध्यात्म-अनुराग, निष्ठा, साहित्य-साधना और लगन का अनुपम उदाहरण है । इनके द्वारा लिपिबद्ध पोथियाँ साहित्य की अमूल्य थाती हैं और 'पोथा' तो सम्प्रदाय का मेरुदण्ड ही है । राजस्थानी साहित्य के अनेक धूलि-धूसरित, जाज्वल्यमान, बहुमूल्य रत्नों को सुरक्षित रखने का श्रेय इन्हीं को है ।

रचनाएँ :—यह बड़े सौभाग्य की बात है कि परमानन्दजी की प्राप्त रचनाएँ उन्हीं के द्वारा लिपिबद्ध मिलती हैं, अतः प्रामाणिकता की दृष्टि से उनका स्थान सर्वोपरि है। इनकी निम्नलिखित रचनाएं उपलब्ध हुई हैं :

(१) प्रसंग-१०४, छन्द ८६६ (दोहे ८३६, कवित्त ३०)(-प्रति संख्या २२७) । विविध विषयों पर लिखे गये प्रासंगिक दोहे । कवि ने दोहे को ही साखी कहा है । उसने पुष्पिका में १०२ प्रसंगों का उल्लेख किया है—'एती एक सो दोय प्रसंग सपुरण संमापीत', किन्तु बीच में संख्या-भूल से कुल प्रसंग १०६ होते हैं। इनमें 'अथ विसंन असतोत्र' (संख्या १०३) तो एक स्वतंत्र रचना है और 'सोहलो' (संख्या १०६) की गणना हरजसों में स्वयं कवि ने की है; अतः कुल 'प्रसंग' १०४ ही होते हैं ।

(२) हरजस-४१ (प्रति संख्या २०१, २२७) ।

(३) साखियाँ-५ (प्रति संख्या २०१, २२७) ।

(४) विसंन असतोत्र-२२ छन्द (प्रति संख्या २२७) ।

(५) फुटकर छन्द-कवित्त (छप्पय) २ तथा दोहे १२ (प्रति संख्या २०१, २२७) ।

(६) गद्य में 'साका' (प्रति संख्या २०१) ।

(७) छमछरी (संवत्सरी) (प्रति संख्या ४०४) ।

इनमें कुछ रचनाओं के रचनाकाल के विषय में प्रतियों में दी गई पुष्पिकाओं तथा रचना-विशेष में उल्लिखित घटना-काल से पता लगता है, शेष के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । दोहों को स्वयं कवि ने विषयानुसार विभाजित कर प्रसंगों के रूप में लिखा है । नीचे इसी रूप में 'प्रसंगों' तथा अन्य रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है :—

(१) प्रसंग—(प्रसंग-नाम के पश्चात् कोष्ठक में दोहा-संख्या दी गई है) :—

१-नमस्कार (१२) २-गुर महमां महातंम (८)

३-गुर हरजन अधकार (५) ४-गुर गम प्रापति (१)

७५–उपजैण को (३) ७६–कसतुरीयै म्रघ को (२)
७७–नंद्या को (५) ७८–निगुणा को (१)
७९–वीनती को (२) ८०–करता सो भोगता (२)
८१–पारेख विण–(१ कवित्त + १७) ८२–होतेव को (१०)
८३–जती (५ कवित्त + ८) ८४–सती को (२ कवित्त + ७)
८५–ग्रहचारी को (६) ८६–दया नीरंतरि को (८)
८७–नीरदई को (९) ८८–नंद्या उपदेस (१८)
८९–मत्र (मित्र–२ कवित्त + ३) ९०–नीगुण को (९)
९१–सुगण को (९) ९२–भै को (१०)
९३–वीनती को (१८) ९४–वेल दीष्टान्त (५)
९५–अग्यांन को (१६) ९६–ग्यांन दगधी को (३६)
९७–ग्यांन की भोम्यका (२) ९८–दुबध्यां को (९)
९९–दुबध्या विधांस को (४) १००–ह्रित करणी (१ कवित्त + ३४)
१०१–छत्र (६ कवित्त + २) १०२–गिणती विमतार (३७)
१०३–उंमरि को (१५) १०४–कवित्त धड़ाबंध नवेड़ का (१३ कवित्त + ७)

(२) हरजस :—

१–ओउं एक विसंन की मायो, इरसैं सूं दोय लगाया। राग आसा, दोहे ६।
२–एक भरंम वस्य कीया तायै सभ ही घुर लिया। राग आसा, दोहे ५।
३–आया साध संगाती रे, धन्य धन्य यो दिन राती रे। राग गुंडे, पंक्ति ८।
४–सइयां सिरजणहार जुग मंडण जोगी हो। काफी, दोहे ८।
५–सगुणा मोरा सांम्य कहा दुखं दीजै हो। काफी, दोहे ५।
६–कहा वताऊं वार वार विसंन नांव सब तैं सार। वसंत, पंक्ति ५।
७–विसंन नांव तत सार है, कहत पुकारी हो। काफी, दोहे ५।
८–करतव करल्यो भाई, सुकरत सांम्य सहाई संतो। धनांसी, पंक्ति १४।
९–संतो भुंडू जग भरमायो। धनांसी, पंक्ति १६।
१०–मंन वस्य राखो रे, मन का अंनेत विकार, हरिरस चाखो रे। गवडी, दोहे १६।
११–विसंन समान्य न नांहि और खोजि देखो ठोर ठोर। वसत, पंक्ति १२।
१२–और आंन भ्रम तजो उपाय, प्रेम प्रीति करि विसंन ध्याय। वसंत, पंक्ति ६।
१३–कंवळास के वासी सिव संकर हो। काफी, दोहे ६।
१४–विसंन सेव विसंन सेव विसंन भज्य भाई,
विसंन सेवा मंन्यसा फळ पाई। भैरू, छन्द ८।
१५–इस विध्य आरती विसंनजी की कीजै,
तंन मंन अंतरि ध्यांन धरीजै। कल्यांण, छन्द ६।
१६–दांन दवारिका पाई सुदामाजी। धनांसी, पंक्ति ७।

१७–विसंन नाव तें तरना सतो । धनासी, पवित ७ ।
१८–विसन नाव अ ंसा रे, जाकै नाव लिया अघ जाहि । गवडी, दोहे १० ।
१९–आवो सखी वर जोवा अम्हे, वींद नवरंग कवर भायो । खमावची, दोहले ५ ।
२०–मंगळाचार अजोधिया पुर मा, आणद उछाह ज होत रळो । खमावची, दोहले ६ ।
२१–ओउं सत सबद सुख धारा (मीता वायक) । सोरठि, दोहे ७ ।
२२–ॐ ब्रहम विसंन एक होई, वाका पार न पावै कोई (लछमण वायक) । सोरठि, दोहे ५ ।
२३–विसन भजन करो रे भाई, विसन भजै सोई जलम्य न आई । सोरठि, छन्द ७ ।
२४–नर विसन भजै से नीका रे । सारग, पवित ६ ।
२५–नर कीया विसन सब कोई रे । सारग, पवित ५ ।
२६–नर पार विसन कुण पावै रे । सारग, पवित ५ ।
२७–नर विसंन भज्या सुख पाया रे । सारग, पवित ५ ।
२८–नर विसन विनां कुण तेरो रे । सारग, पवित ५ ।
२९–जत सत सील असो ससारि, सतो भाई सील वडो संसारि । धनासी, पवित १३ ।
३०–हरि सिंवर्या सुख वास सतो भाई । धनासी, पवित ११ ।
३१–मना भज विसन पियारे रे । परज, दोहे ८ ।
३२–हरि नाव सवों जुग को नहीं, जुग मा देखो जोय ।
अघ नासै सुख सपजै, जीव तरेवो होय । खमावची, दोहे ७ ।
३३–सोई साम्य सभरा । 'ढाळ लुहरि की', छन्द १८ ।
३४–सतगुर आयो संतां मन सुहायो, आयो बारा कोड्यां कारण ।
–'वधावे की ढाळ', दोहले ५ ।
३५–परम जोति प्रमियें विसन वास वसियें । खमावची, दोहले ५ ।
३६–आरती जो भाई निरजननाथ, ॐ आदि विसंन री आरती । धनासी, दोहे ७ ।
३७–रहिस्यें जुग वोलि जितें धर अबर, सायर सिला तिरावण हार ।
–'सोहलो', खमावची, दोहले ४ ।
३८–देवजी विडद कुण रा दीजें, सरब तें हो सिरज्यो ससार ।
–'सोहलो', खमावची, दोहले ५
३९–ताहरा विडद विराजें तोनें, आखूं कंवण तुहारो ईढ । खमावची, दोहले ४ ।
४०–हरि विण कूण निवाजण हार । धनासी, दोहे ७ ।
४१–क्तब उतरियें पार, क्तव है राजी करतार । नट, दोहे ८ ।

(३) साखियां —

१–सतगुर सतपंथ चालव्यो, पहराजा प्रतपाळ । ४ दोहे, ६ छन्द ।

सारांश :—जाम्भोजी के यहां आने का उद्देश्य, सम्प्रदाय–प्रवर्तन और मुकाम की महिमा । थापनो को राव जोधोजी, बीकोजी, लूणकरणजी और जैतसीजी ने 'अकर' माना था किन्तु राजा गजसिंहजी के राज्य में हठीसिंह नारणोत ने पापबुद्धि के कारण विश्णोइयों

से वैर किया और वहां के मोहता से कूड़-कपट रच कर, कर उगाहने हेतु हिमटसर से अपने साथियों सहित ताळवा (मुकाम) आया। जब इसकी खबर थापनों को मिली तो उन्होंने कर देने की अपेक्षा मरने का निश्चय किया। नारणोतों-सादूल, हिरदल और देवसी की तेगें चलने पर राम, कोरी, खेतो और दोयजी-चार थापनों ने अपने प्राण दिए। यह देखकर हठीसिंह को झुकना पड़ा, उसने मुकाम में 'सूत' फिराया तथा गुरु-आज्ञा का पालन किया। यह घटना संवत् १८०४ के पौष सुदि २, मंगलवार को हुई थी।

राव लूणकरणजी के पुत्र वैरसी के पुत्र नारायण के वंशज नारणोत बीका कहलाते हैं[१]। नारायणजी को राव कल्याणसिंहजी ने जागीर दी थी[२]। नारणोत हठीसिंह मगरासर (बीकानेर) गांव का रहने वाला था। बीकानेर के महाराजा गजसिंहजी ने विद्रोही नारणोतों का संवत् १८१२ में दमन किया था[३]। संवत् १८१५ में नारणोत हठीसिंह ने नागौर के इलाके में उपद्रव किया। इस पर जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने अपने कृपापात्र जगन्नाथ को भेज कर उसको शान्त करवाया था[४]। गजसिंहजी का समय संवत् १७८० से १८४४ है[५]।

२-बावो आपे अपनूं आप, मंछ संखासिर मारयो। -५ छन्द।

३-बावो आवियो आदि विसंन, संभरियलय सांचो धंणी। -५ छन्द।

'राग धनांसी' में शेष दोनों साखियों में जाम्भोजी के यहां आने के हेतु, जीवन, कार्य और घटनाओं की अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु सम्यक् जानकारी दी गई है।

४-जैतसी अरज कही करतारि। -८ दोहे 'राग धनांसी'।

यह रावल जैतसी के दूत चन्द्रसेन द्वारा जाम्भोजी के सम्मुख कही गई जैसलमेर पधारने सम्बन्धी प्रार्थना है।

५-झंभजी असी प्रतपाळ करी। -पंक्ति ६। इसमें जम्भ-महिमा वर्णित है।

(४) विसंन असतोत्र-(छन्द १५, कवित्त-२, दोहे ५) :—

२२ छन्दों के इस स्तोत्र में विष्णु और जाम्भोजी को एक मान कर अत्यन्त भक्ति-भावपूर्ण उनकी स्तुति की गई है।

(५) फुटकर छन्द :—कवित्तों में, एक में विष्णु के रूप और दूसरे में नवधा-भक्ति का वर्णन है। दोहों में 'सबदवाणी' उसके पात्र-कुपात्र और जाम्भाणी गुरु-परम्परा सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ हैं; साथ ही लेखक का लिपिकार के रूप में आत्म-निवेदन भी है।

(६) साका :—इसमें राजस्थानी गद्य में जाम्भोजी एवं विष्णोई सम्प्रदाय और कवियों सम्बन्धी कतिपय महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी गई हैं।

१-ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १२०।
२-मुंशी सोहनलाल : तवारीख राज श्री बीकानेर, पृष्ठ १२४।
३-ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ३४३।
४-(क) रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ३७७।
(ख) ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ७०७।
५-मुंशी सोहनलाल : तवारीख राज श्री बीकानेर, पृष्ठ १७३, १९६।

(७) सवत्सरी : (पद्य-गद्य मिश्रित) :—इसमे सवत् १८०० से १९०० तक प्रत्येक साल का सवत् फल-वर्णन है।

काव्य का उद्देश्य और भावधारा :—परमानन्दजी ने "अणभैवाणी" ही कही है। उनकी रचनाओ मे भगवद् और ज्ञानानुभूति का प्रकाशन हुआ है। वे अध्यात्म-क्षेत्र मे विचरने वाले कवि थे। उनका चरम प्राप्तव्य मोक्ष है। व्यक्ति को मोक्ष-प्राप्ति के साधन वताना उनका उद्देश्य है। यही भावधारा उनकी रचनाओ मे अनेक रूपो मे प्रवाहित होती दिखाई देती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कवि ने अनेक प्रकार से अपने अनुभवो का स्पष्टीकरण किया है। स्वय अनुभव की हुई वातो मे सच्चाई रहती है। इस सच्चाई को उन्होने वडी स्पष्टता, दृढता और आत्मविश्वास के साथ प्रकट किया है। भाषा लोगो के वोलचाल की घरेलू मरुभाषा है। इन कारणो से उनके कथन का प्रभाव गहरा और स्थायी है। इस प्रकार, अनुभव, अभिव्यक्ति और प्रभाव, तीनो की दृष्टि से इनकी वाणी का राजस्थानी साहित्य मे विशेष महत्त्व है, विष्णोई साहित्य मे तो है ही।

उनकी रचना के मूल कारण दो हैं —विष्णु या हरि और अनुभव। इनसे रहित किसी भी प्रकार की कविता को वे कविता नही मानते। रचना का वर्ण्य-विषय मूलत और मुख्यत: हरि से ही सम्बन्धित होना चाहिए। दूसरे, इस विषय का कविता रूप मे प्रकटीकरण तभी करना चाहिए, जब स्वय सम्यक् रूप से उसका अनुभव कर ले। उनकी दृष्टि मे हरि, अनुभव-वाणी वाली कविता ही सच्ची कविता है, शेष नही। इस प्रकार की सिद्धि के लिये कितनी वडी साधना की आवश्यकता है, यह अध्यात्म-पथ के पथिक ही जान सकते हैं। नीचे इन दोनो के विषय मे किंचित् विचार किया जाता है —

(१) हरि —"हर-जस" ही करना चाहिए, चाहे वह कथा, साखी, कवित्त, छन्द या श्लोक किसी भी रूप मे हो, क्योकि हरिनाम की शोभा तीनों लोको मे है[१]। केवल हरि-चर्चा या प्रतिक्षण हरि-स्मरण ही क्यो करना चाहिए[२], इसके लिये परमानन्दजी ने कई तर्क दिए हैं, जिनमे से मुख्य ये हैं —

१-बुलाने से पशु बोलता है और मनुष्य भी पास आता है, इसी प्रकार अन्तर की प्रार्थना सुनकर भगवान् भी कृपा करता है[३]। यह अत्यन्त व्यावहारिक वात है।

२-सिंह की सहज गर्जन सुनकर अन्य पशु इधर-उधर भाग जाते हैं,[४] मोर का

१-हरिजस कथा साषी कहो, कवत छद सिरळोक।
परमानद हरि नाव की, सोभा तीन्यो लोक ॥ ११ ॥
२-कै हरि की चरचा कर, कै हरि हिरदै नाम।
प्रीतम पल न विसारियै, चलता करता काम ॥ ४ ॥
३-पसू बोलायो वोल ही, नर भी आवै पासि।
करता किरपा करत है, अतर की अरदासि ॥ ७ ॥
४-सहज सिंघ ओगाज करि, पसु नासि वहु दिस जाहि।
(यो) विसन नाव सुणत ही, पाप करम सब जाहि ॥ १ ॥

"टहुका" सुनकर नाग भागकर विल में घुस जाता है[1]। इसी प्रकार विष्णु नाम सुनकर सब पाप-कर्म पिंड छोड़कर चले जाते हैं।

३-कोटि ग्रंथों और श्रेष्ठ गुरुओं का भी यही कहना है कि हरि सेवा ही चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करनी चाहिए[2], क्योंकि इससे जीवन्मुक्ति-प्राप्त होती है[3] और एक बार की जीवन्मुक्ति सदा की मुक्ति है।

४-इससे चार पुरुषार्थों में मोक्ष[4] और सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य एवं सायुज्य चार प्रकार की मुक्तियों में कोई भी पा सकता है[5]।

५-हरि-नाम-स्मरण से कर्मों से मुक्ति मिल जाती है[6]।

परमानन्दजी ने इसलिए बार-बार कहा है कि मनुष्य को निरन्तर हरि-भजन, सेवा नाम-स्मरण करना चाहिए। अपनी सभी रचनाओं में प्रकारान्तर से अनेक बार उन्होंने इसी बात को दोहराया है। मानव शरीर कठिनता से मिलता है और जीवन थोड़ा है[7], मृत्यु धीरे-धीरे निकट आ रही है[8]। फिर, अनेक प्रकार की विषय-वासनाएँ तथा सांसारिक प्रलोभन मानव को पथ-भ्रष्ट करते रहते हैं। अतः इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जीवन सुधारा जाए और मोक्ष-हेतु प्रयास किया जाय। कवि ने इसका सबसे सरल उपाय विष्णु नाम-स्मरण बताया है, क्योंकि उसके सिवा मनुष्य का इस संसार में और कोई नहीं है[9]। नाम-स्मरण के गुण अनन्त जीवों से अनंत काल तक भी वर्णित नहीं किये जा सकते। कुशल इसी से है। जो क्षण बिना हरि भजन के बीतता है, उतनी ही

१-मोर टहुको नाग सुंणि, भाज वड्यो विल मांहि।
यों पाप गया पिंड छांड़ि कै, ठाहर देपी नांहि॥ २॥

२-कोटि गरथंनि मत ईह, वर गुरु एहु उपदेस।
हरि सेवा चित दिढ धरै, छांडै सकळ कळेस॥ ३॥

३-अवगति सेती रत्त रह्या, आसा तिसना जीति।
विसंन नांव रटता रहै, सोई जीवत मुकति अतीत॥ २॥

४-अरथ ध्रंम मोष कांमनां, ताहि फळ लगा च्यारि।
हंस मोती हरि नांव चुण्य, पायो हरि दीदारि॥ ५॥

५-हरि को भै उर धारि कै, भगति भजंन कर सोय।
सालोक, साजज सारूप, सोई संमीपत्य होय॥ १०॥

६-मणिया हरि विसवास करि, हर गुण तागै पोय।
कदे न विसरै नांव हरि, क्रंम न लागै कोय॥ २१॥

७-तेल जग्यो वाती बुझी, मंदर भयो अंधियार।
देपो सोच विचारि कै, थीरि नहीं संसार॥ २७॥

८-सांईं नांव संभाळि ले, क्या सोवै नर नींद।
काळ मिचांणो सिर खड़ो, ज्यौं तोरण आयो वींद॥ २॥

९-मात पिता भाई सुत बंधु, कुटंब परवार घणेरो रे॥ २॥
अंत की वेर अकेला तू है, जंगळि वासि वसेरो रे॥ ३॥
ध्रंम भजंन संगाती तेरै, जीव सुवारथ तेरो रे॥ ४॥
परमानंददास विसंन भज्यां तै, पार गिरांय वसेरो रे॥ ५॥ २८॥-हरजस।

हानि है[1]। धन, परिवार के चले जाने से कुछ नही होता, हानि तो तब है जब मनुष्य सृजनहारको भूल[2] जाय। हरि शरण ग्रहण करके भी यदि कोई दुख पाता है, तो खोट उस सेवक मे ही है[3]। वेद और कुराण दोनो म तत्त्व यही एक है, हरि-प्राप्ति के मार्ग भिन्न भिन्न हो सकते हैं[4]। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान यदि एकाग्र चित्त से विष्णु-स्मरण करें और वास्तविक अर्थ खोज तो गति पा सकते हैं[5]। हरि-भक्ति केवल व्यक्ति के लिये ही नही गाव और नगरी के लिये भी उतनी ही आवश्यक है। सुख-समृद्धि-सम्पन्न किन्तु हरि-भक्त और हरिभजन विहीन नगरी भी ऊजड[6] हैं। जिस बस्ती म ज्ञानी और मूर्ख एक से गिने जाते हैं वह मरघट के समान है[7]। इस प्रकार, हरि-नाम-स्मरण तत्त्व-प्राप्ति का महान् साधन है। वह योग से बडा है[8]।

(२) अनुभव —परमानन्दजी की दृष्टि म ज्ञान दो प्रकार का है-सासारिक और आध्यात्मिक जिसको क्रमश परा और अपरा विद्या कहा जा सकता है। सासारिक या बाह्य ज्ञान का 'इद्री रत" ज्ञान की सज्ञा देकर वे ऐसे 'ज्ञानियों" की निंदा करते हैं। यह ज्ञान "पडता" बिना नीर के कूएं के समान व्यर्थ[9] है। ब्रह्मज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है जो अनुभव का विषय है। इसी का निरूपण और कथन करना चाहिए। इस ज्ञान का परिचय मात्र आध्यात्मिक शैली म कही गई रचनाओ से नही मिल सकता। ऐसा दिखावा करने

१-क-रोम रोम रसना अनत, अनत ही अनत उचार।
तन बराट गुण नाम का, तोउब न लभ पार ॥ १ ॥
ख-हरि भजन तो कुसळ तनि, नही त कुसळ न जाणि।
जा पळ वीचै भजन विणि, साई पूरी हाणि ॥ १ ॥
२-कहा भयो जे धन गयो, पिता पूत परवार।
छीज्यो जब ही जाणियें, विसर्‌या सिरजणहार ॥ १५ ॥
३ दुप दाझता देवजी, लीवी तुम्हारी ओट।
तुम सरणै दुप पाइयें, तो सेवग ही मा पोट ॥ ५ ॥
४-वाद विवाद म हू इरपो, जोर जरब घट माहि।
वेद कुराण दोय राह कव्हाया, कण एको दोय माहि ॥ ४ ॥-हरजस १।
५-क्या हिंदू क्या मुसेलमाना, अरथ पोज्या गति पावै।
परमानद दास आस हरि पुरवै, एक मन एक चित ध्यावै ॥ ६ ॥-हरजस १।
६-पूण छतीस कसबै वसैं, सब सुपी दुपी नही कोय।
हरि भगत हरि भजन विणि, ऊजड कहियें सोय ॥ १ ॥
७-तुरी पर एको मोल, महको एक मोल हसती।
रूपो राणो एक मोल, उजड एक सुबस वसती।
कचण काच एक मोल, रतन कोडी एक कहियें।
हस काग सारीप, पारस पथर एक लहियें।
पाप पुन की पारप नही दया विहूणा दुरमती।
ग्यानी मूरप एक सा, मरघट समान्य वा वसती ॥ १ ॥
८-मुणणै ता पढणो भलो, पढणै इधको जोग।
जोग तैं इधको हरि नाव है, प्रापत्य हुवै व्र भ लोग ॥ १ ॥
९-निज पद की नामति करैं, कथ इद्रीरत ग्यान।
जैसे कूवो नीर विण्य, पढिबो निरफ्ळ जाण्य ॥ २२ ॥

वालों की घोर भर्त्सना कवि ने की है[1]। ऐसे अज्ञानी लोग दूसरों को तो उपदेश देते हैं किन्तु स्वयं अचेत है[2]।

इन दोनों बातों के कारण आगे "दर्शन और अध्यात्म" के अन्तर्गत परमानन्दजी की दार्शनिक और आध्यात्मिक धारणाओं को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

दर्शन और अध्यात्म : ब्रह्म :–परम सत्ता और परम तत्त्व एक विष्णु ही है, उस एक के अनन्त नाम है[3]। वह स्वयंभू, निराकार और निरंजन है, उसने ओ३म् की उत्पत्ति की और अपनी मनसा से सृष्टि का सृजन किया। 'ओंकार' रूप में वह सब में समाया हुआ है। उसने जिनका निर्माण किया, उनको भूलता नही और 'चुगा' देता है[4] समस्त सृष्टि में 'ओंकार' का प्रसार है, ओ३म् सब में व्याप्त है, किन्तु विष्णु उसका भी निर्माणकर्ता है। इसका बहुत अच्छा उल्लेख सीता और लक्ष्मण के संवाद में मिलता है। सीता "ओउ" को "सत सबद" मानकर उसी को हृदय में धारण करने को कहती है:-

> **आउं सत सबद सुख धारा।**
> **जिस अंछुर सूं सायर पाट्या सो सबका किरतारा ॥ ४ ॥**
> **साच सबद हिरदै धरि राखो और सब बट पारा ॥ ५ ॥**

इसके प्रत्युत्तर में लक्ष्मण का कथन है– यद्यपि सर्वत्र 'ऊंकार' का प्रसार है और उसी में सब समाया हुआ है, तथापि विष्णु उनसे भी रहित है, और वह स्वयंभू है :-

> **ऊंकार का सकळ पसारा, ऊं सकळ समाई।**
> **ऊंकार बिनि एक बिसंन है, जाकै पिता न माई ॥ २ ॥** –लक्ष्मण वायक।

आदि विष्णु ने 'ओउंकार' के माध्यम से ही सृष्टि-विस्तार किया है[5]।

विष्णु नाम :–विष्णु का नाम अत्यन्त शक्तिशाली है, इसके स्मरण से पापों का

१–द्रष्टव्य–दोहे २४, ३०, और ३१।

२–औरां नै उपदेस द्यै, आप चेतै नहीं अचेत।
करै जगत को जावतो, घर को भिळियो रेत ॥ ६ ॥

३–विसन वायक जुग विसतर्‌या, निज आपे वेद पुरांन।
अंनत नांव निह्चळ अचळ, परमानन्द प्रणांम ॥ ८ ॥ ७ ॥–हरजस।
रांम रहीम करीम ऋसंन, अलाह पुदाय अलेप।
गोरप गोम्यंद भंभ सतगुरु, नांव अनंत है एक ॥ १ ॥–साखी।

४–आपेणि आप ज आप उपनों जिणि ओउंकार कियो अंजणो।
बिसंन अंजण मां विराजत निराकार निरंजणो ॥
कीवी मंन्यसा आप करता श्रब आरंभ सबरू।
आदि नांव बिसंन अवगति सोई बिसंन भंभ बिसंभरू ॥ १ ॥–बिसन असतोतर।
ओउंकार करि सब कोय, सब मां रह्यो संमाय।
बेमुन्य वास तायो बिसंन, प्रयंमि लगूं पाय ॥ ३ ॥
पहली सुवण निरंजणां, सबका सिरजणहार।
सिरज्यां कूं बिसरै नहीं, दीयण चुगो दातार ॥ १ ॥

५–एकणि ओउंकारि सिरजी मांझ सही, बिसंन कियो बिसतार ॥ ३ ॥–ढाळ लूर की।

नाश होता है[1], शरीर और आत्मा दोनों निर्मल होते हैं[2] । 'धणी' का नाम लिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता, चाहे कैसे ही लो[3] । हरि-नाम जप पाप रूपी रोग की औषधि है[4] । नाम-सम्पत्ति को कोई भी चुरा नहीं सकता[5] । केवल विष्णु का नाम ही सच्चा है, इससे मुक्ति होती है[6] । इसको सुनना, कहना और जपना सभी श्रेयस्कर है[7] । वह 'निरफल' कभी नहीं जाता[8] । यद्यपि हरि भजन प्रेम से ही करना चाहिए, तथापि बिना 'स्यामहेत' के भी हरि- भजन करने से 'खुस्याली' होती है[9] । सार तत्त्व विष्णु का नाम ही है, विष्णु- भजन में ही सुख मिलता है । यदि विश्वासपूर्वक विष्णु- नाम दिल में रम जाय तो नरक-वास कभी भी न हो[10] । जो विष्णु- भजन करते हैं, वे ही भले हैं । सब वस्तुओं का तो मूल्य है किन्तु नाम 'अमोलिक' है[11] । सभी उसके आगे झुकते हैं, स्वयं भगवान् भी उसके वस में[12] है । केवल नाम- स्मरण से ही अनंत भक्तों का उद्धार हो गया है । अधिक क्या, नामस्मरण के बराबर संसार में कोई चीज नहीं है, इससे आत्मा का संशय दूर होकर मोक्ष मिलता है ।

विष्णु-स्वरूप :-ऐसा विष्णु निर्गुण है, अरूप है । वह सकल सृष्टि में समाया हुआ है, फिर भी उससे पृथक् है[13] । पांच तत्त्वों और तीन गुणों में सकल संसार है, किन्तु

१-विसन नाव जिभिया जपै, करै पाप अघ म को नास ।
जैसे चिनगी अगनि की, पडी पुराणै घास ॥ ४ ॥

२-तन मैलो निरमळ हुवै, न्हावै नृमळ नीर ।
मन नृमळ हुवै ग्यान सू, नाव निरमळ जीव सरीर ॥ ६ ॥

३-टोडी टोडी मागता, माता रोगी देय ।
पिजमति पाली ना पडया, नाम धणी का लेय ॥ १२ ॥

४-रोग पाप तन कू दहै, ओषद है हरि नाम ।
जतन जुगति सू जो जपै, जीव पावै आराम ॥ ५ ॥

५-देस विराणो लोक विड, रहण न पावै कोय ।
हरि सिवरण जु नी मता, तसकर हडै न कोय ॥ ९ ॥

६-साचो नाव विसन को, दिल स चलै कोय ।
दई दरगै जावता, पलो न पकडै कोय ॥ १ ॥

७-सु णता ही सुरता भया, चवता चत्र सुजाण ।
जपता ही जग जीतिया, पावै पद निरवाण ॥ २ ॥-हरजस १८ ।

८-उपावणहार कू यादि करि, हरि सिवरण हळ वाहि ।
अ सि कालि सीको पडै, तोउ निरफळ कदि न जाय ॥ २ ॥

९-नाव दुसट को प्रात ले, दुप पावै पल कोय ।
स्याम हेत विणि हरि भजै, तोऊ खुस्याली होय । ६ ॥

१०-विसन नाव दिल मिलो रह्यो, और न आसा काय ।
ओह भरोसो विसन को, दोरै कदे न जाय ॥ ६ ॥

११-अत्र वसत का मोल है, नाव अमोलिक सार ।
जिनि पाया जिन ही पिया, योह इम्रत इधकार ॥ ४ ॥-हरजस १८ ।

१२-जाकू देख्या जग नुवै, नुवै नरा नरेस ।
जाकू देख्या जम नुवै, सुरपति और सुर सेस ॥ ५ ॥

१३-रहै निराळा माड ता, सकळ माड ता माहि ।
हरिजन सेवै तास कू, दूजा कोई नाहि ॥ २ ॥

'करतार' इन आठों से अलग है[१] ।

विष्णु सृष्टि का मूल कारण है और अनेक चरित करता तथा लीला रचता है। सर्वत्र वही व्यापक है[२] । वह सर्वसमर्थ है, उसका पार नहीं पाया जा सकता, अतः संसार में विष्णु के अतिरिक्त और किसी की भी आशा न रखनी चाहिए[3] । विष्णु की शक्तिमत्ता, वैभव और लीला का बड़ा ही सुन्दर वर्णन 'विसंन असतोतर' में कवि ने किया है। भक्तों के हेतु उसने नौ अवतार पूर्व में धारण किए हैं, दसवां भी वही करेगा। वह निराकार माया से आकार धारण करता है[४] ।

जाम्भोजी विष्णु हैं :– साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार, जाम्भोजी विष्णु ही हैं और यही परमानन्दजी मानते हैं[५] । जाम्भोजी विष्णु ही हैं, यह 'बीस बिस्वा' बात है[६], कलियुग में स्वयं "करता" ही प्रकटे हैं[७] । भक्तों के लिए इससे पूर्व जाम्भोजी ने नौ अवतार धारण किए थे; अब वे १२ कोटि के उद्धारार्थ भगवें वेश में आए हैं, आगे वे कल्कि अवतार धारण करेंगे। इस सम्बन्ध में कवि का 'सोहलो' रूप यह डिंगल गीत तो अत्यन्त ही प्रसिद्ध है :–

परंम जोति प्रसियै, विसंन वासि वसियै, कीजियै सुख अनंत केळा ।
वारणां लिछमी लियै अपछरां आरती, मिळै विसंन सूं जोति मेळा ॥ १ ॥ टेक ॥
सतजुग पहळाद संगि पांच कोड़ि प्रठिया, तेता हरिचंद संगि सात तरिया ।
दवापुर दहुठळ संगि नव कोड़ि निरखिजै, तीहुं जुगि इकवीस कोड़ि तरिया ॥ २ ॥
वीनवै पहळाद विसंन सूं विनती, करतार वचंन नै वाड़ि कीजै ।
पाप रै पहर मां कूड़ कपट परवस्यो, दवादस इकवीस सूं मेळि दीजै ॥ ३ ॥
धणीय पै राखि अवतार हरि धारियो, नारसिंघ भ्रंभ निकळंक होयसी ।
चौह जुग रा साव जांनी निकळंक रा, वसुधा दुलहैंणि हरि वरिसी ॥ ४ ॥
परंणि निकळंक वैकुंठ पधारिस्यै, भगत भगवंत रा साथि मेळा ।
पहळाद सांमी परमांणद वीनवै, मिलैं तेतीस पहळाद मेळा ॥ ५ ॥

१–पांच तत गुण तीनि मां, सबही है संसार ।
इणि आंठूं सूं न्यारा रहै, सो सबका करतार ॥ ३३ ॥
२–चिरत करै लीला रचै, दुनियां लगै लार ।
मूल छाड़ि डाळी ग्रहै, विसन अब विसतार ॥ ३ ॥–साखी ।
३–दुनियां सब भूली फिरै, केई भूला हरि का दास ।
पारब्रंभ कूं छाडि करि, ते करै आंन की आस ॥ ९ ॥
४–निराकार आकार धरै जी, चवदा भुवण उपाय ।
धर अंबर अवरा धर्या, माया चिरत बणाय ॥ २ ॥–आरती ।
५–विसंन विसंभर भ्रंभ, आदि अंति अंतरजामी ।
ब्रंभ जीव सोई जोति, केवळ करता सोई कांमी ॥–कवित्त ।
६–प्रथंम नऊं गुर भ्रंभ कूं, सो विसंन विसोवा बीस ।
जाकै जेता सिप हुवा, तांहि नुवांऊं सीस ॥ ७ ॥
७–कळि आय प्रगटे आप करता, भ्रंभ सबदां रीझियै ।
साच सबद सुंणै सुरता, साच सूं कारज सझै ॥ १४ ॥–विसंन असतोतर ।

अन्य देव पूजा : कवि के लिए विष्णु का कोई भी अवतार श्रद्धा का विषय होते हुए भी उपासना का विषय नहीं है। उपासना का विषय तो केवल परमसत्ता– विष्णु ही है अथवा जाम्भोजी, जो विष्णु ही थे। इसके अतिरिक्त किसी अन्य देव की पूजा– उपासना कदापि स्वीकार्य नहीं है। इसकी घोर भर्त्सना जाम्भोजी ने की ही है। सम्प्रदाय मे जाम्भोजी को आदि विष्णु मानने के कारण यह सम्भव ही नहीं है, अतः कवियो का इस ओर ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। परमानंदजी के अनुसार, एकमात्र विष्णु की ही आशा रखनी चाहिए[1]।

जीव – प्रत्येक जीव मे ईश्वरीय ज्योति है, जितनी आत्माएँ हैं, वे सभी 'सालिगराम' हैं। जीव और शिव (ब्रह्म) एक ही है[2]। जैसे सरिता को समुद्र में समाने पर सागर संज्ञा हो जाती है वैसे ही जीव शिव मे समाकर तद्रूप हो जाता है[3]। माया के कारण और कर्मानुसार जीव ब्रह्म से पृथक् होता है[4]। कर्म-त्याग से पुनः जीव ही शिव– स्वरूप है। आत्मा अमर है, काया मरती है[5]। जीव ससार में अकेला ही है, उसका सगी और कोई-भी नहीं है[6]।

शरीर :—शरीर पाच तत्वों का पुतला है, जिसके सग पच्चीस प्रकृतियाँ हैं। यह काया कच्ची है, इसका 'जतन' करना व्यर्थ है[7]। यह तो नश्वर है, इसका गर्व करना बेकार है क्योकि यह आत्मा के साथ नही है[8]। किन्तु मानव–देह दुर्लभ है और जीवन थोटा है, कूएँ पर के कच्चे कुंभ की भांति कभी भी नष्ट हो सकती है[9]। अतः यदि कोई समझे और विष्णु-भजन करे तो यह रत्न के समान है[10]। मनुष्य-योनि बार बार नही मिलती,

---

१–आसा एक विसन की कीजैं, दूजी आस निवारि।
दूजी आसा जे करैं, तो कदे न उतरैं पारि ॥ ३ ॥
२–एक रूप सब रूप मा, सब मा रह्या समाय।
जीव सीव सब एक है, ज्यों पोहप वास पसराय ॥ २ ॥
३–सिळता समावै समद मा, रहै न सिळता नाव।
यों जीव समावै सीव मा, जदि नीर सीधि को नाव ॥ ४ ॥
४–चोईस अंस माया चिरत, भरम्यो सोह जुग भ्रम।
जीव सीव जुवळा किया, काटा विलगा क्रम ॥ २३ ॥
५–करमा करि कै जीव भयो, उपजै अर विणसाय।
अमर जीव काया मरै, क्रम तज्या सिव थाय ॥ ६ ॥
६–तेरा सगी को नहीं, तुहु किसी का नाहि।
बेडी नाव सजोग ज्यों, उतरि चहु दिस जाहि ॥ ४ ॥–हरजस ७।
७–काची काया कारवी, जाका करैं जतन।
काळ हसत है देषि कै, किस बात पै मगन ॥ १४ ॥
८–गरब न करि रे मानवी, देह न जीव के सग।
भुवग तजत ज्यों काचळी, तरवर पात प्रसग ॥ ३ ॥
९–दिन बीता ज्यों राति हुवै, पष बीता ज्यों मास।
कूवै काचै कुंभ ज्यों, किसी जीवण की आस ? ॥ १० ॥
१०–मिनषा जलम रतन है, कोई जाणै जाणणहार।
विसन जपै तो रतन है, नहीं तरि षाक भगारि ॥ ५ ॥

बिना भक्ति-भजन के यह तन-धारण करना कोई अर्थ नहीं रखता[1]। भोंदू व्यक्तियों ने १०० वर्ष का यह दुर्लभ मानव-जीवन कैसे व्यर्थ गँवा दिया, कवि ने इसका बड़ा यथातथ्य और हृदयग्राही वर्णन एक हरजस में किया है[2]। स्पष्ट है कि मानव-देह पाने का लाभ अवश्य ही लेना चाहिए।

माया (मन, जगत) :—माया ब्रह्म की सृष्टि है; अपनी मनसा से ब्रह्म ने इसको उत्पन्न किया है। इस माया-संसार में, पानी में चन्द्र-प्रतिबिम्ब के समान हरि हैं, किन्तु वे स्मरण से ही सहायता करते हैं[3]। माया बहुत ही प्रबल है, सारा जगत उसके वस में है; उसकी शृंखला में सब बंधे हुए हैं[4]। इस संसार-हाट में स्वाद-ठग है और लोभ-ठगाई है[5]। यह ठगाई खांड सी मीठी है, मोहनी है, किन्तु मांगने से हाथ नहीं आती[6]। अर्थ का संचय करते और जोड़ते कोई कभी भी अघाया नहीं, पर 'ठगणी' माया को पूरा किसी ने नहीं भोगा[7]। माया के वशीभूत लोग अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं। कुछ लोग सोते समय और कुछ जागते समय, किन्तु दोनो हैं बराबर ही[8]। माया के अनेक रूप हैं, अनेक

१—भगति भजन कीयौ नहीं, कहा कीयो तन धारि।
वार वार नहीं पायवो, मनंपा जलंम गिंवारि ॥ २८ ॥

२—सिरजणहार संभाल्यौ नांहीं, अहळौ जंनम गुमायौ ॥ २ ॥
दस मास ओदरि दुप पायौ, हरि सूं कौल करि आयौ ॥३ ॥
जप तप कीया भगति करेस्यौ, ध्रम नेम ठहरायौ ॥ ४ ॥
बाव लगत सब सुध विसर्‌यौ, कुळ सूं मोह लगायौ ॥ ५ ॥
पांच सात दस भोळपणा मां, वीसां मोह लगायौ ॥ ६ ॥
मगर पचीसी तीस वरस मां, तरंणी रंग रहायौ ॥ ७ ॥
पैंतीस चाळीसां सुत परसंग, सगपण हरि विसरायौ ॥ ८ ॥
पचासे प्रीति लगी पोतां सूं, साठ्यां वंणीय न ध्यायौ ॥९॥
सतरि वरस लग संमधो नांहीं, अस्मियां विसंन न ध्यायौ ॥ १० ॥
चलण थक्या अब जीभ चलावै, नीवैं कही दाय न आयौ ॥ ११ ॥
सौ वरसैं सुधि बुधि गई सारी, अहळो जळंम गुंमायौ ॥ १२ ॥
ज्यौं माषी गुड़ मां पड़ि पछताई, यों प्रांणी पछतायो ॥ १३ ॥
आगैं सुर नर लेपो मांगै, पूछत ही सुकचायौ ॥ १४ ॥
कांही लाभ चौवगंणां लीया, कांही मूळ ठगायौ ॥ १५ ॥
गुर परताप साध की संगति, परमानन्द जस गायौ ॥ १६ ॥ —हरजस ९।

३—अनंत भजन जळ पूरि कै, सब मां चंद दसाय।
यों माया हरि ब्रमीयैं, सिवर्‌यां होय सहाय ॥ ५ ॥

४—माया संकळ सबळ है, ताहि बंध्यौ संसार।
ते क्यौं छूटै बापड़ा, बांध्यां सिरजणहार ॥ १२ ॥

५—माया के वसि जगत सोह, हटवाड़ो संसार।
लोभ ठगाई स्वाद टग, विसर्‌या सिरजणहार ॥ १ ॥

६—ठगाई मीठी षांड सी, सब कोई लालच माथि।
पापण्य माया मोहणी, मांगी नावै हाथि ॥ ४ ॥

७—सांचत जोड़त आथि कूं, धायो कदे न कोय।
पूरी कैणी न भोगवी, ठगणी माया जोय ॥ २ ॥

८—सुपनां अनेक प्रकार का, देखत है सब कोय।
एक सोवत एक जागत, दोहुं बराबरि होय ॥ ४ ॥

रूपों मे वह ठगती है, यदि धन-सम्पत्ति को त्याग भी दिया जाय, तो वह मान के रूप मे ठगती है[1], कभी "विष-धार" कनक और कामिनी के रूप म कभी आशा और कभी तृष्णा के रूप मे[2] । इस प्रकार ससार का सुख झूठा है, यह जितना ही अधिक है दुख उतना ही ज्यादा है[3] । मन और माया-दोनों मिलकर जगत की सृष्टि के लिए उत्तरदायी हैं। माया की तरग म मन है, यदि वह पकड लिया जाए तो अनन्त सुखो की प्राप्ति होती[4] है। मन ही चौरासी के चक्कर मे फिरता है, निस्तार भी इसी के द्वारा होता है[5] । माया के प्रलोभन मे न आने के लिए मन को वस म रखना आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे कवि ने अत्यन्त रोचक उपमाएँ दी हैं। मन को "कतवारी" के धागे की भाति वापस लाना चाहिए[6] । फिर भी यदि मन वस मे न रहे तो शरीर को दृढतापूर्वक वम म रखना चाहिए। बिना चढी हुई कमान से तीर कैसे लग सकता है[7] ? मन अनत विकार और रूप वाला है, काम, क्रोध, गर्व, गुमान आदि का कारण यही है। मन गुण-अवगुण, पाप-पुण्य आदि सभी बातें जानता है, फिर भी यदि कोई देखते हुए भी कूएँ मे पडे तो कुशल कैसी[8] ? यह मदमस्त हाथी के समान है। इसको ज्ञान-अकुश से घेरना तथा शील, सतोष की साकल से जकड कर रखना चाहिए। चू कि मन ही प्रधान है, अत जोगी शरीर को नही, मन को करना चाहिए[9], तभी कल्याण सम्भव है।

सृष्टि-क्रम —सृष्टि से पहले सर्वत्र शून्य ही था, उसम ज्योति स्वरूप विष्णु व्याप्त थे। विष्णु ने "ओकार" की उत्पत्ति की और ओकार ने पाच तत्त्वों की। पाच तत्त्वो और त्रिगुण से सृष्टि उत्पन्न हुई। अनेक प्रकार की सृष्टि की गणना नही की जा सकती। एक

१-माया तजी तो क्या भया, मन मान्य न हराय।
 मान्य बडा मुनियर ठग्या, डाकरिा ऐंठी खाय ॥ १० ॥
२-काडि बलुधी बेल ज्यों, अलुधा आसा फध।
 तुटै पणि छुटै नही, भई ज वाचा बध ॥ १३ ॥
 तिसना की झळ ना बुझै, दिन दिन वधती जाय।
 कोई एक तिसनां त्यागि कै, हरिजन हरि पै जाय ॥ ८ ॥
३-माया मोह ससार को, झूठै सुख कु सुख।
 जाह घरि जिता वधावणा, ता घरि तेता दुख ॥ १४ ॥
४-मन माया की तरग है, बोहुत भाति करि जोय।
 पकडीज तो अनत सुख, छोड्या बोह दुख होय ॥ १६ ॥ -हरजस १०।
५-मन डूबै मन ही तिरै, मन ही उतारै पारि।
 मन चौवरासी मा फिरै, मन ही होय निसतारि ॥ १० ॥ -हरजस १०।
६-मन कै मतै न चालियै, तजियै वाण कुबाणि।
 कतवारी कै ताग ज्यों, उलटि अपूठो आणि ॥ १ ॥
७-मन गयौ तो जाण दै, दिढ करि राखि सरीर।
 बिना चढी कुबाणि को, किस विधि लगै तीर ? ॥ २ ॥
८-गुण औगुण अर पाप पुन, मन जाणै सोह वात।
 देखत ही कू वै पडै, तो काहे की कुसलात ? ॥ ४ ॥
९-मन कू जोगी सब करै, मन कू विरळा कोय।
 सहजै सतगुर पाइयै, जे मन जोगी होय ॥ ८ ॥

समय वैसाख सुदि तीज, मंगलवार, मेष लग्न और आर्द्रानक्षत्र में सतगुरु ने सत्ययुग की स्थापना की। समग्र सृष्टि की उत्पत्ति निराकार विष्णु ने सहज रूप से अपनी मनसा से की, इसमें उनको कुछ भी समय नहीं लगा। आकार धारण करके उन्होंने सर्वत्र विस्तार किया, अनेक वस्तुओं का निर्माण और उनका नियमन किया। इन सबमें उन्हीं की ज्योति है[1]।

पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त :—कर्म फल-प्राप्ति अनिवार्य है। जीवन में जो भी भले-बुरे कर्म किए जाते हैं उन सबका लेखा लिया जाएगा। यदि आयु यों ही खो दी तो "लेखे" के समय पछताना पड़ेगा[2]। संसार के सगे-सम्बन्धी तो जीते जी ही काम में आते हैं, मरने पर तो अपने किए हुए कर्म और हरि-नाम स्मरण ही साथ देंगे, क्योंकि जो कर्ता है, वही भोगता है, और अपना किया ही काम आता है; इसमें हरि को कोई दोष नहीं है[3]। इस भाव को कवि ने अनेक बार दोहराते हुए कहा है कि पैदा तो सभी मल-मूत्र के बीच ही होते हैं, इसमें ऊंच या नीच-कुल कारण नहीं है। कारण तो करनी का है, कर्म से ही एक दूसरे से भिन्न होते हैं[4]। पृथ्वी पर एक सा पानी ही बरसता है, किन्तु फल तो बीज के अनुसार ही लगता है। बंदा तो बंदगी भूल जाता है, किन्तु कृपालु भगवान "रिजक" देना नहीं भूलता, वह कर्त्तव्यानुसार सम्पत्ति देता है[5]। चौरासी लाख योनि-जीवों की वह निरंतर संभाल लेता है। कर्तार कर्त्तव्य से ही राजी है क्योंकि वह अमोल सार तत्त्व है।

मुक्ति :—मुक्ति प्राप्ति के लिये परमानन्दजी ने सार रूप में विष्णु-भजन और भक्ति, सुकृत, पंचेन्द्रियों और मन को वस में करना आवश्यक बताया है। ऐसा करने से "निरंजण नाथ" मिल सकते हैं[6]। इसके लिए हृदय की पवित्रता अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में उदात्त गुण-पालन के बिना मुक्ति असम्भव है[7]। यह आवश्यक नहीं है कि मुक्ति मरणोपरान्त ही हो। वह जीते जी भी प्राप्त की जा सकती है। इस जीवन्मुक्ति के

१—जगत वंदण रोर गंजण, भगतां भव भंजणो।
निराकार आकार कीयौ, अवइ मां विसतरू ॥ २ ॥
वर अंवर अधर धरिया, धरे पयाळ अधरा धरू।
वाय बादळ मेह बरसत, अधर धारा अवरू।
सीस सुर नपतर नवलख तारां, पर दिखणां अपरंपरू ॥ ३ ॥ —विसन असतोतर।

२—बाळ तरण अर ब्रध की, उमरि अहळ गुमाय।
लेखै की विरियां हुई, फिरि पाछै पछताय ॥ ८ ॥

३—जो करता सोई भोगता, आटो आवत सोय।
अपणों कीयौ भोगवै, हरि कूं दोस न कोय ॥ १२ ॥

४—ऊंच नीच कुळ कारण नहीं, करणी कारण जोय।
मळ मूत्र बीच उपजै, क्रमे न्यारा होय ॥ ५ ॥

५—कतब सारू देत है, आथि दई कै हाथि।
बंदो भूलो बंदगी, रिजक न भूलो नाथ ॥ २ ॥

६—विसंन भजंन हरि भगति करि, सुकरत कर ले हाथि।
पंच इंद्री मंन वसि कियां, मिलै निरंजण नाथ ॥ ११ ॥

७—दांन सील तप भाव सत, जरणां छिमां संतोष।
जत सिंवरंण किरिया विनां, जीव न पावै मोष ॥ ३७ ॥

लिए जगत की आशा का त्याग, प्रगाढ़ हरि-प्रेम और "खाक समान" होना चाहिए[1], तथा 'दीन गरीबी बदगी' करनी चाहिए[2] । जो "सतगुरु" को पहचान लेते हैं, वे दुबारा नहीं मरते[3] । इस प्रकार जीव इस जीवन में भी ब्रह्म स्वरूप हो सकता है।

भक्ति ज्ञान प्रेम —

(क) भक्ति — मुक्ति-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के लिए परमात्मा में भक्ति का होना आवश्यक है। भक्ति और हरि-नाम जिसके 'पोते' हैं, जमा हैं, परमगति उसी की होती है[4] । भक्ति के बराबर और कोई चीज नहीं है, 'भजन' उसी के अन्तर्गत है। भजन करता हुआ तो अत्यन्त दुखी और निर्धन व्यक्ति भी भला है, किन्तु भक्ति-रहित 'मोटा मन्दिर' भी किसी काम का नहीं है। भगवान को भक्ति प्रिय है, वह भक्तों की सदा सहायता करता है, भक्ति-द्रोही उसे नहीं भाते[5] । बिना भगवद्-भक्ति के लोग नरक में महादुख सहेंगे। भक्ति के लिए भाव की आवश्यकता है। भाव केतकी और भक्त भ्रमर है[6] ।

(ख) ज्ञान —भक्ति एक प्रकार से ज्ञान की भूमिका है। इससे ज्ञान और ज्ञान से दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है। ज्ञान दो अर्थों का द्योतक है-शास्त्र ज्ञान या विद्वत्ता और तत्त्वज्ञान। परमानन्दजी हिन्दी के अन्य सन्त कवियों की भांति विद्वत्ता और शास्त्र-ज्ञान की निंदा या भर्त्सना नहीं करते, उन्होंने सब शास्त्रों को सच्चा बताते हुए[7] ज्ञान की भूमिका में शास्त्र को भी एक बताया है, किन्तु महत्त्व वे दूसरे प्रकार के ज्ञान का ही बताते हैं। अनुभव-ज्ञानी पैंडी-पैंडी चढ़ता हुआ एक दिन महल में जा विराजता है[8] । किन्तु आत्म ज्ञानी विरले ही होते हैं। गति आत्मज्ञानियों की ही होती है, अज्ञानियों की नहीं[9] । ज्ञान-प्राप्ति

१—खाक समानि ज होय रहो, नूमळ नीर समानि।
हरिजन हरि को भावतो, पावै पद नुवानि ॥ ६ ॥

२—दीन गरीबी बदगी, जो करिसी नर कोय।
हरि विसवास हिरदै रहै, मुगति लहेगा सोय ॥ ५ ॥

३—"पज्या निगस्या सी मुवा, श्रो जग को वोहार।
सतगुर जाणि पिछाणियो, मरै न दूजी बार ॥ २ ॥

४—भगति हीए हरि नाव बिणि, गोत न उधरयो कोय।
श्रा निधि पोतै जास कै, होत परमगति सोय ॥ ६ ॥

५—भजन करत दुखिया भलो, वसतर मिलै न धान।
मोटो मिंदर भगति बिणि, सो लेखै नही भगवान ॥ ६ ॥

६—भाव कहीजै केतकी, मुवर कहीजै दास।
सुवास सुभाख्या परवरी, तीनि लोक मा जास ॥ ७ ॥

७—सासत्र सब ही साच है, चुतराई चितराम।
जत सत नाहि जास घटि, सब पढणा बेकाम ॥ ४ ॥

८—ग्यान सोई मुलि उपजै, चुणि चुणि अखर पाय।
पैंडी पैंडी चडता, महेलि बिराजै जाय ॥ १ ॥

९—आतम ग्यानी कोई एक है, अग्यानी सब ससार।
ग्यानवंत की गति हुवै, अग्यानी अगति तियार ॥ १० ॥

कठिन व्यापार है, अतः आरम्भ भक्ति से करना चाहिए। भक्ति और ज्ञान से तत्त्व-प्राप्ति होती है किन्तु इन दोनों के मूल में प्रेम का होना परमावश्यक है। विना प्रेम, श्रद्धा या निष्ठा के दोनों में से एक भी सम्भव नहीं है। अतः आध्यात्मिक उन्नति का मूल प्रेम ही है।

(ग) प्रेम :—परमानन्दजी ने तीन प्रकार से प्रेम का वर्णन किया है :—

(१) उस विशिष्ट गुरु के प्रति जो गुरु मंत्र और ज्ञान-दीक्षा देता है, क्योंकि इन्हीं के कारण सतगुरु से भेंट होती है और उदात्त गुणों का उदय होता है।
(२) जाम्भोजी के प्रति प्रेम और
(३) विष्णु या परमात्मा के प्रति प्रेम।

चूंकि साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार परमानन्दजी ने जाम्भोजी और परमतत्त्व को एक ही माना है, अतः परमात्मा के प्रति निवेदित प्रेमभाव प्रकारान्तर से जाम्भोजी के प्रति भी कहा जा सकता है। प्रेम बड़ी अमूल्य और दुर्लभ वस्तु है। उसकी प्राप्ति और लक्षण का बड़ा सुन्दर वर्णन कवि ने किया है। लोभ, डर और लाज के त्यागने पर ही प्रेम को प्राप्त किया जा सकता है[1]। हृदय में प्रेम के उत्पन्न होते ही सब 'सयानप' चली जाती है, लाज मिटते ही व्यक्ति सब ओर से निर्भय हो जाता है[2]। गुण, स्वार्थ और रूप के कारण से तो सभी प्रेम करते हैं, किन्तु सच्चा प्रेम वही है, जो इन तीनों के बिना हो। सच्चे प्रेम की यही कसौटी है :—

गुण स्वारथ अर रूप की, प्रीति करै सब कोय।
प्रीति जिनां की जांणियै, यां तीन्यां विण होय॥ ४॥

परमानन्दजी ने प्रेम की बड़ी महिमा गाई है। जिनके गले में हरि-प्रेम का पाश है, उन्होंने ही परमतत्त्व-प्राप्ति का मार्ग पाया है; बिना इस पाश के और सब बेचारे तो विषम घाट में डूब ही गए हैं[3]। प्रेम-सागर में पड़ने पर ओर-छोर नहीं दिखाई देता; जो पार निकल जाते हैं वे इसमें डूब कैसे सकते हैं? और डूब जाते हैं वे पार कैसे निकल सकते हैं[4]? तात्पर्य यह है कि प्रेम का नशा तो प्रतिक्षण जीवन भर ही रहता है और सब नशे तो उतर जाते हैं तथा सुधि आ जाती है; किन्तु प्रेम-सुधा पीने पर सुधि और बुद्धि दोनों चली जाती हैं :—

१-जळ थळ महियळ ढूंढिया, पेम रतंन कै काजि।
ऐ तीन तजै तो पाइयै, लोभ, डर अर लाजि॥ ९॥
२-सयांणप थी सो सब गई, जदि जीय उपज्यो पेम।
लाज मिटी निरभै भयो, मन्यसा वाचा नेम॥ १०॥
३-जांह गळि पासी हरि प्रेम की, तां पाई निज वाट।
गळि टोरी विहूंणां वापड़ा, डूब्या ओघट घाट॥ ५॥
४-परै त पेम संमंद को, सूझै वार न पार।
पारि गयो डूबै कवण, डूबि गयो कुंण पार॥ १॥

मूत सेया मदरा पियो, तो सब काहू सुधि होय।
प्रेम सुधा रसना पियो, ताकी सुधि बुधि गई ज दोय ॥ २ ॥

जो प्रेम-जाल मे पडता है वही पार उतरता है[1]। क्षण मात्र के प्रेम के बदले जप, तप, सयम, हर्ष, ज्ञान, मान, गर्व आदि सब न्यौछावर कर देने चाहिएँ[2]। इस परमार्थ प्रेम को केवल नेत्रो से प्रकट ही किया जा सकता है, वाणी से बताया नही जा सकता[3]। दो प्रेमियो मे यदि परस्पर प्रेम है, तो दो देह के रहते हुए भी उनकी दृष्टि, बात और प्राण एक ही है। *यदि सिर के बदले प्रेम मिल जाय तो तत्काल ही उसे काट देना चाहिए,* क्योकि एक सिर के बदले मे प्रेम का मिलना बहुत ही सस्ता है[4]। रावण ने तो दस हर को और दस राम को, बीस सिर इसी हेतु समर्पित किये थे[5]।

प्रेमगत माधुर्य की बडी भाव-भीनी व्यजना परमानदजी ने की है। आत्मा और परमात्मा तत्वत. एक ही है, किन्तु माया और अविद्या के कारण भिन्न-भिन्न हो गए हैं। जिस जीव मे प्रेम नही वह परमात्मा से दूर है। साधना का उद्देश्य यही है कि यह दूरी शनै शनै कम होती जाय और अन्ततोगत्वा दोनो अपने तात्विक स्वरूप-अभिन्नता को प्राप्त हो जाएँ[6]। *इसलिये जीवात्मा के विषय मे लिखते हुए परमानन्दजी ने कहा है कि* वह परमतत्व से बिछुड गया है, न जाने अब मिलन कब होगा[7]।

इस विरही जीवात्मा को ध्यान मे रखकर कवि ने अनेक सुन्दर साखियों की रचना की है जिनमे माधुर्य-भाव की भक्ति की अभिव्यजना हुई है। इस दृष्टि से समस्त बिश्नोई-साहित्य मे परमानन्दजी का स्थान निराला है। परमेश्वर को प्रियतम और स्वय को नारी मानकर कवि ने एक भावमय प्रेमलोक की कल्पना की है। भक्त और भगवान के इस माधुर्य भावयुक्त प्रेम के लौकिक प्रेम की भाँति, दो पक्ष हैं—विरह और मिलन। परमानन्दजी की रचनाओ मे विरह पक्ष की ही प्रधानता है। अनुभूति की तीव्रता, रसोद्रेकता

१–भौ सागर मन मछळा, साई सचा कीर।
पम जाळ मा जे पड्या, तेई ज उतर्यं तीर ॥ ११ ॥
२–जप तप सजम हरप बुध्य, मान्य महातम प्रब।
एक निमष कै पेम परि, वारि वारि द्यौ सब ॥ २ ॥
३–तन मन अ तहकरण की, बात कहन कू बैन।
यो परमारथ प्रेम को, प्रगट करन कू नैन ॥ ६ ॥
४–एक सीरि पेम ज पाइयं, तो ससतो बिसवा बीस।
दस सिर दे रावन लयो बीस भुज पग जगदीस ॥ ४ ॥
५–दस हर कू दस राम कू, रावण दीन्हा बीस।
अ तरि पेम सनेह लगि, जाणि समप्या सीस ॥ ६ ॥
६–जो हूँ दो तो क्हू क्छू, तू पूछत है काहि।
प्रान आनकै बसि पड्यौ, हू ढूढन हू ताहि ॥ ११ ॥
७–बीछड़िया विग्रह घणा, अब अ तरा पटाहि।
नदी बिछुटा वाहला, अवसर कही मिलाहि। ११ ॥
वालम विछुरत हे सखी, कालम लागी एह।
जालम जम कै वस्य भई, सालम रही न देह ॥ ४ ॥

और द्रवणशीलता मिलन पक्ष की अपेक्षा विरह पक्ष में अधिक होती है। परमानन्दजी ने अनेक प्रकार से मर्मस्पर्शी विरहोद्‌गार प्रकट किए हैं। ये राजस्थानी समाज की लोक-प्रचलित उक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त किए जाने के कारण बहुत अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। स्मरणीय है कि परमतत्त्व से बिछुड़े हुए जीव के लिए कवि ने विरह को हरि भक्ति का मूल माना है :—

> ब्रह मूल हरि भगति को, पत्र प्रीति गुंण साखि।
> फळी पोहप है प्रेम रस, फळ दरसंण रस दाखि ॥ २॥

किन्तु क्या सभी विरही होते हैं? विरही की क्या पहचान है? जो मीठे वचन बोलता है, जिसके नेत्र शीतल हों और आत्मा निर्मल हो, वही विरही है[1]। प्रेमी के विरह में बड़ी विचित्र स्थिति हो गई है। विरह के वात्याचक्र में मन पीपल के पत्ते की भांति न जाने कहां कहां उड़ता फिरता है[2]। मन सरिता के पानी की भांति रोके नहीं रुकता, साजन के गुण-सागर के बिना वह कहां समाए[3]? हृदय जोगी की मढ़ी की भांति न तो बसता ही है, और न ही उजड़ता है, क्योंकि प्रकट मे तो प्रिय का स्पर्श भी नहीं मिलता, केवल स्वप्न में ही वे मिलते हैं[4]। किन्तु विरहिणी तो 'नेहनीर' से प्रियतम की गुण-वेलि का नित्य प्रति सिंचन करती है[5]। वह अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ती। प्रेम में पड़े हुए को लोक और वेद का डर नहीं रहता[6]। उसको प्रिय से मिलनोत्कंठा बड़ी प्रबल है, इस हेतु वह अनेक कल्पनाएँ करती है। उसके मन के भाव सागर की लहरों से भी अधिक हैं[7]। जिस प्रकार मन का सब ओर प्रसार है, उसी तरह यदि हाथ का भी हो जाए तो वह अपने प्रिय को पकड़ लेती[8]; अथवा जैसे विरहिणी का मन प्रियतम में है, वैसे ही यदि प्रियतम का उसके प्रति हो जाय, तो दोनों का मिलन हो सकता है[9]। जागते और सोते-किसी भी

१-बिरही जंन की पारेख, बोलत मीठे बैंन।
  नृमळ जाकी आतमां, सीतळ जाके नैंन ॥ ४॥
२-विरह बंघूला हे सखी; मंन पीपळ को पात।
  को जांणे आंधी थकै, कहां कहां उडि जात ॥ १॥
३-मो मंन सिळता सलल ज्यों, रोक्यो रह्यो न जाय।
  सजन गुण सागर विनां, कहो त कहां समाय ॥ २॥
४-प्रगट पीव न परसिया, सोपनै पाया सोय।
  हिरदो जोगी मढ़ी ज्यों, बसै न ऊजड़ होय ॥ ७॥
५-प्रीतम तुव गुंण वेल है, पसरी मो उरि मांहि।
  नेह नीर सूं नित बधै, कबहू मूकै नाहि ॥ १॥
६-लोक वेद को डर नहीं, रस भीना दिन राति।
  कामी प्रेमी हरि भगत, नहीं सूझै दिन राति ॥ ४॥
७-सायर लहर्‌यां थोड़ियै, मो मंनड़ै वंगियांह।
  केई वहै तिरछियां, केई सांमुहियांह ॥ १६॥
८-ज्यों मंन पसरै चहूं दिसा, यों जे करि पसरंत।
  तो अळगां ही सजणां, कंठो गहण करंत ॥ १७॥
९-ज्यों मन मेरा तुझ सूं, यों जे तेरा होय।
  ताता लोहा ज्यों मिले, संधि न लखई कोय ॥ ३॥

समय वह प्रिय को नहीं भूलती, यदि यह बात असत्य हो तो प्रियतम उसको न मिले। इस प्रेम की गहराई का किंचित आभास इन शब्दो मे मिल जाता है —

> जागत हिरदै ही वसो, सोऊ तब नैणांह।
> पलक न भूलू प्रीतमां, वै इम्रत वैणाह ॥ ८ ॥
> तू जे कबहू वीसरै, जागत सोवत मोहि।
> प्रीतम जो कूडी कहू, तो पाऊ नहीं तोहि ॥ ९ ॥

पहली साखी म "पलक" शब्द और दूसरे मे "प्रीतम" की 'सौगध' कितनी सारगर्भित है! वह तो सर्वत्र ही प्रियतम के दर्शन करती है[1]। विरह की पीडा शब्दो मे अभिव्यक्त नही की जा सकती वह नेत्रो से देखी नही जा सकती। विरही व्यक्ति तो उस हरे वृक्ष के समान है, जिसको वन म भीतर-भीतर ही 'घुण' खाकर खोखला बना रहे है[2]। प्रकृति मे होने हुए कार्य व्यापारों द्वारा इस पीडा को केवल सकेतित ही किया जा सकता है[3]। विरह को नाना दशाओ का चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। विरहिणी *कभी अपनी खीझ प्रकट करती है—सब कोई यही कहते हैं कि हरि है। वह नही है,* यह कोई नही कहता किंतु वह यह बैठा है ऐसा कोई भी नही कहता[4]। कभी वह जिन नेत्रो से प्रियतम देखता है, वे नेत्र मागती है[5] और कभी सर्वस्व समर्पण करती हुई कहती है मेरा मन तो तुम मे मिल ही गया, हो सके तो तन भी ले लो। प्रेम व्यापार की अकथनीय कठिनाइयो का उल्लेख करना भी कवि नही भूलता। यदि अनजान प्रियतम मिले तो देह के समस्त गुण नष्ट हो जाएँगे और गुणवत मिले तो बिछुड्ते ही "मरण" हो जाएगा[6] अत मन लगा कर प्रीति किसी मे भी नही करनी चाहिए[7]।

गुरु परमानन्दजी ने गुरु शब्द का प्रयोग तीन अर्थों म किया है —

१-विष्णु या परमेश्वर जो सर्वोच्च गुरु है।

२ जाम्भोजी जो विष्णु ही हैं।

३ गुरु वह गुरु जो किसी को ज्ञान दे। आगे हम इसी पर विचार कर रहे हैं।

१-निस वासर आठू पहर, पलक न विसरत मुझ।
जहा जहा नैन पसारिहू, तहा तहा देखू तुझ ॥ १६ ॥

२-हरयौ अप द्रुग देखियत, विथा न जाणी जाय।
विरही रैवे रूख ज्यों ज्यों वन मा घुण खाय ॥ २ ॥

३-घनघोर हुई दह दिसा, वरसण लागो मेह।
खग वग पखी पोहमि परि, सब्रन सभाळो अह ॥ ५ ॥

४-हरि है सब कोई कहै नाही कहै न कोय।
असी कोइ ना कहै योह बैठा है सोय ॥ ३ ॥

५ नवकू तू देखै सदा, वहा विरद द्यों तोहि।
जा नीणा तू देखियै, असा नीण दे मोहि ॥ ५ ॥

६-जो अजान प्रीतम मिले, गुण सभ देहि जारि।
गुणवतो प्रीतम मिले, तो विछुरत देही मारि ॥ ३ ॥

७-प्रीतम प्रीत न कीजिय, काहू सू मन लाय।
अलप मिलन और वीछरन, भोचत ही जिय जाय ॥ १ ॥

परमानंदजी ने व्यापक रूप में इनका प्रयोग किया है। जो कोई भी ज्ञान दे, वही गुरु है; इसमें कुल नहीं "करणी" ही कारण है[1]। उदाहरण स्वरूप शेष, महेश, ब्रह्मा, नव जोगेश्वर, मार्कण्डेय तथा सनकादिकों के तो हरि का नाम ही गुरु है, देवों के बृहस्पति और राक्षसों के गुरु शुक्र हैं, प्रह्लाद ने गर्भ में ही नारद को गुरु बना लिया था, ध्रुव के उसकी माता सुनीति और गोपीचन्द के उसकी माता "मैणावती" गुरु थे। भरत के गुरु उनके भाई राम थे और तुलसीदास ने अपनी स्त्री से ज्ञान पाया था। इस प्रकार, जो 'सबद' दे वही गुरु है। सबद ज्ञान का पर्याय है। यह ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान या हरि-ज्ञान होना चाहिए। हरि के बिना ज्ञान-कथन करने वाला गुरु नहीं हो सकता, ऐसे को भूल कर भी गुरु नहीं करना चाहिए[2]। सतगुरु के दिए हुए ज्ञान से तो साच, झूठ, अच्छा-बुरा, कर्म-दुष्कर्म सभी दिखाई देने लगते हैं। उससे समता, शील, संतोष, सत्य, सुबुद्धि, विवेक, ध्यान, दान, भाव, दया, दीनता आदि उदात्त गुणों की उत्पत्ति होती है। वह तो सूर्य के समान है, जिसके प्रकाश में सब कुछ दिखाई देने लगता है[3]। गुरु द्वारा दिए गए ज्ञान से ही सतगुरु से भेंट होती है। बिना गुरु-ज्ञान के यह मनुष्य-देह पशु के समान ही है। इस कारण गुरु को छोड़ कर जो सीधे गोविन्द भजन करते हैं वे निराश रहते हैं। ज्ञान द्वारा गुरु अपने शिष्य को अपने समान ही कर लेता है[4]। अतः गुरु सेवा से गोविन्द मिलते हैं। अध्यात्म-क्षेत्र में इस प्रकार गुरु का बहुत महत्व है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति गुरु नहीं हो सकता। गुरु का इतना महत्व देख कर ही अनेक ढोंगी लोग गुरु बनने का उपक्रम करते हैं। ऐसे लोग स्वयं तो डूबते ही हैं, दूसरों को भी डुबोते हैं। परमानन्दजी ने इस कारण सच्चे और ढोंगी, दोनों प्रकार के गुरुओं के लक्षण भी संक्षेप में बताये हैं। जो ज्ञानी, ध्यानी, ब्रह्मचारी, सत्य-वक्ता और निष्कलंक हो तथा गर्व-गुमान और क्रोध से दूर हो, उसको निस्संकोच गुरु बनाना चाहिए। वह 'अजर जरने' और 'जीवित मरने' वाला तथा निष्कामी होता है। इसके विपरीत गुण झूठे गुरु के हैं। वह मान, मोह, संशय, शोक, भ्रम आदि के फंदे में पड़ा हुआ होता है, और तत्त्व-ज्ञान उसको होता नहीं।

साधु और सत्संग : परमानन्दजी ने साधु को बहुत ऊंचा स्थान दिया है। वह निस्पृही, निष्कामी, सतगुरु (विष्णु)-प्रेमी तथा लोभ और लाभ से न्यारा रहता है। वह उस स्थान पर नहीं रहता जहां कांच और कंचन को एक सा गिना जाता हो तथा पाप और

१-एक अपर उपदेस गुर, जीव ज उतिम सा सार।
कुळ को कारण को नहीं, करणी का उपगार॥ १२॥

२-अैसा गुर भूलि न कीजियै, हर विनि कथै गियांन।
दयाहीण दुरमती, पूजै पुजावत आंन।' २॥

३-लुघ दीरघ उडियण उदै, चंद विनां अंधियार।
गरु ग्यांन रवि प्रगट्यै, सब कुछि सूझणहार॥ २॥

४-ज्यों भ्रंगी लट तै भुंवरा किया, ज्यों गुर सिष आप संमानि।
गंग मिल्यां जळ गंग होय, यों सतगुर मेल्यै ग्यांन॥ ७॥

पुण्य पर विचार नही किया जाता हो[1]। दुनिया को अनेक काम हैं, किन्तु सन्तो के तो सुनना, सीखना या हरि-नाम लेना ही काम है[2]। साधु संगति और हरि-भक्ति कभी व्यर्थ नही जाती। इनसे दुर्मति दूर होकर मुक्ति मार्ग मिलता है। चाहे कितने ही तीर्थ किए जाएँ, मुक्ति इनके बिना नही मिलती। इसलिए जिस दिन हरिजन से मिलाप हो, वही दिन सुहावना है, इससे शरीर के पाप झड पड़ेंगे और पुण्य मिलेगा। जैसे नगर का गदा पानी गगा म मिलकर गगोदक कहलाता है वैसे ही पापी लोग साधु-सगति से पवित्र हो जाते हैं। अधिक क्या, सतगुरु और साधु जिसके हृदय म बसते हैं उसको पाप-दोष नही लगता और वह भगवान से भेंट कर लेता है। इस कारण साधु-सेवा हरि-सेवा ही है 'निरजण देव' इससे मिल जाते हैं। ऐसे साधु पुरुषो की सगति ही करनी चाहिए। पत्थर की नाव पर चढने मे न तो लोह ही तरता है और न पानी से ही पार हुआ जा सकता है[3]। अत सत्सगति करनी चाहिए।

आत्मानुशासन के मुख्य नियम सत्सग, भक्ति, ज्ञान आदि के अतिरिक्त परमानदजी ने व्यावहारिक जीवन म कुछ नियमो का पालन आवश्यक बताया है। इन नियमो का पालन करने से व्यक्ति व्यावहारिक जीवन म उन्नति और सफलता प्राप्त करता है, साथ ही उसका आध्यात्मिक उत्कर्ष भी होता है।

गृहस्थ के लिए उन्होने कई गुण बताये हैं। इनम धैर्य, दया, हरि भजन, शील, सतोष, सुभाव, सुकृत और कर्तव्य करना मुख्य है। अन्यत्र उन्होंने जीव के मोक्ष के लिए दान, शील, तप, भाव, सत्य, इन्द्रिय-निग्रह, क्षमा, सतोष, ब्रह्मचर्य और हरि-नाम स्मरण का पालन करना आवश्यक बताया है। प्रकारान्तर से कवि ने इन या ऐसे ही अन्य गुणो मे से कतिपय के पालन पर विशेष ध्यान आकृष्ट किया है, जिनम से प्रधान ये हैं —

(१) सहज भाव से रहना और धीरज रखना चाहिए। जैसे राह मे पडी हुई शिला पथिको के आवागमन से चूर-चूर हो जाती है वैसे ही इनके द्वारा सब पाप क्षय हो जाते हैं[4]। सहज क्या है ? काम क्रोधादि शत्रुओ को वस मे करके सहज भाव से विषय-त्याग करना ही सत्य सहज है[5]। भजन, भक्ति के साथ ऐसी सहज समाधि लगी रहने से मोक्ष प्राप्त होता है[6]।

१-कचण काच पारिख नही, गिणै ज एकै भाय।
पाप पुण्य पर मति नही, जिणि नगरी साध न थाय ॥ ४ ॥

२-कै सुणणो कै सीखणो, कै लागो हरि नाम।
दुनिया नै धधा घणा, सता ओही काम ॥ २० ॥

३-मूरिख सग न कीजियै, लोहो तिरै न नीर।
पथर केरी नाव चडि, कुण पहुचे तीर ॥ ३ ॥

४ पथ विच मा परवत सिला, चलत पथ हुई चूर।
धीरज सहज सुभाव सू, पाप जाहि सब दूर ॥ १५ ॥

५-सहजे जिणि विखिया तजी, पाचू पसर मिटाय।
सहज सोई सत्य जाणियै, सतगुर हुवै सहाय ॥ १ ॥

६-भजन भगति छाड मत, चल्य अपणै उनमाय।
सहज समाध्य लागी रहै, तो पावै पद निरवान ॥ ३ ॥

(२) ब्रह्मचर्य और सत्य का पालन करना चाहिए। इन्हीं को परमानन्दजी ने क्रमशः "जती सती" रहना कहा है। ये दो अनमोल रत्न हैं। जिसके पास ये है, वही धनवंत[1] है। जती-प्रसंग और सती-प्रसंग में कवि ने इन दोनों गुणों के विषय मे विस्तार से वर्णन किया है। 'जत सत' की बड़ी महिमा कवि ने गाई है। 'जत असवार' के समान है और सत 'पाळ' के[2]। जहां ये है, वहां हरि का वास है।

(३) स्तुति, निंदा और ईर्ष्या तीनों बड़े ही विकट रोग हैं। चाहे भोगी हो या जोगी, कोई विरले ही इनसे बचे हैं[3]। परमानन्दजी ने इनको त्यागने की बात बार-बार कही है। संसार में और चीजों का त्याग आसान है, किन्तु ये बहुत ही कठिन हैं; जो इनको त्याग सकता है, वही हरि- प्रेमी है। स्तुति- निंदा के अन्तर्गत ही मान- बड़ाई आते हैं। बड़े-बड़े वंश बड़ाई के कारण ही डूबे हैं,[4] अतः इनको त्यागना चाहिए।

(४) दुविधा और अधबीच की स्थिति में रहना बहुत ही बुरा है। भला या तो पूर्ण ज्ञानी होता है अथवा 'अजांण'। 'अधबीच' का मूढ़मति ऐसा ही है, जैसा जल में पड़ा हुआ पत्थर[5]। ऐसा व्यक्ति रजोगुण में ही रमा हुआ है, जिससे तमोगुण तो छूटा नहीं है और सतगुणों से परिचय ही नहीं हुआ है। किसी भी कार्य की सफलता की पहली शर्त यही है कि दुर्मति-दुविधा का त्याग करना चाहिये[6]। दुविधा में पड़ा हुआ व्यक्ति अनेक देवों-भूतों की अनेक तरह से पूजा-उपासना करता है और इस कारण वह सिद्धि प्राप्त नही कर सकता। अतः सच्चा हरिजन वही है जिसके दिल में दुविधा न होकर दृढ़ हरि-विश्वास है।

(५) करनी और कथनी की एकता मानव-चरित्र की महत्ता और उज्ज्वलता का प्रमाण है। लोग 'कथणी' तो बहुत करते है, किन्तु तदनुसार 'करणी' नही करते[7]।

१-दीपग जत सत दोय है, महा अंमोल रतन।
जग मां धंनवंत जांणियै, नर दूजा निरधंन ।। १ ।।
२-जत असवार समान्य है, सत पाळ समान्य।
जो पतापि लागी रहै, तो पांच एक असधांन्य ।। ५ ।।
३-असतुति नंद्या इरषो, दोन्यों दीरघ रोग।
जतंन करि करि थकि रह्या, कहा भोग कहा जोग ।। ६ ।।
जती सती जोगी तपी, सिध साध मंन्यासी सेप।
गिणां कहा इस रोग की, मिटै न मंन की रेप ।। १० ।।
४-मान बडाई वंस की, करता है सब कोय।
बूडो वंस बडाइय्यां, कोई हरिजंन न्यारो होय ।। ६ ।।
५-का पूरंग ग्यानी भलो, का तो भलो अजांण।
मूढमती अधबीच को, जळ मां जिसो पषांण ।। ८ ।।
६-दुबध्या दुरमति दूरि करि, एक मंनि होय चित लाय।
सद्धी मारग पाय कै, कुंण आवै कुंण जाय ।। २ ।।
७-कथणी तो बोहती कथै, करणी करै न काय।
फलयसी मंन की भावनां, बीज तिसा फळ पाय।

अन्यत्र इसी को कवि ने 'कहणी' और 'रहणी' नाम दिया है। जोगी, जगम, भक्त, सन्यासी आदि भी लोभ और ठगाई के वस मे होकर कहनी और रहनी मे एकता नही रखते, फिर उनको मुक्ति कैसे मिले[1] ? परमानन्दजी ने 'करणी', 'रहणी' को ही बडा माना है, कुल चाहे जैसा भी हो। नीच कुलोत्पन्न व्यक्ति भी अच्छी 'करणी' करके शोभा पाता है[2]।

(६) शारीरिक पवित्रता – विष्णोई सम्प्रदाय मे शुद्धता और पवित्रता रखने पर बडा ध्यान दिया गया है। २९ धर्मनियमो मे कई इसी से सम्बन्धित हैं। परमानन्दजी का कथन है कि हरि– पूजा और नाम–स्मरण नहा–धोकर शरीर को पवित्र करके, पवित्र वस्त्र धारण कर पवित्र स्थान मे करना चाहिए। चूकि यह नियम दैनंदिन व्यापार है, अत. पवित्रता रखना व्यावहारिक जीवन का प्रतिदिन का आवश्यक कर्म है।

(७) नशीली वस्तुओं का त्याग :– नशीली वस्तुओं का प्रयोग सम्प्रदाय मे वर्जित है। परमानन्दजी ने मास, भाग, अफीम, मदिरा–सेवन और धूम्रपान करने वालो की घोर भर्त्सना की है। ऐसे व्यक्तियों का कभी उद्धार नही हो सकता[3]।

(८) इनके अतिरिक्त कवि ने दया पालन करने, दूसरो को दुख न देने, गर्व–गुमान, लोभ त्यागने, हानि-लाभ मे समभाव से रहने आदि का अनेक बार उल्लेख किया है।

पाखण्ड :– प्रचलित अन्धविश्वास, दुराग्रह, निरर्थक रीति-रिवाज, वाह्याडवर आदि पाखण्ड कहे जा सकते हैं। परमानन्दजी ने ऐसे जिन पाखण्डो का उल्लेख किया है, उनमे से मुख्य ये हैं –

१–मूर्तिपूजा– के विरुद्ध कवि ने बडे युक्तियुक्त तर्क दिए हैं। विष्णु को–'अणघडिये' को पूजना चाहिए, घडी हुई चीज को नही, क्योंकि यदि कभी 'अणघडिया' रूठ गया तो घडी हुई सभी चीजों को तोड देगा[4]। इसलिये 'पाहण' कर्ता नही हो सकता, न वह स्वयं तैरता है और न तारता है[5]। उसको कर्ता कहने और पूजने वाला सीधा जमपुर जाता है। पत्थर–पूजक को अन्त समय मे पछताना ही पडेगा।

२–'आनदेव'–पूजा या 'आनवरत'– पूजा। विष्णु के अतिरिक्त किसी भी अन्य_ देव पूजा, 'आनदेव पूजा' या 'आनवरत' पूजा है। ऐसे उपासको के प्रति परमानन्दजी का

१–क–जैसी कथणी कथै, अैसी करणी होय।
पारवरभ कू परसता, पला न पकडै कोय॥ २॥
ख–जोगी जगम भगत सन्यासी, सबकै लोभ ठगाई।
कहणी है पण्य रहणी नाही, मुगति कहो कुण जाई॥ ४॥—हरजस।

२–ऊंच कुळ मा उपनू, करणी ऊच न होय।
नीच कुळ ऊची करै, सोभा पावत सोय॥ ५॥

३–मडियारी भगी पोसती, मदरा धुमरा पाय।
एता कदे न उधरै बाध्या जमपुरि जाय॥ ८॥

४–घडै घडावै ताकूं पूजै, अणघडियै नही मानै।
अणघडियो जे कबही रूसै, तो घड्या सवाया भानै॥ २॥

५–परसाद पाहण पावै नही, मुख्यो न देई जाव।
पाहण तारै न तिरै, पूज्या नहीं सवाव॥ ३॥

स्वर बड़ा तीव्र है। यद्यपि विष्णु नाम-जप से उद्धार होता है, तथापि 'आंन उपासी' तो नाम-जप करते हुए भी मोक्ष नहीं पा सकते[1] । यदि 'आंनदेव' की पूजा का भोजन भी हरिजन ग्रहण करले, तो वह हरि-विमुख हो जाता है। 'आंनदेव' का त्याग निर्वाण-प्राप्ति की पहली शर्त है। 'आंनवरन' की सेवा से किये हुए सुकर्म तो व्यर्थ जाते ही हैं, उल्टे पाप पल्ले बंधते हैं। ऐसा सेवक आवागमन के चक्कर में फंसा रहता है[2] ।

३- तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज आदि:- परमानन्दजी ने हिन्दू और मुसलमान, दोनों धर्मों में प्रचलित कर्मकाण्ड-तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज आदि को भ्रम कहा है। तत्कालीन समाज में इन रूपों में फैले हुए पाखण्ड का उन्होंने एक हरजस में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है[3] ।

४-भेष, दिखावा, कर्मकाण्ड :- कवि ने हिन्दू और मुसलमान, दोनों के धर्मों में प्रचलित ढोंगों की खूब निंदा की है। हिन्दुओं में साधु, अतीत, जोगी, भक्त, कीर्तनियों आदि सभी के आडम्बरों पर गहरा प्रहार किया है। यही, नहीं, बिना 'अणभैवाणी' कहने वाले कवियों और गायकों को भी उन्होंने फटकारा है। यह फटकार विशेषतः तत्कालीन विष्णोई-सम्प्रदाय के ऐसे गायणों पर कही गई ध्वनित होती है।

बिना हरि-प्रेम के 'भेख' लेकर माला लेना, 'कालर' जमीन में बोई हुई खेती के समान निरर्थक है[4] । काठ की मोटी माला रखना केवल भार ही है। मन में पाप, अपराध, घात, 'कुबध' रखने और 'भेख' अतीत का करने से साधु कैसे कहलाया जा सकता है? 'भेख' और दिखावे के कारण सच्चे और झूठे सभी 'साधु' एक से लगते हैं, किन्तु 'चिरमी' और सोने के मूल्य की भांति उनमें बहुत अन्तर है। शरीर को 'जोगी' करने से कोई लाभ नहीं, जोगी तो मन को करना चाहिए। केश मुंडाने से कुछ नहीं होता, गति तो मन मूंडने से होती है[5] ।

अनेक व्यक्ति छापा-तिलक लगाकर "भगत" बनते हैं, किन्तु बिना ज्ञान के वे दुनिया को दग्ध ही करते हैं। लोगों ने "भेख" में भगवान को भुला दिया है। सांई तो सभी

१-कांमी क्रोधी तसकरी, अै तो कर्‌या अनंत।
आंन उपासी कृतघन, तर्‌या न नांव जपंत ॥ १० ॥

२-आंन वरन सेवा करत, हरि सूं नाहीं चित्त।
तातैं आवागुवण मां, बारोबार फिरंत ॥ १२ ॥

३-तीरथ वरत अर सेवा पूजा, क्रिया धरंम आचारा।
पापी को अंस लेकरि पांवें, सभ ही किरिया छारा ॥ २ ॥
रोजा निवें त पाक नीवाजा, गोसत पाय पुलावें।
हरांम नजरि हक तैं न्यारा, विसति कहां तै पावें ? ॥ ३ ॥
जाया जीव जगत कूं मरणां, नेकी ते निमतारा।
परमांनंद विसंन जप्यां तैं, पावैं मोष दवारा ॥ ५ ॥

४-भेष लियो माळी लिवी, हरि सूं नाहीं हेत।
कंण विरिय्यां कामूं लुंणैं, कालर वाह्यौ पेत ॥ २ ॥

५-केस मुंडायां क्या हुवै, जे मंन जटधारी होय।
तंन मुंड्यां सूं भेप है, मंन मुंड्या गति होय ॥ ५ ॥

का एक है, किन्तु "भेख" बीच में पड गया। यदि भ्रम-कर्म दूर हों तो सबमें उस 'अदेख' के दर्शन किए जा सकते हैं[1]। जो लोग बिना किसी ज्ञान के हर्षित होकर मुँह ऊँचा करके कीर्तन करते हैं, वे अन्धे के समान हैं[2]। इसी प्रकार, वे लोग भी निन्दनीय हैं, जो बिना ज्ञानानुभूति के, अपने स्वार्थ के लिए इधर-उधर की "साखी" जोडते हैं। ऐसा करने वाले कपटियों को लज्जा भी नही आती[3]। ऐसे लोग दो चार साखी और पद कहकर अपने आपको बेहद अनुभवज्ञानी घोषित करते हैं[4]।

काजी और मुल्ला लोग भी भ्रम मे हैं। वे सच्चाई का हनन करते हैं। झूठी नमाज पढते और जीव-हत्या करते हैं। जीव-हत्या करने वाले सच्चे कैसे हो सकते हैं? जब उन्होंने हाथ मे करद ली तो दिल से दीन को भुला दिया, "जोर-जुलम" वे छोडते नही, अतः "लेखे" के समय वे बार-बार पछतायेंगे।

दसावतार वर्णन .—विष्णोई-साहित्य मे दसावतार-वर्णन की परम्परा रही है। यह हरि-यश-गान का एक माध्यम है। परमानन्दजी ने भी तीन भजनों (सख्या ३१, ३३ तथा ३५) और एक साखी (सख्या २) मे अवतार-वर्णन किया है। इनमे राम-लक्ष्मण तथा कृष्ण से सम्बन्धित रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं, क्योकि शेष अवतारों का तो प्राय उल्लेख मात्र ही कवि ने किया है। राम-चरित से सम्बन्धित कवि के ३ गीत (सख्या १९, २० तथा ३७) और २ हरजस (सख्या २१ तथा २२) हैं। इनमे राम-महिमा[5] तथा उनके विवाहोत्सव-वर्णन[6] सम्बन्धी गीत तो भक्ति भाव, वर्णन सौन्दर्य, भाषा-प्रवाह और प्रेषणीयता

१-सबका साईं एक है, बीच मा पडिग्या भेष।
भरम करम जदि परै हो, सबही माहि अलेप ॥ ९ ॥

२-हरषै करै ज कीरतन, ऊँचा करि करि तुड।
जाणैं बुझे क्यो नही, यो ही आधा हुड ॥ ४ ॥

३-इत उत को सापी मिलाय करि, अपणैं स्वारथ काज।
मन्य माया की ममता, कपटी नावै लाज ॥ २४ ॥

४-दोय च्यारि सापी कहै, दोय च्यारि कहै पद।
कहै हमकू अणभै फुरी, हम ग्यानी बेहद ॥ ३० ॥

५-रहिस्यै जुग बोल जिते धर अंबर, सायर सिला तिरावण हार।
इकवीसू ब्रह्मड उपावे, नाव तमीणैं सू निमतार ॥ १ ॥ टेक ॥
कवळाकत कवळ दळ लोचण, लिछमी पार न पावै छ्द।
ती सारिया जगन सोह जाणं, गिर सागर ऊपरे गोम्यद ॥ २ ॥
सेस महेस गुणेस धुन्य सारद, ब्रभ इद न पावै पार।
न कोई हुवो न कोई होयसी, दसरथ सुत सवौं दातार ॥ ३ ॥
बीस भुजा दस सीम विहडण, अरि गजण अभिणासी राम।
लका सा कोटि बभीषण भोजे, हीत कर गाव + + लाम ॥ ४ ॥

६-आवो सपी वर जोवा अम्है बीद नवरग कबर आयो ॥ १ ॥ टेक ॥
घेण घमड सू राजा रुघनाथजी, सीत सू वर इधको सवायो।
चोहु रथ बरोबरी रोह लागी रथा, पुडि रजी छोहणी गैण छायो ॥ २ ॥
राम लछमण भरथ और सत्रघण, देषि दसरथ हिरदो सिळायो।
मोतियां लुब मैं कोर हीरा माण्यका, सेहरो सीस सोभा सवायो ॥ ३ ॥

(शेषांष आगे देखें)

के कारण बहुत ही प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्ण-चरित से सम्बन्धित कवि का एक हरजस है, जिसमें सुदामा के द्वारिका जाने और कृष्ण-कृपा का उल्लेख है।

जाम्भोजी :—जाम्भोजी से सम्बन्धित परमानन्दजी की अनेक रचनाएँ हैं। साखियों में तो केवल उन्हीं के चरित, कार्य और गुणों का वर्णन हैं। जाम्भोजी को विष्णु मानते हुए कवि ने अनेक प्रकार से हरजसों में उनका महिमा-गान किया है। यह वर्णन दो प्रकार से है—दसावतार के साथ (हरजस ३१, ३३, ३५) तथा स्वतंत्र रूप से (हरजस ४, ३२, ३४, ३८, ३९)। इनमें से कई पूर्ण अथवा आंशिक रूप में अन्यत्र उद्धृत किये जा चुके हैं। भीमा सम्बन्धी एक हरजस द्रष्टव्य है[1]।

सम्प्रदाय की श्रेष्ठता और महत्ता :—उल्लेखनीय है कि परमानन्दजी ने अन्य धर्मों और सम्प्रदायों का विरोध बिलकुल नहीं किया; उलटे सभी धर्मों की महिमा स्वीकार करते हुए उन्होंने उदार समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। किन्तु उनकी दृष्टि में विष्णोई सम्प्रदाय सर्वश्रेष्ठ सम्प्रदाय है, क्योंकि वह विष्णु-जाम्भोजी द्वारा प्रवर्तित है[2]। तत्कालीन राजस्थान में बहु-प्रचलित और व्याप्त नाथ पंथ के ऊपर अत्यन्त कौशल से कवि ने विष्णोई-सम्प्रदाय की महत्ता प्रतिष्ठित की है। ऐसा करने में उन्होंने नाथ पंथ की निंदा या भर्त्सना भी नहीं की। शिव के माध्यम से उन्होंने यह कार्य किया, जिनका नामोल्लेख किसी न किसी रूप में, हरजसों और दोहों में कई बार किया गया है। एक हरजस (संख्या १३) में तो उन्हीं का वर्णन है। स्वयं शिव विष्णु का ध्यान करते और उनको "आदेस-आदेस" कहते हैं। शिव योगमार्ग के प्रवर्तक माने जाते है, नाथपंथ में वे "आदिनाथ" हैं। "आदेस-आदेस" नाथपंथी जोगियों की अभिवादन-प्रणाली है। इस प्रकार प्रकारान्तर से परमानन्दजी ने अपने ढंग से विष्णोई सम्प्रदाय को नाथपंथ से श्रेष्ठ घोषित किया है। एक

कोट रायकुंवरि रा तुरेवा कारणै, आप अदभुत वांनूं बनायो।
मंगळाचार आचार मिथलापुरी, जोवौ जनकराय मंडप छायौ।। ४।।
धुरै नीसांण नै तरगि गावै धवळ, परण्यजै आज दसरथ जायौ।
भगति रो दांन दे और मांगूं नहीं, मोहळो परमांनंद गायौ।। ५।।

१–भीमा सरंण्य गही सतगुर की, सरण काज सरी।। २।।
पाल्ह कोप करि नीवल चलायौ, सो भी चोट टरी।। ३।।
अ्रत सवाद भोजंन मां आवै, असी कृपा करी।। ४।।
जीवत जुगति जगत मां सोभा, ले लाष पचास तरी।। ५।।
परमांणंददास आस हरि पुरवै, दरसंण सदा हरी।। ६।।

२–सतगुर सत पंथ चालव्यौ, पहराजा प्रतपाळ।
सत जुग धरम सारां सिरै, विसंन करै रपपाळ।। १।।
चौकस त्यागो च्यारि जुग, मोह जांणै संसार।
परगट राजा पातिसाह, तागो ओह ततसार।। २।।
पाळै राजा पातिसा, सतगुर जांह सहाय।
राज रिध्य और खड्ग सिध, सतगुर कह्यो सुणाय।। ३।।

साखी मे मुकाम के थापनो के बलिदान का सोल्लास वर्णन इसी ओर सकेत करता है[1]। विष्णोई कवि के लिए यह स्वाभाविक ही है। परमानन्दजी के समय प्रात. और साय विष्णोई साथरियो और मन्दिरो मे हवन, सबदवाणी-पाठ तथा विष्णु-नाम स्मरण के पश्चात् अ'त मे आरतियाँ गाई जाती थी। परमानन्दजी ने भी २ आरतियो (हरजस सख्या ६८, ७५) की रचना की है।

उक्तियाँ और उपमाएँ :—परमानन्दजी की अनेक उक्तियों और उपमाओ मे तत्कालीन समाज का सुन्दर चित्रण हुआ है। उनकी प्राय सभी उक्तियाँ और उपमाएँ मरु समाज के दैनदिन लोक-जीवन से सम्बन्धित हैं। भाव-प्रेषणीयता की दृष्टि से इस कारण कवि बहुत ही सफल हुआ है। इनमे यत्रतत्र नीति-कथन भी आ गया है, जो स्वाभाविक ही है। कवि ने लोक-प्रचलित उक्तियों को अपने रग मे रग कर व्यक्त किया हैं। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

१–पर नारी छाती छुरी, जिसी ल्हसण की बाष।
खूणें बैसि अर लीजियं, चोडें प्रगटै तास॥ ३॥
२–काच कटोरो दूध कळी, मांणिक, मोती, मंन।
अतरा भागा न मिलें, करो ज लाख जतन॥ ३॥
३–साव सती अर सूरिवां, ग्यानी अर गज दत।
ऐता निकसि न बाहुड़ै, जे जुग जाहि अनंत॥ १६॥
४–आपनपौ न सराहियें पर निंदियें न कोय।
मात सराहै पूत कूं, लोक न मानें सोय॥ ५॥
५–सोनूं पीतळि सारेसा, काच कण, रूपो रांग।
एकै मोलि विकात है, जा पै विद्या न मांग॥ ४॥
६–ग्यानी कूं ग्यानी मिलें, करै ग्यांन की बात।
मूरिख कूं मूरिख मिलें, एक मुकी दुजो लात॥ १०॥
७-दान सकति हरि भगति कू, करतो वार म लाव।
उंमरि अैसे जात है, ज्यों लोहै को ताव॥ ४॥
८-अळप भाव हरि भगति को, जाकै हिरदै होय।
जो कर अगळी हालता दाग न देवै कोय॥ ४॥
९–मन मतग रातो डुंनी, विसार्यो करतार।
घुंवै घुंवरि का लोर ज्यों, जात न लावै वार॥ ७॥

१-इस साखी का अन्तिम छन्द द्रष्टव्य है —
वड तागो वड थानि दोय हठीसप करायो।
दापवियो ज्यों देव, कियो जा गुर फुरमायो।
करता फुरमाई कीवी माई, साम्य कोज सवारिया।
पहग धार प्र काज पडिया, भीकम पार उतारिया।
अठारासै चोडोतरै पोह सुदि बीज मगळवारियो।
परमाणद कहै मुकनि पोहता, वड तीरथ साको कियो॥ ६॥ २॥

१०–बुग ध्यांनी पीवणां सरप, सीख करण की चाहि ।
राज दवारै यों फिरै, ज्यों हरिघाई गाय ।। ३ ।।
११–वेद पढो जोतिग पढो, चतुराई संमरथ ।
मेह मोत और रिजक का, कागद सांईं हथ ।। ४ ।।
१२–जाति पांति कुळ एक है, वसै एक ही गांय ।
अकलि दोड़ावैं एक सी, भाग वरोवरि नांहि ।। ७ ।।

इनके अतिरिक्त कवि ने अपने ढंग से अनेक परिभाषा–व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं।

छत्र–प्रसंग प्रधानतः संख्या–सूचनाओं से ही सम्बन्धित है। इनमे प्रत्येक वस्तु के नाम के साथ उसको सूचित करने वाली संख्या कवि ने दी है। ये प्रसंग दो प्रकार के हैं–१ एक वह जिसमें सम (२, ४, ६ आदि) तथा दो विषम (१, ३, ५) रूप में वस्तु–नाम–सूचक संख्या–ज्ञान कराया गया है। इनमें क्रमशः २० तथा २१ तक की संख्यायें हैं। दूसरे वह जिसमें क्रमवार १ से ३६ तक की संख्याओं की सूचक वस्तुओं की गणना की है। दोनों ही एक प्रकार से एतद् विषयक लघुकोष हैं।

परमानन्दजी की रचनाओं में छन्द वैविध्य नहीं पाया जाता। उन्होंने दोहा, सोरठा, छप्पय, 'छन्द', डिंगल गीत और हरजस रूप में ही अपनी भावाभिव्यक्ति की है।

हस्तलिखित प्रतियों (संख्या २०१ तथा २२७) में जिस रूप में उनकी उपर्युक्त रचनाएँ मिलती हैं, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'अवगुंणी साखी' (साखी अर्थात् दोहा) (विविध प्रसंग संग्रह) तो पूर्ण है, किन्तु हरजस, साखियाँ और गीत और भी हो सकते हैं। अधिक सम्भावना यही है कि ऐसी रचनाएँ और भी थीं, जिन सब का संकलन कवि कर नहीं पाया किन्तु आज उनका पता लगाना दुसाध्य सा व्यापार है।

गद्य :—परमानन्दजी की गद्य–रचना का केवल एक ही नमूना मिलता है। 'साका' (प्रति संख्या २०१, फोलियो ५४६ से ५४७) शीर्षक के अन्तर्गत उन्होंने विष्णोई सम्प्रदाय, जाम्भोजी, जाम्भोजी के वैकुण्ठवास के पश्चात् की स्थिति तथा संवत् १८०४ तक की कतिपय मोटी-मोटी बातों और सूचनाओं का उल्लेख किया है। यह सरल, सुष्ठु, कथा-विवेचना-संयुक्त प्रवाह पूर्ण राजस्थानी गद्य का उत्तम उदाहरण है। उदाहरणार्थ आदि से जाम्भोजी के जन्म तक का अंश यहां प्रस्तुत किया जाता है। उल्लेखनीय है कि लेखक ने विष्णु से ही विष्णोई सम्प्रदाय का सम्बन्ध स्थापित किया है :—सतजुग रै पहलै पाइयै अब वीसनोई हुंता। पछै असर दांणवां ध्रंम वछेद कीयौ। पछै सतजुग रै पछैन पाइयै पहलाद सुरेजवंसी ध्रंम कायम कीयौ। ता पछै वळे ध्रंम चळ विचळ हुवौ। पछै राजा हरेचंद रघुवंसी तेता-जुग मांहे ध्रंम कायम कियौ। पछै असर दांणवां वळे ध्रम छुड़ाय दीन्हौं। राजा जुदेसटळ सोमवंसी दुवापर मां ध्रम कायम कीयौ। श्री ठाकुरां तीन्य जुग मां तीन्य साधां नै वटाई दीनी। भगते काज्य श्री विसेन तीन्य जुग मानव अवतार धार्‌या। नवाइ अवतारां अनन्त असर पै कीया अवर चीरत अवतार असंख्या। साध सीध असंख्या। ध्रंम नेम होम जप तप कारण कीरिया सीळ संजंम साच सीनांन सुभायपा जीवत मरणां अजर जरणां एता दुहेला

और सभ सुहेला। कळ जुग मा थवे धर्म वछेद हुवो। पछे समत १५०८ श्रये मीती भादवा वदे ८ वार सोमवार अतका नपत श्री विमनजी गाव पीपासर मधे लोहट पु वार रे घरे चीरत रूपी प्रगट हुवा। पार कणी पायो नही"।

भाषा की दृष्टि से भी परमानन्दजी की रचनाओ का विशेष महत्त्व है। वह तत्कालीन लोक-प्रचलित मरुभाषा है। विक्रम सत्तरहवी शताब्दी उत्तरार्द्ध और अठारहवी के पूर्वार्द्ध की बोलचाल की मरुभाषा का वह बहुत ही सही रूप प्रकट करती है। इस दृष्टि से उनकी भाषा एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है।

परमानन्दजी अपने समय के प्रमुख राजस्थानी कवियो मे से थे। 'हरि श्रणभैवाणी' के श्रेष्ठ सिद्ध कवियो मे उनकी गणना है। उनकी रचनाओ मे एक साथ ही राजस्थानी साहित्य की चारण, लौकिक और सिद्ध काव्य-धारा के सहज दर्शन किए जा सकते हैं और अन्तिम धारा मे तो आमूल—चूड निमग्न हुआ जा सकता है। सिद्ध-काव्य-रचना के क्षेत्र मे तो वे महान् हैं ही, दुर्लभ और अमूल्य रचनाओ को लिपिबद्ध करके भी उन्होने महान् और अनुकरणीय साहित्य-सेवा की है।

८९. गोविन्दरामजी बागड़िया : (सवत् १७५०-१८५०) : "जम्भाष्टक" (-प्रति ८, ७८, २८१)।

ये गाव घोळासर (फलोदी के पास) के बागडिया जाति के विरक्त महात्मा थे। अपने समय के ये बहुत ही प्रतिष्ठित और मान्य विष्णोई साधु तथा सस्कृत के विद्वान् थे। सस्कृत मे रचित इनका जम्भाष्टक बहुत प्रसिद्ध रचना है। इसके ८ छन्दो मे श्रद्धाभक्ति पूर्वक जाम्भोजी का महिमागान किया गया है। इसके निर्माण के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि ईर्ष्यावश मुकाम मे किसी ने इनको भोजन मे जहर दे दिया, जिसका पता शीघ्र ही लग गया। इस पर ये सम्भराथळ की ओर चल पडे और साथियों से कहा—जो मैं बोलू उसे लिखते जाओ। फलस्वरूप जम्भाष्टक का निर्माण हुआ। वहा पहु च कर इन्होंने रेत फाँकी जिससे जहर उतर गया। इस घटना के कई वर्ष बाद तक य जीवित रहे। लगभग १०० वर्ष की आयु मे सवत् १८५० के आसपास इनका स्वर्गवास हुआ। जम्भाष्टक पर विष्णुदास ने गद्य मे 'विष्णुविलास टीका' बनाई थी (देखें—विष्णुदास, कवि सख्या ९७)। "अष्टक" के दो छन्द इस प्रकार हैं —

मुखे चारु शोभं महा मन्द हास्यं, करे जाप मालम् गले जीर्ण चैल।
महागौर रक्तं शिरस्थान जूटं, परब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्॥ १॥
गतं रोग शोकं गतं द्वेष रागं, गतं पाप पुण्यम् गत क्रोधकामम्।
गुणातीत विष्णुं निराकार रूपं, परब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्॥ ५॥

९०. रामलला : (अनुमानतः विक्रम संवत् १७७५-१८५०) :

ये परमानन्दजी वणियाळ के समकालीन और नगीना के सत्संग प्रेमी गृहस्थ विष्णोई बताए जाते हैं। इनका नाम रामलाल था किन्तु कविता रामलला नाम से लिखते थे[1]। विष्णोई साधुओं में प्रचलित परम्परा के अनुसार ये विष्णोई कवि माने जाते हैं; इनकी रचनाओं से तो ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। विष्णोइयों के पास रुक्मिणी मंगल की प्रतियों का बाहुल्य तथा उनमें प्रचलित इनके "हरजसों" से भी इसकी पुष्टि होती है। पदम कृत ब्यांवले के "बृहत्" रूप में इनके 'रुक्मणी मंगल' के छंदों का पाया जाना भी यही द्योतित करता है (द्रष्टव्य-पदम भगत, कवि संख्या ५)। इनकी ये रचनाएँ प्राप्त हैं :-

(१) रुक्मणी मंगल[2] ।

(२) "हरजस" १-सांवरें सूं प्रीति लागी री हिवड़ा के बीचि ॥ (प्रति ३६७)।
२-समझ मन मूरख मोरा रे। (प्रति संख्या १४०)।
३-अब तो माने न हठीलो मेरी बतियां[3] ।
४-मेरी श्यामसुन्दर सों लागी अंखियां वो[4] ।

अपने समय के ये अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय कवि थे। विभिन्न स्थानों में रुक्मिणी मंगल की अनेक प्रतियों और संगीत रागकल्पद्रुम में इनकी रचनाओं का पाया जाना भी यह द्योतित करता है। इनकी ख्याति का मुख्य आधार रुक्मिणी मंगल है, जो पदम भगत कृत हरजी रो ब्यांवळो से अनुप्रेरित होकर लिखा गया कहा जाता है। दोनों का छन्द परिमाण भी बराबर सा है। यह २७० छन्दों का कृष्ण-रुक्मिणी विषयक आख्यान काव्य है, जो १३[5] प्रचलित राग-रागिनियों में गेय है। इसकी कथा पुराण-प्रसिद्ध होते हुए भी कई कारणों से संक्षेप में यहां दी जा रही है :-

एक समय राजा भीष्म (भीष्मक) के यहां नारदजी आए। उनकी पत्नी ने रुक्मिणी

१-नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित, संवत् २०२१,-हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (सन् १९००-१९५५ ई० तक)। द्वितीय खंड, पृष्ठ ३०१ पर भी ऐसा ही बताया गया है।

२-(क) प्रति संख्या ८०, १०८, २०५, ३३४ और ३६४।
(ख) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (सन् १९००-१९५५ ई० तक)। द्वितीय खंड, पृष्ठ ३०१, ३२७, काशी।
(ग) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के हिन्दी के ह० लि० ग्रंथ-संग्रह में भी इसकी प्रतियाँ हैं।

३-कृष्णानंद रागसागर विरचित संगीत राग कल्पद्रुम, प्रथम खंड, पृष्ठ ६०८, कलकत्ता, संवत् १९७१। किंचित् पाठान्तर के साथ यह पृष्ठ ६०९ और ६३९ पर भी दिया गया है।

४-वही, पृष्ठ ६३२।

५-देवगिरी-१३६; गौड़ी-७; बिलावल-१४; बसन्तकानड़ो-८; सोरठ-१७; काफी-५; बिहाग-१६; जैजैवंती-९; खंमावची-६; केदारो-४; परज-१८; उबटन-१६ और भैरूं-८।

को दण्डवत् कराया। नारदजी ने कृष्ण को वर रूप मे पाने का आशीर्वाद दिया और उनकी महिमा बखानी। रुक्मिणी कृष्ण से ही नही, कृष्ण वर्ण मात्र से प्रेम करने लग गई। यह लक्षण देखकर रुक्मैये ने उसके लिए वर देखने की बात माता-पिता से कही। उन्होने नारद के वरदान की बात बताते हुए जगत-उद्धारक कृष्ण का नाम लिया। इस पर उनके महत्व के सम्बन्ध मे तर्क-वितर्क करते हुए उसने चदेरी के शिशुपाल के लिए, देवोत्थान एकादशी का विवाह तय करके लग्न भेज दिया। वह जरासध सहित बत्तीस अक्षोहिणी सेना लेकर कुन्दनपुर आ गया। अत्यन्त व्याकुल होकर रुक्मिणी ने देह-त्याग का विचार किया। उसी दिन स्वप्न मे हरि-मिलन का आश्वासन मिला। वैवाहिक लोकाचार करने के लिए माता के समझाने पर रुक्मिणी ने स्पष्ट कह दिया— मेरे वर तो श्रीकृष्ण ही हैं। वह निरन्तर उनका स्मरण करने लगी। एक पूर्वी ब्राह्मण को देख उसने डरते हुए उसको बुलाया और विनयपूर्वक मुँह-मागा धन देने का कह कर पत्र द्वारा द्वारिका मे श्रीकृष्ण को सदेश भेजा। उसमे उनको तीन दिन मे दर्शन देने और अम्बिका मन्दिर मे हरण करने का लिखा। ब्राह्मण मार्ग मे सो गया पर नारायण-कृपा से द्वारिका मे जगा। श्रीकृष्ण पत्र मे लिखा समाचार जानकर पहर भर रात्रि रहते ही विप्र के साथ रथ से कुन्दनपुर आ गए। सुबह कृष्ण को वहा न पाकर और उस ब्राह्मण के आगमन की बात जान कर हलधर ससैन्य बरात सजाकर कुन्दनपुर आए और वहा कृष्ण से मिल गए। उनको देखकर हर्ष से रुक्मिणी मूर्च्छित हो गई। उसकी माता ने अन्यथा बात कहने के कारण क्षमा-याचना की। ब्राह्मण ने बरात ठहरा कर यह समाचार कहा और मुँहमागी दक्षिणा पाई। कृष्ण की बरात के नगाडे सुनकर पुरवासी डरने लगे। राणी की सलाह पर राजा भीष्मक ने अगवानी की और तिलक किया, उनके भाई ने समयानुसार भोजन की प्रार्थना की। बिना बुलाए कृष्ण के आने पर रुक्मी ने अपने पिता से उनके विषय मे बहुत बुरा-भला कहा और चारो ओर चौकी बैठा दी ताकि वे कुछ लेकर भाग न जाएँ। रुक्मिणी अम्बिका-पूजन को चली। उसके साथ चार लाख सखियाँ और इतने ही पहरेदार सवार थे। कृष्ण पहले से ही देवी के मदिर पहुच गए थे। रुक्मिणी ने देवी-पूजा की और कृष्ण को पति रूप मे पाने का वरदान पाकर मन्दिर से चली। अपने चारो ओर पहरा देख उसने घू घट उठाकर जरा सा मुह दिखाया जिससे सब नृपति मूर्च्छित हो गए। तभी श्रीकृष्ण रथ लेकर सामने आए। उनको देख कर सब स्त्रिया मोहित हो गई। उन्हाने रुक्मिणी की बाह पकड रथ पर बैठा लिया और चल पडे। इस पर दोनों ओर की सेना में भयकर युद्ध होने लगा। शिशुपाल जरासध और रुक्मी बुरी तरह हारे। रुक्मी को तो कृष्ण ने बाल काट कर रथ के पीछे बाध लिया किन्तु रुक्मिणी और हलधर के कहने पर छोडा। विजयी होकर कृष्ण सकुशल द्वारिका आए। वहा विधि-पूर्वक-धूमधाम से दोनो का विवाह हुआ। कुन्दनपुर की नारियो की मधुर गालियो के साथ आयोजन सम्पन्न हुआ।

इसकी कथा बताते हुए डा० सियाराम तिवारी ने अपने शोधप्रबन्ध[1] मे अत्यन्त

१–हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य, हिन्दी ससार, दिल्ली–६, प्रथम सस्करण, सन् १९६४।

भ्रामक बातें लिखी हैं, जो मूल प्रति का ठीक से अध्ययन न कर सकने अथवा काव्य को न समझने के कारण हुई हैं। नीचे ऐसी कतिपय बातों का, डा० तिवारी के कथन और सम्बन्वित पाठ के उद्धरणों सहित उल्लेख किया जा रहा है :—

१–"हलधर को साथ लेकर वे ब्राह्मण के साथ ही चल पड़े" (पृष्ठ १२८)।
—हलधर को साथ लेकर कृष्ण नहीं गए थे, वे तो बाद में द्वारिका से रवाना हुए थे[1]।

२–"कृष्ण के आगमन से सब बड़े प्रसन्न हुए लेकिन रुक्मैया रोने लगा" (पृष्ठ १२८)।
—इसका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है[2]।

३–"कृष्ण ने बांह पकड़ कर रुक्मिणी को रथ पर चढ़ा लिया और जांघ पर बैठा लिया। रथ द्रुतगति से चल पड़ा। कृष्ण उसे अम्बिका-पूजन के लिए ले चले। देवी के मन्दिर तक पहुंचते-पहुंचते चार लाख सखियां आ मिलीं। अम्बिका पूजन के पश्चात् परिणय-संस्कार सम्पन्न हुआ" (पृष्ठ १२८)।
—ऊपर लिखे कथासार से विदित होगा कि यह कथन सर्वथा गलत है[3]।

१–नोबत निसान घोर डंका घंटा झालर संख बजे।
पहर रैण जब रही है पिछली देव पहरे रथ सजे ॥ २४ ॥
रथहि मैं बैठाय द्विज कूं, सारथी आपन भये।
निकट आये कुन्दनपुर के, देषि माढी मंडप छये ॥ २५ ॥
प्रात उठ उठ भूप मुजरै, कटहरै सो जाय लगे।
दरबार मां रणछोड़ नाहीं, आज पोढे ना जगे ॥ २६ ॥
काल्ह अपूर्वी विप्र आयो, ता संग हरि उठ गये ॥ २८ ॥
हलधर कहैं मैं अबहि जांनी, कुंदनपुर मां राजा एक है।
कन्या ताकै रुक्मणी जिन हरि मिलन की लई टेक है ॥ २९ ॥
साम के जु सहाय काजै, पाछै सैं हलधर सजे।
सब दल जीत कै मैं कृष्ण ब्याहूं, रणतूर निसान ही बजे ॥ ३१ ॥

२–जनवासै चलि दुष्ट आयो नवो मंदिर हरि लयो।
रुक्मइयो अति ही रिसाय कै तात सें बोलत भयो ॥ १९ ॥
बिन बुलायो कूंन आवै, रंक हू नहीं आवही।
निरादरा को जाचक आवै, रैन दिन ते गावही ॥ २० ॥
छत्री नहीं यह रंक कहियै सिंघ सूता न जान रे।
संभार बोल तो डावड़ा, समै पन पहचान रे ॥ २१ ॥
डरो तो तुम गृह छाड़ो, अब ही राज काहे कूं करो।
अतिगय जादू के बटे छत्री रयत होय कै दिन भरो ॥ २२ ॥
कुबुधि नाहीं कह्यो मांनै. कह्यो आपन राप ही।
चिमुप बोलें श्री हरि सों, तर्क मुप तैं भाष ही ॥ २३ ॥

३–देवी कै मंदिर जाय पहुंची, धोक दे चरणों रही।
आज मोनै वर देहि माता, सकल साची तो सही ॥ ३१ ॥
मगन होय चली रुक्मणी गावै मंगल चहुं ओर ही।
देहरा पाछै दियो हरि निकस भये बांई छोर ही ॥ ३६ ॥
रुक्मणी हियै सोच कीनों, चौकी म्हारै संग रही।
कदाच आय कर गहै प्रीतम, होय और की और ही ॥ ३७ ॥ (शेषांश आगे देखें)

४–"देवी के मन्दिर तक पहुचते पहुचते चार लाख सखिया आ मिली" (पृष्ठ १२८)।
—यह भूल है, क्योंकि सखियाँ और सैनिक उनके साथ ही चले थे[1] ।

५–"रामलला और विष्णुदास को छोडकर सबने कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह द्वारका मे कराया है" । (पृष्ठ २९४)।
—यह सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। रामलला ने द्वारिका मे ही विवाह कराया है[2] ।

६–"रामलला का रुक्मैया सबसे विलक्षण है। वह रुक्मिणी के वर के लिए कृष्ण का विरोध इसलिए नही करता है कि कृष्ण अहीर है, आवारा है, बल्कि इसलिए कि वह भगवान है। इस तरह वह यहा भगवान से जन्मजात शत्रुता रखने वाले राक्षस के रूप मे ही चित्रित हुआ है। इसके साथ ही वह अत्यन्त भीरु भी है। कृष्ण का आगमन जानकर वह रोने लगता है" (पृष्ठ २९६)।
—यह असगत है। रुक्मैये मे विलक्षणता की कोई बात नही, न ही वह भीरु है। वह जाति-अभिमानी वीर पुरुष है। वह कृष्ण को अहीर जानकर ही विवाह नही करना चाहता। उसके माता-पिता जब कृष्ण को ब्रह्म बताते हैं, तो वह इस पर विश्वास न करके उनके ब्रह्मत्व का खण्डन करता है। उसके विरोध का एकमात्र कारण कृष्ण का उसकी जाति के समकक्ष न होकर अहीर होना ही है[3] । इसकी

घूघट रो पट खोर ऊचो, नेक बदन दिखाइया।
मुरछा भये नृपति सब ही, सनमुख रथ ले आइया ॥ ३८ ॥
नैन भरि हरि को निहारे, अचल पट वोट जु लियो।
सुकवि कै रमा बोली नाही, पलकन से आदर कियो ॥ ३९ ॥
देखि छवि बनवारी जु की, मोहत भई सब नारि ही।
हाक घोरा कृष्ण रथ के, बाह रुक्मणी की गही ॥ ४० ॥
जघ पर बैठाय लीनी रथ जु आतुर हाकिया।
रुक्मणी उर आनन्द बाढ्यो, जय जय नर सब भाखिया ॥ ४१ ॥

१–आदि देवी अबिका जहा रुक्मणी पूजन चली।
नाना विध के होय कतूहल, चार लाख सखी आय मिली ॥ २७ ॥
दोय लाख चोकी हुइवा, दोय लाख असवार ही।
एते सामगरी से क्वरि रुक्मणी अबिका पूजन चली ॥ २८ ॥

२–जीते हैं जादू बस जय जय जीते हैं जादू बस।
ले आये अपनी दुलहनी कों सब असुर किये हैं विध्वस ॥ १ ॥
पृथ्वी पति सब निवत बुलाये, ब्रह्मा सेस महेस।
सोरठ सुघर देस मैं जहा व्याहे कृष्ण नरेस ॥ २ ॥
माधोपुर मैं रच्यौ मडप रतन कलस धराय।
विधाता वेदी रची जाकी छवि बरणी न जाय ॥ ३ ॥ (राग केदारो)
रत्नागर सागर चढ्यौ छिन छिन सोभा अगर।
रामलला हरि व्याहिये धन्य माधोपुर नगर ॥ १ ॥ (राग पराग)।

३–देखि देखि कै लक्ष लक्षमी कौं कुटब सगरो मोहियो।
रुक्मइया कहै भीष्म सौं, कोई भूप बारो जोइयो ॥ ६ ॥
एक समै नारद मुनि आय, कृपा करि जिन वर दियो।
वै ब्रह्मऋषि जब हर्ष कै, बसुदेव सुत को नाव लियो ॥ ७ ॥ (शेषाश आगे देखें)

पुष्टि कृष्ण-आगमन पर कहे गए उसके कथन से भी होती है, जिसका उल्लेख पहले कर आए हैं।

डा० तिवारी को रामलला के कथा-विन्यास में नियोजन का अभाव (पृष्ठ २९८) इसी कारण लगा है कि वे इसको ठीक से समझ ही नहीं पाए। इसकी कथा सुनियोजित और चिर परिचित है।

यह संवाद, पात्र-कथन और वर्णन-प्रधान आख्यान काव्य है। इसमें रुक्मैया-भीष्मक (दो स्थलों पर), रुक्मिणी-उसकी माता, रुक्मिणी-पूर्वी ब्राह्मण, ब्राह्मण-कृष्ण, द्वारिका-वासी-हलधर, राणी-भीष्मक, रुक्मैया-शिशुपाल, और रुक्मिणी-कृष्ण के संवाद हैं। ये छोटे-छोटे, प्रसंगानुकूल, स्वाभाविक और नाटकीय गुणों से युक्त हैं। यत्र-तत्र बोलचाल की उक्तियों का भी बहुत फबता हुआ प्रयोग है[1]। उदाहरणार्थ कृष्ण-बरात आगमन पर भीष्मक और राणी का संवाद द्रष्टव्य है[2]।

पात्र-कथन नारद, रुक्मिणी, उसकी सखियों और कुन्दनपुर की नारियों के हैं। इनमें रुक्मिणी के भावोद्गार परम्परागत होते हुए भी विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते

जान देहु इस बात कूं वह राजा कोनै कियौ ॥
गावरी बन बन चरावै, छाछि पी पी वह जियौ ॥ ८ ॥
लष चौरासी जोनि मैं कहु कृष्ण बिन को चार ही।
कृष्ण पावै कृष्ण पीवै कृष्ण जगत उधार ही ॥ ९ ॥
कृष्ण को तुम ब्रह्म कहो तो ब्रह्म के गुन गाइयै।
ब्रह्म व्याहे कौन के घर, सो तो मोह बताइयै ॥ १० ॥
ब्रह्म पूजा ब्रह्म सेवा, ब्रह्म को भज लीजियै।
ब्रह्म कै कुल कर्म नाहीं, बेटी किस बिध दीजियै ॥ ११ ॥
जाकै कंचन कोट समुद्र षाई, रतन हीरा वहु जरे।
ब्रह्मादिक जाकी करै सेवा, इन्द्र आगै रहैं परे ॥ १२ ॥
कहा भयौ दिन दोड तें जादू वंस कुल जे बाढो है।
आदि राजा सिसपाल चंदेरी सूर सांवत गाढो है ॥ १३ ॥
मात पिता को वचन लोप कै लग्न आप ही लिष दियौ।
चावल चहोडा देत मस्तक कह्यौ काहू को ना कियौ ॥ १४ ॥-राग गौड़ी।

१-क-तेल छूवो तंबोल हि पावों, पहरो सुन्दर नारी।
और कहे तो थों मैं गारी, तो लागै महतारी ॥ १ ॥ (माता-रुक्मणी)।
ख-हां जी जांण दो इस बात को ऐसी छाती कुंन की।
चहुं और द्वार बंध करावो जहां न गम है पूंन की।
(-कृष्ण आगमन के समय रुक्मैये के कथन पर शिशुपाल का उत्तर)।
२-बारात अब इक और आई, राणी कहो कहा कीजियै।
आगूणी ले जाहु सन्मुष आये कूं आदर दीजियै ॥ ६ ॥
दुष्त होसी सुपत नाहीं मन हमारा यों कहै।
परच पोटा आपणां, सदा परनाले पांणी वहै ॥ ७ ॥
कुबुधि तुमरे पुत्र कीनी, सो तो भुवते छूट ही।
कर्म लिष्या सोई होयसी, पण कृष्ण तै क्यूं टूट ही ॥ ८ ॥
नारद मुनि ने वचन बोले, ते क्यूं अहला जायसी।
यह व्याहता है कृष्णजी की और झूठा रायसी ॥ ९ ॥

है[1] । कथा के तो ये स्वाभाविक अंग हैं हीं, मुक्तक रूप में भी मार्मिक और प्रभावशाली हैं। इनसे आख्यान के नाटकीय गुणों और प्रभविष्णुता में वृद्धि ही हुई है। नारद के अतिरिक्त शेष सभी के कथन मुक्तक गीतो की भी मोहक मणियाँ हैं। इनसे कहने वाले पात्र के साथ श्रोता-पाठक सहज ही आत्मीयता का अनुभव करता है। अन्य आख्यानो की तुलना में इसकी यह विशेषता है।

वर्णनो मे रुक्मिणी का कृष्ण-प्रेम, द्वारिका की राजसभा और श्रीकृष्ण की शोभा, रुक्मिणी की व्याकुलता, युद्ध तथा विवाह और रुक्मिणी-शृंगार[2] प्रमुख हैं। वर्णन की दृष्टि से तो ये सुन्दर हैं किन्तु पात्र-विशेष के कथन न होने के कारण सहज नाटकीय प्रवाह मे किंचित् बाधा अवश्य डालते हैं। नाटकीयता की दृष्टि से इसका यह कमजोर पहलू है। इससे यह भी सकेत मिलता है कि उन्नीसवी शताब्दी के लगते न लगते आख्यान काव्यधारा क्षयिष्णु होने लगी थी और उत्तरार्द्ध मे ऊदोजी अडींग के 'प्रह्लाद चरित' (रचनाकाल-सवत् १८९८) के साथ शुष्कप्राय हो गई थी। रुक्मिणी मगल विषयक आख्यान काव्यों मे विष्णोई साहित्य की ही नही, एक प्रकार से राजस्थानी साहित्य की भी यह अन्तिम रचना कही जा सकती है।

एकाध स्थल पर कवि ने प्रसग-वश श्रोता को भगवदोन्मुख करने का सकेत भी

१—कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं-(सोरठ में दोहरा) :—
मेरे मन की न हुई बात सखी री मैं क्या करौं ॥ टे०
रामलला रुक्मणी कहै, प्रान तजूं या ठोर ॥ १ ॥
हा हा मैं तो हरि वरे, और सकल बप वीर।
रामलला सुनी असुर कौं, लागी तजन शरीर ॥ २ ।
तुमरे नाम अनत हैं, आद अत और एक।
जे कोई तुमरो व्रत गहै, ताकी टरै न टेक ॥ ५ ॥
तब रुक्मणी सन्मुप हरि के, मुकचि गही पुनि लाज।
जे तुम द्वारिका नाथ हो, हम ले जावो आज ॥ ६ ॥
पलक पुली पगरा पयो अह वहा ही रह्यो जीव।
रामलला मन मैंमदी कहि वोली पिव पीव ॥ ७ ॥

२—कतिपय छन्द ये हैं —
कनक तरोना कान भाड अति राज ही।
वेसर को गज मोनी अधर विराज ही ॥ ८ ॥
जड्या कंकण वल्या सोहै गरै मोतियन को धरा
पुल रही वेनी आन कटि पर देषि अहिपति डरा ॥ ९ ॥
अंगिया अंग सुरग सारी तन सोमई।
लहगा अति छबि देत सकल जग मोहई ॥ १० ॥
थोर दिन की वैस सुध न सभाल ही।
दामनी ज्यौं घन माहि देषि छवि छाज ही ॥ १२ ॥
इति उत वै जब जाय सकल चराचर ऊनिया।
आवत कुल उजयारी चद जैसी पूनिया ॥ १३ ॥

किया है[1] ।

इसकी भाषा बोलचाल की राजस्थानी, ब्रज, बांगरू और खड़ी-बोली मिश्रित है। हरजसों में तीन कृष्ण-विषयक[2] और एक चेतावनी-परक है[3] । ये कवि के मुक्त हृदय के भावपूर्ण उद्‌गार हैं। वील्होजी और सुरजनजी के हरजसों की भांति रामलला के हरजस भी बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

(९१) हरचन्दजी डोहोकिया (ढुकिया) : (अनुमानतः विक्रम संवत् १७७५-१८६०) :

ये रामड़ावास (जोधपुर) से ५-६ कोस उत्तर में स्थित झालामळिया गांव के ढुकिया जाति के गृहस्थ विष्णोई भक्त थे। ये बहुश्रुत और संस्कृत पढ़े-लिखे थे। कुछ समय तक ये और ऊदोजी अड़ींग समकालीन थे। साहबरामजी ने इनके शास्त्र-ज्ञान और प्रह्लाद-चरित का उल्लेख करते हुए कहा है कि इन्होंने बहुत से साखी "सबद" और भजन भी गाए थे[4] । यहां "सबद" को छोड़कर "गाए" शब्द स्वनिर्मित रचनाओं के गाने का भाव द्योतित करता है किन्तु "प्रहलाद चरित" (प्रति संख्या ४१, ४२, ५३) के अतिरिक्त इनके दो फुटकर

१-कारे रंग से रुक्मणि रचि कछु कारी भई आप री।
भीनी अंग सुहावनों, मति लप जाय माई बाप री ॥ ७ ॥
कारे हरि रुक्मणि रचि, अैसा जो रचै कोय री ॥ ८ ॥
रामलला ता दास को फिरि आवागवण न होय री ॥ ८ ॥

२-उदाहरणार्थ तीसरा हरजस द्रष्टव्य है :—
चार दिवस की चटक चांदनी, फिर आवैगी अंधेरी रतियां।
छोड़ गुमान कान दे सजनी, सौत लगाय रही है घतियां।
रामलला सिखमान हितापन हरि हिय लाय जुड़ावें छतियां ॥
—संगीत रागकल्पद्रुम, भाग १, पृष्ठ ६०८।

३-तज अवजम जस सांचले, जुग जीवन थोरा रे।
कहा भयो चढ्यो पालखी, अरु कोल घोरा रे।
ठोर नगारा चांबका, किया दस दिन तोरा रे।
आप बोम किया तीनक, पाया भल जोड़ा रे।
वोह कंकालग ककरी, जैसे क्रम चंचोरा रे॥ २ ॥
कहा भूलो सुत वित देप कै, महा मूरष कोरा रे।
अंत समै तोह देहैं दगा, अैं तो सकल भंगोरा रे॥ ३ ॥
अहंम मनि दोयो छाट दे, भज नंद नंदन भोरा रे।
रामलला अैसे विनसेगे, जैसे पानी का भोरा रे॥ ४ ॥
—हरजस-३, प्रति संख्या-१४०।

४-झालामलियै भक्त इक भएऊ, प्रेमी जंभ गरु पै गएऊ।
साषी शब्द भजन बहु गाए, सासत्र सुणे प्रम सुष पाए।
एकादस गीता जु विचारै, ज्ञान गंम्य विष्णु उर धारै।
हरचन्दजी टहुंकिया अषी, प्रहलाद चिरत कीन्हो निपषी।
हरि कूं गाय मिलै हरि संगा, सुरगां सुष नाना अति रंगा ॥
—प्रति संख्या १९३, जंभसार, प्रकरण २४, पत्र ७।

कवित्त (प्रति सख्या २३०) ही और प्राप्त हुए हैं जिनका परिचय नीचे दिया जाता है।

लघु हरि प्रहलाद चिरत —यह २७ दोहों और १४५ चौपइयो-कुल १७२ छन्दो की रचना है। प्रतियो के आदि मे इसका नाम "हरि प्रहलाद चिरत" तथा "प्रहलाद चिरत" लिखा गया है किन्तु सबके अन्त म उपर्युक्त नाम होने से यही ठीक प्रतीत होता है।

रचना का प्रमुख उद्देश्य प्रह्लाद और हरि–चरित का वर्णन करना है[1] जो इसके नाम से भी स्पष्ट है। इसका प्रमुख आधार तो भागवत[2] है किन्तु कवि ने एतद् विषयक अन्य प्रचलित रचनाओ का आश्रय भी इसमे लिया है[3]। यह पौराणिक पद्धति पर रचित तीन वक्ता-श्रोताओ के सवाद रूप मे है। नारदजी ने युधिष्ठिर को, शुकदेवजी ने परीक्षित को और सूतजी ने शौनक एव अन्य ऋषियो को यह कथा कही थी। उसी को कवि सुना रहा है,[4] जिसका साराश यह है —

शुकदेवजी से हरि–आख्यान सुनकर परीक्षित के मन मे हरि के विषय मे द्वैतभाव उत्पन्न हुआ[5]। उसके निवारणार्थ उन्होंने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ म श्रीकृष्ण के सर्व-प्रथम पूजे जाने, उनके द्वारा शिशुपाल–वध, उसकी आत्मज्योति के कृष्ण मे समाने और इस प्रकार शिशुपाल के सायुज्य मुक्ति पाने[6] की बात सुनाई। तब परीक्षित ने शिशुपाल की पूर्व कथा जानने का अनुरोध किया जो युधिष्ठिर ने भी नारद से किया था[7]।

नारद ने सनकादिको द्वारा विष्णु–पार्षद, जय–विजय को दिए गए शाप की घटना और उनके तीन जन्मो मे वापस वैकुण्ठ आने के हेतु भगवान के साथ युद्ध स्वीकार करने के प्रसग मे लेकर प्रह्लाद–कथा और वराह अवतार द्वारा हिरण्याक्ष एव नृसिहावतार द्वारा हिरण्यकशिपु के मारे जाने तक के समस्त आख्यान को सविस्तर सुनाया। यह कथा वैसी

१–जम गुर अब द्रवहू, मम देहु बुधि विसाल।
गाये चहुँ प्रहलाद गुन, पुनि हरि चरित रसाल॥ १॥–प्रति सख्या ४२।
२–श्रीमती श्री भागोत मैं, वरणे चिरत अपार।
तिनकी यासैं देष के, कछु एक किये उचार॥ १६९॥–प्रति सख्या ४१।
३–आस पास की साप ले, कीये ग्रथ प्रकास।
दया सर्व सत राषियो, हरचद तुमरो दास॥ १७२॥–प्रति ५३।
४–नारद कहे युधिष्टर ही, सुप ही परीक्षत राय।
सूत उचारे सबा कू, मैं निज मन ही सुनाय॥ १७०॥–प्रति सख्या ५३।
सौनक सुनै जु प्रात जुत, सूत उचार निहार।
तिनकी छाह बरनन करू, मम बुध के अनुसार॥ ३॥–प्रति सख्या ४१।
५–जब नानाख्यान र सुप ही गाए, परीक्षित के मन ससय आए।
ईस विषै दुतिया मोहि भासैं, करो कृपा ज्यू दुरमति नासैं॥ ४॥–प्रति ४१।
आगे के सभी उदाहरण इसी प्रति से दिए गए हैं।
६–तब एक अदभुत भए तमासा, आतम जोत ही गई अकास।
बहुरि कृष्ण के माहि समाई, साजोज मुक्त महिज नित पाई॥ १८॥
७–तब सुक कहे चिरत सु ण मोसौं, कथा पुरातनि भाषति तोसौं।
ये ही प्रसन युधिष्टर कीन्हें, देव रिषी तब उतर दीन्हे॥ २५॥

ही है जैसी ऊदोजी अड़ींग के 'प्रहलाद चिरत' में वर्णित है, केवल चार बातों में इसमें किंचित् भिन्नता है :—

(१) इसमें प्रह्लाद ने नारद से ज्ञान-ग्रहण की कथा का केवल मात्र उल्लेख ही अन्य विद्यार्थियों के सम्मुख किया है[1] ।

(२) इसमे हिरण्यकशिपु विष्णु को जीतने का उपाय असुरो से पूछता है,[2] शुक्राचार्य से नही ।

(३) हिरण्यकशिपु को यह भय है कि प्रह्लाद उसके जीते जी राज्य ले लेगा[3] तथा

(४) नृसिंह से प्रह्लाद प्रेमाभक्ति के अतिरिक्त अपने पिता के लिए सद्गति और सब जीवों के सुखी होने की कामना करता है[4] ।

दूसरे जन्म मे वे रावण-कुम्भकरण बने, तब भगवान् ने राम-लक्ष्मण के रूप मे उनका वध किया । कवि ने संक्षेप मे रामाख्यान का वर्णन किया है ।

अन्त में कवि रुक्मिणी-हरण के प्रसंग का उल्लेख करते हुए उनके तीसरे जन्म में शिशुपाल और वक्रदन्त होने तथा कृष्ण द्वारा मारे जाने की बात बताता है । निष्कर्ष रूप में कवि का कथन है कि सभी अवतार विष्णु के हैं; राम, कृष्ण आदि में कोई भेद नही है और जो इनका चरित गाता है उसको तत्त्व प्राप्ति हो जाती है[5] । रचना के उदाहरण-स्वरूप हिरण्यकशिपु-प्रह्लाद संवाद के कुछ छन्द द्रष्टव्य हैं[6] ।

१-गुरु के वचन न मांनै भाई, ऐसी बुध कहां तुम पाई ?
पूरब कथा प्रहलाद चलाई, या विधि भक्ति हृदय में आई ॥ ६० ॥

२-हरि न मिलै वैकुण्ठ मे फिर आए निज धाम ।
दयतनिसों पूछत भए, किस विधि सर है काम ॥ ७० ॥
दयतनि सब मिल मतो उपायो, हमरै मत मैं अैसो आयो ॥ ७१ ॥

३-राय कहै सुणों असुर समाजू, मो जीवत ही लेसी राजू ।
भगनी कहै सुणो हो वीरा, अब मैं मेटूं तुमरी पीरा ॥ ११५ ॥

४-मागूं कहा दयानिधि देवा, निस दिन करूं तुमारी सेवा ।
पूरण कृपा प्रभु मो पै कीजै, प्रेम भक्ति चरननि की दीजै ॥ १३८ ॥
मोर पिता को सदगति देहू, सकल जीव सुषी कर लेहू ॥ १३६ ॥

५-अब राम कृष्ण मैं भेद न जांनो, सब अवतार विष्णु के मांनो ॥ १६७ ॥
बावन परस कमठ अरु मीना, बहु अवतार हरि पुनि लीना ।
तिनकी कहै सुनै अर गावै, ते ततकाळ तत्व को पावै ॥ १६८ ॥

६-विप्र पचे तब बहुत अयानां, पुनि प्रहलाद कै वैही ध्याना ।
बहुरि विप्र राजा पै आए, करि वीनती वचन सुनाए ॥ १०५ ॥
मोरे वचन प्रहलाद न धीजै, जो भावै सो वाको कीजै ।
तबहि तुरंत प्रहलाद बुलाए, मधुर वचन कहि कै समभाए ॥ १०६ ॥
मेरे भ्रात विष्णु ही मारे, पुनि उनके तुंम नाम उचारे ।
मेरै कहैं छाडि अब देहू, तो तुंम मोकों अधिक सनेहू ॥ १०७ ॥
तजै नांम हिदेहु जो राजू, नही तजै तो मारिहु आजू ।
कहै प्रहलाद त्रिलोक म भावै, राज पाट की कौन चलावै ? ॥ १०८ ॥
मैं तो पिता विष्णु करि मांनू, ता बिनुं भूठ सकल ही जांनू ।
इसे वचन प्रहलाद सुनाए, हिरणकस्यप उर क्रोध बढ़ाए ॥ १०६ ॥

यह कथा प्रधान पौराणिक आख्यान प्रबन्ध काव्य है, अत ऐसे काव्यों की परम्परा मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दोहे चौपइयो मे रचित अन्य चरित और आख्यान प्रबन्ध काव्यों की भांति यह विभिन्न राग-रागिनियो मे गाया भी जा सकता है[1] । जहा अन्य प्रह्लाद-चरित काव्यों म केवल प्रह्लाद से ही सम्बन्धित कथा मिलती है, वहा इसमे उसकी प्रमुखता होते हुए भी सक्षेप मे दो और कथाएँ भी सम्मिलित हैं। कवि का प्रयास जय-विजय के शाप सन्दर्भ से प्रह्लाद-चरित का विशेष वर्णन करते हुए विष्णु के तीन अवतारो का लीलागान करना है। कवि का झुकाव पौराणिक कथा पर अधिक होने से उसने नवधा भक्ति और भक्ति के पांच प्रकारो का उल्लेख तो किया है किन्तु तेतीस कोटि जीवो के उद्धार सम्बन्धी साम्प्रदायिक मा यता की कोई चर्चा नही है। सीध-सादे ढग से कथा कहना ही उसका प्रधान ध्येय है, अत वह विषय से सीधे सम्बन्धित कथा सूत्र पर ही अपना ध्यान रखता है। केवल एक स्थल-जय, विजय के शाप लगने पर उसने १२ छन्दो मे विष्णु रूप का वर्णन किया है। इसमे केवल प्रह्लाद-कथा म आए पात्रो मे यत्रतत्र सवाद हैं, जो पर्याप्त नाटकीय हैं, किन्तु वक्ता-श्रोता की योजना होने से इनका स्वतन्त्र महत्व नही रह गया है।

ऊदोजी अडीग के 'प्रहलाद चरित' की भांति इसका भी सम्प्रदाय म व्यापक प्रचार रहा है। फुटकर कवित्तो म कवि की भक्ति-भावना झलकती दिखाई देती हैं। परमसत्ता ईश्वर मे उसकी असीम श्रद्धा[2] है उसका नाम-स्मरण उसका सबसे बडा सहारा है और वह इन्हा दोनो की कामना करता है[3] ।

९२ कवि - अज्ञात . (अनुमानत विक्रम सवत् १७७५-१८५०)

साहबरामजी ने जम्भसार (प्रति सख्या १९३) के २३ वें प्रकरण मे सुरजनजी के प्रसग म जोधपुर-महाराजा के परवाना देने पर विश्नोइयो को दी गई छूट से सम्बन्धित २ कवित्त दिए हैं जो प्रति सख्या ४७ और ३०० म भी उपलब्ध हैं। प्रसग को देखते हुए

१-विशेष देखें-ऊदोजी अडीग (कवि सख्या १००)।
२-यह तन जड तू जान तिह इन्द्री प्रकास।
इन्द्री ईस्वर मन मन बुध निभा न भास।
बुध को साखी जीव जीव पर ईस्वर ही जानो।
ईस्वर है निरधार जगत आधार ही मानो।
हरचद अंसें ईस मे राखो बुध कू गोय।
तो कामादिक जीत हो, दुरजय वैरी सोय ॥ १९ ॥
३-वे महूरत कब होय बाक विष्णु बषाणें।
चित चितवन सब छाड ध्यान घनश्याम ही टाणें।
राग द्वेस को त्याग, विस्व एह ब्रह्म ही भासै।
मन इन्द्री मृत्यु पाय गहू एक ईस्वर को आसै।
वहै वाण हृदै लगै साध लक्ष इस विध लहू ।
हरचद कहै गुर सत सु, बार बार यह बर चहू ॥ १८ ॥

तो यह अनुमान होता है कि ये सुरजनजी के हैं, क्योंकि इसी संदर्भ में उनके और भी अनेक छन्द उद्धृत किए गए हैं; किन्तु इनमें जोधपुर के महाराजा विजयसिंहजी तक का उल्लेख होने से ये उनके बनाए हुए नहीं हो सकते। विजयसिंहजी का जन्म संवत् १७८६, राजतिलक संवत् १८०६ और स्वर्गवास संवत् १८५० में हुआ था[1], जबकि सुरजनजी का समय संवत् १६४० से १७४८ तक है। ये विजयसिंहजी के समकालीन किसी अज्ञात विष्णोई कवि के रचे हुए हैं, जिनको प्रसंगानुकूल समझकर साहबरामजी ने उद्धृत किया है। भाषा-शैली को देखते हुए ये साहबरामजी के बनाए हुए भी प्रतीत नहीं होते। नीचे इनको जम्भसार के सम्बन्धित आदि अन्त के एक-एक छन्द समेत उद्धृत किया जा रहा है (प्रकरण २३, पत्र २९)।

या में फेर सार नहीं जांनो। यों राजा दियो प्रवांनो।
और दरब देनें मन कियो। वेद अजाद जांन नहीं लियो॥ १०॥

१—पाट सिरै जोधपुर, जाध टीकायत जांणों।
विसनोई वासाड़, प्रगट कर दियो प्रवांणों।
पालै हंसो पंचमो, डाण अधघरे कर दियो।
मेल राहग्रे मेट, दांन राठोड़ां दियो।
वेगार वेठऊड़ा हासल, पांन चराई न देवै।
चंवरी माफ चहुं देस में,(जको)विष्णोई नहीं देवै॥
२—भारी काम भोळाय, रूंख तरवर रखवाळो।
हुवो हुकम हजूर, पाल क्रिया ध्रम पाळो।
करै जीव हिरण सिकार, सेह सूवर कुंण मारै।
महाराज रो धर्म, तार सो जीवां तारै।
जोध रा सूज स वाघां वडम, गंगेव माल उदियाहरा।
सूर गजा जसवंत अजा, तिण पाट वीजा वगतेसरा॥
दोहा० हाथ जोड़ राजा गए, चलत भए जब साध।
गुड़ै जाय डेरो कियो, मिट गई सकल उपाध॥ १२॥

इनमें जोधपुर-राजघराने द्वारा विष्णोइयों को दी गई विभिन्न छूटों का वर्णन करते हुए, राव जोधा से महाराजा विजयसिंहजी तक, वहाँ के नरेशों का नामोल्लेख किया है (राव सांतल, महाराजा अभयसिंह और रामसिंह को छोड़कर)। इसका उद्देश्य महाराजा विजयसिंहजी को यह स्मरण कराना प्रतीत होता है कि उल्लिखित सभी नरेश, उदारतापूर्वक जो छूट विष्णोइयों को देते रहे हैं, वे भी वही दें और उनका दृढ़ता से पालन करें। बड़े ही शालीन ढंग से कवि ने विष्णोइयों को दी गई परम्परागत छूट को निबाहने का संकेत किया है। ध्यातव्य है कि विभिन्न उल्लेखों और पट्टे-परवानों से भी इसकी पुष्टि होती है। इतिहासिक दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है।

१-(क) रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ३७१, ३९२, सन् १९३८।
(ख) ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ६९४, ७५९, सन् १९४१।

९३. गंगाराम (गंगादास) : (विक्रम संवत् १७८३-१८८३).

ये खिद्रजी की शिष्य-परम्परा मे ताजोजी के शिष्य थे (प्रति संख्या १६०, २२४)। लगभग १०० वर्ष की आयु मे इनका देहान्त संवत् १८८३ मे हुआ था [1] । रचना मे ये गंगादास नाम रखते थे । साहबरामजी ने इनकी प्रशंसा मे लिखा है कि ये गंगा के समान पवित्र और 'निश-दिन वेद-पुराण वाचा करते' थे [2] । इनके ये फुटकर हरजस प्राप्त हुए हैं —

१-हिंडोळै मैं कांई झूलो राज, तो सूं अरज करूं ब्रजराज ।। टेक ।।
—४ छन्द, प्रति १४४, ३२५ ।
२-भई एक लोभ की नदियां, लिवइया सुध ना परिया ।। टेक ।। —६ छन्द, प्रति १४० ।
३-धुन :—आये म्हारै जंभ गुरु जगदीस, सुरनर मुनिजन वंदै सीस [3] ।। टेक ।।

हरजसों मे श्री कृष्णलीला, [4] आत्म-निवेदन और 'धुन' मे जाम्भोजी की महिमा वर्णित है । सम्प्रदाय मे 'धुन' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है । रचनाओं से इनकी निश्छलता और भगवद्भक्ति का पता चलता है । 'धुन' यह है :—

लोहट घरि अवतारा रे, धनि बड भाग हमारा रे ।। १ ।।
अलख निरंजन आये हो, म्हारै भगतां रै मन भाये हो ।। २ ।।
घट घट मांझ विराजै रे, सहज सबद धुनि गाजै रे ।। ३ ।।
जिनके चरन कोऊ ध्यावै रे, सो तो च्यारि पदारथ पावै रे ।। ४ ।।
जंभ गुरु की आसा रे, जस गावै गंगादासा रे ।। ५।।-प्रति १६४।

९४. सूरतराम : (विक्रम संवत् १७८७-१८८७) :

ये गंगारामजी के शिष्य थे । इनका स्वर्गवास लगभग १०० वर्ष की आयु मे संवत् १८८७ मे हुआ था [5] । संवत् १८८४ मे इन्होंने मयाराम कृत अमावस्या-माहात्म्य कथा को

१-अठारै सत तिरासिये, तिथ सात मधुमास ।
गंगारामजी हरि भज, कियो विकुंठे वास ।। —प्रति १६० से ।
२-गंगारामजी गंगा समाना, निश दिन वाचै वेद पुराना ।। —जम्भसार, पृष्ठ २४ ।
३-प्रति संख्या ६७, १६४ तथा ३१४ ।
४-अगर चंदण को बण्यो हिंडोलो मळियागिर क पटा ।
रेसम डोर पञ्च परवाई उमडी सावणिये री घटा ।। १ ।।
सब सखिया मिल स्रावण चाली, बरसण लागो मेह ।
पीतांबर की करत छावनी, अंसा समझ सनेह ।। २ ।।
म्हे झूला म्हारो स्याम झुलावै, भली बनी रैनी ।
उड उड अंचला परत भुजन पर निरखत चंद बदनी ।। ३ ।।
कुंज विराट मैं स्याम विराजै, भली बनी छिब आज ।
गंगादास कहूं बंदन वरणी सोभा कही महाराज ।। ४ ।। —प्रति ३२५ ।
५-अठारै सत सतासिया, तिथ पूनम माधव मास ।
सुरतरामजी सुरत करि, कियो अमरपुर वास ।। —प्रति १६० ।

लिपिबद्ध किया था (प्रति संख्या १५६)। इन्होंने हरिभक्ति, राम-कृष्ण, गुरु-महिमा और अध्यात्म-विषयक बहुत से 'हरजस' बनाए थे, जिनमें लिखित रूप में ६ प्राप्त हुए हैं[1]। सतगुरु-भजन सम्बन्धी एक छोटा सा हरजस यह है :—

दरस करत दिल को भय भागै, मन मैं हू ं मगन भई ॥ १ ॥
एक मुख सूं महमां को वरनैं, कहत न जाई कही ॥ २ ॥
निरभै सूरतरांम सतगुर भजि, सूरति मैं मूरति लही ॥ ३ ॥ -प्रति १६० ।

९५. साधु मयारामदास : (अनुमानतः विक्रम संवत् १८००-१८७०) :

ये विष्णोई साधु श्यामदासजी के शिष्य थे। इसकी और उपर्युक्त काल की पुष्टि इनके द्वारा संवत् १८४६[2] और १८५१ (प्रति संख्या २५४) में लिपिबद्ध प्रतियों से भी होती हैं। इनकी ये रचनाएं प्राप्त हैं :—

(क) अमावस्या कथा,[3] छन्द १४५ (कुंडली, दोहा, चौपई) तथा
(ख) फुटकर छन्द-सवैया, कवित्त (प्रति संख्या ३०८, २५४)।

इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रचलित रचना पहली है, जिसकी रचना संवत् १८५१ में[4] की गई थी। यह श्यामदासजी की एक पोथी में लिखित गद्य रचना "अमावस री कथा" के आधार पर लिखी गई प्रतीत होती है। यह पोथी तो प्राप्त नहीं है, किन्तु खिद्रजी की शिष्य-परम्परा में पूरोजी के शिष्य ताजोजी द्वारा संवत् १८५० में की गई इसकी एक प्रतिलिपि उपलब्ध है[5] (लेखक के संग्रह में)। इन दोनों में आए विवरण, वर्णन, नाम, संख्या और शब्दावली में समता और एकरूपता से इसकी पुष्टि होती है। इससे इस बात का भी संकेत मिलता है कि समाज में यह कथा बहुत प्रसिद्ध थी। इसमें कृष्णार्जुन संवाद-रूप में एक लघुकथा के द्वारा अमावस्या-व्रत का माहात्म्य बताया गया है[6]। यह

१-प्रति संख्या ६५, १४०, १४४, १७६, २६६।
२-प्रति संख्या २५६ तथा भक्तमाल की टीका की यह पुष्पिका :—
"इति श्री भक्तमाल टीका भक्तिरसबोध नाम समाप्तः॥ संवत १८४६ का वर्षे मिती वैशाष सुदि द्रतीया २ वार शौम नक्षत्र कृतकां लिख्यतं विष्णोई साध श्री स्यांमदासजी का शिष्य मयाराम॥ पठनार्थ मयारांम भांभापंथी श्री स्यांमदासजी का चेला स्थांन मुकांम मध्ये देवल स्थांन झांभैजी कै" (-लेखक के संग्रह में)।
३-प्रति संख्या १८, २६, ३०, ३२, ४३, ५०, ६७, ७८, ६६, १५६, २०३, २०८, २१३, २२६, २५४, ३३४, ३९७, ४०१, ४०२। उदाहरण प्रति संख्या ४३ से।
४-संवत ससि[1] सर[5] वसु[8] वरा[1]। मास नभा पष स्याम ।=१८५१।
तिथि सातम शनिवार तव। कथा करी मयारांम ॥ १४२ ॥
५-इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—"इति श्री अमावस्या री कथा संपूरणं। संवत १८५० सांवण वदि १० वार थावरवार। लिपत्तं ताजाजी अतीत स्यांमाजी की पोथी मां सूं मुकांम मधे। ऊं विष्णु……"।
६-करि प्रणाम कहत हूं, मावस कथा बनाय।
जाकै व्रत तै जात है, पातक सबै नसाय॥ ३ ॥ (शेषांश आगे देखें)

पौराणिक[1] पद्धति पर लिखी गई पद्यबद्ध कथा है जिसमे पाठक की तद्विषयक धर्मबुद्धि दृढ करने का प्रयास है। कथा का साराश इस प्रकार है —

काशी के सोमदत्त ब्राह्मण के घर आए किसी अतिथि यति ने बताया कि उसकी पुत्री के पति की मृत्यु, विवाह के समय चौथे फेरे मे होगी, किन्तु यदि कदलीवन निवासिनी धोसराई, नामक धर्मप्रिय गूजरी अपने एक अमावस्या-व्रत का फल उस समय उसको दे दे, तो वह बच सकता है। सोमदत्त ने अपने पुत्र को गूजरी के पास भेजा। वह वहा गलियो मे झाड् लगाकर उससे मिलने मे सफल होगया। गूजरी ने उसे समाचार मिलने पर आने का वचन दिया। कालान्तर मे विवाह तय करके उसको बुलावा भेजा। वह अपनी बडी बहू को घर का काम सौंप तथा सम्भावित किसी भी आपत्ति मे न डरने का उत्साह दिला कर चली। चौथे फेरे म गिरते हुए वर को एक अमावस्या-व्रत का पुण्य सौंप कर बचाया। वापस आते समय राह में उसने सोमवती अमावस्या का विधिपूर्वक व्रत करके दान-पुण्य किया। इधर गूजरी का बडा पुत्र रात्रि मे सोते हुए मर गया किन्तु इस व्रत के पुण्य से वह पुनर्जीवित होगया। अन्त मे इस दिन करणीय और अकरणीय कृत्यो का उल्लेख किया गया है।

राजस्थानी व्रत-कथाओं की परम्परा मे इसका विशिष्ट महत्व है[2]। दो स्थलो पर सक्षेप मे सुन्दर प्रकृति-वर्णन भी किया गया है। इसके अन्त मे आए ये दो छन्द तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं —

ब्रह्मादिक पावै नहीं, अद्भुत जाको भेव।
पीपासर सो प्रगटे, द्वादस कारण देव ॥ १४४ ॥
सीस धरणि धरि करत हूं, नमसकार सो बार।
इष्टदेव मम प्रभ गुरु, लीला हित अवतार ॥ १४५ ॥

इसकी भाषा म यत्रतत्र पिंगल और खडीबोली की झलक दिखाई देती है। पिंगल की प्रधानता निम्नलिखित "सवैए" मे द्रष्टव्य है —

हाथियन के दात के खिलूना नाना भांत बने,
बाघ को बघभर सिव सकर चित लाई है।

मावस व्रत की ईह बडाई। अत काल वैकुंठ है जाई।
सूको काठ अग्नि ज्यू वारै। ईह व्रत असे अघ जारै ॥ १४० ॥
सुभ सथान देवल प्रगट प्रभ देव को धाम।
अमावस महिमा सहित, कथा करी मुकाम ॥ १४३ ॥

१-पौराणिक कथा के लिए द्रष्टव्य—
क-श्रीव्रतराज (हिन्दी टीका समेत) टीकाकार-प० माधवाचार्य्य, पृष्ठ ८५४-८६६, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, सवत् २०२० तथा
ख-हिन्दुओं के व्रत, पर्व और त्योहार, रामप्रताप त्रिपाठी, पृष्ठ ४०३-४०७, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९६६।
२-तुलनीय-"राजस्थानी व्रत कथाए" मे "कथा सोमवती को", पृष्ठ १४५-१५० सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् १९६१।

सामर की सोज पै अटकै सिपाही लोक,
गैंडे की खाल राजा राणा मन भाई है।
मिरघ की मिरघछाला ओढ़त है जोगी जती,
बकरी की खाल हु तो पानी भर पाई है।
नेकी और बदी दो अखीर ही जावैगी,
मयाराम मानस की खाल सो काम न आई है।

उदाहरण स्वरूप "कथा" के कतिपय छन्द उल्लिखित गद्य-कथा के संबंधित अंश के साथ[1] नीचे दिए जाते हैं :—

गूजरी के वापस जाने का वर्णन है :—
पांच आदमी लेता सूत। साथे चाल्यौ सोमदत्त पूत।
चलत चलत गांव इक देख्यौ। ताहि निकट सरवर सुभ पेख्यो ॥ १०५ ॥
सरवर मधि कवल बहु फूले। गूंजत मधुप पहुप रस भूले।
चातृक चकवा सारस हंस। बगला बतक आरंट कुलंस ॥ १०६ ॥
जलचर विपुल कुलाहल करही। बहित बैर मुदित मन चरही।
सघन छांह तृविध बयार। डेरो लियो सरवर की पार ॥ १०७ ॥
सिनांन करण विप्र तहां आयो। ताहि गूजरी निकट बुलायो।
करि प्रणांम बूझत तिय बार। तब ब्राह्मण इह कियो उचार ॥ १०८ ॥
आज सिध जोग तुम जांनौ। वार रवि तिथ चवदस्य मांनौ।
कालि ह्वै है सोमोती मावस। धरम तृन बढत मानु रितु पावस ॥ १०९ ॥[1]

(९६) खैरातीराम मेरठी (खैरा शाह) : (संवत् १८००-१८६०) :

ये लालासर साथरी के महन्त विष्णुदासजी (संवत् १८००-१८८५) के समकालीन, मेरठ के वैश्य गृहस्थ विष्णोई बताए जाते हैं। संवत् १८६० के आसपास लोहावट में इनका स्वर्गवास हुआ कहा जाता है। इनकी प्राप्त एक रचना "बारहमासो"[2] सम्प्रदाय में बहुत

१—"ब्राह्मण रो बेटो पांचां आदमियां साथे हुवौ। नै मारगि हालिया जांवें छै। जातां थकां एक गांम छै। नयरो पापती तळाव छै। बंगी रूपां छाया छै। घंगा जीव जळचर छै। घंगा हंस चकवा छै। बतक बुगला आरंट केलि करि नै रह्या छै। ठाढ़ी लहर्‌यां ले रह्या छैं। तिण समैं तळाव री पाळि जाय नै डेरो कीयो छै। तरै एक ब्राह्मण उण गांम रो वासी, सो संपाड़ो करि नै घरै जावै छो, वैनूं बूझिवा लागी—महां देवजी, आज कांई तिथू वार छै? तरै ब्राह्मण बोलियो—बाईजी, आज चवदस्य नै सूरजवार छै। नै सोमवार के दिन छै। अमावस्या नै सोमवार छै। तरै ब्राह्मण बोल्यो—आज बाई, मोटा प्रवणी तिथि आई छै। भलो जोग आयो छै। इण जोग मां दांन पुंन्य कीजे तो अनंत गीणो लाभ हुवै।"

२—प्रति संख्या ११०, ३७०। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की विभिन्न खोज-रिपोर्टों में इनकी ६ प्रतियों की सूचना मिलती है। द्रष्टव्य—"हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का

(शेषांश आगे देखें)

प्रसिद्ध है। इससे इनके विष्णोई होने का तो कोई संकेत नही मिलता किन्तु विष्णोई साधु-समाज मे प्रचलित उल्लिखित मान्यता के अनुसार इनको विष्णोई कवि मानना समीचीन है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे इनको "मेरठ निवासी। कोई सूफी मुसलमान। सभवत १६ वी शताब्दी मे वर्तमान"[१] बताते हुए इनकी "प्रेम और शृगार" विषयक एक और रचना "घड़ी खैरा की"[२] (लिपिकाल स० १६२२) की सूचना भी दी गई है। सम्प्रदाय मे यह दूसरी रचना सर्वथा अनजानी है और न ही इसकी प्रति मिलती है। यह प्रस्तुत कवि की रचना नही लगती। इनको सूफी मुसलमान बताना भी असगत है। हो सकता है "घडी खैरा की" के रचयिता खैराशाह कोई सूफी मुसलमान रहे हो अथवा "शाह" (फा०) शब्द का अर्थ "मुसलमान फकीरो की उपाधि" मान कर ऐसी कल्पना की गई हो। वस्तुत विष्णोई साहित्य और राजस्थानी मे शाह का तात्पर्य सेठ-साहूकार या बडा व्यापारी है। १६ वी शताब्दी म रचित विष्णोई साखियो से इसकी पुष्टि की जा सकती है[३]। बारहमासा मे कवि ने अपने, 'खैरा साह' 'खैरा' और 'खैराती मेरठी' नाम दिए हैं[४]।

बारहमासा १२ रूपको की रचना है, जिसमे ११६ दोहे हैं[५]। इसमे आषाढ से आरम्भ कर विरहिणी स्त्री का विरह-वर्णन किया गया है। वर्णन तो एक प्रकार से परम्परागत ही है, किन्तु शैली कवि की अपनी है। विरहिणी और प्रत्येक महीने के सवाद रूप म यह रचना लिखी गई है। विरहिणी के दुख-वर्णन पर प्रत्येक महीना अपने को निर्दोष बताता हुआ पति की मनोकामना पूर्ण न करने के कारण उसी को दोषी ठहराता है। अन्त मे जेठ मे उसका पति-मिलन होता है। रचना के उदाहरण स्वरूप पहला रूपक द्रष्टव्य

सक्षिप्त विवरण (सन् १९००-१९५५ ई० तक), द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ६, सवत् २०२१। "बारहमासा" के अन्तर्गत।

१-हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण (सन् १९००-१९५५ ई० तक), प्रथम खण्ड, पृष्ठ २०४, सवत् २०२१। "खैराशाह" के अन्तगत।

२-वही, पृष्ठ २०४ तथा पृष्ठ २७४।

३-(क) श्री गुर आयो पूरो साह विणज करो वोपारियो।-अज्ञात कृत।

(ख) साह सतगुर नाव नीवो, प्रीति साटे हम लयो।
छोडि छद्य भ्राति परहरि, साच मोमिण विणजियो॥ २॥-अज्ञात कृत।

(ग) कासी नगर मा करण कुमायो, साह घरि पाणी छलियो॥ १३॥ -अज्ञात कृत।

(घ) भला हम विणजारा पूरे साह का, विणज करण वोपारी।
हम विणजारडिया॥ २॥-दीन सुदरदी।

४-आया महीना बारवा, जो चूक थी सो सब कही।
खैरा कहे मुझ तारियो, मत बूझ्यो खोटी खरी॥ ११४॥
कहे खैराती मेरठी, सुनियो बारे मास।
आस दरस लागी रहो, जब लग घट मे सास॥ ११९॥
"खैरासाह" के लिए आगे दिया गया उद्धरण द्रष्टव्य है।

५-एक के अतिरिक्त प्रत्येक रूपक के अन्तर्गत १० छन्द होने से कुल छन्द सख्या १२० होनी चाहिए। सम्भवत: लिपिकार १ छन्द लिखना भूल गया है।

है[1] । इसकी भाषा किंचित् राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली है । बारहमासा काव्य-परम्परा में यह कृति उल्लेखनीय है ।

९७. विष्णुदास : (विक्रम संवत १८००-१८८५) :

ये खिंदरोजी की शिष्य-परम्परा में लालोजी के शिष्य और लालासर साथरी के महन्त थे[2] । इनका स्वर्गवास सं० १८८५ में हुआ था (प्रति संख्या १६०) । सुप्रसिद्ध साधु पीताम्बरदास इन्हीं के शिष्य थे । साहबरामजी ने इनको जन्म-मरण के बंधन से मुक्त विष्णु स्वरूप बताया है[3] । इनकी निम्नलिखित फुटकर रचनाएँ प्राप्त हुई हैं :—

(१) आरती–जय जय श्री जम्भेश्वर देवा, सुर नर मुनि जन लहै न तब भेवा ॥
–३ छन्द, प्रति संख्या १४७ ।

(२) हरजस :—
क–जिवड़ा में वार वार डारूंगी, अपने स्यामसुन्दर पर ॥ ४ छन्द ॥–प्रति ६५ ।
ख–अब मेरी सुणिज्यो अरज मुरार ।
परवस भई सभा में केसव द्रौपदी करत पुकार ॥ ६ छन्द ॥–प्रति १४० ।

१–असाढ सखी विनती करै, पैरा साह अधीन ।
तुम बिन व्याकुल नैन हैं, जैसें जल बिन मीन ॥ १ ॥
असाढ मैं सोवै परी सुन सुवाब देखै कांमनी ।
अंबर लवै बीजली खिवै डुप देत दूना दांमनी ॥ २ ॥
हर बार उठ मत बोल कोयल पिय बिना नैना झुरै ।
कारी घटा चहुं वोर छाई पवन परवा अति चलै ॥ ३ ॥
बन मोर बोलै सुनय तू सुन सुन वचन विरहन जरै ।
औसर न जाना इस्क का तिन की बलायां सिर परै ॥ ४ ॥
तेरी जुदाई सूं सजन सब प्रांन मेरे जर गए ।
बीच रुत असाढ चाल्या, सठ मांस मेरे मर गए ॥ ५ ॥
असाढ समझावै है सखी, तूं मोहि दोस न लाव री ।
वै तुझै चाहै था तब तूं माती फिरै थी बावरी ॥ ६ ॥
देख कैं कारी घटा, बैठी लटा सिर खोल कै ।
तूं रही मगरूर होय मीठा न चाहा बोल कै ॥ ७ ॥
अब तो समझ तुझ कूं परी जब मैं भई निआदरी ।
नैन लागे लोचना देखी गिगन पर बादरी ॥ ८ ॥
अब तो तूं न री निदांन तैनै पीव रसाय कै क्या लिया ।
हाथ तैं जग खोई कैं, समांन औजस का किया ॥ ९ ॥
असाढ कहै हम भी चले, बैठी मन समझाय ।
हमरा दोस अदोस है बिछुरे तुमरे सांय ॥ १० ॥–प्रति ११० से ।

२–प्रति संख्या १६०, २२४, ३०४ ।

३–विस्नुदासजी विस्नु स्वरूपा, जन्म मर्ण त्यागे भव कूपा ।
–प्रति १६३, जम्भसार, प्रकरण २४ वां ।

इनमे परम्परागत रूप से कवि की भक्ति-भावना और आत्म-निवेदन मुखरित हुआ है। दूसरे हरजस से द्रौपदी की पुकार के अन्तिम तीन छन्द द्रष्टव्य हैं —

फाटी नाव समद मे जाता, प्रभु उतारो पार।
मैं अबला कुछ बल नहीं मेरो, एक नांव आधार ॥ ४ ॥
चमक उठे जदु नायक रमता, द्रौपती की सुणी पुकार।
चक्र सुदरसन करगं धारं, गुरड भये असवार ॥ ५ ॥
भक्त काज प्यादो हुय धाये, गुरड तज्यो तेहि बार।
विष्णदास महाराज पधारं अ बर बध्यो अपार ॥ ६ ॥

(२) गोविन्दराम कृत सस्कृत जम्भाष्टक की "विष्णुदास विलास" टीका, गद्य म (प्रति सख्या ५७)। टीका का आरम्भिक अ श इस प्रकार है —

अथ टीका। श्री जभेश्वर कु नमस्कार करू हू। कैसे हैं ? सबके ईश्वर हैं। पर-ब्रह्म रूप हैं। परे स परे हैं। सत। सत सरूप हैं। सर्व के भजने योग्य हैं। कयमूत। अति सोभायमान है मुख जिनों का और मद मद हास्य है जिनो का। सका-महाराज के हसने का प्रयोजन क्या है ? समाधान-हसने से कुछेक मुसकान हो जात है सो दसनो के प्रकाश से महा अ धकार जो अज्ञान है सो दूर हो जाता है और ज्ञान रूप प्रकाश होता है। हाथ के विषे माला है, जिनसे स्वस्वरूप का जप करते हैं।

९८ हरिकिसनदासजी • (विक्रम सवत् १८००-१८९९) पत्री

ये सिदरोजी की शिष्य-परम्परा मे मरुपोनी के शिष्य और अपने समय के बहुत ही प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध साधु थे। इन्होने विष्णोई सम्प्रदाय और समाज सम्बन्धी केसोदासजी गोदारा द्वारा आयोजित परम्परा मे नवीन रक्त का सचार और पुनर्गठन किया था। साहब-रामजी के कथन से भी इसकी पुष्टि होती है[1]।

इनका स्वर्गवास जाम्भा मे हुआ। वहा "अगूणी जागा" के पास दक्षिण मे बनी छतरी पर सवत १८९९ के "मिगसर" सुदि १० को इनका देहान्त होना उत्कीर्ण है। अन्यत्र निधन-काल के सम्बन्ध म किंचित् भिन्न मत भी मिलते हैं,[2] किन्तु वे मान्य नही

१-हरिकिसनजी हरि अवतारा, एक समय गए गगा पारा।
भिस्नी का हार सकाच किए दूरा, चोरी पग ढूर किए जूरा।
सास्तर पोथी वाचत नित ही, गगा धार चनत रहे जितही।
-प्रति सख्या १६३, जम्भसार, प्रकरण-२४।

२- (क) अठारै सत निनाणवें वद पाचे मधु मास।
हरिकृष्णजी हरिसरण भयो समीपै वास ॥ -प्रति १६०।
(ख) 'समत १८९८ वे चत व(दि) ३ तीज
हरकीसनजी तन त्यागीयो पायो मोष द्वार'। -प्रति २७८।

हो सकते। इनकी लिपिवद्ध प्रतियों का समय संवत् १८८६ से १८९२ तक है[1]।

इनकी संवत् १८७३ के आसोज वदि २ को लोहावट से लिखी एक पत्री प्राप्त हुई है (प्रति संख्या २९८)। यह कांट में गंगारामजी के नाम उनके पैर में हुई पीड़ा सम्बन्धी समाचार जानने के लिए लिखी गई थी। यह पद्य-गद्य-मिश्रित है। आरम्भ के १० दोहों में साधु-महिमा और गंगारामजी की प्रशंसा तथा पश्चात् गद्य में मुख्य समाचार हैं। अन्त में मुख्य-मुख्य वस्तुओं के भावों के बाद एक दोहे में क्षमा याचना की गई है। यह पुराने जमाने के पत्रों की शैली का एक बहुत अच्छा नमूना है। इसमें लोहावट तथा कांट के समकालीन अनेक प्रसिद्ध साधुओं के नामोल्लेख होने से उनके स्थान और समय का निश्चित पता चलता है। पत्री का कुछ अंश इस प्रकार है :—

श्री विसंनुजी साय

सिघ श्री सर्व ओपमां लाइक, सत्य धर्म के सदा शहायक।
श्री साहब सांईं, तुमरी संख्या पार न पाई ॥ १ ॥
सेस सहस मुख कियो निरधारा, संत महातम वार न पारा।
संत अभुपन है सब सारा, श्रुत समृति कियो निरधारा ॥ २ ॥
क्रोध दावानल कूं हो तुम सांति, तुम सु दिप्ट लहै बहु कांति।
चरण मांह जो पीड़ा होई, देह पाई प्रभु मुक्ति सोई ॥ ७ ॥

\+ \+ \+

सुभ सुथांन ग्रांव कांट जोग पत्री लिखी हरिकिसन लोहावट सो तुंम जोग्य १००८ श्री साध महाराजजी श्री गंगारामजी जोग दास हरिकिसन खानाजाद की नुवण.......अठै रा समाचार भला छै। श्री विसनुंजी के प्रताप सों घड़ी घड़ी रा आनंद छै। आपरा सदा भला चाहिए घड़ी घड़ी खेम कुसल चाहिजै जी तथा उपरांयत समांचार सुणा या सू म्हे दलगीर बहुत हुवा पिण वस काई नहीं सो आपरे पग में पिड़ा बहुत हुई तथा अपरांइत खबर आई पीड़ मठी पड़ी छै जठा सो म्हे सुणी पछै मन प्रसन हुवो पिण आप चिठी वळे लिखी नहीं सो खबर आई नहीं अठा अपरायंत चिठी लिखता रहजो जी। आप कोई टहल फुरमावजो। मिह सुहावती होय जो कहजो। सु कृपा करो जिण सूं वसेष राखो छो सु राखजो। सर्व साधा नूं नुंवण वांचजो जी ...... सर्व साधां जोग्य हरिकिसनदास की नवण वाचजो जी। कृपा भाव राख जो। म्हे अठै आनंद सों गांव लोहावट में बैठा छां यापन क्रमैं रैं घरे। यापन केसै री नवण। यापन क्रमैं री नवण.......बाजरी भाव पायली २६, गोहूं पायली १५, मूंग पायली १४, मोठ पायली २६, घृत सेर ५, तेल सेर ९, गुळ सेर ८.......सर्व जिनस भाव। समत १८७३ रा मिती आसोज वदि २ वार (सूर्य).......

दोहा :—श्री महाराज तुम जोग्य हो नवण वांचजो साध।
भूल चूक जो हो लिखी, छिमां करो सर्व साध ॥ १ ॥

१-प्रति संख्या १९९, १२३, १०४, ४६ तथा ३८।

९९ पोकरदास (पोहकर) : (अनुमानत. विक्रम सवत् १८००–१८५०) :

इनकी छोटी छोटी दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं—

१-नुगरी सुगरी को झगडो। -१६ छन्द (प्रति सख्या ९, १७५, ३२५)।

२-भजन, पुष्कर सम्बन्धी। -५ छन्द (प्रति सख्या ३३५)।

प्रथम रचना की प्राचीनतम प्रतियाँ अनुमानत. सवत् १८७५ के आसपास लिपिबद्ध होने से इनका रचनाकाल विक्रम की उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। कवि की कीर्ति का कारण पहली रचना है जो 'झगडो' नाम से सम्प्रदाय म प्रसिद्ध है। इसके वर्ण्य-विषय, उसमे निहित कतिपय साम्प्रदायिक मान्यताओ के सकेत तथा निम्नलिखित दो पक्तियो से भी कवि का विष्णोई होना सिद्ध होता है —

बोली साकट नार कहा विष्णु होय आई।
अ त हमारी जात कहा लेरे चुतराई॥ २॥

यह रचना जागळू और इसके आसपास के गावो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध होने के कारण अनुमान है कि कवि जागळू का निवासी रहा होगा। इसमे दो पनिहारिनो-'सुगरी' स्त्री और साकट'-'नुगरी' स्त्री के बीच कूएँ पर पानी भरने के सन्दर्भ मे हुए झगडे का उत्तर-प्रत्युत्तर रूप मे वर्णन करते हुए अन्त मे 'सुगरी' स्त्री का जीतना वर्णित है —

बुर चौती मेळा भया पोहकर ज्ञान विचार।
राम नाम प्रताप तं ए जीतो हरिजन नार॥ १६॥

'सुगरी', 'नुगरी' के सवाद रूप मे कवि ने करणीय अकरणीय कृत्यो, आचार विचार, धर्माधर्म, व्यावहारिक जीवन, हरि-स्मरण आदि का सुन्दर वर्णन किया है। दोनो स्त्रियो के सवाद नाटकीय और सजीव हैं। भाषा बोलचाल की घरेलू है तथा वर्णन सामग्री दैनदिन घरेलू कार्यों से सम्बधित है। श्रोता और पाठक कवि के मूल मन्तव्य को तो सहज-रूप से ग्रहण करते ही हैं, उसका प्रभाव भी उन पर अक्षुण्ण रहता है। कवि की यह बडी सफलता है। प्रभावोत्पादकता और प्रेषणीयता की दृष्टि से सवाद-परक रचनाओ मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। समस्त रचना गेय है, प्रत्येक छन्द के पश्चात् इन पक्तियो की टेक लगती है —

हरिजन साकट नारि, बाता बहोत अडी।
कूप चडी पणियार, दोनों झगड पडी॥ टेक॥ हेली रो॥

उदाहरण स्वरूप कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं —

'नुगरी' — तो सो देखी घणी नुवा नित पापड करती।
पाणी पीवे छाण न्हाय न्हाय रोटी करती।
बाळी सु बूढी भई, पापड कीयो नाहि।
यो भुल अब ही बीगड्यो न्हाय न्हाय रोटी खाय॥ ४॥ हेली रो॥

'नुगरी' :— मेरो परण्यो भलो कह्यो नित मेरो मानै।
मं राखूं मेरा बाळ उठ क पांणी आंणै।

पीसैं पोवैं कर घरैं मनैं खुलाय र खाय।
गोवर कचरो डार कै पीछै वायर जाय ॥ ८ ॥ हेली री ॥

'सुगरी' :— तुमसी नुग्री नार नर कूं वस कीयो।
टूक स्वांन जु खाई धर्ग है वाको जीयो।
का कहूं कुवै पड़ मरैं का कहूं उठी जाय।
तो सी नुग्री नार को दरसण करैं वलाय ॥ ९ ॥ हेली री ॥ –प्रति ९ से।

१००. ऊदोजी अड़ींग : (विक्रम संवत् १८१८–१९३३) :

विष्णोई सम्प्रदाय में तीन ऊदोजी वहुत प्रसिद्ध हैं—तापस, नैण और अड़ींग। प्रथम की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। दूसरे ऊदोजी नैण के विषय में पहले लिखा जा चुका है। ये दोनों ही हुजूरी थे। प्रस्तुत ऊदोजी अड़ींग के विषय में यहाँ विचार किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि ऊदोजी नैण और अड़ींग की रचनाओं में विषय, भाषा और शैलीगत भेद अत्यन्त स्पष्ट है।

ये केसोजी अड़ींग के पुत्र और रुड़कली (जोधपुर) ग्राम के निवासी थे। इनका विवाह इस गांव से १॥ कोस उत्तर में स्थित वीसलपुर में वणियाळ साहवी के साथ हुआ था। ये अत्यन्त सम्पन्न किसान और वचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। इनके पास २०० वीघा जमीन तथा एक कूआँ था जो "पिड़छियो वेरो" कहलाता था। रुड़कली गांव के पास वह कूआँ अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, किन्तु उसका पानी पीने या सिंचाई के काम नहीं आता। गांव के वीच में इनका घर भी मौजूद है। इनके विरक्त हो जाने की घटना वहुत प्रसिद्ध और रोचक है। एक वार ये अपने कूएँ से पानी निकाल रहे थे। उस समय सर्दी का मौसम था और खूब ठंडी हवा चल रही थी। पानी निकालते समय संसार की नश्वरता और अपने जीवन पर विचार करते हुए इनको वैराग्य उत्पन्न हुआ और यह कहते हुए 'लाव' (कूएँ से पानी निकालने की रस्सी) को वहीं छोड़कर विरक्त हो गए :—

आव जाव उठ वैठ, ठंडी वाजै वूक रे।
भजियो नहीं भगवान, ऊदा तेरी चाकरी में चूक रे[1] ॥

वहां से अपने घर न जाकर मालवा की ओर चले गए तथा विष्णोई सन्त सुदरोजी को गुरु बनाकर साधु हो गए। यह घटना संवत् १८६७ की वताई जाती है, जव इनकी आयु ४९–५० साल की थी। इनके कोई सन्तान नहीं थी। "भेष" लेने के चार-पांच वर्ष वाद ये रुड़कली आए थे। उस समय उनकी स्त्री भी सन्यास लेकर उनके साथ चली गई।

१–दूसरी पंक्ति के स्थान पर "भजन न कियो ऊदा, तेरी करणी में पड़गो चूक रे" भी वोला जाता है। यह कथन इस प्रकार भी प्रसिद्ध है :—
एक हाथ में लाव, एक हाथ में रास, ऊठा वेवो वूक रे।
भजियो नहीं भगवान ऊदा तेरी चाकरी में चूक रे। ठंडी रात लहरका भूख रे।

तब से मालवा को केन्द्र बना कर ये अनेक स्थानो मे भ्रमण करने लगे। प्रसिद्ध है कि एक बार होली के दिनो मे ये रुडकली मे विराजमान थे। गाव मे कहीं इन्होने स्त्रियों को फाग म अश्लील "लूर" गाते हुए सुना। ये वहा पहुँचे और उनको उसके लिए मना करने लगे। स्त्रियो ने कहा-स्वामीजी, फगुश्रा मे यह नही गाएँ,तो कुछ तो गाएँ ही, आप ही बताइए क्या गाएँ ? इस पर वही बैठ कर इन्होने तत्काल उसी "ढाळ" मे निम्नलिखित "लूर" बना कर गाई, और बोले-गाना है, तो इसको गाओ —

गिरधर गोकळ आव, गोपी सनेसो मोकळै।
मोह दरसण को चाव, प्रेम पियारा कांनजी ॥ टेर ॥
(थारै) माथै मुकट सुढाळ, केसर तिलक जु हद बण्यो।
मोहन नैण बिसाल, सुन्दर वदन सुहावणो ॥ १ ॥
घूगर वारे केस, कानां कुंडल झळक रये।
ओही मनोहर वेस, म्हारै मन में रम रह्यो ॥ २ ॥
गळ वैजती माळ, पीतांबर कट काछनी।
हाथ लकुटिया लाल, सांम सलूणा सावरा ॥ ३ ॥
गावै छतीसूं राग, गिरधर मुरली मोहनी।
मोहे सुर नर नाग, गोपी मोहे गुवाळिया ॥ ४ ॥
वै दिन कान चितार, महीड़ो मो पे मागता।
अब तम गए विसार, मुथरा मैं महाराज बणे ॥ ५ ॥
चेरी कस की दासि, भली बसाई भावती।
वा सग कियो निवास, संस सहेली छाड के ॥ ६ ॥
थानै भूरै जसोदा माय, राधा पलक न वीसरै।
ललता जीव ललचाय, दरसण कारण दूबळी ॥ ७ ॥
थानै भूरै बिरज की नार, घर घर भूरै गुवाळिया।
गउ तिण तज्यो मुरार, बछडा खीर न पीवही ॥ ८ ॥
ऊदो कहै कर जोड, कांय बिसारो कानडया।
म्हारी अरज सुणो रणछोड, दरस दया कर दीजियै ॥ ९ ॥

यह लूर विष्णोई-समाज मे, विशेषत मारवाड मे बहुत ही प्रसिद्ध और प्रचलित है। ११४–११५ साल की दीर्घायु मे, सवत् १९३३ के आसपास ऊदोजी ने स्वर्गलाभ किया। इससे पूर्व उन्होने अपनी सब जमीन और घर दूर के रिश्ते की एक बेटी पारी और जँवाई सिमरथाजी के नाम कर दी थी। सिमरथाजी फिटकासणी गाव के बाबळ जाति के थे[1]।

सौभाग्य से ऊदोजी के हाथ की लिखी हुई दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं-सख्या २३२ और २६१। इनकी पुष्पिकाओ से भी इनके विषय मे प्रामाणिक जानकारी मिलती है। प्रथम

१-रुडकली मे सिमरथाजी के एक पुत्र मुकनोजी, जिनकी आयु लगभग ९८ साल की है, अब भी वर्तमान हैं। मई, सन् १९६५ मे लेखक ने उनसे साक्षात्कार किया है।

प्रति की दो रचनाएँ–"घातपाटी" (ख) और बारहट ईसरदास कृत हरिरस (ज), उन्होंने क्रमशः संवत् १८३७ के जेठ सुदि ८ और संवत् १८३८ के जेठ वदि १०, बुधवार के दिन लिपिबद्ध की थीं। दोनों ही वसतोजी के पुत्र सांवत पुंवार के पठनार्थ लिखी गई थीं। 'हरिरस' की पुष्पिका में उन्होंने स्वयं को केसोजी का पुत्र बताया है। इससे उनका घर-बारी होना सिद्ध होता है। दूसरी प्रति (सख्या २६१) में कवि का स्वरचित "प्रहलाद-चिरत" है जो संवत् १८६९ की आपाढ़ सुदि ६, बृहस्पतिवार को लिपिबद्ध किया गया था। इसमें वे स्वयं को सुदरोजी का चेला लिखते हैं। स्पष्ट है कि इस समय तक वे "भेष" ले चुके थे। इस प्रकार, प्रथम रचना के लिपिबद्ध-समय इनकी आयु १८–१९ वर्ष की मानने से जन्म संवत् १८१८ ठहरता है। दूसरी के समय वे साधु हैं और आयु ५१–५२ साल के आसपास सिद्ध होती है।

ऊदोजी अत्यन्त निष्ठावान विष्णोई साधु, विष्णु के परम भक्त और अनुभवज्ञानी थे। उनकी रचनाएँ उनके जीवनकाल में ही बहुत प्रसिद्ध हो चुकी थीं, और स्थान-स्थान पर विभिन्न विष्णोई जनों द्वारा उनको लिपिबद्ध करने की परम्परा चल पड़ी थी। अनेक हस्त-लिखित प्रतियों की पुष्पिकाएँ इसका प्रमाण हैं। इनमें प्रहलाद चरित और विष्णु चरित तो सम्प्रदाय में बहुत ही मान्य हुए। अपने दीर्घ जीवन में उन्होंने अनेकविध वाणी-बखान किया। साहबरामजी ने कहा है :—

> उद्धवजी अणभै अधिकारी । नाना सास्त्र किए संवारी ॥ ३ ॥
> जंभ गरु के द्रष्ण भये । प्रहलाद चिरत विष्णु चिरत कहे ।
> कवत छंद नांनां विघ वांणी । ऊद्धवजी बहु भांत वपांणी ।
> बहुत काल लग जग में रहे । फेरू सुध संप्रघा गये ॥

उनके अनुसार, इनको जाम्भोजी के दर्शन हुए थे (–प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २४, पत्र २)।

रचनाएँ : इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हुई है :—

(१) प्रहलाद चरित,[1] छन्द संख्या ३४८ अनुमानतः[2] ।

१–प्रति संख्या ५६, ६२, ७६, ८५, ९७, १०१, १०२, १२६, १६१, तथा २६१।

२–स्वयं कवि ने अपनी लिखी हुई प्रति संख्या २६१ में इसकी छन्द संख्या ३३० बताई है:— "समसत चोपई दुहा, छंद कवत ३३०", किन्तु इसी में आत्म-निवेदन और पुष्पिका स्वरूप दो छन्द + लेकर कुल छन्द सख्या ३३२ है। ऊदोजी छन्द-संख्या लगाने में किंचित् असावधान जान पड़ते हैं। दो छन्दों (छन्द संख्या ७ तथा ७९) पर तो वे संख्या देना ही भूल गए है; इनके स्थान पर ये संख्याएँ इनसे आगे के छन्दों पर दी हैं। इसी प्रकार एक छन्द संख्या दो बार भी दे दी गई है (२८६ वीं संख्या)। कई स्थलों पर कतिपय पंक्तियाँ लिखना भी वे छोड़ गए हैं। किन्तु इस प्रति का पाठ, एकाध अपवाद छोड़ कर, निर्विवाद रूप से शुद्ध और प्रामाणिक है। विभिन्न प्रतियों का पाठ-अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि रचयिता ने इसके पश्चात् भी अपनी इस रचना में संशोधन-परिष्कार किया है। पाठ-सम्पादन की दृष्टि से ये बातें विचारणीय हैं। इसी

(शेषांश आगे देखें)

(२) विष्णु चरित,[1] ११० दोहे-चौपई।
(३) कक्का-छत्तीसी,[2] ३७ कुंडलियाँ।
(४) 'लूर'[3] तथा
(५) फुटकर-छन्द, ३० (प्रतियों का उल्लेख आगे किया गया है)।

इनकी दीर्घावस्था को देखते हुए यह अनुमान होता है कि इन्होंने और भी अनेक रचनाएँ की होंगी किन्तु प्रस्तुत लेखक को उपर्युक्त रचनाएँ ही उपलब्ध हो सकी हैं जिनका परिचय नीचे दिया जाता है —

(१) प्रहलाद चरित :-यह ३४८ छन्दों का कथा प्रधान सवादात्मक आख्यान काव्य है। छन्दो में दोहे-चौपई ही प्रधान हैं किन्तु बीच मे कुछ सोरठे, मोतीदाम, चपक और पद्धडी तथा १ कवित्त और १ कुंडली है। कवि ने इसकी रचना हरि कीर्ति-गान और मन बुद्धि, चित्त और वाणी को पवित्र करने के लिए की है[4]। इसमे भक्त प्रह्लाद की सुप्रसिद्ध पौराणिक कथा का वर्णन है, जिसका सार इस प्रकार है :—

हरि का पुष्प-गेंद से "बसन्त-खेल" खेलना, जय विजय द्वारपालों का गेंद उन पर न फेंकना, सनकादिक शाप, कश्यप पत्नी अदिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष का जन्म, वराह अवतार और हिरण्याक्ष-वध, गुरु शुक्राचार्य के कहने पर हिरण्यकशिपु की तपस्या, ब्रह्मा से वर-प्राप्ति, नारद का इन्द्र से उसकी पत्नी को छुड़वाना, और गर्भवासी प्रह्लाद को हरि-उपदेश, प्रह्लाद-जन्म, उसका राजनीति न पढ़कर विष्णु-भक्ति करना, उसको मारने के अनेक उपाय, अग्नि मे जलाने के प्रयास में ढोंढा की मृत्यु, खभ से बाँध कर मारते समय

आधार पर इसकी कुल छन्द सख्या ३४८ के आसपास अनुमित होती है।
+मम वाणी सुध करण कू, कीयो जस विसतार।
घट वध अक्षर होय जो, लीज्यो सबै सुधार॥ ३३१॥
समत अटार अडसठा, माघ सुक्ल पक्ष जांन।
तिथि तीज सपूरण भयो, प्रहलाद चिरत आख्यान॥ ३३२॥
आगे उदाहरण इसी प्रति से दिए गए हैं जहा इससे नहीं है, वहाँ अन्यथा उल्लेख कर दिया गया है।

१-प्रति सख्या ११, ३३, ३४, ४६, ७३, ११६, २०४, २०६, २०८, २०६, २४६, ३४०, और ३८६।
इन दोनो रचनाओ का प्रकाशन भी हुआ है। 'प्रह्लाद-चरित्र', सपा०-रामलाल वर्म्मा, प्रकाशक आतमाराम, ब्रह्मानन्द, महराजपुर (फीरोजपुर) सवत १९९७।
"श्री विष्णु चरित्र'—सग्रहकर्ता-मास्टर जगनाथ गेदर प्रकाशक श्रीमान ओंकारजी पवार, कडोला, सम्वत २००७। दोनों में ही सम्पादकों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भाषा को 'शुद्ध हिन्दी' बनाने का प्रयास किया है। पहली रचना मे तो सम्पादक ने अपने बनाए हुए अनेक छन्द भी बीच-बीच में जोड दिए हैं।

२-प्रति सख्या २२, ३५, ७८, ९३, ३२२, ३३१।

३-प्रति सख्या ९३, २३२, २७४ २८७।

४-भगवत भक्त भेद नही कोई। हरि जन जहा हरि कीरति होई॥ २॥
सत चरित निगम नित गावै। मै अळप बुध क्या वरण सुनावै।
कछु चरित मैं कहू वखाणी। मन बुध चित विमल करू वाणी॥ ४॥

नृसिंहावतार, हिरण्यकशिपु-वध, प्रह्लाद का अपने ३३ कोटि अनुयायियों के लिए मुक्ति का वर मांगना-तीन युगों में क्रमशः ५, ७ और ९ कोटि जीवों का उद्धार, कलियुग में शेष १२ कोटि के लिए विष्णु का जाम्भोजी के रूप में आगमन और 'विष्णोई पंथ' की स्थापना ।

(२) विष्णु चरित :—इसका रचनाकाल संवत् १८६९ और १८७८ के बीच किसी समय है, क्योंकि संवत् १८७८ में लिपिबद्ध तो इसकी एक प्रति भी उपलब्ध है—(प्रति संख्या २०६ (छ) । इसमें परमसत्ता विष्णु का अनेक प्रकार से महिमा-गान है; उनके स्वरूप, अवतार और कार्यों तथा नाम-माहात्म्य का श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उल्लेख किया गया है। वे सर्व शक्तिमान, निरंजन, निराकार, भक्तो के लिए साकार रूप धारण करते हैं । सृष्टि की रचना विष्णु ने ही की है, सबमें उन्हीं का तेज है । समय-समय पर भक्तों के संकट दूर करने तथा अधर्म-उत्थापन और धर्म-स्थापना हेतु उन्होंने अनेक अवतार धारण करके अनेक कार्य किए हैं । उनकी महिमा कोई नही गा सकता । कलियुग में तो निस्तार का एक मात्र आधार विष्णु नाम ही है । भवसागर से तरने के लिए सन्त केवट और विष्णुनाम जहाज है । कलियुग में विष्णु "संत सरूप" जाम्भोजी के रूप में आए थे । भक्त कवि ऐसे 'असरण सरण' से अपने उद्धार की प्रार्थना करता है । अवतारों में कवि ने राम और कृष्ण चरित पर अपेक्षाकृत अधिक छन्द लिखे हैं, क्रमशः ३६ तथा ८ एवं भक्तों में राजा अम्बरीष और प्रह्लाद पर ३-३ । उदाहरण के लिए रामावतार सम्बन्धी कुछ छन्द देखे जा सकते हैं[1] ।

(३) कक्का छत्तीसी :—यह वर्णमाला के ३५ अक्षरों (क से श वर्ग तक ३३ तथा ळ और क्ष-२) पर क्रमानुसार ३७ कुंडलियों की रचना है, जिसमें अध्यात्म, नीति और सुकृत आदि का अनेक प्रकार से बहुत ही सुन्दर और प्रभावोत्पादक उल्लेख किया गया है। इसकी रचना संवत् १८८४ के सावन वदि तीज को हुई थी[2] । भाषा-सौकर्य, भाव-गाम्भीर्य और विचार-प्रौढ़ता की दृष्टि से यह ऊदोजी की श्रेष्ठ कृति है। इसमें संक्षेप में कवि के विचार ये हैं :—

१-हनुमांन हर को निज दासा । सुप हरि नाम चरण की आसा ।
रघनाथ रजा सीस पर धारै । अज्ञा पाय सब कांम सुधारै ।। ३५ ।।
विष्णु सिला समद पर तारे । रावणं आद असुर बहु मारे ।
छिन में विष्णु लंक लुटाई । सुर तेतीसू बंध छुटाई ।। ३६ ।।
बभीछन कूं पाट बैठाए । सीता सहत अवधपुर आए ।
भरथ सत्रघन लछमंन रांमा । पूरण विष्णु व्यूह अभरांमा ।। ३७ ।।
सुयं विष्णु रुघवंसी राजा । वरण आश्रम धम बांधी पाजा ।। ३८ ।।-प्रति ११ ।

२-समत अठारै चौरासियो, श्रावण कृष्ण पप तीज ।
मैं अलप बुध जांणू कहा, सतगुर हंदी रीझ ।
सतगुर हंदी रीझ, बुध जब भई प्रकासा ।
मिट्यो आन उर भरम, गही तमारी आसा ।
अपर पैंतीसा उपरै, कवित्त छैतीस विचार * ।
उधव वरस चौरासिया, कहियै समत अठार ।। ३७ ।। प्रति ७८ से ।

* इस पंक्ति के स्थान पर प्रति संख्या ९३ में पाठ है-"जा दिन में सपुरण भइ, तिथ तीज बदवार" ।

जीव का चरम-प्राप्तव्य मुक्ति है, आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाना है[१] । एकाग्रचित्त होकर पूर्ण विश्वास के साथ हरि-स्मरण करने से यह सम्भव है[२] । नर देह अनमोल और दुलभ है, उससे भी दुर्लभ है भरत खड मे जन्म होना । अनेक जन्मो के बाद हरि कृपा से प्राप्त मानव जीवन मे ही लम्बा मार्ग न पकडकर, मुक्ति का उपाय करना चाहिए, क्योंकि मनुष्य जीवन मुक्ति का द्वार है[3] । जीवन तो थोडा है और मृत्यु धीरे धीरे निकट आ रही है[४] । दूसरी ओर, जिस सासारिक माया-मोह मे जीव भूला हुआ है वह बादल की छाया, अ जलि के पानी और स्वप्न की सम्पत्ति की भाति क्षणिक और नश्वर है[५] । यहा के सम्बन्धी, हितु-मित्र आदि कोई साथ नही देंगे । अपने स्वार्थ के लिए वे ठगबाजी करके जीव को फदे मे फसाते है[६] । इसलिये इस ठगबाजी, अज्ञानाधकार भरी रात्रि

१-डडा रडवडतो फिरं, जीव चौरासी माहि ।
भवसागर मैं भरमता, कहू काळ थिर नाहि ।
कहू काळ थिर नाहि प्राणी, जीव बहुत दुष पावै ।
जहा तहा मारे काळ, कृष्ण बिन कुण छुडावै ।
उधव सिवरो विष्णु कू, निस दिन रहो षडा ।
कवला पति को ध्यान धरो, ज्यू रळता रहो डडा ॥ ५ ॥-प्रति ९३ ।

२-कका केवल कृष्ण भजो, हिरदै धर विसवास ।
आन भरोमो छाड दो, राष राम को आस ।
राष राम की आम, ज्यू पतिभ्रता पति सेवं ।
तन मन अरपं प्राण, पीव छिन चित न देवं ।
यू नहचै भज हरि उधवा, टळ जाय जम का धका ।
मन माधो सू प्रीत कर केशव जप रे कका ॥ १ ॥-प्रति ७८ से ।

३-बबा बोह जुग भटकिया, धर चौरासी देह ।
नर नारायण तन दियो, हरि को समझ सनेह ।
हरि को समझ सनेह, प्रभु क्रिपा कीनी भारी ।
नर तन चाहै देव, सोई तम दियो मुरारी ।
मुक्त द्वार आयउ उधवा, मत लो मारग लवा ।
सुष सागर विसराम करो विष्णु भजो रे बबा ॥ २३ ॥-प्रति ७८ से

४-बबा बारी आपणी, नैंजी आवै नित ।
दीया सेत सनेसडा, सो क्यू सोवै निचत ।
सो क्यू सोवं निचत, सूल चलणैं का करणा ।
मित सुत माय न बाप, एक सायब का सरणा ।
माया हकारा हरि का उधो, पल भर षडा न रहवा ।
बारी आई आपणी, विष्णु भजो रे बबा ॥ २१ ॥-प्रति ७८ से ।

५-ढढा ढाळो को नहीं, बिना भज्या भगवान ।
उर मैं सोच विचार ले, चली जाइ सब जिहान ।
चली जाइ सब पलक, पलक मे ज्यू बादळ की छाया ।
धन जोबन अ जरी को पाणी, अरु सपने की माया ।
आतर हुय कै हरि कू सिवरो, छाडो झूठा रढा ।
उधव सास भरोसो नाहीं, ढील न करियै ढढा ॥ २४ ॥-प्रति ९३ से ।

६-ठठा ठग बा जी ससार है, मात पिता सुत नार ।
सगा सनेही गोत कडूबो, आन मिले दिन च्यार ।

(शेषाश आगे देखें)

और पञ्चेन्द्रियों के फांस से दूर रहना चाहिए। अंत में जीव के साथ केवल दो ही चीजें चलेंगी-एक तो हरिनाम और दूसरे सुकृत। अतः सब प्रकार का गर्व त्यागकर मोक्ष के लिए यही दो काम करने चाहिएँ[1]। इनके लिए गुरु-सेवा अनिवार्य है, क्योंकि हरिनाम की नाव में खिवैया सतगुरु ही है। सुकृत के अन्तर्गत कवि ने अहंकार (छन्द ६), छल-कपट त्यागने, सत्संगति (छन्द ७), दया-धारण और ज्ञान-ग्रहण (३२), उद्यम करने (१९), सुपात्र को दान देने आदि का उल्लेख किया है।

इसमें कवि की कतिपय उक्तियां और उपमाएँ व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण बहुत ही प्रभावशाली और सुन्दर हैं। उदाहरणार्थ, जब मनुष्य भी काम करने की 'मजूरी' देता है तो हरि क्यों नहीं देंगे[2]? जब कपटी से मनुष्य भी नहीं मिलता, तो हरि कैसे मिलेंगे[3]? आदि।

(४) 'लूर' :—लूर और उसके निर्माण का उद्देश्य पहले लिख आए हैं। इसमें गोपियों की कृष्ण से मिलनोत्कंठा का भावपूर्ण वर्णन करके कवि ने लोकरुचि-परिष्कार का कार्य किया है। बहु-प्रचलित लोकगीतों की भांति इसकी प्रसिद्धि है।

(५) फुटकर छन्द :-विभिन्न प्रतियों में कवि के ३० फुटकर छन्द निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत लिखे गए मिलते हैं :—

(क) मंगलाष्टक :—५ दोहे (प्रति संख्या-३८७, फोलियो ३८)। ये शिव, गणपति आदि देवों तथा जाम्भोजी[4] के प्रति नमस्कार स्वरूप लिखे गए हैं। नाम 'अष्टक' है, किन्तु दोहे ५ ही हैं।

(ख) 'गुर महमा' :—१ कवित्त (प्रति संख्या २६०)।

(ग) कुसंग को अंग :—४ कवित्त (प्रति संख्या २३०)। 'लूर' की भांति ये कवित्त

आन मिले दिन च्यार, अंग सूं नैन सूं नेहा सांधै।
गाय बजाय लडाय हंसावै, मोह फंद में बांवै।
ठग बूंटी पाय करै बावरा, पारै कूं कहै मीठा।
तडफ तड़फ मर जावै उधो, ओह जुग ठग रे ठठा॥ १२॥-प्रति ९३ से।

१-ददा देही कारमी, गरब करो मत कोय।
सेंवळ के से फूल हैं, देपण के दिन दोय।
देपण के दिन दोय छबीला, जिसा काच का सीसा।
यो तन मोती ओस का, क्यूं न भजो जगदीसा।
उधव देही राछ विरांणी, बड़ै भाग सै लदा।
सुकरत सिवरण कर ले प्रांणी, देर न करिये ददा॥ १८॥-प्रति ६३ से।

२-उधव तन मन अरप कै रोपो पांव परा।
मिनप मजूरी देत है, क्यूं रापै राम ररा? २७॥-प्रति ७८ से।

३-नह कपटी रहो हरि मित सूं, उधव चाहत नफा।
कपटी सूं नर नां मिलै, तो हरि क्यूं मिलै है फफा॥ २२ -प्रति ७८ से।

४-विघन हरण मंगळ करण, ब्रह्मंड थापंण विन थंभ।
अनंत कळा विष्णु नमो, ऊधो पति श्री जंभ॥ ५॥

भी बडे प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। इनमे कुसगति के फल,[1] मानव जीवन और देह की दुर्लभता और करणीय कर्मों,[2] मूर्ख-स्वभाव आदि का लोक प्रचलित उक्तियो के माध्यम से बडा रोचक वर्णन किया गया है।

(घ) करण को अग —२४ छन्द (प्रति सख्या २८४)-(सवइया-'इकतीसा') ('मनहर' छन्द), सवइया-तेईसा (इन्दव छन्द)—कवित्त (छप्पय), सोरठा और कु डली)। इसमे भगवद्-महिमा-वर्णन करते हुए भक्त कवि अत्यन्त आर्त्त और दीन होकर उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। वह सर्वस्व त्यागकर उन्ही की शरण मे आया है। अन्य रचनाओ मे जहा ऊदोजी का आत्म-निवेदन ध्वनित है, वहा इसमे वह अत्यन्त मुखर है। कवि की भगवान पर असीम श्रद्धा है, वह तो उनके सिवा और किसी को नही जानता[3]। शरीर उसका विकारो से भरा हुआ है, विषयों म वह लवलीन है प्रभु को सन्देश कहा भेजे ? वे तो हृदय म ही हैं,[4] केवल जान बूझ कर अनजान बने हुए हैं। अत केवल मात्र हरिनाम-

१-कुढोर हरियाय ताय सग दूजो जावै।
सग सू खावै मार, डौंगरो गळै बधावै।
कदली काटै बेर, सग सू पान चिरावै।
वस बोडो वन माय, ताहू सग सक्ळ जरावै।
नीच करम कर नरक जैहू और बूडै सग लेह।
जन उधव नही जाइयै, कुसगत फळ एहू ॥ ११७ ॥

२-कालर करसन वाय कहो क्या कृषी निपावै ?
हिजा हदै वास रह्या, गनका क्या सुप पावै ?
नागै नर कै पास कहो क्या धोवी धोवै ?
कृपण आगै जाच कहो क्या दाळद पोवै ?
ज्ञान हीन सठ सग तै, उधव क्या फळ पाय है ?
यू मिनषा देह हरि भजन बिन, जन्म इकारथ जाय है।। ११८ ॥
बाझ नार घर वास, कहो क्या पुत्र पिलावै ?
प्यासो मृग जल ध्याय, कहो क्या नीर पिलावै ?
उसर भू म पिण कुप, नीर मीठा कहा पावै ?
सूवी सबळ सेय, कहो किमा फळ पावै ?
मरण सगत धाय वै, उधव यू पालो रयौ ?
मिनषा देह हरि भजन विन, नर पायो निरफळ गयौ ॥ ११९ ॥

३-मेरे तो सिन्यास नांह, व्रत उपवास नांह,
करम र जोग नाह, नही दैन दत कू।
पटक्रम जानू नाह, सम दम जम नांह,
क्रिया की कसौटी नाह, न जानू तत कू।
ग्यान को उपास नाह, मरोषा अभ्यास नाह,
परप को ज्ञान नाह न जानू पचतत कू।
कहत उधव एम, कछुव न जानू नेम,
काहू कू न जानू मै तो जानू कवलापत कू ॥ ११ ॥

४-पाव परोट जगाऊ प्रभुजी सोय रहे सुप सेज मही तो।
पाती लिपाय सदेसो पठाऊ, गए होत परदेस कहीं तो।
सुनत नाय पुकार सुनाऊ रुठे मनाऊ कर जोर जही तो।
जान अजान भए जग जीवन हा हा अबनासी जोर नही तो ॥ ३ ॥

स्मरण ही उसका सम्बल है। किन्तु प्रभु पर उसका कोई जोर नहीं, वे अपना विरुद विचार कर ही कवि का उद्धार करें,[1] क्योंकि पूर्व में उन्होंने अनेक पतितों और पापियों को तारा है, यहां तक कि उनका विरोध और अपकार करने वालों को भी[2]। इसलिये कवि बार-बार अनेक प्रसंगों की याद दिलाते हुए हरि से अपने उद्धार की प्रार्थना करता है, क्योंकि वह तो उन्हीं की ही शरण में है। कवि के लिए तो यह बड़ी भारी कठिन बात है, किन्तु हरि के लिए तो बहुत ही आसान है, अतः वे कवि का उद्धार करें[3]।

राजस्थान के उन्नीसवीं शताब्दी के सिद्ध कवियों में ऊदोजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य-रूप और विषय-दोनों ही दृष्टियों से उनकी रचनाएँ तत्-तत् विषयक परम्पराओं की सुन्दर कड़ियाँ हैं। ऊदोजी का काव्य-प्रवाह तीन अन्तर्धाराओं का सम्मिश्रण है:—

१-हरि और हरिभक्त चरित-गान,
२-नीति-कथन और
३-आत्म-निवेदन।

प्रथम के अन्तर्गत विष्णु चरित और प्रहलाद चरित तथा शेष दोनों के अन्तर्गत उनके फुटकर छन्दों की गणना की जा सकती है। 'कक्का छत्तीसी' में इन तीनों की ही मिली-जुली झाँकी के दर्शन होते हैं। 'बारहखड़ी' या 'बावनी' काव्य-रूप परम्परा में भी 'छत्तीसी' उल्लेखनीय है।

१-जोर नहीं जगदीस, राज रजा सिर ऊपरै।
अणहूणी पळ मांह, करै स किरता तुम करै।
तुम नहीं काकै हाथ, हाथ सब तेरै आवै।
सुर असुर नाग नाथ कर नाच नचावै।
तुम संमरथ महाराज हो देषो दया निहार कै।
कह उधो प्रभु तारियै अपणो विड़द विचार कै ॥ ४ ॥

२-जरा व्याध तीर ताण, प्रभु कै लगायो बांण,
ताही कूं बिवांण सुरग, सैंदेही पठायो है।
दंकी मारणे कूं धाई, थण विषहु लगाई,
ताह वैकुण्ठ पठाई, अभै पद पायो है।
सिसपाल कीयो दोष, ताकूं प्रभु मेल्यो मोष,
साजोज मुक्त मांह, जाय कै समायो है।
निज अपराधी से तो, प्रेम गत लाधी ते तो,
उधव विचार विड़द सरण तोह आयो है ॥ २ ॥

३-माया है अपार तोहि पार नहीं पावै कोय,
सुर नर नाग परै तूं ही भगवान है।
देव दांनूं नाग नायै ताहि है त्रिलोकीनाथ,
तिहुंलोक मांहि एक फिरै तेरी आन है।
पूरन ब्रह्म तूं ही रहे सब कांम,
कभी हु न काहु प्रभु क्रिपा को निवांन है।
कहत हूं दिन रैन दया करो कंवळ नैन,
उधव कूं मुसकल तुहारै आसांन है ॥ १ ॥

दोनो चरित काव्यों का महत्व अनेक दृष्टियों से है। विष्णु चरित अपने ढग की अकेली रचना है। राम, कृष्ण, प्रह्लाद, अभिमन्यु आदि के चरिताख्यानों को तो अन्य विश्णोई कवियों ने भी वाणी का विषय बनाया है, किन्तु परमसत्ता विष्णु के गुणगान स्वरूप इस रूप मे नहीं। यह रचना ईसरदास कृत हरिरस, पीरदान लालस कृत गुण नारायण नेह, गुण अलख आराध, गुण अजपा जाप, गुण ज्ञान चरित्र आदि रचनाओ की परम्परा मे आती है, जिनमे परमतत्व का अनेक प्रकार से महिमा-गान किया गया मिलता है। अनेक भक्त जैसे हरिरस का पाठ करते हैं, वैसे ही श्रद्धालु विश्णोई इसका पाठ भी करते हैं। स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त सम्भवत कवि ने इसके निर्माण की प्रेरणा ईसरदास कृत हरिरस से भी ली होगी। प्रति सख्या २३२ मे ऊदोजी ने 'हरिरस' को लिपिबद्ध भी किया है।

"प्रहलाद-चरित" कथा-प्रधान, सवाद-परक, आख्यान काव्य है। सम्प्रदाय मे चार प्रहलाद-चरित विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त शेष तीनो के रचयिता हैं-केसोजी गोदारा, हरचन्दजी ढुकिया (डोहोकिया) तथा साहबरामजी राहड। केसोजी सत्तरहवी-अठारहवी शताब्दी के कवि थे। हरचन्दजी और ऊदोजी अडींग ने उन्नीसवीं शताब्दी मे कुछ आगे-पीछे अपने अपने काव्य रचे। साहबरामजी की रचना बीसवी शताब्दी की है। परिमाण की दृष्टि से केसोजी का प्रहलाद चरित बृहत्, ऊदोजी का मध्यम, हरचन्दजी का लघुतम है। इस प्रकार ऐसे काव्यो मे इसका अपना स्थान है, जिसमे अत्यन्त सक्षेप मे समस्त पूर्व मान्यताओ का समाहार करते हुए, भक्त प्रह्लाद के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान को सुन्दर ढग मे सीधी-सादी प्रवाहपूर्ण भाषा मे निबद्ध किया है। पौराणिक खण्डकाव्य होने से यह एतद् विषयक-काव्यो की परम्परा म १६ वीं शताब्दी का प्रमुख ग्रन्थ है।

यह एक आख्यान काव्य-कृति भी है। विशेषता यह है कि गेय होने के अतिरिक्त इसके कतिपय छन्द, डिंगल गीतो की भाँति, एक विशेष प्रकार की लय और स्वर से पाठ्य भी हैं। इसका बहुलाश 'दोहे-चौपइयों' मे है। ऐसी और इसी ढग पर लिखी गई 'दोहे-चौपइयो' वाली अनेक प्रबन्धात्मक रचनाओं को विभिन्न राग-रागिनियो मे गाए जाने का उल्लेख-निर्देश इनसे पूर्व ऊदोजी, पदम भगत, मेहोजी, वील्होजी, सुरजनजी, केसोजी आदि अनेक कवियो ने किया है। प्रति सख्या १२६ मे तो २७६ वे छन्द के पश्चात् के छन्दो को राग 'सोरठ' मे गाए जाने का उल्लेख भी है। पाठ्य छन्दो मे सामान्यत मोतीदाम, पद्धडी, कवित्त और कुडली के नाम लिए जा सकते हैं, जिनका इसमे प्रयोग हुआ है। यह प्रमुखत. सवादपरक रचना है, कवि-कथन तो अत्यल्प है। सबसे पहले पाठक और श्रोता का ध्यान ये ही आकृष्ट करते हैं। इनमे हरि-जय, विजय, जय, विजय-सनकादिक, अदिति-कश्यप, हिरण्य-कशिपु-शुक्राचार्य, नारद-इन्द्र, प्रह्लाद-शुक्राचार्य, प्रह्लाद-बालक, प्रह्लाद-हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद-नृसिंह सवाद मुख्य हैं। ये दो प्रकार के हैं :—

एक तो वे जिनमे कहने वाले पात्र का नामोल्लेख सवाद-कथन मे ही कर दिया गया है तथा दूसरे वे जिनमे ऐसा न करके केवल पात्र का नाम-निर्देश उसके कथन के पूर्व 'अमुक-

उवाच' कह कर किया है। पहले का उदाहरण 'बावनी'[1] पढ़ने के संदर्भ में और दूसरे का बालकों और प्रह्लाद के संवाद[2] में देखा जा सकता है। सभी संवाद विषय से सीधे सम्बन्धित, संक्षिप्त, तथा कथा को आगे बढ़ाने वाले हैं।

गीता और जाम्भाणी विचारधारा के अतिरिक्त ऊदोजी पर भागवत का भी प्रभाव दिखाई देता है। प्रहलाद-चरित और कक्का छत्तीसी में नवधा भक्ति का वर्णन यही ध्वनित करता है। भक्ति में प्रेमाभक्ति का उल्लेख करते हुए भी वह सर्वाधिक महत्त्व दास्यभाव की भक्ति पर देता है। आत्म-निवेदन परक छन्दों में यह अत्यन्त स्पष्ट है। नवधा में उसका सम्बल नाम-स्मरण है।

समष्टि रूप में कवि की वैचारिक भूमिका को समझने के लिए 'छत्तीसी' सर्वोत्कृष्ट रचना है। उसकी भाषा भावों की अनुगामिनी है, कथनों में अनुभव की सच्चाई है।

राजस्थानी और ब्रज दोनों भाषाओं में कवि ने समान अधिकार के साथ रचना की है।

१०१. मोतीराम : (अनुमानतः संवत् १८५०-१९२५) :

ये पीताम्बरदास के शिष्य थे। इनकी विष्णु[3] और जाम्भोजी[4] पर रचित चार आरतियाँ मिलती हैं (प्रति संख्या १८९, २२८)। इनके शिष्यों में नृसिंहदास और गंगादास विशेष प्रसिद्ध हुए।

१-। विप्र उ० ।-क प ग घ सब साथ ले,ओं नमो सिध आद।
वावन अक्षर कंठ करि, लिपो कंवर प्रहलाद ।। १५२ ।।
।प्र० उ०। झूठी विद्या साच कहावै, कूकस कूटे कण नहीं पावै।
अक्षर दोय पढ्या मैं आदू, पांडे कहा करै बकवादू ?।। १५३ ।। आदि।

२-सखा उवाच। जो परघट सिंवरां गोपाला । असुर मार करै पैमाला।
हृदै मैं हरि सिंवरण रापां। मुष सूं नांम असुर को भापां ।। १२९।।
प्रहलाद उ०। हृदै और मुष और ही गावै। साध नहीं वै चोर कहावै।
हृदै मांहि मित्र कह लेवै। मुप सूं गाळ सभा में देवै ।। १३० ।।
ताको वचन सहै नहीं कोई। हरि प्रसन्न कवन विधि होई ।। १३१ ।।

३-संझ्या आरती विष्णु तुम्हारी, चरणों की सरण मोहि राख मुरारी ।। टेक ।।
पहली आरती कंवलावर की, सकल सिरोमणि सचराचर की ।। १ ।।
दूसरी आरती प्रेम प्रकासी, अंतर घट घट के तुम वासी ।। २ ।।
तीसरी आरती पुष्प विराजै, भक्ति हृदै संसै दुप भाजै ।। ३ ।।
चौथी आरती वैकुण्ठ निवासी, लक्ष्मी सहित करो तुम वासी ।। ४ ।।
पाँचवी आरती मोतीराम गावै, महा विष्णु को सीस निवावै ।। ५ ।।-प्रति १८९।

४-आरती श्री जम्भ गुरुजी की कीन्हीं।
हरि हर गणपति जी की कीन्हीं ।। सुं अज्ञा मैंने तुम्हारी लीनी ।। टेक।
५ पंक्तियाँ।-प्रति संख्या १८९।

१०२. कवि - अज्ञात : (अनुमानत. संवत् १८५०–१९२५) : जम्भस्तुति :

प्रति सख्या ३४० (ख) मे अज्ञात कवि कृत ५ छन्दों की एक जम्भस्तुति प्राप्त हुई है[1] । इसमे मयारामदास (संवत् १८००-१८७०) कृत अमावस्या-कथा के अन्तिम दो छदो की किंचित् झलक दिखाई देती है । उपर्युक्त समय इसी कारण अनुमित है ।

स्तुति मे जाम्भोजी से आत्म-निवेदन किया गया है ।

१०३. लीलकठ (वेचू) : (अनुमानत सवत् १८६०–१९२०) :

सवत् १९१५ मे बिहारीलाल विष्णोई द्वारा कालपी मे लिपिबद्ध इनके २ छप्पय और ४ कवित्त (मनहरण) मिलते हैं (प्रति सख्या ३८९) । कविता ये वेचू (वेचुव) नाम से लिखते थे । एक छप्पय मे इन्होने अपने गुरु खोयोजी का नामोल्लेख किया है[2] । खोयोजी सुप्रसिद्ध महन्त हरिकृष्णदासजी के गुरु भाई कानोजी के शिष्य थे (प्रति सख्या १६०, २२४) । अनुमानतः खोयोजी का समय सवत् १८२५ से १६०० तक है । इस प्रकार वेचू का समय भी उपर्युक्त अनुमित है । सम्भवतः ये कालपी की ओर के निवासी थे ।

इन छन्दो मे कवि ने भक्ति-भाव पूर्वक जाम्भोजी के प्रति आत्म-निवेदन, उनके अवतार-रूप और महिमा का वर्णन किया है । दो छन्द नीचे दिए गए हैं[3] ।

१–क्लेसापहर गुन विज्ञ वर, धर्म स्थापक ईस ।
श्री जभेस्वर द्रवहु, चरण नीवऊ सीस ।। १ ।।
पीपासर प्रकासियो, गुरु देवन के देव ।
जम गुरु कृपा करो, अलप लपै नही भेव ।। २ ।।
कृपा करो गुरु देवजी, पूरण कृपा निधान ।
त्रिविध ताप मिटाय कै, दीजै पूरण ज्ञान ।। ३ ।।
बिनय करौ कर जोड कै, कृपा करो सुरनाथ ।
सरण गही अति दीन नै, लज्जा तोरे हाथ ।। ४ ।।
मैं अपराधी पातकी, अवगुण की हू षान ।
दया ज मोपै राषियैं, दीनबन्धु भगवान ।। ५ ।।

२–सेवक जान ऋपा करी वेचुव के उर फूल ।
खेओजी के दरस इम जाभाजी सम तूल ।। २ ।।

३–(क) सरण भये सब सुनहु बात हमसे अनाथ की ।
हमसे बहु तक करै सुनें तुमने सनाथ की ।
भरम राष गुर देव मोहि निज दास जान अब ।
वेचुव सुकवि निहार दया कर भूल तजो सब ।
सब जात मोहि निदरत इहा, वर मुक्त पदारथ पाय हो ।
गुरनाथ नाव तुव नाथ सुन, सु भौसागर महि आय हो ।। १ ।।

(ख) जीवन के मुक्त हेत आयो आप ब्रह्म रूप,
बीकानेर भूम माझ लोहट ग्रह गयो है ।
पर ब्रह्म पूरन प्रभाव को प्रकास कीन्हौं,
वेचुव सुकव सरण याही तैं भयो है ।

(शेषांश आगे देखें)

१०४. गोविंदरामजी : (संवत् १८६०–१९५०) :

ये जांगळू के गोदारा थापन और जाम्भा "अगूणी जागां"–साथरी के महन्त थे। खिदरोजी की शिष्य–परम्परा में हुए हरिकिसनजी के पोता–शिष्य रतनदासजी इनके गुरु थे। जाम्भोजी की शिष्य–परम्परा में ये १४ वें और खिदरोजी की में ११ वें थे। जाम्भा-साथरी के दोनो स्थानों–"आथूणी जागां", "अगूणी जागां" के वर्तमान महन्त इन्हीं की परम्परा में है[1]। सुप्रसिद्ध सिद्ध साहबरामजी राहड़ भी आरम्भ में इनके शिष्य थे जो बाद में गुलाबदासजी के "खोळे" (गोद) गए। इनका जीवन–काल संवत् १८६० से १९५० है। इस सम्बन्ध में इनके द्वारा लिपिबद्ध दो हस्तलिखित प्रतियों–संख्या ३४ तथा २८८ की पुष्पिकाएँ द्रष्टव्य हैं। पहली प्रति जाम्भा के जम्भ-मंदिर में संवत् १८८५ की कार्तिक सुदि ५ को तथा दूसरी संवत् १९५० की आषाढ़ वदि १३ को लिपिबद्ध की गई थी। संवत् १९५० में इसके थोड़े समय पश्चात् ही वे स्वर्गवासी हो गए थे। प्रसिद्ध है कि इस समय इनकी आयु ९० वर्ष की थी। संवत् १८८५ में ये "साध" थे, आयु लगभग २५ वर्ष की रही होगी। इस प्रकार, इनका जन्म संवत् १८६० में होना ठहरता है। ये जाम्भा में स्वर्गवासी हुए। वहां इनका समाधि–चबूतरा बना हुआ है।

विष्णोई सम्प्रदाय के पुनर्संगठन, प्रसार, प्रचार और एकसूत्रता के लिए इन्होंने महान् उद्योग किया। कवि होने के साथ ही ये संस्कृत के विद्वान्, तत्त्वज्ञानी, प्रसिद्ध गायक और सम्प्रदाय के मान्य व्याख्याता और आचार्य थे। इसकी पुष्टि साहबरामजी के कथन से

तेरो नांम लियौ भवसागर डर दूर भयो,
विचरत संसार मांझ निरभै कर दयो है।
कोऊ जिन भूलो साव भाषो निज नांम ही को,
सोई आप रूप गुर जाम्भाजी भयो है ॥ ५ ॥

१– गोविन्दरामजी

राजारामजी पंवार, धमाणा (सांचोर) के	सांवतरामजी (धनोजी के 'खोळे' गए)
जियारामजी वाड़ेटा, वनियां (लालासर) के	हरिदासजी गोदारा, घोळासर (फलौदी) के
गाढूरामजी सारण, करावड़ी (सांचोर) के	भरथरामजी सहू, सिवाड़ा (सांचोर) के
कौसलदासजी कालीराणा, सिढां (फलौदी) के	रणछोड़दासजी गोदारा, कानासर, (जैसलमेर) के
वर्तमान महन्त–'आगूणी जागां के'। कृपारामजी के शिष्य थे किन्तु गाढूरामजी के 'खोळे' (गोद गए)। संवत् १९९८ में 'भेख' लिया।	वर्तमान महन्त–'आथूणी जागां के'। संवत् १९९७ में 'भेख' लिया।

भी होती है[1]। साह्बरामजी ने जम्भसार मे अन्यत्र भी गुरु-महिमा और "सन्तों के कुल" वर्णन मे इनका श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उल्लेख किया है।

रचनाएँ :—इनकी निम्नलिखित फुटकर रचनाएँ उपलब्ध हैं :—

(१) वील्होजी की स्तुति -१४ छन्द (कुंडलियाँ-३, कवित्त-१, मनहरण-१०) -प्रति २०० ।

(२) साखियाँ-२, 'छन्दों की' तथा फुटकर छन्द[2] ।

(३) जम्भ-महिमा वर्णन आदि-१३ छन्द (कुडलिया-१ दोहे-११ कवित्त-१) -प्रति २७० ।

(४) विसनु सरूप (गद्य) (-प्रति सख्या २८८) ।

(१) वील्होजी की स्तुति :—इसमे जाम्भोजी और वील्होजी की स्तुति के पश्चात् वील्होजी के सम्प्रदाय उन्नयन सम्बन्धी कार्यों, उनके समाधि-स्थल रामडावास और वहा साहबरामजी द्वारा मन्दिर बनवाए जाने का वर्णन है। रचना का मुख्य उद्देश्य वील्होजी और उनके कार्यों का श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक उल्लेख करना ही है। इससे वील्होजी के सम्बन्ध मे कतिपय महत्वपूर्ण बातो का पता चलता है—जाम्भोजी की आज्ञा से उन्होंने देह धारण की, पथ मे आकर क्रिया-धर्म को सम्भाला, लोगो को पाप-कर्मों से छुडाकर धर्म-पथ पर लगाया और अनेक व्यक्तियो को 'पथ' मे मिलाया। बीकानेर, फलोदी, जोधपुर, कालपी, कन्नौज आदि अनेक स्थानों मे धर्म-प्रचार किया, उसकी नीवें बाधी और विष्णु-जप का उपदेश दिया। अज्ञानो नामक एक नास्तिक का उन्मूलन किया तथा जोधपुर के राजा सूरसिंहजी को 'परचा' दिया। अनेक भाति से 'पथ' की सेवा करते हुए अन्त मे वे रामडावास मे आकर रहने लगे। राम के निवास करने के कारण यह स्थान रामडावास कहलाया, जहा जाम्भोजी भी गए थे। जाम्भोजी के 'स्वरूप वील्होजी ने यहा सवत् १६७३ के चैत सुदि ११, रविवार को उत्तरा नक्षत्र में समाधि ली। इनकी प्रेरणा से साधु गुलाबदासजी ने यहा पर समाधि-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया जिसको साहबरामजी ने सवत् १९११ के आसोज-सुदि पूर्णिमा, शुक्रवार को पूरा करके कलश चढाया। अन्त में कवि इस वील्ह-धाम पर आकर हवन-पूजा करने का अनुरोध करता हुआ पुन उनकी स्तुति करता है।

१-गोविन्द तो गोबिंद ही जानो, या मैं फेरसार मति मानो।
जभ भक्त के कहिये आगू, चार बेद बक्ता बड नागू।
कवि बडे जस सुक्राचारय, असा कोइय न भया अचारय।
ताके द्रष्ण सू अघ छीजै, राग सुण्यां सु गध्रप रीझै।
तत्ववेता है बड उपकारी, धन्य अवनी ता प्र सचारी।
दिग विजई पडत बड बक्ता, गुणग्य तग्य जाणत सब जगता।
नाना धर्म पथ मैं धारे, पर उपकारी सत पियारे।
गोबिंद तो गोबिंद सम जानों, कळू अवतार भए तेहि मानों।
ताहि के सिष्य शाहबरामा, जभशार कीन्हो निज धामा॥ ६॥
-प्रति १६३, जम्भसार, प्रकरण २४, पत्र ३-४।

२-प्रति सख्या-१७५; २२६, ३१४ तथा ३६८।

उदाहरणस्वरूप दो छन्द द्रष्टव्य हैं[1] ।

(२) साखियां :—कवि की दोनों साखियां बहुत प्रसिद्ध हैं।

(क) प्रथम[2] साखी में जाम्भोळाव का माहात्म्य-वर्णन है।

(ख) राग धनाश्री में गेय[3] दूसरी साखी में वैकुण्ठ-वर्णन, सृष्टि की उत्पत्ति, सद्गुरु-महिमा, केवल विष्णु की सेवा और नाम-स्मरण, जाम्भोजी की महिमा, कार्यों आदि का उल्लेख है। एक छन्द यह है—

सिवरो सांम सरूप आंन देव नहीं ध्याइयें ।
बिसनु जपो और जाप, मोक्ष परम पद पाइयें ।
मोक्ष परम पद पाइये, नें जो सिवरें हर नांव ।
मंन इच्छा सारी हुवें, फळें मनोरथ कांम ।
ऐकागिर मंन कूं करो, दुबध्या दूर मिटाय ।
सिवरो साचें सांम नें, जळम मरण मिट जाय । आंन देव नहीं ध्याइयें ॥ ४ ॥

(३) जम्म-महिमा वर्णन आदि :—इन छन्दों में संक्षेप में जाम्भोजी के कार्य, उनकी महिमा, विष्णोई-धर्म नियम और साथरियों तथा उनकी सेवा-पूजा सम्बन्धी वर्णन है। जो भूमि जाम्भोजी के चरणों से पवित्र हुई वह साथरी कहलाई। साथरी सम्बन्धी ये छन्द द्रष्टव्य हैं :—

वृंदावन की रेंण का, पावन सुध सरूप ।
ज्यूं जंभ गुरु के चरण सूं, भूमि भई अनूप ॥ ३ ॥

१-(क) पूरण गुरु परमातमा जंभेसर जगदीस ।
आदि पुरष अवचल तुंहि तोहि नवाऊं सीस ।
तोहि नवाऊं सीस, सरण मैं लीनी तोरी ।
सरणागत कूं मान, पालना कीजो मोरी ।
त्रिष्णा प्रबल प्रवाह अति धारा बहै अपार ।
गोमदराम की विनय सुन लीजो मोहि उबार ॥ १ ॥

(ख) वील्हजी महाराज राज संतन के सिरताज,
अग्या मान जांभजी की देह जिन धारी है।
पंथ मा प्रगट भये क्रिया धर्म हाथ लीये,
लोगन निहार टेर दया विस्तारी है।
कांम क्रोध लोभ मोह मद मास दूरि कीये,
पाप छुटाय कर धरम अनुसारी है।
गोमदराम नृप मांन सरण आय लीनी जांन,
वार वार वील्हजू कूं वंदना हमारी है ॥ ३ ॥

२-प्रकाशित-(क) श्री स्वामी वील्हाजी कृत रावण गोवन्द का जीवन-चरित्र, पृष्ठ ३-५, संवत् १९८९ ।
(ख) श्री जंभसार, साखी संग्रह; पृष्ठ ३२, संवत् २००० ।
दोनों के प्रकाशक—श्रीरामदासजी, विष्णोई मन्दिर, कोलायत (बीकानेर)।
(ग) श्री जम्भदेव आरती व साखी, पृष्ठ ३२, संवत् २०१३, कोजारामजी हुडी गेरारामजी गोदारा, लुणावाखारा, कंवर जाटावास, जोधपुर।

३-श्री १०८ श्री जम्भेश्वर धर्म दिवाकर, पृष्ठ ८-१० संवत् १९८४ ।

सो भूमि भई सायरी, कहिये कारण कूण ।
यह सतो संसय हरो, कृपा करो सुख मूण ॥ ४ ॥
गुरोष्ट माँहि प्रवीण, जो बुद्धि भगतां तणी ।
निश्चै धरै सरूप, ताते कहिये सायरी ॥ ५ ॥

(४) 'विसनु सरूप' मे सनकादिकों द्वारा श्री नारायणजी और लक्ष्मीजी के स्वरूप-ध्यान का वर्णन और भक्ति-वर पाने का उल्लेख है । विष्णु स्वरूप इस प्रकार है —

"स्याम रंग, कमल नैन, चतुरभुज, मोहनी मूरत, कीट मुकट साजै, अंग अंग पर भूषण वीराजै, कोसतभ मणी वो वैजती माला पैरैं, पीतांबर की कछनी कांछैं, उपरना रेसमी ओढे, चारू हाथां मैं संष, चक्र, गदा, पद्म धारण किये । संष वो चक्र के दो हाथ ऊपर उठाये, पदम वो गदा के दो हाथ नीचे को लटकाये । घुंघरवाले बाल, मंद मंद हास, ताप हारणी चितवन" ।

उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर कवि के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं :—

(१) जाम्भोजी और वील्होजी के प्रति अगाध श्रद्धा-भक्ति के कारण ही उनसे सम्बन्धित विभिन्न स्थानों का माहात्म्य-वर्णन किया गया है । साथरियों की सेवा-पूजा करने सम्बन्धी कथन के मूल मे यही कारण है । कवि केवल इस बात को स्वीकार नही कर सकता कि उसके इष्ट देव तो पूज्य माने जाएँ किन्तु उनसे सम्बन्धित स्थान नही ।

(२) *'जाम्भोळाव' सम्बन्धी साखी मे वह सायुज्य-मुक्ति की बात कहता है :—*

सहस गुणों फळ पाइये नै जो सेवै नह काम ।
साजोज मुक्ती मिलै नै पावै मन विश्राम ।

मोक्ष को जीवन का चरम-प्राप्तव्य मानते हुए भी उसका झुकाव भक्ति की ओर दिखाई देता है ।

(३) *फुटकर रूप मे वील्होजी सम्बन्धी इतना ज्ञातव्य और किसी कवि ने नही दिया* है, इससे उनके जीवन-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं ।

(४) वह समग्रता मे सम्प्रदाय के प्रति गहरी निष्ठा-भावना रखता है और सर्वतो-भावेन उसकी उन्नति चाहता है । उसकी कविता का लक्ष्य इसके माध्यम से आत्म-कल्याण है ।

(५) *निम्नलिखित छन्द (वील्होजी की स्तुति मे)* जो रामडावास पर लिखा गया है, किंचित् परिवर्तन के साथ (जन्म-महिमा वर्णन आदि मे) साथरियों के लिए भी प्रयुक्त किया गया है —

वील्ह* धांम आय कर जप तप जम नेम,
करत धरत ध्यांन विष्णु गुन गाइयै ।
नर नारी सब आय मेवा मिष्ठान लाय,
होम जाप धूप खेय चित कूं लगाइयै ।

सात परकमां देवै सब दुष हर लेवै,
मान मद दूर कर पाप कूं वहाइयै।
कहै साध गोमदरांम सवंन को सारै कांम,
वील्हजु कै धामहि कूं सीस आय नाइयै + ॥ १३ ॥

पाठान्तर :—*जम्भ। + इस अर्द्धाली के स्थान पर–'जांभेजी की साथरी कूं सीस आय नाइयै'।

(६) विष्णोई सम्प्रदाय के लिए 'विष्णु धर्म' और विष्णोइयों के लिए "विष्णु उपासी" शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि २९ धर्मनिमयों का बीस और नौ से 'विश्नोई, 'विसनोई' या 'विष्णोई' नामकरण का कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्वित दो दोहे द्रष्टव्य हैं :—

भक्ताधीन सो जंभ गुरु, धर्म चलायो सार।
विष्णु धर्म की उपासना, क्रिया नेम अचार ॥ १० ॥
भांग तमाखू छोतरा, अमल मास मद पांन।
विष्णु उपासी एहि तजै, हृदय तत सुजांन ॥ ११ ॥

–जम्भ महिमा वर्णन आदि।

(७) विष्णोई कवियों ने 'कवित्त' छन्द को अनेक भावों का वाहन बनाया है। कवित्तों की इस परम्परा में इनका यह कवित्त भक्ति–भावना में, वील्होजी, अल्लूजी आदि की याद दिलाता है :—

भव भय नासन एक नूंम रवि कोट प्रकासं।
सत्रायुध कर चार नील घन आभा भासं।
कनक रुचिर पट्ट पीत रतन मन कुंडल राजत।
अमल कमल दल नेत्र बाहु आजान विराजत।
विश्व व्यापक विष्णु सोई अस्मदेह त्रिय उधरीय।
गोमंदराम लोयै प्रेम सूं हाथ जोड़ वंदन करीय ॥ २ ॥–वील्होजी की स्तुति।

संख्या में इनकी रचनाएँ कम ही हैं किन्तु भाषा की सरलता और निश्छलता, भक्ति-भावों के सहज उद्‌गार होने से ये बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। कविता की भाषा मुख्यतः राजस्थानी है, जिसमें यत्र–तत्र व्रजभाषा का मिश्रण भी है।

१०५. खेमदास : (विक्रम संवत् १८६५–१९५१) :

ये सलूंडा गांव के जाखड़ जाति के और छोटी अवस्था में ही पीताम्बरदासजी के शिष्य होकर साधु हो गए थे। ये लालासर साथरी के महन्त थे। इनका देहान्त ८५ वर्ष की आयु में लगभग सं० १९५१ के आसपास हुआ था। इनका समाधि–चौक भीयांसर साथरी में है। 'पोथो ग्रंथ ग्यांन' (प्रति संख्या २०१) को सुरक्षित रखकर इन्होंने सम्प्रदाय की महान् सेवा

की है (द्रष्टव्य–परमानददास वणियाळ, कवि सख्या ८८)। इनके दो कवित्त मिले हैं (प्रति सख्या–२३५, फोलियो ३४-३५) जिनमे शुचिता और भ्रष्ट लोगो के लक्षणों का वर्णन किया गया है —

सुच है सुमरण मांय साच मे सुच कहावै।
सील सही तो सुच सुच मन मार्‌यो पावै।
सुच सोई सम दृष्ट सुच पर काम तैं न्यारा।
दया धर्म में सुच सुच सत सू व्यवहारा।
खेमदास मातै धणी, आद सबद सबही कही।
स्रवन नेत्र मुख नासिका, सुची ज्ञान इन्द्री गही।। १११ ।।
भ्रष्ट भजै नहीं राम भ्रष्ट कुतम कूं ध्यावै।
मन मनसा नहीं ठोड़ भ्रष्ट बिखिया चित लावै।
जग के चलै सुभाव निंदा करै मन साचा।
दया धर्म नहीं करै भ्रष्ट अखज ही राचा।
भ्रष्ट सोई समझै नहीं भ्रष्ट कुमारग पग धरै।
यह लक्षण सब भ्रष्ट के, खेमदास जन परहरै।। ११२ ।।

१०६ कवि-अज्ञात : जांभैजी रै भगता री भक्तमाल : (विक्रम १९ वीं शताब्दी) :

भक्तमाल की प्रति (सख्या २१६) अपूर्ण है, जिसमे आरम्भ के २ दोहे और राग धनाश्री मे गेय २३ चौपइया ही हैं। इसम अनेक विष्णोई भक्तो और कवियों का नामोल्लेख है। इसके रचनाकाल का निश्चित पता नही चलता। केसोजी (१६३०-१७३६), सुरजनजी (१६४०-१७४८) और हीरानन्द (१७५०-१८००) के नाम आने से अनुमान होता है कि विक्रम उन्नीसवी शताब्दी मे कभी इसकी रचना हुई होगी।

रचना का महत्व इसके नाम से ही स्पष्ट है। परिशिष्ट मे प्राप्त पूरा अ श दिया गया है।

१०७ साधु मुरलीदास : (अनुमानतः विक्रम १९ वीं शताब्दी) :

ये शान्त प्रकृति के एकान्त–सेवी विष्णोई साधु माने जाते हैं। विष्णोई कवियो की रचनाओं के बीच मे इनकी रचनाओ की उपलब्धि से भी इनका विष्णोई होना ध्वनित है।

इनके अनेक कवित्त–सवैये सुनने मे आए हैं, किन्तु उन पर यहा विचार करना समीचीन नही है। लिखित रूप मे (क) गुरु–महिमा (प्रति सख्या १६४) और (ख) राम-महिमा सम्बन्धी दो फुटकर छन्द (प्रति सख्या ३०८) ही प्राप्त हैं[1] । इनसे इनके भक्तिभाव

१–(क) राम गुन गायो जिन एतो सुप पायो है।
चढवे को घोरा गजराज सुप पास घणी, जीमन को अनेक भात भोजन बनायो है।
(शेषांश आगे देखें)

का पता चलता है। भापा राजस्थानी और पिंगल है।

१०८. रचयिता - अज्ञात पत्री : (अनुमानतः विक्रम संवत् १८७५) :

पद्यगद्य मिश्रित अज्ञात लेखक की महन्त तुलछीदासजी आदि को लिखी गई एक "पत्री" प्राप्त हुई है (प्रति संख्या २६६) जिसके आदि के १३ चौपई-दोहों में साधु और प्राप्त कर्ता सन्तों की महिमा का वर्णन किया गया है। इसमें लेखक और लेखन-काल का उल्लेख नहीं है। अभिव्यक्ति के एक माध्यम के रूप में ऐसी पत्रियां अध्ययन का रोचक विषय प्रस्तुत करती हैं। इसका कुछ अंश इस प्रकार है :—

श्री जांभूजी सीहाय छै जी।
प्रथम सति श्री स्वामी आदू ग्यांन भगति जिन तें लही।
आदु गुर र संतन कै सरनै आए, भ्रम क्रम ततकाल मिटाए।
तिन चरनन कौं वंदन करि कै, पत्री लषौं प्रीति उर धरि कै॥ १॥
सिध श्री सर्व वोपमां राजै, मंगळमूरति संत विराजै।
सीतल रूप ध्यान हरि धारन, निर्मल जस अतसै विस्तारन।
निर्मल विमल अमल अति राजत, गुण घन मन जन उपर गाजत॥ ४॥
कथा कीरतन होत नित गावत संत सुजांन।
हंस ज्ञांन हृदै लिये, कटै ब्रह्म वाखांनि॥
तुम्ह गुनसागर संत हो वार पार नहीं छेह।
मेरी बुधि उनमान कछु लखी तुम जो येह॥ १२॥
जेती जग में वोपमां वरण गये सव संत।
तेती सब तुम जोग्य हो, मैं कर जोरि कहंत॥ १३॥

इत्यादिक अनेक वोपमां सोभित सो वावाजी म्हाराजि श्री ......महंतजी तुलछीदासजी वावाजी दयारांमजी भगतरामजी वकसीराम को सतराम नूण प्रणाम सहत वंचज्यो जी और आपकी कृपा सूं आनंद है, आपका सदा आनंद चाहि जी और कृपा म्हरवानीगी राषो तिनसूं वसेष राषज्योजी..........।

कपरा अमोलप विन पहरै ही वगस देत, चेरी और चाकर हजूर ही कहायो है।
महलन ही मैं वेठ रनवास ही को लेत सुप, पुन परताप तातै विरद ही सवायो है।
मुरली कहै मन तातैं तूं भजन कर, राम गुन गायो जिन एतो सुप पायो है॥ १॥
(ख) राम हूं न गायो जिन एतो दुप पायो है।
धापन ना मिलत धान चींता मरै हतै प्रांण, चलत पयादे पंथ मूढ मति छायो है। =
हीन परवार गिर वासना वनंत ताकै, कपरा न मिलत होत चाकर परायो है।
करत मजूरी पेत पोद के वेचत भारै, तोही न भागै भूप रन को दवायो है।
मुरली कहत मन तातैं तूं भजन कर, राम हू न गायो जिन एतो दुप पायो है॥२॥

१०९. कवि - अज्ञात : (अनुमानत संवत् १८७५)

"भूल (भूले) को लछन" (प्रति सख्या ३३३ (घ)) यह ६ छन्दों का भजन है। लिपिकार द्वारा दी गई भिन्न-भिन्न छद-सख्या से इसके अन्तर्गत दो पद प्रतीत होते हैं, किन्तु ऐसा नही है। इसम "जभु तेरा वीसनोई" की टेक लगती है। इसका लिपिकाल सवत् १९१९ और १९२३ के बीच किसी समय, सम्भवत १९१९ है। रचनाकाल इससे पूर्व है। कितना पूर्व है, यह कहने का तो कोई साधन नही है किन्तु अनुमानत सवत् १८७५ से १९०० तक यह समय माना जा सकता है।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमे "भूले हुए" विष्णोई के लक्षण वर्णित हैं। तत्कालीन विष्णोइयो के अध पतन पर अत्यन्त दुखी होकर कवि जाम्भोजी के प्रति उनके दोष और कुलक्षण निवेदन करता है। धर्म-प्रिय होने के कारण इसम तीखेपन और आक्रोश की झलक दिखाई देती है, जिसके मूल मे सुधार-भावना है। उदाहरणार्थ ये छद द्रष्टव्य हैं —

जभू भूला तेरा विसनोई, भूला तेरा साधु।
सुगरापणो साधै नहीं, कोई थोथा करै उपाधु ॥ ३ ॥
धरम नेम तो भूल गया, जभू तेरा बीसनोई
सीळ सतोष का पता नहीं, रीत भात डबोई ॥ ४ ॥
असा भोजळा विसनोई, घर घर स्वान कहावै।
नाक आपका वडै, दाद कांहा नहीं पावै ॥ ५ ॥

११०. कवि-अज्ञात : (अनुमानत विक्रम १९ वीं शताब्दी)

प्रति सख्या २३० (घ) म पौराणिक पद्धति पर रचित अज्ञात कवि की एक कुडली[1] म "विष्णु-जम्मे" देने का अनुरोध है।

इसके मूल म रचयिता का प्रयास लोगो की धर्म-बुद्धि दृढ करने का है।

१११. पीताम्बरदास : (विक्रम १९ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) :

ये खिदरोजी की शिष्य-परम्परा म विष्णुदास के शिष्य थे[2]। विष्णुदास का देहान्त सवत् १८८५ मे हुआ था (प्रति सख्या १६०)। पीताम्बरजी के हाथ को लिखी हुई प्रतियो

१-विष्णु जमै कं देत ही, पाप विल होय जाय।
वरम एक मैं गुरु वचन, जमो करो चित लाय।
जमो करो चित लाय, गऊ दस को पुन होई।
मन इछन प्रवाण, सुरग मे प्राप्त होई।
अन धन लक्ष्मी चौगुणी, पुत्रा हुवै हुलास।
एक गऊ को पुन हुवै, सुणै सुणावै तास ॥ १७ ॥

२-प्रति सख्या १६०, २२४, २८ की पुष्पिका तथा ३०४।

का समय संवत् १८७५ से १८९० तक है[1] । इनके शिष्य रतनदास थे, जिनकी संवत् १८८७ में लिपिवद्ध प्रति प्राप्त है (संख्या ६३) । इन सब पर विचार करने से इनका समय मोटे रूप से उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध ठहरता है । साहबरामजी ने इनको परम दयालु, त्रिकालज्ञ, महान्-प्रवीण पण्डित और ब्रह्मवेत्ता बताया है । इनका विशेष सम्बन्ध लालासर साथरी से था, जहां ये तथा दूसरे प्रसिद्ध साधु खेमदास प्रायः रहा करते थे[2] । ये संस्कृत के विद्वान् थे । संस्कृत में रचित इनका जंभाष्टोत्तर शतनाम बहुत प्रसिद्ध रचना है[3] ।

इनकी विष्णु की एक संध्या-आरती[4] तथा राग 'सोरठ' में गेय एक हरजस[5] प्राप्त हुआ है, जिसमें भगवान की "वांकी रीझ" का सोदाहरण भक्तिभावपूर्वक वर्णन किया गया है । ये प्रीतम नाम से भी लिखते थे । मौखिक रूप में इनके और भी हरजस सुनने में आए हैं ।

११२. परसरामजी (हरिकृष्णजी - शिष्य) : (विक्रम १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) :

विक्रम उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में दो परसराम हुए थे और दोनों ही समकालीन थे । एक परसराम गंगाविष्णुजी के शिष्य थे, जिनकी हस्तलिखित प्रतियों का लिपिकाल संवत् १८८७ (संख्या ११) से १८९७ (संख्या ३५) तक है ।

दूसरे परसराम, साधु हरिकृष्णजी के शिष्य थे । इनके हाथ की लिखी हुई अनेक प्रतियां (संख्या-३२, ४४, ५१, ५४, ५५, ६६, ७०, ७१, १२२ और १६८) उपलब्ध हैं,

---

१-प्रति संख्या २२०, १२, २४, २५, १४१ ।

२-पीताम्बरजी परम दयाला, बड़े पंडित पेषी त्रिय काला ।
ब्रह्मवेत्ता पंडित परवीणा, परमेश्वर में भए लवलीना ।
पिताम्बरदासजी खेमदास ही, जग में कीने जोग विलासही ।
लालासर हरि सेवक भए, साळ करी पुज्यमान ही रहे ॥
—प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २४ वां ।

३-जम्भदेव लघु चरित्र में प्रकाशित, पृष्ठ १-२, श्रीरामदास, कालपी, संवत् १९६९ ।

४-संझ्या आरती विष्णु की कीजै, सिमरत नांव सकल अघ छीजै ॥ टेक ॥ पंक्ति ६ ।
—प्रति संख्या १०६, २५२, ३६९ ।

५-समझि न आवै हो माधोजी वांकी रीझ तुमारी मोकों ॥ टे० ॥
जरजोवन के मेवा त्यागे, भाजी भावै आछी ।
तीन लोक में नाहिं अघानो, चोरत झूंठी छाछी ॥ १ ॥
जानत हो लछमीपति सांमी, कुवज्या में रुचि मानी ।
सात समुद्र चरन निवासा, रीझे सदना के पानी ॥ २ ॥
देवन के देवापति हो प्रभु, तुम कूं लाज न आवै ।
ओछी टहल पंडवन सुत की, झूंठी पतल उठावै ॥ ३ ॥
नाय न जानै धोय न जानै, कर्माबाई पीचड़ा करावै ।
उतारि हांडड़ा आगैं राख्यो, माधोजी भोग लगावै ॥ ४ ॥
जो तुम करो सोई बन आवै, मो पै कहत न आवै ।
जन पीतांबरदास जीवन जन को जस वधावै ॥ ५ ॥-प्रति संख्या १९५ ।

जिनका लिपिकाल सवत् १८७८ (प्रति सख्या ७१, १२२) से १८८६ (प्रति सख्या ५१) के बीच है। यहा इन्ही का उल्लेख अभीष्ट है, क्योकि नीचे उद्धृत दोहे इन्ही की रचना बताए जाते हैं। साहबरामजी ने अनामक्त बताते हुए केवडे की परिमल से इनकी तुलना की है (प्रति सख्या १६३, जम्भसार, प्रकरण २४, पत्र २) —

हरिकिसनजी हर के दासा, प्रसरामजी सिष निर आसा।
गगा जमना सम भए नृमल, केवडे सम ताकी परमळ ॥

प्रति सख्या २७८ मे कतिपय विष्णोई साधुओ के निधनकाल का उल्लेख है उसमे 'हरकिसनजी' के पश्चात् फरसरामजी का स० १९०० के आसोज वदि ३ सोमवार के दिन स्वर्गवास होना बताया है [1]।

नीति और हरिभजन सवधी इनके केवल तीन ही दोहे प्राप्त हैं[2]। फुटकर रचनाएँ इनकी ओर भी बताई जाती है।

११३. केसौदासजी : मगलाष्टक[3] : (विक्रम-उन्नीसवीं शताब्दी)

ये रावळजी के शिष्य थे। सवत् १८९१ तक इनका वर्तमान रहना सिद्ध है, क्योकि 'हरजमो' की एक प्रति इन्होने इसी साल लिपिबद्ध की थी (सख्या १४४)।

मगलाष्टक का विवाह मे पाठ किया जाता है और यही इसके महत्त्व का कारण है। विभिन्न लिपिकारो ने इसके चार चार वाक्यो को एक एक छन्द मानकर इसको छन्दोबद्ध रूप मे लिखा है, किन्तु वास्तव मे यह समूची रचना पद्यबद्ध नही है।

इसमे गीता के दसवे अध्याय मे वर्णित भगवान की विभूतियों की भाति कतिपय श्रेष्ठ वस्तुओं के नामोल्लेख किए गए हैं[4]। उदाहरण इस प्रकार है —

१—'समत १९१०० रा आसोज वद ३ तीज ससीवार।
फरसरामजी तन त्यागीयो भेल्या विसन दवार'।

२—सूवा सुपरा बोलिए, विपरा वोलो काय।
हृदा जहा रा छाडइए, जिण रे वसिए गाव॥
जैसे कूआ जळ बिना, खिणा न तैसे काम।
मनषा देही पाय कर, भजो नही भगवान॥
दीसण लागा रोंपडा, नेडो आयो गाव।
परसा विलम्ब न कीजियै, लीजै हरि रो नाम॥
—साखी सग्रह प्रकाश, पृष्ठ ६ ७, सम्पादक-स्वामी ब्रह्मानद, प्रथम सस्करण, तथा
(क) श्रीजभसार, साखी सग्रह, पृष्ठ २, सम्पादक श्रीरामदासजी, सवत् २००० ।
(ख) श्रीजम्भसार प्रकरण २४ वा एव साखी सग्रह, पृष्ठ ३५, सपा०—श्रीरामदासजी सवत १९८५ ।

३—प्रति सख्या ३७, ६७, ७८, ३१३, ३८७।

४—पति अनत को गत सकौं, मगल सुनियो साघ।
कर जोरी केसव जपै, मुचै सकल अपराध॥ २५ ॥

सरोवरन पति मानसरोवर, मुनिसरन पति कपिल मुनि ।
सिघनपति गोरख, जोगेश्वरन पति भरथरी ॥ १३ ॥
भंडारीयन पति कुबेर, विरखान पति मेघमाळा ।
समुद्रन पति रतनागर, द्वीपन पति जंबू द्वीप ॥ १४ ॥ –प्रति संख्या ७ . से ।

११४. साहबरामजी राहड़ : (विक्रम संवत १८७१–१९४८) :

ये हुजूरी विष्णोई भक्त पारवा गांव के रतनोजी राहड़ के वंशज तारोजी के पांच पुत्रों में से एक थे[1] । इनका जन्म गांव हुडिया (कुचामन के पट्टे में) में संवत् १८७१ में हुआ था । ८–१० साल की आयु में ये साधु बन गए । संवत् १९११ में इन्होंने रामड़ावास में वील्होजी का मन्दिर बनवा कर अगले वर्ष उस पर कलश स्थापित किया था । मन्दिर का आरम्भ तो साधु गुलाबदासजी ने किया था, किन्तु संवत् १९०९ में उनका स्वर्गवास होने पर वह अधूरा ही रह गया । साहबरामजी ने स्वर्गवासी गुलाबदासजी के 'खोळे'(गोद) जाकर मन्दिर को पूर्ण किया । मूलतः ये वील्होजी की शिष्य-परम्परा में जांगळू के थापन साधु गोविन्दरामजी गोदारा के शिष्य थे । इसका उल्लेख करते हुए गोविन्दरामजी ने साहबरामजी की बहुत प्रशंसा की है[2] । ये पढ़े-लिखे थे । गोविन्दरामजी की आज्ञा से गांव पारवा की सुश्री रामा

१–महेदो ठुकरो रतनों राड़ा । दीन्हों जंभ विवांणे चाड़ा ।
तारं भक्त कै पुत्र पांचा । होम करै नित सबद ही वांचा ।
तुलछो चैनो जसराम अनंदा । साहबराम जंभ कै वंदा ।
जेहि साहब जंभसार बनायो । जंभ गरु को द्रष्ण पायो ।
कृपा कर हृदै में रहेऊ । तातै जंभसार कहि दएऊ ॥ ६२ ॥
–प्रति १९३; जम्भसार, प्रकरण–१८ पत्र, २० ।

२–संत जो गुलाबदाम, वील्हजू की सेवा करै,
वील्हजू क्रिपाल होय, प्रेरणां सूं किये है ।
मिन्द्र बनायबे की मन मैं बिचारी येहू,
आरंभ रचाय मन साथ कर दिये है ।
वील्हजी महाराज संत मन की जु लई जांन,
अपनों भगत मांन, हृदै लाय लिये है ।
साध ही साहबरांम, उनही की अग्या मांन,
श्रम हू किया ज जांन, हुलसाये हिये है ॥ ११ ॥
साध ही साहबरांम, सुन्दर बनायो धांम,
आठूं जांम विष्णु नांम, मिंदर मैं गाइये ।
मिंदर की सुन्दरता नित ही है छब रूप,
इंडो ही अनूप रूप संद को धाइये ।
समत उनीसामो जु इग्यार को साल,
मिति क्वार सुद पून्यूं वार सुकर सुनाइयै ।
साहबरांम जू की भेट, ये ही मानो मेरे प्रभु,
टलहिसै नित चित चर लाइयै ॥ १२ ॥–प्रति २०० ।

से विवाह कर गृहस्थ बने। बहुत सालो तक ये नाथडी मे रहे[1], पश्चात् दुतारावाली में आकर बस गए। यहीं संवत् १९४८ के मार्गशीर्ष सुदि ११ को इनका बैकुण्ठवास हुआ जहां समाधि-मन्दिर बनाया गया। जम्भसार (प्रति संख्या १९३) मे राहड रतनो के प्रसग के अतिरिक्त तीन अन्य स्थलो पर भी प्रसगवश इन्होंने अपने विषय में किंचित् लिखा है, जिससे इनकी रचनाओ के विषय मे भी सूचना मिलती है[2]।

ये अनुभव ज्ञानी, बहुश्रुत, विद्या-व्यसनी और कट्टर विश्णोई-धर्मानुयायी थे।

रचनाएँ :—इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं :—

१-सतलोक पहुचने का परवाना। छन्द ३ (पवगनामा) (-प्रति १८४, १९३)।

२-सार शब्द गुंजार। छन्द-१८५ (दोहा, इन्दव, छप्पय, पवगनामा, सवैया, मनोहर, चतुरपाद, कुडली) (-प्रति १८७, १९३)।

३-सार बत्तीसी। छन्द ४२ (दोहा, इदव, मनोहर, छप्पय, पोमावती) (प्रति १८५, १९३)।

४-अमर चालीसी। कुण्डली-४४ (-प्रति संख्या १८६, १९३)।

५-महामाया की स्तुति। छन्द-४४ (*'रागणी मारफत भैरवी' मे गेय*[3]) (-प्रति १९३, ३७३)।

६-फुटकर रचनाएँ : (क) साखियां-२[4] :

१-अमल राज अग्रेज का हासी अरु हुसार।
पश्चिम उत्तर नाथडी, विष्णु कुल सुख सार॥ ११४॥-सार बत्तीसी।

२-(क) पोयेजो रा गुलाबदासा। जा मिस होसी नीत निवासा।
गोविंदराम साहब कर पेशी। गुलाबदास रै पोळे देसी।
सो मो पर करसी अपयाना। वडो गुणी होय अणभेशाना।
सार बतीसो[1] सबद गुंजारा[2]। महामाया अस्तुती[3] सारा[4]।
अमर चालीसी[5] आदिक ग्रन्था। पान प्रवाना[6]* आदक पथा।
जमसार[7] बोह ग्रनन करसे। सतरा पीढी सो अवतरसे।
रुपराम अरु गनेसरामा। लिछमी नारायन सुत धामा।
-प्रकरण-२३, पत्र ३-४, जोधपुर के राजा सूरसिंह के सम्मुख वील्होजी का कथन।

* विशेष – छठी "पान" (पानो) स्वतंत्र रचना न होकर "सार शब्द गुजार" के पांचवें-प्रकरण के ५ छन्द हैं।

(ख) गुलाबदास हू जो की चादर। वील्ह दई साहब कर आदर।
साहब कर्यो वील्ह पर मदर। दश हजारं साल महा सुदर।
—वही, प्रकरण-२३, पत्र-२०।

(ग) साहबराम के सतगुर मानो। गोविन्दरामजी गोविंद कर जान्।
—वही, प्रकरण-२३, पत्र-२४।

३-इसमें यह टेक लगती है —
धिमि धिमि धिमि धिमि धन धन धन धन जै जै माया मस्तानी।
प्रथम पांच रचनाओं का प्रकाशन साहबरामजी के सुपुत्र दुतारावाली के श्री लक्ष्मीनारायणजी ने "सार शब्द गुजार" नाम से संवत् १९७८ मे किया था।

४-प्रति संख्या-३२३, ३४०, ३७४। दोनो 'रावण गोयन्द का जीवन चरित्र, पृष्ठ १-३, संवत् १९८६, तथा श्री जम्भसार : साखी सग्रह, पृष्ठ ३३-३४, संवत् २०००, मे प्रकाशित हैं।

(१) परम भक्त प्रहलाद हिरणाकुस दुख है दयो ।
(२) नरसिंह नर मुलतान सतजुग में साको कियो ।

(ख) हरजस, भजन-१८[1] ।

(ग) आरती-[2] १ तथा फुटकर छन्द (-प्रति संख्या १८३, ३३८)।

७-जम्भसार[3] । २४ प्रकरण, रूपक संख्या-२४५० (२४,००० दोहे, चौपई, छन्द आदि[4])।

"परवाने" में "सोह" जप का माहात्म्य वर्णित है। **सार शब्द गुंजार** में—(१) आत्मा-ईश्वर-दर्शन, (२) सृष्टि-वर्णन, (३) विदेह केवल ज्ञान, जीवन्मुक्ति-लक्षण, (४) धर्माधर्म निर्णय और (५) गोवळवास-पांच प्रकरण है, जिनमें तत्तत् विषयों का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। **सार बत्तीसी** (अपर नाम रत्नावली) का मुख्य उद्देश्य "हरिहंस मिलाप" है, जिसमें 'आत्मा सत्य, संसार वृथा, जीवन्मुक्ति, विदेह केवल लक्षण, देह-ब्रह्माण्ड' आदि का संक्षेप में उल्लेख है। कवि के शब्दों मे यह उसके समस्त ग्रन्थों का सार है[5] । **अमरचालीसी** में वर्णमाला के ३८ अक्षरों (अ, क से ह वर्ग, ऌ तथा क्ष, त्र, ज्ञ) पर ब्रह्म-योग, ज्ञान विषयक क्रमिक रूप से कुंडलियों की रचना की गई है। इसका दूसरा नाम **"ब्रह्मयोग दीपिका"** सार्थक ही है। **"महामाया की स्तुति"** में समस्त संसार को जीतने, भ्रमानेवाली, अनेक रूप-धारिणी माया और उसकी शक्ति का सोदाहरण वर्णन है। ये सभी रचनाएँ प्रधानत: अध्यात्म विषयक हैं, कवि का 'अणभै' इनमें सहज रूप से मुखरित हुआ है। दूसरी, तीसरी और चौथी रचना प्रश्नोत्तर रूप में भी है। **फुटकर रचनाओं** में आरती सर्वाधिक प्रसिद्ध है (देखें-परिशिष्ट में) । **साखियाँ** प्रह्लाद-उद्धार और नृसिंहावतार से सम्बन्धित हैं। सर्वमान्य विष्णोई साखियों में इनकी भी बड़ी प्रसिद्धि है। **हरजस**-भजनों में भक्ति-भाव पूर्ण अनेक प्रकार से जाम्भोजी[6] तथा गणेश, सरस्वती का महिमागान है। सरस्वती

१-प्रति संख्या ९२, १७३, १८२, ३१४।

२-प्रति संख्या १७३, ३१४। यह 'श्री जम्भेश धर्म दीपावली', पृष्ठ ३-६, संवत् १९९९ तथा 'जम्भदेव आरती संग्रह, पृष्ठ ७-८ संवत् २००३, (प्रकाशक-ओंकारजी पंवार, कडोला) में प्रकाशित है।

३-प्रति संख्या १९३ (च)। इसके २० प्रकरण आंशिक रूप से श्री स्वामी श्रीरामदासजी (कोलायत) ने संवत् १९७८, १९७९ और १९८५ में प्रकाशित किए थे। मूल प्रति और प्रकाशित अंशों में बहुत पाठ-भेद और परिवर्तन है। यहां मूल प्रति के आधार पर ही विवेचन किया गया है। द्रष्टव्य-श्री स्वामी श्रीरामदासजी गोदारा (रचयिता-संख्या-१२७)।

४-(क) 'जम्भसार ग्रंथ में २४००० चौबीस हजार दोहा चौपई है'-प्रति संख्या १९२, पृष्ठ ३० (रजिस्टर)।
(ख) सार शब्द गुंजार, भूमिका, पृष्ठ २, संवत् १९७८।

५-सार बत्तीसी सार है, या सम सार न कोय।
माहवराम सब ग्रंथन को, लीन्हों सार निचोय ॥ ११६ ॥
सार शब्द गुंजार जो, सार बत्तीसी देख।
जम्भसार को अर्थ हिय, आवत तुरत विशेष ॥ ११८ ॥-सारबत्तीसी।

६-जै जै जंभ गुरु जगदीसा।
दूर ते दूर निकट ते नेड़ो परम पर परमेसा ॥ टेर ॥ (शेषांश आगे देखें)

गणेश[1] सम्बन्धी भजन लोकरुचि को ध्यान मे रख कर लिखे गए प्रतीत होते है।

जम्भसार साहबरामजी की कीर्ति का मुख्य आधार है। इसके प्रमुख छन्द दोहे-चोपई हैं। सवत् १९०८ म इन्होने इसकी रचना आरम्भ की थी किन्तु रामडावास मे वील्होजी के मन्दिर बनवाने मे प्रवृत्त होने से लिखना छोड दिया। पुन सवत् १९२२[2] मे लिखना आरम्भ कर दो साल म पूर्ण किया। इन्होने इस विशाल ग्रथ की तीन प्रतिलिपियाँ की थी। इसका उल्लेख करते हुए श्री लक्ष्मीनारायणजी का कहना है –'महात्माजी अपणी उमर मे ३ जम्भसार लिखे हैं। प्रथम जम्भसार लिख्या जका गुटका जिल्द समेत गणेसराम के पास है। दूसरा जम्भसार विलायत १ अगरेज ले गया था जो महात्माजी का प्रिय शिष्य था। (वो कही विलायत मे होगा)। तीसरा जम्भसार यो लक्ष्मीनारायण के पासी आया है' (प्रति सख्या १६२, पृष्ठ ३२)। प्रस्तुत प्रति यह तीसरा जम्भसार ही है। इसकी प्रथम प्रति भी वर्तमान मे दुतारावाली (अबोहर) के श्री धोकलरामजी विश्नोई के पास है। दोनो का पाठ मिलान करने पर पता चलता है कि कवि ने अन्तिम रचना-सस्करण मे, अनेक स्थलों पर पर्याप्त परिवर्द्धन और परिष्कार किया है।

जम्भसार का आधार हुजूरी सिद्ध "रणधीरजी के हाथ की लिखी हुई, नागौर के काजियो से प्राप्त एक पुस्तक," अनेक स्थानो पर प्रचलित जनश्रुति और लोक-प्रसिद्धि[3], विष्णोई कवियो की अनेक रचनाएँ तथा सबदवाणी के विभिन्न प्रसग हैं। इसमे राव लूण-

---

काम क्रोध मद लोभ मोह तज निद्रा त्रिसना रीसा।
और गुरु उनईसा अठारा, सतगुरु विस्वा वीसा॥ १॥
जभ गुरु को छिन भर सिवरै, आन देव कोट वरीसा।
आन देव सुप दुख के दायक, हरि सुमर्‍या अघ खीसा॥ २॥
जभ गुरु को ध्यान धरत है, सिव सिनकादि अहीसा।
अतलोक मा चरन पुजावै, सत लोक हरि सीसा॥ ३॥
जो विसनोई गुरु मुप होई, गहै धरम उनतीसा।
जो गुरु नै धारै जम नही मारै, साहबराम के ईसा॥ ४॥-प्रति १७३।

१-तुम कू मनाऊ गणपत लाडला, गढ रणतभवर का॥ टेर॥
स्याम वदन लम्बोदर देवा, सुन्दर देह विशाला।
रवि ससि सम दोउ दत विराजै, गळ फूलदी माला॥ १॥ जी गढ०॥
सूड सुडाळा दूद दुदाळा, मस्तक मोटा बिंदा।
सब देवन मे देव कहा जै, ज्यू तारन मे चदा॥ २॥ जी गढ०॥
पाव धाफडा लचकत पोथी काम करी सम चाला।
सुन्दर तिलक बन्यो अति सुन्दर, पळ पळ पळकत भाला॥ ३॥ जी गढ०॥
लटकत लूगी लाल लपेटो, लग रही जरद किनारी।
मोदक भोग लगावो मेरे प्रभुजी, चाबो लूग सोपारी॥ ४॥ जी गढ०॥
मूसा वाहन कर धर परसो ढळक रही दोय ढाला।
गणेस गावै पार लघावै, कदै न आवै जमकाला॥ ५॥ जी गढ०॥
-प्रति ९२ से।

२-श्री जम्भसार, खण्ड-पृष्ठ २, पर श्रीरामदासजी की 'भूमिका'।

३-(क) सार शब्द गुजार, भूमिका, पृष्ठ २-४।
(ख) श्री जम्भसार, खण्ड १, श्रीरामदासजी की 'भूमिका'।

करण, अल्लूजी चारण, ऊदोजी नैण, वील्होजी, केसोजी, सुरजनजी, गोकलजी, मयारामदास, ऊदोजी अड़ींग, आदि अनेक ज्ञात और अज्ञात कवियों की रचनाओं का भी समावेश किया गया है। श्री लक्ष्मीनारायणजी के अनुसार, "पुराने साधुओं की लिखी हुई २४ कथाओं आदि को संग्रह करके इसमें लिख दिया है" (–सार शब्द गुंजार, भूमिका, पृष्ठ ३)।

जम्भसार में बड़े व्यापक रूप से जाम्भोजी का जीवन-चरित वर्णित है। इसकी विषयवस्तु का नामोल्लेख संक्षेप में नीचे किया जाता है :—

प्रकरण-१, वंशावली-वर्णन। रूपक संख्या–४२। पत्र संख्या–१०।

सबद महिमा, सतगुर-महिमा और ब्रह्म-वर्णन, संत-ईश्वर होना, ईश्वर-जीव होना, वेदान्त मत खण्डन, ब्रह्मस्थान वर्णन, तत्त्वों की वृत्ति, मन-माया समाधि, कच्छप कथा वर्णन।

प्रकरण-२, प्रह्लाद चरित्र-आख्यान। रूपक संख्या–५०। पत्र संख्या २४।

अमर कथा वर्णन, सनकादिक जन्म वर्णन, जम्भ-हंस अवतरण, मनु-अवतार, भागवत-दस-लक्षण, विष्णुपुरी-वर्णन, पौर में विष्णु आगमन, विष्णु-स्तुति, विष्णु-वाक्य, जय-विजय शाप वर्णन, जय-विजय गर्भ आगमन, जम्भ-शूकर अवतार वर्णन, पृथ्वी सप्त-भाग-वर्णन, हिरण्यकशिपु शोक वर्णन, प्रह्लाद जन्म, प्रह्लाद-विद्या पठन-आगमन, सहपाठियों का प्रह्लाद से प्रश्न, उसका उनको उपदेश, हिरण्यकशिपु का पुत्र से प्रश्न और क्रोध, हिरण्यकशिपु के प्रति होली का कथन, असुरों का चिता सम्भालने जाना, प्रह्लाद का सत्यलोक से आगमन, उनतीस धर्म-नियम कथन, हिरण्यकशिपु का गढ़ में सहपाठियों को मारना, उसका कोप, जम्भ कला नृसिंह अवतार, प्रह्लाद की स्तुति, उसका वर मांगना; देव-स्तुति।

प्रकरण-३, सनत्कुमार चरित्र कथा। रूपक संख्या–२०। पत्र संख्या–१२।

वहलोचन-कथा, त्रिशंकु-कथा, हरिश्चन्द्र-कथा, जम्भ का महा विष्णु रूप में अवतार, शांतनु-कथा, वेदव्यास-अवतार, पाण्डव जन्म-वर्णन, सिद्धथळ जम्भसार का नाम है, युधिष्ठिर-जन्म, नकुल-सहदेव-माद्रीपुत्र, जम्भ-कृष्ण अवतार, परीक्षित-कथा, कलियुग वर्णन।

प्रकरण-४, अवतार-स्तुति। रूपक संख्या–४०। पत्र-संख्या–१८।

सनातन लोहट हुए, कृष्ण द्वारा नंद-यशोदा को दिए गए वचन का उल्लेख, लोहट-केसर की कथा, इक्कीस ब्रह्मांड, सोलह मुत-वर्णन, सत्यलोक से जम्भेश्वर का आगमन, जम्भ-अवतार-वर्णन, लोहट-स्तुति, जम्भ देवों से मिलने गए (परचा–१), देव-स्तुति।

प्रकरण-५, अवतार चरित्र ग्रंथ। रूपक संख्या–५७। पत्र-संख्या–१५।

वेद-स्तुति, माता हांसा-स्तुति, जाम्भोजी का हँस कर दो भुजाएँ दिखाना (परचा-२), लोहट-स्तुति, पुनः लोहट-स्तुति, 'घूंटी' देते समय स्त्रियों को जाम्भोजी के सब ओर मुँह ही मुँह दिखाई देना (परचा ३)।

प्रकरण-६, बाल-चरित्र कथा । रूपक सख्या-६८ । पत्र-सख्या-२७ ।

शिवजी का हासा-लोहट से मिलना, जाम्भोजी का बाहर जाते हुए बछड़े को रस्सी पकड कर खींचना (परचा-४), पलन से न उठना (परचा-५), कान-वेध (परचा ६, ७), विद्या पढाने और जनऊ देने के लिए आए ब्राह्मण को चतुर्भुज रूप दिखाना (परचा-८), बालकों को सिंह रूप म दिखाई देना (परचा-६), गौचारण (परचा-१०), लुकमिचौनी (परचा-११, १२), शेष-स्तुति (परचा-१३), बोलना (परचा-१४), पहला सबद कथन, 'साढ' (ऊँटनियाँ) छुडाना (परचा-१५), जल बरसाना (परचा-१६), हल वाहना (परचा-१७), दूदाजी मेडतिया को परचा (१८), उनका कोशिश करने पर भी जाम्भोजी से पीछे रहना (परचा-१९), दूदा को राज देना (परचा-२०), घोडी लेने का कहना (परचा २१), काठ की मूठ की तलवार देना (परचा-२२) ।

प्रकरण-७, सिकदर बादशाह प्रतिबोध नाम । रूपक सख्या-१७२ । पत्र सख्या ५४ ।

पूल्होजी पवार को परचा (२३), धरती दाग-कथन, मुहम्मदखा को परचा (२४), लूणकरण-मुहम्मदखा में विवाद, सोभै सारण, अजै सियाक, वीरां चारणी, हासिम-कासिम दर्जी, ऊदोजी नैण, वरसिंह, गुणावती के तेली की कथाएँ । विष्णोइन दामा के प्रश्न, अनेक देशों म सबद उपदेश, मात छोत-कथन, आठ पाप वर्जन, नील, तमाखू, भाग-निषेध, काजियों को परचा (२५), काच महल-परचा (२६), सदूक परचा (२७), सेखनखा-परचा (२८), शाह-परचा (२९), दिल्ली-बादशाह-सभा-परचा (३०) ।

प्रकरण-८, विष्णोई (सम्प्रदाय) स्थापना । रूपक-५९ । पत्र सख्या-२७ ।

रणधीरजी को सातों द्वीप दिखाना, काला, पीला, सफेद और भगवां चार प्रकार का वेश एक-एक हजार व्यक्तियो ने लिया, पथ चलाना-कलश-स्थापन, बापेउ-कथा, उनतीस धर्म-नियम और बत्तीस आखडी-उपदेश । 'गूगलियं' ऊँट की कथा (परचा-२, ३) ।

प्रकरण-९, भक्त विरदावली । रूपक सख्या-७८ । पत्र-सख्या-३६ ।

सबद कूची का, रामू सुराणा-जोगियों-गुसाई-लोहापागळ, कनौज के राजा के पाँच सिद्धा तथा अन्य एक जोगी के विभिन्न प्रश्न । अमावस्या के दिन कलश-स्थापन, गुरु-ज्ञानोपदेश, रूपो महन्त का क्रोध कर कपडे जलाना, जमात का सुपात्र के लक्षण पूछना, गायणा, पुरोहित, भाट थापन, जाम्भोजी के उत्तर, अर्ज का वेश प्रसग, भाट-कुल, साधु-गुरु स्थापना, थापन सेखो का प्रसग, सैंसो राठौड की कथा, भिक्षा पात्र फोडना, सैंसोजी को स्वर्ग ।

प्रकरण-१०, राज-उपदेश । रूपक सख्या-८६ । पत्र-सख्या-३०।

जमात-प्रश्न, जाम्भोजी का राम-समय की बात कहना, चित्तौड की कथा, भोयों लुहार तथा रणधीर, खीयो, साहूकार, सैंसो, दूजो के प्रसग, झाली राणी की जम्म आराधना और उसकी स्तुति, राणा सागा को परचा (३४), राव जैतसी लूणकरणोत का प्रश्न, नैतसी की कथा, चेतन कथा, गुरु-महिमा ।

प्रकरण-११, जोगी उपदेश । रूपक संख्या-१२७ । पत्र-संख्या-२६ ।

जोधावत का प्रसंग, नारियल-परचा (३५), पानी से दूध करना (३६), खली से नारियल-गिरी करना (३७), आकों के आम लगाना (३८), बादल से पानी बरसाना (३९), जल से घृत करना (४०), जल से "खाटा" करना (४१), "छांणों" के खोपरे करना (४२), 'मींगणों' के लड्डू बनाना (४३), 'वेळू' रेत से बूरा बनाना (४४), दो 'मतीरे' (४५) और ५०० 'पूंख' देना (४६), घोड़ी से घोड़ा (४७), जांडी से पलाश (४८), और सहस्र रूप करना (४९), परीक्षा-समय कपड़ा न उतरना (५०), जमात तथा मल्लूखां के प्रश्न, गुरु-महिमा, गुरु-लक्षण-कथन । पुनः मल्लूखां और राव सांतल के प्रश्न, 'पूरविए' ब्राह्मण कासीदास की कथा, एक जोगी के 'सिला' हिलाने पर प्रश्न, बालनाथ, कँवलनाथ के प्रसंग, बालनाथ तथा जोगियों के प्रश्न और जाम्भोजी के उत्तर, कन्नोजी विष्णोइयों का मखमल का बिछौना लाना, धूपालिया गांव से एक पाखंडी साधु को जाम्भोजी के सम्मुख लाना, जाट और जोगियों के प्रश्न तथा जाम्भोजी के उत्तर ।

प्रकरण-१२, रावल-प्रबोध । रूपक संख्या-१४६ । पत्र संख्या ४७ ।

कथा धर्मचरी, कथा जोधो जाट की, मायरियों का सबद और प्रश्न पूछना, ज्ञान-चरी-कथन, ढोसी जाते हुए राव लूणकरण को जाम्भोजी की वर्जना; जीत का अर्थ बताना; रावल जैतसी की कथा, जाम्भोजी से चारणों का प्रश्न, गौ-हत्यादि पाप-वर्जन, 'दसवंद' धर्म को सर्वोत्तम बताना, 'कडाव-टोकणा' शुद्ध करना, विष्णोइयों को अकर करना, रावल को वर, मंत्रावली, मंत्र-माहात्म्य, रावल जैतसी का स्नान धर्म पूछना, मत में मिलाने और टालने का माहात्म्य, साधारण धर्म, जाम्भोळाव-माहात्म्य, रावल जैतसी का वहां 'सूत फिराना' ।

प्रकरण-१३, नव राजेन्द्र-उपदेश । रूपक संख्या-१४६ । पत्र संख्या-२७ ।

सहजां जाटणी, बाजो तरड़ की कथा, इन लक्षणों से ब्राह्मण चाण्डाल, यज्ञ कर्ता के ८ अवगुण, साधु-लक्षण, कथा मलेरकोटला की, बाजो तरड़ का प्रश्न और जाम्भोजी का उत्तर, रोट्ट राजधानी की कथा, 'अगम' का सबद कथन, रजपूतसिंह की कथा, फलौदी के राव हम्मीर को 'चेड़ो' के दृष्टान्त, कलियुग के ५ पाखण्ड ।

प्रकरण-१४, जम्भसागर माहात्म्य-वर्णन । रूपक संख्या-१६७ । पत्र संख्या-५७ ।

जोगी का प्रश्न, लो पुरोहित और मालदेव के प्रश्न और जाम्भोजी के उत्तर । मूलो को तीन 'परचे' देना, गोपीचन्द भरथरी और गोरखनाथ के प्रश्न और उनके उत्तर । गंगाजी का जम्भसागर में समावेश, इसलिए उसका सिद्धथळ कहलाना, श्रीचंद सेठ, ऋषि करणमाल, राजा रायसिंह, करणमाल-विवाह, हरिनंद, बाई जैतां हांसन, करणमाल-बेमाता, अणची बोधिन, चिड़े-चिड़ी, कर्ण-संयोग, राजा पाण्डु, कुन्ती-माद्री, पाण्डु-मृत्यु, कुन्ती-वर, जम्भसागर माहात्म्य, आसा राणी, सुखनो थोरी, नीवों थटवाळ, सिको अली की कथाएँ । तीर्थ पर जागीर देने की महिमा, जम्भसागर-माहात्म्य, ब्राह्मण और छोत-लक्षण, जम्भ-अवतार के ५ निमित्त, जातरी महिमा, अल्लू, तेजो, कोल और कान्हो चारण की कथाएँ ।

प्रकरण–१५, भूत पलटना, देव-कर्तव्य । रूपक सख्या–१३९ । पत्र सख्या ४६ ।

रावल जैतसी की कथा, गोरी शाह की जैसलमेर पर चढाई, रावल जैतसी की स्तुति, लक्ष्मण–पाहू साध के दर्शन, जाम्भोजी के दर्शन, गोरखनाथ, भरथरी, गोपीचन्द को जाम्भोजी का वर, रोहू की नौरंगी की कथा, राजा के प्रश्न, सकूरण वनिये की कथा, सुपात्र ब्राह्मण–उल्लेख, 'अगमवाणी'–उच्चारण, अमावस्या–कथा, भूत-प्रेत कथा, भूत गति करना, आनदेव पूजने पर सप्तकुली का नरक–वास ।

प्रकरण–१६, महा प्रलय । रूपक सख्या–९६ । पत्र सख्या–३६ ।

धने विच्छू का अपनी गति पूछना और यज्ञ–दीक्षा लेना, खिलेरी बूढोजी की कथा, विष्णु–नाम–माहात्म्य, मूलो ब्राह्मण, स्वाती शाह नबाब के प्रसग, बिजनोरियै साहू का सोना चढ़ाना, रावण गोयन्द भोरड कथा, राजा मालदेव का आदि उत्पत्ति और प्रलय सम्बन्धी बातें पूछना ।

प्रकरण–१७, जोगी–उपाख्यान । रूपक सख्या ७८ । पत्र सख्या ५६ ।

राव दूदा का जाम्भोजी को भैंस देना, गोरी शाह के पुत्र की दूदोजी पर चढाई, टोडा के नेतसी की कथा, १२ जोगो मे राव सातल का कथन, रणसीसर के रावल की कथा, जाम्भोजी के 'हज कावे' जाने का प्रसग, काबुल जाने का प्रसग, मुल्तान के वैरागी लालदास, हिमटसर की रुपा माम्भू की कथाएँ, जाट विचारे का प्रश्न, अनेक लोगो को प्रतिबोध कराना, पूरबिये मिश्र–काजी महलूखा और नूरा–मिलाके राजा की राणी, माली राणी की कथाएँ, मुल्ला सधारी और जादो के प्रश्न । लाबा के सेरो जाट को परचा, भृथीनाथ, लोहजडनाथ, पीतलजड नाथ के प्रश्न और इनकी कथाएँ, अनेक अन्य मतावलम्बियो का विष्णोई होना ।

प्रकरण–१८, वेद विभाग । रूपक सख्या–२०० । पत्र सख्या–५८ ।

भटियारी अमरी ढाकी, मोनी ऋषि, ऊदै अतली, रतनो राहड की कथाएँ, जमातियो के ४ युगो के धर्म, षट्–शास्त्र, पुराण–मत, अग्नि–पूजा, पूजा–विधि, रवि–मास से सम्बन्धित प्रश्न और जाम्भोजी के उत्तर, मत्र–कथन ।

प्रकरण–१९, जम्भ–भ्रमण । रूपक सख्या–७८ । पत्र सख्या ४० ।

राजा प्रतापसिंह के प्रश्न, 'आगे राज किसका होगा', 'युग–युग के कौन से धर्म हैं' का जाम्भोजी द्वारा उत्तर । प्रलय रीति–कथन । जाम्भोजी का सब देशो मे भ्रमणार्थ जाना, नगीना की कथा, कुलचन्द, चेलोजी की स्तुति, फजले का हाथ दिखाना, सुरगुण भवरे की स्तुति, कुलचन्द का चारो युगों मे जन्म सम्बन्धी, स्त्री–पुरुष मे पहले मृत्यु सम्बन्धी बातें पूछना, चेलोजी का ब्रह्मा की आयु पूछना, जाम्भोजी के उत्तर, साधु-सगति करना, लोदीगढ–मागोल–अवरइयाँ की कथाएँ, कुष्ठियों का जम्भसागर के जल से अच्छा होना, दारानगर–राजा ऋषि–खडगसिंह–कालपी–कानपुर–लखनऊ, मेवाड, पुर–पट्टण, थापन खाटमजी और समेलगढ की कथाएँ ।

प्रकरण–२०, भक्त गिणत–प्रकाश । रूपक सख्या–४३ । पत्र सख्या २० ।

मेडतो, मनाणो, रामडावास, लोहावट, मूजासर की कथाएँ, पडियाल आना, जभ–

सागर पहुंचना, ज्ञान-कथन, १०० प्रश्नों का उत्तर देना, रणसीसर-किनासर-अळाय होते हुए पीपासर पहुंचना।

प्रकरण-२१, 'जम्मो'-माहात्म्य वर्णन। रूपक संख्या-५७। पत्र संख्या २६।

३ रजवाड़ों का गढ़ों की उत्पत्ति पूछना, राजा गुण-कथन, प्रतापसिंह, जैतसी और दूदोजी के प्रश्नों के उत्तर देना, संतों को 'महन्ती' देना, अंगूठी देना, साथरियों के प्रश्नों के उत्तर देना, पूजा-विधि, 'जम्मे' का माहात्म्य-वर्णन, भंडारी महन्तों को बुलाना।

प्रकरण-२२, जाम्भोजी का महाप्रस्थान, मंदिर आख्यान। रूपक संख्या-५१। पत्र संख्या २८।

१६ साथरियो और ८ धामों के महन्त नियुक्त करना, ४ तम्बू, ४ चांदणी आठों धामों में देना, बचा हुआ धन भंडारों में भेजना, बिछुड़ते समय सब राजाओं का बिसूरना, संत-वचन, जमात-वचन, जाम्भोजी के वचन, उस रात्रि को सनकादिकों की स्तुति करना, देवों का मिलने आना, संभराथळ से लालासर पधारना, रेवाड़ी में वीठल के जन्म की कथा, जाम्भोजी-वील्होजी को एक मानना, शून्य से संदूक आना, १२ कोटि जीवो का स्वर्ग-सिधारना, जाम्भोजी का सत्यलोक जाना, उनके 'कमल' को लेकर संतों का चलना, मंदिर (मुकाम) की नींव देना, रणधीरजी की मृत्यु, वीठल का आना, 'भेष' लेना, वील्होजी का जम्भसागर मे पत्थर पर 'पाळ' लगवाना, मंदिर बनवाना।

प्रकरण-२३ (कोई नाम नहीं दिया गया है)। रूपक संख्या-२८२। पत्र संख्या ७१।

वील्होजी का जोधपुर जाना, राजा के मांगने पर 'परचे' देना, राजा के प्रश्न और तम्बू-'सरायचा'-, 'खूंटो' और कोरड़ो' देना, किसी का रुड़कली मे जाम्भोजी की उपस्थिति बताना, 'ज्ञानो' उत्थापन-कथा, फूलकँवर-पद्मावती कथा, वील्होजी का भ्रमण, समाधि। वील्होजी के समाधि मंदिर पर प्रतिष्ठा के समय साहबरामजी को जाम्भोजी और वील्होजी के दर्शन होना, वील्ह-स्तुति, संत कुल-वर्णन, सुरजनजी का राजा को 'परचा' देना, दुरग-दास को परचा देना, परवाना लेना, विष्णोइयों का ५ वां हिस्सा देना, दांण (चुंगी), बेगार, पान-चराई, चंवरी की माफी, सुरजनजी के बैलों को रोकना और उनका 'परचा' देना। केसवजी का प्रसंग, नौरंगशाह (औरंगजेब) की कथा, थापन-काजियो का भागना, आलम, रायचन्द, हीरानन्द, तिलवासणी, खीवणी, रामू खोड, धवा, बेजड़ली की कथाएँ। परवाना, बूचोजी की कथा, मेड़ता का परवाना।

प्रकरण-२४, नीति, धर्म-माहात्म्य-संयुक्त। रूपक संख्या-१६८। पत्र संख्या-६७।

संतकुल-वर्णन, हरिचन्दजी-हीरोजी-तारोजी-कृष्णोजी की कथाएँ, हिंगोरी-गदर के भक्तों की, चीधट-सदलपुर-सीसवाल में हुए युद्धों की कथाएँ, विष्णोइयों के धर्म, धूपमंत्र, १० प्रकार के ब्राह्मण, २०० नुक्से-परमात्मा, माता-पिता, सतगुर-महिमा, मनुष्य-धर्म, नीरोग लक्षण, समय-बलवान, मतलबी, ५ लोगों के गाली देने पर क्रोध न करना, उम्र भर नांव न निकालने वाले माता पिता को धिक्कार, इनमे बचे वह चतुर, इनकी संगति नहीं करनी, औरत-ऐब, नित्य नई बात सीखनी चाहिए, बात कम करना, मूर्ख-लक्षण, इनसे दूर रहना,

ठट्ठा न करना, मनुष्य मे इतने गुण, इनसे चीज न लेनी, पाँच बहादुरी चाहिए, इतनी जगह गाफिल नही रहना, तमाशगीर की नारी-द्रव्य सब जाएँगे, इनका भरोसा नहीं करना, अँबदारा के ऐब, इनके बैठे सलाह नही करनी, इतनी जगह स्त्री की ओर ध्यान न दे, इतनों के लक्ष्मी आवे, इन घर लक्ष्मी जावे, बद मकान मे नही घुमना, गाडी-बहली कूदने की विधि, गति मुक्ति के प्रश्न, सतगुरु के उत्तर, कर्मो से ऊँचे जन नीची पदवी पाते हैं। मनुष्य का एक लहजा मिलना कठिन, अफलातून की कथा, एक खच्चर की कथा, सीधी गाय का बुरो की सगति करना, मूसा उत्तम दृष्टान्त, हेमैं वकील की कथा, दुनिया को सराय सब कोई कहते हैं, हिन्दुस्थान कम अक्ल है दूसरे कीमियागर की कथा, अकडबेग मिरजे की कथा, उज्जैन के सेठ की कथा, मनुष्य के साधारण धर्म, जीव पलट कर ब्रह्म हो जाना है, जम्भसार-माहात्म्य।

जम्भसार मे सब जगह एकान्विति, तारतम्य और प्रसगो का पूर्वापर सम्बन्ध नही पाया जाता। प्रबन्धात्मकता का उसमे अभाव है। साहबरामजी को जितनी भी विश्नोई रचनाएँ और सबदवाणी-प्रसग उपलब्ध हुए, उनको उन्होने जम्भसार म अवसर-अनवसर दे दिया है। बहुत सी रचनाओ के कवियो का नामोल्लेख भी नही है। अनेक अन्य रचनाओ के बीच बीच म उन्होने स्वरचित छद भी रखे हैं और उनम वर्णित प्रसगो को भी बढा-चढा कर लिखा है। प्राय प्रत्येक स्थल पर अतिशयोक्ति देखने को मिलती है। यह बढोत्तरी दो क्षेत्रो म है—(१) नवीन प्रसगोद्भावना और वर्णनो मे तथा (२) कार्य, विवरण और घटनाओ की सख्या म। इन कारणो से इसमे सन्निविष्ट रचनाओ के स्वतत्र रूप से प्राप्त हुए बिना उनको जम्भसार म खोज निकालना दुष्कर काय है। लालासर की प्रति (सख्या २०१) उनको उपलब्ध नही हो सकी थी। उन्होने जिन प्रतियो से ये रचनाएँ ग्रहण की उनम पर्याप्त मिश्रण और पाठ-भेद था। इस कारण उनमे जो पाठ सम्बन्धी भूलें थी वे यहा भी हैं। लालासर की प्रति और अन्य प्रतियो के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर इस बात की पुष्टि होती है। साहबरामजी के कथनो मे ऐतिहासिक असगतियाँ भी हैं, जो दन्तकथाओ को आधार बनाने के कारण हुई प्रतीत होती हैं। कही-कही तो विभिन्न दन्तकथाओं म भी मिश्रण हो गया लगता है। ध्यातव्य है कि साहबरामजी का मूल उद्देश्य जम्भसार को सम्प्रदाय के महापुराण के रूप मे प्रतिष्ठित करना था, जिसकी पीठिका और पद्धति के सदर्भ म ये सब बातें गौण थी। स्थान-स्थान पर उन्होने प्रकारान्तर से परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप मे ऐसे सकेत भी किए हैं। साहबरामजी के ध्यान मे भी इसकी उपर्युक्त त्रुटियाँ अवश्य थी और वे इसके चौथे रचना-सस्करण मे सुधार करना चाहते थे, किन्तु मृत्यु ने ऐसा न होने दिया। श्री लक्ष्मीनारायणजी का कहना है—"यह ग्र थ लिखने के थोडे ही दिन पीछे उनका देहान्त हो गया, नही तो इसको कुछ और भी सशोधन करते" -सार शब्द गु जार, भूमिका, पृष्ठ ४।

इसके बावजूद भी विश्नोई साहित्य म ही नही, राजस्थानी साहित्य मे भी जम्भसार का अपना विशिष्ट महत्त्व है। कतिपय प्रमुख कारण ये हैं —

(१) पौराणिक पद्धति पर लिखित यह 'चरित महाप्रबन्ध' सम्प्रदाय का तो महापुराण ही

है, जिसके केन्द्र जाम्भोजी हैं। जाम्भोजी, सबदवाणी, विष्णोई सम्प्रदाय और समाज संबंधी जानकारी का यह विश्वकोष है। इनके विषय में इतनी जानकारी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। (२) इसके चौवीसवें प्रकरण में संवत् १९१४ के गदर की पृष्ठभूमि में चींघड़ के तालाव पर से मुसलमानों से वैलों और सांड़ों को बचाने के लिए हिसार जिले के विष्णोइयों द्वारा की गई अनेक लड़ाइयों का आंखों देखा प्रभावपूर्ण और सलंग वर्णन साहबरामजी ने किया है। विष्णोइयों द्वारा किए गए अनेक "खड़ाणों" की सुदीर्घ शृंखला में यह भी एक कड़ी है, जिसका एकमात्र पूर्ण और विश्वसनीय परिचय जम्भसार में ही मिलता है। इसमें सीसवाल में अंग्रेजों द्वारा तथा हींगोली में जोधपुर के महाराजा तख्तसिंहजी द्वारा मृगों की हत्या किए जाने पर विष्णोइयों के प्रतिरोध का भी उल्लेख है। तख्तसिंहजी ने तो इस पर शिकार-निषेध का आज्ञापत्र भी दिया था[1] ।

(३) अनेक विष्णोई कवियों के सम्बन्ध में इससे महत्त्वपूर्ण जानकारी हाथ लगती है, जो अन्यथा उपलब्ध नहीं है। यह कतिपय नवीन रचनाओं का प्राप्तिस्रोत भी है। राव लूणकरण और कोल्हजी चारण के कवित्त तथा "इमांन इलाह आकीन है कबर," 'सबद' यहीं मिलते हैं।

(४) तत्कालीन मरुदेशीय लोक-रुचि, विश्वास, मान्यता, रीति-नीति, विचार आदि के लिए यह बहुमूल्य आधार-भूमि प्रदान करता है। कृषक-जीवन से सम्बन्धित उक्तियों, मुहावरों और शब्दों का तो यह भाण्डार है। अंगरेजी राज्य के कारण टूटते और विनष्ट होते हुए पुराने और उभरते-पनपते नवीन जीवन-मूल्यों का इससे पता चलता है। सांस्कृतिक और लोकतात्त्विक अध्ययन के लिए इसमें पुष्कल प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है।

(५) इसमें कवि ने उस समय में प्रचलित सम्प्रदाय सम्बन्धी कतिपय बातों की पुष्टि के निमित्त कुछ आधार बनाने का प्रयास भी किया है। चौथे प्रकरण में उल्लेख है कि जब सत्यलोक से जाम्भोजी निरंजन के यहां आए, तो उसने उनसे तीन वचन लिये थे:- विष्णु भजन का उपदेश करना, बालक-वेश धारण करना तथा सात वर्ष तक मौन रहना। तीसरी बात उचित प्रतीत नहीं होती, यह हम जाम्भोजी के जीवन-वृत्त में देख आए है।

(६) दूसरे प्रकरण का प्रह्लाद चरित आख्यान स्वतंत्र रूप में भी प्रसिद्ध है और एतद् विषयक काव्यों में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

साहबरामजी पुरानी परम्परा के अन्तिम काल-निर्णायक कवि थे। उनके काव्य में राजस्थानी साहित्य की अनेक धाराओं और उपधाराओं का किसी न किसी रूप में समाहार किया गया मिलता है। इनके रचित और लिखित ग्रन्थों से इनकी सतत साहित्य-साधना

१-सिंधी हाकम कीन्हों दूरा, तख्तसिंह धर्मातमा पूरा।
लिख परवाना इनकूं दिया, विश्नोइयां जग में जस लिया ॥
तख्तसिंह महाराज जो एसे भए दयाल।
जांभोजी के धर्म की, सदा करी प्रतिपाल ॥ १६ ॥
-जम्भसार, २४वां प्रकरण।

का पता चलता है। इस क्षेत्र में इन्होने अनेक बिखरी कडियों को एकत्र कर जोडने का प्रयास किया था जो बहुत अंशो तक सफल हुआ। आज जम्भसार विष्णोई सम्प्रदाय का आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। इनकी शेष रचनाएँ भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। उल्लिखित प्रथम पाँच रचनाओ मे उनका "अणभै" (अनुभव) वाणीवद्ध है। कवि के विश्वास, स्वानुभूति, अध्यात्म-ज्ञान, धारणा और मान्यता-परिचय के लिए तो इनका सर्वोपरि स्थान है। इनसे पता चलता है कि साहबरामजी पर अद्वैतवाद का रग चढा हुआ है। समष्टि रूप मे "अणभै" (आत्मनिष्ठ) और "वणभै" (विषयीगत) दोनों प्रकार की रचनाएँ साहबरामजी ने की हैं। इनमे स्थान- थान पर भावभरी मार्मिक उक्तियाँ मिलती हैं। आत्म निवेदन परक अंशो मे उनके सरल और भक्ति-पूरित हृदय का पता चलता है। जम्भसार मे वर्णन और विवरण अधिक हैं, तथापि कही कही वे बडे चित्ताकर्षक, चित्रोपम, अर्थगर्भित और सकेतात्मक हैं। यत्र-तत्र वस्तुस्थिति का भी बडा हृदयग्राही वर्णन किया गया है। इनकी भाषा प्रमुखत राजस्थानी है, जिसमे यत्र-तत्र खडी बोली, पजाबी, अवधी और व्रज का भी पुट मिलता है। हिन्दी काव्यो मे तुलसी कृत रामायण से ये विशेष प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं। इनकी अनेक उपमाएँ और उक्तियाँ तो अत्यन्त ही रोचक हैं। इनसे इनकी सूक्ष्म लोक-निरीक्षण शक्ति, और अन्वेषण-दृष्टि का पता चलता है। रचनाओ से सबदवाणी के कुछ अशो का अर्थ-स्पष्टीकरण भी होता है।

इन्होने कुछ नवीन मान्यताएँ भी दी हैं। एक के अनुसार, चारो युगो म सनक, सनदन, सनत्कुमार और सनातन क्रमश. प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर और लोहट के रूप मे अवतरित हुए थे (जम्भसार, प्रकरण-२, ३ और ४)। इसी प्रकार, सृष्टि प्रक्रिया सबधी इनके विचार हैं, जो प्रकारान्तर से सभी बडी रचनाओ मे व्यक्त किए गए हैं। इस पहलू पर किसी अन्य विष्णोई कवि ने इतने विस्तार से नही लिखा।

अनेक दृष्टियो से साहबरामजी का व्यक्तित्व और कृतित्व स्वतत्र शोध और अध्ययन का विषय है।

११५. बिहारीदास : *(अनुमानत विक्रम संवत् १८७०-१९५०) :*

सम्भवतः ये कालपी के निवासी (प्रति सख्या २२८) और रतनदासजी के शिष्य थे[१]।

इनकी स्वयं की हस्तलिपि मे ये रचनाएँ मिलती हैं (प्रति सख्या २२८, ३८९) .—

(१) फुटकर छन्द-९ (१ कवित्त (सवैया), ७ दोहे, १ कुंडली)।

(२) जम्भ सरोवर स्तुति-छन्द १० (२ दोहे, ८ 'छन्द')।

(३) जम्भाष्टक-छन्द १० (२ दोहे, ८ छन्द)।

१-सतगुर सत सरूप जो देत लपाय अरूप।
रतनदास गुर सरन बिन परिउ अ घ भ्रम कूप।

फुटकर छन्दों में गणेश-स्तुति, जाम्भोजी के आगमन का कारण, कार्य और रतनदासजी के प्रति श्रद्धा-भावना का वर्णन है। दूसरी रचना में जाम्भोळाव-माहात्म्य वर्णित है, जिसके प्रत्येक 'छन्द' की प्रथम तीन पंक्तियों के पश्चात् 'सो फल पावै तुरन्त ही जम्भ सरोवर न्हाय' पंक्ति की पुनरावृत्ति होती है[1]। तीसरी में जाम्भोजी की स्तुति है। इसके प्रत्येक 'छन्द' की अन्तिम अर्द्धाली में 'नमो गुर जंभ सहाय करो' शब्द आते हैं[2]।

भाषा खड़ी बोली और व्रज मिश्रित है। उदाहरण स्वरूप यह सवैया द्रष्टव्य है :—

दीनन के त्राता बुध्य दाता सिध्य दाता,
जाहि ध्यावत विधाता सिव संकट निवारी है।
नाम के लियै तै सकल संकट पराहि जाहि,
ध्यान के धरै ते करत बुध उजियारी है।
चन्द्रमा लिलार जाको, फरसा हथियार अंसो,
सिव को कुमार जौन सुरनर सुखकारी है।
कहत विहारी अरज सुनियो हमारी,
जाकी मूसक सवारी सो हमारो रखवारी है॥ १॥

११६. कवि - अज्ञात : 'गावण की कथा' : (विक्रम संवत् १९००–१९५०) :

५ पंक्तियों की यह रचना प्रति संख्या २६२ में मिली है। इसके आदि में लिखित एक अपूर्ण दोहे की अन्तिम पंक्ति 'गावण की कथा वरणन करू मना कोई करियो सा' से इसके वर्ण्य-विषय का पता चलता है। गायणों के विषय में पहले लिख आए हैं (द्रष्टव्य-विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)। संवत् १६२५ के आसपास से गायणों ने साधुओं और विशेषकर थापनों के संस्कार सम्बन्धी कार्यो को अपने हाथ में लेने का यत्न करते हुए उनके स्थानापन्न बनने की चेष्टा आरम्भ की थी। विष्णोई समाज में मान्य और प्रचलित प्रत्येक कर्मकाण्ड थापन द्वारा सम्पन्न किए जाने की परम्परा और पद्धति रही है। गायणे जब अपने कार्य-पीढ़ियावली- लेखन और यश-गायन छोड़कर थापनों की प्रतिस्पर्धा करने लगे, तो इसकी प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। प्रस्तुत रचना इसी का परिणाम है जिसमें गायणों की, उनके द्वारा अपनाए और किए जाने वाले सांस्कारिक कार्यो का उल्लेख करते हुए आक्रोश युक्त भर्त्सना की गई है। इसकी प्रत्येक पंक्ति के पश्चात् 'डूब गए लुगाड़े गावण फेर भी मुख दिखलाते हो' की पुनरावृत्ति होती है। रचना यह है :—

१-वद्रीपत जे द्वारिका हरद्वार केदार।
कांची और अमरावती सप्त पुरी लो भार।
प्राग नीम कुरक्षेत्र जो जनक सभा वैठाय, सो फल ०॥ २॥

२-नमो श्री राम सरूप अपार, नमो श्री कृष्ण जसै विस्तार।
नमो श्री वोध सरूप धरो, नमो गुर जंभ सहाय करो॥ ३॥

गुरु बण जावें, पाहल करावें, ऐसा जुलम कुमाते हो। कूब० ॥ १ ॥
जु पाखंड रचावें, करम छोडावें, जीवरी जास बजाते हो। कूब० ॥ २ ॥
जवल बस्त्र, बाधे सस्त्र, गुरु के करम कुमाते हो। कूब० ॥ ३ ॥
जु लोपर मांगं, लड कर लागं, गावण नाम धराते हो। कूब० ॥ ४ ॥
आण र बेचें, टकं हथियें, कुकरम रसतं लगाते हो। कूब० ॥ ५ ॥

११७. रचयिता - अज्ञात : "श्री जाम्भोळाव महातम"

(-प्रति संख्या ३९३ (क), खडी बोली गद्य मे (अनुमानतः विक्रम स० १९००-१९४२)

लिपिकार के अनुसार यह 'श्री देवदासजी कृत श्री जभ सरोवर महातम पुस्तक से सरल भाषा मे लिखा' गया है। इससे इसके मूल रचयिता तो देवदासजी सिद्ध होते हैं किन्तु मूल रचना की भाषा और उसको 'सरल भाषा में' लिखने म अज्ञात लेखक ने कितना परिवर्तन-सशोधन किया है, यह जानने का साधन नही है। ये देवदासजी और सूरतरामजी महाराज के एक शिष्य देवदास दोनो अभिन्न होने चाहिएँ। सूरतरामजी का स्वर्गवास सवत् १८८७ मे हुआ था (प्रति सख्या १६०)। मूल 'महातम' का रचनाकाल इसी के आसपास होना चाहिए। दूसरी ओर इसकी हस्तलिखित प्रति से स्पष्ट है कि प्रस्तुत रचना सवत् १६४२ के जेठ द्वितीय वदि ११ से पूर्व लिपिबद्ध कर ली गई थी। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे इसका रचनाकाल होना अनुमित है।

इसम पौराणिक पद्धति पर खडी बोली मे जाम्भोळाव का माहात्म्य वर्णित है। इसके वक्ता सुरजनजी हैं जो जाम्भोजी के समय मे घटित और उनके द्वारा कथित एतद्-विषयक कथा को सुनाते हैं। सुरजनजी यहा सूतजी के समान हैं। लगभग १२५ वर्ष पूर्व खडी बोली के रूप की झांकी इसम दिखाई देती है। साथ ही जाम्भोळाव के महत्व का कारण और सुरजनजी की प्रसिद्धि का भी पता चलता है। उदाहरण इस प्रकार है –

"फिर ऐसा परम तीर्थ एक तो यज्ञ भूमि द्वितीय ब्रह्मर्षि कपिल देव का आसन तृतीय गौ आदि तृण चारक जीवो के जल पीने का घर ऐसा जो परम माननीय सर्व तीर्थों मे शिरोमणि तीर्थ की अपार महिमा है। उस गुप्त तीर्थ मे स्नान करने और मट्टी काढने से धर्मात्मा जन और वह जो परिश्रम करके सुप्रसिद्ध करेंगे वो राजा महाराजा अमीर गरीब अपने कर्मानुसार इस कलेवर को त्याग कर उत्तम पद को प्राप्त होंगे। यह बात सुनकर जैतसिंह महाराजा ने प्रार्थना की-हे भगवन् कृपा कर आज्ञा दें, वह गुप्त तीर्थ प्रगट किया जावे। जो परम तीर्थ गुप्त हो गया है, आप वहा चल के कृपा के साथ बना दें ' तब भगवन् श्री जम्भेश्वरजी महाराज ने समस्त श्रोता वृन्द और सत मडली को कहा-फलौधी नगर से ७ कोस उत्तर जगल मे ऊसर भूमि के समान कुछ पीली मृत्तिका और काली पृथ्वी देखो, ठहर जाना और वहां पहुंच स्मरण करोगे तब तत्काल देखोगे" श्री सुरजनजी ने कहो-हे श्रोतागणो। यह कथा मैंने श्री गुरुजी से सुनी, वैसी आप सब भक्तों से सुनाई""।

११८. शीतल : (अनुमानतः संवत् १९००-१९७५) :

एक भजन और एक लावनी[1] में इन्होंने जाम्भोजी का महिमा-गान किया है। लावनी के दो छन्द नीचे दिए जाते है[2] ।

११९. स्वामी ईश्वरानन्दजी गिरि : (संवत् १८९१-१९५५) :

ये रोहतक से आठ कोस पश्चिम में स्थित बहुमोखरा ग्राम के निवासी खेमाजी जाट के पाँचवें पुत्र और स्वामी सरयूगिरि के शिष्य थे[3] । इनके चारों भाइयों के नाम हैं— आपी, गंगाराम, तुलाराम और विष्णु । ये वेद, व्याकरण, धर्म शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। वेद और व्याकरण इन्होंने स्वामी दयानन्द से पढ़े थे[4] । विष्णोई समाज में इन्होंने बहुत वर्षों तक ज्ञानोपदेश किया। ज्ञान विषयक कई बातों में इनका आर्य-समाज से कुछ विरोध भी हो गया था। ६४ साल की आयु में संवत् १९५५ में मुरादाबाद में इनका स्वर्गवास हुआ[5] ।

इनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हैं :—

(१) **श्री जम्भसागर** (सबदवाणी पर शब्दार्थ- दीपिका टीका)।

यह सबदवाणी की प्रथम और प्राचीनतम प्रकाशित पुस्तक है जो लीथो में "मुन्शी प्यारेलाल के प्रबन्ध से, हिन्दू प्रेस देहली में संवत् १९४९" में छापी गई थी (—मुखपृष्ठ)। इसमें गद्य प्रसंग युक्त ११७ सबद हैं, जिन पर स्वामीजी ने टीका की है। प्रसंग और टीका खड़ी बोली हिन्दी में हैं।

(२) संवत् १९५५ मे **'सबदवाणी अर्थात् जम्भसागर'** को पुनः धार्मिक यन्त्रालय,

---

१-भजन-जै जै गुरु जंभे स्वामी, कलि कलुप विनाशन हारे ॥ -४ पद।
लावनी-सोतों को जगा अरु बजा धर्म नक्कारे।
गये जंभु गुरु परलोक दिव्य तनु धारे ॥ -४ पद।

२-लख देश दशा हुये दिल के बीच दुखारी,
बालापन से ही उदासीन व्रतधारी।
सब तजा अन्न जल आदि योग विधि धारी,
जात रये विपन में छोडे महल अटारी।
गौओं का लिया प्रतिपाल, दुख सहे भारे ॥ २ ॥
था लोध सिकंदर यवन यहां का स्वामी,
अति कुटिल हठी था मूढ महापल कामी।
लाखों ही ऋषि-सुत किये जब्र इस्लामी,
जैनी पौराणिक मत थे नाना वामी।
मतलब थे छाये पाप गगन भये कारे ॥ ३ ॥

३-जम्भ संहिता, संवत् १९५५, पृष्ठ २६३।

४-श्री जंभसार : साखी संग्रह, पृष्ठ "ग", संवत् २०००।

५-स्वामी ब्रह्मानन्दजी कृत विश्नोई धर्म विवेक, द्वितीय संस्करण, संवत् १९७१, पृष्ठ ४६ पर श्रीरामदासजी के कथन के आधार पर।

प्रयाग मे छपवाकर प्रकाशित किया, जिसका "पडित जगन्नाथ तिवारी (घसियारी टोला) प्रयाग निवासी ने सशोधन किया" था (-मुखपृष्ठ)। इसमे पद्य प्रसग सहित १५१ सबद हैं। श्री तिवारी के 'सक्षिप्त विवरण' (पृष्ठ १-२) से पता चलता है कि स्वामीजी को नगीना से प्राप्त मूल हस्तलिखित प्रति मे ११९ सबद थे। सशोधनकर्ता ने 'बाबा चन्द्रनाथ जसनाथी से प्राप्त १५१ सबदों के एक गुटके' के आधार पर इनम 'जो कुछ कम थे- लगभग ३२ शब्दो के', "वे लिखकर दिये और मध्य मे जहा गडबडी थी, ठीक और शुद्ध करके मुद्रित कराया" (-'विवरण', पृष्ठ २) तथा 'जहा तक' उनकी 'क्षुद्र बुद्धि ने कार्य दिया, सुधारा है' (अन्त मे "सूचना और प्रार्थना" के अन्तर्गत)। उल्लेखनीय है कि इन १५१ म प्रक्षिप्त सबदों के अतिरिक्त मत्र भी सम्मिलित हैं।

उपर्युक्त दोनो पुस्तको मे प्राप्त पाठों मे यत्र तत्र परस्पर भेद और घट-बढ है, पर दोनो का ही पाठ रा० गो०, और पी० समूह की प्रतियो की परम्परा का है (द्रष्टव्य-अध्याय ६,-'जम्भवाणी · पाठ-सम्पादन' की 'भूमिका')। उल्लिखित ११९ सबदो के 'मध्य मे' क्या और किस प्रकार की 'गडबडी' थी तथा सशोधनकर्ता श्री तिवारी ने कितना और किस रूप मे 'शुद्ध किया', यह जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। जहा तक ईश्वरानन्दजी कृत गद्य टीका का सम्बन्ध है, वह यद्यपि सन्तोषजनक नही कही जा सकती। उसमे मनमाने ढग से जोड-तोड कर अर्थ सगति बैठाने का प्रयास मात्र है। मूल पाठ के अशुद्ध होने के कारण भी ऐसा हुआ है।

(३) श्री जम्भ सहिता भी सवत् १९५५ मे प्रकाशित की गई थी। इसमे विभिन्न मन्त्रो और २९ धर्मनियमो पर विशद पाण्डित्यपूर्ण टीका है। अपने पक्ष-मण्डन और पुष्टि मे प्रत्येक स्थल पर सम्बन्धित वेद-मन्त्रो और धर्मशास्त्रों के प्रभूत उद्धरण दिए गए हैं। इस पर आर्य समाजी विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव है। सम्प्रदाय मे इसका बहुत मान और प्रचार हुआ है। तत्सबधी व्याख्या-विवेचन के लिए इसको प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा है। यह इसी से स्पष्ट है कि परवर्ती सबदवाणी विषयक ग्रन्थो म इसका ज्यो का त्यों सन्निवेश कर लिया गया है[1]।

(४) ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था मे 'मनु आदि अनेक धर्मशास्त्रो के वचन' सग्रहीत हैं, जिनमे 'किन कर्मों के प्रभावो से मनुष्य की ब्राह्मण सज्ञा हो सकती है और कौन से कर्मों के द्वारा ब्राह्मण शूद्र से भी अधम श्रेणी मे मानने योग्य हो जाता है, यह अत्यन्त शुद्ध तथा पुष्ट प्रमाण और अनेक उदाहरणो द्वारा पूर्णरीति से यथोचित दर्शाया है'[2]।

१-द्रष्टव्य- (क) श्री जम्भगीता (भाषा-भाष्य),भाष्यकार स्वामी सच्चिदानन्द, प्रकाशक—स्वामी भोलाराम महन्त पीपलगटटा, हरदा, होशगाबाद, सवत १९८५। इस पर श्रीरामदासजी ने अपना क्षोभ और दुख भी प्रकट किया था—रावल गोयद का जीवन चरित्र, सवत १९८६, पृष्ठ ८।

(ख) जम्भसागर, टीकाकार- स्वामी रामानन्दजी गिरि, बिश्नोई सभा, हिसार, सवत् २०११।

२-ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था, सवत् १९७५, द्वितीय सस्करण, मुखपृष्ठ पर श्रीरामदासज का वक्तव्य।

(५) शिक्षा-दर्पण में स्वामीजी के नीति और अध्यात्म विषयक, दोहा, इन्दव, मनहर, दुर्मिल, छप्पय और कवित्त, कुल ५८ फुटकर छन्दों का संकलन है। इसमें "सांसारिक कुरीतियों का खण्डन और परमार्थिक मार्ग का यथोचित मण्डन अत्यन्त उत्तमता से किया है[1]"। इसकी भाषा प्रांजल और प्रवाहपूर्ण है। उदाहरणार्थ तीन छन्द द्रष्टव्य हैं[2]।

सबदवाणी को सर्वप्रथम टीका समेत प्रकाशित करने तथा मंत्रों और २९ धर्म-नियमों को "जम्भसंहिता" के रूप में वेद और धर्मशास्त्र विहित सिद्ध करने के कारण स्वामीजी का महत्त्व है। उन्होंने विष्णोई सम्प्रदाय को गहन पांडित्य और ठोस तर्कों से आर्य समाजी विचारधारा के अनुरूप वेद-सम्मत शास्त्रीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। काव्य-क्षेत्र में शिक्षा-दर्पण के नीति संबंधी कथन विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं।

१२०. रचयिता - अज्ञात : 'चेलोजी की कथा' :
(रचनाकाल–अनुमानतः विक्रम संवत् १९२०)[3] :

प्रति में रचना का यह नाम नहीं दिया गया है, किन्तु विषयवस्तु को देखते हुए उचित ही प्रतीत होता है। यह खड़ी बोली गद्य में लिखित कथा है, जिसका सारांश इस प्रकार है :—

नगीना के निःसंतान धनाढ्य सेठ कुलचन्द के जाम्भोजी के आशीर्वाद से चार पुत्र-पुत्रियाँ– शान्ति, धन्ना, बिच्छू और इमरती हुई। किसी समय एक विष्णोई युवक रामलाल (अपर नाम भंवरा भक्त) अपनी पत्नी सुगणी सहित सेठ के यहां नौकरी की तलाश में आया। वह मुनीमी का काम और सुगणी घर की देखभाल करने लगी। सुगणी अत्यन्त

१–शिक्षा-दर्पण, संवत् १९७४; मुखपृष्ठ पर श्रीरामदासजी का वक्तव्य।

२–जिनकै प्रभु की परतीत नहीं तिनकै अनरीत सदा वरतैं।
विषिया मद मोह में भूल रह्यो, कबहू नहीं दान दियो कर तें।
शुद्ध बात नहीं निकसै मुख तें, सगरो दिन जात सदा लरतैं।
ईश्वर धृक जीवन है उनको, जरि क्यों न गयो भगरो धरतैं॥ ७॥
एक रस रहवो कठिन, कठिन सज्जनता पारन।
सदाचार अति कठिन, कठिन कामादिक जारन।
मोह सरक अति कठिन, कठिन सत संगति होवो।
योग युक्ति अति कठिन, कठिन अति मन को धोवो।
पतिव्रत पालन अति कठिन, कठिन भजन निश दिन करण।
ईश्वर जग में ये कठिन, अति ही कठिन है हरि शरण॥ १०॥
प्रीति गई परतीति गई, रस रीति गई विपरीत भई है।
फैल गई है कुचाल कुरीति, सुचाल सुरीति पताल गई है।
ज्ञान विवेक वैराग्य को जीत कै, नीति हू लोभन लीन लई है।
ईश्वर ये गति देख दयों दिशि, दांतन कै तलै जीभ दई है॥ १८॥

३–प्रति संख्या ३६०। दुतारांवाली के श्री धोंकलरामजी विष्णोई के अनुसार, यह संवत् १९२० की लिखी हुई एक प्रति से नकल की गई थी और इसमें इसका यही नाम था।

रूपवती थी। सेठ उसकी ओर आकर्षित होने लगा। एक दिन मौका पाकर सकुचाते हुए उसने उससे अपना प्रेम निवेदन किया। इस पर पति परायणा मुगणी ने उसको बहुत फटकारा। दोनों काम छोड़कर वहां के एक १८ वर्षीय, धर्म-प्रिय विश्णोई युवक 'चेले" के घर आए और उसके अनुरोध पर वहीं रहने लगे। चेला फेरी लगाकर कपड़ा बेचता और एक रुपये की आमदनी होते ही वापस घर आकर शेष समय भगवत्-भजन में बिताता। कुलचन्द अपने व्यवहार पर बहुत लज्जित हुआ। परिस्थिति समझ कर उसकी पत्नी रामप्यारी ने उसको सात्वना दी और समस्त दोष अपने सिर लिया। प्रायश्चित्त स्वरूप ये सब लोग समराथळ पर जाम्भोजी के दर्शनार्थ आए और उनसे क्षमायाचना की। उन्होंने क्षमा करते हुए धर्म नियमों पर दृढ रहने का आदेश दिया। रामलाल पुन उसके यहा मुनीमी करने लगा। कुलचन्द ने अपनी पुत्री शान्ति के लिए वर के विषय मे पूछा तो जाम्भोजी ने 'चेले' का नाम लिया। उसकी निर्धनता देखते हुए वह बहुत हिचकिचाया किन्तु जाम्भोजी के कथन और पत्नी के अनुरोध से विवाह कर दिया। दहेज मे उसने कुछ भी नही दिया। उसने दोनों पुत्रों के भी विवाह कर दिए। कुलचन्द की वृद्धावस्था को देखते हुए जाम्भोजी ने उसको समराथळ पर न आने और नगीना मे ही 'अपने रूप चेले' के दर्शन करने का आदेश दिया। चेलोजी को जाम्भोजी का रूप समझना उसको नही जचा और उसकी परीक्षा करने का निश्चय किया। अपनी लड़की इमरती के विवाह मे चेले को क्रोध दिलाने के विचार से उसने विच्छू को तैयार किया। विच्छू ने उसको भूखे रखते हुए मौके-बेमौके, हर प्रकार से अपमानित किया, किन्तु क्रुद्ध तो वह हुआ ही नही, उलटे उसने विच्छू की प्रशसा की। परीक्षा मे वह खरा उतरा। प्रायश्चित्त की अग्नि में जलते हुए कुलचन्द-परिवार ने इस कार्य के लिए जाम्भोजी से क्षमा-याचना की। वैकुण्ठवास से पूर्व जाम्भोजी भी नगीना मे अन्तिम बार अपने भक्तों को धर्मोपदेश करने गए थे।

यह वर्णनात्मक शैली मे प्रवाहमयी और प्रांजल खड़ी बोली की रचना है। विष्णोई सम्प्रदाय सबधी बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी इससे मिलती है। रचना का नमूना नीचे दिया जाता है। ध्यातव्य है कि इस उद्धरण मे चेलोजी ने कष्टसहिष्णुता के उदाहरणस्वरूप मीरांबाई का नामोल्लेख भी किया है। इसमे जाम्भोजी के साथ उसके सम्पर्क का भी स्पष्ट उल्लेख है।

(सात दिन तक ससुराल मे अपमानित होने पर चेला अपने घर मे अपनी पत्नी शान्ति को समझाता है) :—

"इस यज्ञ महोत्सव मे जितना आनन्द आया, मेरे तो जीवन भर मे इससे पूर्व इतना आनन्द कभी नहीं आया था। इन सात दिनों मे आत्मोन्नति का सुअवसर था तथा सेवाधर्म करके मैं तो कृतार्थ हो गया। मेरे पर प्यारे विच्छू ने मेरी आत्मोन्नति मे समय-समय पर अवसर दे मुझे कृतार्थ किया। प्रभु जम्भदेव से प्रसन्न और सच्चे दिल से प्रार्थना करता हूं, ईश्वर उनका भला करे। आनन्द के रहस्य को तुम नहीं समझती, प्यारी। शारीरिक सुख का नाम ही क्या आनन्द होता है? आनन्द तो आत्मा की तृप्ति का नाम है। ऋषि मुनि

लोग तो उस आनन्द के लिये जप-तप-व्रत सब करते हैं। शरीर रहे चाहे जाय, इसकी चिन्ता किये बिना आत्मिक आनन्द के लिये हंसते-हंसते विष के प्याले पिये, शूली पर चढ़े तथा सर्पों से खेलते रहे, उन महात्माओं के आनन्द के रहस्य को क्या थोड़े से ही दुख में ही भूल गई ? हमारे सबसे बड़े प्रह्लाद भक्त, राजा हरिश्चन्द्र, राजा युधिष्ठिर आदि पुरुष और सती शिरोमणि सीता, दमयंती, तारा, सावित्री, अनुसूया आदि देवियों ने कष्ट सहे, परन्तु क्रोध को निकट न आने दिया। तुम दूर क्यूं जाती हो ? आजकल के ही दिनों में गुरुजी महाराज का थोड़े से ही उपदेश श्रवण करने से तुम्हारे ही स्त्री जाति की देवी श्री मीराबाई का जीवन देखो। अनेक प्रकार अपमान और कष्ट सहने पर भी सब सहन करके हंसते हुए सब कष्ट सह कर क्रोध को जीत लिया" -पृष्ठ २७३-२७५।

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व की खड़ी बोली का यह उत्तम उदाहरण है।

१२१. स्वामी ब्रह्मानन्दजी : (संवत् १९१०-१९८५) :

ये नगीना के निवासी थे[1]। 'इनका जन्म गंगा पार विष्णोई के घर का था। कुछ पढ़ाई श्री स्वामी दयानन्दजी के पास की। अष्टाध्यायी महाभाष्य पंडित देवदत्त शास्त्री के पास पूर्ण किया'[2]। ये वील्होजी की शिष्य-परम्परा में स्वामी रामदासजी के शिष्य थे[3]। जाम्भोजी के जीवन चरित सम्बन्धी जानकारी के लिये संवत् १९४६ में इनका साहबरामजी से गांव हरिपुरा में मिलना और तद्विषयक बात पर दोनों में मनमुटाव होने का उल्लेख भी मिलता है[4]। स्वामी ईश्वरानन्दजी की भांति ये भी वेद, व्याकरण और धर्मशास्त्रों के बहुत बड़े विद्वान् थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएं प्राप्त हैं :—

१-श्री जम्भदेव चरित्र भानु, संवत् १९५८ (प्रकाशक-स्वयं)-(जाम्भोजी का जीवन-चरित)।
२-साखी-संग्रह-प्रकाश, संवत् १९७१ (प्रकाशक-स्वयं)-(यत्र-तत्र टिप्पणियों सहित कति-

१-प्रति संख्या ३३६- 'दस्तपत साधु ब्रह्मानंद के हैंगे, उमर २६ वर्ष की रहने वाला नगीने का'।
२-श्री जंभसार-साखी संग्रह; पृष्ठ 'ग', संवत् २०००, सम्पादक- स्वामी श्रीरामदासजी, कोलायत।
३-श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ २१९-२२०।
४-प्रति संख्या १९२ में श्री लक्ष्मीनारायण राहड़ द्वारा लिखित :— 'नोट-इसी साल (संवत् १९४६) ब्रह्मानंद साधु साहबरामजी के पास जंभेश्वरजी को जीवण चरित्र लिखणे वास्ते वार्ता पूछण के खातिर पहले नांवड़ी आये थे फेर नांवड़ी में म्हात्माजी (साहबरामजी) नहीं मिले। तब हरीपुर आये और अंदाज ४ म्हींना साहबरामजी के पास रहे और बहुत सी बात जांभेजी की पूछते और लिखते रहे और १ दिन प्रश्नोत्तर के वखत कुच्छ जंभेश्वर को स्वामी ब्रह्मानंदजी ने अपसबद कह दीया तब महात्माजी ने कहा- मैं जम्भेश्वर को ईश्वर तुल्य मानता हूं तुम उनके वास्ते अपसब्द मत कहो। इस बात पर ब्रह्मानंदजी रुष्ट होकर चले गये। अपसब्द ये था—स्वामीजी ने कहा (१ सब्द के ऊपर) - ये जाम्भेजी म्हाराज गपोडा मार दीया। बस इतनी बात पर साहबरामजी की और ब्रह्मानंदजी की जुबानी दुख हो गया था। ये मेरी आंखे देखी बात है'।

पय जाम्भाणी साखियो का सकलन)।

३-मृतक संस्कार निर्णय, सवत् १९६९, (द्वितीय संस्करण)।

(-अनेक प्रमाणो और तर्कों द्वारा शव को भूमि मे गाडने की पुष्टि)।

४-श्री वील्होजी का जीवन चरित्र तथा वील्हाजी का सक्षिप्त वृत्तान्त, सवत् १९७०।

५-विश्नोई धर्म विवेक, संवत् १९७१ (प्रश्नोत्तर रूप मे विष्णोई धर्म की मुख्य-मुख्य बातों का स्पष्टीकरण)

६-विद्या और अविद्या पर व्याख्यान, संवत् १९७२।

७-शोभाचार-विधि, सवत् १९७३।

८-भाषण[1]।

९-आरती[2] तथा भजन, -प्रति सख्या १७१।

प्रकाशित ग्रन्थों के द्वारा इन्होंने जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य सम्बन्धी, यत्किंचित् ही सही, पाण्डित्यपूर्ण और शोध-समन्वित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान की है। इतने व्यापक रूप मे इनका सर्वप्रथम परिचय इन्होंने ही दिया। सभी ग्रन्थ पर्याप्त खोज और अध्ययन के फलस्वरूप लिखे गए हैं। जम्भदेव चरित्र भानु इनकी ख्याति का प्रमुख आधार है, अनेक असगतियो और भूलों के बावजूद भी इसका ऐतिहासिक मूल्य और महत्त्व है। एक विद्वान् गद्य लेखक के रूप में ही इनकी मान्यता है, कवि के रूप मे नही। इनके भजन की कतिपय पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं[3]।

१२२. हिम्मतराय : (विक्रम संवत् १९००-१९८०) :

ये आदमपुर (हिसार) के गायणा थे। इनकी फुटकर रचनाओं मे जम्भ-महिमा तथा राव दूदा, पूल्होजी, राव हम्मीर, राव मालदेव, रणधीरजी बाबल, लोहापागल आदि से सम्बन्धित प्रसगो का उल्लेख है। राव दूदा विषयक कतिपय छन्द तो बहुत प्रसिद्ध हैं[4]। कविता साधारण कोटि की है।

१-अखिल भारतवर्षीय विष्णोई महासभा, कानपुर के तृतीय अधिवेशन के सभापति पद से दिया गया। प्रकाशक-स्वय।

२-(क) विश्नोई धर्म विवेक, पृष्ठ ३-४, तथा
(ख) जम्भदेव आरती सग्रह, सकलन कर्ता-जगन्नाथ गेदर, नीमगाव, -मे प्रकाशित।

३-रघुवर आपको औतार अरे मन चेतिये वारंवार॥ टेक॥
पहलादजी के वाचा कारण, द्वादश कोटि जीव उद्धारण।
लोहट हांसा के काज सवारण, धर विष्णु अवतार॥ १।
ब्राह्मण को प्रभु भरम मिटायो, काचे घट प्रभु जल रखवायो।
जल ही से प्रभु दीप जगायो, कहि करि वाणी सार॥ २॥
भवसागर मे पर्यो ज बेरो, अब के प्रभुजी करो नवेरो।
ब्रह्मानंद प्रभु तुमरो चेरो, चरित्र अपरपार॥ ६॥

४-(क) वाद कियो वीदै जोधावत, मरगो भूप रजा करके।
मरगै ऊद हुवो वणियै गो, टूटी टाग पड्यो करके। (शेषाश आगे देखे)

१२३. मुन्शी किशोरीलाल गुप्त : (२० वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) :

ये फलावदा के निवासी थे। इन्होंने जाम्भोजी के अवतार तथा कतिपय अन्य फुटकर भक्ति-भाव विषयक छन्द लिखे है[1]।

१२४. माधवानन्द (माधोदास) : (अनुमानतः विक्रम संवत १९२५-१९७५) :

ये भ्रमणशील विष्णोई साधु थे और प्रायः पीपासर साथरी में ठहरा करते थे। जाम्भोजी, हरि-महिमा और समाज-सुधार सम्बन्धी इनके १५ भजन मिलते हैं (प्रति संख्या ३८८ में) जिनमें एक द्रष्टव्य है :—

कलियुग कृष्ण मुरार प्रगट भये जी ॥ टेर॥
रक्षा करी प्रहलाद भक्त की, नृसिंघ रूप प्रभु धरे।
देख सब चकित भये जी, विष्णु पंथ प्रगट करे।
कलियुग में अवतार, भक्त ले स्वर्ग गये।
सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग लीला कीवी अपार, सार सब तत्त्व कहे जी।
माधवानन्द कहे कर जोरी कलिकाल मरुधार, जम्भगुरु तार सहे जी॥

१२५. व्रदीदास (विरधीदास) : (अनुमानतः विक्रम संवत् १९५० में वर्तमान) :

राग 'मारू' में गेय इनके पाँच भजन प्राप्त हुए हैं (प्रति संख्या ३०७) जिनमें जाम्भोजी के जन्म और विभिन्न बाल-लीलाओं का सरल भाषा में भक्तिभाव-पूर्ण 'गान' किया गया

खोड़ो ऊंट फिरे जंगळ में, सरण आयो सम्भराथळ के।
हिम्मतराय हरी गुण गावत, कट गयो पाप रजा करके। -मुखश्रुति से।
(ख) दूदाजी महाराज आये चल के, तुरंग चढ़े पीछे हर के।
भाजत भाजत हार गये, जद साफा बांध लिया करके।
हिम्मतराय हरि गुण गाय, गुरु मिलग्या सांम दया करके।-प्रति ३४१।

१-प्रति ३३७ और 'भजन जम्भदेव चरित्र भानु'; प्रकाशक—श्रीरामदासजी परेमदासजी, कोलायत, संवत् १९९८ में इनकी 'श्री जम्भदेवजी महाराज की अवतार कथा' भी है, जिसका यह भजन द्रष्टव्य है (हांसा का कथन) :—
सूरत देख के तेरी मैं तो कैसे बांधूं धीर ?
जिन नौ मास गरभ में पाला, अब तक कुछ ना देखा भाला।
उसको छोड़ हुआ तू लाला, कैसे आज फकीर ॥ सू० ॥
रोती होगी वैरन मैया, ज्यूं बच्छ बिन तड़फे गइया।
कोई न उसका धीर धरैया, फूट गई तकदीर ॥ सू० ॥
अगर कोई होता पुत्र हमारे, खुशी के बजवाते नगारे।
कहे किशोरी इस विधि प्यारे, नैनन बरसे नीर ॥ सू० ॥-पृष्ठ ६-७।

है। प्रत्येक भजन के पूर्व एक दोहा दिया गया है[1], जिसमे सम्बन्धित भजन के वर्ण्य-विषय का सार समाहित है। अन्तिम भजन के ६ छन्द द्रष्टव्य हैं[2]।

१२६ जगमालदास : (रचनाकाल-सम्वत् १९५०-६०)
आरती-रामजी श्री जांभाजी की (-प्रति ३४३)

८ पंक्तियों की इस आरती मे जाम्भोजी को विष्णु और राम मानकर उनका गुण-गान किया है। रचयिता ने विष्णु का जन-रक्षार्थ चक्र-धारण करना कह कर, 'जन' शब्द से तत्कालीन स्थिति की ओर भी संकेत किया प्रतीत होता है। इसका रचना-काल संवत् १९५०-६० के मध्य है[3]। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

ओं जै श्री जभ ओंकारा, ब्रह्मा शिव सनकादिक गावत है सारा ॥ हरि हरि जभ देवा ॥टेर॥
कानन कुंडल सुभ कानन ही राचे, गरुडासन सिंहासन लक्ष्मी संग छाजे ॥ २ ॥हरि०।
पीतांबर तडितांबर हो राजत अंगे, ब्रह्मादिक सनकादिक भरतादिक संगे ॥ ४ ॥ हरि०।
कर मध्य चक्र विराजत जन रक्षा धरता,जग पोषत जग पालक जग अनंद करता ॥५॥हरि०।
जभ गुरु की आरती जो नर गावें, कहत है जगमालदास मन वांछित फल पावें ॥ ८ ॥

१-(क) पूलै हे परचो पावियो, दीनो दीन दयाल।
सुरग हे दिपायो स्यामजी, संता की प्रतपाळ ॥
(ख) सुरग हे दिपायो स्यामजी, बन बन चारत गाय।
साज हे समै सब साथ ले, पुर मैं आई जी गाय॥
(ग) रात हे समै हर सोवता, इछ्या कीवी जो आप।
पीपा हे सर की वारता, संता मेटै संताप॥
(घ) भोर ही भयो हर सोवता, नैंना घोनी जो नींद।
प्रात किरिया सादे के, मात पिता सुप सींद॥
(ङ) अरज हे करी हर आप सू, चरणा सीस निवाय।
अब हे उवारो देवजी आवा गुण निवाय ॥-लोहटजी-कथन।

२-*अबके आप उवारो देवा, चरण कंवळ चित लाऊ।*
आवागुणे निवारो स्यांमी, बास वैकुंठे पाऊ ॥ १ ॥
काया काळ कदे ना कापे, मुक्ती पद मैं पाऊ।
अैसी आसा मेरी पूरो, अैसी पदवी पाऊ ॥ २ ॥
अैसा वचन लोहटजी बोलै, हरजी सू हित लावें।
पुतर भाव तो मन सू भूला, हरि भाव मन आवें ॥ ३ ॥
लोहटजी तो विष्णु जाणें, तीन लोक अवतारी।
वार वार तो काया धारे, भोमी भार उतारी ॥ ४ ॥
नर नारायण आये स्यामी, पीपासर अवतारी।
मेरी आसा पूरो स्यामी, आप लियो अवतारी ॥ ५ ॥
अब सो अरज सुणो गिरधारी, भगती पाऊ थारी।
अनूपावनी भगती दीजें, अैसी अरज हमारी ॥ ६ ॥

३-मीयासर साथरी के वर्तमान महन्त श्री ब्रह्मदासजी द्वारा के कथनानुसार।

१२७. श्रीरामदासजी गोदारा : (अनुमानतः विक्रम संवत् १९२०–२०१०) :

ये जाम्भोळाव के साधु आसारामजी के शिष्य थे। प्रति संख्या ३१४[1] से विदित होता है कि संवत् १९४४ में ये 'स्वामी' थे और विष्णोई–मन्दिर कालपी में रहते थे। इस समय ये २४–२५ साल के साधु रहे होंगे। इनको संस्कृत का ज्ञान था जो उन्होंने स्वामी ब्रह्मानंदजी से सीखा था[2]। ये बहुश्रुत, अनुभव ज्ञानी, निर्भीक तथा सत्य और स्पष्ट–वक्ता थे। इनका भ्रमण व्यापक था। जिस किसी भी बड़े स्थान पर जाते या रहते, वहां से कोई न कोई पुस्तक अवश्य छपवाते। इनकी प्रेरणा से अनेक स्थानों पर विष्णोई–मन्दिर भी बनाए गए[3]। इन्होंने बहुत से मन्दिर–साथरियों का जीर्णोद्धार करवाया और समाज–सुधार सम्बन्धी अनेक कार्य किए[4]।

आधुनिक काल में विष्णोई साहित्य को, चाहे वह अल्पांश में ही हो, प्रामाणिक रूप से प्रकाश में लाने वाले यही एकमात्र साधु थे। संवत् १९६७–६८ से २००७—४० साल तक ये यह कार्य करते रहे और छोटी–मोटी २४ पुस्तकें प्रकाशित कीं। इनमे स्थान–स्थान पर दिया गया हस्तलिखित प्रतियों का हवाला तत्सम्बन्धी प्रामाणिकता का द्योतक है। इनके अतिरिक्त इनकी लिखी लघु भूमिकाएँ और टिप्पणियाँ बहुत उपादेय हैं। ध्यातव्य है कि सम्प्रदाय-संबंधी कथनों में इन्होंने अधिकांश में लोक-प्रचलित परम्परा का आधार लिया है, प्राचीन प्रतियों का नही। इनसे विष्णोई सम्प्रदाय, समाज, साहित्य और इनके प्रति जन–रुचि सम्बन्धी उल्लेखनीय जानकारी मिलती है। कुल मिलाकर, इनका यह कार्य एतद्-विषयक शोधकर्ता के लिए एक आधार–भूमि प्रदान करता है। जनसाधारण भी इनसे इनके विषय में सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकता है जो अन्यथा एक साथ सुलभ नहीं है। यही इनकी साहित्य–सेवा है और इसी कारण इनका महत्त्व है।

स्वामी ईश्वरानन्दजी गिरि और अपने गुरु ब्रह्मानंदजी के प्रति इनका विशेष लगाव तथा आदर-भाव था। यही कारण है कि इन्होंने स्व–संकलित पुस्तकों के अतिरिक्त इन दोनों की कई पुस्तकें भी प्रकाशित की। इन सबकी सूची तिथिक्रम से आगे दी जा रही है :—

(१) **जम्भाष्टक प्रकाश** (गोविन्दरामजी बागड़िया कृत), संवत् १९६८, मेरठ।

(२) **मृतक संस्कार निर्णय** (ब्रह्मानंदजी कृत), संवत् १९६९, कानपुर, द्वितीय संस्करण।

(३) **जम्भदेव लघु चरित्र**, संवत् १९६९, कानपुर।

(४) **श्री वील्होजी का जीवन चरित्र** (ब्रह्मानंदजी कृत), संवत् १९७०, कानपुर।

(५) **विश्नोई धर्म विवेक** (ब्रह्मानंदजी कृत), संवत् १९७१, कानपुर, द्वितीय संस्करण।

१–"श्रीरामदास स्वामी मन्द्र कालपी, आषाढ शुक्ला १३ संवत् १९४४ रवीवार"।

२–जम्भसार–साखी संग्रह, पृष्ठ 'घ' संवत् २०००।

३–'गाडरवारा में श्रीरामदासजी ने मंदिर श्री जम्भेश्वर महाराज का स्थापित्त कर हवन किया'–ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था, पृष्ठ २४, संवत् १९७५।

४–"मुकाम गुरुद्वारा के बकरों की थाट का प्रबन्ध जरूर करना चाहिए क्योंकि थापन लोग कुंभकर्ण की निद्रा में सोते पड़े हैं"– श्री वील्हाबी कृत वाणी, संवत् १९७५।

(६) विद्या और अविद्या पर व्याख्यान (ब्रह्मानदजी कृत), सवत् १६७२, कानपुर।
(७) गोत्राचार विधि (ब्रह्मानदजी कृत), सवत १६७३, कानपुर।
(८) शिक्षा दर्पण (ईश्वरानदजी गिरि कृत), सवत् १६७४, अजमेर।
(९) श्री स्वामी वील्हाजी कृत वाणी, सवत् १९७५, नरसिहपुर।
(१०) ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था (ईश्वरानदजी गिरि कृत), सवत् १९७५, नरसिहपुर, द्वितीय सस्करण।
(११) शब्द वाणी– जम्भसागर, सवत् १९७६, प्रयाग, द्वितीय सस्करण।
(१२) जम्भसार (साहबरामजी कृत)। २४ प्रकरणो मे से १८ प्रकरण (१ से ६ तथा १२, १४ और १७ से २३) आशिक रूप म प्रकाशित, सवत् १६७८, प्रयाग।
(१३) ऊदोजी का कवित्त, सवत् १६७८, प्रयाग।
(१४) श्री स्वामी वील्हाजी कृत कक्का संतोसो, सवत् १६७६, जोधपुर। द्वितीय सस्करण– २००३, बीकानेर।
(१५) श्री १०८ श्री जम्भदेव जीवन चरित्र–श्री जम्भसार दशम प्रकरण, सवत् १६७६, बीकानेर।
(१६) श्री १०८ श्री जमेश्वर धर्म दिवाकर, सवत १६८४, जोधपुर।
(१७) श्री जम्भसार, प्रकरण २४ वां व साखी सग्रह, सवत् १६८५, अजमेर।
(१८) रावण गोयद का जीवन चरित्र (वील्होजी कृत), सवत् १६८६, कानपुर।
(१९) श्री जम्भसागर– जम्भगीता का शुद्धि पत्र, सवत १६८६, बीकानेर।
(२०) श्री जम्भेश धर्म दीपावली, सवत् १६६३, लाहोर।
(२१) श्री वील्हाजी कृत भजन दीपावली, सवत् १६६७, बीकानेर (प्रेमदासजी के साथ)।
(२२) भजन जम्भदेव चरित्र भानु किशोरीलाल कृत तथा श्री जम्भसागर का मुद्रा–शुद्धि पत्र, सवत १६६८, बीकानेर (प्रेमदासजी के साथ)।
(२३) श्री जम्भसार (साखी सग्रह), सवत् २०००, जोधपुर।
(२४) श्री १०८ श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र, महात्मा सुरजनदासजी रचित, सवत् २००७, बीकानेर (श्री महीरामजी धारणिया के सहयोग से)।

१२८ कुम्भारामजी पूनिया : (अनुमानत विक्रम सवत् १९३७-१९९५)

ये गाव जेगळा के पूनिया थे। इन्होंने सवत् १९६७ मे डाबला के भादू साधु हरि–नारायणजी से मुकाम मे दीक्षा लेकर सन्यास ग्रहण किया। सवत् १६७३ के जेठ वदि अमावस्या को ये अबोहर से हरिद्वार की ओर चले गए थे। वहा लगभग ३२ वर्ष तक हरि-भजन और योग्याभ्यास करते रहे। उनका स्वर्गवास सवत् १९९५ के लगभग हुआ। इनकी दो पुस्तकें हैं –(१) निर्बंद ज्ञान प्रकाश[1] और (२) पच यज्ञ प्रश्नोत्तर मणि माया[2]।

१–महराना के नम्बरदार मामराजजी द्वारा सवत १९६९ मे प्रकाशित।
२-प्रकाशक–वही, सवत् १६७२।

इनकी ख्याति का आधार प्रथम पुस्तक ही है। इसमें अध्यात्म, आत्मानुभूति और ज्ञान विषयक अनेक भजन हैं, जो दो प्रकार से अभिव्यक्त किए गए हैं :—(क) पखवाड़े के भजन, जिसमें अमावस्या से आरम्भ कर १५ तिथियों पर क्रमशः प्रासंगिक भजन रचे गए है, (ख) प्रश्नोत्तर रूप में। कवि की जाम्भोजी के प्रति असीम श्रद्धा है। वह उनको शुद्ध हरि रूप मानता है[1]। स्थान-स्थान पर गीता की महत्ता प्रतिपादित की गई है[2]। दर्शनीय है कि कुम्भारामजी 'नारी को नरक की निशानी' मानते हैं[3]। ऐसा कथन किसी विष्णोई कवि ने नहीं किया। रचना के उदाहरण स्वरूप एक भजन द्रष्टव्य है[4]।

दूसरी पुस्तिका में उल्लिखित विषयों से संबंधित अनेक बातों को खड़ी बोली गद्य में

१–वंदूं वारंवार, इष्टदेव गुरु जभ कूं।
होवे धर्म प्रचार, प्रति वंधक सब मेटिय ॥ ३ ॥–पृष्ठ ११।
जंभेश्वर सुध रूप कूं, वार वार प्रणाम।
तन दृष्टि त्याग कर सोई कुंभाराम ॥ ४ ॥–पृष्ठ ५२।

२–अरथ अमावश चेत हिये धर गीता को दिन रात (टेक)–पृष्ठ ३।
जो नर करे गीता को पाठ, जां कै सब्र वातां का ठाठ ॥–पृष्ठ ६२।

३–गीता परवत हम ढूंढे जिसमें पाई जान जड़ी ॥–पृष्ठ ६२।
चौथ चंचलता त्यागो मन की, हरि से ध्यान लगाय ॥ टेक ॥
नारी नरक निसानी सारी, भली भांत हम किया विचारी।
सत्य कहूं नां मानों खारी, नारी परतक्ष लाय ॥ १ ॥
हाड मांस का पिंजर नारी, मल अरु मूत्र छली है सारी।
संग करै सो होवै दुखारी, तज दे इनकी चाय ॥ २ ॥
—भजन पखवाड़े का, पृष्ठ ८।

ऐसा ही उल्लेख पंचयज्ञ प्रश्नोत्तर में भी किया गया है, यथा—
प्रश्न–नरक का दरवाजा क्या है? उत्तर–स्त्री।–पृष्ठ ३।
प्रश्न–मदिरा की तरह कौन मोहित करती है? उत्तर–स्त्री।–पृष्ठ ५।
प्रश्न–इस संसार में क्या त्यागने योग्य है? उत्तर–धन और स्त्री अर्थात् मोक्ष मार्ग में यह प्रतिबंधक है, इसलिये त्याज्य है। –पृष्ठ ७।
प्रश्न–बुद्धिमान् तथा धीर तथा समदर्शी कौन है? उत्तर–जो स्त्री के कटाक्षों करके मोह को नहीं प्राप्त हुआ है।–पृष्ठ ८।
प्रश्न–ज्ञानियों में महाज्ञानी कौन है? उत्तर–जो पिशाचनी रूपी स्त्री करके नहीं ठगा गया है।–पृष्ठ ९।
प्रश्न–विश्वास करने योग्य कौन नहीं है? उत्तर–स्त्री अर्थात् नारी।–पृष्ठ १०।

४–साधो भाई ऐसा देश हमारा, जहां नहीं काल का सारा ॥ टेर० ॥
स्वयं प्रकाश एक जोत विराजै, नहीं चंद नहीं तारा।
अग्नि सूरज वहां नहीं पहुंचे, विना भांन उजियारा ॥ १ ॥ साधो० ॥
जन्म मरण दुख वहां नहीं पहुंचे, अजर अमर सुखारा।
सत रज तम गुण वहां नहीं पहुंचे, मूल माया से पारा ॥ २ ॥
ऐसे देस संत पहुंचे विरला, जिन लिया संतां का सहारा।
अगंम देस की अद्भुत रचना, पुकार कहै संत सारा ॥ ३ ॥
अद्भुत महिमा ताकी वरणि न जावे, वेद संत सब हारा।
जांभो कूं भो हरि द्वितिया नाहीं, ब्रह्म जोत इकसारा ॥ ४ ॥–पृष्ठ ४८-४९

प्रश्नोत्तर रूप मे स्पष्ट किया है। इन पर आर्य-समाज आन्दोलन का भी प्रभाव लक्षित होता है।

१२९. साधु जगदीशराम : (संवत् १९६०-२००५) :

ये भीयांसर माथरी के महन्त भोलारामजी के शिष्य थे। इनका स्वर्गवास संवत् २००५ मे रावतखेडा मे हुआ। इनके २० के लगभग भजन, साखी, आरती और छन्द आदि मिलते हैं[1]। इस शताब्दी उत्तरार्द्ध मे ये श्रेष्ठ विष्णोई कवि थे। इनकी रचनाओं में पुरानी और नवीन—दोनों काव्य-पद्धतियों का सम्मिश्रण दिखाई देता है। कतिपय रचनाओं मे अध्यात्म और भगवत्‌भक्ति का बडा अच्छा चित्रण किया गया मिलता है। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं[2]।

इनके अतिरिक्त कतिपय प्रसिद्ध कवियो मे सर्वश्री सन्तकुमार राहड, बद्रीप्रसाद वैश्य, नन्दराम विष्णोई (चक्षुहीन), शंकर (प्रति संख्या ३३८), नत्थूराम विष्णोई, हरिराम, रामश्रद्ध कथावाचक, रामलाल, सुखदेव "अर्हत", जगन्नाथ गैदर 'सेवक', राजूराम गायणा आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। छोटी-छोटी पुस्तको और पत्र-पत्रिकाओ में इनकी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

१-प्रति संख्या ३४२, ३४३, ३४४, ३४५।
२-(क) रे मन मेरा कर लिया बेरा, इच्छा चार बताई।
सुभ इच्छा सो वहै सुध मारग, अपणा खोज विचारै।
निरगुण गहै गुण तीनूं त्यागै, सो भव काज सुधारै।
ज्ञान भक्ति वैराग जोग कर, मन आपन को मारै।
वेद गुरु ईश्वर कृपा कर, ज्ञान हृदय मे धारै ॥ २ ॥
पर इच्छा परमारथ मानै, आप सवारथ मेटै।
पोषै जीव ज्ञान दे पूरा, से सत सायब भेंटै।
मल विक्षेप आवरण कर दूरा, वै सदा सुख से लेटै।
सत चित आनंद मिले हजूरा, गुरु गोदी मे बैठे ॥ ३ ॥
अनइच्छा सोई ब्रह्म स्वरूपी, सरवज्ञ सकल पसारा।
पाप पुन्य दुख सुख नही दर्शे नही कोई जीतन हारा।
इच्छा त्याग जाग मन मेरा, झूठा सकल ससारा।
जगदीशराम सैन अब जानी, होयो भवसागरिये पारा ॥ ४ ॥-प्रति ३४२।
(ख) भले तत्व का ज्ञान ध्यान खूब खोलिए।
सत्य ग्रंथ आगे धर कर कांटे तोलिए।
सुभ कर्म करने से मल पाप कटता है।
सेवा साधन करने से विक्षेप हटता है।
ज्ञान से अज्ञान रूपी पडदा फटता है।
गुरु के वचन सेती अमृत गरता है।
तीन दोष दूर करके पाप धोलिए ॥-प्रति ३४२।

इस अध्याय में अनेक स्रोतों से प्राप्त प्रामाणिक सामग्री के आधार पर अनेक कोणों से महत्त्वपूर्ण विष्णोई साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इससे स्पष्ट है कि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर अद्य पर्यन्त इसकी निर्विच्छिन्न रचना-परम्परा रही है। कवि-विशेष के संस्कार, प्रतिभा, दृष्टिकोण और उद्देश्य के कारण रचनाओं में गुण की दृष्टि से स्तर-भेद है। कुल मिलाकर यह साहित्य-राशि विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान-क्षितिज का विस्तार तथा अनेक दृष्टियों और प्रकार से अध्ययन के नवीन आयाम एवं दिशाएँ प्रदान करती है। यह साहित्य बहुत सी विस्मृत, ज्ञात, अज्ञात और अल्पज्ञात साहित्यिक तथा वैचारिक प्रवृत्तियों और परम्पराओं को सम्यक् रूपेण समझने का महत्त्वपूर्ण साधन है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में अनेक ज्ञात तथा अज्ञात कवियों की और रचनाएँ भी लेखक के सुनने में आई हैं किन्तु प्रस्तुत विवेचन में इन पर विचार नहीं किया गया है। मुखश्रुति से प्राप्त और लोक-मनोवृत्ति के अनुरूप ढल कर ये एक प्रकार से लोकगीतों का रूप ले चुकी हैं। इनका अध्ययन इस दृष्टि से पृथक् रूप से ही किया जाना अधिक समीचीन है।

इन सबका संकेत और उल्लेख यथास्थान किया गया है।

साच सहो म्हे कूड न कहिवा ॥ १०६ : १ ।
मीन का पष मीन ही जाणंत, नीर स रग मैं रहियो ॥ २६ : १३, १४ ।
वळि वळि भणत वियासूं, मनां अगम न मासूं ॥ ३३ : १, २ ।
मागरमणियां काच कथीरूं, हीर स हीरा हीरूं ॥ ६१ : १९, २० ।
सुगणां होयस्यें सुरगीक होयस्यें, म्हे सुगणां का दासूं ॥ ७३ · ४ ।
तउवा साग ज नागर वेली, कूकरवगरा भी सागू ॥ ८७ ३५, ३६ ।
दुनी तणा अवचाट भी भाग्या, के के नुगरा देता गाळ गहीरू ॥ ६१ · १० ।
देखि अदेख्या सुण्या असुण्या, खिमा रूप तप कीजै ॥ ६२ : १ ।

—जम्भवाणी (सबदवाणी) से ।

सायर लहर्‌या थोडिया, मो मनडै घणियाह ।
केई वहे तिरछिया, केई सामुहियाह ॥
खुदण्य धरती सा सहै, वाढ सहै वणराय ।
कुसवद तो हरिजण सहै, दूजै सह्यो न जाय ॥
आपनपो न सराहियै, पर निंदियै न कोय ।
मात सराहै पूत कू, लोक न मानै सोय ॥

—परमानन्ददासजी वणियाळ ।

अध्याय ६

बिश्णोई साहित्य : महत्त्व, देन और मूल्यांकन

अध्याय ६

विष्णोई साहित्य : महत्त्व, देन और मूल्यांकन

विष्णोई साहित्य के समुचित मूल्याकन और महत्त्व-दिग्दर्शन के लिए राजस्थानी साहित्य के इतिहास की प्रमुख प्रवृत्तियों के स्वरूप का परिचय देना आवश्यक है। मोटे रूप से राजस्थानी साहित्य का काल-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है[1] —

(१) विकास काल विक्रम सवत् १०००-१५००,
(२) विकसित काल : विक्रम सवत् १५००-१६५०,
(३) विवर्द्धन काल : विक्रम सवत् १६५०-१९२५,
(४) अर्वाचीन काल विक्रम सवत् १९२५ से वर्तमान समय तक।

१६ वी शताब्दी पूर्वार्द्ध से विष्णोई साहित्य का निर्माण होना आरम्भ हुआ था और इस साहित्य धारा के कारण राजस्थानी साहित्य के इतिहास म एक नया मोड आता है। "विकसित काल" के मूल मे इस साहित्य-धारा का प्रादुर्भाव भी एक बडा कारण है। आगे १६ वी शताब्दी तक रचित राजस्थानी काव्य की प्रमुख धाराओ का परिचय दिया जाता है।

१६ वी शताब्दी तक राजस्थानी काव्य प्रधानत तीन धाराओ मे प्रवाहित हुआ — (१) जैन काव्य, (२) चारण काव्य और (३) लौकिक काव्य। प्रत्येक काव्य धारा अपनी एक विशिष्ट शैली भी द्योतित करती है।

(१) जैनी शैली पुरानी राजस्थानी और राजस्थानी के अधिकाश जैन काव्यों म कथ्य, रूप, पद्धति और प्रतिपादन का एक वैशिष्ट्य सर्वत्र लक्षित होता है, जिसको सामूहिक रूप से जैन शैली कहा जा सकता है। इस काव्य का मुख्य स्वर धार्मिक, निर्देशक तत्त्व धर्म और इसी की धुरी पर इसका आवर्तन होता है। अधिकाश रचनाओ मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे, जैन धर्म की महिमा बताई गई है। जैन कवियों ने अपने धर्म मे स्वीकृत सिद्धातो और दृष्टिकोण के आधार पर जीवन बिताने और रहने का उपदेश दिया है। अपवादों को छोड कर प्राय सभी काव्य-रचनाओ म एक विशेष सम्प्रदायगत धार्मिक वातावरण पाया जाता है, तथा धर्म, उपदेश और नीति के तत्वों का सम्मिश्रण है। रस की दृष्टि से यह शात रस प्रधान है। यत्किंचित् रचनाओ मे कभी-कभी शृंगार और वीर रस का आभास मिलता है किन्तु इनका यथोचित निर्वाह नहीं हो पाया है। इन कारणों से इसमे एकरसता और शुष्कता प्रतीत होती है। जैन समाज इससे जितना रस ले सकता है, उतना जैनेतर समाज नही ले सकता। सभी जैन कृतियाँ ऐसी हैं, सो बात नहीं। काव्य की ओर प्रवृत्त होते ही जैन कवि की कृति सरस काव्य का रूप धारण करती है। उनके कथा, चरित काव्यो और

१-इस सबध मे 'परम्परा' के 'राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल', भाग १५-१६, सन् १९६३, जोधपुर, मे लेखक का निबन्ध भी द्रष्टव्य है।

पद्यात्मक लोक-वार्ताओं में यत्र-तत्र प्रकृति, रूप और स्थिति-विशेष के मनोहर वर्णन मिलते हैं। जैन कवियों ने अपने ढंग से समाज-उत्थान का स्तुत्य प्रयास किया है। अपभ्रंश-काल से लेकर इस शताब्दी तक और उसके पश्चात् भी जैन कृतियों की एक निर्विच्छिन्न परम्परा मिलती है। इनकी प्रामाणिकता पर भी संदेह नहीं है। विशिष्ट शैली-बद्ध होते हुए भी हम इनसे विकासमान राजस्थानी-भाषा-सूत्र को खोज सकते हैं। जैनों ने अपने वर्ण्य-विषय का आधार जैन पौराणिक चरित्र और कथाओं के अतिरिक्त लोक-प्रचलित कथाओं को भी बनाया तथा उनको अपने ढंग से प्रस्तुत किया। इनके अप्रस्तुत विधान तथा शब्दावली से तत्कालीन लोक-संस्कृति और काव्य-प्रयासों का संधान मिल सकता है। इन कवियों ने समय-समय पर परम्परागत काव्यों-रूपों के साथ जन साधारण में प्रचलित काव्य-रूपों को अपनाया और उनमें इच्छानुसार आपस में मिश्रण भी किया। जैन काव्यों से हमें काव्य-रूपों के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। कालान्तर में जैन रचनाएँ गतानुगत और रूढ़िबद्ध हो गई। परवर्ती रचनाओं में पूर्ववर्ती रचनाओं का अनुकरण हुआ। विषय-विशेष पर एक रचना पढ़ने के पश्चात् उसी विषय की दूसरी रचना में विशेष आकर्षण नहीं रह गया किन्तु धर्म-प्रधान रचनाओं के अतिरिक्त सहज जीवन से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित कृतियों का महत्त्व कदापि कम नहीं है।

(२) **चारण शैली :** ऐसी रचनाओं में वर्ण्य-विषय, शब्दावली, काव्य-रूढ़ियों, भाषा-प्रवाह, छन्द-प्रयोग, उत्साह-भावना और संघर्ष-रत जीवन के एक विशेष पहलू और कार्य-क्षमता के सहज ही दर्शन होते हैं जो अन्य किसी प्रकार की रचनाओं में प्रायः नहीं पाए जाते। समग्र रूप में ऐसे काव्य की गणना चारण शैली के अन्तर्गत है। इस शैली का साहित्य चारण कुलोत्पन्न कवियों द्वारा ही नहीं अपितु अन्य जातियों के कवियों द्वारा भी रचा गया है। यह प्रधानतः दो प्रकार का है :—

१-ऐतिहासिक, वीर रसात्मक और

२-पौराणिक-धार्मिक। दोनों ही प्रकार की रचनाएँ प्रबन्ध और मुक्तक रूपों में हुई हैं।

पहली श्रेणी की काव्य-धारा इतिहास और वीर रस के दो कगारों के बीच प्रधानतः प्रवाहित हुई है। इसमें कहीं इतिहास प्रधान है, कहीं वीर रस और कहीं दोनों समान हैं। इतिहास और वीरता की परिधि में आने वाले और इनसे किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध उपादान इस धारा के प्रमुख आधार हैं। चार प्रकार के वीर-दान, दया, धर्म और युद्ध में, अंतिम का अंकन मुख्य है। इन रचनाओं में इतिहास का भी रस है और काव्य का भी। काव्योचित कल्पना इनमें है किन्तु वास्तविक जीवन-घटनाओं तथा इतिहास के तथ्यों और विवरणों की उपेक्षा कदापि नहीं है। चरित नायक के गुण, कार्य, वर्णन के साथ उसकी दुर्बलताओं, व्यक्तित्व के अनमिल स्वरों और स्खलन की न तो जान-बूझ कर उपेक्षा की गई है और न ही किसी प्रकार की लीपा-पोती करने का प्रयास है। दुखद और विषम परिस्थितियों का भी चित्रण उसी सहज भाव किया गया है। रणमल्ल छन्द, वीरमायण, कान्हड़दे-प्रबन्ध, अचलदास खीची री वचनिका, राव रिणमल रो रूपक आदि राजस्थ

की ऐसी प्रारम्भिक प्रबन्धात्मक रचनाएँ हैं। इस कोटि की मुक्तक रचनाएँ तो बहुत ही लिखी गई हैं। इस सम्बन्ध मे खिड़िया चानण, सिढायच चौभुजा आदि कवियो का नामोल्लेख किया जा सकता है। ऐसी रचनाओ की सख्या अपरिमेय है जिनकी कतिपय प्रमुख विशेषताओ का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है —

१–घटना या तथ्य–विशेष पर प्रकाश डालना,
२–प्रतिबोध कराना,
३–उत्साह–वृद्धि करते हुए प्रेरणा देना,
४–यथातथ्य या समयोचित वर्णन द्वारा उचित मार्ग–निर्देश का प्रयास करना,
५–किसी सत्य या तथ्य का स्पष्ट रूप से उद्घाटन करना,
६–"साख री कविता" के रूप मे किसी घटना, व्यक्ति, वर्णन, या स्मृति को सुरक्षित रखना तथा
७–"मरसियो" द्वारा भावोद्गार प्रकट करना आदि।

ध्यातव्य है कि ऐसी रचनाओं का मुख्य आधार और प्रेरणा स्रोत राजपूत सस्कृति है और मध्ययुगीन राजपूत-जीवन इनका केन्द्र बिन्दु है।

ऐसी रचनाओ वीर रस और इतिहास दोना का रसास्वादन होना इनकी विशेषता है। इसका कारण उसके रचयिताओ का आत्म–साक्ष्य और अनुभव का होना है। वीर रस का जीवन्त और उत्कृष्ट कोटि का चित्रण इनमे किया गया है जो अन्य भाषाओ के साहित्यो मे दुर्लभ है। शृंगार आदि शेष रसो की कविताओ की रचना के लिए तो अध्ययन, अनुभूति, सस्कार आदि की आवश्यकता है किन्तु वीर रस की श्रेष्ठ रचना के लिए इनके अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव का होना परमावश्यक है। उसके लिए युद्ध और युद्ध से सम्बन्धित अनेक प्रकार की सामग्री, जैसे व्यूह रचना, हथियार, उनका उपयोग, प्रहार, युद्ध-वाहन, रण कौशल, युद्ध के सामूहिक प्रभाव आदि अनेक बातो का व्यावहारिक रूप से सूक्ष्म ज्ञान होना पहली शर्त है। बिना ऐसे ज्ञान के केवल कल्पना के सहारे वीर रसात्मक काव्य–सृजन के प्रति न्याय नहीं किया जा सकता, वह मात्र–दुस्साहस का कार्य होगा। यहा के चारण और अन्य कवि न केवल युद्ध मे वीरो को प्रोत्साहित ही करते थे प्रत्युत स्वय भी सैनिक बनकर उतरते थे। कवि अपनी कथनी को करके भी दिखाते थे। यही कारण है कि ऐसी रचनाओं मे वीर रस और इतिहास दोनो बोलते प्रतीत होते हैं।

यहा यह उल्लेखनीय है कि १६ वी शताब्दी के और उसके पश्चात भी चारण शैली से प्रभावित पिंगल मे लिखे गए ऐतिहासिक काव्यो मे राजस्थानी के ऐसे काव्यों की उल्लिखित विशेषताएँ इस रूप में नही मिलती। पिंगल काव्यो मे वीर रस का वर्णन तो बहुत उत्तम है किन्तु इतिहास पक्ष कमजोर । इतिहास प्रसिद्ध नायक, घटनाएँ और कथानक सभावनाओ द्वारा परिवर्तित और कल्पना के रग में रगे जाकर अपना वास्तविक ऐतिहासिक महत्त्व और मूल्य लगभग खो बैठे हैं। काव्य–रस का आनन्द तो उनसे लिया जा सकता है, किन्तु इतिहास बिलकुल धूमिल है। राजस्थान म चारण शैली के समानान्तर चलने वाली

यह परम्परा उससे साम्य रखती हुई भी पर्याप्त मात्रा में भिन्न है। पृथ्वीराज रासो ऐसा ही एक चरित काव्य है।

चारण शैली की पौराणिक-धार्मिक रचनाएँ भी काफी संख्या में १६वीं शताब्दी पूर्व रची गई होंगी किन्तु वर्तमान में "सप्तसती रा छन्द" जैसी एकाव कृतियों को छोड़कर शेष उपलब्ध नहीं हैं। विष्णोई साहित्येतर ऐसी रचनाओं की परम्परा इस शताब्दी के अन्तिम चरण और १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से मिलती है, जिसकी भूमि प्रदान करने में विष्णोई कवियों का पर्याप्त हाथ है।

कालान्तर में चारण शैली की कुछ ऐतिहासिक वीर रसात्मक-रचनाएँ भी वर्णन, वर्णन-सामग्री, शैली और भाषा आदि की दृष्टि से जैन रचनाओं की भांति गतानुगत और रूढ़ि-बद्ध होने लगीं किन्तु इनका रूप सर्वथा भिन्न रहा। भिन्नता का मुख्य कारण था-वर्ण्य-विषयों की भिन्नता का होना। काल-क्रमानुसार नई-नई ऐतिहासिक घटना, नायक और विषय आदि को आधार बनाने से ऐसे काव्यों में परम्परागत रूढ़ियों के बावजूद भी एक ताजगी और सहज प्रसन्न जीवन का स्पंदन बना रहा। परवर्ती जैन रचनाओं की तुलना में इस शैली की रचनाओं की यह विशेषता उल्लेखनीय है।

(३) लौकिक शैली :—इस शैली के अन्तर्गत वे ऐहिक, लोक प्रसिद्ध और लौकिक रस-परक रचनाएँ हैं जिनकी गणना किसी अन्य शैली के अन्तर्गत न की जा सके तथा जिनके ज्ञात या अज्ञात रचयिता का व्यक्तित्व, रचना की लोक प्रसिद्धि के कारण सर्वथा लोकीकृत होकर तिरोहित हो गया हो अथवा कृति में ही समाहित होकर रह गया हो। ऐसे काव्यों की भाषा मूलतः बोलचाल की होती है तथा स्थान और समयानुसार परिवर्तित होती रहती हैं। यह परिवर्तन रूढ़, लुप्त और अप्रचलित प्रयोगों और शब्दों के क्षेत्र में विशेष होता है। इनका विषय-निरूपण सामान्य लोक-मनोवृत्ति के अनुसार किया जाता है तथा छन्दोविधान जन साधारण में प्रचलित रूप के आधार पर होता है। इनमें लोक-रुचि के अनुसार मूल में प्रक्षेप-विक्षेप प्रक्रिया भी गतिशील रहती है। कृति-विशेष के द्वारा एक आधार मिलने पर समय-समय में लोक स्वतः ही उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखने लगता है। इस कोटि की रचनाओं की एक मात्र कसौटी लोक-प्रसिद्धि है, विषय-वस्तु चाहे जैसी और जिस किसी क्षेत्र से ली गई हो। १६ वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में रचित ढोला-मारू काव्य एक उत्कृष्ट भाव प्रधान रचना है और संवत् १५४५ के आसपास रचित पदम भगत का "हरजी रो व्यांवलो" का आधार पौराणिक कथा है। दोनों की ही गणना इसी शैली के अन्तर्गत है। समर्थ कवि ऐसी कृतियों के माध्यम से लोक-रुचि का परिष्कार भी करते हैं। "व्यांवलो" इसका ज्वलंत उदाहरण है।

इस श्रेणी की रचनाएँ दो क्षेत्रों से अधिक ली गई हैं:-प्रेम-शृंगार, तथा २-अध्यात्म। पहले का आधार अनेक लोक-प्रचलित प्रेम कथाएँ तथा दूसरे का पौराणिक कथाएँ हैं जो मुख्यतः राम, कृष्ण और प्रह्लाद चरित से सम्बद्ध रही हैं। पिछली कोटि की रचनाओं में विष्णोई कवियों की देन चिर स्मरणीय है। इस शैली की रचनाएँ भी प्रबन्ध

और मुक्तक-दो रूपों में मिलती है। इनमें जन साधारण के दुख-सुख मय जीवन का अनेकविध चित्रण और लोक-संस्कृति का सही निदर्शन मिलता है।

सिद्ध-काव्यधारा —इस प्रकार, लगभग संवत् १५०० तक राजस्थानी काव्य तीन प्रमुख धाराओं में प्रवाहित हो रहा था। १६ वीं शताब्दी के आरम्भ से एक और प्रबल और प्रांजल धारा इस प्रवाह में मिली। इसका नाम सिद्ध-काव्य धारा दिया जा सकता है, जिसके मूल उत्स जाम्भोजी थे। इस धारा के कारण राजस्थानी साहित्य के इतिहास में भाषा और रूपात्मक तत्त्वों के अतिरिक्त, प्रवृत्त्यात्मक दृष्टि से एक नया मोड़ आता है। इस काव्य ने इन दृष्टियों से न केवल नए आयाम ही प्रस्तुत किए हैं प्रत्युत प्रचलित काव्य धारा को प्रभावित करने के साथ नई रचनाओं के लिए भाव-भूमि और विशेष वातावरण भी तैयार किया है। इसमें अनेक विस्मृत और लुप्त कड़ियों का संधान मिलता है।

नामकरण :-सिद्ध-काव्य नामकरण के मूल में तीन प्रधान कारण हैं —

१-अध्यात्म-क्षेत्र और मोक्ष मार्ग के सम्बन्ध में सगुण-निर्गुण का विभाजन उचित प्रतीत नहीं होता। इस क्षेत्र में कवि-साधक को जिस किसी माध्यम से, किसी प्रकार की, किसी परिमाण में, यदि सिद्धि की उपलब्धि हो जाय, अथवा वह इस हेतु प्रेरित हो, तो उससे सम्बन्धित अभिव्यक्ति सिद्ध काव्य के अन्तर्गत मानी जानी चाहिए। चाहे वह प्रयास और सिद्धि सगुणोपासना, निर्गुणोपासना, समन्वित रूप से उभयोपासना आदि किसी प्रकार से ही क्यों न प्राप्त हुई हो। जो कोई इस सिद्धि हेतु प्रयास करता, या जिस किसी को यह किसी रूप और मात्रा में प्राप्त होती है, वह सिद्ध है। एतद्-विषयक समस्त प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति का सामूहिक नाम सिद्ध काव्य है। मुख्य बात सिद्धि की है, सगुण निर्गुण आदि की नहीं।

२-विश्नोई काव्य की गणना अधुना स्वीकृत सगुण, निर्गुण या योग काव्य धाराओं के अन्तर्गत पृथक् रूप से नहीं की जा सकती। सम्प्रदाय में मान्य विचार-धारा इस काव्य की पीठिका है। सम्प्रदाय में दसावतार तो मान्य है किन्तु मूर्तिपूजा का कोई विधान नहीं है। उपासना विष्णु की की जाती है जो निर्गुण ब्रह्म का पर्याय है। नाम-स्मरण इसका श्रेष्ठ उपाय है किन्तु प्रतिदिन घी से हवन करना एक परमावश्यक कृत्य है। भक्ति का स्वर मूलस्वर नहीं है परन्तु नाथ सम्प्रदाय की भांति हठयोग-साधना पर बल नहीं है। नैतिक स्वर इसमें भी मुखर है, पर नाथों की भांति न तो वर्ण-व्यवस्था पर आघात किया गया है और न ही गृहस्थ के प्रति उपेक्षा और अनादर का भाव है। आचार-विचार प्रधान कर्ममय जीवन इसकी आधार-भूमि है। व्यक्तिनिष्ठ-साधना के साथ लोक-संग्रह का भाव रखते हुए, गृहस्थ जीवन में ही शुद्धाचरण और कर्म करते हुए ज्ञानार्जन और मोक्ष प्राप्ति इसका चरम लक्ष्य है। केवल विचारधारा और साधना के क्षेत्र में ही नहीं, इसके काव्य-प्रयासों का भी अपना वैशिष्ट्य है। इन विशेषताओं से सम्पन्न जीवन दृष्टि और भाव भूमि पर निर्मित इस काव्य की संज्ञा सिद्ध काव्य है क्योंकि इसकी गणना सगुण, निर्गुण-भक्ति या योग मार्ग में से किसी एक, दो या सभी के अन्तर्गत पृथक् रूप से नहीं की जा सकती।

इसका अपना पृथक् अस्तित्व है। केवल विष्णोई काव्य ही नहीं, जसनाथी काव्य भी इसी श्रेणी का काव्य है। दोनों सम्प्रदायों की रचनाओं की गणना "सिद्ध काव्य" के अन्तर्गत है। प्रस्तुत सिद्ध काव्य को बौद्ध सिद्धाचार्यो के "सिद्ध साहित्य" से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित करने की भूल नहीं होनी चाहिए। उस "सिद्ध साहित्य" से तात्पर्य "वज्रयानी परम्परा के उन सिद्धों के साहित्य से है जो अपभ्रंश दोहों तथा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है और जिसमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धान्तों को मान्यता दी गई है[1]"। इसमें का "काव्य" शब्द भी उसमें के "साहित्य" शब्द से पार्थक्य द्योतित करता है।

३–जाम्भोजी के अतिरिक्त शेष सभी विष्णोई और जसनाथी साधु-संत और साधक तथा स्वयं जसनाथ सिद्ध कहे जाते हैं। इन सिद्धों द्वारा रचित काव्य सिद्धकाव्य है।

सिद्ध काव्यधारा : महत्त्व :—

राजस्थानी साहित्य के इतिहास के संदर्भ में विष्णोई काव्य धारा (सिद्ध काव्य धारा) का महत्त्व तीन कारणों से विशेष है :-

१–इसका आरम्भ, काल- परिवर्तन की सूचना देता है। संवत् १५०० से राजस्थानी साहित्य का विकसित काल आरम्भ होता है जिसके मूल में अन्य कारणों के अतिरिक्त इस काव्यधारा का प्रादुर्भाव प्रमुख है[2]।

२–यह उल्लिखित शेष काव्य-धाराओं के समानान्तर चलने वाली धर्माश्रय और लोकाश्रय में पली काव्य-धारा है, जो शेष की पूरक और समग्र साहित्य की महत्त्वपूर्ण थाती है। इसमें पूर्व प्रवहमान प्रवृत्तियों की भी कुछ न कुछ विशेषताएं लक्षित होती हैं जो स्वाभाविक है।

३–स्वतंत्र रूप से भी इस काव्यधारा का अपना वैशिष्ट्य और महत्त्व है।

देन :—

अनेक क्षेत्रों में इसकी महत्त्वपूर्ण देन है, जिसका नामोल्लेख नीचे किया जाता है:–

१–साहित्य के क्षेत्र में।
२–भाषा के क्षेत्र में।
३–धार्मिक विचारधारा और सम्प्रदायों के क्षेत्र में।
४–इतिहास के क्षेत्र में तथा
५–संस्कृति और समाज के क्षेत्र में।

आगे विभिन्न प्रकार की इसकी प्रमुख देनों का संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है।

१–साहित्य के क्षेत्र में :– इस क्षेत्र में इसको दो प्रकार से देखा जा सकता है :-

(क) काव्यरूप और शैली की दृष्टि से तथा
(ख) प्रवृत्ति और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से।

(१) यह साहित्य निम्नलिखित प्रमुख काव्य-रूपों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है:–

१–डा० धर्मवीर भारती : सिद्ध साहित्य, पृष्ठ १९, किताब महल इलाहाबाद।
२–डा० हीरालाल माहेश्वरी : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ३०–३१, कलकत्ता।

१-साखी . सिद्ध कवियों की अपने सस्कारी रूप मे आत्माभिव्यक्ति, सबदवाणी के किसी कथ्य या वस्तु तथा घटना-विशेष के साक्ष्य-स्वरूप विभिन्न प्रचलित देशी राग-रागिनियों मे गेय, कविताओं का नाम "साखी" है। रूप की दृष्टि से साखियाँ दो प्रकार की हैं- कथा की और छदा की (विशेष द्रष्टव्य-विश्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय म एतद्-विषयक उल्लेख)। साखियाँ "शिष्य" कवियो की ही रचनाएँ हैं, "गुरु" जाम्भोजी की नही। "साखी" शब्द का प्रयोग दोहा-सोरठा अर्थ मे भी किया गया है किन्तु सम्प्रदाय मे केवल पहला अर्थ ही ग्राह्य है। इस प्रकार, विश्णोई साखी प्रचलित अर्थ[1] से कुछ भिन्न भाव का द्योतन करती है।

२-हरजस : इनका प्रमुख विषय स्वानुभूति, आत्म-निवेदन, अध्यात्म और हरिगुण-गान है। साखियो की भाति ये भी देशी राग-रागिनियो मे गेय हैं।

३-भजन : इनमे अध्यात्म और हरि-महिमा वर्णन के अतिरिक्त अन्य अनेक इतर विषयो का भी वर्णन रहता है। ये प्राय लोक प्रचलित तर्जों पर लिखे गये हैं।

४-गीत (डिंगल गीत) : गीत राजस्थानी साहित्य की विशिष्ट देन है जिसका जोड अन्य भारतीय आर्य-भाषाओं- हिन्दी, गुजराती, सिन्धी, पजाबी आदि मे नही मिलता। गीत एक प्रकार की छोटी सी रचना है, जिसमे प्राय: ४-५ दोहले होते हैं। दो से कम दोहले किसी गीत मे नही मिलते। ये गीत गाने के लिए नहीं होते। एक लय-विशेष से ऊँचे स्वर मे इनका पाठ किया जाता है। गीत का गेय भी होना अपवाद स्वरूप ही है किन्तु यह उसकी व्यापक प्रसिद्धि का परिचायक है। कतिपय विश्णोई कवियों के गीत विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों मे प्रचलित राग-रागिनियो मे गेय बताए गए हैं जो उनकी लोक प्रियता का प्रमाण है।

५-छन्द : सामान्यत: अक्षरो की सख्या एव क्रम, मात्रा गणना तथा यति, गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमो से नियोजित पद्य रचना छन्द कहलाती है[2] और अपने मूल रूप मे छन्द "वस्तुत: किन्ही छोटी बडी ध्वनियो के व्यवस्थित सामजस्य का ही नाम है"[3] किन्तु कालान्तर मे देवी, देवता या नायक के गुण-गान अथवा किसी नायक के चरित-वर्णन वाली कविता भी छन्द कही जाने लगी। ऐसी कविता कभी एक ही छन्द मे और कभी-कभी भिन्न भिन्न छन्द-समुच्चय मे होती है। राजस्थानी मे दोनो ही प्रकार के अनेक चरित-काव्यो तथा प्रशस्ति काव्यो की "छन्द" नाम से रचना हुई है। विश्णोई कवियो की "छन्द" रचनाएँ प्रशस्ति काव्य हैं।

६-विभिन्न छन्द परक : इनमे दोहा-सोरठा, कवित्त (छप्पय) सवैया, चद्रायण, रोमकद, कुंडली और नीसाणी प्रमुख हैं।

१-द्रष्टव्य-(क) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०५।
(ख) श्री परशुराम चतुर्वेदी . कबीर साहित्य की परख, पृष्ठ १८४-१८६।
२-हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ २६०, सवत् २०१५, इलाहाबाद।
३-श्री रघुनन्दन शास्त्री . हिन्दी छन्द प्रकाश, पृष्ठ ४।

७–स्तुति, स्तोत्र, आरती : स्तुति काव्य छोटे और बड़े दो प्रकार के हैं। साहबरामजी कृत महामाया की स्तुति ऐसा बड़ा काव्य है।

८–बारहमासा।

९–माहात्म्य, महिमा।

१०–व्यांवलो (विवाहलो)। इसमें विवाह का वर्णन प्रधान होता है।

११–मंगल। विवाह में गाए जाने वाले गीतों को धवल या मंगल कहा जाता है और चूंकि विवाह स्वयं एक मांगलिक कार्य माना जाता है, अतः ऐसे काव्यों का नाम मंगल काव्य भी है।

१२–बावनी, बारहखड़ी तथा छत्तीसी : तीनों की गणना "कक्को–काव्य" के अन्तर्गत हैं, जिसका तात्पर्य है– क से आरम्भ होने वाली हिन्दी वर्णमाला। इस काव्य-रचना में नियम यह है कि प्रत्येक पंक्ति अथवा छन्द का पहला अक्षर वर्णमाला का क्रमिक अक्षर होता है। रचना-विशेष में प्रयुक्त वर्णमाला में अक्षरों की संख्या के आधार पर "बावनी" "छत्तीसी" आदि नाम दिए जाते हैं। बावन अक्षरों का दूसरा नाम मातृका है। बारह-खड़ी व्यंजनों से सम्बन्धित है और इस कारण ऐसी रचनाओं की यह संज्ञा है। इस सामान्य रूप के अतिरिक्त ऐसी रचनाओं के नाम– कवि, छन्द, सम्बोधित पात्र, वर्ण्य-विषय के आधार आदि पर भी दिए जाते हैं। ऐसी रचनाएँ मुक्तक होती हैं[1]।

१३–कथा काव्य।

१४–चरित काव्य।

इन दोनों प्रकार के काव्यों में किंचित् अन्तर है। पहले में प्रधानता कथा की और दूसरे में व्यक्ति के चरित्र को दी जाती है। कथा काव्य में कथा–विशेष की स्वतंत्र महत्ता और उसमें पूर्वापर सम्बन्ध रहता है जबकि चरित काव्य में कथा या कथाओं का उपयोग नायक के चरित दिग्दर्शन के लिए प्रधानतः होता है। अपभ्रंश कवि तो कदाचित् चरित और कथा में भेद नहीं करते थे और विद्वानों के अनुसार वास्तविक भेद है भी नहीं[2]। किन्तु विष्णोई काव्यों में तो उपर्युक्त भेद लक्षित होता है। उदाहरणार्थ "कथा चित्तौड़ की" (केसोजी कृत) कथा काव्य है, जिसमें जाम्भोजी का चरित भी आंशिक रूप में वर्णित है जब कि "कथा औतारपात" (वील्होजी कृत) एक चरित–काव्य है जिसमें अनेक घटनाओं के माध्यम से जाम्भोजी का बाल–चरित चित्रित किया गया है।

१५–आख्यान : प्राचीन कथानक, वृतान्त या किसी गत घटना के वर्णन को आख्यान कहते हैं। ऐसे काव्य में कथा–चरित काव्य, संगीत और नाटक, तीनों की विद्यमानता एवं उनकी कलात्मक और सुरुचिपूर्ण नियोजना होती है। आख्यान काव्य गुजराती और राजस्थानी की विशेष देन है। हिन्दू समाज की सर्वाधिक सांस्कृतिक सेवा आख्यान काव्यों ने की है। आख्यान काव्य के मुख्य उपादान इस प्रकार हैं :—

१–शोध–पत्रिका, उदयपुर, वर्ष १८, अंक १, सन् १९६७ में लेखक का निबन्ध।
२–डा० देवेन्द्रकुमार जैन : अपभ्रंश भाषा और साहित्य, पृष्ठ ३१७, सन् १९६५।

१-कथावस्तु प्रधानतः पुराण अथवा इतिहास से ली जाती है जो सबकी जानी-पहचानी होती है।
२-नाटकीय तत्त्वों का कुशलता से समावेश।
३-लोक-प्रचलित देशी राग-रागिनियों में गेय होना।
४-संवाद और वर्णन में, संवादों की प्रधानता तथा दोनों का छोटा-छोटा होना।
५-प्रमुखतः सुनने के लिए होना।
६-लोक-प्रियता और लोक-रंजन प्रधान गुण होता है। इसी के सहारे प्रच्छन्न रूप से धार्मिक संस्कार, सुरुचि-निर्माण, उदात्त-गुण ग्रहण और अध्यात्म-प्रेरणा दी जाती है।
७-भाषा अनिवार्यतः बोलचाल की होती है।
८-केवल विद्वानों के लिए नहीं प्रमुखतः जनसाधारण के लिए लिखा जाता है।

१६-चेतन, चितावणी (प्रतिबोध परक)।

१७-संवाद।

१८-रासो। रासो काव्य प्रमुखतः चरित काव्य है। रासो का प्रचलित अर्थ झगड़ा या कलह है। राजस्थानी रासो काव्यों में किसी न किसी रूप में कलह, युद्ध का वर्णन अनिवार्यतः रहता है। सुरजनजी ने "रामरासो" में राम और रावण में हुए युद्ध का वर्णन किया है (द्रष्टव्य-सुरजनजी, कवि संख्या ६६)।

१९-तिलक : तिलक संज्ञक काव्य में प्रधानतः दो परस्पर विरोधी, त्याज्य और असत् तथा ग्रहणीय और सत् विषयों एवम् तत्त्वों में किसी न किसी प्रकार से ग्राह्य और सत् तत्त्व की महत्ता और उत्कृष्टता द्योतित करते हुए उनके पालन की प्रेरणा दी जाती है।

२०-वरां (आचार-विचार)।

२१-लोक-प्रचलित विशिष्ट गीत, नृत्य, राग और 'देशी' (ढाल) आदि के नाम परक, जैसे —

क-झूमखो,	ख-रंगीलो,	ग-मधुकर,
घ-लूर,	ङ-जखड़ी,	च-आवेलो (आंबो),
छ-हिंडोलणो,	ज-धून,	झ-लावनी आदि।

२२-लघु कथा परक अथवा मुक्तक रचनाएं : इनका नामकरण निम्नलिखित प्रकार से किया गया मिलता है —

क-घटनास्थल के नाम पर : (गोकलजी कृत खेजड़ली की साखी, वील्होजी कृत तिलासणी की साखी)।

ख-व्यक्ति के नाम पर : (हरिराम कृत गोपीचन्द की साखी, आनन्द कृत गोपीचन्द के कवित्त)।

ग-वर्ण्य-विषय के नाम पर ('खड़ाणो'- बलिदान की साखियां)।

२३-सार : ऐसे काव्य विषय, कथा, घटना या वर्णन विशेष के अथवा किसी के जीवन चरित के सार स्वरूप होते हैं। साहबरामजी के सार संज्ञक तीन काव्य हैं : -सार शब्द गुंजार, सार बत्तीसी और जम्भसार। इनमें प्रथम दो तो विषय-विशेष के सार रूप हैं, किन्तु तीसरा नहीं। जम्भसार वस्तुतः चरित महा प्रबन्ध है। इसके 'सार' नाम रखने का औचित्य सम्प्रदाय-प्रवर्तक के जीवन चरित से संबंधित अनेकशः घटनाओं, कथाओं और वार्तों का सार संग्रह करके इस रूप में नियोजित करने के कारण है।

२४-लक्खण (लक्षण)।

२५-अंग : इसका तात्पर्य प्रकरण से है, जिसमें विषय-विशेष पर कविता की जाती है।

२६-परची : (सिद्धि-परिचय और प्रतिबोध परक कविता)।

२७-परसंग (प्रसंग) : विभिन्न कथा और घटना-प्रसंगों से सम्बन्धित।

२८-दृष्टिकूट, गूढ़ार्थ।

२९-परवाना : इसमें किसी कार्य संबंधी आज्ञा, आदेश रहता है। राज्य-परवानों के आधार पर यह नाम दिया गया प्रतीत होता है। साहबरामजी रचित "सतलोक पहुंचने का परवाना" इस कोटि की रचना है।

३०-संख्या परक काव्य :—

क-अष्टक,   ख-बत्तीसी,   ग-चालीसी।

इनमें प्रशस्ति और वर्णन प्रमुख होता है।

३१-माळ (माला)।

३२-परगास (प्रकाश) : राजस्थानी में ऐसे काव्य प्रबन्ध और मुक्तक दो प्रकार के हैं। प्रबन्ध काव्य तो चरित काव्य ही हैं- जैसे, कविया करणीदान कृत सूरजप्रकास। ऐसी मुक्तक कविता में वर्ण्य-विषय या तत्त्व पर अनेकविध प्रकाश डालने का यत्न किया जाता है। ऊेल्हजी कृत साखी 'बुध परगास' ऐसी मुक्तक रचना है।

३३-चौजुगी (अपर नाम-विवाह पाटी) : विष्णोई-समाज में विवाह के अवसर पर "चौजुगी" पढ़ने की प्रथा है। इसमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि-चारों युगों से सम्बन्धित चार विवाहों-क्रमशः शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण-रुक्मिणी और कल्कि-लक्ष्मी या पृथ्वी का वर्णन किया जाता है।

३४-झगड़ो : ये रासो काव्य की कोटि के ही हैं। पोहकरदास कृत नुगरी-सुगरी को झगड़ो ऐसी रचना है।

३५-रूपक या प्रतीक काव्य : (सुरजनजी कृत)। इनमें कुछ निश्चित अच्छी-बुरी मनोवृत्तियों को विभिन्न पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सभी पात्र आद्योपान्त मनोवृत्तियों के प्रतीक रूप का निर्वाह करते हैं। अन्ततोगत्वा बुरे मनोभावों और असत तत्त्वों पर अच्छे मनोभावों और सत् तत्त्वों की विजय दिखाई जाती है, जिससे उदात्त गुण-ग्रहण की प्रेरणा मिलती है। आकार और वस्तु की दृष्टि से ऐसे काव्य दो प्रकार के हैं :-

क-प्रबन्धाभास बड़े रूपक काव्य और (ख) लघुरूपक काव्य (दीन महमद, आछरे, मिठुजी तथा अन्य कवियो के हरजस आदि)।

दोनो की ही परम्परा पुरानी है[1]। पहले प्रकार की रचना पन्द्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के आरम्भ मे राजशेखर सूरि रचित त्रिभुवनदीप प्रबन्ध[2] (अपर नाम प्रबोध-चिंतामणि[3] या परमहंस प्रबन्ध[4] आदि) है। दूसरे प्रकार के अन्तर्गत जैन कवियों के 'विवाहलो' तथा अन्य अनेक मुक्तक गेय रचनाओं की गणना है। विष्णोई कवियो मे सुरजनजी कृत "ग्यान महातम" और "ग्यान तिलक" तथा सेवादास रचित "पिसण-सिंघार", प्रबन्धाभास बड़े रूपक काव्य हैं। लघु रूपक कविताएँ तो अनेक हुजूरी और परवर्ती कवियो ने लिखी ही हैं।

३६-गुण : (सुरजनजी कृत कथा हरिगुण)।

गद्य : विष्णोई कवियों ने गद्य मे रचनाएँ बहुत कम की हैं, तथापि जो भी की हैं, उनमे राजस्थानी गद्य की किंचित् बानगी अवश्य मिलती है। ये रचनाएँ इन रूपो मे हैं —

टीका, पत्री, परसग (प्रसग, सबदवाणी के), कथा, महातम और 'साका'।

२-प्रवृत्ति और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से यह साहित्य इस प्रकार है

१-जाम्भाणी रचनाएँ ये दो प्रकार की हैं :—क-जाम्भोजी विषयक और
ख-सम्प्रदाय विषयक।

क-जाम्भोजी विषयक रचनाओं मे कई (अ) उनके जीवन-चरित से और कई (आ) उनकी महिमा-वर्णन से सम्बन्धित हैं। जीवन चरित विषयक रचनाएँ भी दो प्रकार की हैं, एक तो आंशिक रूप से सम्बन्धित और दूसरे पूर्ण रूप से सम्बन्धित। दूसरे प्रकार के अन्तर्गत एक श्रेणी की रचनाएँ तो वे हैं जिनमे मुख्य कार्यों, घटनाओ आदि का थोडा सा वर्णन अथवा नामोल्लेख मात्र किया गया है, जैसे कथा परसिध, कथा औतार की आदि, दूसरी श्रेणी की रचनाओ मे इनका विस्तृत रूप मे वर्णन है, जैसे जम्भसार मे।

जम्भ-महिमा विषयक रचनाओ मे एक तो वे हैं, जिनमे उनकी महिमा, गुण, आने का कारण, कार्य, प्रभाव, विशेषता, देन आदि का वर्णन है और दूसरी वे जिनमे उनके प्रति आत्म-निवेदन, भावोद्गार अथवा स्तुति या आरती की गई है।

ख-सम्प्रदाय विषयक रचनाएँ भी दो प्रकार की हैं —एक वे जिनमे विशिष्ट स्थान, बलिदान, कार्य, घटना, कथा आदि का उल्लेख या वर्णन किया गया है तथा दूसरी वे जिनमे तेतीस कोटि जीवों के उद्धार तथा चारो युगो मे विष्णु-अवतार और आगमन

१-ऐसी अपभ्रंश कृतियो के लिए द्रष्टव्य-हरिवंश कोछड ' अपभ्रंश साहित्य, पृष्ठ ३३४-३४०।

२-म० र० मजुमदार : गुजराती साहित्यना स्वरूपो (पद्य विभाग), पृष्ठ ९८-१०० तथा ४०३-४०४।

३-के० ह० ध्रुव पदरमा शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य मे इस नाम से प्रकाशित, पृष्ठ ९६-१४४।

४-मो० द० देसाई जैन गुर्जर कविओ, भाग-१, पृष्ठ २४।

विषयक साम्प्रदायिक मान्यता आदि का वर्णन किया गया है। वील्होजी कृत कथा धड़ाबन्ध, केसोजी कृत कथा विगतावली आदि ऐसी रचनाएँ हैं।

२-पौराणिक रचनाएँ : ऐसी रचनाएँ निम्नलिखित विषयों पर हैं :—

क-रामचरित (मेहोजी कृत रामायण, सुरजनजी कृत रामरासो तथा मुक्तक रचनाएँ)।

ख-कृष्ण चरित (पदम कृत व्यांवलो, रामलला कृत रुक्मणी मंगल तथा मुक्तक रचनाएँ)।

ग-पाण्डव विषयक (केसोजी कृत कथा वहलोवनी, कथा सुरगारोहणी, कथा भींव दुसासणी तथा मुक्तक रचनाएँ)।

घ-अभिमन्यु विषयक (डेल्हजी कृत कथा अहमंनी)।

ङ-उषा-अनिरुद्ध (सुरजनजी कृत उषा पुराण)।

च-प्रह्लाद चरित (केसोजी, ऊदोजी अड़ींग, हरचन्दजी ढुकिया, तथा साहबरामजी के एतद्विषक काव्य तथा मुक्तक रचनाएँ)।

छ-गजेन्द्र मोक्ष (सुरजनजी कृत गज मोख)।

ज-दसावतार (अनेक रचनाएँ)।

झ-सृष्टिक्रम (सुरजनजी कृत भोगळ पुराण)।

ञ-व्रत कथा (मयाराम कृत अमावस्या री कथा)।

ट-इनके अतिरिक्त अनेक पौराणिक पात्रों, घटनाओं आदि पर प्रासंगिक रचनाएँ।

३-धर्म, ज्ञान, नीति और लोकोत्थान विषयक रचनाएँ :

ऐसी कृतियाँ—
धर्म, धर्म-निरूपण, धर्माचरण,
ज्ञान, ज्ञानाचरण,
करणीय, अकरणीय कृत्य, उचित-अनुचित व्यवहार,
उद्बोधन, प्रतिबोध और चेतावनी आदि से सम्बन्धित हैं।

वील्होजी कृत कथा ग्यानचरी, सुरजनजी कृत कथा चेतन, कथा चितावणी, कथा धरमचरी, ग्यान महातम, ग्यान तिलक; ऊदोजी नैण कृत अभ चितावणी तथा अन्य अनेक मुक्तक रचनाएँ इस प्रकार की हैं।

४-अध्यात्म परक रचनाएँ : इनमें इन विषयों का वर्णन है :—

ब्रह्म, विष्णु, हरि, हरि-महिमा और गुणगान; जीव, शरीर, मन, इन्द्रियाँ, माया, सृष्टि, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त, स्वर्ग-नरक, मुक्ति, ज्ञान, योग, भक्ति, प्रेम, सदगुरु, साधु-सत्संग, आत्मानुशासन, उसके मुख्य नियम, आचार-विचार, पाखण्ड, आत्मनिवेदन, आत्मानुभूति, सिद्धि, साधना, और स्वानुभव, हरिरस, भावोद्गार, मोक्षोन्मुखी प्रेरणा आदि।

५-ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक रचनाएँ :

क-गद्य में ('साका' : परमानन्दजी वणियाळ लिखित, सबदवाणी के प्रसंग, चेलोजी की कथा आदि)।

ख-पद्य में जाम्भोजी और सम्प्रदाय विषयक प्रबन्ध और मुक्तक रचनाएँ (द्रष्टव्य ऊपर-१, जाम्भाणी रचनाएँ)। इनमें वीर रसात्मक 'खडाणे की साखियां' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

२-मुक्तक रचनाओं में तदविषयक उल्लेख।

३-'मरसिया' या 'पीछोला' रचनाएँ (अजीत, जाम्भोजी, वील्होजी आदि पर)। मरसिये की मुख्य विशेषताएँ ये हैं[1] —

१-यह किसी की मृत्यु पर कहा जाता है, जिसमें मरने वाले के गुण, प्रमुख कृत्य, उनके प्रभाव, महिमा, विशेषता, सफलता आदि का भावभरा चित्रण होता है।

२-यह चित्रण दिवगत आत्मा के गुण, कार्य और स्वभाव की समग्रता में होता है।

३-यह चित्रण करुण रस-पूरित, प्रेम और श्रद्धा भरे भावों से ओतप्रोत रहता है।

४-इसमें बिछुड़ने वाले के न होने के कारण हार्दिक दुख और वेदना का मार्मिक वर्णन होता है।

५-यह वर्णन व्यक्तिगत होते हुए भी सामूहिक प्रतीत होता है।

६-आडम्बर रहित, आयास हीन, दैनन्दिन व्यवहार की सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है। भावों की प्रधानता होती है जिसमें कथन की सच्चाई और निश्छलता अनिवार्यत निहित रहती है।

७-अन्त में स्वय को किसी न किसी प्रकार से सांत्वना दी जाती है, पर यह बात सभी मरसियों में नहीं पाई जाती।

८-मरसिया किस पर कहा जाय, इसका कोई नियम या बन्धन नहीं है। इसका पूरा रसास्वादन तभी किया जा सकता है, जब उससे सम्बन्धित पूर्ण प्रसग ज्ञात हो।

अर्द्ध-ऐतिहासिक गोपीचन्द, भरथरी, आदि के सम्बन्धित रचनाएँ (कान्हू, चतरदास, आनन्द आदि की रचनाएँ)।

६-लोक-कथा और लोक-जीवन विषयक रचनाएँ :

इसमें लोक-जीवन के विविध पहलुओं और बातों का उल्लेख-चित्रण, मिलता है। यथा—प्रचलित लोक कथाओं के सकेत और उल्लेख,
लोककथा (कथा अघलेखा की),
समाज-चित्रण (स्त्री, सूम, वृद्धावस्था आदि),
सामान्य जन की सुख-सुविधा और कामना,
विरह-वर्णन आदि।

७-लोकभाषा विषयक ऐसी रचनाओं में जन साधारण द्वारा बोलचाल में प्रयुक्त अशुद्ध प्रयोगों के उदाहरण तथा उनके स्थान पर शुद्ध प्रयोग द्वारा सत्य कथन का आग्रह विशेष रूप से किया गया है।

१-विश्वभारती-पत्रिका, शान्तिनिकेतन, खण्ड ८, अंक २, जुलाई-सितम्बर, १९६७ में लेखक का "राजस्थानी साहित्य कतिपय विशेषताएँ" निबन्ध।

वर्गीकरण : बन्ध की दृष्टि से इसका वर्गीकरण मोटे रूप से इस प्रकार किया जा सकता है :—
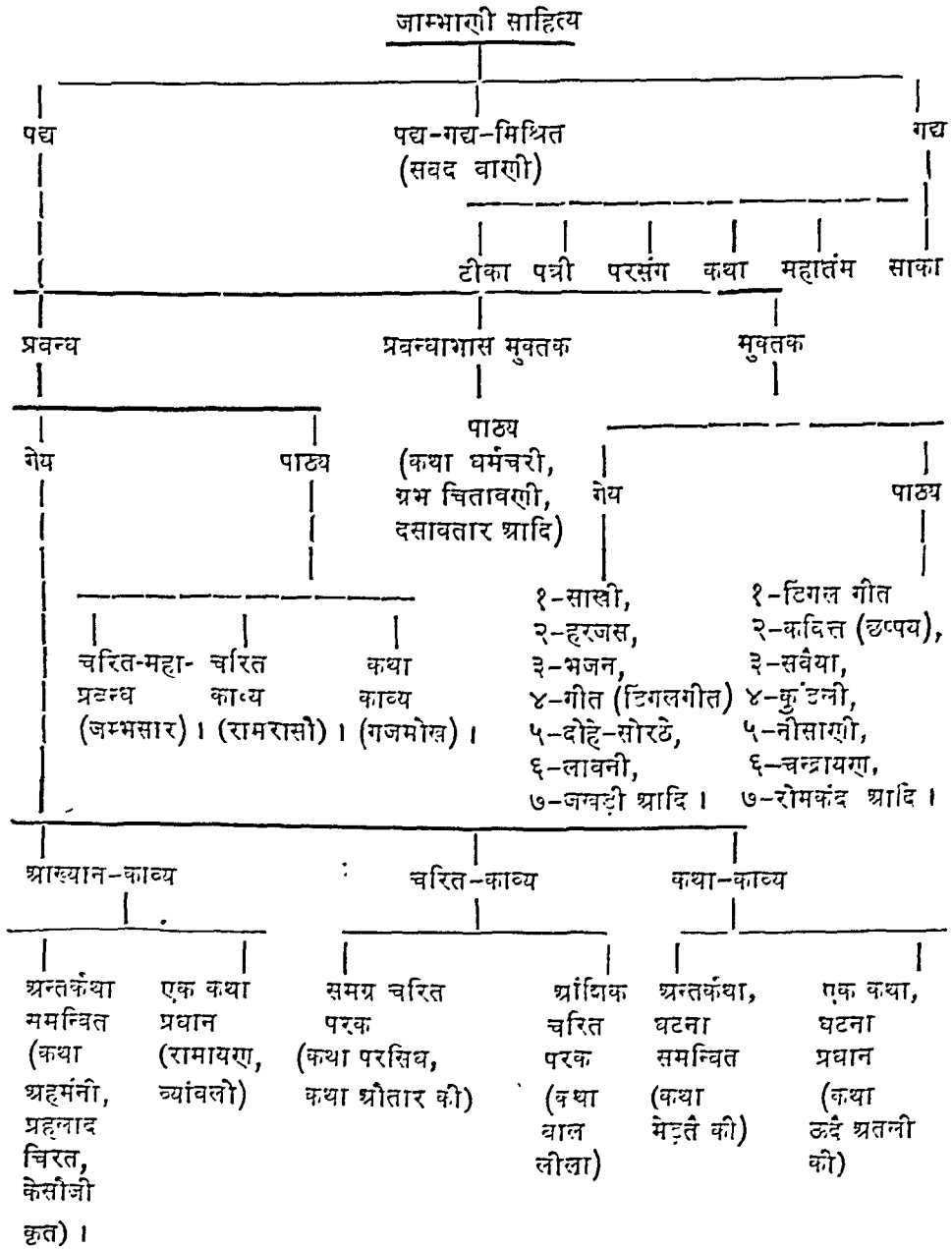
विष्णोई लोक गीत :

उपर्युक्त वर्गीकरण में विष्णोई समाज में विशेष रूप से प्रचलित लोकगीतों और

हरजसो की गणना नही की गई है। यह अध्ययन का एक पृथक् विषय है। द्रष्टव्य-अध्याय-७, विश्णोई सम्प्रदाय, २७ वें शीर्षक के अन्तर्गत तथा परिशिष्ट मे ऐसे चार लोकगीत।

साहित्य-क्षेत्र मे विशिष्ट उपलब्धि :

इस क्षेत्र मे इसकी कतिपय महत्त्वपूर्ण उपलब्धियो का उल्लेख करना आवश्यक है जो इस प्रकार है —

(१) गेय पद-परम्परा मे : गेय पदो की परम्परा पुरानी है। बौद्ध सिद्धो के पद किसी न किसी राग के नाम से लिखे गए हैं और उनमे ध्रुव पद या टक-विधान है। जयदेव के गीतगोविन्द से चर्यागीति पदावली का बहुत साम्य है[1]। गीतगोविन्द मात्रिक छन्दो के पद मे लिखा गया है। जयदेव के बाद लोकभाषा मे गेय पदो का निर्माण मिथिला के विद्यापति और बगाल के चडीदास ने किया[2]। ११वी शताब्दी मध्य मे कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र के 'दसावतार चरितम्' मे गोपियों द्वारा गेय गान भी मात्रिक छन्द मे लिखा गया है[3]। मराठी सत नामदेव के जीवन-वृत्त और उनकी रचनाओं-विशेषत हिन्दी पदो से विदित होता है कि न केवल उत्तर में प्रत्युत दक्षिण भारत तक भी ऐसे पद प्रचलित थे। नामदेव का समय सवत् १३२७ से १४०७ (सन् १२७० से १३५०) माना जाता है[4]। पुरानी राजस्थानी मे अनेक जैन कवियों के गीति-काव्य उपलब्ध हैं, जो विभिन्न राग-रागिनियो मे गेय तथा प्रचलित देशियो मे ढालबद्ध हैं।

इससे दो बातें स्पष्ट हैं—१. दसवी-ग्यारहवीं शताब्दी मे मात्रिक छन्दो मे गेय पद लिखे जाने लगे थे। २. विश्वास किया जाता है कि ऐसे पद-रचयिताओं ने अपने आसपास मे प्रचलित लोकगीतो का अनुकरण किया था।

यह तो मान्य ही है कि मरुभूमि मे गेय पदो की परम्परा रही है किन्तु जैन गीति-काव्य के अतिरिक्त मीरांबाई से पूर्व इसका निश्चित सधान अब तक नही लग पाया था। मीरां पर लिखे गये अनेक ग्रथों से यह स्पष्ट है। आरम्भिक विश्णोई कवियों के हरजस और साखियाँ मीरां से पूर्व गेय-पद परम्परा की कड़ियाँ हैं। १६ वी शताब्दी पूर्वार्द्ध के ऐसे ज्ञात कवियो मे तेजोजी चारण, समसदीन, पदम भगत, डेल्हजी, कान्होजी चारण, कील्हजी चारण, आसनोजी, आलमजी, ऊदोजी नैण, वुलचन्दजी आदि की गणना की जा सकती है। केवल रूपात्मक दृष्टि मे ही नही, भावधारा की दृष्टि से भी इन कवियो की ऐसी रचनाओं ने मीरां-काव्य को सुदृढ़ धरातल प्रदान किया है।

१-डा० सुकुमार सेन ओल्ड बगाली टैक्स्टस, पृष्ठ ३८, कलकत्ता, सन् १९४८।
२-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृष्ठ १६८, सन् १९५२।
३-क-डा० सुकुमार सेन : हिस्ट्री आफ ब्रजबुली लिटरेचर, पृष्ठ ४८४-४८५, सन् १९३५।
ख-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०९।
४-क-प्रो० भी० गो० देशपाण्डे : मराठी का भक्ति साहित्य, पृष्ठ ७१-७२, सन् १९५९।
ख-सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पूना विश्वविद्यालय, सन् १९६४।

(२) डिंगल गीत :—डिंगल गीतों की परम्परा भी प्राचीन है। पुरानी राजस्थानी और राजस्थानी में अनेक प्रकार के गीत लिखे गये होंगे किन्तु वर्तमान में १७ वीं शताब्दी से इनकी परम्परा विशेष रूप से मिलती है। अपवाद स्वरूप जीवणदास खरळवा[1] जैसे एकाध कवियों को छोड़कर, १६ वीं शताब्दी तक लिखे गए यत्किंचित् गीतों का वर्ण्य-विषय इतिहास और वीरता है, अध्यात्म और भक्ति नहीं। अद्यावधि अध्यात्म परक गीत १७ वीं शताब्दी और उसके बाद के कवियों के ही प्राप्त हैं, जिनमें ईसरदास, पीथो सांदू, सांवा झूला, ओपा आढ़ा आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। १६ वीं शताब्दी से राजस्थानी में अध्यात्म-परक डिंगल गीतों की एक अविच्छिन्न परम्परा विष्णोई कवियों में तेजोजी चारण से आरम्भ होती है। ये तथा कान्होजी, अल्लूजी आदि कवि इस शताब्दी के आरम्भिक गीतकारों में से हैं।

दूसरे, अभी तक साधारणतः यह मान्यता रही है कि डिंगल गीत पाठ्य ही होते हैं, गेय नहीं किन्तु केसोजी, सुरजनजी आदि कवियों के गीत देशी रागिनियों में गेय भी हैं। इससे चाहे अपवादस्वरूप ही हो, उपर्युक्त धारणा का निरसन हो जाता है। साथ ही यह बात ऐसे गीतों की अत्यधिक प्रसिद्धि का निसंदिग्ध प्रमाण है।

निष्कर्षतः परम्परा, प्रवृत्ति और रूप की दृष्टि से विष्णोई कवियों के गीतों का विशेष मूल्य है।

(३) कवित्त (छप्पय) : अपभ्रंश-अवहट्ट और पुरानी राजस्थानी में कवित्तों की सुदीर्घ परम्परा मिलती है। कवित्त को प्रायः सभी विषयों का वाहन बनाया गया है, जिससे इस छन्द के व्यापक प्रचलन का पता लगता है[2]। विष्णोई कवियों ने भी कवित्तों में अनेक विषयों को पूर्ण सफलता के साथ अभिव्यक्त किया है। काव्योत्कृष्टता की दृष्टि से भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन कवियों के मोहक कवित्तों का विशाल परिमाण पाठक का ध्यान सहज ही आकृष्ट करता है। लगभग ५०० कवित्त तो अकेले सुरजनजी ने ही लिखे हैं। परिमाण, काव्य-सौन्दर्य तथा वर्ण्य-विषय और विविधता की दृष्टि से कवित्त-साहित्य का अध्ययन बिना ऐसे कवित्तों के अपूर्ण ही रहेगा। इनके अतिरिक्त पूर्व लिखित सभी काव्य-रूपों और छन्दों की परम्परा में सिद्ध काव्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(४) बारहमासा, बावनी : सिद्ध-चारण कवियों में सर्वप्रथम बावनी और बारहमासा क्रमशः कान्होजी और कील्हजी की रचनाएँ हैं।

(५) आख्यान काव्य : राजस्थानी में आख्यान काव्य परम्परा का सूत्रपात १६ वीं शताब्दी से विष्णोई कवियों से ही होता है। कथा अहमंनी, हरजी रो व्यावंलो इस शताब्दी पूर्वार्द्ध की और रामायण उत्तरार्द्ध की रचना है। इसके पश्चात् १६ वीं शताब्दी तक ऐसे

१—द्रष्टव्य : सम्मेलन-पत्रिका, प्रयाग, भाग ५२, संख्या १-२ में लेखक का 'ढोली जीवणदास खरळवा और उनकी रचनाएँ' नामक निबन्ध।

२—द्रष्टव्य—(क) प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, बड़ोदा, सन् १६२०।
(ख) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, कलकत्ता, संवत् १६६४; आदि में कवित्त वाली रचनाएँ।

अनेक काव्य रचे गये। राजस्थानी साहित्य को इस परम्परा के रूप मे विष्णोई कवियों की निराली देन है। जैनेतर सभी श्रेणी के हिन्दू-समाज के मनोरंजन के साथ धार्मिक संस्कारों की रक्षा और रुचि-परिष्कार का कार्य जितना इन काव्यों ने किया है उतना और किसी ने नही। इनमे हिन्दू संस्कृति का सच्चा स्वरूप सुरक्षित है।

गुजराती मे नरसी मेहता के गोविन्द-गमन, सुरत संग्राम और सुदामा चरित की गणना आख्यानो के अन्तर्गत की जाती है। नरसी के जीवन-काल के विषय म मतभेद है। अधिकाश विद्वान् उनका संवत् १४७१ से १५३७ (सन् १४१४ से १४८०) मान कर, उनको गुजराती के आदि कवि होने का श्रेय देते हैं[1]। यदि यह सत्य हो, तो आख्यान का पूर्व-रूप उनसे आरम्भ होता है किन्तु श्री के० एम० मुन्शी ने अनेक तर्क-वितर्क के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि उनका समय संवत् १५५७ और १६०७ (सन् १५००-१५५० ई०) के बीच ही कभी मानना बुद्धि संगत है[2]। इस प्रकार, नरसी मीरां के समकालीन सिद्ध होते हैं जो उचित प्रतीत होता है। जो भी मत माना जाय किन्तु यह उल्लेखनीय है कि नरसी के उल्लिखित काव्यो में आख्यान के लक्षण बीज-रूप मे ही विद्यमान हैं, वे विकसित रूप म नही पाए जाते[3]। पूर्णत विकसित रूप में तो आख्यानो की देन राजस्थानी मे विष्णोई कवियो की ही है।

पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त १७ वी शताब्दी से जाम्भोजी के जीवन प्रसगा को लेकर ऐतिहासिक आख्यान भी लिखे जाने लगे। इसके प्रणेता वील्होजी थे। जाम्भोजी मे विष्णुत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा मानकर, कवियों ने ऐसे आख्यानों को पौराणिक आख्यानो के समकक्ष रखने का प्रयास किया।

राजस्थानी साहित्य मे दोनों प्रकार के आख्यानो का विशेष स्थान है।

(६) पौराणिक चरित्रों में इनमे राम, कृष्ण, पाण्डव, प्रह्लाद तथा दसावतार वर्णन विशेष किया गया है। रामचरित पर प्रबन्ध काव्य मे मेहोजी कृत रामायण और सुरजनजी कृत रामरासो उल्लेखनीय हैं। रामायण तो राजस्थानी का सर्वप्रथम प्राचीन रामाख्यान काव्य है। इसका समस्त वातावरण लोक-सामान्य धरातल पर स्थित है। पात्र पौराणिक होते हुए भी लोक भावनाओ के रंग मे चित्रित किए गए हैं। रामरासो वीर-रस की उत्कृष्ट और जीवन्त रचना है, जो डिंगल गीत और छप्पय छन्दों में रचित है। इससे इन छन्दो के व्यापक प्रचलन और प्रसिद्धि का भी पता चलता है। इसी प्रकार, कृष्ण चरित पर आधारित दो आख्यान-हरजी रो ब्यावलो और रुक्मणी मंगल इस साहित्य की विशिष्ट देन है। 'ब्यावले' के समान अन्य कोई पौराणिक भाषा-कृति मरुप्रदेश मे इतनी लोक-प्रसिद्ध

१-(क) कृ० मो० झवेरी गुजराती साहित्य ना मार्ग सूचक स्तम्भो, पृष्ठ ३१।
(ख) के० का० शास्त्री · कवि चरित (भाग १-२), पृष्ठ २४, सन् १९५२।
(ग) ज० ह० दवे गुजराती साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७७, सन् १९६३।
२-(क) गुजरात एन्ड इट्स् लिटरेचर, पृष्ठ १९९-२००।
(ख) नरसैंयो भक्त हरिनो, प्रस्तावना, पृष्ठ ४९-८२, सन् १९५२।
३-ज० ह० दवे : गुजराती साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ८०-८१, लखनऊ, सन् १९६३।

और पूज्य नहीं हुई। यहां भागवत की भांति 'व्यांवले' का सम्मान होता है।

अभिमन्यु के जीवन को लेकर लिखी गई 'कथा अहमंनी' भी अपने ढंग का एक ही आख्यान है। इसी प्रकार, पाण्डवों से सम्बन्धित तीन आख्यान काव्य-कथा वहसोवनी, कथा सुरगारोहणी और कथा भीव दुसासणी तथा प्रह्लाद चरित पर चार काव्य (केसोजी, ऊदोजी अड़ींग, हरजी ढुकिया तथा साहबरामजी कृत) विष्णोई कवियों की महार्घ्य देन हैं।

प्रबन्धों के अतिरिक्त राम, सीता, हनुमान, कृष्ण, रुक्मिणी आदि से सम्बन्धित अनेक रस पूरित मुक्तक रचनाएँ सिद्ध कवियों ने दी हैं।

दसावतार वर्णन भी इन कवियों ने बहुत किया है। इसमें अन्तिम–कल्कि अवतार पर अपेक्षाकृत विस्तार से लिखा गया है और स्वतंत्र रूप से रचनाएँ भी की गई हैं जो अन्यत्र कम ही उपलब्ध होती हैं। १०–११ वीं शताब्दी में दसावतार वर्णन आवश्यक समझा जाने लगा था[१]। इसी परम्परा में विष्णोई कवियों ने प्रचुर परिमाण में योगदान दिया।

ध्यातव्य है कि ऐसी रचनाओं में पात्रों की मानवोचित भावनाओं को दबाया नहीं गया है। पौराणिक पात्रों को राजस्थानी रंग में रंग कर ही प्रस्तुत किया गया है। वे यहां के वातावरण की उपज हैं। साहित्य को जनता तक पहुंचाने के लिए इनकी अवतारणा हुई है।

इन तथा ऐसी अन्य रचनाओं का विशेष महत्त्व इन कारणों से है :—

१–सिद्ध काव्यान्तर्गत पौराणिक रचना-परम्परा में।

२–राजस्थानी पौराणिक काव्य परम्परा में सामूहिक रूप से।

३–प्रत्येक चरित से सम्बन्धित काव्य–परम्परा में पृथक्-पृथक् रूप से तथा

४–दसावतार वर्णन परम्परा में।

(७) **जाम्भोजी :** जाम्भोजी से सम्बन्धित प्रबन्ध और मुक्तक रूप में प्रचुर साहित्य का निर्माण किया गया है। मुक्तक रचनाओं में तो अनेक प्रकार से उनके प्रति भावोद्गार प्रकट किए गए हैं। ऐसी रचनाओं का महत्त्व किसी भी सन्त और भक्त कवि के अपने आराध्य के प्रति लिखे गए गेय पदों से कम नहीं है। भेद केवल आराध्यों के भिन्न होने में ही है। और यदि सम्प्रदाय का स्वरूप ध्यान में रखें, तो यह भेद भी नहीं मालूम होगा। ऐसी प्रबन्ध रचनाओं में सर्वत्र श्रेष्ठ काव्य के लक्षण मिलते हों सो बात नहीं है। अनेक स्थलों पर ये पद्यात्मक वार्त्ताएँ सी प्रतीत होती हैं। कहीं-कहीं साम्प्रदायिक मान्यताओं, कर्त्तव्याकर्त्तव्य–निरूपण और उपदेशों आदि का उल्लेख–आकलन भी किया गया है। ऐसे स्थल काव्य की परिधि में नहीं आते किन्तु इनके अतिरिक्त जहां विभिन्न मानवीय भावनाओं, सामूहिक मनोवृत्ति, विशेष–मानसिक अवस्था, स्थिति, घात–प्रतिघात या सहज जीवन की रागात्मक मनोवृत्तियों का चित्रण हुआ है, वहां काव्य–रस भी वर्तमान है। ऐसी बहुत सी रचनाएँ ऐतिहासिक आख्यान–काव्य हैं।

१–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ११०, सन् १९५२।

इसके अतिरिक्त इनका महत्त्व इन कारणों से भी है —

१–इनमे जन साधारण का विशेषतः मरु-प्रदेश के कृषक समाज का अनेक रूपो मे, अनेक-विध चित्रण किया गया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। पवर्तक के प्रति इतने विशाल साहित्य का निर्माण भी विशेष ध्यान आकृष्ट करता है।

२–तत्कालीन ऐसे समाज मे प्रचलित विश्वास,मान्यता, रीति-नीति, रहन-सहन, आशा-आकाक्षा आदि के परिचय के लिए।

३–विभिन्न राजपुरुषो के व्यक्तिगत जीवन, विचार और परिस्थिति की जानकारी के लिए।

४–जाम्भोजी के व्यक्तित्व, उपदेश और सबदवाणी के भाव–स्पष्टीकरण के लिए।

५–लोक-सस्कृति के स्वरूप-निदर्शन के लिए।

६–तत्कालीन राजस्थानी साहित्य मे प्रवहमान भावधाराओं को सम्यक् रूप से समझने के लिये एक सुदृढ पीठिका के रूप मे।

७–जन साधारण के जीवन के अनेक पहलुओं से सम्बन्धित लोक प्रचलित विशिष्ट शब्दा-वली, उक्तियों तथा बोली आदि के लिए।

८–ऐतिहासिक आख्यानो की परम्परा में।

९–दोहे-चौपई बद्ध प्रबन्धात्मक काव्य-रूप परम्परा मे।

१०-*कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों की महत्वपूर्ण जानकारी अथवा पुष्टि के लिये और*

११–विभिन्न भौगोलिक स्थानो की जानकारी के लिये।

ध्यातव्य है कि ऐसी विष्णोई रचनाओं मे जैन रचनाओ की भाति पिष्टपषण नही हैं और यह इनकी बडी विशेषता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक कवि की रचना एक दूसरे की पूरक है। कथा-विशेष और प्रसग-विशेष पर भिन्न-भिन्न कवियों ने गतानुगत और एक सी रचनाएँ न करके भिन्न-भिन्न कथाओ और प्रसगो पर की हैं जो समग्र रूप मे एक दूसरे की पूरक हैं। विभिन्न कवियो द्वारा लिखे जाने के कारण प्रत्येक मे कुछ न कुछ नवी-नता और सरसता

अध्यात्म, साधना, धर्म, ज्ञान, नीति और लोकोत्थान परक रचनाओ मे सर्वत्र नीरस प्रसगो की अवतारणा नही है। इनमे जहा मानव हृदय मुखरित हुआ है, वहा काव्य सौन्दर्य भी विद्यमान है। अध्यात्म-क्षेत्र की प्राय: सभी रचनाओ मे भक्ति रस (या सिद्ध रस) की सरिता प्रवाहित होती दिखाई देती है। हरजी आदि कवियो की मन से सम्बन्धित रचनाएँ तो अत्यन्त चित्ताकर्षक एव भावपूर्ण हैं। इस श्रेणी की रचनाओ मे धर्म और ज्ञान-निरू-पण विषयक प्रसग, शुष्क और पद्यबद्ध उपदेश मात्र हैं, इनको काव्य कोटि के अन्तर्गत नही लिया जा सकता। किन्तु ऐसी रचनाओं की सख्या अधिक नही है। उल्लेखनीय है कि विष्णोई कवियों ने केवल नीति और उपदेश के लिये रचनाएँ न करके अधिकाशत. कथ्य या प्रसग विशेष के स्पष्टीकरण के लिये और वह भी अप्रस्तुत रूप मे की है। जैन कवियो की नीति-उपदेशात्मक रचनाओ से ये किंचित् भिन्न रूप मे प्रस्तुत की गई हैं।

ऐसी रचनाओ की वर्णन-सामग्री परम्परामुक्त न होकर, दैनदिन लोक-जीवन मे

व्यवहृत सामग्री है। इससे भाव सहज ही बोधगम्य होता, और पाठक अनजाने ही कवि-मानस से आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करता है। उनका प्रभाव भी शीघ्र होता, और स्थायी रहता है। परमानन्दजी वणियाळ की रचनाएँ इस सम्बन्ध में विशेष रूप से महत्त्व-पूर्ण हैं। ऐसी रचनाओं में (साखियों में भी) वीर काव्यों में विशेषतः प्रयुक्त काव्य-रूढ़ियों का प्रचुर उपयोग किया गया है। वीर जब रणक्षेत्र में वीरता पूर्वक लड़ता हुआ प्राण त्यागता है, तो वह स्वर्ग में जाता है, जहां अप्सराएँ उसका पति रूप में वरण करती हैं। इस रूढ़ि को सत्कर्म करने वाले साधु व्यक्ति के लिये लागू किया गया है।

रूपक काव्य-परम्परा में इन काव्यों की उल्लेखनीय देन है। राजस्थानी के बड़े रूपक-काव्यों में "त्रिभुवन दीप प्रबंध" के पश्चात् सुरजनजी और सेवादास की ऐसी रचनाओं का गौरवपूर्ण स्थान है।

१९ वीं और २० वीं शताब्दी की कुछ रचनाएँ पद्यबद्ध कथन सी हैं, इनमें पिष्ट-पेषण और रूढ़िबद्धता पाई जाती है। एक ही विषय को अनेक बार कहे जाने के कारण इनमें एकरसता और शुष्कता भी लगती है किन्तु ऐसे प्रसंगों की अवतारणा और रचनाओं की संख्या अधिक नहीं है।

प्रेरणास्रोत : सिद्ध कवियों के काव्य-निर्माण के मूल में प्रमुखतः ये प्रेरणा स्रोत हैं- १-धर्म, २-आत्माभिव्यक्ति, ३-लोकोत्थान तथा ४-अन्याय और असंगति के प्रति आक्रोश भावना। इन कवियों का उद्देश्य कल्पना लोक में ले जाना न होकर व्यावहारिक जीवन को सुखद बनाना और उसके माध्यम से तत्त्व प्राप्ति का प्रयास करना था। इस काव्य धारा में एकांगिता कहीं नहीं है। सिद्ध कवि किसी अन्य धर्म-मतानुयायी पर आक्रमण या उसकी भर्त्सना नहीं करता। वह सबका सम्मान करते हुए धर्म के नाम पर व्याप्त विकृतियों और पाखंडों का संकेत भर करता है और इस प्रकार उनको भी ऊँचा उठाना चाहता है। गुण-ग्राहकता, सहिष्णुता और सबके प्रति सम्मान-भावना इन कवियों की विशेषताएँ हैं।

सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक विचारधाराओं के क्षेत्र में :

सम्प्रदाय के रूप में कालक्रम से यह उत्तरी भारत का पहला धार्मिक ('संत' या सिद्ध) सम्प्रदाय है। कबीर यद्यपि जाम्भोजी से पूर्व हो चुके थे, तथापि 'सम्भवतः नानक देव के अनन्तर ही '"सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में, कबीर पंथ की स्थापना हुई होगी[1]"। साधारणतः ऐसा माना जाता है कि गुरु नानक ने ही पंथ रचना का सूत्रपात किया था किन्तु यह ठीक नहीं है। गुरु नानक का समय संवत् १५२६ से १५९५ है और सिख धर्म की स्था-पना सुलतानपुर नगर में संवत् १५५४[2] या उसके पश्चात् ही हुई थी। मरुप्रदेश के ही दूसरे सिद्ध जसनाथजी का समय संवत् १५३९ से १५६३ है और इस प्रकार, जसनाथी सम्प्रदाय का प्रचलन भी परवर्ती घटना है। निरंजनी सम्प्रदाय के बहुचर्चित हरिदासजी का काल सत्रहवीं शताब्दी है। राजस्थान के शेष प्रसिद्ध सम्प्रदायों में लालपंथ (लालदास का

१-डा० केदारनाथ द्विवेदी : कबीर और कबीर पंथ, पृष्ठ १६१-६२, सन् १९६५।
२-सिख धर्म की रूपरेखा, पृष्ठ ३२, अमृतसर, सन् १९६४।

काल-सवत् १५६७-१७०५[1]), दादूपथ (दादू का काल-सवत् १६०१-१६६०), रामसनेही (१-खेडापा-सिंहथल, २-रैण और ३-शाहपुरा के) आदि सभी इसके परवर्ती हैं।

उपर्युक्त सम्प्रदायों, विशेषत मरुप्रदेश मे प्रवर्तित सम्प्रदायो और उनके साहित्यो को, पूर्वापर सम्बन्ध से भली-भाति समझने के लिए, विश्णोई सम्प्रदाय और साहित्य को समझना नितात आवश्यक है। इस सदर्भ मे तीन बातों की ओर इगित करना उचित प्रतीत होता है :—

१-राजस्थान मे जाम्भोजी से पूर्व हुए गोगोजी, पाबूजी, आदि 'पीरो' से सम्बधित लोक-रचनाएँ किसी भी साम्प्रदायिक साहित्य से भिन्न कोटि की रचनाएँ हैं। उनकी मा यता लोक देवता के रूप म और पूजा, पाखड-पूजा (कल्ट वर्शिप) है। अत ऐसी रचनाएँ, यदि प्रामाणिक हो, तो भी इस काव्य की पृष्ठभूमि का रूप नही ले सकती।

२-सत परम्परा का आरम्भ कबीर से मानकर उनकी विचारधारा के सदर्भ म परवर्ती सिद्ध-सतों को रखना और परखना अनुचित और एकागी प्रतीत होता है। यदि कालक्रम मे देखा जाय तो नामदेव ही उत्तरी भारत की सत परम्परा के आद्य सत हैं।

३-निर्गुण सतों की वाणियो से जाम्भाणी सिद्धों की वाणियाँ मेल नही खाती। साम्य होते हुए भी दोनो के मूल स्वरों मे पर्याप्त भेद है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्रत्येक सम्प्रदाय का पृथक रूप से किया गया अध्ययन भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है तथा क्षेत्र-विशेष के पूर्ववर्ती, सम-कालीन और परवर्ती साहित्य को सब दृष्टियो से भली-भाति समझने के लिये ऐसा आवश्यक है। वर्तमान मे गोरखनाथ और कबीर पर विशेष ध्यान दिये जाने कारण, यह एक प्रकार से मान कर ही चला जाता है कि परवर्ती सिद्ध-सत उनसे तो प्रभावित थे ही। इस दृष्टिकोण मे आशिक सच्चाई ही है। सम्प्रदाय-विशेष का क्षेत्रीय परम्पराओं और मान्ताओं के सदर्भ मे निरपेक्ष रूप से किया गया अध्ययन कही अधिक महत्त्वपूर्ण और उपादेय सिद्ध होगा।

धार्मिक-दार्शनिक विचारधारा इस दृष्टि से भी इसका पर्याप्त महत्त्व है। जाम्भोजी मरु-प्रदेश के पहले धार्मिक आचार्य और लोकभाषा मे दर्शन सम्बन्धी अपनी मान्यताओ को बताने वाले दार्शनिक थे। हिन्दू धर्म के क्रम-विकास का इतिहास स्थूल रूप से तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है —१-कर्म-प्रधान वैदिक युग, २-ज्ञान-प्रधान उपनिषद् युग, तथा ३-भक्ति-प्रधान पौराणिक युग[2]। भक्ति का आदोलन मध्ययुग की विशेषता है। उत्तर भारत मे भक्ति की धारा को नये सिरे से प्रवाहित करने का श्रेय दो आचार्यों को है— रामानन्द और वल्लभ। भक्ति मार्ग मे एकातिक भक्ति का स्वर प्रबल रहा है[3]। भाग-वत पुराण मध्यकाल का सबसे अधिक प्रभावशाली शास्त्र ग्र थ रहा है, जिसका प्रधान प्रति-पाद्य एकातिक भक्ति का मार्ग है। एकाती भक्त केवल भक्ति को ही चाहते हैं, कैवल्य या

१-श्री परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृष्ठ ४८४-४९६, सवत् २०२१।
२-कल्याण, भक्ति अ क, पृष्ठ ५३, जनवरी, १९५८, गोरखपुर।
३-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ९१-९२, सन् १९५२।

अपुनर्भव भी नहीं[1] । भक्ति-आंदोलन ने मरुप्रदेश को विशेष प्रभावित नहीं किया । जाम्भोजी को भक्ति नहीं, अपुनर्भव अभीष्ट है । उनकी विचारधारा उपनिषदों और गीता की वैचारिक भूमिका में ही पनपी है, वह भागवत से मेल नहीं खाती । उन्होंने भक्ति-प्रधान पौराणिक युग से पूर्व की विचारधारा को आत्मसात् करके विशेष रूप से कहा था । चौदहवीं शताब्दी के बाद हिन्दी साहित्य की मूल प्रेरणा भक्ति ही रही है, किन्तु वह राजस्थानी साहित्य की उसी रूप में नहीं । दूसरे, राजस्थान की मनोभूमि माधुर्य भाव की भक्ति के अनुकूल नहीं रही । यहां तो मर्यादावादी दृष्टिकोण प्रधान रहा है । कृष्ण के वीर तथा गोपी-वल्लभ रूपों में, उनके वीर और उद्धारक रूप को ही काव्य का विषय विशेष रूप से बनाया गया है । सामाजिक मर्यादा और औचित्य के धरातल पर राजस्थानी साहित्य का निर्माण हुआ है, यह इस सिद्ध-साहित्य से भलीभांति प्रमाणित होता है । विद्वानों का अब इस विषय में विशेष मतभेद नहीं है कि कबीर आदि निर्गुणी कवियों का मूल स्वर भक्ति है, जो जाम्भोजी का स्वर नहीं है । विचारों के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय की यह विशेषता उल्लेखनीय है ।

भाषा के क्षेत्र में : लोक प्रचलित मरुभाषा के सच्चे स्वरूप, परिचय और उसके क्रम-विकास की दृष्टि से इन कवियों की भाषा का सर्वाधिक महत्त्व है । सोलहवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी तक विष्णोई-रचनाओं का निरन्तर प्रवाह रहा । इनके आधार पर न केवल शताब्दी-विशेष की मरुभाषा का स्वरूप ही, वरन् विकासमान मरुभाषा का इतिहास भी प्रस्तुत किया जा सकता है । ये रचनाएँ प्रामाणिक और मूल रूप में उपलब्ध हैं । अधिकांश कवि कृषक वर्ग के थे; आत्मोत्थान के साथ लोकोत्थान उनका उद्देश्य था । लोक में अपने विचारों और भावों को पहुँचाने के लिए उन्होंने जन साधारण की भाषा का ही प्रयोग किया । वह कृत्रिमता से परे, सहज भाव से प्रस्फुटित हुई है । बोधगम्य और सहज-प्रेषण के लिए समस्त वर्णन-सामग्री भी उन्होंने जन साधारण के दैनंदिन जीवन से सम्बन्धित तथा लोक-व्यवहृत क्षेत्र से ली । मरुदेशीय कृषक शब्दावली की तो बहुत ही विशद और प्रामाणिक सामग्री इनमें भरी हुई है ।

वील्होजी और केसोजी ने लोगों की बोली विषयक अभूतपूर्व कार्य किया है । उन्होंने बोली के शुद्धाशुद्ध प्रयोग बताकर शुद्धप्रयोग की प्रेरणा दी । ऐसा प्रयास अन्यत्र नहीं मिलता । शैली की दृष्टि से भी ये रचनाएँ अनुपम हैं । इससे इन कवियों की तलस्पर्शिनी दृष्टि, गहरे और सूक्ष्म लोक-व्यवहार तथा भाषा-ज्ञान का पता चलता है । सिद्ध-काव्य में लोक-भाषा की आत्मा सुरक्षित है ।

इतिहास के क्षेत्र में : सामान्यतः इतिहास में राजाओं के राजनीतिक जीवन का ही लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है, उनके जीवन से संबंधित अन्य इतर बातों का बहुत ही कम उल्लेख मिलता है । नाम तो उन्हीं के आते हैं जो या तो गद्दी पर बैठते हैं या इतिहास में उल्लेखनीय कार्य करते हैं । जाम्भाणी साहित्य से इस क्षेत्र में निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध

१-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : मध्ययुगीन धर्म साधना, पृष्ठ १२४-२५, सन् १९५६ ।

मे विशेष रूप से पता चलता है :—

१-कतिपय नवीन घटनाम्रो और तथ्यों का,
२-पुराने तथ्यो और घटनाम्रो पर नवीन प्रकाश,
३-कतिपय प्रचलित मान्यताम्रो का खडन, नई की स्थापना,
४-राजपुरुषो के व्यक्तिगत जीवन, सम्बन्ध, विश्वास और विचार,
५-राज्य-विशेष मे हुई छोटी-छोटी घटनाम्रो का,
६-अनेक धारणाम्रों के सबध मे पुनर्विचार की आवश्यकता।

इस सम्बन्ध में सिद्ध-कवियो के कथन विश्वसनीय माने जा सकते हैं, क्योकि न तो वे राज्याश्रित थे और न ही राज-स्तुति करना उनका उद्देश्य था। उन्होंने तो जैसी घटना देखी या परम्परा से सुनी–पढी, उसका सदर्भ-विशेष मे सकेत-उल्लेख किया है। उनके कथन ख्यातो से अधिक विश्वसनीय और मूल्यवान हैं। उपर्युक्त कथन के उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं :—

१-राठौडो का अजमेर के मल्लूखा से, टोडा के नेतसी सोलकी को छुडाना। इतिहास-ग्रथो म वरसिंह को छुडाना लिखा है।
२-वरसिंह द्वारा राव दूदा को सवत् १५१९ मे "देसोटा" दिया गया था। इसकी पुष्टि बाँकीदास की ख्यात से भी होती है।
३-बीकानेर-राजघरान की पूजनीक चीजो मे एक "वैरीसाल नगाडा", सवत् १५२६ में जाम्भोजी न जोधाजी को दिया था।
४-नारनौल युद्ध के समय, सवत् १५८३ मे बीकानेर के राव लूणकरण, अपने कुँवर जैतसी से अप्रसन्न थे।
५-बीकानेर म राठौडो की राज्य-स्थापना से पूर्व इस प्रदेश मे फैले हुए मोहिलो के प्रभाव को ठीक से लक्ष्य नही किया गया।
६-जोधपुर के राव सातल के बारह विवाह तथा उनके निपुत्र होने की पुष्टि।
७-राजस्थान के तत्कालीन राजाम्रो से जाम्भोजी के सपर्क और उनके प्रभाव का इतिहास ग्रन्थो मे नामोल्लेख तक नही है।
८-मेडता पर मुसलमानों का हमला हुम्रा था जिसमे राव दूदा विजयी हुए।
९-राठौडो म मेडतिया राठौडो पर जाम्भोजी का सर्वाधिक प्रभाव रहा है और इनमे अब भी उनकी मान्यता बहुत है जिसकी पुष्टि इन बातों से होती है :—
 क-मेडतिया राठौड अपने विवाह में प्राय जाम्भोजी का एक भगवाँ प्रतीक रखता है। या तो वह अपनी पगडी के एक सिरे का कोना तिकोने रूप में भगवाँ रगा कर और उसको सिर के ऊपर दीखता हुम्रा रख कर, अथवा गठजोडे वाले कपडे के एक कोने को उसी रूप में भगवाँ रगा कर।
 ख-अपनी सीमा में न तो हरिण को मारते और न ही मारने देते हैं। इस प्रकार बिश्णोइयो मे मान्य जीव-हत्या सम्बन्धी नियम का वे पालन करते हैं।

ग–वे विष्णोइयों को अपना गुरु–भाई मानते हैं।

१०–जैसलमेर के रावल जैतसी ने संवत् १५७० में जैतसमंद तालाब की प्रतिष्ठा पर जाम्भोजी को बुलाया था और उस अवसर पर कन्यादान भी किया था। उनकी आर्थिक स्थिति और श्रद्धाभावना का भी पता चलता है।

११–बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी ने सम्भवतः नवीन किले बनवाने हेतु अर्थ–प्राप्ति स्वरूप नये कर भी लगाये थे।

१२–जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी।

१३–दिल्ली के बादशाह सिकदर लोदी से जाम्भोजी मिले थे और उसको ज्ञानोपदेश दिया था।

१४–बीकानेर के राव लूणकरणजी जाम्भोजी के शिष्य थे किन्तु युद्ध और विजय के संबंध में वे उनकी बात नहीं मानते थे। नारनौल के युद्ध में वे कुँवर जैतसी को साथ नहीं ले गये थे, उसके मांगने पर उन्होंने घोड़ा भी नहीं दिया था। "भाटे लेने" का प्रसंग अन्यत्र करणीजी से जोड़ा गया है[1]।

१५–जोधपुर के कुँवर मालदेव, संवत् १५८४ में मूलो पुरोहित की प्रेरणा से लोहावट साथरी में जाम्भोजी से मिले थे।

१६–सोलहवीं शताब्दी में मरुप्रदेश का सर्वाधिक प्रचलित नाम "बागड़ देश" था।

अर्द्ध-ऐतिहासिक : गोपीचन्द और भर्तृहरि विषयक रचनाओं की गणना इस कोटि के अन्तर्गत है। हरिराम और कालू की एतद् विषयक रचनाएँ तो बहुत ही लोक–प्रसिद्ध हुईं। परिवर्तित परिवर्द्धित रूप में उनका लोक में गाया जाना इसका द्योतक है।

सांस्कृतिक सामाजिक : मनुष्य के लौकिक–पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार-विचार का नाम संस्कृति है जिसका आधार शास्त्र या धार्मिक विश्वास होते हैं। विष्णोई साहित्य वह दर्पण है जिसमें विगत साढ़े चार सौ वर्षों के मरु–देशीय सांस्कृतिक स्वरूप का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इसमें अनायास और सहज रूप में, जन साधा–रण के जीवन और विविध पहलुओं का समग्रता में जितना समावेश है उतना पूर्व लिखित शेष शैलियों के सिद्धेतर साहित्यों में नहीं। कारण यह है कि उनमें एक विशिष्ट समाज, वर्ग, कार्य, अवसर, पक्ष आदि का उद्घाटन–चित्रण ही मुख्यतः किया गया है, जिसमें जीवन की इकाइयाँ अधिक मुखर हैं। जन साधारण का सम्पूर्ण जीवन उनकी परिधि में कम ही आया है।

इस प्रकार जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य की महान् देन है। अनेक दृष्टियों से उसका स्वतंत्र, पारम्परिक और पौर्वापरिक महत्त्व है। अन्ततः उसका लक्ष्य मनुष्य हैं। वह मनुष्य को पशु सामान्य धरातल से उठाकर सही अर्थों में मनुष्य बनाने तथा प्राणी मात्र के प्रति संवेदनशील बनाने का महत् प्रयास है।

१–दयालदास की ख्यात, भाग २, पृष्ठ ३४, अ० सं० पुस्तकालय, बीकानेर।

ग्यान सोई मुख ऊपजै, चुणि कण अखर पाय।
पैंडी पैंडो चढता, महलि विराजै आय।।
कहा अंधै कू आरसी, कहा बहरै कू नाद ?
कहा पंडत कूं समझाइयै, कहा मूरिख सू वाद ?।।
का पूरण ग्यानी भलो, का तो भलो अजाण।
मूढ मति मध वीच को, जळ मा जिसो पषाण।।
न कुछि किया न करि सक्या, न कुछि किया न जाय।
जो कुछि किया स हरि किया, दई ज आया दाय।।
—परमानन्ददासजी वणियाळ।

परिशिष्ट

[संख्या २ से ११]

परिशिष्ट :

[प्रथम परिशिष्ट (अध्ययन-सामग्री की चित्र-सूची) पहली जिल्द के अन्त मे दिया गया है]।

(२) आरती

(क) ऊदोजो नैण कृत :—

आरती कीजै गुर जभ जती की, भगत उधारण प्राणपति की ॥
पहली आरती लोहट घर आए, बिन बादळ प्रभु इमिया भुराए ॥
दूसरी आरती पीपासर आए, दूदैजी नै प्रभु परचो दिखाए ॥
तीसरी आरती सभरथळ आए, पूलेजी नै प्रभु सुरग दिखाए ॥
चौथी आरती अन्न निवाए, भूच लोक प्रभु पात कहाए ॥
पांचवीं आरती साधु जन गावै, बास बैकुंठ अमर पद पावै ॥ -प्रति २२८।

(ख) साहबरामजी राहड कृत —

फूं फूं केरा चरण पधारो गुरु जभदेव, साधु जो भगत थारी आरती करै ॥
जभ गुरु ध्यावै वो तो सब सिद्धि पावै, कोटि जनम केरा पातक झडै ॥टेक॥
हृदय जो हवेली माहि रहो प्रभु रात दिन, मोतियन की माला प्रभु जो गळै ॥
काना बिच कुंडळ शीश पर टोपी, नयना मानो दोनों मसाळ सी जळै ॥
सोनै को सिंहासन प्रभु रेशम केरी गादियां, फूला हदी सेज्यां प्रभु बैस्यां ही सरै ।
प्रेम रा पियाला थानै पावे थारा साधु जन, मुकट छतर सिर चवर ढुळै ॥
सख जो सहनाई बाजे झींझा करै झननन, भेरी जो नगारा बाजे नोबतां घुरै ॥
कचन केरो थाळ कपूर केरी बातियां, अगर को धूप रवि इन्द्र जो दुरै ॥
मजीरा टकोरा झालर घटा करै घननन, सबद सुण्या सू सारा पातक जळै ॥
शेष से सेवक थारै, शिव से भडारी, ब्रह्मा से खजानची सो जगत धरै ॥
आरती मे आवै आय शीश जो नवावै, जागरण सुण्या सू जम्मराज जो डरै ॥
साहब सुनावै गावै नवनिधि पावै, सीधो मुक्त सिधावै काळ कर्म जो टळै ॥

(३) 'हिंडोलणो' (हीरानन्द कृत, 'कवि संख्या ८६)

कामण चली हिंडोलणै, गावै आळ जजाळ ।
जम्भ अचभो न गावहीं, जो बचै जम काल ॥ १ ॥
सरस हिंडोलणो, सभरायक झूलै साध ॥ टेर ॥
दोय सील सजम खभ रोपे, भाव बेडी अधार ।
घा डाडी सरल सुन्दर, वेद, कै झणकार ॥२॥
सूरय धीरज बणे मरवा, जडत प्रेम सुवार ।
सूरत पटडी बैठ कै, ये झूलो जम्भ दुवार ॥ २ ॥

हांसा लोहट सूं कहै, सुरग तणा आकार।
सुर नर गण गंद्रफ देवता, म्हारै ऊभा पोळ दवार ।। ३ ।।
दूदो[1] देसोटै गयो, मंन मैं घणो अधीर।
कोहर ऊपर निरखियो, जुग तारण जम्भ पीर ।।
थळी ओट दूदो मिल्यौ, तूठ्यौ सारै काज।
जब लग खांडो राखसी, तब लग नहचळ राज ।।
हांसा लोहट भाग पूरा, जिण लिया उर लाय।
नौरंगी[2] के भात लाये, संग साल्हिया आय ।। ४ ।।
सिरियां[3] झीमां[4] रूपां[5] वरियां[6], पूर्व प्रीत विचार।
कंवर[7] आगै घरे लाछां[8], आये मंगल[9] वार ।। ५ ।।
नूवा तांतू[10] चली कूलण, नायको[11] लीवी बुलाय।
अजावदे[12] सवीरदे[13] तहां झाली[14] पोहती आय ।। ६ ।।
लोचां[15] गोरां[16] और नागो[17], पूल्ह[18] वचन विचार।
ऊदो[19] अतली[20] हेत सेती, कूलै जम्भ दुवार ।।
राव दूदो टोहा[21] ठूकरा[22], केल्हण[23] वरसंघ[24] लेख।
लोहापांगळ[25] भीयां[26] परच्या, सोवन नगरी देख ।।
रावण[27] गोयंद[28] लखमण[29] पांडू[30], मोती[31] एक[32] भाय।
रिणधीर[33] अलो[34] सैंसा[35] साला,[36] सहने देत भुलाय ।।
खियां[37] नाथा[38] पूरब[39] टूमां[40], राणा[41] प्रीत विचार।
काजा[42] वूढा[43] लूंणा[44] सायर[45], आए पूल्ह पंवार।
घना[46] वछू[47] सुगणी[48] भंवरा[49], चेला[50] कुळचंद[51] प्यार।
पहळाद की प्रतंग्या काजै, विसन को अवतार ।।
महाराज[52] दाचंद[53] और धाटम[54], नूरां[55] थापन हरै।
खेता[56] धारू[57] जोखा[58] बैरा,[59] प्रीति हिरदै धरै।
मंगोल[60] रेड़ा[61] हासम[62] कासम[63], संता सदा सहाय।
तापस कधोदास[64] आए, पांच कूं समझाय ।।
रावळ जैतसी[65] सांगा राणां[66], लूंका[67] मालदे राव[68]।
महमदखां[69] अरु मुला[70] सवारी, आय परसे पाय ।।
साह सिकंदर[71] साह स्वांयत[72], सेख सद्दू[73] जांण।
कान्हा[74] तेजा[75] अलू[76] चारण, वळ वळ करत वखांण।
हुकम कदै[77] दीन वोल्यौ, वील्ह[78] कियो उपदेस।
नूजा[79] सूरण[80] आलम[81] केसा[82], ग्यान का परवेस ।।
चंदण[83] रायचंद[84] जसा[85] पद्मायण[86], सवद का आचार।
हीरानंद की अरज इतनी, संगति पार उतार ।। —प्रति ४८, १९१।

(४) "जाम्भेजी रै भक्तां री भक्तमाळ" (—अज्ञात, कवि संख्या १०६)

दोहा ॥ विष्णु को अवतार है, श्री जाभेस्वर राय ॥
सिव ब्रह्मा इंद्रादि देव, निस दिन ध्यान धराय ॥ १ ॥
दूदं ऊपर कोपियो, जोधाणां को राय ॥
मेड़तिया सारा चल्या, दूदो गमन कराय ॥ २ ॥

चोपई ॥ राग धनाश्री ॥

सबही भक्त कहूं विस्तार। जा ऊपर रीझ्यो करतार ॥
विष्ण भगत दूदोजी[1] भयो। जांभेसर तब खाडो दयो ॥ ३ ॥
भक्त आपको लोहट जांण। हंसा भक्त करी निरवाण ॥
करता सेय खिलायो गोद। हीयें घणो बढायो मोद ॥ ४ ॥
नवरंगो[2] कीयो निज जाप। लियां माहेरो आया आप ॥
विष्ण भक्त धीयां जो भई। देव दया करि मुक्ति बई ॥ ५ ॥
झीमां[3] सिवर्यो निस दिन सार। सुरग मुक्त कीवी करतार ॥
रूपा[4] रूप जप्यो हरि स्यांम। करता दीन्हो अपनो धांम ॥ ६ ॥
विरियां[5] धर्यो विसन को ध्यांन। जांभेसर को पायो ज्ञान ॥
पूरबं[6] प्रीत हरि हिरदै धरी। भलो कर्यो जांभेसर हरी ॥ ७ ॥
लाछां[7] लछण जाण्या आप। हिरदै धर्यो विसन को जाप ॥
लोहापागळ[8] अलख पिछाण। तबही लोह झड्यो हर जांण ॥ ८ ॥
तांतू[9] कियो भतीजो भाय। भक्त मुक्त दीन्हीं सुरराय ॥
नायको[10] कीयो हरि सूं हेत। भक्ति मुक्त कमायो खेत ॥ ९ ॥
अजियां[11] सेव करी चित लाय। लीयो हरजी हियें रिझाय ॥
लोल सभीरो[12] भक्ति करी। हिरदै धर्यो विसन हर हरी ॥ १० ॥
सांगो राणो[13] भयो चित्तोड़। झाली रांणी[14] ताकै जोड ॥
जांभेसर की भक्ति जाण। विसनोयां नै छोड्यो दांण ॥ ११ ॥
लोचां[15] लीयो विसन पिछाण। गोरा[16] हरि सूं कीवी जांण ॥
मधू[17] धर्यो विसन को ध्यान। पूलोजी[18] हूवो सुज्ञान ॥ १२ ॥
ऊदो[19] अतली[20] चल्या विचार। जिन पायो मुक्ति दरबार ॥
टोवाजी[21] ठुकराजी[22] भया। जांभेसरजी कीवी दया ॥ १३ ॥
केलणजी[23] वरसगजी[24] हुवा। विसन भक्त के मारग बुवा ॥
भीयों[25] पडित वडो सुजांण। जांभेसर नै लियो जांण ॥ १४ ॥
गोइंदजी[26] रावणजी[27] भाय। जांभेसरजी हुवा सहाय ॥
लखमण[28] पांडू[29] भाई भया। जांभेसर को भक्ति लया ॥ १५ ॥
मोतीय[30] मेघ जप्यो जंभराय। अली[31] चारण आयो भाय ॥
अलू[32] तेजो[33] कानो[34] आय। जांभेसर कै लागा पाय ॥ १६ ॥

भक्त हुवो वावल रणधीर[३५] । विसन भक्त सूं कीयो सीर ॥
सहंसोजी[३६] साल्होजी[३७] ध्याय । जांभेसरजी आया भाय ॥ १७ ॥
खींयो[३८] नायो[३९] डूमो[४०] ध्याय । विसन चरण सूं लिया लगाय ॥
लूणा[४१] काजा[४२] सायर[४३] जांण । जांभेसर नै लियो पिछांण ॥ १८ ॥
पूल्हो[४४] वूढो[४५] जीयू[४६] देख । ध्यायो हिरदै आप अलेख ॥
धना[४७] वछू[४८] सुरगण[४९] सोय । हियै विसनजी लियो पोय ॥ १९ ॥
चेला[५०] अर कुळचंद[५१] सुथार[५२] । जांभेसर ध्यायो निरधार ॥
लीयां पइसा गयो पुलाय । मरती गऊ छुडाई जाय ॥ २० ॥
खेतो[५३] धारू[५४] जोखा[५५] जांण । ध्यायो विसन मिटाया मांण ॥
रेड़ोजी[५६] पुन हुवो मंगोल[५७] । भक्ती केरो वजायो ढोल ॥ २१ ॥
हासम[५८] कासम[५९] दरजी किया । विष्णु भक्त का मारग लिया ॥
ऊदो[६०] अरु रावल जैतसी[६१] । विष्णु भक्त में मनसा घसी ॥ २२ ॥
लूंको[६२] मालदे[६३] महमंदखांन[६४] । मुला सधारी[६५] आयो मांण ॥
साह सकंदर[६६] दिलो हुवो । तुरकाणी मारग ते जुवो ॥ २३ ॥
सूजो[६७] सुरजन[६८] हुवा सुजांण । ध्यायो विसन मिटाया मांण ॥
केसो[६९] आलम[७०] किया वखांण । कथा कीरतन गाया जांण ॥ २४ ॥
पचायण[७१] जसा[७२] रायचद[७३] । जिन ध्यायो विष्णु गोविन्द ॥
हीरानंद[७४] मिठुजी[७५] जोय । ध्यायो विसन जंभे गु······· ॥ २५ ॥–प्रति २१६ ।

(५) मंत्र :

१–नवण (वृहन्नवण) :

विसंन विसंन तूं भणि रे प्रांणी,
साधां भगतां उधरणो ।
देवला सह दानूं दास्यव दानूं,
मदसुदानूं महमहंणो ।
चेतो चित जांणी सारंग पांणी,
नादे वेदे निज रहंणो ।
आदि विसंन वाराहूं, दाढांपति धर उधरणों ।
लिछमीनारायण निहचळ थांणों, थिर रहणों ।
निमोह निपाप निरंजण सांमी,
भंणि गोपालू त्रभुंवण तारू ।
भणतां गुणतां पाप खयो ।
तिह तूठै मोख मुगति ज लाभै ।
अवचळ राजूं खाफर खांनूं खे गुर्वणो ।

चीतं दोठं मिरघ तरासं,
बांधा रोळं गऊ तरासं,
तीर पुल्यं गुण बांण हयो,
तपति कुसं धारा हरि वूठं,
यों विसन जपतां पाप खयो।
ज्यों भुग्य को पालण अंन अहारं,
विष को पालण गुरड दवारं,
काहीं काहीं पखेरवां सीचांण तरासं,
विसन जपतां पाप विणासं।
विसनु ही मन विसनु भणियो
विसनु ही मन विसनु रहियो।
इकवीस कोडि वेंकुंठ पहोता,
साचे सतगुर को मंत्र कहियो॥

२-कळस पूजा मंत्र

ओं अकल रूप मनसा उपराजी, तामा पाच तत्त होय राजी।
आकास वाय तेज जळ धरणी, तामां सकळ सिष्ट की करणी।
ता सामरथ का सुणो वखांण, सपत दीप नव खंड प्रवांण।
पांच तत्त मिल इंड उपायो, विगस्यो ईंड धरण ठहरायो।
इंडे मधे जळ उपनो, जळ मां विसन रूप उर गनों।
ता विसनु को नाभ कवळ विगसानो तामां ब्रह्म बीज ठहरानों।
ता ब्रह्मा की उतपति होई भांजे घड सवारे सोई।
कुलाल कर्म करत है सोई, पृथ्वी लेखा केतक होई।
आदि कुंभ जदा उपनों सदा कुंभ प्रवतते।
कुंभ की पूजा जे नर करते ते ज कथा भी लहते।
अलील रूपी निरंजनों,
जाकें नये माता नये पिता, नयें कुटंब सहोदर।
जे नर करे ताकी सेवा, ताका पाप दोख ख्यो जायते।
आदि कुंभ कवल को घडो, अनादि पुरष ले आगे धरो।
बैठा ब्रह्मा बैठा इंद, बैठा सहंस कळा रवि चंद।
बैठा ईसर दोय कर जोडि, बैठा सुर तेतीसूं कोडि।
बैठी गंगा जमना सरसती,
थरपता थापी बालं गोरख निरंजन जती।
सतरं लाख अठाईस हजार, सतजुग प्रमाण।
सतजुग के पहरं मां सोने को घाट,
सोने को पाट, सोने को कळश सोने को टको।

पांचां कोड्यां को मुखी गुर पहळाद कळस थाप्यो।
वेंह कळस जस धरंम हुवें, सो ईंह कळस हुइयो ॥ १ ॥
वारें लाख छाणवें हजार त्रेता जुग प्रमाण।
त्रेता जुग कें पहरें मां रूपें को घाट,
रूपें को पाट, रूपें को कळस, सोनें को टको।
सातां कोड्यां को मुखी,
राजा हरिचन्द तारादे रोहितास कळस थाप्यो।
वेंह कळस जस धरम हुवें, सो ईंह कळस हुइयो ॥ २ ॥
आठ लाख चौसठ हजार द्वापर जुग प्रमाण।
द्वापर कें पहरें मां तांवें को घाट,
तांवें को पाट, तांवें को कळस, रूपें को टको।
नवां कोड्यां को मुखी,
राजा दहूठळ माता कुंती द्रौपती पांचे पांडवे कळस थाप्यो।
वेंह कळस जस धरम हुवें, सो ईंह कळस हुइयो ॥ ३ ॥
च्यार लाख वत्तीस हजार कळि जुग प्रमाण।
कळि जुग कें पहरें मां माटी को घाट,
माटी को पाट, माटी को कळस, तांवें को टको।
अनंत कोड्यां कें मुखी गुर जाम्भेसर कळस थाप्यो।
वेंह कळस जस धरम हुव, सो ईंह कळस हुइयो ॥ ४ ॥

(कतिपय हस्तप्रतियों में संख्या १, २, ३, और ४-अंश के पश्चात् इन पंक्तियों की पुनरावृत्ति भी की गई मिलती है :—

सुख सुवायंत करी, दुख दुवायंत पासें टाळी।
तेरी रजा करी संतान की वेरजा करी, आई वलाय दफे करी।

३–पाहळ मंत्र :

ओं नमो स्वामी सुभ करतार निरतार,
भवतार धर्म धार पूर्व एकाकार।
साधु नांव दरसणे सनमुखे पाप नासणे।
जनम फिरंता को मिले, संतोपी सुविचार।
आप सुवारथ न करें, पर पिंड पोपणहार।
पर पिंड पोपें जीवत मरें, पावें मोख दवार।
एह स पाहळ भाइयो, साधे लीवी विचारि।
एह स पाहळ भाइयो, धूळें मेल्ही हारि।
एह स पाहळ भाइयो, रिखां सीधा काज।
एह स पाहल भाइयो, उवरियो पहराज।

तेतीस कोडि देवां कुळी, लाधो पाहळ बद।
एह स पाहळ भाइयो, उपरियो हरिचन्द।
पाहळ लीवी माता कुंता, होती करणी सार।
साधु एहा भेटिये लाभे मोख मुकति दीदार।
आवो पाचों पांडवा, गु की पाहळ ल्योह।
पाहळ सार न जाण ,अंसां पाहळ न धोह।
पाहळ गति गंगा तणी, जे करि जाण कोय।
पाप सरीरा झड़ि , बहोता होय।
नेम तळाई नेम जळ, नेम का जीमो पाहळ।
कायम राजा आइयो, बैठो पांव पखाळ।
रिप थाप्या गति उपरै, देतां दिये पयाळ।
बन बन चंदण न अगरण, सर सर कंवळ न फूल।
एकाएकी होय जपो, ज्यूं भाजै भरम भूल।
अठसठि तीरथ काय फिरो, न इण पाहळ संतूल।
गोवल गोवल को को धवल सहने सचै भार।
आसति है तिहुं लोक मैं, सब बसता दातार।
हक साच सदा जीमो, पाहळ एह विचारि।
सतगुर बोलै भाइयो, सत सिधा सुविचार।
मछ की पाहळ, कछ की पाहळ, बराह की पाहळ,
नारसिंघ की पाहळ, बावन की पाहळ,
परसराम की पाहळ, राम लछमण की पाहळ,
कान्ह की पाहळ, बुध की पाहळ,
निकलंक की पाहळ, जाम्भोजी की पाहळ।

४–विष्णु या गुरु मंत्र :

ओं सबद सोहं आप, अंतर जपै अजप्या जाप।
सत्य सबद ले लघै घाट, बहुरि न आवै जोनी थाट।
परसै विष्णु अमीरस पीवै, जरा न व्यापै जुग जुग जीवै।
विष्णु मंत्र है प्राण अधार, जो जपै सो उतरै पार।
ओं विष्णु सोहं विष्णुं, तत्त सरूपी तारक विष्णु॥–प्रति २१८, ३४६।

५–तारक या गुरु मंत्र :

ओं सबद गुरु सुरत चेला, पांच तत्त्तर मे है अकेला।
सहजे जोगी सुन वास, पांच तत्त मैं लियो प्रकास।
न मेरै माई न ,अलख निरंजन आप ही आप।
गंगा जमना बहै सरसती, कोई कोई न्हावै बिरला जती।

तारग मंत्र पार गिरांय, गुरु बतायो नहचळ ठांय।
जो कोई सुमिरै उतरै पार, बहुरि न आवै मैली धार ॥–प्रति २१८, ३४६।

६–बाळक मंत्र :

ओं सबद देव निरंजण, ता इछ्या ते भये अंजण।
पांच तत्त में जोत प्रसन, हरि दिल मिल्या हुकम विष्णु।
हरि के हाथ पिता के पिष्ट, विष्णु माया उपजी सिष्ट।
सपत धात को उपज्यो पिंड, दस मास वालो अघोर कुंड।
अरध मुख ता उरध चरण हुतास, हरि हुकम तें भयो खलास।
जळ सैं न्हाये त्यागे मल, विष्णु नाम सदा निरमल।
विष्णु मंत्र कांन जळ छूवा, गुर फुरमांण विष्णोई हूवा ॥–प्रति ५५, २२८।

७–धूप मंत्र :

इनमें तेजोजी, वील्होजी, सुरजनजी, साहबरामजी आदि के छन्द प्रसिद्ध हैं जिनका उल्लेख यथास्थान कर आए हैं। अज्ञात कवि (संख्या ३५) कृत दो छप्पय, "बसन्दर के २५ नाम" और "विवरस" भी धूप मंत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'विवरस' नीचे उद्धृत है :—

ओं नमो सांमी सिस्ट करता निरतार ले कासिब सार।
सतिगुरु सहदेव वार गुर थट मालवै आसोप देस गुजरात।
जंबू दीपे भरथ खंडे थांन मुकांम।
ओह निज तीरथ ताळवों विवरस एह विचारणी।
　दया तां धरंम, भाव तां भगति,
　हेत तां प्रात, जोग तां जुगति,
　छिमां तां तप, सील तां संतोष।
　नहीं छै जुग पंचमूं, ग्यारवों नहीं अवतार।
　वारै पुरष न ओळख्या गया जलमंतर हारि।
　सीखिया सुधारियो भार घोरी ज्यूं झलै।
　मंन का भांणा मनहठी फिटा पंचां मांहि।
　कायम राजा वाड़ी वाही सींच्यो सतगुर नूर।
　चीनतड़ी जके हाजरि सिवरै सत सुकरत का सूर।
　एक ज मोमिण सावो वरणां ते दीदार लहांय।
　झूठे झगड़ो साहियो, गाफिल दोरै ठांय।
　एक ज धरमी धरम करै, एक पापी वरजांय।
　देखत अंधा सुंणता बहरा, पंथ नै दोस दिवांय।
　पंथ न खोटा वही खोटा, आप मुरादा सहिसें तोटा।
　मूला जांहि स जांहीं जांहीं, चोईसां के पह पेडै जांहि।
　हलति को मारग छाडि कै, पलति को ले जांहि।

तेरवों गुर पापी पाखडो,ठग चोर चोईसां को साथी ।
सांई राजा हेत कियो,हेत करि सत पथ वतायो ।
सत पंथ बताय पोह दासंण आयो ।
पोह दावण छोडि हुवा अणचारी,
जलम गुमायो जीतो हारि ।
लिखता लिखो क्यों लिखो लिखावो,
घोह ल्योह क्यों करण कुमावो ।
जीते जमवारै हारि मत जावो ।
हरि मुख दीठा ते जीता भाई, गढ सुरगापुरि हुई वधाई ।
जीयं पिडं काया काची, आपण वाचा नाहीं साची ।
गुर चेलै मिलि सिष उपाई, सिष विचार करत निपाई ।
करतब पढं सो गति बिचारं, आछा होई मिलं पियारं ॥
आछा हुइयं विवरस थाकी, आप मुरादा काढो छाकि ॥
आवो मोमिणो करो सुभाय, भेंटो गुर तेतीसां को राव ।
हरि मुख दीठा हुवा दीदारी,
अवचल वाचा जीव निसतारी, भणं सतगर वाचा सारी ।
एक मूरत तीन देवा, ब्रह्मा विष्णु महेसर ।
ब्रह्मा हुवा वेद रूपा, महादेव हुवा ध्यांन रूपी,
विसन हुवा अवतार रूपी ।

—इति विवरस होम को पाठ सपूरण ॥ –प्रति ६४, ६८ ।

८–सुजीवण मन्त्र

ओउ कारे निराकार अपार पार मूळ न डाळ ।
तत मन भेद विसन सुधारण कासी छेत्र वानारसी ।
तारग मत्र विसन समाए तळि धरती उपरि असमान ।
ओं सोदत डिगबर, मन मा आसा परहरि सासा
सुरग भोंवण की करो आसा, नासिका अगर भूमडले वासा ।
खोजिले तत सरीरा जणणी न जणिबा,
ओदरे न आयबा, न पीयबा खीरू ॥ –प्रति ६८, २०१ ।

(–इसका विशेष प्रचलन नहीं है) ।

९–"ध्यान" मंत्र

ध्याने तू ध्याने तूं सीले सबदे तू आचारे विचारे तूं ।
गिगन गहोरे तू चवदा भवणे तूं त्योंह त्रिलोके तू ।
नादे वेदे तूं जबू दीपे तूं सपत पताळे तूं गाजे वाजे तूं ।
दामोदर तूं कृष्ण तूं बाहर तूं भीतरि तूं सरब निरंतर तू ।

ादि तूं जगादि तूं, निरंजण निराकार जोति सरूपी।
घणी थें जिसो घणाय करी, व्रख जिसो छाया करी।
पुरष थें जिसो महरि करी, आई बलाय दफै करी।
वुर वालियो वुर चींतियो तिसकै चक्र मारी।
त्रिलोकीनाथ भलो हुवै स करी।

६-लोकगीत और हरजस :

१-"हिंडोळो" (हर रो हिंडोळो) : (-वृद्ध के मृत्युभोज के समय बाहर से आनेवाली स्त्रियां यह गीत गाती हुई आती है)।

कठोड़ सूं आई वडेरो थानै पालकी, कठोड़ सूं आया रे विवांण।
आयो हलकारो श्री भगवान रो॥

सुरगां सूं आई वडेरो पालकी, हर दरगै सूं आया रे विवांण॥ आयो०॥
कण रे घड़ाई वडेरो थानै पालकी, कण लगाया हर रा जूंण ? आयो०॥
वेटै घड़ाई वडेरो रामइया म्हानै पालकी, पोतै लगाया हर रा जूंण॥ आयो०॥
कण थारी लीनी वडेरो परकमा, कण लीया थानै उतार ?। आयो०॥
पोतै लीनी म्हारी परकमा, वेटै लीया रे उतार॥ आयो०॥
चरव पाणी ओ जामी म्हारा चरचरा, थानै मांय गंगाजळ नीर॥ आयो०॥
कण खोळाई वडेरो थारी हाटड़ी, कण कियो रे सिणगार ?। आयो०॥
पोतै खोळाई वडोरो हाटड़ी, वेटै कियो रे सिणगार॥ आयो०॥
कण तो खोल्या वडेरो थारो कोयळा, कंण तो किया रे वणाव ?। आयो०॥
वहुए तो खोल्यो ओ जामी थारो कोयळो, वेटै तो कियो रे वणाव॥ आयो०॥
वेटा पोता थारै मोकळा, थानै रळमळ मंजल पोंचाय॥ आयो०॥
हर हर कर ओ जामी थानै ले गया, हर झांझर रै झणकार॥ आयो०॥
वेटा पोता वडेरो थानै ले गया, जाय उतारा ओ जामी थानै भोम मैं॥ आयो०॥
थरहर कांपी वन री लाकड़ी, थरहर कांप रह्यो वंणराय॥ आयो०॥
तू क्यूं कांपी वण री लाकड़ी, म्हे हां (अमुक......) रा वाप॥ आयो०॥
चावल सेऊं वडेरो थानै ऊजळा, हरा मूंगां री धोवा दाळ॥ आयो०॥
पोली पोऊं वडोरो थानै लट्छणी, तीवण तीस वत्तीस॥ आयो०॥
घी वरताऊं थानै टोकणै, जाटपुर री धोली खांड॥ आयो०॥
कुळ वहू वडेरो थानै थाळ परुसै, जीमो नणदवाई रा वाप॥ आयो०॥
जीम्या जूठ्या वडेरो थे तो रंज लिया, चळूं करावां गंगाजळ नीर॥ आयो०॥
चंनण चौकी वडेरो थारो वैसणो, तुळछां री माळा थारै हाथ॥ आयो०॥
सीरो वा मोकळो वडेरो, मांह खोपरियां रो मेळ॥ आयो०॥
सामी सूरज वडेरो थारो पांतियो, जीमै सारी नगरी रा लोग॥ आयो०॥
गऊ तो देवां ओ जामी थानै दूजती, पूंछ पकड़ तिर जाय॥ आयो०॥

सुरग मडेरो थारा बाजा बाजिया, खुल गया धरम किवाड़ ॥ आयो० ॥
दूर देसां री ओ जांमी थारो धीवडो, आवंलो गुवाड़ गुंजाय ॥ आयो० ॥
कुरजा ज्यूं कुरळाय ॥

–श्रीमती तुलसीदेवी गोदारा, धर्मपत्नी श्री रामसिंहजी कडवासरा, सेमाखेडा (फीरोजपुर) तथा श्रीमती परमेश्वरी देवी भादू, धर्मपत्नी श्री अमरचन्दजी गोदारा चक २६, बी० बी० (श्रीगगानगर) के सौजन्य से।

२–हालो साहिया ए :

हालो म्हारी सहियां ए जांभजी रा मेळा में।
आज रो समंधो म्हारा जंभेश्वर रो मेळं चालो ॥
सोना रे रूपा री सहियां ईंट पाडायसां।
हरि रो मिंदरियो चोणायसां ए ॥ जाभंजी० ॥
कुकूं रे केसर री सहियां गार पाडायसां, मिंदरियो लीपायसां ए ॥ जाभंजी० ॥
गगा रे जमना रा सहियां नीर मंगायसां, गुरुजी नै नहवायसां ए ॥ जाभंजी० ॥
गोरी गाया रो सहियां दूध मगायसां, गुरुजी नै पिल—— ए ॥ जाभंजी० ॥
हींगळू पागां रो सहियां ढोलियो ढळायसां, गुरुजी नै पोढायसा ए ॥ जांभजी० ॥

३–मुरली :

इण नै जांभजी रे मारगां झीणोडी उडं रे गुलाल, मुरली बाजं।
मेंही बाजै रे लालासर री सायरी, सुणीजै थेट मुकाम ॥ टेर ॥
इण नै जाभंजी रे मारगा रे झिरमिर बरसं मेह।
भीजै रे राधा रा लूगडा, रुकमण रो भीजै चंगो चीर ॥ मुरली० ॥
इण नं जाभंजी रे मारगा, बेजड्यो बणं रे कबीर।
बणीजं ठाकुर सा के हुरां रा धोतिया राणी रुकमण रं चंगा चीर ॥ मुरली० ॥
इण नै जाम्भंजी रे मारगा, भाठड्या भरा रे मजीठ।
रगीजै क्रस्नजी रा धोतिया राधा रुकमण रा रंगीजै चगा चीर ॥
कठै बिराजै ठाकुर हर रा धोतिया, कठइयं बिराजै चंगो चीर ॥
खवै बिराजै ठाकुर हर रा धोतिया, चइइयं बिराजै चगो चीर ॥
इणै नै रे जाम्भंजी रे मारगां सोनइयो घडं रे सोनार।
घड़ीजै क्रस्नजी रं मूंदड़ो, राधा रुकमण रं नौसर हार ॥
चिटू बिराजै हर रं मूंदडो, हिवडं बिराजं राधा रुकमण रं नौसर हार ॥
इणं नं जाम्भंजो रे मारगा डिगी डिगी बढी खिजूर।
जिण चढ साधे गूगल खेवियो, परमल गई रे वैकुंठ ॥
जिण चढ साधे जोवियो, सुरग नेड़ा घर दूर।
सुरगे रे वाजा बाजिया, खुल गया धरम दुवार ॥

–श्रीमती चूनी सारण, धर्मपत्नी श्री बाकारामजी जाधू, गुदाऊ (साचौर, जालौर) के सौजन्य से।

४–मिंदर :—

आछो मिंदर जम्भेश्वरजी महाराज का ॥
ओळा रे दोळा जाळ खेजड़ा वीच में वणी वड साळ ॥
आछो चिणायो चौक जाम्भेजी रो ॥
मकराणे सूं रामा भाटो रे मंगाय चौक हजारी चिणाव ।
नारेळां री रामा नींवी रे देराव, खोपरियां का आळीया रखाय ॥ चौक हजारी० ।
खारकियां री रामा खूंटी रे ठेराय, जळेवी री जाळी रे कराय ॥
मिंदर आछो लागै महाराज जाम्भेजी रो ॥
देस देस रा आवै रे मानवी, चुळ चुळ लागै पाय ॥ देवल आछो लागै० ।
ऊंट रे छल छल आखा रे आवै, घिरत घड़ै रै मांय ॥
पीळी पीळी पाँख्या रा आवै रे पारेवा, अै घुट घुट चुगैला रे मोठ ।
सोनै सूं मंढाऊं थारी चांच रूपा सूं मंढावूं थारा पांख ।
घुट घुट चुगैला मोठ, मनै आछो लागै मिंदर जांभेजी रो ॥

–श्रीमती छोटी गोदारी, धर्मपत्नी श्री जसवन्ताराम श्राजणा, गुदाऊं (सांचोर) के सौजन्य से ।

(७) ताम्र–पत्र और परवाने :

(क) ताम्रपत्र :

॥श्री रामोजयेति

॥श्रीगणेसप्रसादात् (भाले का निशान) श्रीयेकलिंगप्रसादात्

म्हाराजाधिराज म्हाराणाजी श्री सरुपसिंघजी आदेशात् साद मनीराम मगनीराम चेला अजबदास रा झामाजी रा वीसनोई साद कस्व गाम दरीवो प्रगणे पुर रे जणी म्हे ये पीयावास समेल्या रा गेला ऊप्रे वावड़ी तयार कराई नै पो तयार करावे नै ग्रती रो तु अरजाऊ हुवो सो ग्रती वीगा २ ॥) अडाई रापड़ ई री मेर ऊगमणी तो गाम दरीवा री लंकाऊ मेर रेत को दडो लीव को जोड आयमणी मेर काजी सायेव दीन री डोहली री धराऊ मेर पीयावास समेल्या रो गेलो माली तारू री वाडी वचे चालेजी री आ जमी चौमेरी अवार श्री हजुर सु पुन अरथ कर देवाणी है सो खाव्या पाव्यां जाने कोई वात री चोताण वेगा नही य्यो पुन श्रीजी रो है प्रंत दुवे पंचोली हरनाथ लीपता पंचोली रामसीघ सुरतसीघोत संवत् १९०९ वर्षे वेसाष वीद १२ सुक्रे

(पीछे)–मोहरों पर :

प्रवानगी	श्री	वगसी के
महता सेरसीघजी ह	सुरत नं० माराज रयी दवे	दफत्र मडी

(ख) परवाने : १–जोधपुर राज्य :

१–महाराजा भीमसिंहजी का :–

श्री परमेश्वरजी सत्य छै

श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री भीमसिंहजी वचनात् जोधपुर वगैरे परगनां समसुत रां गांव पटायता दिसे तथा बिश्नोइया सु लाग जो सदामन्द लागे है तिण माफक लीजो सिवाय खेचल न हुवे सवत् १८५१ आसोज सुदी १२ गढ जोधपुर

२–महाराज तख्तसिंहजी का :–

श्री परमेश्वरजी सत्य छै

श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री तखतसिंहजी वचनात् थापन बिश्नोइया रा गावा री सींव मे नीली खेजडी कोई थाढण पावें नहीं सिकार खेलण पावे नहीं कोई नीली खेजडी थाढसी सिकार खेलसी सो दरबार रो गुनैगार होसी सवत् १९०० वैसाख वदी १ गढ जोधपुर

–स्वामी ब्रह्मानन्दजी कृत विश्नोई धर्म विवेक, पृष्ठ १७–१८ से।

३–श्री रा– (महाराजा मानसिंहजी की मोहर)

॥ सिघवीजो श्री हरयमलजी लिषावत गांव सांवडाऊ रा चोधरीयां लोकां दीसे तथा तलाव पीपडलं रं आगोर मैलाय मांपजो मती नं पेजडीयां थाढजो मती नं लावेटा री ऊरड लेजावजो मती नं लेजावसी तीण कने श्री दरबार मं गुनंगारी लरीजसी नै पेच हुसी।

। सं। १८७८ रा मीती मीगसीर सुद २

–अध्ययन–सामग्री, सदर्भ सख्या ३६१।

२–उदयपुर राज्य :

१–श्री गणेसप्रसादातु (भाले का निशान) श्री एकलिंग प्रसादातु

सही

स्वस्ति श्री उदेपुर सुयाने म्हाराजाधिराज म्हाराणा श्री भीमसिंघजी आदेशातु कसबे पुर रे नायेक मानसीघ और समसत बसनोया कस्या–

१ अप्र–आगे थारे मेर मरजाद है त्या दाण प्रे क लागे है सो लेवासी थारी यदागी श्री द्रबार वने कटक से पदारे जदी पोठी पाच से थी बदगी करोगा थारी पावण वावढा हे जी प्रमाणे पाया जावोगा ने थारे सदामद सरणो पले हे जी प्रमाणे पल्या जायेगा थारे श्री द्रबार रो वराड आगे थी माफ है सो पल्या जासी थे हे धणी जमा खातर राखे पुर मे बसजो प्रवानगी व वासते जी सवत १८७४ वर्षे असाड वदी २ सनु पोठी ५०० सो रुपीया का जम्हो था थारे सगली मेवाड म्हे दाण १ लागे हे सो या तीरासू लेवायेगा।

–अध्ययन–सामग्री, संदर्भ सख्या ३६४।

२- ॥ श्रीरामोजयति ॥

श्रीगणेस प्रसादातु (भाले का निशान) श्रीएकलिंग प्रसादातु

सही

स्वस्ति श्री उदैपुर सुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री जवानसिंघजी आदेशातु नायेक सवलाल कस्य

१ अप्र थारा वडारी लागत मेर मरजाद सदावंद री हे सो पाया जासी जुनी मटेगा नहीं नवी वेगा न्ही देस परदेस री सरपावरी पावण हे सो थारी थारे वाल हे जणी री चोलण वेगा न्ही तु जमा खात्र सु वदावने श्री द्रवार थी थारी यरदास रहेगा और पुरव्या गाड सारी लागत थारी थारेवाल हे थारा कया प्रमाणे वीसनोई चाल्या जायेगा प्रवानगी महेता सू संवत् १८८५ रा मगसर वीद १३ सुक्रे

—अध्ययन-सामग्री, संदर्भ संख्या ३६५ ।

(८) 'लिखत' :

(क) लोहावट :—

१- १ । श्रीरांमजी ॥

१ । लीपत १ गांव लोहावट रां सोवरीया वीसनोयां पंसां समतां कर दीनो छै वीसनोयां री नीमात मैं ईतरी वात री मरजाद छै वरयौ नै तमाकु नै पेजड़ी ओयण रो अमर झाड वाढण पाव नहीं कैल भी कोई वाढै तो रुपीया ५) तो नाडी मांहे दवै न रुपीया ५।) श्री दरवार माहे देवै ईतरो वात री लीपत सारां पंसां क सीरै जासु लीप दीनै छै समत १८६२ रा फागण सुद १५

(पीछे इसी हस्तलिपि में)-"गुलफी रापण पव नै"

(भिन्न हस्तलिपि में)-'जे रापै तो रुपीया ५) दरवार मैं दै ५) वै तलाइ मैं'

—अध्ययन-सामग्री, संदर्भ संख्या ३५२ ।

२- श्रीरामजी सत छै

लतु (लपतु) लोहावट रा चोवरीयां कर दीन छै अमवस र दीन गर गोवर करता चाकी फंरतो वेमरजादी वात करता नत रा गुनगार मरीदा पेजड़ी ओण वाढतो नात रा गुनगार नत सारी चोरासी पड़रा लप दीना छै घरवार र रा ५) रीपीया पंच दरवार रा देसी नत रा गुनगरी गुनगारी १।) रीपीय सवा मीती जेठै सद सतसीटै दसतक पापन राऊ रा छै ।

—अध्ययन-सामग्री, संदर्भ संख्या ३५३ ।

३- १९८९ रा फागण सुद ११

१ रोको वीसनोई समस्तु भेला हो ने खास मैं लीख दियो तथा नीचे मुजब सरते जाम्भेजी नै वीच मैं ले ने कर दीयो है आ सरत नहीं नीभावेला सो जम्भेजी स वेमुख हवेला

ने नीयात सु गुनेगारी रा रु ११) देसी ईण मे ऊजर कर नही पखाल भील तथा मेघवाला रे पीयाई सु पावे न्ही अगर हो सके तो घर री पखाल मेघवाल भीला न देवे न्ही कदास मागी देवे तो पाछी लाय ने धोवे ओ रोको सारा मेला होय ने कीना छ ने भीला सु घडे १ रो आदो आनो ले ने भरे। —अध्ययन-सामग्री, सदर्भ सख्या ३५५।

(ख) जाम्भोळाव :

जो बिशनोई भाई गो वत्स मर जाने के पश्चात या बच्चे को प्यार न करने पर दूध के लोभ वश हो गो माता को फूंका दे (गोरा कर) दूध निकालेगा उसे २१) सवा इकीस मण मोठ व रु० १५१) धरमादे ताळ के कर कबुतरा को नाकना पडेगा और रु० १५१) राज मे गुनेगारी का जमा कराना पडेगा क्योंकि ऐसा करने से कभी कभी गो दूध के साथ साथ गो रक्त आ जाता है जिससे हम गोरक्षक के बदले मे गो भक्षक कहलाते हैं और हिन्दू होते हुए यवनों से भी नीच काम करने हारे कहलाते हैं।

—संवत् १९७८ के भाद्रपद पूर्णिमा को जाम्भोळाव के 'माघी मेला' मे।

प्रकाशक-हरिदास जयनारायण, गाडूराम, महन्त-जाम्भा।

(९) बिश्णोइयों की जातियां

अग्रवाल, अडींग, अभीर (अहीर), आजणा, आमरा, इहराम (ईसराम), ई आर, ईसरवाल, उत्कळ, उदाणी (गोदारा), ऐंचरा, ऐरण, ओदिया, कडवासरा, करीर, कलवाणिया, कसवा, काकड, कालीराणा, कासणिया, कातिल, कुपासिया, कुहाड, कूकणा, केरू, खदाह, खाती, खावा, खासा, खितेरी, खोचड, खारा, खोखर, खोड, खोथ, गर्ग, गाट, गावाल, गीला, गुजेला, गुरेसर, गुरु, गोड, गोदारा (खरींगिया सोनगरा, धोळिया बन्नड, उदाणी), गोभिल, गोयत, गोयल, गोरा, चदेल, चांगड, (सुथार), चाहर, चोटिया, चौहान जवर, जटराणा, जागू, जाखड, जाजूदा, जाणी, जीवावल, झाग, झाला, झूरिया झोधकण, झोरड, टाडी, टाडा, टूहिया (टूसिया) टोकसिया, डागर, डारा, डूडी, डेलू ढाडणिया, ढाका, ढूकिया (डहूकिया), तवर, तगा, तरड, तुम्दल, तेतरवाळ, थालोड, थोरी, दइया, दिलोइया दुगेसर, देडू, देवडा, दोतड, धतरवाळ, धामा, धायल, धारणिया, नाडा, नाई, निरवांण, नैण, पवार, पडिहार, पठान, परवाल, पाटोदिया (सुथार), पालडिया, पुरवार, पूहिया, पूनिया, पो पोटळिया, बजाज, बछियाल, बटेसर, बरड, बल्डकिया, बलावत, बागडिया, वाना बाडेट, बाघेला, बाजरिया, बाजणा, बासणियां, बिच्छू, बुरडक, बूडिया, बोळा, भूवाल, भट्टू, भकूंडिया, भांमू, भाखर, भाडेरा, भादू, भुट्टा, भोजावत, मडा, मतवाळा, मल्ला, महिया, मांझू, माचरा (माजरा), मालवी, माल, मालीवाल, मूंढ, मेडा, मेहला, मोगा, मोहिल, ठौड, रायल, राव, राहुड, रेवाड, रोहज, ललेसर, लावा, लेगा, लोळ, लोहमरोड, वडियार (विडार), वणियाळ, वरा, विडासरा, विलोणिया, वेरवाल, सराक, सहू, सरावक, साईं, सांखला, सावक, सारण, सिंघल, सियरखिया, सिरडक, सिरडिया, सीगड, सींवर, सींवळ, सीलक (सुथार), सीसोदिया, सुथार, सुनार, सेवदा, सोढा, हरडू, हाडा, हूडा। (—लेखक को अनेक स्रोतों से यही सूची उपलब्ध हो सकी है)।

(१०) अंगरेज सरकार के आदेश :

(क) जिला हिसार :—

Revised instructions for Sportsmen other than Soldiers issued under Punjab Government Orders contained in their Circular No. 1-115, dated 3rd February, 1898.

1. In accordance with Government Orders contained in their Circular No. 1-115 dated 3rd February 1896 and Supreme Government Resolution No. 16/145-83 dated 23rd September 1895 and with the sanction of the Commissioner Delhi Division vide his letter No. 29 dated 16th January 1903 the following instructions for sportsmen other than soldiers are issued in supersession of the previous notice issued in 1896. Sportsmen are required to observe them closely when engaged in shooting expeditions.

2. It is essentially necessary for the shooting party to be acquainted with the language spoken in the village and to be able to converse with the inhabitants of the village.

3. The members of the shooting party should on no account address or enter into conversation with any native women.

4. Sportsmen are prohibited from shooting birds or animals within 500 yards of any village, house, temple, mosque or enclosure or on tanks closed to the villages and should not enter any house, temple, mosque or enclosure without getting permission from the owner.

5. Sportsmen should avoid shooting especially with ball whenever there is a chance of people being about engaged in agriculture herding cattle or passing along paths unless there is a clear view up to the full range of the gun or rifle.

6. Sportsmen should be careful not to trespass upon, or shoot over standing crops, not to molest dogs or other domestic animals and not to shoot in tracts where owing to the sacredness of the locality or the religious views of the people shooting would be resented.

7. Shooting is absolutely prohibited at the following places in the Hissar District (1) The temple at Kirmara in the Hissar Tahsil (2) The Dera temple at Banbhori in the Hansi Tahsil (3) The Shrine

of Khawaja Sahib close to the town of Sirsa (4) Six villages exclusively owned by Bishnois noted below (Hissar Tahsil)

(1) Chaudhriwala (Bhawani Tahsil) (2) Lelas (Fatehabad) (3) Ratta Khera (4) Thirwa (5) Chibbarwal (6) Alawalwas

8 The shooting of black buck is also prohibited within the lands cultivated or uncultivated belonging to the following Bishnoi villages —

TAHSIL HISSAR

(1) Talwandi Badshah Pur (2) Rawat Khera (3) Kaluwas (4) Adampore (5) Landheri (6) Sukhlamboran (7) Kalirawan (8) Asrawan (9) Mahalsarai Mothsarai (10) Budha Khera (11) Dhansu (12) Mangali Pana Surtia

TAHSIL FATEHABAD

(13) Dhangar (14) Mohamed Pur Roshi (15) Khajuri (16) Kajalheri (17) Chindhar (18) Bhana (19) Sadal Pur (20) Bhoda Khera (21) Sarangpur (22) Nadhori (23) Ayalki (24) Dhani Majra (25) Pirthla (26) Parta (27) Thirvi (28) Bhodia (29) Khar Kheri (30) Shekhupur Darauli (31) Kherampur (32) Dhani Khasa (33) Gorakhpur (34) Jandali Khurd (35) Kheruwala (36) Bhirrana (37) Hasinga (38) Dhobi

TAHSIL SIRSA

(39) Jhanduwala Khurd (40) Rampura (41) Burj Bhangu (42) Chotala (43) Kherka (44) Bharu Khera (45) Asa Khera (46) Teja Khera (47) Rupana (48) Ganga (49) Ding (50) Goshainana (51) Sirsiwala

9 Peafowl and monkey which are generally looked upon as sacred in the District should on no accunt be shot or destroyed

(Sd) A M STOW

Deputy Commissioner,

Hissar District

(ख) जिला फीरोजपुर :—

FROM— CIR. NO.______

C. M. KING, Esqr.,
Deputy Commissioner,
Ferozepore.

To

____

____

SIR,

I have the honour to call your attention to the letter from Chief Secretary to Government Punjab, dated 3rd February, 1896, forwarded to your address with this office endersement No. 1085 dated 8th July 1896, and with reference thereto I have the honour to inform you that in consequence of complaints being received from office of the Ferozepore Garrison, of affrays with villagers and also in consequence of complaints by villagers of injury to their religious feeling I have been asked by the Commissioner to issue orders prohibiting shooting of birds or animals of any description within the limits of the marginally noted villages.

1. Bazidpore.
2. Panniwala Mahla.
3. Gumjal.
4. Haripura alias Bara Tirath.
5. Maharana alias Maharajpore.
6. Sukhchain.
7. Sardarpura alias Bakhshish Khera.
8. Rampura.
9. Bishanpura.
10. Khairpur.
11. Dotaranwali.
12. Rajanwali.
13. Rajpura alias Rampore
14. Narainpore.
15. Himmatpura.
16. Sitoganno.

2. I shall feel obliged by your giving as much publicity to this order as possible.

I have etc.,
(Sd.). C. M. KING,
Deputy Commissioner.

Dated Ferozepore
the 8th March, 1899.

संदर्भ-सूची :

विशेष :—इस सूची मे निम्नलिखित सामग्री सम्मिलित नहीं है, जिससे सबधित सदर्भ का उल्लेख यथास्थान किया गया है :—

१-वे हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रंथ जिनका उल्लेख निम्नलिखित दो अध्यायों के अन्तर्गत किया जा चुका है :

१-अध्याय १. अध्ययन-सामग्री,

२-अध्याय २ इस विषय पर अब तक किया गया कार्य—

(क) सम्प्रदाय के व्यक्तियों द्वारा तथा

(ख) सम्प्रदायेतर व्यक्तियों द्वारा।

२-शिलालेख (विशेष द्रष्टव्य : विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)।

३-मुद्रित परिपत्र, सूचना-पत्र, "लिखत", निर्णय आदि।

४-प्रस्तुत अध्ययन विषयक अनेक व्यक्तियो से हुआ लेखक का पत्र-व्यवहार।

(क) हस्तलिखित ग्रंथ :

१-अनूप सस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर। हस्तलिखित प्रति सख्या ९९, १००, १२६।

२-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की जयपुर शाखा का विद्याभूषण ग्रथ-सग्रह सस्थान।

३-जाम्भा-आगूणो जागां (फलोदी) के महन्त कौशलदासजी का एक गुटका।

४-महलाणा (जोधपुर) गाव के विष्णोई भाटों की बहियां और लेख।

५-दरीबा (भीलवाडा) के विष्णोई भाट लाल मोहम्मद मिरासी (सुपुत्र कजोडजी) की बहियां।

६-दादू द्वारा, मोती डूंगरी, जयपुर की हस्तलिखित प्रतियां।

७-श्री जोगीदानजी कविया, सेवापुरा के सग्रह की सामग्री।

८-प० कृपाशंकरजी तिवारी, १, म्यूजियम मार्ग, जयपुर के सग्रह की हस्त० प्रतियां।

९-प्रस्तुत लेखक के सग्रह की हस्तलिखित प्रतिय ।

(ख) हिन्दी ग्रथ :

(इस सूची मे गुजराती और बगला मे लिखित ग्रंथों का भी नामोल्लेख किया गया है)

१-अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास : डा० सत्यकेतु विद्यालकार, इतिहास सदन, नई दिल्ली, सन् १९३८।

२-अपभ्रंश भाषा और साहित्य : डा० देवेन्द्रकुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९६५।

३-अपभ्रंश साहित्य : डा० हरिवंश कोछड, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, संवत् २०१३।

४–आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिबजी (दो जिल्दों में) : भाई जवाहरसिंह कृपालसिंह, बाजार माई सेवां, अमृतसर।
५–उदयपुर राज्य का इतिहास (खण्ड–१, २, ३, ४), प्रथम संस्करण : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, अजमेर।
६–उर्दू–हिन्दी शब्दकोश : मु० मुस्तफाखां मद्दाह; प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, सन् १९५९।
७–ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह : शंकरदान शुभैराज नाहटा, कलकत्ता, संवत् १९९४।
८–ए कैटालोग आफ मैन्युस्क्रिप्टस् इन दि लाइब्रेरी आफ एच० एच० दि महाराना आफ उदयपुर : श्री मोतीलाल मेनारिया, इतिहास कार्यालय, उदयपुर, सन् १९४३।
९–ओझा निबन्ध संग्रह (भाग १) : गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, सन् १९५४।
१०–कबीर और कबीर पंथ : डा० केदारनाथ द्विवेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९६५।
११–कबीर ग्रंथावली : संपादक–डा० पारसनाथ तिवारी, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९६१।
१२–कबीर ग्रंथावली : संपादक–डा० श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१३।
१३–कबीर साहित्य की परख : श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, संवत् २०११।
१४–कवि चरित (भाग १–२) (गुजराती) : केशवराम काशीराम शास्त्री, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, सन् १९५२।
१५–कैटालोग आफ दि राजस्थानी मैन्युस्क्रिप्टस्, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
१६–क्यामखां रासा : राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, संवत् २०११।
१७–खेतड़ी का इतिहास : पं० झाबरमल्ल शर्मा, राजस्थान एजेन्सी, ८, रामकुमार रक्षित–लेन, कलकत्ता, संवत् १९८४।
१८–खोज रिपोर्ट, ना० प्र० सभा काशी, सन् १९२९–३१।
१९–गीत मंजरी : अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, संवत् २००१।
२०–गुजराती साहित्य का इतिहास : जयन्त हरिकृष्ण दवे, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, सन् १९६३।
२१–गुजराती साहित्य नां मार्ग सूचक स्तम्भो (गुजराती) : कृ० मो० झवेरी, गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद, सन् १९२३।
२२–गुजराती साहित्य नां स्वरूपो (पद्य विभाग) : म० र० मजमुदार, आचार्य बुक डिपो, बड़ौदा, सन् १९५४।
२३–गोरक्ष विकास : सदानाथ जोगी, जालन्धर, जून, सन् १९३५।
२४–गोपीचन्द : राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ (राजस्थान)।

२५-गोरखनाथ और उनका युग : डा० रांगेय राघव,
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९६३।
२६-गोरखबानी : सम्पादक-डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००३।
२७-चर्यागीति पदावली : डा० सुकुमार सेन,
साहित्य सभा, वर्धमान, सन् १९५६।
२८-चारणो अने चारणी साहित्य (गुजराती) : झवेरचन्द मेघाणी,
गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद, सन् १९४३।
२९-चारणोत्पत्ति मीमांसामार्तण्ड : कविराजा भैरवदान, बीकानेर।
०-जयपुर राज्य का इतिहास : हनुमान शर्मा, कृष्ण कार्यालय, चौ ,सव
३१-जाट इतिहास . देशराज जघीना,
श्री ब्रजेन्द्र साहित्य समिति, आगरा, सन् १९३४।
३२-जाहरपीर गुरु गुग्गा : डा० सत्येन्द्र, आगरा विश्वविद्यालय,
हिन्दी विद्यापीठ, आगरा प्रकाशन, सन् १९५६।
३३-जैन गुर्जर कविओ (गुजराती)-भाग : १ मोहनलाल दलीचन्द
श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स आफिस, बम्बई, सन् १९२६।
३४-जैसलमेर का इतिहास : हरिदत्त गोविन्द व्यास, बीकानेर, सन् १९२०।
३५-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,
संवत् १९९८, अजमेर।
३६-डूंगरपुर राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९९२, अजमेर।
३७-तसव्वुफ अथवा सूफीमत : चन्द्रबली पाण्डे, सरस्वती मंदिर,
जतनबर, बनारस, सन् १९४८।
३८-तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य : श्री नागेन्द्रनाथ उपाध्याय,
ना० प्र० सभा, काशी, संवत् २०१५।
३९-दादू सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय . स्वामी मंगलदासजी,
दादू महाविद्यालय, जयपुर, प्रथम संस्करण।
४०-नरसैयो भक्त हरिनो (गुजराती) . क० मा० मुन्शी,
गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद, सन् १९१२।
४१-नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी,
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५०।
४२-नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन ओ साधन प्रणाली (बंगला) .
डा० कल्याणी मल्लिक, कलकत्ता विश्वविद्यालय, सन् १९५०।
४३-नाथ सिद्धों की बानियाँ . सम्पादक-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी,
ना० प्र० सभा, काशी, संवत् २०१४।
४४-पंचामृत : स्वामी मंगलदासज , दादू द्वारा, जयपुर, सन् १९४८।

४५–पंदरमां शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य (गुजराती) : के० ह० ध्रुव,
गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद, संवत् १९८३।
४६–पंवार वंश दर्पण–सिढायच दयालदास कृत,
सादूळ राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् १९६०।
४७–प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,
संवत् १९९७, अजमेर।
४८–प्रहलाद चरित्र–ऊदोजी अड़ींग कृत : सम्पादक–रामलाल वर्मा,
आत्माराम ब्रह्मानन्द, महाराजपुर (फीरोजपुर), संवत् १९९७।
४९–प्राकृत पैंगलम् (भाग १ तथा २) : डा० भोलाशंकर व्यास, प्रथम संस्करण,
प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी।
५०–प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह : गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, संख्या–१३,
बड़ौदा, सन् १९२०।
५१–प्राचीन भारतीय इतिहास और परम्परा : डा० रांगेय राघव, आत्माराम एण्ड सन्स,
दिल्ली, सन् १९५३।
५२–पिंगळ सिरोमणि, परम्परा–भाग १३, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर,
सन् १९६१–६२।
५३–पीरदान ग्रंथावली : सादूळ राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् १९६०।
५४–पुरातन प्रबन्ध संग्रह : सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, संवत् १९९५।
५५–पूर्व आधुनिक राजस्थान : डा० रघुवीरसिंह, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर,
सन् १९५१।
५६–बाँकीदास री ख्यात : राजस्थान पुरा० मन्दिर, जयपुर, सन् १९५६ (अब जोधपुर)।
५७–बांगाला भाषार अभिधान (बंगला) : ज्ञानेन्द्रमोहन दास, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता।
५८–बौद्धगान ओ दोहा (बंगला) : हरप्रसाद शास्त्री, बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता–६,
बंगाब्द १३६६।
५९–भक्तमाल–राघोदास कृत, राजस्थान, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६५।
६०–भक्तमाल–नाभादास : रूपकला, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९३७,
तृतीय संस्करण।
६१–भक्ति अंक–कल्याण; गीताप्रेस, गोरखपुर, सन् १९५५।
६२–भारतीय दर्शन : डा० उमेश मिश्र, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश,
लखनऊ, सन् १९५७।
६३–भारतीय दर्शन : बलदेव उपाध्याय : शारदा मन्दिर, बनारस, सन् १९४८।
६४–भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास : एस० आर० शर्मा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल,
हास्पिटल रोड, आगरा, सन् १९६१।
६५–मध्ययुगीन धर्म साधना : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद, सन् १९५६।

६६-मराठी का भक्ति साहित्य : प्रो० भी० गो० देशपाण्डे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९५९ ।

६७-मान पद्य सग्रह (तीसरा भाग) : रामगोपाल मोहता, बीकानेर, सवत् २००७ ।

६८-मारवाड का इतिहास, (प्रथम भाग) विश्वेश्वरनाथ रेउ, आर्कियालोजिकल डिपार्टमैन्ट, जोधपुर, सन् १९३८ ।

६९-मारवाड का मूल इतिहास · पं० रामकर्ण आसोपा, जोधपुर, प्रथम सस्करण ।

७०-मारवाड का सक्षिप्त इतिहास : प० रामकर्ण आसोपा, जोधपुर, प्रथम सस्करण ।

७१-मारवाड राज्य का इतिहास : श्री जगदीशसिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, द्वितीय सस्करण, सन् १९२५ ।

७२-मुंहणोत नैणसी की ख्यात, भाग १, ना० प्र० स०, काशी, सवत १९८२ ।

७३-मुंहणोत नैणसी की ख्यात, भाग २, ना० प्र० स०, काशी, सवत् १९९१ ।

७४-मुंहता नैणसी री ख्यात (भाग ३), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६४ ।

७५-मेहाई महिमा : हिंगलाजदान, जयपुर, सवत् १९९८ ।

७६-यशोनाथ पुराण · सिद्ध रामनाथ ।

७७-युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि शकरदान शुभैराज नाहटा, कलकत्ता, संवत् १९९२ ।

७८-योग प्रवाह डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, श्री काशी विद्यापीठ, बनारस, संवत २००३ ।

७९-रघुनाथ रूपक गीतां रो ना० प्रा० सभा, काशी, सवत, १९९७ ।

८०-रघुवर-जस-प्रकास राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सवत् २०१७ ।

८१-रज्जब बानी : सम्पादक-डा० ब्रजलाल वर्मा, उपमा प्रकाशन प्रा० लि०, कानपुर, सन् १९६३ ।

८२-राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द गौरीशकर हीराचन्द ओझा, द्वितीय संस्करण, सवत् १९९३, अजमेर ।

८३-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, जगदीशसिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, सन् १९६० ।

८४-राजरूपक, रतनू वीरभाण कृत, ना० प्र० सभा, काशी, संवत् १९९८ ।

८५-राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, सन् १९५२ ।

८६-राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची, चतुर्थ भाग, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीरजी, महावीर भवन, जयपुर, सन् १९६२ ।

८७-राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार · हिन्दी परिषद, जयपुर, सन् १९५४ ।

८८-राजस्थानी बार्तां सम्पादक-सूर्यकरण पारीक, नवयुग साहित्य मन्दिर, पोस्ट बाक्स ७८, दिल्ली, सन् १९३४ ।

८९–राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००८।
९०–राजस्थान रा दूहा : सादूळ राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् १९६१।
९१–राजस्थानी लोकगीत (दूसरा भाग) : सम्पादक–रामसिंह, पारीक और
स्वामी, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९३८।
९२–राजस्थानी लोक संस्कृति की रूपरेखा : श्री मनोहर शर्मा,
राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ (राजस्थान), सन् १९६५।
९३–राजस्थानी व्रत कथाएँ : सादूळ राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् १९६१।
९४–राजस्थानी वीर गीत, भाग १, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, सन् १९४५।
९५–राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथ सूची, भाग १, ग्रंथांक–४४,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६०।
९६–रुक्मणी मगळ : राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ (राजस्थान)।
९७–वंशभास्कर (पहला और तीसरा भाग) : सूर्यमल्ल मिश्रण, जोधपुर, संवत् १९५६।
९८–वर्णरत्नाकर : एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९४०।
९९–वाचस्पत्यम् (तृतीय भाग), चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन १९६२।
१००–विचार और विवेचन : डा० विपिनविहारी त्रिवेदी :
पारुल प्रकाशन, लखनऊ, सन १९६४।
१०१–विद्याभूषण–ग्रंथ–संग्रह–सूची, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर,
सन् १९६१।
१०२–वीरविनोद : कविराजा श्यामलदास, उदयपुर।
१०३–शब्द कल्पद्रुम (द्वितीय काण्ड), मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९६१।
१०४–शिखर वंशोत्पत्ति, ना० प्र० सभा, काशी, संवत् १९८५।
१०५–शैवमत: डा० यदुवंशी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण।
१०६–श्री पात्रदेव कदळी यात्रा : राजा चमेली नाथ योगी, अखिल भारतवर्षीय
योग प्रचारिणी महासभा, गोरक्ष टिल्ला, काशी, संवत् २०१३।
१०७–श्रीमद् राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रन्थ, श्री राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय, खुडाला
(मारवाड–राजस्थान)।
१०८–श्री रामदासजी महाराज की वाणी ;
श्री मदाद्य रामस्नेहि साहित्य शोध प्रतिष्ठान, खेड़ापा, संवत् २०१८।
१०९–श्री विष्णु चरित्र : संग्रहकर्ता–जगन्नाथ गैदर,
प्रकाशक–श्री ओंकारजी पंवार, फडोला, संवत् २००७।
११०–श्री व्रतराज (हिन्दी टीका समेत) : टीकाकार–पं० माधवाचार्य,
खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, संवत् २०२०।
१११–श्री सप्तव्यसन संतापिनी : श्री शालग्राम, जोधपुर, संवत् १९९०।
११२–श्री हरियशमणि मंजूषा : साधु वैद्य श्री रामनारायणजी,
सिहथल (बीकानेर), सवत् २०१६।

११३-संगीत राग कल्पद्रुम (प्रथम खण्ड) कृष्णानन्द व्यास, संवत् १९७१, कलकत्ता।
११४-संत कवि रज्जब (सम्प्रदाय और साहित्य) डा० ब्रजलाल वर्मा,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६६।
११५-संत नामदेव की हिन्दी पदावली : संपादक डा० भगीरथ मिश्र और मौर्य,
पूना विश्वविद्यालय, सन् १९६४।
११६-संत रविदास और उनका काव्य स्वामी रामानन्द शास्त्री और वीरेन्द्र पाण्डेय,
श्री भारतीय रवि सेवा संघ, रविदास आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार, संवत् २०१२
११७-सिख धर्म की रूपरेखा प्रिन्सिपल गंगासिंह,
शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, सन् १९६४।
११८-सिद्ध साहित्य : डा० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५५।
११९-सिद्ध सिद्धान्त पद्धति पूर्णनाथजी, बोहर, संवत १९९६।
१२०-सीकर का इतिहास प० झाबरमल्ल शर्मा,
राजस्थान एजेन्सी, ८१ रामकुमार रक्षित लेन संवत् १९७९।
१२१-सूफीमत और हिन्दी साहित्य : डा० विमलकुमार जैन,
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९५५।
१२२-सूफीमत साधना और साहित्य रामपूजन तिवारी, ज्ञानमंडल लिमिटेड,
बनारस, संवत् २०१३।
१२३-सूरज प्रकास-कविया करणीदान कृत,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, संवत् १९९३।
१२४-हठयोग प्रदीपिका, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, संवत् १९८१।
१२५-हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (सन् १९०० से १९५५ ई० तक),
दोनों खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०२१।
१२६-हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य : डा० सियाराम तिवारी,
हिन्दी संसार, दिल्ली-६, सन् १९६४।
१२७-हिन्दी छन्द प्रकाश श्री रघुनन्दन शास्त्री,
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९५२।
१२८-हिन्दी भाषा का इतिहास : डा० धीरेन्द्र वर्मा,
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५३।
१२९-हिन्दी विश्वकोश (जिल्द ४, ६) नगेन्द्रनाथ वसु, कलकत्ता, सन् १९२५।
१३०-हिन्दी शब्द सागर (भाग १,२), ना० प्र० सभा, काशी, सन् १९१६, १९२०।
१३१-हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी,
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, सन् १९५२।
१३२-हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संवत् २०१५।

१३३–हिंदुओं के व्रत, पर्व और त्योहार : राप्रताप त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९६६।

१३४–हिन्दुत्व : श्री रामदास गौड़, सेवा उपवन, काशी, संवत् १९९५।

(ग) अंगरेजी ग्रन्थ :

१३५–ए राजपूताना गजेटियर, वाल्यूम सैकिन्ड, सन् १८७९।

१३६–ए संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी : मोनियर विलियम्स, वाराणसी, सन् १९६३।

१३७–अजमेर–हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव : हरविलास सारड़ा, अजमेर।

१३८–एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया : मजुमदार, रायचौधरी और दत्त, लन्दन, सन् १९४८।

१३९–अन्सियेन्ट सिटीज आफ राजस्थान : डा० कैलाशचन्द जैन(–अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जयपुर।

१४०–अंनुअल रिपोर्ट आन दि सर्च फार हिन्दी मैन्युस्क्रिप्टस् फार दि ईयर–१९००; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१४१–बीकानेर गोल्डन जुबली, १८८७–१९३७; बीकानेर राज्य प्रकाशन, बीकानेर।

१४२–बोम्बे प्रेसिडेन्सी गजेटियर, वाल्यून ९, पार्ट–फर्स्ट।

१४३–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९०१, वाल्यूम १–ए, पार्ट–सैकिन्ड।

१४४–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९०१, वाल्यूम २५–ए,–राजपूताना, पार्ट–सैकिन्ड।

१४५–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९०१, वाल्यूम १७–ए, पार्ट सैकिन्ड।

१४६–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९११, वाल्यूम १, पार्ट–सैकिन्ड।

१४७–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९११, राजपूताना एण्ड अजमेर–मेरवाड़ा, पार्ट–फस्ट।

१४८–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९११, वाल्यूम १४, पार्ट–सैकिन्ड, पंजाब।

१४९–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९२१, वाल्यूम २४, पार्ट–फस्ट, राजपूताना एन्ड अजमेर–मेरवाड़ा।

१५०–सैन्सस् आफ इन्डिया, बीकानेर स्टेट : रायबहादुर जयगोपाल पुरी।

१५१–सैन्सस् आफ इन्डिया, १९२१, वाल्यूम १५, पार्ट–सैकिन्ड, पंजाब।

१५२–सैन्सस् आफ इन्डिया, वाल्यूम १, पार्ट–सैकिन्ड।

१५३–डिस्क्रिप्टिव कैटालोग, सैक्सन–सैकिन्ड, पार्ट–फस्ट : डा० टैसीटरी, कलकत्ता।

१५४–अर्ली चौहान डायनस्टीज : डा० दशरथ शर्मा, एस० चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, सन् १९५९।

१५५–इन्साइक्लोपेडिया आफ रिलीजन एन्ड एथिक्स, जिल्द छठी, न्यूयार्क, सन् १९५५।

१५६–गोरखनाथ एन्ड दि कनफटा योगीज : जार्ज वेस्टन ब्रिग्स, कलकत्ता, सन १९३८।

१५७–गुजरात एन्ड इट्स् लिटरेचर : के० एम० मुन्शी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, सन् १९५४।

१५८–हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एन्ड सरेमनीज : मूल लेखक–अबे जे० ए० डुबायस; हेनरी के० ब्यूकैम्प द्वारा अनुवादित और सम्पादित तीसरा संस्करण, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, सन् १९५३।

१५९–हिस्ट्री आफ ब्रजबुली लिटरेचर : डा० सुकुमार सेन,कलकत्ता यूनिवर्सिटी, सन् १९३५।

१६०–इण्डियन साधुज : जी० एस० घुरये, पापुलर प्रकाशन, बम्बई, सन् १९६४।

१६१–मेडिवल मिस्टिसिज्म आफ इण्डिया क्षितिमोहन सेन, ल्यूजाक एन्ड कम्पनी, लन्दन, सन् १९३५।

१६२–मैमोरैंडम टू दि आनरेबल प्रेसीडेन्ट एन्ड मेम्बर्स बाउन्ड्री कमीशन, इण्डिया, कैम्प-रोहतक, १९-४-५५ ' जम्भेश्वर सेवक दल, अबोहर।

१६३–ओब्स्क्योर रिलिजियस कल्टस् डा० शशिभूषण दासगुप्त, फर्मा के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, सन १९६२।

१६४–ओल्ड बंगाली टेक्स्ट्स, डा० सुकुमार सेन, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स, वाल्यूम-१०, कलकत्ता, सन् १९४८।

१६५–पंजाब डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, वाल्यूम–थर्ड ए, सन् १९१०।

१६६–रिपोर्ट आन दि सैन्सस् आफ १८९१, वाल्यूम-सैकिन्ड (दि कास्टस् आफ मारवाड), जोधपुर, सन १८९४।

१६७–स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री : डा० कालिकारंजन कानूनगो, एस० चाँद एन्ड कम्पनी, दिल्ली, सन् १९६०।

१६८–सूफीज्म, इट्स् सेन्टस् एन्ड श्राइन्स् जोन ए सुभान, लखनऊ, सन १९३८।

१६९–दि हिस्ट्री आफ इन्डिया अंज टोल्ड बाई इट्स् ओन हिस्टोरियन्स, वाल्यूम थर्ड, लन्दन, सन १८७१।

१७०–दि न्यू बुक आफ नॉलेज, वाल्यूम सेविन : सर जोन हेमरटन, लन्दन।

१७१–दि न्यू बुक आफ नॉलेज, वाल्यूम सेवन ' गोरडन स्टोबल, लन्दन।

१७२–दि ओरिजन एन्ड डेवलपमेन्ट आफ बंगाली लेंग्वेज : डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, पार्ट फस्ट, कलकत्ता, सन् १९२६।

१७३–दि शार्टर आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी आन हिस्टोरिकल प्रिन्सिपल्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, सन १९५६।

१७४–दीज टैन ईयरस (ए शार्ट एकाउन्ट आफ दि सैन्सस् आपरेशन इन राजपूताना एन्ड अजमेर-मेरवाडा)–राजपूताना सैन्सस्, वाल्यूम २४, पार्ट—फस्ट : ए० डब्ल्यू० टी० वेब।

१७५–वैष्णविज्म, शैविज्म एन्ड माइनर रिलीजियस सिस्टम्स : भण्डारकर; भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, सन् १९२९।

(घ) पत्र-पत्रिकाएँ :

१-अमर ज्योति, हिसार ।

२-नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बनारस ।

३-परम्परा, जोधपुर ।

४-मरुभारती, पिलानी ।

५-राजस्थान साहित्य, उदयपुर ।

६-राजस्थान-भारती, बीकानेर ।

७-राजस्थान, कलकत्ता ।

८-वरदा, बिसाऊ ।

९-विश्नोई समाचार, नगीना ।

१०-विश्वभारती पत्रिका, शान्तिनिकेतन ।

११-शोध-पत्रिका, उदयपुर ।

१२-जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल (न्यू सिरीज), कलकत्ता ।

नामानुक्रमणिका :

(इसमे अध्याय १ तथा २ मे आए नामों का उल्लेख नहीं किया गया है। दोनों भागों मे आए पौराणिक नाम भी छोड दिए गए हैं।

पहले भाग की पृष्ठ सख्या १ से ४७० तक है। दूसरा भाग पृष्ठ ४७१ से आरम्भ होता है)

प

म

य

र